श्रीमद्-बाणभट्ट-प्रणीतं

हर्षचरितम्

"छात्रतोषिणी" संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याभ्यां

टिप्पण्या च समलङ्कृतम्

(१-४ उच्छ्वासात्मक : पूर्वभागः)

प्राचार्य-श्रीमोहनदेवपन्तः

श्रीमद्-बाणभट्ट-प्रणीत

हर्षचरितम्

''छात्रतोषिणी'' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याभ्यां टिप्पण्या च समलङ्कृतम्

(१-४ उच्छ्वासात्मक : पूर्वभागः)

व्याख्याकारः

प्राचार्य-श्रीमोहनदेवपन्तः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता,
बंगलूरू, वाराणसी, पटना

तृतीय पुनर्मुद्रण: दिल्ली, 2016

प्रथम संस्करण: 1984

ISBN: 978-81-208-2615-1

मोतीलाल बनारसीदास

41 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली 110 007

236 नाइंथ मेन, III ब्लॉक, जयनगर, बंगलूरू 560 011

8 महालक्ष्मी चैम्बर, 22, भुलाभाई देसाई रोड, मुम्बई 400 026

203 रायपेट्टा हाई रोड, मैलापोर, चेन्नई 600 004

8 कैमेक स्ट्रीट, कोलकाता 700 017

अशोक राजपथ, पटना 800 004

चौक, वाराणसी 221 001

आर.पी. जैन के द्वारा एन ए बी प्रिंटिंग यूनिट,
ए-44, नारायणा, फेज़-1, नई दिल्ली 110 028 में मुद्रित
एवं जे.पी. जैन द्वारा मोतीलाल बनारसीदास
41 यू.ए., बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110 007, के लिए प्रकाशित

विषय-सूची

भूमिका v-xxv

बाण का वंश v. बाणचरित vi. बाण का व्यक्तित्व ix. बाण की कृतियाँ—चण्डीशतक-पार्वतीपरिणय-मुकुताटितक-पद्यकादम्बरी ix. आख्यायिका और कथा xii. हर्षचरितकथासार xiii. कादम्बरी, कादम्बरीकथासार xvi. हर्षचरित और कादम्बरी xvii. बाण के गुणदोष xviii. बाण की शैली xx. संस्कृत जगत् द्वारा बाण की प्रशस्ति xxii. बाण का परवर्ती प्रभाव xxiii. हर्षचरित xxiv. हर्ष का वंश एवं हर्ष के स्वहस्ताक्षरों से अङ्कित ताम्रपत्र की प्रतिलिपि xxv. बाण और हर्षकालीन भारत xxxii ।

प्रथम उच्छ्वास–वात्स्यायनवंश वर्णन १–७४

मंगलाचरण १, कुकविनिन्दा २, देशभेद से काव्यस्वरूप भेद ४, प्राचीन आख्यायिका-कारों की वन्दना ६, हर्षचरित आख्यायिका का उपक्रम १०, ब्रह्माजी की गोष्ठी में विवाद १२, सरस्वती रूपवर्णन १३, दुर्वासा का कोप १६, सावित्री वर्णन १८, दुर्वासा का शाप २०, ब्रह्मा द्वारा दुर्वासा की भर्त्सना और सरस्वती को आश्वासन २०, सन्ध्या-वर्णन, रात्रिवर्णन, चन्द्रोदय वर्णन २३, सावित्री द्वारा सरस्वती को सान्त्वना २८, सरस्वती और सावित्री का मृत्युलोक को प्रस्थान ३१, मन्दाकिनीवर्णन ३१, शोणनदवर्णन ३३, सरस्वती का शोणतट पर निवास ३४, पैदलों के साथ घुड़सवारों के समूह को देखना ३५, उनके मध्य वर्तमान युवाद्वय (दधीचि और विकुक्षि) का वर्णन ३६, सरस्वती-सावित्री द्वारा उनका स्वागत और परस्पर परिचय ४३, दधीचि का च्यवनाश्रम को प्रस्थान ४८, सरस्वती का औत्सुक्य ४९, विकुक्षि का पुनरागमन ५१, मालती वर्णन, मालती द्वारा दधीचि का सन्देश कथन और सरस्वती की स्वीकारोक्ति ५३, मालती का दधीच्याश्रम को प्रस्थान ६२, सरस्वती की उत्कण्ठा ६३, दधीचि का आगमन और सरस्वती से सहवास ६४, सरस्वती द्वारा पुत्रप्रसव के अनन्तर सावित्रीसहित स्वर्ग को प्रस्थान ६५, दधीचि का सारस्वत पुत्र को अक्षमाला को सौंपना, अक्षमाला द्वारा अपने और सरस्वती के (दोनों) पुत्रों को पालना ६६, सारस्वत द्वारा वत्स को समस्त-वाङ्मय का ज्ञान कराकर दधीचि के आश्रम को प्रस्थान ६६, वात्स्यायन द्विजों का वर्णन ६७, इसी वंश में बाण के पूर्वज और बाण की उत्पत्ति ७०, बाण की मित्रमंडली और पर्यटन ७१, बाणका पुनः अपने घर लौटना ७४।

द्वितीय उच्छ्वास–राजदर्शन ७५–१४७

बाण का बन्धुबान्धवों के घरों में घूमना ७६, ग्रीष्मवर्णन ७८, बाण के लिये कृष्ण का मेखलक द्वारा सन्देश ८१, बाण का एकान्त में विचार और जाने का निर्णय ९५ प्रीतिकूट से प्रस्थान ९७, मल्लकूट, यष्टिगृहक होते हुए राजभवन के समीप पहुँचना ९९, राजद्वार का वर्णन १००, प्रतीहार वर्णन १०७, अश्वशाला और हस्तिशाला का वर्णन १०८, दर्पशात हस्ती का वर्णन १११, सम्राट् हर्ष का वर्णन १२१, बाण की हर्ष से भेंट १३७, बाण और हर्ष की नोक-झोंक १४०, बाण का शोच और शनैः शनैः हर्ष की प्रसन्नता, बाण का राजभवन में पुनः प्रवेश १४३।

तृतीय उच्छ्वास–राजवंश वर्णन १४८–२१६

शरद् वर्णन, राजसत्कृत बाण का गांव लौटना १४९, बन्धुबान्धवों द्वारा सत्कार एवं वार्तालाप १५१, सुदृष्टि नामक कथावाचक द्वारा वायुपुराण का पाठ १५३, बन्दीद्वारा आर्यापाठ १५५ बाण के भाइयों द्वारा हर्षचरित

सुनाने का आग्रह १५६ सन्ध्या के लिये [illegible], दूसरे दिन बन्दी द्वारा पुनः दो श्लोकों का पाठ, बाण द्वारा हर्षचरित का प्रारम्भ १६७, श्रीकण्ठ जनपद वर्णन १६८, स्थाण्वीश्वर वर्णन १७३, पुष्पभूति वर्णन १७९ भैरवाचार्य के दूत मस्करी का वर्णन १८३, राजा का भैरवाचार्य के पास गमन १८५, भैरवाचार्य वर्णन १८७, राजा और भैरवाचार्य का वार्तालाप १९२, भैरवाचार्य द्वारा राजा को कृपाण देना १९६, राजा की शैवधर्म में दीक्षा २००, भैरवाचार्य की साधना २०१, श्रीकण्ठ नाग का प्रादुर्भाव २०५, राजा और श्रीकण्ठ का युद्धवर्णन २०८, श्रीकण्ठ का परास्त होना २१०, लक्ष्मी वर्णन २१० लक्ष्मी द्वारा राजा को वरदान २१३, राजा की वापसी २१६ ।

चतुर्थ उच्छ्वास—चक्रवर्ति-जन्मवर्णन

२१९—२८८

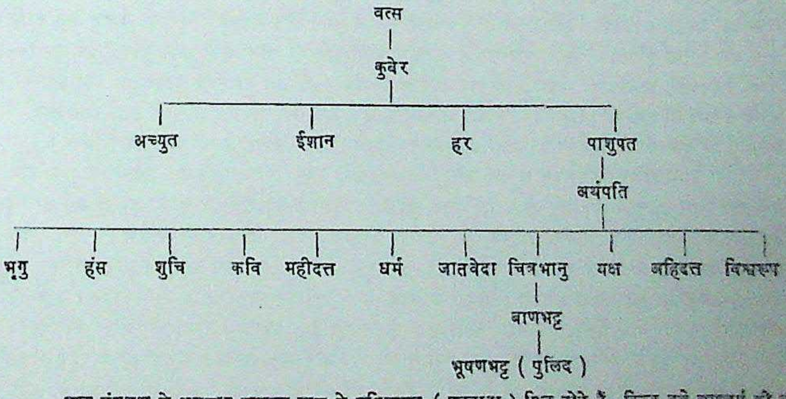
पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्धन की उत्पत्ति २१९, यशोमती वर्णन २२५, यशोमती द्वारा स्वप्नदर्शन राज्यवर्धन की उत्पत्ति २३४, हर्षवर्धन की उत्पत्ति २३६, पुत्रजन्मोत्सव वर्णन २४१, राज्यश्री की उत्पत्ति २५१, भण्डि का आगमन २५६, कुमारगुप्त और माधवगुप्त का आगमन २६०, राज्यश्री के विवाह की चिन्ता २६८, विवाह की तैयारियाँ २७१, ग्रहवर्मा का बारात लेकर आना २७९, विवाह एवं ग्रहवर्मा का वधूमुखावलोकन २८१, वरवधू का प्रस्थान २८७ ।

—:o:—

भूमिका

बाण का वंश : हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य के अधिकतर लेखकों—विशेषत: कवियों और नाटककारों के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान शून्य के बराबर ही है। हम उनका नाम ही नाम जानते हैं। उससे अधिक कुछ नहीं जानते। हमें न उनके कुल का पता है न काल का और न घर का। केवल कुछ अभिलेखों, बाह्य साक्ष्यों एवं प्रचलित दन्त कथाओं से ही कुछ ज्ञान होता है या फिर कल्पना का ही आंचल हमें पकड़ना पड़ता है। कविसम्राट् कालिदास को ही ले लीजिए। उनके व्यक्तिगत जीवन को हम अब भी अन्धकार में टटोलते जा रहे हैं। वे इतने निरभिमानी और संकोची स्वभाव के थे कि आत्म-प्रख्यापना से दूर ही रहे। यही हाल अन्य कलाकारों का भी समझिये। किन्तु सौभाग्यवश अपवाद स्वरूप इने-गिने कुछ ऐसे भी कलाकार हुए हैं, जो आगे की पीढ़ियों के लिए अपनी ही कृतियों के भीतर अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ ऐसे तथ्य छोड़ गए हैं जिनसे उनका सही-सही ज्ञान हो जाता है। ऐसे कवियों में सब से प्रमुख हमारे आलोच्य कवि बाणभट्ट हैं। इन्होंने कादम्बरी के कुछ आरम्भिक श्लोकों में अपने वंशधरों का संक्षिप्त वर्णन दिया है, लेकिन हर्षचरित में तो न केवल अपने वंश की प्रत्युत अपने जन्म स्थान, काल और व्यक्तिगत जीवन आदि का भी विस्तृत विवरण दे रखा है। शब्दान्तर में यों समझ लीजिए कि प्रथम, द्वितीय उच्छ्वास और तृतीय उच्छ्वास का भी कुछ भाग 'हर्षचरित' नहीं बल्कि 'बाणचरित' है।

बाण ने वत्स को अपना वंश-प्रवर्तक मूलपुरुष माना है, जो सरस्वती के पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई थे। इन्हीं वत्स से वात्स्यायन गोत्र चला। कालक्रम से बहुत समय बाद इस वंश में कुबेर नामक एक ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् ने जन्म लिया, जो वेदादि सभी शास्त्रों के पारंगत थे और जिनके चरणों में सभी गुप्तवंशीय राजे शिर झुकाये रहते थे। कुबेर के पाशुपत, पाशुपत के अर्थपति, अर्थपति के चित्रभानु और चित्रभानु के बाण पुत्र हुए। पाठकों की सुविधा हेतु हम नीचे बाण के वंश वृक्ष का चित्र खींच देते हैं—



उक्त वंशवृक्ष के अनुसार पाशुपत बाण के प्रपितामह (पड़दादा) सिद्ध होते हैं, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि कादम्बरी के वंशपरक श्लोकों में पाशुपत का कहीं उल्लेख नहीं है। यह सम्भव नहीं कि बाण अपने प्रपितामह को एकदम भूल जायँ। हो सकता है कि बाण ने कादम्बरी में भी पाशुपत सम्बन्धी कोई श्लोक लिख रखा हो और और वह मूल लिपिकार की भूल से रह गया हो और वह भूल बाद की प्रतियों में भी बराबर चलती आ रही हो

अथवा यह भी हो सकता है कि वाण ने [illegible] क्रम निरपेक्ष होकर विशिष्ट वंशधरों का उल्लेख करना ही उचित समझा हो, हर्षचरित की तरह सभी वंशधरों का क्रम सापेक्ष उल्लेख न किया हो।

वाण का देश-काल : हम पीछे कह आये हैं कि हर्षचरित के प्रथम, द्वितीय और तृतीय उच्छ्वास के कुछ भाग में वाण की अपनी रामकहानी है। उसमें उन्होंने अपने कुल-प्रवर्तक वत्स के रहने के लिए उनके चचेरे भाई सारस्वत ने हिरणवाह (जिसे शोण भी कहते हैं) के तीर पर प्रीतिकूट नामक स्थान बसाने का उल्लेख कर रखा है। तभी से उसके वंशज इसी स्थान में रहते चले आ रहे हैं। ब्राह्मणों की बस्ती होने के कारण वाण ने इसका दूसरा नाम ब्राह्मणाधिवास भी कहा है। यही वाण का जन्म स्थान है और यह बिहार में है।

जहाँ तक वाण के काल का सम्बन्ध है, सौभाग्यवश हर्षचरित के आधार पर उसके निर्धारण करने में हमारे आगे कोई कठिनाई नहीं आती। वाण के चरित-नायक हर्ष भारत-सम्राट् हर्षवर्धन ही हैं जो एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री ६२८ से ६४५ (ई०) तक भारत यात्राओं में रहा। उनके उसने संस्मरण लिखे हैं, जिनमें उसने उत्तर भारत के सम्राट् हर्षवर्धन के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण दे रखे हैं और जो वाण द्वारा दिए हर्ष-चरित के विवरणों से अच्छी तरह मेल खाते हैं। थोड़ा-बहुत जो अन्तर है, वह नगण्य है। इतिहास के अनुसार सम्राट् हर्षवर्धन का शासन-काल ६०६ से ६४८ (ई०) तक रहा। इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि वाण का स्थिति-काल छठी शती का अन्त और सातवीं शती का पूर्वार्द्ध है।

इसके अतिरिक्त वाण के स्थितिकाल के सम्बन्ध में कितने ही बाह्य साक्ष्य भी दिये जा सकते हैं। भोज (१०२५ ई०) ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण ग्रन्थ के कुछ स्थलों में वाण का उल्लेख किया है। एक स्थान में उसने वाण की यह आलोचना भी कर डाली है—'यादृग् गद्य-विधौ बाणः पद्य-बन्धे न तादृशः।' भोज से पूर्वतन राजा मुञ्ज (भोज के चाचा) के सभापण्डित धनञ्जय ने (१००० ई०) अपने दशरूपक में 'यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य' लिखकर वाण को स्मरण किया है। ध्वन्यालोक ग्रन्थ के रचयिता आनन्दवर्धनाचार्य (९०० ई०) के तो अपने ग्रन्थ में कितने ही स्थानों में वाण की कादम्बरी तथा हर्षचरित के उद्धरण एवं निदर्शन दे रखे हैं। वामनाचार्य (७५० से ८०० ई०) को भी वाण की कादम्बरी का ज्ञान था। तभी तो उन्होंने अपनी अलङ्कारसूत्रवृत्ति में वाण के कुछ शब्द उद्धृत किये हैं, उदाहरणार्थ जैसे—'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य इत्यत्रापि मन्ये समशब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखितः' इति। इस तरह बारहवीं शती से लेकर नीचे सातवीं शती (ई०) तक उक्त साहित्यकार वाण और उनकी कृतियों से सुतरां परिचित थे। दूसरी तरफ वाण भी हर्षचरित में अपने पूर्ववर्ती कलाकारों—व्यास, भास, कालिदास, शातवाहन, भट्टार, हरिचन्द्र और आढ्यराज—की तथा बृहत्कथा, वासवदत्ता और प्रवरसेन के सेतु काव्य कृतियों की प्रशंसा किये हुए हैं, जिनकी काल-सीमा छठी शती तक समाप्त हो जाती है। इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वाण का स्थितिकाल इन दोनों सीमाओं का मध्यवर्ती काल अर्थात् सातवीं शती का पूर्वार्ध है।

बाणचरित : बाण एक सम्पन्न और विद्यावान् ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। इनकी माता का नाम राज-देवी और पिता का नाम चित्रभानु था। भर्गु इनके गुरु थे जिन्होंने बड़े-बड़े राजगृहों में प्रतिष्ठा पा रखी थी। दुर्भाग्य-वश वाण की माता उन्हें छोटी अवस्था में ही छोड़कर परलोक सिधार गईं। इनके पिता ने ही इन्हें पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। बाण जब चौदह वर्ष के हुये, तो इनके सिर पर से पिता की छत्र छाया भी उठ गई और अभागा बालक बिलकुल अनाथ हो गया। बेचारे के हृदय का पारावार न रहा। शोक शान्त होने पर वाण को अपने भविष्य की चिन्ता हुई। शैशव स्वभावतः चपल हुआ ही करता है। और जब यौवन भी जीवन की देहली पर से झांकता हो तो मन में नयी-नयी उमंगे, नयी-नयी आकांक्षायें और नयी चञ्चलतायें उठा ही करती हैं। यही हाल बाण का भी हुआ। विद्या तो उन्हें घुट्टी के रस में मिली हुई थी, पी। पिता के संरक्षण में शिक्षा भी अपने गुरु से पर्याप्त पा ली थीं। प्रखर प्रतिभा एवं वाक्यपटुता का पैतृक दाय साथ लेकर बाण अपने कुछ मित्रों को फोड़ उन्हें साथ लेते हुए देश-भ्रमण हेतु निकल पड़े। कभी इस नगर अथवा जनपद में गए, तो कभी उस नगर अथवा जनपद में गए; कभी वन के झाड़ में स्थित आश्रमों को देखा, तो कभी राजदरबारों की सैर की, कहीं शास्त्रों के प्रवचन सुने,

तो कहीं शास्त्रार्थ देखे। कभी कहीं पुराण बांचा तो कहीं नाटक खेला—अभिप्राय यह कि अपनी इन भ्रमण-यात्राओं में बाण ने सभी कुछ किया। यही कारण है कि लोगों में ये बदनाम हो गये और वे इन्हें भुजङ्ग (लोफर) कहने लगे यद्यपि वास्तव में ये वैसे नहीं थे। अपने इन भ्रमणों में इन्हें संसार और समाज के विविध पहलुओं का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। उससे इनके भीतर छिपा बैठा कलाकार खूब परिपुष्ट और समृद्ध हुआ।

कुछ वर्ष बाद बाण यात्रा समाप्त करके अपने घर प्रीतिकूट वापस आ गए और आनन्द पूर्वक रहने लगे। स्वभाव में अब कुछ गंभीरता और सूझ-बूझ आ गई थी। ग्रीष्म समय की बात है कि एक दिन हर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्णवर्धन ने अपना मखलक नामक एक सन्देश वाहक इनके पास भेजकर पत्र द्वारा इन्हें समझाया—'मैं तुम्हारे गुणों और विद्वत्ता पर प्रसन्न हूँ, किन्तु कुछ दुष्ट लोगों ने तुम्हारे विरुद्ध सम्राट् के कान भर रखे हैं। मैंने उन्हें समझा दिया है कि ऐसी बात नहीं है। यौवनावस्था हरेक की उच्छृङ्खल और चपल हुआ ही करती है। सम्राट् मेरी बात मान गए हैं कि ठीक है। इसलिये किसी बात की शंका और संकोच न करके तुम शीघ्र ही राज-दरबार में चले जाओ। तुम जैसे गुणी और विद्वान् का घर में ही बैठा रहना ठीक नहीं लगता।'

सोच-विचार कर बाण ने सम्राट् के पास जाने का निश्चय कर लिया और एक शुभ मुहूर्त पर शिव की अर्चना-स्तुति करके ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके सम्राट् को मिलने चल पड़े। रास्ते में दो पड़ाव डालने के बाद तीसरे दिन वे अजिरवती नदी के तट पर मणिपुर ग्राम के निकट स्थित राजकीय शिविर में पहुँच गए मुख्य दौवारिक इन्हें राजभवन ले गया। 'स्वस्ति' पूर्वक इन्होंने अभिवादन किया तो सम्राट् ने प्रारम्भ में इन्हें 'भुजङ्ग' शब्द से सम्बोधित कर इन पर व्यङ्ग्य कसा, लेकिन ये नहीं घबराए। प्रतिवाद करते हुए बोले — देव, सच्चाई को जाने बिना ही आपने मुझे भुजङ्ग कह डाला है। लोगों का क्या विश्वास? वे तो ऐसी ही बातें उड़ा देते हैं! मैं पुनीत ब्राह्मण-कुल में जन्मा हूँ। विधिवत् मेरे संस्कार हो रखे हैं। सभी शास्त्र मैंने पढ़ रखे हैं। गृहस्थाश्रम में भी प्रविष्ट हो गया हूँ। मेरी कौन सी भुजङ्गता आपने देखी है? शैशव में कुछ चंचलतायें तो स्वभावतः सभी में हो जाया करती हैं, जिनका मुझे पश्चात्ताप हो रहा है।' सम्राट् 'हमने ऐसा ही लोगों से सुना है' यह उत्तर देकर चुप हो गए। किन्तु बाण से वे बड़े प्रभावित हो गए और प्रसन्न होकर बाद में इन्हें बहुत-सा धन और मान देकर हमेशा के लिए अपना कृपा-पात्र बना लिया।

सम्राट् से आदर मान प्राप्त करके जब बाण शरदमें अपने घर प्रीतिकूट लौटकर आए तो उनके भाई बन्धु इनके राज-सम्मान से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्हें घेर लिया और उत्सुकता-पूर्वक वे अनुरोध करने लगे कि हमें हर्ष का चरित सुनाइए कि वे कैसे हैं। बाण ने उत्तर दिया—'भाइयों! सौ जन्म भी क्यों न धरूँ विशाल हर्ष-चरित का पूरा-पूरा वर्णन मेरी तुच्छ बुद्धि नहीं कर पाएगी। हाँ, यदि उसका थोड़ा सा अंश सुनना चाहो तो उसके लिए मैं तय्यार हूँ। भाई मान गए कि थोड़ा सा ही सही। दूसरे दिन बाण भाइयों को हर्ष-चरित सुनाने लगे और हर्ष द्वारा विन्ध्याटवी में राज्यमन्त्री को पुनः प्राप्त करने तक सुनाकर चुप हो गए। यहीं तक हर्षचरित है और बाण-चरित भी है। दोनों का आगे क्या हुआ—कुछ पता नहीं।

हम देख आए है कि बाण ने हर्ष के आगे अपने को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुआ बताया है। परन्तु उनकी पत्नी कौन थी, उसका क्या नाम था—इस सम्बन्ध में बाण कोई संकेत नहीं दे गए। राजशेखर[1] के अनुसार हर्ष के सभी पण्डितों में बाण के साथ-साथ मयूर और मातङ्ग दिवाकर भी थे। किंवदन्ती है कि मयूर बाण का श्वसुर था। उनकी पुत्री ही बाण की पत्नी थी, एक समय क्या हुआ कि बाण की पत्नी किसी कारण-वश प्रणय-कोप किये बैठी थी। सारी रात बीत गई। बाण मनाते-मनाते थक गए, पर मानिनी क्यों मानती। मनाने के इसी प्रसंग में बाण ने श्लोक के तीन पद इस तरह रच डाले :—

---

१. अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्री हर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

गतप्राया रात्रिः कृशतनु ! शशी शीर्यत इव ।
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव ।।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो !

जब बाण चौथा पाद भी बनाना सोच ही रहे थे, तो इतने में तड़के सुबह सहसा मयूर अपनी नव-निर्मित कुछ कवितायें दामाद को दिखाने और सुनाने आ पड़े। बाहर से मयूर ने दामाद के उक्त तीन पाद सुन लिए थे। कवि हृदय ठहरा अवसर क्यों चूकता ? झट चौथा पाद स्वयं जोड़ कर श्लोक इस तरह पूरा कर दिया :--

कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ।

कवि होने के नाते बाण तो पाद-पूर्ति से बड़े प्रसन्न हुए, किन्तु पत्नी का हृदय खौल गया। पुत्री का शृंगार वर्णन करने के पिता के जघन्य अपराध को वह सह न सकी। तत्क्षण शाप दे बैठी—'जा कोढ़ी हो जा।' कहते हैं कि मयूर कोढ़ी हो गया। उसने कोढ़-रोग के निवारण हेतु सूर्य भगवान् की उपासना की और उनकी स्तुति में 'सूर्य-शतक' (अथवा 'मयूर-शतक') लिखा, सूर्य की कृपा से वह रोग से मुक्ति पा गया। इस घटना का उल्लेख मम्मट ने भी अपने 'काव्य प्रकाश' ग्रन्थ में यों कर रखा है—'आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्'। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि मयूर बाण का श्वसुर नहीं साला था।

बाण ने अपनी सन्तान के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा है। किन्तु उनका पुत्र था—इसके कितने ही प्रमाण मिलते हैं। डा० ब्यूलर ने उनके पुत्र का नाम भूषणभट्ट कहा है, परन्तु नवीन शोधों के अनुसार उसका असली नाम पुलिंदभट्ट या पुलिनभट्ट सिद्ध होता है। धनपाल ने (१००० ई०) अपनी तिलकमञ्जरी में पिता और पुत्र—दोनों की प्रसंशा यों कर रखी है—

'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्'।
किं पुनः क्लृप्त-सन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ।।

कवि ने श्लेष-निर्वाह हेतु यहाँ पुलिन्द के स्थान में पुलिन्ध्र किया। वैसे यह सर्व-विदित ही है कि कादम्बरी अधूरी रचना है। कवि पूर्वार्ध ही लिख पाया था कि मृत्यु ने उसे आ दबोचा। उसके पुत्र ने उत्तरार्ध लिखकर ग्रन्थ को पूरा किया है जैसे कि उत्तरार्ध के आरम्भिक श्लोकों में उसने स्वीकार किया है :—

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सन्धि-
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः ।
दुःखं सतां तदसमाधिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव च मया न कवित्वदर्पात् ।।

पुलिन्द के अतिरिक्त भी बाण के पुत्र थे—इसका पता नहीं चला है, किन्तु संस्कृत-जगत् में यह प्रवाद चला हुआ है कि उनके एक से अधिक पुत्र थे। सुनते हैं कि जब मृत्यु का क्रूर हाथ अपनी ओर बढ़ता हुआ बाण को दिखाई देने लगा तो अपनी कादम्बरी अधूरी देखकर उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था। शान्ति से प्राण नहीं निकल रहे थे। पुत्र पिता की अन्तर्व्यथा को भाँप गए। आश्वासन दिलाया कि उनकी कृति अधूरी नहीं रहने दी जाएगी, लेकिन मुमूर्षु को विश्वास नहीं आ रहा था। उन्होंने एतदर्थ पुत्रों की योग्यता देखनी चाही। घर के आंगन में एक सूखा वृक्ष खड़ा था। पिता ने बड़े पुत्र से उसका वर्णन करने को कहा तो वह झट वर्णन कर बैठा—'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे'। शुष्क वृक्ष की तरह पुत्र की भाषा को भी शुष्क देखकर बाण के प्राण भी निराशा में शुष्क होने लगे। इतने में झट छोटा पुत्र भूषणभट्ट वर्णन कर बैठा—'नीरसतरुरिह विलसति पुरतः'। सुनते ही मरणासन्न पिता के प्राणों में आशा की सरसता आ गई। उन्होंने इस आशा के साथ कि इसके हाथों मेरी अधूरी कथा अवश्य पूरी हो जाएगी, शान्ति से प्राण त्याग दिए।

यहाँ बाण के नाम के सम्बन्ध में भी कुछ चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार[1] बाण का असली नाम पहले दक्ष था। जब ये घर से निकल भागे तो गांव के कुछ और छोकरों को भी फोड़ ले गए। ये गांव में बदनाम हो गए। लोगों ने इन्हें 'बण्ड' कहना शुरू कर दिया। 'बण्ड' पूँछ-कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत है कि 'बण्ड आप गए, साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गए'। बाण ने 'बण्ड' शब्द का ही बाद में संस्कृत शब्द बाण द्वारा संस्कार करके इस नाम की कुछ इज्जत बढ़ा ली। 'भट्ट' तो लोगों ने बाद में जोड़ा।

बाण का व्यक्तित्व : हम पीछे कह आए हैं कि बाण एक धनी और विद्या-सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार के थे। उनका व्यक्तित्व बहुत कुछ कालिदास के व्यक्तित्व से मिलता जुलता है। जिन पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों मुस्करायी रहती थी। दोनों शैव थे, किन्तु कट्टर सम्प्रदायवादी नहीं। दोनों का रहन-सहन, ठाटबाट रईसी अथवा सामन्तवादी था। दोनों छैले-छबीले जीवन वाले थे। दोनों को राजाश्रय प्राप्त था। दोनों घुमक्कड़ प्रकृति के थे और अपने पर्यटनों में जगत् के सारे चराचर जीवन का, जीवन के सारे विविध पहलुओं का बड़ी बारीकी के साथ प्रत्यक्ष-अनुभव और अध्ययन करने के बाद साहित्य-साधना में जुटे थे। एक पद्य-नाटय क्षेत्र का सम्राट् बना, तो दूसरा गद्य-क्षेत्र का सम्राट्। दोनों अपनी-अपनी कला-कृतियों से हमेशा के लिए अमर हो गए।

बाण में विलक्षण प्रतिभा थी, जो उन्हें पैतृक दाय के रूप में प्राप्त हुई थी, क्योंकि उनके कुल के सभी लोग 'धीरधिषणः, कवयः, वाग्मिनः, नृत्यगीतवादित्रेष्ववाह्याः, सर्वगुणोपेताः' हुआ करते थे। यही कारण है कि बाण भी क्या वेद, क्या वेदांग, क्या पुराण, क्या धर्मशास्त्र, क्या दर्शन और क्या अर्थशास्त्र तथा क्या कलायें—सभी में अप्रतिहत-गति थे। साहित्य और मनोविज्ञान के तो वे आचार्य ही थे। किन्तु उनका शास्त्रीय ज्ञान कोरा शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं रहता था, उसके पीछे उनके स्वभाव में नये-नये व्यावहारिक ज्ञान की अतृप्त पिपासा भी हरदम बनी रहती थी। जो उन्हें वर्षों घर से बाहर चक्कर कटवाती रही। वे देशान्तरालोकन कौतुकाक्षिप्त हृदय थे, उनके हृदय में नयी-नयी वस्तु देखने का कौतुक बराबर बना रहता था। जब दौवारिक उन्हें सम्राट् के पास ले जा रहा था तो क्या बात थी साधारण व्यक्ति की तरह सीधे सम्राट् के पास चले जाते, लेकिन नहीं। मार्ग में वाजिशाला आ रही थी और फिर गजराज दर्पशात आ रहा था। उन्हें देखने का कौतुहल कवि-हृदय कैसे संवरण करता ? दौवारिक को मनाकर और मार्ग में यह सब देखकर ही विलम्ब से राजा को मिलने गए। यह थी उनकी व्यावहारिक अथवा प्रत्यक्षात्मक ज्ञान की पिपासा।

बाण कल्पना और लेखनी के धनी थे। कल्पना उड़ानें भरती तो वाणी लेखनी की नोक पर विलास के साथ थिरकने लग जाती। और फिर ऐसा नृत्य दिखाती कि बस देखते ही बनता है। उनके अद्भुत वाणी-विलास को देखकर ही गुणकला-पारखी हर्षवर्धन ने उन्हें वश्यवाणी-कविचक्रवर्ती की उपाधियों से भूषित किया और ठीक ही किया। ऐसे कवीश्वर सम्मान के पात्र हुआ ही करते हैं। आर्यासप्तशतीकार आचार्य गोवर्धन ने बाण की वाणी के सम्बन्ध में में यह ठीक ही कहा है :—

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

बाण की कृतियां : बाण के दो गद्यकाव्य—हर्षचरित और कादम्बरी तो सर्व-प्रसिद्ध ही हैं जिन पर विवेचन हम बाद में करेंगे। इनके अतिरिक्त बाण की अन्य कृतियां ये हैं—'चण्डीशतक' 'पार्वती परिणय' और 'मुकुटताडितक'।

---

१. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पृ० १४

चण्डीशतक : चण्डीशतक एक गीतिकाव्य है। इसमें स्रग्धरा वृत्त के सौ श्लोक हैं। इसके बाणरचित होने में सन्देह की कोई बात नहीं, भले ही कुछ विद्वान् सन्देह की दृष्टि से देखें। हम देखते हैं कि कादम्बरी में बाण ने चण्डिकायतन का अनूठा चित्रण कर रखा है भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में, मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में और अर्जुन वर्मदेव ने अपनी अमरुशतक की टीका में चण्डीशतक के कितने ही श्लोक उद्धृत कर रखे हैं। अर्जुनवर्मदेव ने स्पष्ट ही लिख दिया है कि वे बाणकृत हैं--'उपनिबद्धं च भट्टबाणेनैवंविध एव संग्रामप्रस्तावे देव्यास्तद्भङ्गिभिर्भगवता भर्गेण सह प्रीतिप्रतिपादनाय बहुधा नर्म यथा—'दृष्टावासक्तदृष्टि': इत्यादि [श्लोक ३७]

'चण्डीशतक' का कथानक मार्कण्डेय पुराण के देवीमाहात्म्य पर आधारित है। यह भगवती चण्डी (दुर्गा-पार्वती) का चरित्र एवं स्तुतिपरक है। इसमें भगवती का किस तरह महिषासुर के साथ युद्ध हुआ और किस तरह उसने इस राक्षसराज का वध किया—इसका ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ हम सोलहवाँ श्लोक उद्धृत करते हैं जिसमें बाण की प्रौढ़ शैली की स्पष्ट छाप परिलक्षित हो जाती है :—

पादोत्क्षेपाद् व्रजद्भिर्नखकिरणशतैर्भूषितञ्चन्द्रगौरै-
र्मूर्धाग्रे चापतद्भिश्चरणतलगतैरंशुभिः शोणशोभः।
संन्यस्तालीनरत्नप्रविरचितकरैश्चार्चितः क्षिप्तकायै-
र्यस्या देवैः प्रणीतो हविरिव महिषः साऽवतादम्बिका वः ॥

बाण द्वारा 'चण्डीशतक' की रचना के पीछे संस्कृत जगत् में यह किंवदन्ती चली हुई है कि मयूर को सूर्यशतक द्वारा रोग-मुक्त देखकर बाण को उससे खार-सी हो गई थी। इसीलिए उसने भी अपने हाथ काट लिये और 'चण्डीशतक' द्वारा भगवती को प्रसन्न करके उसके प्रसाद-स्वरूप हाथ फिर प्राप्त कर लिये थे।

पं० कृष्णमाचार्य—जैसे विद्वानों का कहना है कि 'चण्डीशतक' की तरह बाण ने 'शिव-शतक' भी लिखा है, जिसके कुछ विकीर्ण श्लोक स्तोत्र-ग्रन्थों में मिलते हैं। परन्तु यह कृति अविकल रूप में अभी उपलब्ध नहीं हुई है, इसलिए यह संदिग्ध ही है।

पार्वती-परिणय : 'पार्वती-परिणय' एक नाटक है। इसकी बाण-कृति होने के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। कीथ एवं उसके जैसे विचार रखने वाले आलोचकों का कहना है कि यह नाटक कादम्बरीकार बाण का नहीं प्रत्युत पन्द्रहवीं शती (ई०) के किसी वामनभट्ट बाण का बनाया हुआ है। उनका तर्क यह है कि इसमें कादम्बरी के प्रणेता बाण की जैसी कला की उत्कृष्टता और परिपक्वता देखने में नहीं आती है। क्या भाव-व्यंजना और क्या शैली सबमें शैथिल्य है। यह निरा कालिदास के कुमार संभव का अनुकरण-मात्र है। विचार, और भाव यहाँ तक कि शब्द-प्रयोगों तक का भी दोनों में साम्य है। हम मानते हैं कि इसमें ये त्रुटियाँ हैं, किन्तु क्योंकि यह बाण का प्रारम्भिक कवि-कर्म है, इसलिए कुछ त्रुटियों का रहना स्वाभाविक ही है। सच पूछिए तो बाण ही क्या—सभी कवियों और कलाकारों की प्रारम्भिक रचनायें कुछ कला की दृष्टि से, कुछ भाषा की दृष्टि से और कुछ भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से शिथिल-सी, उखडी-पुखड़ी-सी रहा ही करती हैं। हम पूछते हैं कि स्वयं कालिदास का ऋतुसंहार और मालविकाग्निमित्र तथा बाण का ही हर्षचरित क्या कला की परिपक्व अथवा परिष्कृत कोटि में आते हैं ? कितने ही विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास की कृति मानने में सकुचाते रहते हैं, किन्तु वह कालिदास की ही कृति मानी गई है। फिर पार्वती-परिणय पर ही बाण की कृति होने का सन्देह क्यों किया जाता है ? पार्वती-परिणय की प्रस्तावना में ही हमें प्रमाण मिल जाता है कि यह बाणरचित है, जैसे—

'अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिसम्भवो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी ॥

वत्सकुल-सम्भव बाण को थोड़े से नाम-साम्य से वामनभट्ट बाण मान लेने में हमें औचित्य नहीं दिखाई देता है।

पार्वती-परिणय में महादेव-पार्वती के विवाह का कथानक है। यह कालिदास के कुमारसम्भव पर आधृत है। कालिदास की बाण ने हर्षचरित के एक प्रारम्भिक श्लोक में बड़ी प्रशंसा कर रखी है। नया-नया कवि होने से वह काव्य क्षेत्र में अपने लिए मार्ग बना रहा था। इसलिए उसने कालिदास से प्रेरणा ली है। बहुत से भाव और शब्द-प्रयोग तक अपनाये हैं। स्वयं कालिदास ने भी तो अपनी कृतियों में महाभारत के शब्दप्रयोग अपना रखे हैं जिन्हें बिस्तार-भय से हम यहाँ उद्धृत करना नहीं चाहेंगे। हम तो कहेंगे कि पार्वती-परिणय का कुमारसम्भव से ही क्यों, बाण की अन्य कृतियों —हर्षचरित और कादम्बरी—से भी बहुत स्थलों में भाव साम्य मिलता है। स्थानाभाव के कारण हम इसके विस्तार में भी नहीं जाना चाहते, किन्तु तुलनार्थ एक उदाहरण दे देते हैं :—

पार्वती-परिणय प्रथम अङ्क—

हिमवान्—'देवि कन्या-पितृत्वं खलु गृहमेधिनामधिकतरं दुःखमावहति। ...
कुचयुगं परिणद्धं यथा यथा वृद्धिमेति तन्वङ्ग्याः,
वरचिन्ताहृतमनसस्तथा तथा कार्श्यमेति मे गात्रम्'।

हर्षचरित चतुर्थ उच्छ्वास—

'देवि''''हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्याः।'''सेयं सर्वाभिभाविनी शोकाग्नेर्दाहशक्तिर्यदपत्यत्वे समानेऽपि जातायां दुहितरि दूयन्ते सन्तः'।

मुकुटताडितक—मुकुटताडितक भी एक नाटक है। इसके बाणरचित होने का प्रमाण हमारे पास यह है कि त्रिविक्रम भट्ट के 'नल-चम्पू' काव्य के टीकाकार चन्द्रपाल और गुणविजयगणि ने अपनी टीकाओं में 'मुकुटताडितक' का यह उद्धरण दे रखा है :—

यदाह मुकुटताडितके बाण :—

आशाः प्रोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खात-शैला इव।
बिभ्राणाः क्षयकाल-रिक्त-सकल-त्रैलोक्य-कष्टां दशां
जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः॥

भोज ने भी अपने 'शृङ्गार-प्रकाश' में बाण के नाम से इस नाटक के उद्धरण दे रखे हैं। इससे अधिक इसके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता है। यह अलभ्य है। इसका कथानक महाभारत से लिया हुआ है जिसमें भीमसेन अपने तीव्र गदा-प्रहार से दुर्योधन का काम-तमाम कर देता है और उसके मुकुट को पैरों द्वारा ताड़ित करके कुचल डालता है।

रत्नावली बाण-कृत : आप्टे आदि कुछ विद्वानों का कहना है कि हर्षवर्धन-रचित 'रत्नावली' नाटक उनका अपना बनाया हुआ नहीं प्रत्युत बाण का बनाया हुआ है। अपनी धारणा में वे यह प्रमाण देते हैं कि मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' में धन-प्राप्ति को भी काव्य का प्रयोजन बताते हुए उसका यह उदाहरण दे रखा है'—श्रीहर्षादेर्धावका (बाणा) दीनामिव धनम्'। इससे वे यह सिद्ध करते हैं कि बाण ने 'रत्नावली' लिखकर उसे हर्ष को समर्पित किया और पुरस्कार-स्वरूप प्रभूत धन प्राप्त किया। हम नहीं समझ पाये कि हर्ष द्वारा बाण को प्रभूत धन दिये जाने से ही यह अर्थ कैसे निकला कि बाण को उन्होंने 'रत्नावली' के मूल्य-रूप धन दिया। वास्तव में 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' के साथ साथ रत्नावली को भी हर्ष ने ही लिखा है। ये तीनों कृतियां अपने संविधान भाषा-शैली और भाव-व्यञ्जना में परस्पर बड़ी समानतायें रखे हुए हैं। 'रत्नावली' तो 'प्रियदर्शिका' का ही परिष्कृत रूप है। अतः अपने कर्तृत्व के लिए ये जहाँ भी जाएँगी, एक-साथ ही जाएँगी। तीनों की प्रस्तावनायें प्रायः अक्षरशः एक-जैसी हैं और प्रत्येक में हर्ष को ही कर्ता बताया गया है। यदि 'रत्नावली' का कर्ता बाण है तो 'प्रियदर्शिका' और नागानन्द' का कर्ता भी बाण को क्यों नहीं कह लेते? परवर्ती साहित्य-शास्त्रियों ने जहाँ-जहाँ रत्नावली के उद्धरण दिये हैं उन्हें हर्ष-

कृत ही मान रखा है। हम देखते हैं कि बाण ने अपने आश्रयदाता हर्ष को एक बड़े विद्वान्, शास्त्रज्ञाता और कलाविद के रूप में चित्रित कर रखा है ('अस्य कवित्वस्य वाचो न पर्याप्तो नियमः' हर्षच०) हर्ष के सदृश शूद्रक, भर्तृहरि, यशोवर्मा और भोजराज आदि भी तो ऐसे राजा हुए जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों समान-रूप से प्रसन्न रहती थीं। इसलिए हम 'रत्नावली' को बाण की कृतियों में कदापि नहीं गिन सकते।

पद्य-कादम्बरी : बाण के काल-निर्धारण के संदर्भ में हमारा भोज का यह उद्धरण दे रखा है—यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्य-बन्धे न तादृशः' अर्थात् बाण का कवि-कर्म जिस तरह गद्य में उभरा है वैसे पद्य में नहीं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बाण का लिखा हुआ कोई पद्य-काव्य भी रहा होगा जो अब विलुप्त है। 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में यत्र-तत्र आए हुए कुछ विकीर्ण श्लोकों के आधार पर तो भोज अपना विचार नहीं बना सकते। हाँ, इसके लिए 'पार्वती-परिणय' एवं 'चंडीशतक' के श्लोक अवश्य लिये जा सकते हैं। किन्तु क्षेमेन्द्र (११०० ई०) ने अपनी 'औचित्यविचारचर्चा' में बाण के विप्रलम्भश्रृङ्गार के सम्बन्ध में यह लिख रखा है :—

"यथा वा भट्टबाणस्य—

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि, प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥"
अत्र विप्रलम्भभरलग्नधैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथा वर्णना इत्यादि"।

इससे सिद्ध होता है कि बाण ने कोई 'पद्य-कादम्बरी' भी लिखी हो और उसी को लक्ष्य करके भोज ने अपना विचार बनाया हो। किन्तु यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि बाण ने यदि पद्य कादम्बरी भी बनाई, तो कब बनाई? गद्य कादम्बरी से पश्चात् या पूर्व? पश्चात् तो बना नहीं सकते थे, गद्यकादम्बरी अधूरी ही छोड़कर वे चल बसे थे। पूर्व बनाने में यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि जब एक विषय पर कलाकार अपना चमत्कार दिखा चुका है तो फिर उसी घिसे-पिटे विषय पर लिखने में उसकी रुचि कैसे उत्पन्न हो गई? हो सकता है कि पद्यकादम्बरी बाद को किसी अन्य कवि ने लिखी हो और उसका कर्तृत्व भी पीछे बाण को दे दिया गया हो। वास्तव में जब तक यह ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक इसके सम्बन्ध में हम निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कह सकते हैं कि यह बाण-कृति है।

आख्यायिका और कथा : अब हम बाण के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' नामक दो गद्य-काव्यों की ओर आते हैं, जो कवि की उत्कृष्ट रचनायें हैं और जिनके कारण उसने अतुल यश अर्जित किया और जगत् में महाप्रतिष्ठा प्राप्त की। उनमें 'हर्षचरित' आख्यायिका है और 'कादम्बरी' कथा। आख्यायिका शब्द का सर्व-प्रथम उल्लेख हमें व्याकरण के वार्तिककार कात्यायन मुनि के 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इस वार्तिक में मिलता है। इसी संदर्भ में महाभाष्य-कार पतञ्जलि ने आख्यायिका के उदाहरण में तीन आख्यायिकाओं—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी के नाम दिये हैं—इस सम्बन्ध में दोनों गद्यकाव्य-भेदों की परिभाषा और संविधान को लेकर साहित्य-शास्त्रियों में देर तक विवाद चलता रहा। भामह, दण्डी, आनन्दवर्धनाचार्य, रुद्रट आदि मनीषियों ने अपने-अपने विस्तृत विवेचन दे रखे हैं, जिनकी गहराई में हम यहाँ नहीं पड़ना चाहते। इस सम्बन्ध में अन्तिम निष्कर्ष जो निकला, उसके अनुसार आख्यायिका उस गद्य-रचना को कहते हैं जिसका कथानक इतिहास पर आधारित हो, प्रकरण-विभाग उच्छ्वासों में हो और उच्छ्वासों का आरम्भ दो-एक ऐसे वक्त्र-अपरवक्त्र और आर्या छन्दों से हो, जो उच्छ्वास के कथानक पर झीना-सा प्रकाश डाल दें। इसके विपरीत कथा का कथानक कल्पना-प्रस्तुत होता है; उसमें उच्छ्वास नहीं होते और न भावी कथा सूचक वक्त्र-अपरवक्त्र अथवा आर्या होती है। शब्दान्तर में हम यह कहेंगे कि आख्यायिका कवि-भाषा में लिखा ऐतिहासिक जीवन-वृत्त होता है जब कि कथा निरी कवि-कल्पित रचना होती है। इसी भेद को लक्ष्य करके कोशकार अमरसिंह ने कहा है—'आख्यायिकोपलब्धार्था' 'प्रबन्ध-कल्पना कथा' अलंकार-सर्वस्वकार ने यह भेद बिलकुल ही स्पष्ट कर दिया है —

गद्यं तु कथितं द्वेधा कथेत्याख्यायिकेति च।
कथा कल्पित-वृत्तान्ता सत्यार्थाख्यायिका मता ।।

बाण ने 'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्' लिखकर हर्षचरित को आख्यायिका और 'धिया निबद्धेयमतिद्वयीकथा ।' लिखकर कादम्बरी को कथा कहा है।

हर्षचरित : जैसा कि ग्रन्थ का नाम है, 'हर्षचरित' में बाण ने काव्यमयी, अलंकृत और ओजपूर्ण भाषा में अपने आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन की जीवनी का कुछ अंश दे रखा है। यद्यपि काव्य का पुट आ जाने से इसकी ऐतिहासिकता पर गहरी चोट पहुँची हुई है। प्रारम्भिक कृति होने पर भी 'हर्षचरित' ने अपनी उदात्त, अद्भुत वर्णन-शैली द्वारा समस्त संस्कृत जगत् पर बाण के परम वैदुष्य और निशित काव्यशक्ति का जो पूरा सिक्का जमाया उसे सोड्ढल ने इस तरह व्यक्त कर रखा है।

"बाणस्य 'हर्षचरिते' निशितामुदीक्ष्य
शक्तिं न केऽत्र कविता-सुमुदं त्यजन्ति।"

हर्षचरित का कथा-सार : हम यहां उच्छ्वास-क्रमानुसार संक्षेप में हर्षचरित के सारांश से पाठकों को अवगत करा देना चाहते हैं। **प्रथम-द्वितीय-तृतीय-उच्छ्वास**—शिव पार्वती की वन्दना के बाद अपने पूर्ववर्ती व्यास आदि काव्यकारों को श्रद्धाञ्जलि देता हुआ और चारों दिशाओं के कवियों की काव्य-विशेषता बताता हुआ कवि अन्त में हर्ष की प्रशंसा के साथ अपनी कृति आरम्भ करता है—एक समय की बात है कि ब्रह्मा देवताओं के साथ विद्या गोष्ठी का आयोजन किये हुए थे। विविध विषयों पर विचार छिड़ा हुआ था। सामवेद का मंत्र पढ़ते हुए दुर्वासा सहसा एक स्थान पर स्वरभंग कर बैठे। इस पर भगवती सरस्वती हँस पड़ी। फिर तो क्या था कि दुर्वासा के क्रोध का पारा चढ़ गया। झट शाप दे बैठे—'दुर्विनीता, जा, मर्त्यलोक. चली जा।' दयालु ब्रह्मा ने शाप की अवधि मर्त्यलोक में सरस्वती के पुत्रोत्पत्ति तक कर दी।

अपनी सखी सावित्री को साथ ले सरस्वती मर्त्यलोक उतर पड़ी। हिरण्यवाह (शोणनद) के किनारे पर्णकुटी बनाकर दोनों रहने लगी। एक दिन ऐसा हुआ कि च्यवन ऋषि का पुत्र दधीच ननिहाल से अपने पिता के घर आ रहा था। सरस्वती से सहसा उसकी आँखें लड़ गईं। सरस्वती भी उस पर मुग्ध हो गई। दोनों कुछ समय साथ-साथ रहे! सरस्वती ने पुत्र को जन्म दिया और सारी विद्यायें उसमें संक्रमित करके स्वयं ब्रह्मलोक लौट आई। इस पर दधीच को बड़ा दुःख हुआ। वह अपने पुत्र सारस्वत को पालन हेतु अपनी भ्रातृ-जाया अक्षमाला को सौंपकर स्वयं तप करने जंगल चला गया। अक्षमाला का भी उस समय पुत्र हो रखा था जिसका नाम वत्स था। उसने सारस्वत को भी पुत्रवत् पाला-पोसा। बड़ा होने पर सारस्वत ने माता से प्राप्त अपना वाङ्मय भाई वत्स में स्थानान्तरित कर दिया और उसका विवाह कराके एवं प्रीतिकूट-नामक स्थान में बसाके स्वयं पिता के पास तप हेतु जंगल चला गया। यही वत्स वात्स्यायन वंश का प्रवर्तक बना।"

प्रथम, द्वितीय : इसके बाद का तृतीय उच्छ्वास के कुछ भाग तक का वृत्तान्त हम पीछे 'बाण का वंश' तथा 'बाणचरित' वाले शीर्षकों में कर चुके हैं। उससे आगे कथा इस तरह चलती है:—

तृतीय उच्छ्वास : श्रीकण्ठनामक एक देश है, जिसका एक प्रदेश है स्थाण्वीश्वर (थानेसर): पुराने समय में वहाँ पुष्पभूति नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा शिव-भक्त था। उसने दक्षिण के भैरवाचार्य नामक एक बड़े भारी शिव-भक्त से मैत्री गांठली। भैरवाचार्य ने राजा को अट्टहास-नामक एक अद्भुत खड्ग भेंट किया और अपनी किसी साधना में उसकी सहायता मांगी। पुष्पभूति ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। एक दिन राजा की संरक्षकता में भैरवाचार्य जब अपनी साधना में व्यस्त थे तो अंधेरी रात में पृथिवी फाड़कर निकला एक दैत्याकार पुरुष साधना में विघ्न डालने खड़ा हो गया। राजा ने बाहु-युद्ध में बुरी तरह उसे पछाड़ दिया। इसी बीच राजा क्या

देखता है कि सामने से साक्षात् लक्ष्मी उसके पास चली आ रही है। आकर वह बोली—'राजन् मैं तेरे शौर्य से प्रसन्न हूँ। तू एक पराक्रमी राजवंश का प्रवर्तक होगा। जिसमें हर्ष नाम का एक चक्रवर्ती राजा जन्म लेगा। जिसके आगे मैं स्वयं चमर डुलाऊँगी। यह वर देकर लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई।

चतुर्थ उच्छ्वास : काल-क्रम से पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्धन-नामक राजा हुए, जिनका उपनाम प्रतापशील था। वे सफलता-पूर्वक हूणों, गुर्जरों के राजाओं तथा सिन्धुदेश, गान्धार, लाट और मालव देश के अधीशों से लड़े। उनकी रानी का नाम यशोमती था। प्रभाकरवर्धन भगवान् सूर्य के परम भक्त थे। सूर्य की कृपा से उनका राज्यवर्धन नामक पहला पुत्र हुआ। उसके बाद चक्रवर्ती के सभी लक्षण धारण किये हर्षवर्धन ने जन्म लिया। उसके जन्म-समय पर बड़े-बड़े शुभ शकुन हुए जो हर्ष के उज्ज्वल भविष्य के द्योतक थे। जब राज्यवर्धन छः साल के थे और हर्षवर्धन धाय का हाथ पकड़कर चलना सीख रहे थे, तो रानी ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम राज्यश्री था। इसी समय रानी यशोमती का भाई अपने आठ वर्ष के पुत्र भंडि को दोनों राजकुमारों के सहचर के रूप में प्रभाकर वर्धन के पास सौंप गया। जिनके मध्य बाद को बड़ी गहरी मित्रता हो गई। राजा तो भंडि को अपना तीसरा पुत्र ही मानने लगे। तीनों कुमार जब युवा हुए, तो राजा प्रभाकरवर्धन मालव-नरेश के दो कुमारों—कुमारगुप्त और माधव-गुप्त-नामक भाइयों—को अपने पुत्रों के साथियों के रूप में ले आए। बड़ा भाई कुमारगुप्त तब अट्ठारह वर्ष का था। राजपुत्रों के ये दोनों साथी छाया की तरह उनके पीछे-पीछे चला करते थे। इतने में राज्यश्री युवा हो गई। उसका विवाह मौखरिवंशीय कान्यकुब्जनरेश अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ कर दिया गया और वह अपने पति के साथ कान्यकुब्ज चली गई।

पञ्चम उच्छ्वास : राज्यवर्धन जब शस्त्रग्रहण करने योग्य हो बैठे तो प्रभाकरवर्धन ने उन्हें अपने विश्वस्त मंत्रियों और स्वामिभक्त सामन्तों के साथ उत्तर की ओर हूणों के विरुद्ध युद्ध करने भेज दिया। कुछ दूरी तक हर्ष भी भाई के साथ-साथ गए, किन्तु जब राज्यवर्धन कैलास-पर्वत की श्रेणी में प्रविष्ट हो गए, तो हर्ष पीछे रह गए और कुछ समय तक आखेट में रम गए। इसी बीच प्रभाकरवर्धन का एक दूत आकर पिता की गंभीर बीमारी की सूचना ले आया। हर्ष बेचारे सब कुछ छोड़-छाड़कर तत्क्षण ही इने-गिने अश्वारोहियों के साथ दिन-रात चलते-चलते, बिना खाये-पीये और विश्राम लिये तीसरे दिन राजधानी पहुँच गए। वहाँ देखा तो सारा शहर राजा की बीमारी के दुःख में डूबा हुआ था। राजा की स्वास्थ्यकामना हेतु सभी धर्मों के लोग अपने-अपने देवताओं को मनाने में लगे हुए थे। राज-महल में प्रवेश करते ही पिता को रोगशय्या में पड़े हुए और माता को उनके पास बैठे रोते हुए पाकर हर्ष महादुःखी हुए। रोग असाध्य हो चला था। दो दिन बाद राजा की हालत और गंभीर मोड़ ले बैठी तो रानी यशोमती पति के जीवन से हताश हो गई और अविधवा मरना ही उचित समझ कर चिता में भस्म हो गई। उसके थोड़े ही समय बाद राजा भी दम तोड़ बैठे। हर्ष ने रो-रोकर पिता की अन्त्येष्टि की और भाई को बुलाने के लिए दूत भेजकर उनकी बाट जोहने लगे।

षष्ठ उच्छ्वास : प्रभाकरवर्धन के निधन के एक पखवाड़े बाद राज्यवर्धन घर पहुँचे। हूणों को उन्होंने परास्त तो कर दिया था लेकिन उनका शरीर क्षत-विक्षत हुआ पड़ा था। दूसरे ही दिन राज्यवर्धन को क्या वैराग्य आया कि उन्होंने एकदम घोषणा कर दी कि वे राज्यसिंहासन पर नहीं बैठेंगे और गेरुवा वसन ग्रहण कर वन को चले जाएँगे। भाई का यह अद्भुत निश्चय सुनकर हर्ष हक्के-बक्के रह गए और स्वयं भी भाई के पीछे-पीछे ही चल पड़ने का विचार करने लगे। इसी बीच क्या हुआ कि राज्यश्री का संवाहक-नामक दूत दौड़े दौड़े आया और दोनों भाइयों के आगे शोकवश धड़ाम से गिर पड़ा। उसने रोते-रोते सूचना दी कि महाराज प्रभाकरवर्धन के निधन-समाचार के कान्यकुब्ज पहुँचने के दिन ही मालवनरेश ने राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा का वध कर दिया, राज्यश्री को बेड़ियाँ पहनाकर कारागार में बन्द कर दिया और अब स्थाण्वीश्वर पर भी आक्रमण करने की योजना बना रहा है। सुनते ही शोक और वैराग्य क्रोध में बदल गए। उसी दिन साथ आना चाहते हुए भी हर्ष को रोककर राज्यवर्धन स्वयं ही भंडि

और एक हजार अश्वारोही सेना लेकर मालव पर आक्रमण करने चल पड़े। बहुत दिनों के बाद हर्ष ने अश्वारोही-सेनानी कुन्तल को रोते-रोते आते देखा। वह यह दुखद समाचार लाया कि मालव-नरेश को परास्त कर देने के बाद राज्यवर्धन को गौडेन्द्र ने अपने यहाँ बुलाकर धोखे से मार डाला है। सुनते ही हर्ष आग-बबूला हो गए। हृदय में प्रतिशोध की भावना भड़क उठी। प्रभाकरवर्धन के वृद्ध सेनापति सिंहनाद ने भी आग में घी का काम किया। फिर तो क्या था—सब लोगों के सामने हर्ष ने गौड़ेन्द्र के विनाश की शपथ ले ली और विदेश-सचिव अवन्ति को आज्ञा दी कि वह सभी दिशाओं के राजों के नाम यह आदेश-पत्र जारी कर दे कि वे या तो मेरे आगे सिर झुकाएँ या तो फिर युद्ध हेतु शस्त्र उठाएँ। दूसरे ही दिन हर्ष ने गजसेनाध्यक्ष स्कन्दगुप्त को बुलाया और उसे सारी गज-सेना को प्रयाण के लिए तय्यार रखने का आदेश दे दिया। स्कन्दगुप्त ने आज्ञा को स्वीकार करते हुए प्रसंग-वश हर्ष को यह सलाह भी दी कि राज्यवर्धन के हत्याकांड से सबक सीखकर किसी भी व्यक्ति पर सहसा विश्वास न किया जाय और अपने समर्थन में उसने इतिहास के पृष्ठों में से कितने ही राजनैतिक षड्यन्त्रों और हत्याओं के उदाहरण भी हर्ष के सामने रख दिए।

सप्तम उच्छ्वास : अब हर्ष ने शिव की अर्चना की और अपना राज्याभिषेक करके शुभ-मूहूर्त पर विश्व-विजय हेतु प्रस्थान कर दिया। पहला पड़ाव राजधानी (थानेसर) के पास ही सरस्वती नदी के तट पर पड़ा। सभी ग्राम के पटवारी ने आकर हर्ष की सेवा में राजकीय आदेश-पत्रों पर लगाने हेतु बैल के चिह्न वाली नयी सोने की मोहर भेंट की और प्रार्थना की कि वे मोहर लगाकर अपने आदेश-पत्र निकालने आरम्भ कर दें। दूसरे दिन चल कर हर्ष जब दूसरे पड़ाव पर पहुँचे, तो वहाँ प्राग्ज्योतिष (आसाम) के नरेश कुमार उपनाम भास्करवर्मा के अन्तरङ्ग दूत हंसवेग ने सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया कि हमारे राजकुमार आपके साथ दृढ़ मैत्री स्थापित करना चाह रहे हैं और आपके लिए उन्होंने बहुत सारे उपहार भेजे हैं। उनमें मुख्य एक ऐसा अद्भुत आतपत्र है जो पहले कभी वरुण देवता के पास हुआ करता था और किसी तरह हमारे महाराज कुमार के हाथ आ गया, रात पड़ने पर हंसवेग ने फिर हर्ष को कुमार के वंश का विस्तृत विवरण दिया। हर्ष आसाम-नरेश पर प्रसन्न हो गए और उसके उपहार स्वीकार करके बदले में अपनी तरफ से भी बहुत से उपहारों के साथ हंसवेग को विदा कर दिया। उसके बाद गौड़ेन्द्र के विरुद्ध युद्ध यात्रा कितने ही दिनों तक यथावत् चलती ही रही। एक दिन एकाएक मार्ग में राज्यवर्धन द्वारा मालवेन्द्र को परास्त करके उसके पास से छीना और लूटा हुआ बहुत सारा सामान तथा बंदी बनाये हुए मालव के राजा लोगों को साथ लिये आता हुआ भंडि मिल पड़ा। उसने हर्ष को यह समाचार भी दिया कि गुप्त द्वारा कान्यकुब्ज के अपने अधिकार में लिये जाते समय राज्यश्री कारागार से भाग निकली है और अब विन्ध्य-वनकी शरण लिये हुए है। हर्ष ने गौड़ेन्द्र के विरुद्ध आक्रमण का भार तो भंडि के ऊपर डाल दिया और स्वयं अपनी अभागन बहन को ढूंढने के लिए विन्ध्याटवी को चल दिए।

अष्टम उच्छ्वास : हर्ष कितने ही दिनों तक विन्ध्याचल के जंगल में इधर-उधर घूमते-फिरते रहे। एक दिन जंगल के सामन्त शरभकेतु के पुत्र व्याघ्रकेतु से भेंट हो गई। उसने हर्ष के आगे निर्घात-नामक एक युवा भील को उपस्थित किया और कहा कि यह भील सेनापति भूकम्प का भानजा है। इससे राज्यश्री के सबन्ध में पूछिए। वह वन का पत्ता-पत्ता जानता है। निर्घात ने राजा को दिवाकरमित्र-नामक एक पाराशरी भिक्षु का पता बताया जो ब्राह्मण से बौद्ध बना हुआ है और विन्ध्य-वन के मध्य अपना आश्रम स्थापित किये हुए है। हर्ष को तत्काल स्मरण हो आया कि यह दिवाकर मित्र तो ग्रहवर्मा का बचपन का मित्र होता था। निर्घात को साथ लेकर हर्ष आश्रम में पहुँचे, तो वहाँ भिक्षु को सभी संप्रदायों के असंख्य शिष्यों से घिरा पाया। इतने में क्या देखते हैं कि कोई अन्य भिक्षु दौड़े-दौड़े आ रहा है। वह बोला—'गुरुदेव, अनर्थ होने जा रहा है। पास में ही एक सुन्दर युवती अग्नि में प्रवेश करने जा रही है। उसे बचाइए। सुनते ही हर्ष भिक्षु दिवाकरमित्र तथा अपने साथियों को साथ लेकर उस स्थान में पहुँचे और जलने को तय्यार हुई बैठी बहन राज्यश्री को देख बैठे। मिलकर दोनों भाई-बहन खूब रोए-पीटे। बाद में हर्ष को बहन से सारा वृत्तान्त विदित हो गया कि किस तरह गौड़ेन्द्र द्वारा मचाये उपद्रव में गुप्तनामक किसी कुल-पुत्र ने इसे कान्य-कुब्ज में

कारागार से मुक्त किया। किस तरह उसने भाई राज्यवर्धन की हत्या का समाचार सुना, उसे सुनकर किस तरह उसने अनशन आरम्भ कर दिया, किस तरह वह विन्ध्याटवी में आई और किस तरह निराश हो अब वह अग्नि में प्रवेश करने जा रही थी। इसके बाद दिवाकरमित्र ने हर्ष को मन्दाकिनी नामक एकावली (मोतियों की लड़) उपहार में दी, जिसे नागार्जुन पाताल में जाकर नागपति वासुकि से लाया था और दक्षिण भारत के सम्राट् सातवाहन को दे गया था। तदनन्तर राज्यश्री ने भाई से काषाय-ग्रहण की आज्ञा माँगी पर उसने नहीं दी और कहा कि वह तब तक उसके साथ ही रहेगी जब तक कि वह गौड़ेन्द्र को निःशेष कर देने की अपनी शपथ पूरी नहीं कर देता और दिवाकरमित्र से अनुरोध किया कि वे तब तक उसकी बहन को ज्ञानोपदेश देते रहा करें। हर्ष ने आगे यह भी कहा कि शपथ पूरी हो चुकने पर वे दोनों भाई-बहन एक-साथ ही कषाय-ग्रहण करेंगे। दिवाकरमित्र द्वारा अनुरोध स्वीकार किये जाने पर हर्ष गंगा के किनारे पड़ाव डाले हुए अपनी सेना से जा मिले। यहाँ हर्षचरित एकाएक समाप्त हो जाता है और आगे का हाल अज्ञात ही छोड़ देता है।

कादम्बरी : कादम्बरी बाण की अन्तिम अमर रचना है जिसमें उनकी कला अपने ऐसे समृद्ध, सशक्त, प्रौढ़, परिपक्व और उर्वर रूप में निखरी है कि कुछ नहीं कहा जा सकता। यह संस्कृत-साहित्य के गद्य-काव्य की चूड़ान्त रचना—मास्टर-पीस है। यह रोमानी प्रेम-भावना से ओत-प्रोत एक ऐसी कथा अथवा उपन्यास है जिसके सम्बन्ध में संस्कृत का यह आभाणक ही चल पड़ा है—'कादम्बरी-रसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते'। वास्तव में कादम्बरी एक ऐसी कादम्बरी (सुरा) है जिसके मद में मत्त होकर बाण-पुत्र भूषणभट्ट को भी यह स्वीकार करना पड़ा—

"कादम्बरी-रसभरेण समस्त एव
मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।"

कादम्बरी का कथा-सार : विदिशा के राजा शूद्रक के दरबार में एक दिन कोई चण्डाल कन्या वैशम्पायन-नामक एक ऐसे तोते को भेंट कर गई जो मनुष्य-वाणी बोलता था, बड़ा विद्वान् था और अपने पूर्वजन्म की बात भी जानता था। राजा के पूछने पर उसने पूर्व जन्म की कहानी वैसे ही कह डाली जैसे उसने जाबालि ऋषि के मुख से सुन रखी थी। बात यह थी कि जाबालि का पुत्र हारीत उस तोते को—जब वह बच्चा ही था—पेड़ के नीचे से मरणासन्न अवस्था में उठाकर पिता के आश्रम में ले आया था। वहीं वह पला-पुसा और बड़ा हुआ। आश्रमवासियों के अनुरोध पर जाबालि ने तोते के पूर्व जन्म का हाल इस तरह कह सुनाया—'उज्जयिनी में कोई तारापीड़–नामक राजा था। उसका शुकनास नाम का ब्राह्मण मंत्री था। राजा का चन्द्रापीड पुत्र हुआ और शुकनास का वैशम्पायन। दोनों कुमार बड़े घनिष्ठ मित्र बन गए। युवा होने पर चन्द्रापीड़ अपने इन्द्रायुध अश्व पर सवार हो, वैशम्पायन को साथ लेकर दिग्विजय हेतु निकल पड़ा। विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ चन्द्रापीड़ उत्तर में कैलास के पास किरातों की भूमि में जा पहुँचा। वहाँ वह एक किन्नर-युगल देख बैठा तो उसके पीछे अपना इन्द्रायुध छोड़ दिया। वह किन्नरों को पकड़ने से तो रहा किन्तु दूर अकेला अच्छोद-नामक सरोवर के पास जा पहुँचा जहाँ कोई सुन्दरी भक्ति-लीन हो गा रही थी। चन्द्रापीड़ के पूछने पर उसने अपने को गन्धर्व-कन्या और अपना नाम महाश्वेता बताया; साथ ही उसने अपनी दुःख-भरी प्रेम-कहानी भी कह डाली कि किस तरह उसी सरोवर के तट पर एक दिन वह और पुण्डरीक-नामक एक युवा ऋषि-कुमार परस्पर प्रेमासक्त हो बैठे थे, किस तरह दूसरे दिन उसने अपने वियोग में ऋषि-कुमार को वहाँ मृत पाया, किस तरह उसके स्वयं भी चिता में भस्म होने को तय्यार होते ही चन्द्रमंडल से कोई दिव्यपुरुष उतरा और उसके प्रियतम की मृत देह को उठाकर आकाश में ले जाते हुए यह आश्वासन दे गया कि महाश्वेता, तू प्राण मत खो, तेरा प्रियतम तुझे फिर मिल जाएगा और किस तरह वह अब पुनर्मिलन की आशा में बैठी प्रेम साधना कर रही है। दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड़ को हेमकूट दिखाने ले गई जहाँ उसकी सखी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी रहती थी। चन्द्रापीड़ और कादम्बरी एक दूसरे को देखते ही परस्पर हृदय का आदान-प्रदान कर बैठे। हेमकूट से लौटकर चन्द्रापीड़ जब अपने शिविर में पहुँचा तो वहाँ उसे अपने माता-पिता का शीघ्र घर वापस आ जाने का सन्देश मिला। स्वयं तो राजकुमार इने-गिने अश्वारोहियों के साथ

द्रुतगति से आगे-आगे चल पड़ा और वैशम्पायन को कह गया कि वह सेना को साथ लिये धीरे-धीरे आता रहे। चिरकाल बाद अपने मध्य युवराज को पाकर माता-पिता के साथ-साथ सारी उज्जयिनी हर्ष-विभोर हो उठी।

बाण अपनी लेखनी से इतनी ही कथा लिख पाए थे कि उन्हें मौत ने आ दबोचा। इस अधूरी कथा को बाद में उनके पुत्र भूषण भट्ट ने, जिसे पुलिन्द अथवा पुलिन भी कहते हैं; इस तरह पूर्ण किया:—

कादम्बरी विरह-वेदना से मरी जा रही थी। चन्द्रापीड़ भी उससे मिलने को आतुर हो रहा था। वह अब तक घर न पहुँचे हुए वैशम्पायन का पता लगाने के बहाने प्रिया-मिलन हेतु चल पड़ा। रास्ते में सेनापति से मालुम हुआ कि वैशम्पायन अच्छोदसर के तीर पर ही रह गया, वापस नहीं आया। चन्द्रापीड़ जब वहाँ गया तो उसने वहाँ महाश्वेता को बिलख-बिलख कर रोते पाया। पूछने पर वह बोली कि कोई मनचला तरुण उसके प्रति प्रणय-निवेदन कर रहा था जिसे उसने क्रोध में तोता बन जाने का शाप दे दिया उसे क्या पता था कि वह उसी का अभिन्न सखा वैशम्पायन है। मित्र को न पाकर दुःख में चन्द्रापीड़ वहीं मिट्टी का ढेर हो गया। प्रियतम को मिलने जब कादम्बरी वहाँ पहुँची तो उसके मृत देह को देख कर आवाक् रह गई। वह सती होने के लिए तय्यारी कर ही रही थी कि इतने में आकाश-वाणी हुई—'सती मत होओ। प्रियतम का शरीर सुरक्षित रखो। तुम दोनों कुमारियों का अपने २ प्रियतम से पुनर्मिलन हो जाएगा।' दोनों कुमारों के दुःखद अन्त का समाचार जब राजा तारापीड़ और मंत्री शुकनास को मि-ा तो वे अच्छोद-सर पहुँच गए।

'यह तोता पूर्व जन्म का वैशम्पायन है' जाबालि से यह सुन कर तोते को अपना सारा पूर्व जन्म स्मरण हो आया कि किस तरह पुण्डरीक से वैशम्पायन बनकर प्रणय निवेदन करता हुआ वह अपनी प्रियतमा महाश्वेता के शाप से तोता बना और किस तरह जाबालि आश्रम से भाग कर फिर प्रियतमा से मिलने जाता हुआ वह जंगल में चण्डाल-कन्या के हाथ में आया तथा शूद्रक को भेंट किया गया। इसके बाद शूद्रक द्वारा पूछे जाने पर चाण्डाल कन्या ने अपने को लक्ष्मी बताया और कहा—"शूद्रक तुम पूर्व जन्म के चन्द्रापीड़ हो; यह तोता तुम्हारे पूर्व जन्म का सखा वैशम्पायन (पुंडरीक) है। तुम अब अपना-अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लो।" लक्ष्मी के कहने पर शूद्रक और तोता अपने-अपने पूर्व रूप में आ जाते हैं तथा बाट जोह रही अपनी-अपनी प्रियतमाओं—कादम्बरी और महाश्वेता—से उनका पुनर्मिलन हो जाता है। इस पर सर्वत्र आनन्दोल्लास छा जाता है।

हर्षचरित और कादम्बरी : प्रसंगवश हम यहाँ हर्षचरित और कादम्बरी का थोड़ा सा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं। इन दोनों रचनाओं में समानतायें भी हैं और विषमतायें भी हैं। समानताओं में तो हम देखते हैं कि दोनों आधे में ही समाप्त हुई हैं, कोई पूर्ण नहीं होने पाई। हर्षचरित को तो कवि ने जान-बूझकर ही अधूरा छोड़ा है। उसका प्रमाण स्वयं कवि का यह संकेत है—कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः, सज्जा वयम्' (तृतीय उ०)।

हम उन आलोचकों से सहमत नहीं हैं जो बाण द्वारा हर्षचरित को अधूरा छोड़ दिए जाने का कारण नर्मदा के तट पर चालुक्य-नरेश पुलकेशी (द्वि०)[१] के हाथों उसके चरित-नायक की पराजय मानते हैं। वास्तव में बाण को इससे अधिक लिखना अभीष्ट हो नहीं था। कवि की लेखनी निज संरक्षक के अपनी बहिन राज्यश्री को प्राप्त कर लेने तक का उज्ज्वल चरित भाग लिखकर तृप्त हो गई थी, उसकी कल्पना-पर भी अपना विविध विलास-लास्य दिखाकर विश्राम चाह रही थी। किन्तु कादम्बरी में यह बात नहीं। वहाँ मृत्यु का क्रूर हाथ बाण को उसे पूरा लिखने में बाधक बना। इस तरह कारण भेद से सामान्यतः दोनों अधूरी रचनायें हैं। दोनों अलंकृत शैली की हैं। दोनों में घटना की अपेक्षा वर्णना को प्रधानता दी गई है। साहित्यिक गुण-दोष भी दोनों में प्रायः एक जैसे हैं। किन्तु दोनों में

---

१. 'अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्तसेनामुकुटमणिमयूखाक्रान्तपादारविन्दः।
युधि पतितगजेन्द्रानीकबीभत्सभूतो भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः।
(रविकीर्त्तिः, ६३६ ई० अभिलेख)

विषमतायें भी पाई जाती हैं। एक जघन्य है, तो दूसरा उत्कृष्ट है। साहित्यिक कसौटी पर कसें तो हर्षचरित कादम्बरी की अपेक्षा काफी निम्न कोटि की चीज निकलती है। उसमें जगह-जगह जो श्लेष और विरोधाभास आदि आते हैं, वे साधारणतः ऐसे जटिल और प्रयास-साध्य हैं जैसे हम कादम्बरी में नहीं पाते। यही हाल शब्दचयन का भी है। ऐसा लगता है मानों हर्षचरित रचते समय कवि ने कोष और व्याकरण से चुन-चुन कर शब्दों को रखा हो। बहुत सारे शब्द तो कोष में ढूंढे भी नहीं मिलेंगे। यत्र-तत्र देशज शब्द तक भी कवि ने प्रयुक्त कर रखे हैं, जिनका व्याख्याकार अर्थ करे तो क्या करे। हम यह भी देखते हैं कि कहीं कवि की एक ही अक्षर की सरसराहट सुनाई देती है, तो भारवि की तरह लघु अक्षरों की शृंखला ही बंध जाती है। एवं कहीं भट्टि की तरह लिट् चला तो क्रमशः लिट् ही चलता है और यदि लुङ् चला, तो लुङ् ही चलता है। अभिप्राय यह कि हर्षचरित में अपेक्षाकृत अधिक प्रयास-साध्यता कवि की दिखा रखी है। यही कारण है कि 'भाषा की सरलता, स्वाभाविकता, धाराप्रावाहिकता, विचारप्रतिपादन की सशक्तता और मनोवेगों भावों एवं रसों की मार्मिक अभिव्यञ्जकता, जीवन रहस्यों की सूक्ष्मेक्षिका तथा गहरी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। में कादम्बरी हर्षचरित की अपेक्षा कई गुना आगे पहुँची हुई है। सारे हर्षचरित में कादम्बरी की सी भाषा-श्लक्ष्णता तथा शुकनास द्वारा चन्द्रापीड़को और कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक को दी गई उदात्त प्रबोधना के दर्शन हमें कहीं नहीं होते। सांसारिक माया-मोह में विभ्रान्त वैधव्य-विह्वल राज्यश्री को भदन्त दिवाकर मित्र द्वारा ज्ञानोपदेश कराने के जैसे अच्छे अवसर कवि को मिलते रहे किन्तु वह चूकता गया। वहाँ भी थोड़ा सा जो कुछ भदन्त के मुख से कहलाया उसे जटिल श्लेष से इतना बोझिल बना दिया कि वह हृत्पिण्ड को जरा भी स्पर्श नहीं कर पाता। शब्दान्तर में यों समझ लीजिए कि जब कोई नव-शिक्षित चित्रकार अपनी नयी खुरदुरी तूलिका से जो पहला खुरदुरा चित्र बनाता है तो वह हर्षचरित है और तूलिका के घिस जाने और श्लक्ष्ण मसृण बन जाने पर अनुभव-जनित सूक्ष्म नैपुणी के साथ बाद में जो परिष्कृत चित्र बनाता है, तो वह कादम्बरी है। किन्तु यह सब होते हुए भी हर्षचरित का महत्त्व उसकी अपनी ऐतिहासिक उपादेयता में है, जिससे कादम्बरी सर्वथा वञ्चित है। कादम्बरी जहाँ कल्पना-प्रसूत एक निरा हवाई-महल है वहाँ हर्षचरित को खड़ा होने के लिए अपना यथार्थ धरातल है। वह एक ऐतिहासिक रचना है, जिसमें सम्राट् हर्षवर्धन का कवि-भाषा में आंशिक जीवन-चरित है। इसमें प्राचीन भारत की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियों, धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, रहन-सहन के तरीकों, सैनिक संगठन, नगर, शिविर एवं ग्रामों की वास्तविकताओं, औषध-विज्ञान और वनस्पतियों तथा विविध कलाओं और उद्योगों का अच्छा चित्रण हो रखा है। इधर-उधर कितनी ही त्रुटियों के रहते हुए भी हर्षचरित ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। बड़े दुःख की बात है कि बाण इस रचना को अधूरा ही छोड़ बैठे। इसमें उल्लिखित सभी बातें सम-सामयिक चीनी यात्रियों, विशेषतः ह्वेन सांग के निज यात्रा-विवरणों तथा सम्राट् हर्षवर्धन के उस समय के उपलब्ध कितने ही अभिलेखों से परिपुष्ट होती हैं। बाण अगर पूरा हर्षचरित लिखते तो प्राचीन इतिहास के हित में यह बड़ा अच्छा होता।

बाण के गुण-दोष : बाण संस्कृत साहित्य-गगन के सर्वाधिक देदीप्यमान कवि-नक्षत्रों में से एक हैं। क्या प्राचीन संस्कृत मनीषी और क्या अर्वाचीन पाश्चात्य आलोचक-गण सभी ने बाण की एक स्वर से मुक्त-कण्ठ प्रशंसा की है। उन्हें सम्राट् हर्षवर्धन द्वारा दिया हुआ 'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती' वाला विरुद बिलकुल अन्वर्थ है। हमें बाण के सम्बन्ध में आचार्य गोवर्धन की इस उक्ति में कि 'प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति' कोई अतिशयोक्ति नहीं दिखाई देती है।

बाण एक बड़े भारी कलाकार हैं। वे शब्द-चित्रकार हैं। कवीन्द्र टैगोर के शब्दों में और लेखक तो घटनायें लेकर कथा-वस्तु का वर्णन करते हैं, किन्तु बाणभट्ट चित्र खींचकर उसका वर्णन करते हैं। वे जो शब्द-चित्र खींचते हैं, उनकी बराबरी कोई दूसरा क्या कर सकेगा। उनका भीतरी कलाकार कल्पना के परों पर उड़कर उत्प्रेक्षा, उपमा विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों एवं झमझमाता हुआ नाद-सौन्दर्य लिये हुए अक्षर-पद विन्यासों के रूप में वर्ण्य विषयों पर ऐसे चोखे रंग भरकर हमारे सामने रखता है कि हम भौंचक्के रह जाते हैं। हर्षचरित और कादम्बरी

बाण की दो अमर, अमिट विशाल शब्द-चित्रशालायें हैं। जैसा हम पहले संकेत कर आए हैं, ये दोनों रचनायें वर्णना-प्रधान हैं, घटना-प्रधान नहीं। कवि द्वारा अपनाई हुई सम्राट् हर्षवर्धन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और इसी तरह चन्द्रापीड़ और कादम्बरी की कथा तो बिलकुल गौण वस्तुयें हैं। वे चित्र खींचने हेतु कलाकार के कोरे फलक के समान हैं। असली चीज तो उन पर खींचे हुए कवि के वे कला-पूर्ण चित्र हैं, जिन्हें देखकर सभी आत्म-विभोर हो जाते हैं। क्या बहिर्जगत्—राजा-रानी, राज-दरबार, और राजसी ठाट-बाट, नगर और नागरिक जीवन, ग्राम और ग्राम्यजीवन, शिविर, वाजिशाला और गजशाला, वन और वन-सम्पदा के रूप में वहाँ का वनस्पति-जगत् और पशु-जगत्, वनस्थ मुनि-आश्रम और मुनियों का तपोमय जीवन, सूर्यास्त सूर्योदय, निशाकरोदय आदि प्रकृति-तत्त्व अर्थात् समूचा चराचर जगत् और क्या अन्तर्जगत्—प्रेम उसकी विविध भंगियां और संयोग-वियोग की विविध स्थितियाँ, उत्कण्ठा, उद्वेग, क्रोध, शौर्य, करुणा आदि मनोभाव—सभी को बाण ने बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। वे अपनी निशित दृष्टि से किसी भी वस्तु अथवा जीवन-तथ्य का ऐक्स-रे लेकर उसके भीतरी कोने-कोने का, कोने-कोने के अणु-अणु का रहस्य हमारे आगे उघाड़कर रख देते हैं। वे अतीत के गर्भ में दबे पड़े कंकालों को निकालकर, रुधिर-मांस द्वारा उन्हें प्राणवन्त करके, चित्रपट की तरह हमारे आँखों के सामने चलने-फिरने और बोलने वाले बना देते हैं। संक्षेप में ये हैं बाण की कला के कुछ गुण, यह है उनका विलक्षण कवित्व जो उन्हें 'विभूतिमत् तत्त्वों'—'जीनिअसों'—की पंक्ति में ला खड़ा कर देता है। हाँ, बाण सचमुच 'जीनिअस' हैं, वाणी के अवतार हैं।

अब हम आधुनिक आलोचना-सिद्धान्त के माप-दंड से बाण के कुछ दोषों का भी विवेचन करेंगे। पहला दोष है उनकी भाषा की क्लिष्टता, जिसके कारण पाठक को अर्थ समझना कठिन हो जाता है। श्लेष पर श्लेष साथ लिये और दुरूह पौराणिक संकेतों को अपने भीतर छिपाये उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं, विरोधभासों और परिसंख्याओं आदि का शृङ्खला बद्ध चलते रहना बुद्धि को उलझा देता है। दूसरा दोष है अनुपात का अभाव। क्या हर्षचरित और क्या कादम्बरी—दोनों में कवि जब किसी वर्ण्य विषय को पकड़ता है, उदाहरणार्थ जैसे—दावाग्नि और दर्पशात गजराज आदि या विन्ध्याटवी और राजकुल आदि तो उनके इतने अधिक विस्तृत वर्णनों में चले जाते हैं कि पाठक पढ़ता-पढ़ता थक जाता है 'बोर' हो जाता है। एक-एक विशेष्य के अनेक विशेषण और फिर विशेषणों के भी विशेषणों के तांते बँध जाते हैं और वाक्य कितने ही पृष्ठों में जाकर कहीं समाप्त होता है इस बीच कथा प्रवाह न जाने कहाँ भूमिगत हुआ रहता है। कभी-कभी तो कवि कथानक अथवा घटना को उसी के भाग्य पर छोड़कर स्वयं प्रातःकाल, सन्ध्या, चन्द्रोदय और रात्रि आदि प्रकृत तत्त्वों अथवा नायिका के तत्तत् अंगों के लंबे-लंबे वर्णनों में ही रम जाता है। हम यह भी पाते हैं कि वर्णन के आवेश में आकर वह कभी-कभी तो ऐसा प्रकृति-विरुद्ध हो जाता है कि उसे हिमालय की ऊँचाइयों में ही पाये जाने वाले देवदारु वृक्ष भूर्जपत्र, शरभ, चमरी गाय और किन्नरियाँ विन्ध्याटवी में भी दिखाई देने लगती हैं[1]। इधर शोकातिरेक में रोती-विलपती राज्यश्री अग्नि-प्रवेश के लिए बिलकुल तय्यार खड़ी है, उधर कवि का भिक्षु उसे देख दयार्द्र हुआ आत्म दाह का कारण पूछने के लिए इतने लंबे समय तक सम्बोधन-पद सोचता-सोचता खड़ा ही रह जाता है, लेकिन उसके लिए समुचित सम्बोधन-पद नहीं पा सकता—यह कितना प्रकृति-विरुद्ध और अमनोवैज्ञानिक है[2]। बस कवि का लक्ष्य वर्णन कर देना मात्र है अनुपात देखना और कथा-प्रवाह का ध्यान रखना नहीं।'

तीसरा दोष—जो कथा-रचना की दृष्टि से कादम्बरी तक ही सीमित है—कथा पर कथा जोड़कर पाठक को जाल में फँसा देना है जिसके कारण कथा का अनुसरण करना उसके लिए कठिन हो जाता है, दूसरे, प्रेम-क्षेत्र में शाप-प्रतिशाप, दो-दो तीन-तीन जन्मों का सम्बन्ध जोड़कर कवि ने कादम्बरी की कथा अविश्वसनीय एवं जटिल बना दी है। बड़े अचम्भे की बात तो यह है कि प्रारम्भ में ही कथा तोता कह रहा है जो सरासर उपहासास्पद है; तीसरा, कथा की मुख्य पात्र अर्थात् कथा-नायिका कादम्बरी का प्रारम्भ या मध्य तक कहीं नामोल्लेख भी नहीं आता। रचना-दृष्टि से यह छोटा दोष नहीं है।

१. २. हर्षचरित अष्टम उच्छ्वास

इस सम्बन्ध में हम डा० कीथ के शब्दों में यही कहेंगे परन्तु भारतीय विश्वास की दृष्टि से वस्तु स्थिति बिलकुल भिन्न है। कथा को हम औचित्य के साथ मानवीय प्रेम की कोमलता, दैवी आश्वासन की कृपा, मृत्यु-जनित शोक और कारुण्य और प्रेम के प्रति अविचल सच्चाई के परिणाम-स्वरूप मृत्यु के पश्चात् पुनर्मिलन की स्थिर आशा से परिपूर्ण मान सकते हैं। कथा में अद्भुत घटनाओं का अंश भी भारतीय विचारधारा के लिए विशेष आकर्षण का विषय है. चन्द्रमा और पुण्डरीक के आश्चर्य से पूर्ण इत्तिवृत्त में भी उस विचार-धारा के लिए कोई ऐसी बात नहीं है जो आकर्षक न हो। पुण्डरीक का शुक रूप में आ जाना भी कोई उपहास की बात नहीं; जब कि यह बिश्वास किया जाता है कि मनुष्य अवश्य ही एक योनि से दूसरी योनि में जाते हैं।'' विशेष प्रभाव-वश पशु-पक्षियों का मनुष्य-वाणी में बोलना संस्कृत-साहित्य में बहुधा देखने में आता ही है। हम देखते हैं कि छान्दोग्य-उपनिषद् में वृष और हंस सत्यकाम को उपदेश दे रहे हैं। दो हंसों का परस्पर वार्तालाप रैक्व का ध्यान आकृष्ट कर देता है। कालिदास का सिंह दिलीप से और श्रीहर्ष का हंस दमयन्ती से मनुष्य वाणी में ही संलाप करते देखे गए हैं। यह बात बाद में सूफीमत की प्रणय-कहानियों में भी आई हुई है। साथ ही हमें यह भी तो देखना है कि आखिरकार कादम्बरी जनमन रंजन हेतु प्रणीत बाण का एक उपन्यास—निज कल्पना की एक उपज-मात्र—है, जिसे आजकल के यथार्थवादी दृष्टिकोण से आँकना ठीक नहीं। वह तो वस्तु-रचना में स्पेन्सर की 'फेयरी क्वीन' की कोटि की चीज है। रही बात कथा-नायिका :कादम्बरी के ग्रन्थ के अन्त में नामोल्लेख की तो सभी जानते ही हैं कि बाण कादम्बरी को अधूरा ही छोड़ गए थे। यदि जीवित रहते, तो क्या मालूम उनका यह उपन्यास कितना लंबा खिंच जाता जिसमें फिर नायिका का उल्लेख अन्त में न दीखकर आदि या मध्य में दिखाई देता। यह तो भूषणभट्ट है जिसने समाप्ति के उद्देश्य से इसे जल्दी-जल्दी समेट लिया।

बाण की शैली : बाण का कला-वैशिष्टय उनकी शैली में निहित है। वे शैली कवि हैं। उनका हर्षचरित और कादम्बरी दोनों शैली-प्रधान रचनायें हैं, घटना-प्रधान नहीं। शैली-प्रधान रचना में घटना को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता है जितना वर्णन को। इस वर्णना-शैली की उद्भावना बाण से बहुत समय पहले हो चुकी थी। इसको अलंकृत-शैली भी कहते हैं। इसमें प्रतिपाद्य विषय की अपेक्षा प्रतिपादन-प्रकार को महत्त्व दिया जाता था और कथा का प्रधान अवलम्बन आत्मा नहीं; प्रत्युत श्रोत्रेन्द्रियाँ ही बन गई थीं। इस शैली में काव्य का कला-पक्ष भाव-पक्ष पर छाया हुआ रहता है। प्राचीन शिलालेखों में इस अलंकृत-शैली के दर्शन हो जाते हैं। उदाहरण के लिए महाक्षत्रप रुद्रदामन का गिरनार शिलालेख (१५० ई०) देखिए :—

"प्रमाणमानोन्मानस्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतैकान्तमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"

इसी काव्यमयी अलंकृत-शैली के दूसरे उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त-(३६० ई०) सम्बन्धी शिलालेख भी देखिए :—

"तस्य महाराजाधिराजसमुद्रगुप्तस्य सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।"

आगे हम इसी शैली में लिखा हुआ स्वयं हर्ष का ताम्रपत्र-अभिलेख दे रहे हैं।

बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भिक श्लोकों में से एक में विभिन्न देशों की शैली के सम्बन्ध में स्वयं लिख रखा है :—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥

---

१. 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृ० ४०५ अनुवादक डा० मंगलदेव शास्त्री।

अर्थात् उत्तर भारत में श्लेष-मुखेन प्रतिपादन होता है, पश्चिम में केवल अर्थमात्र का अभिधान रहता है, दक्षिण में उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग होता है और पूर्व में शब्दाडम्बर ही रहता है। बाण ने इन चार विभिन्न प्रतिपादन-प्रकारों का समन्वय करना चाहा और तदनुसार वे अपनी एक समन्वित शैली बना बैठे। यह समन्वित शैली साहित्यिक भाषा में पाञ्चाली रीति कही जाती है —

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥ [सरस्वतीकण्ठाभरण]

शीलाभट्टारिका के गद्य के सम्बन्ध में तो अभी कुछ पता नहीं चल रहा है, पर 'बाणोक्तियाँ' हमारे पास 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' के रूप में विद्यमान हैं। भाषा की पाञ्चाली रीति में शब्द और अर्थ का समान गुम्फ—शब्दार्थों का परस्पर सन्तुलन—रहता है. यदि अर्थ अथवा वर्ण्य विषय उदात्त, कठोर, घोर अथवा ओजस्वी है जैसे—दावानल, गजराज दर्पशात, राजकुल, विन्ध्याटवी, उज्जयिनी, इन्द्रायुध इत्यादि, तो उसके लिए भाषा भी उदात्त, कठोर और ओज-पूर्ण हो जाती है। ओज का स्वरूप 'ओजः समासभूयस्त्वम्' है। फिर तो लम्बे-लम्बे कठिन समास चलेंगे, शब्दाडम्बर भी आ जाता है। कठिन-कठिनतर शब्द भी प्रयोग में आने लगते हैं और श्लिष्टोपमा श्लिष्टोत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलङ्कारों का ताँता बँध जाता है। पाञ्चाली शैली के इस दीर्घ-दीर्घ समास वाले रूप को 'उत्कलिका' कहते हैं। इसमें कवि की बड़ी प्रयास-साध्यता पारिलक्षित होती है। जैसे हम पीछे देख आए हैं, आधुनिक आलोचक बाण की भाषा के इस रूप को दोष गिनते हैं। वेबर ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'बाण का गद्य एक भारतीय जंगल है। जिसमें यात्री तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक वह झाड़ियों को काटकर अपने लिए मार्ग नहीं बना लेता और जहाँ इसके बाद भी उसे भयानक अज्ञात शब्दों के रूप में क्रूर जंगली पशुओं का सामना करना पड़ता है।" प्रसिद्ध संस्कृत मनीषी डा० कीथ ने भी वेबर की हाँ में हाँ मिला रखी है। किन्तु वे भ्रम में हैं। वे यह भूल जाते हैं कि बाण की रचनायें शैली-प्रधान हैं जिनमें वर्णना को प्रमुखता मिलती रहती है और उस समय गद्य-काव्य की उत्कृष्टता का एकमात्र मान-दण्ड—'ओजः समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम्' ही हुआ करता था। इसमें बाण का कोई दोष नहीं। वैसे हम देखते हैं कि बाण को अपने यात्रियों की इस शिकायत का पहले से ही आभास रहता है। और यही कारण है कि वे सुबन्धु की तरह उन्हें जंगलों में ही भटकते रहते देना पसन्द नहीं करते। थोड़ी ही देर बाद वे अपने भ्रान्त-भीत यात्री को जगल से बाहर निकालकर विश्राम हेतु सरस, हरित शाद्वल का निर्माण कर देते हैं। वह शाद्वल होता है अन्तर्जगत्—मानव-हृदय के कोमल मधुर भावों का सरस धरातल। वर्ण्य विषय के कोमल-मधुर होते ही बाण की शैली-भाषा भी कोमल-मधुर हो जाती है। इसी को 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः' कहते हैं। दीर्घ-दीर्घ समास समाप्त हो जाते हैं। होते भी हैं तो छोटे-छोटे नितान्त-सुबोध। पाञ्चाली के छोटे-छोटे समास वाले रूप को 'चूर्णक' और बिलकुल समास-रहित रूप को 'आविद्ध' कहते हैं। 'उत्कलिका' शैली में सरस्वती का वर्णन करने के बाद देखिए बाण ब्रह्मा द्वारा दुर्वासा की भर्त्सना में किस तरह 'चूर्णक और आविद्ध' का मिश्रित प्रयोग करते हैं :—

'निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि। क्षमा हि मूलं सर्व-तपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न ते आत्मरागदोषं पश्यति, क्व महातपोभार-वैवधिकता, क्व पुरोभागित्वम्। अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः। न हि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा' (हर्षचरित प्र० उ०)

इसी तरह 'चूर्णक' में कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक की भर्त्सना भी देखिए :—

"का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः? स खलु धर्म-बुद्ध्या विषलतावनं सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशमालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभि-स्पृशति ...मूढो यो विषयभोगेषु सुखबुद्धिमारोपयति (कादम्बरी)

शुद्ध 'आविद्ध' भी वाण का देखिए :—

'समुपनय मृणालानि मालति ! तरलय तालवृन्तमावन्तिके ! मूर्धानं धावगानं बधान बन्धुमति ! कन्धरां धारय धारणिके ! संवाहय बाहू वलाहिके ! पीडय पादौ पद्मावति ! गृहाण गात्रमङ्गमनङ्गसेन ! का वेला वर्तते विलासवति ! नैति निद्रा, कथाः कथय कुमुद्वति ! (हर्षचरित पञ्चम उ०)

"प्रसीद, नकृदप्यालप ईषदपि विलोकय, पूरय मे मनोरथम् । आर्तास्मि, अनुरक्तास्मि, अनाथास्मि, बालास्मि, अगतिकास्मि, दुःखितास्मि" (महाश्वेता काद०)

इस तरह हम देखते हैं कि बाण किसी विशेष शैली के क्रीतदास नहीं हैं । अर्थानुसार ही उनकी शैली चलती है । बहिर्जगत् के चित्रण में वे 'उत्कलिका' को अपनाते हैं जिसमें श्लेष, समासबाहुल्य और विकटाक्षरबन्ध रहता है लेकिन अन्तर्जगत् के चित्र में उनकी भाषा सरल और मसृण रहती है । वाण ने स्वयं शब्द और अर्थ के मध्य इस सामञ्जस्य को ही उत्कृष्ट गद्य की कसौटी बताया है :—

नवोऽर्थोजातिरग्राम्या श्लेषः स्पष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ।। [हर्षचरित]

उक्त श्लोक में बाण ने जिन सब बातों को 'एकत्र दुर्लभम्' बताया है, उन्हें उत्कृष्ट गद्य-काव्य के लिए स्वयं अपनी रचनाओं में 'एकत्र सुलभम्' दिखाते हुए वे भावी कलाकारों के लिए उत्कृष्ट गद्य का एक स्थायी आदर्श छोड़ गए ।

संस्कृत-जगत् द्वारा वाण-प्रशस्ति : संस्कृत जगत् ने अपने 'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती' और उसकी कला का क्या-क्या मूल्यांकन किया है—इस सम्बन्ध में हम नीचे कुछ प्रसिद्ध कवियों एवं आलोचकों की उक्तियों को दे देने का लाभ संवरण नहीं कर सकते :—

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ।। [आचार्य गोवर्धनस्य]

वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दमर्थे तथा वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं वाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ।। [सोड्ढलस्य]

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी ? नहि नहि वाणी वाणस्य मधुरशीलस्य ।। [धर्मदासस्य]

हृदि लग्नेन वाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारकम् ।। [त्रिलोचनभट्टस्य]

सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ।। [राजशेखरस्य]

वाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कविः ।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति ? द्युमणिः कतमो मणिः ? [वामनभट्टबाणस्य]

प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीबाणभट्टकविराजः ।। [वामनभट्टबाणस्य]

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।

आः ! सर्वत्र गभीरघोरकविताविन्ध्याटवीचातुरो-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥ [चन्द्रदेवस्य]

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये वाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम् ॥ [रुय्यकस्य]

अर्थपतितनयबन्धुर्निरुक्तगोसङ्ग्यहर्षचरितश्च ।
अभिनन्दजननहेतुर्बाणः प्रतिभाति कृष्ण इव ॥ [विश्वेश्वरस्य]

वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम् ।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥ [गङ्गादेव्याः]

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥ [सोमेश्वरदेवस्य]

यदि बाण का मूल्यांकन करने के लिए हमें कहा जाय, तो हम यही कहेंगे कि—'बाणेन सदृशो गद्ये न भूतो न भविष्यति' पार्थिव 'ऐवरेस्ट' पर भले ही नेन सिंह आदि विजयी हो गए हों, किन्तु बाण ऐसे साहित्यिक 'ऐवरेस्ट' हैं, जिस पर कोई भी कलाकार त्रिकाल में भी विजय नहीं पा सकेगा, यह हमारी भविष्यवाणी समझिए।

बाण का परवर्ती प्रभाव : हम देखते हैं कि कला-क्षेत्र में जब कोई 'विभूतिमद् सत्त्व' (जीनिअस) अवतरित होता है, तो वह अपनी पूर्ववर्त्ती कला का तो फुल होता है और परवर्त्ती के लिए बीज। बाण के सम्बन्ध में यह बात पूरी-पूरी घटती है। बाण की कृतियाँ पूर्व से चली आ रही अलंकृत शैली के पुष्पवत् पूर्ण विकसित रूप हैं। उनमें वह शैली अपने चरम प्रकर्ष पर पहुँची हुई है, साथ ही भावी कलाकारों के लिए बीज—सृजन का साधन भी बनी हुई हैं। गद्य काव्य-क्षेत्र में बाण द्वारा स्थापित आदर्श को उत्तराधिकार में लेकर ही बाद के सभी कविकर्म में प्रवृत्त हुए और बाण के अनुगामी बने। परवर्ती कला-क्षेत्र में पड़े हुए बाण के इस व्यापक प्रभाव को देखकर ही संस्कृत-जगत् में 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' यह लोकोक्ति चल पड़ी है। बाण के बाद समस्त कवि-कर्म बाण की जूठन है। ऐसा कोई भी गद्यकार या पद्यकार नहीं होगा, जिसने ऐसी कोई नयी चीज लिखी हो जिस पर बाण ने अपनी लेखनी चला न रखी हो सबसे पहले कादम्बरी के उत्तरार्ध को लिखने वाले बाण-पुत्र भूषणभट्टको ले लें, जिसने स्वयं स्वीकार कर रखा है—'गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तथाक्षराणि मन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः। पुत्र ने पद पद पर अपने पिता का अनुकरण कर रखा है कल्पना, शब्द प्रयोग और भाव भी ज्यों के त्यों ले रखे हैं। पुत्र में जैसे पिता का प्रतिबिम्ब रहता है, उसी प्रकार कादम्बरी का उत्तरार्ध पूर्वार्ध का ही प्रतिबिम्ब समझिए। बाण की कृतियों और सुबन्धु की वासवदत्ता में परस्पर बड़ा-भारी साम्य मिलता है—वस्तु-योजना में भी पद-योजन में भी और भाव-व्यञ्जना में भी। दोनों में से किसने किससे आदान किया है और किसने किसको प्रदान किया है—इस सम्बन्ध में संस्कृत-विद्वानों में मतैक्य नहीं। वैसे बाण ने अपने हर्षचरित में 'वासवदत्ता' की प्रशंसा में यह लिख रखा है :—

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया ।

इसे देखकर कुछ विद्वान् वासवदत्ताकार सुबन्धु को बाण का पूर्ववर्ती मानकर बाण को ही सुबन्धु का ऋणी मानते हैं। उनके मतानुसार बाण सुबन्धु से प्रेरणा लेकर अपने कविकर्म में प्रवृत्त हुए और उनके ही आदर्श पर चल पड़े। स्थानाभाव के कारण सुबन्धु और बाण के मध्य हुए इस आदान-प्रदान का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन हम यहाँ नहीं कर सकते। थोड़ा सा दिङ्मात्र ही पाठकों के आगे रख देते हैं, उदाहरणार्थ जैसे—वासवदत्ता में मनोजव घोड़े की कल्पना है तो

कादम्बरी में भी शुक की योजना है; वासवदत्ता में आया हुआ श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों का तांता कादम्बरी और हर्षचरित में भी तुल्य रूप से दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त शब्द प्रयोग तो दूर रहा, थोड़े से हेरफेर के साथ समास तक एक-जैसे प्रयुक्त हो रखे हैं जैसे :—

"प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरितपरिसरेण परागपुञ्जपिञ्जरसिन्धुवारमञ्जरीरज्यमानमधुकरमञ्जुशिञ्जितजनितमुदा....मदजलमेचकितगण्डकाषमुचुकुन्दकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटविकटकण्डूतिना" [वासवदत्ता]

"प्रविकसितकेसररजोविसरबध्यमानवासरधूसरिमाणः ....: परागपिञ्जरमञ्जरीरज्यमानमधुपमञ्जुशिञ्जाजनितजनमुदः मदजलमेचकितमुचुकुन्दस्कन्धकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरट कण्डूतयः" [हर्षचरित]

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच यह सुबन्धु की जूठन है। जिसे बाण आँख मीचकर खा गए ? यह कभी नहीं हो सकता है कि बाण-जैसा सिद्धहस्त, 'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती' सुबन्धु को अपना आदर्श मानकर चले और खुल्लम-खुल्ला उसकी चोरी करें। बाण ने स्वयं इस तरह की साहित्यिक चोरी की बड़ी निन्दा कर रखी है :—

अन्यवर्ण-परावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चोरो विभाव्यते ।। (हर्ष०)

इसलिए बाण द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' सुबन्धु की 'वासवदत्ता' नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है। वासवदत्ता का उल्लेख करने वाले श्लोक के ठीक पहले के श्लोक में बाण ने 'कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः' लिखकर आख्यायिकाओं का प्रसंग छेड़ रखा है, कथाओं का नहीं। सुबन्धु की 'वासवदत्ता' आख्यायिका नहीं है', प्रत्युत कथा है। हाँ, महाभाष्यकार ने एक दूसरी 'वासवदत्ता' का उल्लेख कर रखा है जैसे हम पीछे देख आए हैं। वही बाण को अभिप्रेत हो, जिसे कहते हैं कि वार्तिककार वररुचि कात्यायन ने वत्सराज और वासवदत्ता के ऐतिहासिक वृत्त को आधार बनाकर लिखा था और जो अब लुप्त है, किन्तु बाण के समय उपलब्ध रही होगी। बाण बड़े प्रतिभाशाली कलाकार हैं, अतः सुबन्धु ही बाण को आदर्श बनाकर चला है, उसने ही बाण की नकल की है। पीटरसन, गजेन्द्र गडकर, कृष्णमाचार्य आदि विद्वान् भी हमारे ही मत के समर्थक हैं।

सुबन्धु के बाद गद्यकार दण्डी आते हैं। ये भी अपने 'दशकुमारचरित' और विशेषतः 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में बाण की कादम्बरी को आदर्श बनाकर चले हैं। कितनी ही उत्प्रेक्षायें और उपमायें एक-जैसी मिलती हैं। कितने ही शब्द-प्रयोग तक भी बाण के ले रखे हैं, जैसे—'अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया' [काद०], 'अमलमणिभूमिगर्भसंक्रान्तप्रतिबिम्बतः [अवन्ति०]। दण्डी के बाद के अभिनन्द के 'कादम्बरीकथासार', त्रिविक्रमभट्ट के 'नल-चम्पू', सोमदेव के 'यशस्तिलकचम्पू', धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' और सोड्ढल की 'उदयसुन्दरीकथा' सभी में बाण की कला की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। अम्बिकादत्त व्यास-रचित आधुनिक 'शिवराजविजय' भी बाण की ही शैली अपनाये हुए हैं। विस्तार के भय से यहाँ हम उक्त सभी कलाकारों के तुलनात्मक अध्ययन में नहीं जाना चाहते हैं। वस्तुतः गद्य-काव्य ही नहीं, परवर्ती नाटय और पद्य-काव्य भी बाण की प्रेरणा से अनुप्राणित हैं। भट्टनारायण का 'वेणीसंहार' और भवभूति के तीनों नाटक उसी अलंकृत शैली की रचनाओं में आते हैं। जिनके अग्रदूत बाण हैं। श्री हर्ष के 'नैषधचरित' में नल के घोड़े पर बाण के इन्द्रायुध का, क्रीड़ा-सर पर बाण के पम्पासर अथवा अच्छोदसर का, और कुण्डिनपुर पर बाण की उज्जयिनी का कितना प्रभाव है—यह संस्कृत-मनीषियों से छिपा नहीं है। इस तरह बाण परवर्ती कवियों और उनके कवि-कर्म के सृजन में सचमुच बीज-रूप ही बने। अतः 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' यह उक्ति बिलकुल ठीक है।

हर्षचरित : बाण का हर्षचरित यद्यपि हर्षवर्धन की आंशिक जीवनी पर आधारित है, तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से हम इसको अधिक महत्त्व नहीं दे सकते। यह इतिहास-ग्रन्थ नहीं है। इतिहास की तरह इसमें न क्रम-बद्ध

बातें हैं, न व्यक्तियों और स्थानों का ब्यौरा-बद्ध वर्णन है। राज्यवर्धन की जिस गौड़ेन्द्र ने हत्या की, उसका बाण नाम तक नहीं बताते। किञ्च, एक ओर राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के दो मालवकुमार—कुमारगुप्त और माधवगुप्त—इतने घनिष्ठ विश्वस्त मित्र बने हुए हैं कि जो, बाण के शब्दों में, 'उच्छ्वास-निश्वास' की तरह दिनरात उनके मुख के आगे स्थित रहते हैं (उच्छ्वास-निश्वासाविव नक्तन्दिवमभिमुखस्थितौ), दूसरी ओर, बाण के अनुसार मालवनरेश हर्षवर्धन के बहनोई कान्यकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा की हत्या करके उनकी बहिन राज्यश्री को बेड़ियाँ पहनवाकर कारागार में बन्दी बना देता है। यह कितनी बड़ी विसंगति है ? वास्तव में देखा जाय, तो बाण का हर्षचरित इतिहास की छायामात्र लिये हुए मुख्यतः काव्यकृति है। कवि ने अपना काव्य-कौशल, वाणी-विलास तथा अद्भुत कल्पनाशक्ति का विजृम्भण दिखाने के लिए हर्षचरित की अपनी पृष्ठभूमि चुना है, अन्यथा भला सरस्वती का स्वर्ग से भू-अवतरण दधीच के साथ प्रणय-बन्धन, भैरवाचार्य द्वारा ब्रह्मराक्षस से छिनी तलवार का पुष्पभूति को उपहार में प्रदान, पृथिवी फोड़कर निकले दानवाकार महामानव का और पुष्पभूति का द्वन्द्व-युद्ध, पुष्पभूति को लक्ष्मी देवी के दर्शन, भैरवाचार्य का मानव से विद्याधर बनकर गगन में उड़ जाना, नरकासुर से प्राप्त 'वारुण आतपत्र की आसाम-नरेश द्वारा हर्ष को भेंट, पाताल लोक से लाई हुई शेषनाग की 'एकावली' का दिवाकरमित्र द्वारा हर्ष को दिया उपहार आदि दैविक, पौराणिक और तिलस्मी तत्वों का शुद्ध इतिहास से क्या तुक ? कुछ भी नहीं सिवाय इसके कि ये इसकी ऐतिहासिकता पर पानी फेर देती हैं। हर्ष के सम्बन्ध में बाण ने जो मुख्य-मुख्य बातें लिखीं, वे भी थोड़ी-सी हैं। ग्रन्थ का आठ उच्छ्वासों तक का विस्तार तो उनकी अलंकृत शैली का विलास है, उनके लम्बे-लम्बे काव्यमय वर्णन हैं, पाठकों को मनोमुग्ध करने के लिए बनाई हुई एक विशाल शब्द-चित्रशाला है।

हर्ष का वंश : बाण ने पुष्पभूति को हर्ष के वंश का प्रवर्त्तक आदि-पुरुष माना है। बहुत पीढ़ियों बाद इस वंश में प्रभाकरवर्धन हुए जिनकी पत्नी का नाम यशोमती था। पुष्पभूति और प्रभाकरवर्धन के बीच की पीढ़ियों के विषय में बाण मौन हैं। प्रभाकरवर्धन के माता-पिता कौन थे और यशोमती किस राजा की पुत्री थी—इसका भी हमें बाण से कुछ पता नहीं चलता है। हाँ, हर्ष द्वारा स्वयं ६३१ ई० (अपने शासनकाल के पच्चीसवें वर्ष) में निकाले अपने मधुवन के ताम्र-शासनपट्ट से उनके वंशधरों का कुछ परिचय मिल जाता है, जिसे पाठकों की सुविधा के लिए हम ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत कर देते हैं :—

ओम् । स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात् कपित्थिकायाः महाराजः श्रीनरवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीअप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुःसमुद्रातिक्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः सितयशःप्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलः परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः सत्पथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसंप्रीणितार्थिहृदयोऽतिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनः

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वे समं संयताः ।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः ॥

तस्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्त्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानीवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे समुपगतान् महासामन्त—महाराज—दौःसाधसाधनिक—

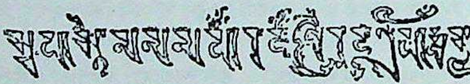
प्रतिवासिजनपदांश्च समाज्ञापयति । प्रमातार—राजस्थानीय—कुमारामात्योपरिक—विषयपति—भटचाटसेवकादीन् अस्तु वः संविदितम् । अयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्राह्मणवामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनं भङ्क्त्वा तस्मादाक्षिप्य च स्वसीमापर्यन्तः सोद्रङ्गः सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतः सर्वपरिहृतपरिहारो विषयादुद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षितिसमकालीनो भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितुः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्धनदेवस्य मातुः परमभट्टारिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्याः ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनदेवपादानां च पुण्ययशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवातस्वामि--विष्णुवृद्धसगोत्रवह्वृचसब्रह्मचारि—भट्टशिवदेवस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितः । विदित्वा भवद्भिः समनुमन्तव्यः प्रतिवासिजनपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्याया अनयोरेवोपनेयाः सेवोपस्थानं च करणीयमिति । अपि च

अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया दानं फलं परयशःपरिपालनं च ॥
कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणिने हितम् ।
हर्षेणैतत्समाख्यातं धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥

दूतकोऽत्र महाप्रमातार–महासामन्त–श्रीस्कन्दगुप्तः महाक्षपटलाधिकरणाधिकृतसामन्तमहाराजेश्वरगुप्त-समादेशाच्चोत्कीर्णं गर्जरेण (गुर्जरेण?) । संवत् २० ५ मार्गशीर्षवदि ६ ।

किन्तु इससे पूर्व बाँसखेड़ा के ६२८ ई० (अपने शासन के बाइसवें वर्ष) के दान-पत्र में दानपात्र ब्राह्मणों तथा दान में दिये हुए ग्राम के नाम और संवत्-मास तिथि को छोड़कर शेष सभी बातें ऊपर वाली ही हैं, लेकिन संवत्-मास तिथि के साथ उसमें हर्ष के अपने हस्ताक्षर भी इस तरह हैं ।—

'उत्कीर्णमीश्वरेणेदमिति संवत् २० २ कार्त्तिदि १ स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य ।'



स्व हु स्तो म म म हा रा जा धि रा ज श्रो ह र्ष स्य

उपर्युक्त दानपत्रों के आधार पर हम हर्ष का वंश-वृक्ष इस प्रकार बना सकते हैं :—

नरवर्धन–वज्रिणीदेवी
|
राज्यवर्धन–अप्सरोदेवी
|
आदित्यवर्धन–महासेनगुप्ता
|
प्रभाकरवर्धन–यशोमती
|
राज्यवर्धन | हर्षवर्धन | राज्यश्री

वाण के अनुसार हर्ष के वंशधर स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेसर) में राज्य किया करते थे, किन्तु ह्वेन-सांग ने कान्यकुब्ज को हर्ष की राजधानी बताया है । इसका कारण यह हो सकता है कि ह्वेन-सांग की जब हर्ष से भेंट हुई (६४३ ई० के लगभग) उस समय हर्ष के विशाल साम्राज्य की एक राजधानी कान्यकुब्ज भी रही होगी । अपने पति

ग्रहवर्मा के मार दिये जाने के बाद जब राज्यश्री बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी, तब हर्ष ने कान्यकुब्ज को अपने हाथ में लेकर उसे अपनी राजधानी बना लिया होगा, क्योंकि थानेसर की अपेक्षा वह उनके साम्राज्य का केन्द्रवर्ती स्थल था।

हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन एक बड़े वीर पुरुष थे। उनका 'प्रतापशील' उपनाम अन्वर्थ ही था। हर्ष के अभिलेखों में उनके वंशधरों का उल्लेख 'महाराजा' के रूप में ही मिलता है लेकिन प्रभाकरवर्धन के लिए 'महाराजाधिराज' विरुद आया हुआ है। बाण के अनुसार उन्होंने हूणों, सिन्धु गुर्जर, गान्धार, लाट और मालव नरेशों को पछाड़ दिया था। वे 'चतुःसमुद्रातिक्रान्तकीर्तिः' एवं 'प्रतापरागोपनतान्यराजः' (मधुवन-ताम्रपट्ट) थे। यही कारण था कि राजकुमारी राज्यश्री के विवाहोत्सव पर अधीन हुए इन सभी देशों के राजे-महाराजे अपनी-अपनी भेंटें लेकर रानी-महारानियों समेत आए और जन साधारण की तरह विवाह के काम-धन्धों में जुटे रहे, उधर उनकी रानियाँ भी अन्तःपुर के कामों में लगी रहीं और आनन्द मत होकर नृत्य-गान भी करती रहीं। ये सब बातें प्रभाकरवर्धन के 'महाराजाधिराजत्व' के प्रमाण हैं। इनकी महारानी यशोमती थी जो इतिहासकारों के अनुसार मालवेश यशोधर्मा (विक्रमादित्य) की पुत्री थी। महाराजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०६ ई० में हुई किन्तु पति की मृत्यु से पूर्व ही रानी यशोमती अग्निप्रवेश करके 'सती' हो गई थी। वह 'अविधवा' ही मरना चाहती थी।

जिस परिस्थिति में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई, उसे देखकर हमारे एक मित्र ने ऐसी शंका उठाई है कि क्या राजा की मृत्यु के पीछे कोई राजनैतिक षड्यन्त्र तो नहीं था? क्या यह राजनैतिक हत्या तो नहीं थी जैसी राज्यवर्धन की हुई थी? इस सम्बन्ध में यदि हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करें, तो शंका के लिए स्थान मिल जाता है। बाण ने प्रभाकरवर्धन को 'मालवलक्ष्मीलतापरशुः' कहा है, जिससे सिद्ध होता है कि दोनों राज-वंशों में परस्पर शत्रुता चली आ रही थी। पराजित के रूप में ही यशोमती के पिता ने उसे प्रभाकरवर्धन को विवाह में दिया और यशोमती के भाई ने अपना पुत्र भंडि राजा को उनके पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर के रूप में भेंट दे दिया था। बाद को माधवगुप्त और कुमार गुप्त दो अन्य मालव-कुमार भी राजपुत्रों के सहचर रूप में मिल गए थे। ध्यान रहे कि यह सारा शत्रु-पक्ष वर्धन परिवार में आया हुआ था। प्रभाकरवर्धन ने हूणों को दबाने के लिए जब राज्यवर्धन को पश्चिमोत्तर में भेजा तब तक राजा बिलकुल ठीक ठाक थे। दोनों पुत्रों के चले जाने के बाद ही वे बीमार पड़े और उत्तरोत्तर शीघ्र ही हालत बिगड़ती गई। तत्काल जल्दी घर लौटे हुए हर्ष द्वारा वैद्यों को पूछने पर उन्होंने यह गोलमोल जबाब दिया— 'कुछ ही दिनों में आप पिता को अपनी प्रकृति में स्थित सुनेंगे (कतिपयैरेव वासरैः पुनः स्वां प्रकृतिमापन्नं श्रोष्यसि पितरम्) जिससे परोक्ष अर्थ यह निकल जाता है कि—वे स्व-प्रकृतिस्थ=पञ्चत्व को प्राप्त हो जाएँगे'। इसके बाद दूसरे ही दिन प्रधान राजवैद्य रासयन अग्नि में प्रविष्ट होकर आत्म-हत्या कर गया। रानी यशोमती भी पति की मृत्यु से पहले ही अग्निप्रविष्ट हो बैठी। उधर राजा की मृत्यु का समाचार पहुँचते ही मालवेश ने गौड़ेन्द्र से साँठ-गाँठ करके राजा के दामाद ग्रहवर्मा की हत्या कर दी, और थानेसर की ओर बढ़ने लगा। इस तरह प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से सम्बन्धित यह सारा घटना-चक्र यह शंका उत्पन्न कर देता है कि राजा के वध की कोई 'पूर्वयोजना' शत्रुपक्ष ने बना रखी थी जिसमें वह सफल हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि घटना-चक्र से ऐसी गन्ध आती है, किन्तु हमारे विचार से ऐसी बात नहीं हो सकती। ऐसा होता, तो बाण क्यों चुप रहता ऐसा अभिलेख भी नहीं मिला और न किसी इतिहासकार ने ही इसका उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि राजा की मृत्यु स्पष्टतः दाह-ज्वर से हुई जो कई दिनों तक चलता रहा। हत्या होती, तो विष-प्रयोग होता जिससे तत्काल मृत्यु हो जाती। राजवैद्य रसायन भी कुलपरम्पराप्राप्त राजभक्त था, बाहर का नहीं। रानी भी बड़ी पति-भक्त थी। इसलिए हमारे विचारानुसार प्रभाकरवर्धन की मृत्यु स्वाभाविक मृत्यु थी, राजनैतिक हत्या नहीं।

हर्ष अपने बड़े भाई राज्यवर्धन से लगभग चार वर्ष छोटे और बहिन राज्यश्री से दो वर्ष बड़े थे। बाण के अनुसार हर्ष का जन्म ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की द्वादशी को हुआ जो सी० वी० वैद्य के अनुसार ४ जून ५९० ई० ठहरता है। गर्भ-स्थिति में माता के सिंहनाद सुनने तथा खड्ग धारण आदि के दोहदों से हर्ष के वीरत्व का संकेत मिल गया था। वह स्थिति और शुभ शकुनों ने भी यही ध्वनि निकली। पता नहीं क्या बात थी कि पिता अपने अन्तिम क्षण में—

'गृह्यताम् श्रीः, स्त्रीक्रियतां कोषः, उद्यतां राज्यश्रीः, प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्' यह कहकर जैसे इन्हें ही राज्याभिषिक्त कर गए थे। वास्तव में हर्ष जन्म-सिद्ध सम्राट थे।

गौड़ेन्द्र द्वारा भाई के वध के बाद जब हर्ष सिंहासनासीन हुए तब ये सोलह वर्ष के थे। उनका पहला काम भाई और बहनों के वध का बदला लेना था, साथ ही देश भर के राजमण्डल को ऐसी सीख भी देनी थी कि भविष्य में कोई भी राजा फिर ऐसी कुचेष्टा न कर सके। किंतु बाण ने यह नहीं बताया कि राज्यवर्धन को मारने वाला गौड़ेन्द्र और ग्रहवर्मा को मारने वाला मालव-नरेश कौन थे। बाण ने यह भी गुत्थी नहीं खोली कि प्रभाकर-वर्धन ने शत्रुपक्षीय माधवगुप्त और कुमारगुप्त नामक दो मालव-राजकुमारों को अपने पुत्रों का विश्वस्त सहचर कैसे बना डाला। यहां हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उल्लिखित मालव देश पूर्व का था, पश्चिम का नहीं। मधुवन के ताम्रपट्ट में राज्यवर्धन द्वारा देवगुप्त आदि शत्रुओं को उखाड़ फेंक देने का उल्लेख आया है इसी मालवेश देवगुप्त ने ग्रहवर्मा का वध किया। इस वध के पीछे क्या कारण रहा— इस सम्बन्ध में हमें मौखरिवंश और गुप्तवंश के इतिहास का थोड़ा सा अध्ययन करना होगा। इतिहास से पता चलता है कि इन दोनों राजवंशों के मध्य परंपरागत शत्रुता चली आ रही थी। दोनों एक दूसरे को दबाकर अपना राज्य विस्तार करना चाहते थे। देवगुप्त जो माधवगुप्त और कुमारगुप्त का ज्येष्ठ भाई था, जब राजगद्दी पर बैठा, तो वह भी अपने पूर्वजों के पद-चिह्नों पर चला। हम पीछे कह आए हैं कि प्रभाकरवर्धन ने तो मालवदेश को परास्त करके उसकी स्वाधीनता छीन रखी थी। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु और राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन के पश्चिमोत्तर में हूणों के दमन हेतु अभियान ने देवगुप्त को स्वर्ण अवसर प्रदान कर दिया कि वह अपनी स्वाधीनता प्रख्यापित करता हुआ थानेसर पर चढ़ाई करके अपना वैर शोधन करले, किन्तु इससे पूर्व उसने गौड़ देश (बंगाल) के नरेश शशांक को अपना मित्र बना कर अपना पक्ष पुष्ट कर लिया था। गौड़ेन्द्र देवगुप्त की सहायतार्थ सेना लेकर आया हुआ था। उधर थानेसर की राजकुमारी राज्यश्री का कान्यकुब्ज नरेश ग्रहवर्मा के साथ विवाह हो जाने पर मौखरि नरेश को थानेसर का बल मिल गया था। इस तरह उस समय राजों के दो गुट बने हुए थे—एक मालव-गौड़ गुट और दूसरा थानेसर कान्यकुब्ज गुट। बाण ने पहले गुट का उल्लेख शशांक-मंडल नाम से किया है दूसरे गुट को हम वर्धन-मंडल कह सकते हैं। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बयान में हम देखते हैं कि जिसे हम प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का समाचार कान्यकुब्ज और मालव में पहुँचा उसी दिन मालवेन्द्र ने कान्यकुब्ज पर बड़े जोर का आक्रमण कर दिया और कान्यकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा को मौत के घाट उतार कर राज्यश्री को बंदी बना दिया। पहले कदम पर सफलता प्राप्त करके 'शशांक मण्डल' वर्धन मण्डल के विरुद्ध दूसरे कदम की तय्यारी करने लगा। और वह कदम था थानेसर पर आक्रमण। यह भी मालवेन्द्र की कान्यकुब्जेश्वर ग्रहवर्मा के साथ ऐतिहासिक शत्रुता की बात।

अब रही राज्य और हर्ष के विश्वस्त सहचरों रूप में मालव-कुमारों—मालवगुप्त और कुमारगुप्त—की बात। बाण की तरह इतिहासकार भी इस पर मौन हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में हमारा यह विचार है कि ये दोनों गुप्त-भाई बचपन में ही थानेसर के राज-परिवार में आ गए थे। बचपन से ही साहचर्य होने के कारण उनका राज्य वर्धन और हर्ष के साथ सच्चा घनिष्ट प्रेम हो गया था अतः वे उनके प्रति शत्रुता का भाव सदा के लिए छोड़ बैठे थे। अथवा यह भी हो सकता है कि गद्दी स्थित भाई के प्रति स्वाभाविक ईर्ष्या के कारण इन गुप्त कुमारों ने वर्धन-वंश के उदीयमान भविष्य में अपना भावी राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति में आस्था रखकर वर्धन-कुमारों के विश्वास में रहना ही ठीक समझा हो। इन दोनों में कुमारगुप्त का उल्लेख तो हर्षचरित में आगे नहीं आता किन्तु माधवगुप्त का साथ हर्ष को बराबर मिलता रहा। राज्यश्री के अन्वेषण में अन्य सामन्तों के अतिरिक्त माधवगुप्त भी हर्ष के साथ रहा—इसका बाण ने भी उल्लेख कर रखा है। जैसे हम आगे बताएंगे, बाद को राज्यवर्धन द्वारा देवगुप्त के युद्ध में मार दिए जाने के बाद हर्ष ने—जब उनके साम्राज्य का काफी विस्तार हो गया था—गुप्त-राज्य की सीमा मगध तक बढ़ाकर माधव गुप्त को उस पर अपने महासामन्त के रूप में अभिषिक्त कर दिया था जिसका उल्लेख बाण ने —'अत्र देवेन अभिषिक्तः कुमारः' इन शब्दों में कर रखा है और जो अभिलेखों से भी पुष्ट होता है।

प्रकृत में मालवेन्द्र की कान्यकुब्ज पर अधिकार की चर्चा चल रही है। इस बीच राज्यवर्धन के हूणों को परास्त करके विजय पताका साथ लिये थानेसर वापस पहुँचते ही उन्हें ग्रहवर्मा की हत्या की सूचना मिली, तो आग-बबूले हो बैठे। क्रोधावेश में सोचने लगे—'मालवों द्वारा पुष्पभूति-वंश का ऐसा अपमान ? यह तो मृगों द्वारा बब्बर शेर के बाल खींचना अथवा मेढकों द्वारा कोब्रा सांप को हाथ से पकड़ना हुआ। भंडि और कुछ सैनिक साथ लिये और मालव जा पहुँचे। देवगुप्त का सफाया करने में उन्हें कुछ भी देर न लगी। किन्तु यह विजय राज्यवर्धन को बड़ी मँहगी पड़ी। उन्हें मूल्य में अपने प्राण देने पड़े। गौड़ेन्द्र अपने मित्र मालवेन्द्र की यह दुर्गति कैसे देख सकता। उसने किसी तरह राज्यवर्धन का विश्वास प्राप्त कर उन्हें बड़े शिष्टाचार के साथ अपने घर निमंत्रित किया और निहत्थे घर में आये हुए मान्य अतिथि को बध कर डाला। गौड़ेन्द्र ने किस निमित्त उन्हें बुलाया ओर इस गौड़ेन्द्र का क्या नाम था—इस पर भी बाण मौन हैं। एक टीकाकार के अनुसार गौड़ेन्द्र ने राज्यवर्धन से सन्धि प्रस्ताव रखा और नयी मित्रता के चिह्न स्वरूप अपनी कन्या देने के प्रलोभन में घर में इन्हें आमंत्रित किया। गौड़ेन्द्र का नाम बताना बाण ने सम्भवतः इसलिए उचित न समझा हो कि हमारे शास्त्र में अतिकृपण—नीच का नाम लेना निषिद्ध है।[1] किन्तु एक टीकाकार ने उसका नाम शशांक लिख रखा है और इसकी पुष्टि ह्वेनसांग ने भी की है। यह वही दुष्ट शशांक है जिसे चीनी यात्री ने बौद्धमत का दुश्मन बताया है। इसी ने बोधि-वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया था और बुद्ध-मूर्ति के स्थान में शिव-मूर्ति स्थापित कर दी थी। बाण ने चन्द्रमण्डल के स्थान में शशांकमण्डल शब्द लिखकर व्यङ्ग्य द्वारा ही गौड़ेन्द्र का नाम अभिव्यक्त किया है। हम पीछे 'शशांकमण्डल' और 'वर्धन-मण्डल' का उल्लेख कर चुके हैं। शशांक द्वारा राज्यवर्धन की गुप्त हत्या के सम्बन्ध में इतिहासकार ए० के० मित्रा की एक नयी खोज है। 'गौड़राजमाला' ग्रन्थ के आधार पर उनका कहना है कि शशांक ने राज्यवर्धन को घर में बुलाकर नहीं मारा किन्तु युद्ध-स्थल में मारा है। राज्यवर्धन मालवेन्द्र देवगुप्त को सहज ही परास्त करके, लूट का माल घर ले जाने के लिए भाई को सौंप स्वयं थोड़ी सी ही सेना साथ लिए कन्नौज की ओर बढ़े तो वहाँ मालवेन्द्र के मित्र शशांक की प्रबल विशाल सेना—जिसे वह अपने मित्र की सहायता हेतु बंगाल से लाये हुए था—राज्यवर्धन पर टूट पड़ी जिसके आगे उन्हें घुटने टेकने पड़े, किन्तु दुर्जीव शशांक शत्रु की जिन्दगी क्यों बख्शता। किन्तु मित्रा की यह नयी खोज बाण के हर्षचरित और ह्वेन-साँग के विवरण से मेल नहीं खाती।

धोखे से किये भाई के वध से हर्ष एकदम आपे से बाहर हो बैठे। बाण के शब्दों में—'जनमेजय की तरह वे सभी भोगियों (सर्पों, राजों) को फूँक डालने के लिए तय्यार हो उठे; भीमसेन की तरह शत्रु के खून के प्यासे बन गए। यह ६०६ ई० की बात है जब वे राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। बड़ी भारी तय्यारी के बाद गौड़ेन्द्र के विध्वंस के साथ-साथ विश्व-विजय हेतु चल पड़े। मार्ग में आते हुए भंडि को देखकर गौड़ेन्द्र-विध्वंस का भार उस पर छोड़ स्वयं भगिनी के अन्वेषण में चले गए और उसे प्राप्त भी कर गए। यहीं बाण की लेखनी विश्राम कर बैठी।

गौड़ेन्द्र का विध्वंस हुआ या नहीं—इसका पता इतिहास और अभिलेख ही देंगे। हम देखते हैं कि मार्ग में कामरूप (आसाम) का नरेश भास्कर वर्मा उपनाम 'कुमार' हर्ष के साथ में भी बन्धन में बँध चुका था। इससे गौड़ देश को खतरा हो गया। इधर से हर्ष की विशाल सेना की सूचना गौड़ेन्द्र को मिली तो वह घबरा गया। कान्यकुब्ज छोड़कर, दुम दबा के अपने देश बंगाल भाग जाने के सिवाय कोई चारा ही न रहा। इधर राजा-रहित कान्यकुब्ज देश की प्रजा ने हर्ष को वहाँ का राजा बनने को आमन्त्रित किया किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया और प्रारम्भ में बहिन को ही राज्याधिकारिणी मानकर उसके स्थानापन्न रूप में 'कुमार' अथवा शिलादित्य के नाम से वे राज्य-कार्य चलाते रहे, पर दिग्विजय-प्रयाण उनका जारी रहा। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ६०६ ई० से लेकर ६१२ ई० तक राजों के साथ युद्ध पर युद्ध जीतते हुए अपने साम्राज्य के विस्तार में व्यस्त रहे। ह्वेनसांग के

---

१. आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्य-कलत्रयोः॥

शब्दों में इस बीच न तो उनके हाथियों के ओहदे उतरे न ही सैनिकों ने ही कवच खोले। छः वर्ष के भीतर वे सारे उत्तर भारत और मध्य एशिया का एक छत्र शासक बन गए। बाद को वे दक्षिण की ओर भी बढ़ रहे थे; किन्तु वहाँ चालुक्य-नरेश पुलकेशी (द्वि०) के हाथों पराजित हो गए जिसका संकेत हम पीछे कर आए हैं। हाँ गौड़ेन्द्र शशांक के सम्बन्ध में पता चलता है कि वह हर्ष की पकड़ से बचता ही रहा और गंजाम के अभिलेख के अनुसार ६१२ ई० तक शासन करता रहा। इससे अनुमान होता है कि इसके बाद ही हर्ष ने ६२० और ६२५ ई० के बीच कहीं पूर्वी प्रदेश जीते होंगे। कुछ इतिहासकारों का यह भी विचार है कि अपनी बौद्ध-मनोवृत्ति के कारण हर्ष ने बाद को उसे क्षमा कर दिया था। बाण ने भी हर्ष द्वारा शेष राजाओं को क्षमा कर दिए जाने का इस तरह उल्लेख कर रखा है—'अत्र प्रजापतिना शेषमार्गमण्डलस्योपरि क्षमा कृता'। कुछ इतिहासवेत्ता यह भी कहते हैं कि गौड़ेन्द्र से बदला लेने का भार हर्ष ने भास्करवर्मा, उपनाम कुमार पर छोड़ दिया था। कुमार तो पहले से ही हर्ष का मित्र बनकर 'वर्धन-मण्डल' से मिला हुआ था। और अपना राज्य स्वतः ही हर्ष को समर्पण किये हुए था। अपने दिग्विजय में हर्ष ने उसे ही उसके राज्य में अभिषिक्त कर दिया था। इन इतिहासकारों के मत में बाण का—'अत्र देवेन अभिषिक्तः कुमारः' वाला वाक्य इसी कुमार की ओर संकेत करता है। बाद को यहीं कुमार गौड़ेन्द्र को पराजित करके गौड़ देश को अपने कामरूप में मिलाकर अपने देश सहित हर्ष के विशाल साम्राज्य का अंग बन गया था। जो भी हो हर्ष के यशःशशि पर महाराज-केसरी पुलकेशी के हाथों पराजय और राज्यवर्धन की हत्या करने के बाद भी गौड़ेन्द्र शशांक का बहुत समय तक अपने राज्य में फलता-फूलता रहना—ये दो धब्बे रह ही गए। वैसे हर्ष का एकछत्र शासन समस्त उत्तर भारत—उत्तर में नेपाल और काश्मीर से लेकर नीचे नर्मदा के तीर तक और पूर्व में आसाम-उड़ीसा से लेकर पञ्जाब और मध्य एशिया तक—फैला हुआ था। साम्राज्य स्थापित करने के बाद हर्ष ने अपने शस्त्रों को छुट्टी दे दी और ह्वेनसांग के शब्दों में, 'तीस वर्ष तक सर्वत्र शान्ति के साथ वे शासन करते रहे'। अपने शासन में वे सदा धर्म-परायण रहे। दीनों और निर्धनों के हित में वे रात-दिन अनथक परिश्रम करते रहते थे। बाण के—'एतेन खलु राजन्वती पृथिवी' इस एक वाक्य से ही उनके राज्य की विशेषता अभिव्यक्त हो जाती है। कवि के अनुसार वस्तुतः इनका 'अरयमरं राज्यम्' रहा।

जहाँ तक हर्ष के परिवार का सम्बन्ध है, बाण ने उनका एक ज्येष्ठ भ्राता और छोटी बहिन—ये दो ही बता रखे हैं। उनकी पत्नी, और पुत्र भी थे—इसका स्पष्ट पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। हाँ इतिहासवेत्ता अनुमान लगाते रहते हैं। हर्ष के उत्तराभिमुख दिग्विजय—अभियान में हिमालय को लक्ष्य करके बाण ने लिखा है—अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गायाः गृहीतः करः'=यहाँ महाराजाधिराज (परमेश्वर) हर्ष ने दुर्गम तुषार शैलभू—हिमालय पर्वत की भूमि—से कर लिया अर्थात् उसे अधीन बनाया। श्लेष-गर्भित उक्ति होने से हम जैसे टीकाकार तो इसका दूसरा अर्थ यह लेते हैं कि 'यहाँ महादेव (परमेश्वर) ने तुषारशैलभू—हिमालय की पुत्री—दुर्गा (पार्वती) से विवाह किया'। लेकिन कुछ इतिहासकार इसका दूसरा अर्थ—यहाँ हर्ष ने हिमालय में जन्मी नेपाल अथवा कश्मीर की दुर्गा नामक राजकुमारी से विवाह किया—इस तरह करते हैं जिससे सिद्ध होता है कि हर्ष की पत्नी कोई पर्वतीय थी। बाण ने हर्ष के वर्णन में उनके सम्बन्ध में—'स्तन-कलशैः स्वदारसन्तोषरसमिवाशेषमुद्धरन्तीभिः [विलासिनीभिः] लिख रखा है। यह ध्वनित होता है कि उन्होंने दार-ग्रहण कर रखा था। उनके एक पुत्र और एक पुत्री होने की बात भी कही जाती है। कुछ लोगों ने बाण के—'अत्र देवेन अभिषिक्तः कुमारः' इस वाक्य का अर्थ यह किया है कि 'उन्होंने अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया।' परन्तु हम इससे सहमत नहीं हो सकते। यदि सचमुच ही उनका पुत्र होता और वह अभिषिक्त होता तो हर्ष की मृत्यु के बाद ही उनका सारा साम्राज्य छिन्न-भिन्न क्यों हो जाता ? किसी भी इतिहासकार को उनके पुत्र होने का प्रमाण नहीं मिलता है हाँ, इतिहासकार रमाशंकर त्रिपाठी एवं वी० डी० गंगल के अनुसार हर्ष की एक पुत्री थी। चालुक्य नरेश पुलकेशी (द्वि०) के विरुद्ध अपने दक्षिणाभिमुखी अभियान में हर्ष ने पश्चिम-स्थित वलभी-देश से होकर उस पर आक्रमण की सोची थी। उन्होंने पहले वलभी पर चढ़ाई की और वलभी-नरेश ध्रुवसेन को परास्त कर दिया किन्तु बाद में उसके साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिये। उसे फिर

राजगद्दी पर बिठाकर अपनी लड़की उसे ब्याह दी। यह एक राजनैतिक विवाह था, लेकिन फिर लोह-पुरुष पुलकेशी के आगे हर्ष की कुछ न चली, हार खाकर अपना सा मुँह लिये वापस आना पड़ा।

धर्म के सम्बन्ध में मधुवन और बाँसखेड़ा के ताम्रपत्रों में जहाँ राज्यवर्धन को 'परमसौगत' 'सुगत इव परहितैकरतः' बता रखा है, वहाँ हर्ष को 'परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्त्वानुकम्पी' कहा है। माहेश्वर शिव-भक्त को कहते हैं। बाण के अनुसार 'बड़ी भक्ति से भगवान् नीललोहित (शिव) की अर्चना करके, अग्नि में यज्ञ करके और ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा देकर हर्ष ने अपनी दिग्विजय-यात्रा आरम्भ की थी। उन्हें अपने आज्ञापत्रों पर छाप लगाने के लिए पटवारी ने जो स्वर्ण-मुद्रा भेंट की थी, उस पर वृषभ का चिह्न था। शैव होते हुए भी इनमें किसी तरह की कट्टरता कभी नहीं रही। आदित्य इनका कुल-देवता था। उसे भी मानते थे, और अन्य देवी-देवताओं को भी मानते थे। इसीलिए बाण ने इनके लिए अपने में 'सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तम्' लिखा है। हाँ बाद में ह्वेन-सांग के सम्पर्क में आकर इनका बौद्ध धर्म की ओर रुझान हो गया था; वह भी उसकी महायान-शाखा की ओर जो हिन्दू-धर्म के बहुत नजदीक है, हीनयान की ओर नहीं। कन्नौज में निर्मित विशाल मन्दिर में इन्होंने जहाँ बुद्ध भगवान् की प्रतिमा स्थापित की, वहाँ साथ-साथ सूर्य भगवान् और शिवजी की मूर्तियाँ भी रखीं। ये धार्मिक सहिष्णुता के पक्षपाती रहे। इनके राज्य-काल में कन्नौज सभी धर्मों का केन्द्र-स्थल बना हुआ था। जगह-जगह पुण्य-शालायें खुली रहती थीं जहाँ दीन-दुःखियों और रोगियों को बिना भेद-भाव के धर्मार्थ भोजन और औषधि मिला करती थी। ६४३ में इन्होंने एक विशाल जन-सभा बुलाई और अपना सारा धन दीन ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं में बांट दिया। ह्वेनसांग के शब्दों में—'सम्राट हर्ष प्रत्येक पांचवें वर्ष ऐसी सभा बुलाते थे और अपना सारा कोष गरीबों को बाँट कर खाली कर देते थे।' आयु की चरमावस्था में हर्ष का बौद्ध धर्म से लगाव अधिक हो गया था जिसका कारण ह्वेन सांग के अतिरिक्त उनकी बौद्ध भिक्षुणी बहिन राज्यश्री भी थी। सम्भवतः इन दोनों की प्रेरणा से ही हर्ष ने बलात् कश्मीर से बुद्ध का दांत मंगाया और कन्नौज में एक संघाराम में उसकी स्थापना की। हमें ऐसा लगता है कि हर्ष ने अपना अन्तिम नाटक नागानन्द बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु जैसा लिखा हो। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि हर्ष ने अपने इस नाटक में नायक जीमूतवाहन का आदर्श-चरित्र दिखाकर अप्रत्यक्ष-रूप में अपने ही व्यक्तिगत जीवन को अभिव्यक्ति दी है। यह झूठी बात नहीं है, क्योंकि हर्ष सचमुच थे ही ऐसे आदर्श व्यक्ति।

कुशल शासक और धार्मिक व्यक्ति होने के साथ-साथ हर्ष एक प्रकाण्ड विद्वान्, निपुण कवि और कलाकार भी थे। बाण के शब्दों में—'इनकी प्रज्ञा के आगे शास्त्र, कविता के आगे वाणी और कौशल के आगे कला पर्याप्त विषय नहीं ठहरते थे ['अपि चास्य प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः ··कौशलस्य कला न पर्याप्तो विषयः]। ये सरस्वती के सर्वविद्यासंगीतगृह—जैसे, कलाओं के कन्यान्तःपुर—जैसे [सर्वविद्यासंगीतगृहमिव सरस्वत्याः, कन्यान्तः1रमिव कलानाम्] थे। बाण मिथ्या-प्रशसा की बहक में लिख गए हों—ऐसी बात नहीं है। यह यथार्थ है। हर्ष बड़े-बड़े विद्वानों, कवियों और कलाकारों का बड़ा मान करते थे। वे उनके आश्रयदाता थे। उन्हें खूब धन लुटाते थे, इनकी राज-सभा के कवियों में बाण, मयूर, धावक और मातङ्ग दिवाकर प्रसिद्ध थे। दिवाकर यद्यपि मातङ्ग-नीच जाति का था, तथापि हर्ष उसके गुणों के कारण उसका बराबर आदर करते थे। जैसे राजशेखर ने लिखा है :—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाण-मयूरयोः॥

एक अभिलेख के अनुसार एक बार हर्ष जयसेन नामक महाविद्वान् को सारे उड़ीसा-प्रान्त का राजस्व दान में दे रहे थे, किन्तु उसने लिया ही नहीं।

संस्कृत के नाट्य-साहित्य के इतिहास में हर्ष एक सुनिपुण नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। हम पीछे संकेत कर आए हैं कि उन्होंने प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द, ये तीन नाटक लिखे हैं। ये नाटक बाण अथवा धावक के लिखे हुए हैं—किन्हीं लोगों के इस मत का खण्डन हम पीछे कर आए हैं। पहले के दो नाटकों में वत्सराज उदयन और

वासवदत्ता की प्रणय-कहानी है, तीसरे में बोधिसत्त्व जीमूतवाहन का परोपकार हेतु आत्म-बलिदान का चित्रण। यह नाटक बड़ा लोक-प्रिय बना हुआ है। कला की दृष्टि से यद्यपि हम हर्ष को कालिदास आदि उच्च कलाकारों की कोटि में तो नहीं रख सकते तथापि द्वितीयश्रेणी के नाटककारों में हर्ष अवश्य बहुत ऊँचे गिने जा सकते हैं। क्या वस्तु-रचना और क्या भाषा-शैली—दोनों में ये कालिदास से प्रभावित हैं। ये भी कालिदास की तरह वैदर्भी शैली के कलाकार हैं। संस्कृत साहित्यकारों ने इनकी कला की बड़ी प्रशंसा कर रखी है। जयदेव कवि ने इन्हें कविता-कामिनी का, 'हर्ष' [हर्षो हर्षः] कहा है तो सोड्ढल इन्हें 'सरस्वती का हर्ष' (गीर्हर्षः) मानता है।

उक्त तीन नाटकों के अतिरिक्त हर्ष ने दो-तीन छोटे-छोटे स्तोत्र भी लिखे हैं। बुद्ध भगवान् की स्तुति मे उनका चौबीस श्लोकों का 'सुप्रभातस्तोत्र' प्रसिद्ध ही है जिसका आरम्भ इस तरह है :—

ॐ० नमो बुद्धाय।
स्तुतमपि सुरसङ्घैः सिद्ध-गन्धर्व-यक्षै-
र्दिवि भुवि सुविचित्रैः स्तोत्रवाग्भिर्यतीशैः।
अहमपि कृतशक्तिर्नौमि सम्बुद्धमार्यं
नभसि गरुड़-याते किन्न यान्ति द्विरेफाः॥

स्तोत्र का बीसवाँ श्लोक भी देखिए :—

पुनः प्रभातं पुनरुत्थितो रविः
पुनः शशाङ्कः पुनरेव शर्वरी।
मृत्युर्जरा जन्म तथैव हे मुने
गतागतिं मूढजनो न बुध्यति॥

ह्वेनसांग के अनुसार चीनी भाषा में सुरक्षित 'शिलादित्यकृति' नाम से प्रसिद्ध हर्ष का एक 'अष्टमहाश्रीचैत्यसंस्कृत-स्तोत्रम्' नामक दूसरा स्तोत्र भी है, जिसमें बौद्धों के आठ महाचैत्यों की स्तुति की गई है। इसके अतिरिक्त मधुवन के ताम्रपट्ट के साथ-साथ बाँसखेड़ा ताम्रपट्ट की जो प्रतिलिपि हम पीछे दे आए हैं, उसमें हर्ष के स्वहस्ताक्षर हैं जिससे मालूम होता है कि वह स्वयं हर्ष की अपनी रचना है। 'सुभाषितावली' में हर्ष के नाम से यह श्लोक आया हुआ है—

अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम्।
यदि नाश्रयति नरं श्रीः श्रीरेव हि वञ्चिता तत्र॥

सन् ६४८ ई० में ५८ वर्ष की आयु में हमारे चरित्र-नायक के—इस युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर और दानवीर के, समस्त उत्तर भारत और मध्य एशिया के एकछत्र कुशल शासक के, सातवीं शताब्दी के अशोक और अकबर के, एक महाविद्वान्, कवि और कलाकार के देहावसान में देश एक ऐसे महापुरुष को खो बैठा, जिसकी पूर्ति आज तक न हो सकी और न कभी हो सकेगी। सम्राट् हर्षवर्धन गए, उनके साथ ही उनका विशाल साम्राज्य भी गया और अन्य सब कुछ गया लेकिन भारतीयों के शत-शत रसनाओं में मुखरित हो रही उनकी विमल-यशोगाथा कभी नहीं जाएगी जिसे अमर बनाने में महाकवि बाणभट्ट का बड़ा हाथ रहा है। रुय्यक ने उचित ही कहा है :—

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्प-प्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम्॥

बाण और हर्ष-कालीन भारत : कोई भी कलाकार अथवा कवि जब कोई रचना करता है—चाहे वह काव्य हो, चित्र हो अथवा स्थापत्य हो—तो उसका अपने सम-सामयिक समाज से प्रभावित होना स्वभाविक ही है।

वह अपने अपने प्रभावों—समसामयिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं कलात्मक प्रवृत्तियों और गति-विधियों को अपनी कृति में यत्र-तत्र अवश्य बिखेरे रहता है। यदि हम उन्हें एक सूत्र में पिरोने का यत्न करें, तो समसामयिक समाज के विषय में हमें पर्याप्त जानकारी मिल सकती है। बाण के हर्षचरित और कादम्बरी से तथा हर्ष के नाटकों से हमें सातवीं शताब्दी के समाज के सम्बन्ध में—उस समय के लोगों के सामाजिक गठन, धार्मिक विचारों, आजीविका वृत्तियों, रहने-सहने के ढंगों, पहनने के वस्त्राभरण तथा रीति-रिवाजों आदि के विषय में—पूरा परिचय मिल जाता है।

बाण और हर्ष के काल में समाज का गठन वर्ण और आश्रम व्यवस्था के रूप में मिलता है। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों—जातियों—में विभक्त था। जीवन के चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास - का विधिवत् पालन होता रहता था। हर्ष ने अपने 'नागानन्द' में जीमूतवाहन के माता-पिता को जंगल में वानप्रस्थी जीवन बिताते हुए चित्रित कर रखा है। प्रव्रज्या (संन्यास) और पाराशरियों (संन्यासियों,) का बाण ने स्थान-स्थान में उल्लेख किया है ब्राह्मणों का काम साधारणतः अध्ययनाध्यापन यज्ञानुष्ठान और पौरोहित्य रहता था। शुकनाम की तरह वे कहीं-कहीं मन्त्री भी बने रहते थे। विभिन्न वर्णों में छुआछूत की प्रथा नहीं थी खान-पान और विवाह अपनी-अपनी जातियों में होने पर भी सभी वर्ण परस्पर मिलते-जुलते रहते थे। बाण एक उच्च ब्राह्मण परिवार के थे परन्तु उनके 'पारशव' (शूद्रा माता से उत्पन्न) भाई उनसे मिले-जुले रहते थे। स्वयं बाण की भ्रमण-मण्डली में नर-नारी सभी वर्णों के थे। हर्ष की राजसभा में मातङ्ग (चण्डाल) दिवाकर को भी वैसा ही आदर प्राप्त होता था जैसे सवर्ण कवियों को। हर्ष के जन्मोत्सव पर ऊँच-नीच का भेद-भाव भुलाए, क्या राजे और क्या रानियाँ, क्या दास और क्या दासियाँ, क्या वेश्यायें और क्या कुट्टनियाँ—अभिप्राय यह कि सारी प्रजा हर्षोन्माद में स्वछन्द हो जिस-किसी को गले लगाए किस तरह नाच और गा रही थी—यह देखते ही बनता है।

उस समय देश में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध था। नगर के बाहर आश्रम, गुरुकुल अथवा विद्यामन्दिर हुआ करते थे जिनमें सभी विषयों के पढ़ाने की पूरी व्यवस्था रहती थी। दिवाकर मित्र के आश्रम में पढ़ाये जाने वाले विषयों की बाण ने विस्तृत सूची दे रखी है। 'कादम्बरी' के नायक चन्द्रापीड ने विद्यामंदिर में ही शिक्षा पाई थी। लड़कियों को भी पर्याप्त शिक्षा मिला करती थी, लेकिन उनका शिक्षा-विषय अधिकतर साहित्य न होकर कला-सम्बन्धी और गृह-सम्बन्धी हुआ करता था। नृत्य एवं संगीत कला का विशेष प्रचार था। बाण के अनुसार राज्यश्री को नृत्य और संगीत की शिक्षा अच्छी तरह दी गई थी। हर्ष की 'प्रियदर्शिका' की नायिका भी इन कलाओं में निपुण थी। चित्रकला का भी प्रचुर प्रचार था। हर्ष की 'रत्नावली' की नायिका ने चित्र-फलक पर स्वयं ही अपने प्रियतम का चित्र बना लिया था 'नागानन्द' के नायक जीमूतवाहन ने भी अपनी प्रियतमा का चित्र खींचा था। नाटयकला भी उस समय लोकप्रिय थी। नगर में नाटक देखने हेतु 'प्रेक्षागृह' बने रहते थे।

शिल्प और उद्योग-धन्धे भी पूरे विकसित थे। बाण की चित्र-मंडली में पुरस्कृत (मूर्तियाँ बनाने वाला) कलार (स्वर्णकार) हैरिक (हीरा काटने वाला) ऐन्द्रजालिक, 'धातुवादविद (रसायन विद्या-वेत्ता) सैरन्ध्री (प्रसाधिका) आदि विविध शिल्पी सम्मिलित थे। राज्यश्री के विवाह पर महाराज प्रभाकरवर्धन ने बड़े-बड़े शिल्पी इकट्ठे कर रखे थे। वस्त्र-उद्योग बड़ी उन्नतावस्था में था। कौशेय, पट्ट, चीनांशुक, क्षौम आदि बारीक वस्त्र बड़ी निपुणता से तय्यार किये जाते थे। बाण ने कुछ बहुत ही बारीक साँप की केंचुली जैसे वस्त्रों का भी उल्लेख किया है जिन्हें 'लालातन्तुज' और 'नेत्र' कहते हैं और जो बदन पर देखने में तो नहीं आते थे, किन्तु छू कर ही जाने जा सकते थे। पहनने के लिए दो वस्त्रों का उल्लेख आया है–एक उत्तरीय और दूसरा अधोवस्त्र। अधोवस्त्र के लिए बाण ने 'चण्डातक' का विशेष उल्लेख किया है। दिग्विजय-यात्रा पर हर्ष 'हंसमिथुनचिह्नित' दो रेशमी वस्त्र पहने हुए थे (परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणी दुकूले)। पगड़ी (शिरोवेष्टन) का भी रिवाज था। वस्त्र श्वेत रंग के होते थे, किन्तु स्त्रियों के कपड़े रंगे होते थे। लोगों को अभिभूषणों का बड़ा शौक था। स्त्री और पुरुष दोनों आभूषण धारण करते थे। स्त्रियों के आभूषणों में मुख्यतः तिलक, अङ्गुलीयक, कटक, नूपुर, मेखला, त्रिकण्टक (कर्णाभरण), एकावली और हार

आते हैं। पुष्पाभरणों का भी प्रचलन था जिनमें मुंडमाला और शेखर मुख्य हैं। जहाँ तक स्थापत्य का प्रश्न है, वह गुप्तकालीन कला पर ही आधारित रहा अर्थात् वैसा-जैसा ही नगर-निर्माण, भवन-निर्माण और मूर्ति-निर्माण।

वैसे तो समाज में स्त्रियों का आदर हुआ करता था, फिर भी पुरुषों की अपेक्षा उनकी स्थिति कुछ हीन ही गिनी जाती थी। लड़की उत्पन्न होने में आजकल की तरह माता-पिता विशेष प्रसन्न नहीं होते थे। बाण के अनुसार प्रभाकरवर्धन का यह कहना कि अपत्यत्व समान होते हुए भी लोग कन्या-जन्म पर दुःखी होते हैं, कन्याओं पर आँसू बहाते हैं [अपत्यत्वे समानेऽपि जातायां दुहितरि दूयन्ते सन्तः। एतदर्थं जन्मकाल एव कन्यकाभ्यः प्रयच्छन्ति सलिल-मश्रुभिः साधवः] कन्याओं की स्थिति स्पष्ट कर देता है। यही कारण था कि राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के जन्म पर बड़ा भारी उत्सव मनाया गया था, किन्तु राज्यश्री के जन्म पर कुछ नहीं हुआ। कन्या के यौवनारम्भ में वह मां-बाप की चिन्ता का कारण बन जाती है [यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनीभवन्ति पितरः सन्तापानलस्य]। राज्यश्री के विवाह के सम्बन्ध में प्रभाकरवर्धन जब यशोमती से सलाह ले रहे थे तो रानी का यह कहना कि धाई की तरह कन्याओं का पालन-पोषण करना माताओं का काम होता है; उन्हें विवाह में किसे देना है—यह पिता का ही दायित्व है ['संवर्धनमात्रोपयोगिन्यो धात्रीनिर्विशेषा भवन्ति खलु मातरः। दाने तु प्रमाणमासां पितरः] स्त्रियों की स्थिति पर और प्रकाश डाल देता है। किन्तु पति और पुत्र स्त्रियों को बड़ी आदर-दृष्टि से देखते थे और घरेलू मामलों में उनकी पूरी सलाह ले लिया करते थे। यशोमती की स्वीकृति मिलने पर ही प्रभाकरवर्धन ने राज्यश्री का विवाह मौखरि-नरेश से किया। विवाह-काल के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक का कहना है कि उस समय बाल-विवाह हुआ करते थे। विवाह समय में राज्यश्री बाला ही थी और भी उसे दिवाकरमित्र के समक्ष बाल-शब्द से ही पुकारते रहे। किन्तु हम इस बात से सहमत नहीं हैं। बाला शब्द संस्कृत में व्यापक अर्थ रखता है। बाला तरुणी को भी कहा जाता है। कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से शकुन्तला को बाला ही कहा है ['जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्] किन्तु शकुन्तला तरुणी थी। प्रभाकरवर्धन ने रानी से राज्यश्री के विवाह का प्रसंग छेड़ने से पहले यह कहा—'रानी! बच्ची राज्यश्री तरुणी हो गई है [देवि, तरुणीभूता वत्सा राज्यश्रीः]। बाण की सरस्वती महाश्वेता और कादम्बरी एवं हर्ष की प्रियदर्शिका रत्नावली और मलयवती विवाह-समय में तरुणी ही थीं जिन्होंने सोच-समझकर स्वयं अपने लिए वर चुने थे। इसलिए हमारे विचारानुसार उस समय लड़कियों का विवाह युवा होने पर ही हुआ करता था, बाल-विवाह नहीं होते थे। हाँ बहु-विवाह प्रथा अवश्य थी। घूँघट का रिवाज कम ही था। लड़कियाँ खुली घूमा करती थीं जिन्हें देखना कोई बुरा नहीं माना जाता था। हर्ष ने अपने नागानन्द में लिख ही रखा है—'निर्दोष-दर्शना खलु कन्यकाः'। राज्यश्री विन्ध्याटवी में खुली घूमा करती थी और भाई के साथ बैठकर दिवाकरमित्र से उपदेश सुना करती थी। राज्यश्री के विवाहोत्सव पर सामन्तों की सभी रानियाँ खुले आ-जा रही थीं। स्त्रियाँ कभी-कभी सती हो जाया करती थीं। प्रभाकरवर्धन के जीवन से निराश हुई रानी यशोमती उनकी मृत्यु से पहले ही आत्म-दाह कर बैठी थी। लेकिन कुछ स्त्रियाँ विधवा ही रहा करती थीं। विधवा-विवाह संचालित नहीं था। विधवा धार्मिक जीवन व्यतीत करती थीं जो कष्टमय हुआ करता था। विधवा होकर राज्यश्री बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी। समाज में सती-प्रथा का विरोध उठ खड़ा हो गया था। महाश्वेता और कादम्बरी के 'अनुमरण' (सती होने) के प्रयत्न को बाण ने आत्महत्या, मूर्खता और महापाप बताकर इसके विरुद्ध प्रबल तर्क दे रखा है।

धार्मिक क्षेत्र में उस समय श्रौत-स्मार्त ब्राह्मण-धर्म और जैन धर्मों का प्रचलन था। हर्ष के सभी पूर्वज श्रौतस्मार्त धर्म के अनुयायी थे। वे शिव आदित्य आदि पौराणिक देवी-देवताओं को मानते थे। देश में षोडश संस्कारों का पूरा-पूरा पालन हुआ करता था। यज्ञ होते रहते थे और मन्दिरों में देव-पूजन चलता रहता था। उपनयन-संस्कार के बाद बालकों को अध्ययनार्थ गुरु-कुलों अथवा आश्रमों में भेज दिया जाता था। समावर्तन के बाद श्रौत-स्मार्त विधि से धूमधाम के साथ विवाह किये जाते थे। लोगों का पूर्व-जन्म और लोकान्तर में पूरा विश्वास था। इस तरह मुख्य धर्म तो श्रौत-स्मार्त ही था, किन्तु साथ-साथ बौद्ध और जैन धर्म भी चलते थे। देश में पूरी धार्मिक सहिष्णुता थी, कट्टरता का कहीं नाम नहीं था। धर्म-परिवर्तन की पूरी स्वतन्त्रता थी। दिवाकरमित्र ब्राह्मण था, किन्तु बाद में उसके

बौद्ध-धर्म अपनाने पर किसी को आपत्ति नहीं हुई। उसके आश्रम में अध्ययन हेतु आए हुए जहाँ आर्हत, बौद्ध, केशलुञ्चक श्वेताम्बर आदि वैदिकेतर धर्मावलम्बी थे, वहाँ औपनिषद, पौराणिक, धर्मशास्त्री, याज्ञिक, शैव, कापिल, काणाद आदि वैदिक धर्मावलम्बी भी थे। यही बात नालन्दा विश्वविद्यालय में भी थी। हर्ष भी बाद को बौद्ध धर्म से प्रभावित हो गए थे, किन्तु हिन्दू-धर्म के प्रति भी उनकी पूरी निष्ठा रही। उनकी 'पुण्यशालायें' सभी धर्मावलम्बियों के लिए खुली रहती थीं। हम पीछे देख आए हैं कि हर्ष की पञ्चवर्षीय सभाओं में सभी धर्मों के अनुयायी सम्मिलित होते थे और बिना भेद-भाव के सभी को दान-दक्षिणा दी जाती थी। हाँ दिगम्बर जैनी (नग्न-क्षपणक) उस समय अच्छी निगाह से नहीं देखे जाते थे। उनका दिखाई देना अपशकुन में गिना जाता था ['अभिमुखमाजगाम शिखिपिच्छलाञ्छनो नग्नाटकः—हर्षच०]। कहीं-कहीं यह भी देखने में आया है कि बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ धर्म के नाम पर प्रेम-व्यापारों में बिचौली का काम भी कर लिया करते थे। धर्म के नाम से कभी-कभी ठगी भी की जाती देखी गई है। बाण ने कादम्बरी में बताया है कि किस तरह तापसों ने एक द्रविड़ ब्राह्मण को धन और पत्नी दिलाने का झूठा प्रलोभन देकर ठग लिया था। निम्न जातियों में चण्डिका के आगे बलि देने की प्रथा थी। जगह-जगह अन्नक्षेत्र धर्मशाला और प्रपा (प्याऊ) खुले रहते थे। न्यायाधिकरणों में बहुत कम मुकदमें आया करते थे। जो आते भी थे, वे धर्म-विरुद्ध चरण और चोरी डकैती के हुआ करते थे।

राजनैतिक क्षेत्र में उस समय राज्यवाद और साम्राज्यवाद चलता था। देश छोटे-छोटे अनेक राज्यों में बँटा हुआ था। स्वयं हर्ष का स्थाण्वीश्वर एक छोटा-सा राज्य था। राजाओं के बीच परस्पर रागद्वेष का चक्र चलता रहता था। वे राजनैतिक स्वार्थों के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचते और लड़ते रहते थे जिससे शत्रुता पीढ़ियों तक चलती रहती थी। ग्रहवर्मा और राज्यवर्धन की हत्यायें ऐसी शत्रुता के ही परिणाम स्वरूप थीं। शासन-कार्य में सहायता देने के लिए राजाओं के मंत्री हुआ करते थे जिनमें एक मुख्य मंत्री होता था। राजाओं की तरह मंत्री भी 'अनेक कुल-क्रमागत' हुआ करते थे। सेना में एक प्रधान सेनापति होता था। ह्वेन-सांग के अनुसार उस समय सेना के चार अंग – वाजिसेना, गजसेना, रथसेना और पदातिसेना होते थे। अपनी प्रबल सेना के बल से कोई भी राजा अपने पड़ोसी राज्यों पर जब कभी आक्रमण कर बैठता था। राजों के परस्पर गुट भी बने रहते थे। स्वयं हर्षवर्धन का परिवार इस गुटबंदी का शिकार बना। देश की ऐसी स्थिति से हर्ष को बड़ा दुःख हुआ। उसने देश की ऐसी अव्यवस्था को हमेशा के लिए समाप्त करना चाहा और सभी राज्यों का एक-छत्र शासन के भीतर लाने की योजना बना डाली। एक विशाल सेना का संघटन किया और दिग्विजयार्थ चल पड़े। ह्वेन सांग के अनुसार हर्ष की गजसेना में पाँच हजार हाथी, वाजिसेना में बीस हजार घोड़े और पदातिसेना में पचास हजार सिपाही थे। मार्ग की कठिनाइयों के कारण वह रथसेना को काम में नहीं ला सका। छः वर्ष तक राजाओं से उसने सतत संघर्ष किये और समस्त उत्तर भारत के एक-छत्र शासक बन गए। दक्षिण भारत में पुलकेशी ने उसे बढ़ने से रोक दिया था। इस तरह भारत उस समय दो साम्राज्यों में बँटा हुआ था। उत्तर भारत का सम्राट् हर्षवर्धन और दक्षिण भारत का सम्राट् पुलकेशी था। दुर्भाग्य से हर्ष के निधन के बाद देश फिर पहले की तरह छिन्न-भिन्न हो गया और अनेक राज्यों में बँट गया।

मोहनदेव पंत

दिल्ली

जन्माष्टमी १९७२

हर्षचरितम्

प्रथम उच्छ्वासः ।

नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥१॥[1]

छात्र-तोषिणी

नत्वा सारस्वतं ज्योतिः पाद-पद्मं गुरोस्तथा ।
टीका 'हर्षचरितस्य' क्रियते 'छात्र-तोषिणी' ॥१॥

न शब्दस्त्यज्यते कश्चिद् न च भाव उपेक्ष्यते ।
हस्तामलकितं सर्वं छात्राणां हित-काम्यया ॥२॥

छात्राणां साम्प्रतं बुद्धेर्मान्द्यं दृष्ट्वा तु संस्कृते ।
टिप्पणी-सहितो 'हिन्द्याम्' अनुवादोऽपि दीयते ॥३॥

टीका—निर्विघ्न-ग्रन्थपरिसमाप्तिकामो ग्रन्थकारो मङ्गलमाचरति नम इति । तुङ्गम्=उन्नतं न क्वचिदपि प्रणतमित्यर्थः यत् शिरः=मूर्धा तत् चुम्बति=स्पृशतीति ०चुम्बी यः चन्द्रः=शशी सः एव चामरम्=चमरस्य=एतन्नामक-गोविशेषस्य इदम् इति (चमर+अण्) गोपुच्छनिर्मितं व्यजनमित्यर्थः तेन चारुः=सुन्दरः तस्मै; त्रैलोक्यं=त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकी [समा० द्व०] त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम् [स्वार्थे ष्यञ्] त्रयो लोकाः खलु स्वर्ग-मर्त्य-पातालाः इति, तदेव नगरं=पुरं तस्य आरम्भः=रचनोपक्रमः तस्य मूल-स्तम्भः=मूलभूत-स्थूणाविशेषः खम्वा इति भाषायां प्रसिद्धः तस्मै शम्भवे=शिवाय नमः=नमस्कारः, अत्र 'नमः स्वस्तीत्यादि-सूत्रेण 'नमः' योगे चतुर्थी । रूपकमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ।

टिप्पणी—हम देखते हैं कि जब नगर का निर्माण आरम्भ होता है, तो सब से पहले मूल-स्तम्भ की स्थापना हुआ करती है और उसके अग्रभाग पर चामर अथवा झंडी बाँध दी जाती है । इसी तरह त्रिलोकी-रूपी नगरी के निर्माण में शिव मूलस्तम्भ का और शिव के शिर पर स्थित चन्द्रमा चामर का काम दे रहे हैं अर्थात् सकल विश्व के मूलाधार शिव ही हैं ।

हिन्दी—उन्नत मस्तक पर स्थित चन्द्रमा-रूपी चामर से सुन्दर (दिखाई देने वाले), त्रैलोक्यरूपी नगर के निर्माणारम्भ के मूल-स्तम्भ शिव को नमस्कार ॥१॥

---

१. किसी प्रति में इस श्लोक से पहले प्रारम्भिक श्लोक यह है :—

चतुर्मुखमुखाम्भोज-वनहंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

किसी में यह है :—

इच्छादिशक्तिनिचयप्रसरक्रमेण विश्वावभासनविधौ प्रथितप्रभावा ।
याऽध्यायिनां हृदयकोकनदप्रतिष्ठा रूपं प्रकाशयति नौमि सरस्वतीं ताम् ॥

हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्छागमामिव ॥२॥
नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥३॥
प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः ।

टीका—हरेति—अन्वयः—हर...क्षीं कालकूट...गमाम् इव उमां नमामि ।

हरस्य=शिवस्य निजपतेरित्यर्थः यः कण्ठस्य=गलस्य ग्रहः=ग्रहणम् आलिङ्गनमिति यावत्, तस्मिन् यः आनन्दः =आह्लादः तेन निमीलिते=निमिषिते अक्षिणी=नयने यस्याः तथाभूताम्, कालकूटस्य=एतन्नामक-विषविशेषस्य शिवकण्ठस्थितस्येत्यर्थः यः स्पर्शः=सम्पर्कः तेन जातः=समुत्पन्नः मूर्छायाः=मोहस्य आगमः=प्राप्तिः यस्याः ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उमां=गौरीं नमामि=वन्दे । अत्रालिङ्गनानन्द-जनित-नेत्रनिमीलने विषसम्पर्क-जनितमूर्छाकृतनेत्रनिमीलनस्योत्प्रेक्षणात् उत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥

टिप्पणी—काल-कूट—कालस्य=मृत्योः कूटः=राशिः इति कालकूटः समुद्रमन्थन से सब से पहले कालकूट विष निकला था। इससे सारे जगत् का नाश न हो जाय—इसलिए इसे शिव ने पी लिया । उनका गला जल गया और वह काला हो पड़ा, इसीलिए उन्हें नीलकण्ठ कहते हैं। कवि-कल्पना देखिए—उमा का नेत्र-निमीलन आलिंगनानन्द-जनित था जबकि कवि कहता है मानो विषमूर्छाजनित हो ।

हिन्दी—मैं पार्वती को प्रणाम करता हूँ, जो शिव को गले लगाने से (हुए) आनन्द में आँखें मूँदे हुए ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो (गले का) कालकूट विष छू जाने से उन्हें मूर्छा आ गई हो ॥२॥

नमः इति—अन्वयः—सर्वविदे कविवेधसे तस्मै व्यासाय नमः यः सरस्वत्या भारतं वर्षम् इव सरस्वत्या भारतं पुण्यं चक्रे ।

सर्व=सकलं वेदादिशास्त्रं जगद्-वस्तुजातञ्च वेत्ति=जानातीति विद् [√विद्+क्विप् कर्तरि] तस्मै सर्वज्ञायेत्यर्थः कविः वेधाः इव अथवा कवीनां=काव्यकाराणां वेधाः=ब्रह्मा अथवा स्वयं कविरूपो वेधाः तस्मै व्यासाय=एतन्नाम्ने पराशरपुत्राय नमः, यः=व्यासः, सरस्वत्या=एतन्नामक-नद्या भारतं वर्षं=भारतदेशम् इव सरस्वत्या=वाचा भारतम्=एतन्नामक-महाकाव्यं पुण्यं=पवित्रं चक्रे=कृतवान् । यथा खलु विधाता सरस्वती-नद्या भारतं वर्षं पवित्रीकृतवान्, एवमेव कवि-विधातृ-रूपो व्यासोऽपि सरस्वत्या वाचा इति यावत् भारतं महाकाव्य पवित्रीकृतवान् । अत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः ।

टिप्पणी—कवि-वेधसे—व्यास कवियों का विधाता है। उनसे ही प्रेरणा पाकर परवर्ती कवि कवि बन सके हैं। व्यास स्वयं लिखते हैं—'इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कवि-बुद्धयः' [आदि प० २।३८५] एवं—'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते [वही २।३८८] अथवा व्यास स्वयं वेधा होता है। ध्वन्यालोककार ने कह रखा है—'अपारे काव्य-संसारे कविरेव प्रजापतिः । यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।' जगद्-विधाता ने यदि सरस्वती-नदी द्वारा भारत [वर्ष] को पवित्र किया, तो व्यास-रूपी कविविधाता ने भी सरस्वती [वाणी] द्वारा भारत [महाकाव्य] को पवित्र किया] ।

हिन्दी—उस सर्वज्ञ कवि-रूपी विधाता व्यास को (मेरा) प्रणाम है, जिसने सरस्वती (वाणी) द्वारा भारत (महाकाव्य) को उसी तरह पवित्र किया जैसे कि (विधाता ने) सरस्वती (नदी) द्वारा भारतवर्ष को ॥३॥

टीका—प्रायः इति—अन्वयः—रागाधिष्ठितदृष्टयः कुकवयः लोके प्रायः रागाधिष्ठितदृष्टयः कोकिलाः इव वाचालाः कामचारिणः [च] जायन्ते ।

रागेण=द्वेष-पूर्वकानर्थाभिनिवेशेन, दुर्भावनयेति यावत् अधिष्ठिता=आक्रान्ता दृष्टिः=दर्शनं, ज्ञानं, बुद्धिरिति यावत् येषां तथाभूताः, दृष्टिरित्यत्र भावे क्तिन् ज्ञेयः, कुकवयः=कुत्सिताः कवयः कुत्सित-शब्दस्य 'कु' आदेशः, निम्नकोटिकाः कवयः कुकाव्य-रचयितारः इति यावत् लोके=संसारे प्रायः=बाहुल्येन रागेण=लौहित्येन अधिष्ठिता दृष्टिः=दृश्यतेऽनया इति दृष्टिः अत्र करणे क्तिन्, चक्षुः येषां कोकिलाः=पिकाः इव वाचालाः बहु कुत्सितं भाषन्ते इति (√वाच्+आलच्)=असम्बद्ध-प्रलापिनः साहित्य-मर्यादामुल्लङ्घ्य केवलं श्रुतिमधुरं समाजाहितकारिणीं कवितां रचयन्तः श्रावयन्तश्चेति भावः, पक्षान्तरे वाचालाः=कुहु-कुहु-रवं कुर्वाणाः कामचारिणः=कामेन=इच्छया चरन्तीति-चारिणः यथेच्छं चरन्तः व्यवहरन्तः इति यावत्, पक्षान्तरे कामं=काम-वासनां चारयन्ति-उद्दीपयन्तीति

काकिला इव जायन्ते वाचालाः कामचारिणः[1] ॥४॥
सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे ।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥५॥

तयोक्ताः, कोकिला हि उद्दीपनविभावेषु गण्यन्ते । अत्र कुकवीनां कोकिलैः सह साम्य-प्रदर्शनात् उपमालङ्कारः, स च श्लेषानुप्राणितः । छन्दः पूर्ववत् ॥

टिप्पणी—इसमें बाण ने कुकवियों की भर्त्सना की है और कोयलों से उनकी तुलना की है । दोनों काले हुआ करते हैं, एक शरीर से और दूसरा हृदय से । दोनों की दृष्टि 'रागाविष्ठित' होती है । दोनों वाचाल होते हैं । कुकवि साहित्यिक मर्यादाओं को भंग करके अनाप-शनाप लिखते हैं, जिससे समाज का हित के स्थान में अहित ही होता है ।

हिन्दी—राग [दुरभिनिवेश] से घिरी दृष्टि (बुद्धि) वाले कुकवि संसार में प्रायः राग [लालिमा] से भरी दृष्टि (आंखों) वाले कोकिलों की तरह बड़े बोलने वाले और कामचारी हुआ करते हैं ॥४॥

टीका—सन्तीति—अन्वयः—जातिभाजः [कवयः] श्वानः इव गृहे गृहे असंख्याः सन्ति, [किन्तु] उत्पादकाः कवयः उत्पादका शरभाः इव न बहवः [सन्ति] ।

जाति=सामान्यं श्वत्वमित्यर्थः भजन्ति=आश्रयन्तीति ०भाजः, भाजः (कर्तरि क्विप्) श्वानः=कुक्कुराः इव गृहे गृहे=प्रतिगृहम्, अत्र वीप्सायां द्वित्वम्, असंख्याः=न संख्या=गणना येषां तथाभूताः संख्यातीताः इत्यर्थः कवयः सन्ति=विद्यन्ते; यथा सर्वेऽपि कुक्कुराः कुक्कुरत्व-जात्या समानाः तथैव कवित्व-जात्याऽपि सर्वे कवयः समानाः, कुक्कुरवत् उच्छिष्ट-भोजिनः कवयः बहुसंख्यायां मिलन्तीत्यर्थः, किन्तु उत्पादकाः=उत्पादयन्तीति [उत्+पद्+णिच्+ण्वुल्] सर्जकाः अर्थात् निजकल्पनाशक्त्या अभिनवकाव्यकाराः कवयः उत्=ऊर्ध्वं पादाः=चरणाः येषां ते इत्युत्पादाः उत्पादाः एव उत्पादकाः (स्वार्थे कः) शरभाः=एतन्नामक-पशुविशेषाः इव न बहवः असंख्याः इत्यर्थः न सन्तीति शेषः । अत्र कुकवीनां श्वभिः सत्कवीनाञ्च शरभैः साम्यप्रतिपादनात् उपमालंकारः स च श्लिष्टः । छन्दः पूर्ववत् ।

टिप्पणी—कवि का आशय यह है कि गली-गली में जूठन और मैला खाने वाले कुत्तों की संख्या बड़ी भारी है । इसी तरह इधर-उधर से शब्द और भावादिक चुराकर कविता करने वाले कवि भी कम नहीं हैं । कवित्व-जाति के भीतर वे आ ही जाते हैं । इसी बात को लक्ष्य करके किसी कवि की उक्ति है :—'वयमपि कवयः कवयः कवयोऽपि कालिदासाद्याः । दृषदो दृषदो भवन्ति, चिन्तामणयोऽपि हा ! दृषदः ॥ किन्तु नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा वाले, उर्वर कल्पना-शक्ति द्वारा बिलकुल नया सृजन करने वाले कवियों की संख्या अंगुली-गण्य ही निकलेगी । हमारे विचारानुसार दृषत्त्व-जाति के उत्कृष्ट दृषद् चिन्तामणि की तरह यदि ग्रन्थकार यहाँ श्वत्वजाति के उत्कृष्ट श्वानों—सूंघ कर अपराधियों का पता लगाने वालों हजारों के मूल्य के कुत्तों—का निदर्शन देता, तो संगति ठीक बैठ जाती । इसीलिए किसी टीकाकार ने 'शरभाः'='श्वजातीयाः' अर्थ किया है जो ठीक नहीं है । शरभ श्वजातीय नहीं है ; उससे सर्वथा भिन्न है । वह एक ऐसा पशु है, जो 'उत्पादक' होता है और सिंह को भी पछाड़ देता है । महाभारत में शरभ का उल्लेख इस तरह आया हुआ है 'अष्टपादूर्ध्वनयनः शरभो वनगोचरः ! स सिंहं हन्तुमागच्छन् मुनेस्तस्य निवेशनम् ॥ [वनप० ११६।१६] किन्तु वे दुर्लभ होते हैं । सत्कवियों का भी यही हाल है ।

ग्रन्थकार ने 'जातिभाजः' में जाति शब्द पर भी श्लेष रखा हुआ है । जाति साहित्य का एक पारिभाषिक शब्द है । वस्तु का वैलक्षण्य-शून्य स्वरूपमात्र वर्णन कर देने वाली कवि-शैली को जाति कहते हैं जैसे 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' इत्यादि । इसी का दूसरा नाम स्वभावोक्ति भी है । जाति-शैली के कवि बहुत मिल जाएंगे, किन्तु 'वक्रोक्ति' द्वारा चमत्कारक साहित्य सृजन करने वाले कवि विरले ही हैं ।

हिन्दी—[कवि की] जाति रखने वाले [कवि] (कुत्ते की) जाति रखने वाले कुत्तों की तरह घर-घर में असंख्य हैं, (किन्तु) उत्पादक (सृजन करने वाले) कवि उत्पादक (ऊपर पांव रखने वाले) शरभों की तरह बहुत नहीं होते ॥५॥

---

१. कारिणः ।

अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चोरो विभाव्यते ॥६॥
श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः[1] ॥७॥

टीका—अन्यवर्णेति—अन्वयः सरलः ।

अन्येषाम्=अन्य-कवीनां वर्णानाम्=अक्षराणाम् अक्षर-समुच्चयानां पदानामिति यावत् परावृत्त्या [परा+√वृत् +क्तिन् भावे] परिवर्तनेन, पक्षान्तरे वर्णः मुखस्य गौर-श्यामादिरूपम् तस्य परावृत्त्या=परिवर्तनेन पूर्वश्यामादि-रूपस्य रूपान्तरेण परिवर्तनं कृत्वा अथवा अन्यवर्णे=ब्राह्मणादि-जातौ परिवर्तनेन यज्ञोपवीत-तिलकादिकं धृत्वा आत्मानं ब्राह्मण-वेशे कृत्वा ब्राह्मणब्रुवो भूत्वेति यावत्, बन्धाः=पद-विन्यासाः वैदर्भ्यादिपदरचना-प्रकाराः, चिह्नानि—तत्तत्कवि-वैशिष्ट्यद्योतकाः श्रीलक्ष्म्यादि-शब्दविशेषाः तेषां निगूहनैः=[नि+√गूह्+ल्युट् भावे] तिरोधानैः अर्थात् तत्तत्कवि-विशिष्टचिह्नभूतान् शब्दान् निगूह्य, अन्यत्र बन्धः=हस्तपादादौ शृङ्खला-बन्धनं तस्य चिह्नं=मांसघर्षणादिलिङ्गं तस्य निगूहनैः=गोपनैः प्रच्छादनैरित्यर्थः न आख्यातः=अनाख्यातः (आ+√ख्या+क्त कर्मणि) कथितः (अपि) सतां=सज्जनानां विचारकाणां गुणागुणविवेचकानामित्यर्थः मध्ये चौरः=स्तेनः विभाव्यते =ज्ञायते, परिचीयते । अत्र कवौ चौरत्वारोपात् रूपकं तच्च श्लेषानुप्राणितम् ॥

टिप्पणी—यहाँ ग्रन्थकार चोर कवियों का उल्लेख कर रहा है । तथाकथित कवि दूसरे कवियों के शब्दों और वाक्यों में हेर-फेर करके उनके प्रतिपादन-प्रकार एवं विशिष्ट शब्दों को छिपाकर अपने नाम से कविता या काव्य रच देते हैं । इन साहित्यिक चोरों के सम्बन्ध में बिल्हण कहता है—साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः । यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ॥ साहित्यिक चोरियाँ बहुत हुआ करती हैं, किन्तु समालोचक लोग झट से पता लगा देते हैं कि यह 'स्वोपज्ञ'—मौलिक—नहीं है, चोरी की चीज है । कुकवि की तरह चोर की भी पोल खुल जाती है, भले ही वह अपने चेहरे का रूप-रंग बदल दे अथवा कंठी-माला पहन कर अपने को अन्य वर्ण—ब्राह्मणादि—में बदल दे एवं पहले भी चोरी के अपराध में मिली कैद की सजा भोगने से हाथों व पैरों पर पड़ी बेड़ी के निशानों को छिपा दे । तात्पर्य यह है कि असली कविता असली ही होती है और नकली कविता नकली ही होती है । नकली कवि बहुत हैं, असली कम । यहाँ 'अनाख्यात' का कुछ विद्वान् दूसरा ही अर्थ करते हैं—न+ना ख्यातः, ना मनुष्यवाचक नृ शब्द का रूप है, नञ् समास होने पर न ना इत्यना अर्थात् अपुरुष, कापुरुष सतां मध्ये=विद्वानों के बीच 'ख्यातः'=ज्ञातः अर्थात् वह विद्वन्मण्डली में कवि नहीं गिना जाता, वह मूर्खों का कवि है, बाजारू कवि है ।

हिन्दी—दूसरे [कवियों] के अक्षरों के हेरफेर से और (उनके) रचना-प्रकार एवं (विशेषताबोधक) चिन्हों को छिपा देने से (चोर) न कहा जाता हुआ (भी) कवि विद्वानों के मध्य चोर समझा जाता है । चोर भी (चेहरे का) दूसरा रंग बदलने से, (हाथ-पैर पर पड़े) बेड़ियों के चिह्न छिपाने से (चोर) न कहा जाता हुआ (भी) पहचान ही लिया जाता है ॥६॥

टीका—श्लेषेति—अन्वयः सरलः ।

उदीच्येषु=उदीच्याम्=उत्तरदिशायां भवाः इति (उदीची+यत्) [उदीची=उत्=उत्तरम् अञ्चति सूर्यम् इति [उत्+अञ्च्+क्विन्+ङीप्] उत्तरदेशीयेषु पश्चिमोत्तर-देशीयेष्विति यावत् कविषु श्लेषः=अनेकार्थाभिधानं तस्य प्रायः=प्राधिक्यं यस्मिन् तथाभूतं काव्यनिर्माणं भवतीति शेषः । प्रतीच्येषु=प्रतीच्यां=पश्चिम-दिशायां भवेष्विति (प्रतीची+यत्)] प्रतीची=प्रति=प्रतिदिनान्ते अञ्चति सूर्यमिति प्रति+अञ्च्+क्विन्+ङीप्] पश्चिमदेशीयेषु अर्थः=वाच्य-लक्ष्यादिरूपः तस्य मात्रम् एव मात्रकं=बाहुल्यं यस्मिन् तथाभूतं काव्यम्; दाक्षिणात्येषु=दक्षिणस्यां दिशि भवेषु इति (दक्षिणा+त्यक्) दक्षिणदेशीयेषु कविषु उत्प्रेक्षा=सम्भावना कल्पनेति यावत् भवतीति शेषः, गौडेषु=गौडदेशीयेषु प्राच्येष्वित्यर्थः कविषु अक्षराणां=वर्णानां डम्बरः=आडम्बरः प्रदर्शनमित्यर्थः । अत्र तत्तद्दिग्-वर्तिकवीनां काव्यशैल्यः ग्रन्थकारेण प्रदर्शिताः ।

टिप्पणी—इस श्लोक में कवि ने विभिन्न देशों के कविकर्म की विशेषता बताई है । पश्चिमोत्तर दिशा के कवि

---

1. डम्बरम् ।

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥८॥
किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी ।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्[1] ॥९॥

श्लेष-प्रधान हुआ करते है अर्थात् वे द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं। पश्चिम में केवल अर्थाभिधान ही किया जाता है। अलंकारों द्वारा सौन्दर्य-विधान वे नहीं जानते। दक्षिण के कवि कल्पना-प्रधान होते हैं। विना कल्पना का पुट चढ़ाए वे बात ही नहीं करते। पूर्व में केवल शब्दाडम्बर चलता है। उनकी भाषा में ओज और समासबाहुल्य होता है। इसीलिए इस शैली को गौड़ी रीति कहते हैं। चार ही दिशाओं का कवि-कर्म बताने में ग्रन्थकार का यह भाव मालूम होता है कि अच्छा कवि रूढ़िवादी नहीं होता है। वह साहित्यिक कट्टरपंथी में नहीं पड़ता है। विषय को देख कर शैली अपनाता है। उसका कवि-कर्म सभी शैलियों का समन्वयात्मक रूप होता है। इस समन्वयात्मक शैली को पाञ्चाली रीति कहा करते हैं और बाण ने इसी को अपनाया है। हमारे विचार से पाञ्चाली शब्द की व्युत्पत्ति 'पाञ्चालेषु (देशेषु) भवा' न होकर 'पञ्चभिः चतुर्भिर्वा प्रतिपादन-प्रकारैः संभूय अलति=अलङ्करोति भाषाम्' इति यों होनी चाहिए।

हिन्दी—उत्तर दिशा के कवियों में श्लेष की अधिकता रहती है; पश्चिम के कवियों में केवल अर्थ-प्रतिपादन होता है, दक्षिण के कवियों में उत्प्रेक्षा रहती है और पूर्व के कवियों में शब्दाडम्बर होता है ॥७॥

टीका—नव इति—अन्वयः सरलः।

नवः=नवीनः=न केनापि स्पृष्टपूर्वः इत्यर्थः अर्थः=प्रतिपाद्यवस्तु, अग्राम्या=ग्रामे भवा इति [ग्राम+यत्+टाप्] ग्राम्या=निम्नस्तरीयजन-प्रयुज्यमाना, न ग्राम्या इति अग्राम्या=ग्राम्यत्वदोषरहिता, सुपरिष्कृतेति यावत्, ग्राम्यत्वं साहित्ये महान् दोषः कथितः, जातिः=जातिशब्दोऽत्र पारिभाषिकः अर्थात् यथार्थवस्तुवर्णना [अत्र पञ्चमश्लोक-टिप्पणं दृश्यताम्] वस्तूनां यथातथवर्णनेत्यर्थः, अक्लिष्टः=अदुर्बोधः सर्वजनसुबोधः इत्यर्थः श्लेषः=शब्दानां द्वित्रार्थाभिधानम्, स्फुटः=व्यक्तः विभावादिभिः झटिति सर्वजनसंवेद्यः इत्यर्थः रसः शृङ्गारादिः, विकटाक्षरबन्धः=विकटानाम्=ओजः-पूर्णानाम् अक्षराणां=वर्णानां बन्धः=विन्यासः ओजःपूर्णभाषेति यावत्—एतत् कृत्स्नं=सर्वम् एकत्र=एकस्मिन् काव्ये दुष्करम्=दुःखेन कर्तुं योग्यं दुर्लभं भवतीति शेषः। उपर्युक्ताः सर्वेऽपि गुणाः विरलेष्वेव कविकर्मसु लभ्यन्ते, न सर्वेष्विति भावः।

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार ने उत्कृष्ट कवि अथवा कविकर्म के गुण गिनाये हैं और वे हैं—अर्थ में बिलकुल नयापन, गंवारपन से अछूता अर्थात् शिष्टतापूर्ण यथार्थ वस्तु-वर्णन, सरल-सुबोध श्लेष, तत्काल संवेद्य रस और ओजस्विनी भाषा।

हिन्दी—नया अर्थ, गँवारपन से अछूती यथार्थ वस्तुवर्णना, सरल-सुबोध श्लेषालंकार, आस्वादयोग्य रस और ओज-पूर्ण वाक्यविन्यास—ये सब एक (कवि) में दुर्लभ हैं ॥८॥

टीका—किमिति—अन्वयः—तस्य कवेः काव्येन किम् यस्य सर्व...नी भारती सर्व...नी भारती कथा इव जगत्-त्रयम् न व्याप्नोति।

तस्य कवेः=काव्यकारस्य काव्येन=कवि-कर्मणा किम्=न किमपि प्रयोजनमिति काकुः, यस्य सर्वाणि यानि वृत्तानि=वर्णमात्रात्मकानि छन्दांसि तेषाम् अन्तम्=अवसानं गच्छतीति गामिनी अर्थात् सर्वच्छन्दोमयी भारती=वाणी काव्यरचनेत्यर्थः सर्वे च ते वृत्तान्ताः=ऐतिहासिकवृत्तानि गच्छति=गमयति बोधयतीति [गमिः अन्तर्भावितणिः] भारती=भरतान् अधिकृत्य प्रथिता कथा महाभारत-काव्यमिति यावत् इव जगतां=लोकानां त्रयम् त्रैलोक्यमित्यर्थः न व्याप्नोति=व्याप्तं करोति। अत्र कविरचनाया भारतकथया सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा सा च श्लिष्टा।

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार कविकर्म की लोकप्रियता ही सच्ची कसौटी बनाता है। महाभारत की लोकप्रियता देखिए कितनी बड़ी है—"नारदोऽश्रावयद् देवान् असितो देवलः पितॄन्। गन्धर्व-यक्ष-रक्षांसि श्रावयामास वै शुकः॥

हिन्दी—उस कवि के काव्य से क्या जिसकी सभी वृत्तों [छन्दों] का पार पा जाने वाली वाणी सभी वृत्तान्तों का बोध करा देने वाली महाभारत की वाणी की तरह तीनों लोकों में नहीं छा जाती ? ॥९॥

---

१. प्राप्नोति दिगन्तरम्।

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥१०॥
कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥११॥

टीका—उच्छ्वासेति० अन्वयः सरलः ।

येषां [कवीनाम्] वक्त्रे=मुखे सरस्वती=वाग्देवी वसतीति शेषः, ते उच्छ्वासस्य=आख्यायिका-परिच्छेदस्य अन्ते=अवसाने अपि अखिन्नाः—न खिन्नाः श्रान्ताः अपि तु पुनः पुनर्निर्माणकर्तारः उच्छ्वासान्तरकरणक्षमाः इत्यर्थः आख्यायिकाकाराः=आख्याति चरितमिति [आ+√ख्या+ण्वुल्+टाप्] आख्यायिकाः गद्यकाव्य-विशेषाः ताः कुर्वन्तीति तथोक्ताः ते=प्रसिद्धाः [तच्छब्दोऽत्र प्रसिद्धार्थकः] कविषु=काव्यकारेषु ईश्वराः=श्रेष्ठा इत्यर्थः कथं न वन्द्याः=प्रणम्याः आदरणीयाः इति यावत् अपि तु आदरणीयाः एवेति काकुः ।

टिप्पणी—इस श्लोक में बाण अपने पूर्ववर्ती आख्यायिकाकारों की पुण्य स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता है। आख्यायिका काव्य-भेद के सम्बन्ध में भूमिका देखिए। इस श्लोक की शब्दरचना कुछ ऐसे ढंग से बाण ने कर रखी है कि उसमें बहुत से व्यंग्यार्थ निकलते हैं। उच्छ्वास निश्वास को भी कहते हैं। जब कोई दीर्घ निश्वास लेता है, तो वह श्रान्त हो जाता है, अश्रान्त नहीं रहता। यह विरोधाभास है। इसका परिहार उच्छ्वास का पारिभाषिक अर्थ करने पर हो जाता है। फिर वक्त्र शब्द है, जो एक छन्दविशेष का भी वाचक है। उच्छ्वास के आदि में वक्त्र, अपरवक्त्र, आर्या आदि छन्दों द्वारा भावी अर्थ पर हल्का-सा प्रकाश डाल देने का विधान है। वक्त्र छन्द में ही कवीश्वरों की ऐसी सरस्वती—वाणी—निहित होती है कि वे उच्छ्वास तक चलते रहते हैं, थकते ही नहीं। वक्त्र का अर्थ मुख अर्थात् प्रारम्भ भी होता है। प्रारम्भ में जो कवीश्वर सरस्वती—वृत्तविशेष—को लेकर चलते हैं, वे चलते ही रहते हैं, श्रान्त नहीं होते। यह सारा श्लोक ईश्वर-परक भी लग जाता है—ऐसा ईश्वर (आदरार्थ में बहुवचन है) जिसे वेदों ने कवि कहा है ('कविं पुराणमनुशासितारम्') और जो जगत्-स्रष्टा है, जिसके मुख में सदा सरस्वती रहती है और जो 'उच्छ्वास' के अन्त में भी नहीं थकता, क्यों न हमारा वन्द्य हो। 'उच्छ्वास' से यहाँ सारा संसार अभिप्रेत है ('अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो...अस्यैतानि निःश्वसितानि')। 'निश्वास' का अन्त प्रलय होता है। प्रलय के बाद फिर संसार का चक्र चलता है। वह थकता ही नहीं। वह संसाररूपी 'आख्यायिका' रचता रहता है। सारा विश्व वस्तुतः उस महाकलाकार की मूर्त कविता ही तो है। उसे नमस्कार।

हिन्दी—जिन (कवियों) के मुख में सरस्वती (का वास) है वे उच्छ्वास के अन्त में भी नहीं थकते। आख्यायिकाकार वे प्रसिद्ध कवीश्वर क्यों न हमारे वन्दनीय हों ॥१०॥

टीका—कवीनामिति। अन्वयः—कर्णगोचरं गतया वासवदत्तया शक्त्या कवीनां पाण्डुपुत्राणाम् (दर्पः) इव कर्णगोचरं गतया वासवदत्तया नूनं कवीनां दर्पः अगलत् ।

कर्णः=कुन्त्याः कानीनः पुत्रः दुर्योधनस्य सुहृद् वीरविशेष एव गोचरः=स्थानं तद्-गतया=प्राप्तया अर्थात् कर्णपार्श्व-स्थितया, वासवेन=इन्द्रेण दत्तया=अर्पितया एकवीरघ्न्या शक्त्या=अस्त्र-विशेषेण कवीनां=प्राज्ञानां ('प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः) पाण्डु-पुत्राणां=पाण्डवानां युधिष्ठिरादीनाम् इव कर्णः=श्रवणेन्द्रियं तस्य गोचरं =विषयं गतया=प्राप्तया श्रवणेन्द्रियविषयीभूतयेत्यर्थः वासवदत्तया=एतन्नामकाख्यायिकया नूनं=निश्चयेन कवीनां=काव्यकाराणां दर्पः=अभिमानः अगलत्=ध्वस्तः। कर्णाय इन्द्रदत्तया शक्त्या यथा पाण्डवाः भग्नाभिमानाः जाताः, तथैव कर्णपथं नीतया वासवदत्ताख्यया आख्यायिकया कवयोऽपि भग्नाभिमानाः संवृत्ताः। अत्र दर्प-गलने पाण्डवैः सह कवीनां साम्यप्रतिपादनात् उपमा, सा च श्लेषानुप्राणिता।

टिप्पणी—इस श्लोक में बाण ने 'वासवदत्ता' नाम की आख्यायिका की प्रशंसा की है। यह वासवदत्ता कौन है? सुबन्धु की बनाई हुई 'वासवदत्ता' है अथवा महाभाष्यकार द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' जो आजकल उपलब्ध नहीं होती? इस पर विद्वान् लोग एकमत नहीं हैं। इस पर विवेचना के लिए भूमिका देखिए। **'वासवदत्तया शक्त्या'**—इन्द्र ने कर्ण को एक ऐसी अमोघ शक्ति (प्रक्षेपास्त्र) दे रखी थी, जो एकवीरघ्नी थी। कर्ण ने उसे अर्जुन पर फेंकने के लिए सुरक्षित रखा था। पाण्डवों के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी कि पता नहीं कब कर्ण उसे प्रयोग में लाता है। उस शक्ति के डर से पाण्डवों का सारा अभिमान चूर हुआ बैठा था। किन्तु भगवान कृष्ण ऐसी चाल चले कि वे भीम-पुत्र राक्षसराज घटोत्कच को कर्ण से भिड़ा बैठे। घटोत्कच की भीषण मार से तंग आकर

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥१२॥
अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः ।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥१३॥

कर्ण को अन्त में उसी पर अपनी 'वासवदत्ता' शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। इस तरह पाण्डवों की लाज बच गई, भग्न अभिमान फिर लौट आया।

हिन्दी—जिस प्रकार कर्ण के पास गई वासवदत्ता (इन्द्र द्वारा दी हुई) शक्ति (प्रक्षेपास्त्र) से पाण्डवों का मान भंग हो गया था, उसी प्रकार कर्णों (कानों) में पड़ी वासवदत्ता (आख्यायिका-विशेष) से सचमुच सभी कवियों का मान भंग हो गया ॥११॥

टीका—पदेति—अन्वयः—सरलः।

पदानां=सुबन्त-तिङन्तानां शब्दानां बन्धः=विन्यासः रचना वैदर्भी-गौडपादि-रीतिविशेषेण प्रयोग इति यावत् तेन उज्ज्वलः=भास्वरः रुचिर इत्यर्थः, नृप-पक्षे पदस्य=पदव्याः राज-प्रतिष्ठायाः इति यावद् बन्धः=दृढतया स्थापनं तेन उज्ज्वलः=विभासितः, हारी=मनोहरः पक्षान्तरे हारः=माला अस्य अस्तीति तथोक्तः धृतहारः इत्यर्थः, कृता=सम्पादिता वर्णानाम् अक्षराणाम् क्रमेण=साहित्य-विधानानुसारेण स्थितिः=विन्यासः यस्मिन् तथाभूतः, अन्यत्र कृतः=अनुष्ठितः वर्णानां=ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणां क्रमेण=शास्त्रमर्यादानुसारेण स्थितिः=अवस्थानं येन सः भट्टारः=पूज्यः आदरणीयः इत्यर्थः हरिचन्द्रः तस्य गद्य-बन्धः=गद्यरचना गद्यकाव्यमिति यावत् नृपायते=नृप इव आचरतीति (नृप+क्यङ्+लट् 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' पा० ३।१।११) अर्थात् नृपः इव श्रेष्ठो वर्तते। अत्र भट्टार-हरिश्चन्द्र-गद्य-बन्धस्य नृपेण साम्य-प्रतिपादनात् उपमालङ्कारः स च श्लेषानुप्राणितः।

टिप्पणी—बाण भट्टार-हरिचन्द्र के गद्यबन्ध को सर्वोत्कृष्ट मानता है, किन्तु यह व्यक्ति आजकल केवल नाम ही नाम है। इसकी गद्य-रचना कोई उपलब्ध नहीं होती। बाण के समय में उपलब्ध होती होगी, अन्यथा बाण उसे इतनी अधिक प्रतिष्ठा क्यों देता। संकेताख्य टीका के कर्ता कवि शंकर ने 'भट्टार' शब्द को पूज्यार्थ में लिया है। वैसे नाट्य-संविधान में 'भट्टार' राजा को कहा करते हैं। अमरसिंह भी नाट्यवर्ग में यह बात मानता है ('राजा भट्टारको देवः')। यदि हरिचन्द्र कोई राजा हुआ, तो इतिहास को इस सम्बन्ध में चुप नहीं रहना चाहिए था।

हिन्दी—पद-बन्ध (शब्द-विन्यास) से उज्ज्वल, हारी (मनोहर), एवं वर्णों (अक्षरों) की क्रमानुसार स्थिति रखे हुए भट्टार-हरिचन्द्र का गद्यबन्ध पद-बन्ध (राजप्रतिष्ठा-स्थापना) से उज्ज्वल, हारी (हार पहने) एवं वर्णों (ब्राह्मणादि) की क्रमानुसार स्थिति (मर्यादा) रखने वाले राजा के समान है ॥१२॥

टीका—अविनाशीति—अन्वयः—सातवाहनः विशुद्धजातिभिः रत्नैः इव विशुद्धजातिभिः सुभाषितैः अविनाशिनम् अग्राम्यम् कोशम् अकरोत्।

सातवाहनः=एतन्नामकः कविविशेषः विशुद्धा=शुचिः अमलेति यावत् जातिः=प्रकारः वर्ग इत्यर्थः येषां तैः रत्नैः=मणिभिः इव विशुद्धा=दोषरहिता या जातिः यथातथवस्तुवर्णना स्वभावोक्तिरिति यावत् येषु तैः सुभाषितैः (सु+√भाष्+क्त भावे) सूक्तिभिः (पुराणेष्वितिहासेषु तथा रामायणादिषु। वचनं सारभूतं यत् तत् सुभाषितमुच्यते ॥) अविनाशिनम्=न विनष्टुं शीलं यस्य तथोक्तम् चिरस्थायिनमित्यर्थः उभयत्र समानं विशेषणम्, अग्राम्यम्=न ग्रामे भवम् इत्यग्राम्यम् न ग्रामोत्पन्नं, रत्नानि हि समुद्रे आकरेषु च भवन्ति न तु ग्रामेषु, अन्यत्र अग्राम्यम्=ग्राम्यत्व-दोषरहितम् कोशं=निधिम् अन्यत्र श्लोक-सङ्ग्रहम् ('कोशः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः' साहित्यद०) सातवाहनेन रत्नानामिव सुभाषितानां कोशः कृत इत्यभिप्रायः। अत्र सुभाषितानां रत्नैः साम्यप्रतिपादनात् उपमा सा च श्लिष्टा।

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार ने सुभाषित-संग्रह की प्रशंसा की है। हमारे विचार में यह ग्रन्थ हाल की 'गाथा-सप्तशती' हो सकता है। हाल सातवाहन का ही नामान्तर है। प्राकृत में सातवाहन का रूपान्तर सालाहण होता है। संक्षेप की दृष्टि से अन्त के 'हण' को हटाकर और स को ह में परिणत करके हाल बन गया है। 'अभिधान-चिन्तामणि' में तो स्पष्ट ही लिखा हुआ है—'हालः स्यात् सातवाहनः,' हाल की 'गाथासप्तशती' में सात सौ श्लोकों का संग्रह है। वे आर्या छन्द में हैं। हमारे विचार से बाण के 'विशुद्धजातिभिः' में 'जाति' शब्द साभिप्राय है। आर्या छन्द जातिवर्गीय छन्दों में आता है। यह उच्च कोटि का मुक्तक-ग्रन्थ है।

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥१४॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥१५॥

हिन्दी—सातवाहन ने विशुद्ध जाति के (दोष-रहित स्वभावोक्तियों वाले) सुभाषितों से एक ऐसा अविनाशी (चिरस्थायी) और अग्राम्य (सुपरिष्कृत) कोश (श्लोकसंग्रह ग्रन्थ) बनाया, जो विशुद्ध (असली) जाति (प्रकार) के रत्नों के कभी न नष्ट होने वाले, अग्राम्य (खानों और समुद्रों से निकले) खजाने के समान है ॥१३॥

टीका—कीर्तिरिति—अन्वयः—प्रवरसेनस्य कुमुदोज्ज्वला सेतुना सागरस्य परं पारं प्रयाता कपिसेना इव प्रवरसेनस्य कुमुदोज्ज्वला कीर्तिः सेतुना सागरस्य परं पारं प्रयाता ।

प्रवरसेनस्य=प्रवे=प्लवे (रलयोरभेदः) प्लुते इत्यर्थः रसः=रागो येषां ते इति प्रवरसाः प्लवङ्गमा वानरा इत्यर्थः तेषाम् इनः=स्वामी ('इनः पत्यौ नृपार्कयोः' इति मेदिनी) वानरेशः सुग्रीव इति यावत् तस्य अथवा प्रवरा=प्रकर्षेण उत्कृष्टा सेना यस्य तस्य सुग्रीवस्य, कुमुदोज्ज्वला=कुमुदेन एतन्नामकेन वानरसेनानी-विशेषेण उज्ज्वला=उद्दीप्ता प्रोत्साहिता इत्यर्थः सेतुना=सेतुबन्धेन नलनीलादिकपिनिर्मितजलमार्गेणेत्यर्थः सागरस्य=समुद्रस्य परम्=अपरं पारं=तटम् सागरस्य परवर्तितीरमित्यर्थः प्रयाता=गता कपि-सेना वानर-सेना इवेत्युपमायाम् प्रवरसेनस्य—एतसंज्ञकस्य कविविशेषस्य कुमुदवत्=कैरववत् उज्ज्वला=धवला कीर्तिः=यशः कीर्तिः शुक्ला भवतीति कविख्यातिः, सेतुना=एतन्नामकेन प्राकृत-काव्यग्रन्थेन सागरस्य परं पारं प्रयाता । यथा कुमुद-प्रोत्साहिता सुग्रीवस्य वानरसेना सेतुबन्धेन समुद्र-पारं गता तथैव प्रवरसेनस्य कुमुदवद् धवला कीर्तिः सेतुबन्ध-काव्येन समुद्रपारं गतेति भावः । अत्र 'सेतुबन्धेन' समुद्रपारगतायाः प्रवरसेनस्य कीर्त्याः सेतुबन्धेन समुद्रपारगतया सुग्रीव-सेनया साम्य-प्रतिपादनात् उपमालङ्कारः स च श्लेषानुप्राणितः ।

टिप्पणी—ग्रन्थकार इस श्लोक में प्रवरसेन कवि की प्रशंसा करता है, जिसका प्राकृत भाषा में लिखा हुआ 'सेतुबन्ध' अथवा 'रावणवध' महाकाव्य एक उच्च कोटि की रचना है । इससे रचयिता का नाम अपने देश में तो छाया ही, किन्तु वह समुद्र पार तक भी पहुँचा हुआ है । प्रवरसेन कोई कश्मीर का राजा था । संस्कृत के विद्वानों में यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि 'सेतुबन्ध' वास्तव में कालिदास का लिखा हुआ है । प्रवरसेन तो उसका केवल संरक्षक ही था, किन्तु बाण इसका समर्थन नहीं करते । यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ेंगे ।

हिन्दी—जिस प्रकार प्रवरसेन (सुग्रीव) की कुमुदोज्ज्वल (कुमुद-नामक सेनानी से प्रोत्साहित) कपि-सेना सेतु (सेतुबन्ध=पुल) से समुद्र के परले पार (लंका में) पहुँची थी, उसी प्रकार प्रवरसेन (कवि) की कुमुदोज्ज्वल (कुमुद की तरह धवल) कीर्ति सेतु ('सेतुबन्ध' महाकाव्य) से समुद्र के परले पार पहुँची ॥१४॥

टीका—सूत्रेति—अन्वयः—भासः सूत्रधारकृतारम्भैः बहुभूमिकैः सपताकैः देवकुलैः इव सूत्रधारकृतारम्भैः बहुभूमिकैः सपताकैः नाटकैः यशः लेभे ।

भासः=एतदाख्यः प्रसिद्धनाटककारः सूत्रधारेण=सूत्रं धारयतीति तथोक्तेन स्थपतिना शिल्पिनेत्यर्थः कृतः=अनुष्ठितः आरम्भः=निर्माणोपक्रमः येषां तैः बह्वयः=प्रचुराः भूमयः एव भूमिकाः शालाः 'मंजिल' इति भाषायां प्रसिद्धाः येषु तैः पताकाभिः=ध्वजैः सहिताः इति सपताकाः तैः देवकुलैः=देवमन्दिरैः इवेत्युपमायाम् सूत्रधारेण=नाटकस्य मुख्यपात्रविशेषेण, नाटकस्य प्रबन्धकेन निर्देशकेनेति यावत् कृतः=सम्पादितः प्रारम्भः=उपक्रमः स्थापनेत्यर्थः येषां तैः, बह्वयः भूमिकाः=पात्राणि येषु तैः पताकाभिः=नाटकान्तर्गत-प्रासङ्गिककथान्तरैः ('यद् वृत्तं हि परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्, प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता' नाट्यशा० १८।२३) सहितैः नाटकैः=रूपकैः यशः=कीर्तिं लेभे=प्राप्तवान् । यथा खलु कश्चित् कुशल-शिल्पी बहुभूमिकानि वेल्लद्-ध्वजानि देवमन्दिराणि निर्माय जगति यशो लभते, तथैव भासकविरपि सूत्रधारकृत-प्रस्तावनैः बहुभूमिकैः पताकासहितैश्च नाटकैः यशः लेभे । अत्र नाटकानां देवकुलैः सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमा, सा च श्लिष्टा ।

टिप्पणी—इस श्लोक में बाण प्रसिद्ध नाटककार भास की स्तुति करता है । भास के नाटक 'नाटक-चक्र' के नाम से हाल ही में प्राप्त हुए हैं । इनकी विशेषता यह है कि इनमें बहुत सी भूमिकायें—पात्र—(characters) रहा करते हैं । क्या राजा और क्या नौकर, क्या सम्पन्न और क्या विपन्न, क्या चोर और क्या जुआरी, क्या सती और

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥१६॥
समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥१७॥

क्या वेश्या, क्या वैश्य और क्या ब्राह्मण—अभिप्राय यह कि सभी उच्च-नीच वर्गों के लोगों का चित्रण इसके नाटकों में मिलता है, कालिदास की तरह सीमित वर्ग के लोगों का ही नहीं। भास के 'नाटक-चक्र' में तेरह नाटक आते हैं। **सूत्रधार**—सूत्रं धारयतीति (सूत्र + √धृ + णिच् + अण्) 'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम्। रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः'। इसे हम नाटक का प्रबन्धक या डाइरेक्टर भी कह सकते हैं। यही नाटक के सारे सूत्र को अपने हाथ में पकड़े रहता है।

हिन्दी—जैसे कोई शिल्पी (अपने) बनाये हुए, बहुत मंजिलों वाले और ध्वजा-पताकाओं से युक्त देव-मन्दिरों से यश पाता है, उसी तरह भास ने सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये, बहुत पात्रों वाले एवं पताकाओं से युक्त नाटकों से यश पाया ॥१५॥

टीका—निर्गतास्विति—अन्वयः—निर्गतासु मधुरसान्द्रासु मञ्जरीषु इव निर्गतासु मधुरसान्द्रासु कालिदासस्य सूक्तिषु कस्य वा (जनस्य) प्रीतिः न जायते।

निर्गतासु=सद्यः उद्भिन्नासु मधुराः=मधु=मकरन्दः अस्ति आसाम् इति मधु+र (मतुबर्थे) मकरन्द-भरिताः इत्यर्थः अथ च सान्द्राः=अन्द्रेण=निबिड-बन्धेन सह वर्तमानाः निबिडाः पूर्णविकासं प्राप्ताः इत्यर्थः तासु मञ्जरीषु पुष्पवल्लरीषु इव निर्गतासु स्वभावतः मुखाद् बहिरागतासु, स्वाभाविकीषु अप्रयास-साध्यासु इत्यर्थः, मधुराः=मनोहराः श्रवणसमकालमेव आनन्द-दायिन्यः इत्यर्थः अथ च सान्द्राः=गाढाः रस-भरिताः इत्यर्थः तासु कालिदासस्य=एतन्नामक-प्रसिद्धकविवरस्य सूक्तिषु=सुन्दरवचनेषु काव्यात्मक-वाक्येषु इत्यर्थः कस्य जनस्य वा=निश्चयेन प्रीतिः=प्रसन्नता न जायते=उत्पद्यते अपि तु सर्वस्यैव जायते इति काकुः। अत्र कालिदासोक्तीनां मञ्जरीभिः साम्य-प्रतिपादनात् उपमा, सा च श्लिष्टा।

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार कवि-सम्राट् कालिदास को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है। कालिदास की सभी रचनायें स्वाभाविक, मधुर और स्वतः स्फूर्त हैं। परवर्ती अलंकृत-शैली के कवियों की तरह उनमें कहीं भी प्रयास-साध्यता अथवा कृत्रिमता नहीं मिलती है। कालिदास के प्रति बाण का इतना आदरातिशय सिद्ध करता है कि कालिदास उसके समय में जन-साधारण के मध्य पर्याप्त प्रसिद्धि पाये हुए थे। इससे कालिदास का बाण से बहुत समय पूर्व का होना प्रमाणित हो जाता है। 'न वा कस्य' का अन्वय यहाँ 'कस्य वा न' इस तरह होता है। 'स्युरेवं तु पुनर्वै वेत्यवधारणवाचकाः' इस अमरकोश के अनुसार वा शब्द यहाँ विकल्पार्थक अर्थात् अथवा के अर्थ में नहीं है, प्रत्युत एवार्थ अर्थात् निश्चयार्थ में है। निश्चयार्थ का उदाहरण देखिए—'सुता न यूयं किमु तस्य राज्ञः सुयोधनं वा न गुणैरतीताः' (किरात० ३।१३)।

हिन्दी—नयी-नयी निकली मकरन्द-भरी, पूरी खिली कुसुम-मंजरियों की तरह कालिदास की स्वाभाविक, मधुर और सरस काव्योक्तियों में सचमुच किसे आनन्द नहीं होता है? ॥१६॥

टीका—समुद्दी०—अन्वयः—समुद्दीपित-कन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना हरलीला इव समुद्दीपित-कन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना बृहत्कथा कस्य विस्मयाय नो (भवति)?

समुद्दीपितः=तृतीयनेत्रार्चिषा दग्धः इत्यर्थः कन्दर्पः=कामदेवः यया सा, कृतम्=अनुष्ठितं गौर्याः=पार्वत्याः प्रसाधनम्=अलङ्करणं यस्यां सा हरस्य=शिवस्य लीला=क्रीडा इव समुद्दीपितः=प्रबोधितः जनितः इत्यर्थः कन्दर्पः=काम-विकारः यया सा, बृहत्कथायां हि प्रेम-कथाः सन्ति याः पाठकानां मनसि कामवासनां समुद्दीपयन्ति, कृतं=विहितं गौर्याः=विद्याधिष्ठात्र्याः देव्याः प्रसाधनम्=आराधनं यस्यां तथाभूता, बृहत्कथायां हि नायकेन नरवाहनदत्तेन गौरी-देव्याः आराधना कृता वर्तते, ईदृशी बृहत्कथा कस्य जनस्य विस्मयाय=आश्चर्याय नो=न भवति अपि तु सर्वस्यापीति काकुः। बृहत्कथायाः हर-लीलया सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमा, सा च श्लेषगर्भा।

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार गुणाढ्य द्वारा प्रणीत बृहत्कथा की प्रशंसा करता है। यह रचना आजकल अनुपलब्ध है, किन्तु बाण के समय में विद्यमान थी। गुणाढ्य ने यह पैशाची भाषा में लिखी थी। दण्डी ने भी इसे 'भूतभाषामयीम्' कह रखा है। पैशाची भाषा या तो लुप्त हो गई है या तो फिर कट्टर भारतीयों ने घृणा-भाव से

आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ॥
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ॥१८॥
तथापि नृपतेर्भक्त्याभीतो निर्वहणाकुलः ।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥१९॥

पिशाच-जैसे बौद्ध नास्तिकों की पालि या वैसी-जैसी किसी अन्य प्राकृत को ही पैशाची नाम दे दिया हो। कहते हैं कि बृहत्कथा में एक लाख पद्य हैं। इसका ही एक संक्षिप्त संस्करण 'कथासरित्सागर' नाम से सोमदेव ने प्रणीत किया है। बाण ने अपनी 'कादम्बरी' के लिए कथानक बृहत्कथा से ही ले रखा है।

हिन्दी—काम (मदन) को भस्म कर देने एवं गौरी (पार्वती) का शृङ्गार करने वाली महादेव की लीला की तरह काम (कामवासना) को भड़काने तथा (नरवाहनदत्त द्वारा) गौरी (देवी) की आराधना (का उल्लेख) करने वाली बृहत्कथा किसे आश्चर्य में नहीं डालती? ॥१७॥

टीका—**आढ्येति**—**अन्वयः**—आढ्य...हैः, हृदयस्थैः अपि स्मृतैः जिह्वा अन्तः कृष्यमाणा इव कवित्वे न प्रवर्तते।

आढ्यराजेन=एतन्नामकेन कविविशेषेण कृताः=रचिताः ये उत्साहाः=उत्साहपूर्ण-कार्य-प्रतिपादकाः काव्य-रचनाविशेषाः तैः हृदये तिष्ठन्तीति (हृदय+√स्था+क) हृदयस्थाः=मनोगताः तैः मनसा विचार्यमाणैरित्यर्थः, अपि=किं वा स्मृतैः स्मृतिविषयतां नीतैः जिह्वा=वाक् ममेति शेषः अन्तः=हृदये कृष्यमाणा=नियम्यमाना केनापि बलान्निवार्यमाणेत्यर्थः इव कवित्वे=कविकर्मणि काव्य-निर्माणे इत्यर्थः न प्रवर्तते=न चेष्टते उत्सहते इति यावत्। अयं भावः—आढ्यराज-कृतोत्साह-रचनां मनसि कृत्वा स्मृत्वा च तन्नैपुणी-चकितचकितस्य मे वागेव काव्यं कर्तुं न प्रसरति। अत्र जिह्वोत्कर्षणस्योत्प्रेक्षणात् उत्प्रेक्षा।

टिप्पणी—ग्रन्थकार का यह श्लोक सब से कठिन लग रहा है। विभिन्न टीकाकारों ने इसके विभिन्न अर्थ कर रखे हैं। आढ्यराज कौन है और उसके उत्साह क्या हैं—यह जानना कठिन है। आढ्यराज यदि कोई कवि है, तो उत्साह उसकी काव्य-रचनाओं का ही नाम होना चाहिए। कुछ विद्वान् आढ्यराज से शालिवाहन को लेते हैं, किन्तु शालिवाहन सातवाहन का ही तो नाम है और सातवाहन की प्रशंसा बाण पीछे तेरहवें श्लोक में कर ही बैठे हैं। पीटरसन का कहना है कि आढ्यराज कोई कविविशेष नहीं है। वह आद्यराज है और उसके उत्साह उसके साहसिक कार्य हैं। यही कारण है कि कुछ प्रतियों में 'आद्यराज' ही पाठ मिलता है। पिश्शल आढ्यराज से श्रीहर्ष को ही लेता है, जिनके इतने उत्साह—साहसिक वीरता के काम—हैं कि उनके यथातथ्य वर्णन करने में बाण कहते हैं कि 'मेरी जिह्वा ही रुक रही है, उनका वर्णन मैं क्या कर सकूंगा'। अस्तु, हम इस विवाद की गहराई में न जाकर आढ्यराज को व्यक्ति-विशेष ही मान लेते हैं।

हिन्दी—आढ्यराज द्वारा कृत उत्साहों को जब (मैं) विचारता और याद करता हूँ, तो (मेरी) जिह्वा कविकर्म की ओर प्रवृत्त ही नहीं होती मानो वह भीतर से (किसी के द्वारा नीचे) खींची जा रही हो ॥१८॥

टीका—**तथापीति**—**अन्वयः**—सरलः।

तथापि=पूर्वोक्तकवीनाम् उत्कृष्टकाव्यकौशलस्याग्रे मम वाण्या रुद्ध-प्रसरत्वेऽपि नृपतेः=नृणां=नराणां पतिः=स्वामी श्रीहर्ष इत्यर्थः तस्य भक्त्या=अनुरागेण तं प्रति भक्तिभाव-कारणादित्यर्थः अभीतः=न भीतः=निर्भयः, 'भीतः' इति पाठे तु कवि-समाजे स्वरचनाऽनैपुण्यात् भयं प्राप्तः निर्वहणे=परिसमाप्तौ राज्ञो जीवनमधिकृत्य प्रारिप्सितायाः आख्यायिकायाः समापने इति यावत् आकुलः=भृशमुत्सुकः अत्यधीरः सन् आख्यायिका=ऐतिहासिकं गद्य-काव्यम् एव अम्भोधिः=अम्भांसि धीयन्ते अत्रेति (अम्भस्+√धा+किः) समुद्रः तस्मिन् जिह्वया=रसनया प्लवनम् (√प्लु+ल्युट् भावे) तरणम् एव चापलम्=चपलस्य भावम् (चपल+अण् भावे) धृष्टतामित्यर्थः करोमि=विदधे। हर्षचरित-प्रणयन-साहसे मे राजभक्तिः कारणं, न तु कवित्व-दर्पः इति भावः। अत्र आख्यायिकायाम् अम्भोधेस्तादात्म्यात् रूपकालङ्कारः, स च जिह्वायां नौकात्वारोपस्य गम्यत्वात् एकदेशविवर्ती।

टिप्पणी—इस श्लोक में बाण पूर्वोक्त बड़े-बड़े कवियों की काव्य-कला की तुलना में अपने कविकर्म को तुच्छ बताता हुआ अपनी निरभिमानिता एवं नम्रता व्यक्त कर रहा है। कालिदास ने भी रघुवंश लिखते हुए ऐसा-जैसा ही भाव प्रकट कर रखा है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥२०॥
जयति ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः ।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः[1] ॥२१॥

हिन्दी—तो भी राजा (श्रीहर्ष) के प्रति भक्तिभाव होने के कारण निर्भय एवं (जीवन-चरित) समाप्त करने के लिए अत्युत्सुक हुआ मैं आख्यायिका-रूपी समुद्र में जिह्वा (रूपी नौका) द्वारा तरने की धृष्टता कर रहा हूँ ॥१९॥

टीका—सुखेति—अन्वयः— सुखप्रबोधललिता, सुवर्ण...ज्ज्वलैः प्रतिपादकैः शय्या इव सुख० सुवर्ण० प्रतिपादकैः शब्दैः आख्यायिका भाति ।

सुखः=सुखयुक्तः यः प्रबोधः=जागरणं तेन ललिता=रमणीया सुखपूर्वकजागरणेनानन्ददायिनीत्यर्थः । सुवर्णस्य=हेम्नः या घटना=संयोजना खचितत्वमित्यर्थः, तया उज्ज्वलैः=उत्+ऊर्ध्वं ज्वलन्तीति तथोक्तैः दीप्तिमद्भिरित्यर्थः अथवा सु+शोभनाः ये वर्णाः रक्तपीतहरितादयः तेषां घटनया सम्मिश्रणेन भास्वरैः प्रतिपादकैः=प्रति=प्रतिरूपाः परस्परं समानरूपाः पादाः एव पादकाः (स्वार्थे कः) तैः समानरूपपादैरित्यर्थः शय्या=पर्यङ्कः इव, सुखेन=सुखपूर्वकं सरलतयेत्यर्थः यः प्रबोधः=प्रकृष्टं ज्ञानं कृत्याकृत्यप्रवृत्तिनिवृत्तिविषयकोपदेश इत्यर्थः, वेदादिशास्त्रैः स कठिनतया लभ्यते, काव्येन तु सुखेन, तदुक्तं मम्मटेन— कान्ता-सम्मिततयोपदेशयुजे' इति, तेन ललिता=रमणीया, सु=शोभना या वर्णानाम्=अक्षराणां घटना=योजना तया उज्ज्वलैः=मनोहरैः प्रतिपादकैः=अर्थाभिधायिभिः शब्दैः=पदैः आख्यायिका=चरितविषयक-काव्यरचना भाति=शोभते । अत्राख्यायिकायाः शय्यया सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमा सा च श्लेषानुप्राणिता ।

टिप्पणी—इस श्लोक मे ग्रन्थकार आख्यायिका की शय्या से तुलना कर रहा है, जो केवल शब्द साम्य पर ही आधारित है, अर्थ साम्य पर नहीं । सरलता से कर्तव्याकर्तव्य के बोध की साधनता आख्यायिका तक ही सीमित नही समझनी चाहिए; वह तो काव्यमात्र में व्याप्त है । इस सम्बन्ध में यह उक्ति देखिए "कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् । आह्लाद्यमृतवत् काव्यमविवेकगदापहम् ॥"

हिन्दी—सुख-पूर्वक प्रबोध (उपदेश देने) की मनोज्ञता लिये हुए आख्यायिका सुवर्णों (सुन्दर अक्षरों) की घटना (योजना) से मनोहर एवं प्रतिपादक (अर्थाभिधायी) शब्दों से इस तरह शोभित होती है जैसे कि सुखपूर्वक प्रबोध (जागरण) का आनन्द देने वाली शय्या (पलंग) सुवर्ण (सोने) की घटना (मढ़े जाने) से चमकीले प्रतिपादकों (समान रूप वाले पहियों) से शोभित हुआ करती है ॥२०॥

टीका—जयतीति—अन्वयः— सरलः ।

ज्वलन्=उज्ज्वलः भासमानः यः प्रतापः=प्रकृष्टः तापः पराक्रमः इत्यर्थः स एव ज्वलनः ज्वलतीति (ज्वल्+ल्युट् कर्तरि)=वह्निः स एव प्राकारः=प्राचीरं ('प्राकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः' इत्यमरः) नगर-बहिर्भित्तिकेत्यर्थः तेन कृता=अनुष्ठिता जगतः=संसारस्य रक्षा=रक्षणं येन सः अर्थात् यथा प्राकारेण कस्यापि नगरस्य रक्षा क्रियते, तथैव श्रीहर्षः स्वप्रतापेन एव जगद्रक्षां करोति स्म । सकलाः=सर्वे च ते प्रणयिनः=प्रणयः=प्रणयन प्रीत्या प्रार्थनमित्यर्थः एषामस्तीति (प्रणय+इन् मत्वर्थे) अभ्यर्थिनः याचकाः इत्यर्थः तेषां मनोरथानां सिद्धौ=पूर्तौ श्रीपर्वतः =श्रियः लक्ष्म्याः पर्वतः श्रीनिवासभूतपर्वतः इत्यर्थः हर्षः=एतन्नामको नृपतिः जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते अर्थात् सम्पत्तिनिधानभूतः श्रीहर्षो महाराजः सर्वेषामेवार्थिनां मनोरथान् पूरयति, अतः एव स सर्वोत्कृष्टो वर्तते । अत्र प्रतापे ज्वलनप्राकारत्वस्य हर्षे च श्रीपर्वतस्य आरोपात् रूपकम् ।

टिप्पणी—इस अन्तिम श्लोक में बाण अपने आश्रयदाता एवं संरक्षक सम्राट् हर्षवर्धन की स्तुति करता है । श्रीपर्वत तैलंगाना में बताया जाता है । कहते हैं कि शिवजी इस पर्वत पर निवास करते थे । महाभारत में इस पर्वत का उल्लेख है :—श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः । न्यवसत् परम-प्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैः सह ॥ (वन० ८५।२०) ऐसी कथा है कि लक्ष्मी ने इस पर्वत पर तपस्या की थी और सदा विष्णु के वक्षः-स्थल पर लेटे रहने का वरदान प्राप्त किया था । बाण ने अपनी कादम्बरी में भी इस पर्वत का उल्लेख कर रखा है—'श्रीपर्वताश्चर्यवार्तासहस्राभिज्ञेन जरद्-द्रविडधार्मिकेण' ।

---

१. कुछ प्रतियों में इस श्लोक से पहले यह श्लोक भी है :—
दर्शयन्ती मुखे खेदं प्रस्खलन्ती पदे-पदे । कथञ्चिन्नीयते शय्यां कथा नववधूरिव ॥

एवमनुश्रूयते—पुरा किल भगवान्स्वलोकमधितिष्ठन्परमेष्ठी विकासिनि पद्मविष्टरे समुपविष्टः सुनासीरप्रमुखैर्गीर्वाणैः परिवृतो ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्वन्नन्याश्च निरवद्या विद्यागोष्ठीर्भावयन्कदाचिदासाञ्चक्रे। तथासीनं च तं त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं मनुदक्षचाक्षुषप्रभृतयः प्रजापतयः सर्वे च सप्तर्षिपुरःसरा महर्षयः सिषेविरे। केचिदृचः स्तुतिचतुराः समुदचारयन्। केचिदपचितिभाञ्जि यजूंष्यपठन्। केचित्प्रशंसासामानि जगुः। अपरे विवृतक्रतुक्रियातन्त्रान्मन्त्रान्व्याचचक्षिरे। विद्याविसंवादकृताश्च तत्र तेषामन्योन्यस्य विद्याविवादाः[1] प्रादुरभवन्।

हिन्दी—ज्वलन्त प्रतापाग्नि के प्राकार (भित्ति) से जगत की रक्षा करने वाले एवं सभी अभ्यर्थियों के मनोरथों को पूर्ण कर देने में श्रीपर्वत-स्वरूप श्रीहर्ष की जय है ॥२१॥

टीका—एवम्=एतेन प्रकारेण अनुश्रूयते=परम्परया आकर्ण्यते पुरा=प्राक्कालस्य किल=वार्तास्ति ('वार्ता-सम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः) भगवान्=ऐश्वर्यादिगुणवान् स्वस्य लोकम्=ब्रह्मलोकमित्यर्थः अधितिष्ठन्=अधिवसन् पालयन् वा परमेष्ठी=परमे पदे=उत्कृष्टस्थाने तिष्ठतीति (√स्था+कः) ब्रह्मा, विकासिनि नित्यं विकासोऽस्यास्तीति (विकास+इन् नित्ययोगे) पद्मम्=कमलम् एव विष्टरः=आसनम् ('विष्टरो विटपी दर्भमुष्टिः पीठाद्यासनम्' इत्यमरः) समुपविष्टः=स्थितः सुनासीरः=सु=सुष्ठु नासीरम्=अग्रगामि सैन्यं यस्य सः इन्द्रः प्रमुखः=प्रधानं येषां तैः गीर्वाणैः=गीः=वाग् एव बाणः (बवयोरभेदात्) येषां तैः देवैः परिवृतः=परिगतः ब्रह्मोद्याः=ब्रह्म=वेदः अथवा परब्रह्म तस्य वदनं=प्रतिपादनम् प्रासामस्तीति तथोक्ताः कथाः=वार्ताः तथा चोक्तम्—'ब्रह्मोद्या सा कथा यस्यामुच्यते ब्रह्म शाश्वतम्' अर्थात् परब्रह्मविषयिणीः अथवा वेदविषयिणीः कथाः कुर्वन् अन्याः च निरवद्याः=वदितुं योग्या वद्या न वद्या इत्यवद्या निन्द्या इत्यर्थः निर्=न अवद्या इति निरवद्या निर्दोषा वात्स्यायनेन लोक-द्वेषिणीं परहिंसाविषयिणीं गोष्ठीं निषिध्य अनिन्द्यगोष्ठीनां विधानं कृतमस्ति—'लोकचिन्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया। गोष्ठ्या सह चरन् विद्वान् लोक-सिद्धिं नियच्छति'। विद्याः=पुराणधर्मशास्त्रादयः तासां गोष्ठीः=गावः=बहुविधा वाचस्तिष्ठन्त्यत्रेति (गो+√स्था+क+ङीप्) सभाः, वार्तालापाः, विचारविमर्शाः वाद-विवादा इत्यर्थः तान् भावयन्=कुर्वन् (√भू+णिच्+शतृ) आसाञ्चक्रे=स्थित आसीत्। तथा=तेन प्रकारेण आसीनं=स्थितं त्रिभुवनेन=त्रयाणां भुवनानां समाहारः तेन लोकत्रयेणेत्यर्थः प्रतीक्ष्यम्=(प्रति+√ईक्ष्+यत्) पूज्यम् ('प्रतीक्ष्यः पूज्यः' इत्यमरः) मनुश्च दक्षश्च चाक्षुषश्च प्रभृतिर्येषां ते प्रजापतयः स्रष्टारः सर्वे=समस्ताः च सप्त च ते ऋषयः मरीच्यादयः पुरःसराः अग्रगाः मुख्या इति यावत् येषां तथाभूताः महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयः सिषेविरे=असेवन्त। केचित्=सभासदः, स्तुतिषु=स्तोत्रेषु चतुराः=निपुणा ऋचः=ऋग्वेदस्य मन्त्रान् समुदचारयन्=सम्यक्तया उच्चारितवन्तः, केचित् अपचितिः=पूजा तां भजन्तीति पूजा-विषयकाणीत्यर्थः यजूंषि=यजुर्वेदमन्त्रान् अपठन्=पठितवन्तः, केचित् प्रशंसा=स्तुतिः तत्सम्बन्धीनि सामानि=सामवेदमन्त्रान् जगुः=गीतवन्तः। अपरे=अन्ये विवृतं=प्रकटितं क्रतूनां=यज्ञानां क्रियायाः=अनुष्ठानस्य तन्त्रं=सिद्धान्तः यैः तथाभूतान् (तन्त्रं प्रधाने 'सिद्धान्ते'—इत्यमरः) प्रकटित-यज्ञकार्यानुष्ठानसिद्धान्तपरकानिति यावत् मन्त्रान् व्याचचक्षिरे=व्याख्यातवन्तः। विद्यानां=विद्या-सम्बन्धी विसंवादः=मतभेदः तेन कृताः=जनिताः न तु राग-द्वेषेण मात्सर्येण वा तत्र तेषाम् अन्योन्यस्य=परस्परस्य विद्यया विवादाः=विद्यासम्बन्धिनो विवादाः प्रादुरभवन्=प्रादुर्भूताः।

टिप्पणी—ब्रह्मोद्याः—साधारणतः 'ब्रह्मोद्य' शब्द विशेष्य होता है जो 'वदः सुपि क्यप् च' (पा० ३।१।१०६) से भाव में क्यप् प्रत्यय लगने से बनता है। ऐसी स्थिति में 'अर्शआदिभ्योऽच्' सूत्र से मत्वर्थीय अच् प्रत्यय लगाकर इसे विशेषण बनाया जा सकता है। किन्तु भट्टोजिदीक्षित ने 'कर्मणि इत्येके' लिखकर कर्म में भी किसी के मत से क्यप् मान रखा है। अतः यह सीधा विशेषण पद ही हो जाता है।

हिन्दी—इस प्रकार कर्ण-परंपरा से सुना जाता है—पुराने समय की बात है कि अपने लोक का शासन करते हुए ब्रह्मा सदा खिले रहनेवाले कमल के आसन पर बैठे, इन्द्रादि देवताओं से घिरे, कभी ब्रह्म-विषयक बातें करते हुए एवं अन्य विद्याओं पर निर्दोष विचार-विमर्श छेड़े बैठे थे। उस प्रकार बैठे तीनों लोकों के पूज्य उन (ब्रह्मा) की मनु दक्ष और चाक्षुष आदि प्रजापति और सब ऋषि, जिनके आगे २ सप्तर्षि बैठे हुए थे, सेवा कर रहे थे। स्तुतियों में निपुण कोई ऋचाओं का उच्चारण करते थे; कोई पूजा-विषयक यजुओं को पढ़ते थे; कोई स्तुति-सम्बन्धी सामों का गान करते थे और दूसरे यज्ञ-क्रिया के सिद्धान्त को प्रकट करने वाले मन्त्रों का व्याख्यान करते थे। विद्याओं के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण वहाँ उनमें परस्पर विद्या-विषयक विवाद चल पड़े।

---

१. संवादाः।

अथातिरोषणः प्रकृत्या महातपा मुनिरत्रेस्तनयस्तारापतेर्भ्राता नाम्ना दुर्वासा द्वितीयेन मन्दपालनाम्ना मुनिना सह कलहायमानः साम गायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरोत्। सर्वेषु च शापभयप्रतिपन्नमौनेषु मुनिष्वन्यालापलीलयावधीरयति कमलसम्भवे भगवती कुमारी किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनवयौवने वयसि[1] वर्तमाना, गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता पितामहमुपवीजयन्ती, निर्भर्त्सनताडनजातरागाभ्यामिव स्वभावारुणाभ्यां पादपल्लवाभ्यां समुद्भासमाना, शिष्यद्वयेनेव पदक्रममुखरेण नूपुरयुगलेन वाचालितचरणा, मदननगरतोरणस्तम्भविभ्रमं[2] बिभ्राणा जङ्घाद्वितयम्, सलीलमुत्ककलहं-

---

अथ=तदनन्तरम्, प्रकृत्या=स्वभावेन, अतिरोषणः अतिशयेन रुष्यति=क्रुध्यतीति (अति+√रुष्+युच् कर्तरि) अतिक्रोधी, महातपाः=महत् तपः यस्य सः महातपस्वीत्यर्थः अत्रेः=एतन्नाम्नः ऋषेः तनयः=पुत्रः, तारापतेः=चन्द्रमसः भ्राता नाम्ना=नामतः दुर्वासाः मन्दपालः नाम यस्य तेन मुनिना सह, कलहायमानः=कलहं करोतीति (कलह+√कृ+क्यङ्) कलहं कुर्वन्, साम=सामवेदमन्त्रं गायन्=गीत्या पठन् क्रोधान्धः=क्रोधेन अन्धः=लुप्त-विवेकः सन् विस्वरं=वि=विकृतः स्वरो यस्य तथाभूतं साम्नो विशेषणमेतत्, अथवा विकृतः स्वरो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथेति क्रिया-विशेषणम् अकरोत्। सर्वेषु=सकलेषु शापाद् भयं तेन प्रतिपन्नं=स्वीकृतं मौनं यैः तथाभूतेषु मुनिषु, अन्या०—अन्येन=अपरेण सह आलापः = संलापः तस्य लीला=विनोदः तया अवधीरयति=उपेक्षितवति, ध्यानं न दत्तवतीति यावत् कमलसम्भवे=कमलात् सम्भवो यस्य तथाभूते ब्रह्मणीत्यर्थः कुमारी=बाला, इतः परं सरस्वत्या विशेषणानि किञ्चिद्०—किञ्चिद् उन्मुक्तः=त्यक्तः बाल-भावः=बालाया भावः बालत्वमित्यर्थः येन, भूषितम्=अलङ्कृतं नवं=नूतनं यौवनं=तारुण्यं येन तस्मिन् वयसि=जीवनावस्थायां वर्तमाना=स्थिता, गृहीत०=गृहीतं—धृतं चामरं यया तथाभूता प्रचलन्ती च भुजा एव लता यस्याः सा, पितामहं=ब्रह्माणम् उपवीजयन्ती=वीजन-द्वारा सेवमानेत्यर्थः, निर्भर्त्सन०—निर्भर्त्सनाय=विस्वरं कुर्वतो दुर्वाससोऽवज्ञार्थमित्यर्थः ताडनं=भूम्या आघातः, तेन जातः=समुत्पन्नः रागः=रक्तिमा ययोस्तथाभूताभ्याम्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, स्वभावेन=निसर्गेण अरुणाभ्यां=रक्ताभ्यां पादौ पल्लवाविव (उपमिततत्पु०) ताभ्यां समुद्भा-समाना=सम्यक् प्रकाशमाना, द्वौ अवयवौ अस्येति द्वयं (द्वि+तयप् विकल्पेन तयप्-स्थाने अयच्) शिष्ययोः द्वयम् द्वौ शिष्यावित्यर्थः, इवेत्युपमायाम्, पदयोः=पादयोः क्रमः=विक्षेपः तेन मुखरं=शब्दायमानं तेन, शिष्य-पक्षे मन्त्राणां पदम्=पद-पाठः, क्रमः=क्रम-पाठश्च ताभ्यां मुखरेण शब्दायमानेन नूपुरयोः=मंजीरयोः युगलेन=द्वयेन वाचा-लितौ=मुखरितौ चरणौ यस्याः सा, शिष्यपक्षे वाचालितः चरणः=शाखाविशेषः यस्याः वेद-रूपाया वाग्देव्या इत्यर्थः तथाभूता, अत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः। मदन०—मदनः=कामः तस्य तोरणं=बहिर्द्वारं तस्य नगरं=पुरं निवास-स्थानमित्यर्थः तस्य स्तम्भौ=द्वे स्थूणे तयोः विभ्रम इव विभ्रमः=विलासः सौन्दर्यमिति यावत्

टिप्पणी—तारापतेः भ्राता—अत्रि की तीन सन्तानें थी चन्द्रमा, दुर्वासा और दत्तात्रेय। अत्रि की पत्नी अनसूया दक्ष प्रजापति की लड़की थी। इस तरह दुर्वासा चन्द्रमा का भाई हुआ। भूषित०—और जगह तो हम यह देखते हैं कि वय को नवयौवन भूषित करता है, पर सरस्वती के सम्बन्ध में यह बात नहीं। उसका सौन्दर्य इतना अद्भुत था कि उसकी वय ने ही उल्टे नव यौवन को भूषित कर रखा था। पद-क्रम—पदक्रम वेद-मंत्रों के उच्चारण की एक प्रक्रिया को कहते हैं। मंत्र के पदों को पृथक् २ करके पढ़ने को पद-पाठ कहते हैं जैसे 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्'—इसका पद-पाठ इस प्रकार होगा—इदं। विष्णुः। विऽचक्रमे त्रेधा। निऽदधे। पदम्। इसी का क्रम-पाठ ऐसा होगा—विष्णुर्वि। वि चक्रमे। चक्रमे त्रेधा। त्रेधा नि। निदधे। निदधे पदम्। पदमिति पदम्। चरण वेद की शाखा को भी बोलते हैं। वह गुरु-शिष्य-परम्परा से पढ़ाये जाने वाले वेद का एक विशेष सम्प्रदाय होता है जैसे—शाकल-शाखा, आश्वलायन-शाखा, बाष्कल-शाखा इत्यादि।

हिन्दी—उसके बाद स्वभावतः अतिक्रोधी, महा-तपस्वी, अत्रि का पुत्र, चन्द्रमा का भाई दुर्वासा-नामक मुनि मन्द-पाल मुनि के साथ झगड़ता हुआ, साम का गान करता हुआ, क्रोध में अन्धा हो स्वर-भंग कर बैठा। शाप के भय से सभी के मौन रहने, (एवं) ब्रह्मा के किसी २ अन्य के साथ वार्तालाप द्वारा विनोद के कारण ध्यान न देने पर भगवती कुमारी—जो कुछ बचपन छोड़े हुए और नव यौवन को अलंकृत करने वाली अवस्था में थी, जो चामर पकड़े हुए लता-जैसी भुजा को हिलाती हुई ब्रह्मा पर हवा कर रही थी, जो (दुर्वासा को) फटकारने के लिए (भूमि पर) पैर पटकने से मानो लाल बने हुए (अपने) स्वभावतः पल्लवों-जैसे लाल २ पैरों से शोभित हो रही थी, जिसके

---

१. यौवने नवे वयसि। २. धर्मनगर।

सकुलालापप्रलापिनि मेखलादाम्नि[1] विन्यस्तवामहस्तकिसलया, विद्वन्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसावलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकाया, भास्वन्मध्यनायकमनेकमुक्तानुयातमपवर्गमार्गमिव हारमुद्वहन्ती, वदनप्रविष्टसर्वविद्याचरणालक्तकरसेनेव[2] पाटलेन स्फुरता दशनच्छदेन विराजमाना, संक्रान्तकमलासनकृष्णाजिनप्रतिमां साममधुरगीताकर्णनाव-

---

यस्य तत्, अत्रोपमालङ्कारः। जङ्घयोः=ऊर्वोः द्वितय द्वौ अवयवौ अस्येति, द्वयमित्यर्थः बिभ्राणा=धारयन्ती, सलीलं=लीलया=विलासेन सहितं यथा स्यात्तथा, **उत्कल०**—उत्काः=समुत्सुकाः ये कलहंसाः=कलेन=मधुरास्फुटध्वनिना विशिष्टा हंसाः कलहंसाः (मध्यमपदलोपी समासः)=हंसविशेषाः तेषां कुलं=समूहः पंक्तिरित्यर्थः, तस्य कलः=मधुरास्फुटध्वनिः स एव आलापः तद्वत् प्रलपतीति ०प्रलापि तस्मिन्, मेखला=काञ्ची स्त्रीणामाभरणविशेषः तस्या दाम=बन्धनं तस्मिन्, **विन्यस्त०**—विन्यस्तः=स्थापितः वामः हस्तः किसलय इवेत्युपमितस्तत्पु० यया सा, **विद्वन्०**=विदुषां मानसे=हृदये निवासः=अवस्थानं तेन लग्नेन=संसक्तेन गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनां कलापः=समूहः तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अंसे=स्कन्धे अवलम्बते इत्यवलम्बि तेन, ब्रह्म-सूत्रेण=यज्ञोपवीतेन, अपवित्रः पवित्रः सम्पद्यमानः कृत इति पवित्रीकृतः (पवित्र+च्वि+कृ+क्त) कायः=शरीरं यया तथाभूता, भास्वान्=प्रकाशमानः मध्यनायकः=मध्यमणिः मेरुरिति यावत् यस्य तथाभूतम्, अपवर्गपक्षे भास्वतः=सूर्यस्य सूर्यमण्डलस्येति यावत्, यन्मध्यं=मध्यभागः तेन नयतीति नायकः तम्, अनेकाभिः मुक्ताभिः=मौक्तिकैः अनुयातम्=अनुगतं ग्रथितमित्यर्थः, अनेकैः मुक्तैः मोक्षं प्राप्तैः अनुयातम् अपवर्गः=मोक्षः तस्य मार्गम्=पन्थानम् इवेत्युपमायाम्, हारं=मौक्तिकमालाम्, अपवर्गमार्गपक्षे हरस्यायं हारः तम्=शिव-सम्बन्धिनं शिवप्रसादप्राप्तमिति यावत् उद्वहन्ती=धारयन्ती, **वदन०**—वदने=मुखे, प्रविष्टाः=गताः याः सर्वा विद्याः ता एव वध्वः=नार्यः तासां चरणेषु=पादेषु यः अलक्तकस्य=लाक्षायाः रसः=द्रवः तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पाटलेन=लोहितेन, स्फुरता विलसता, दशनच्छदेन=अधरोष्ठेन विराजमाना=शोभमाना, **सङ्क्रान्त०**—सङ्क्रान्ता=प्रतिफलिता कमलासनस्य=ब्रह्मणः कृष्णाजिनस्य=कृष्णवर्ण-मृगचर्मणः प्रतिमा=आकृतिः छाया वा यस्मिन् ताम्, साम्नां=सामवेद-मंत्राणां मधुरगीतस्य=मधुर-गानस्य आकर्णनाय=श्रवणाय अवतीर्णः=नीचैरागतः शशिनः=चन्द्रमसः हरिणः=कलङ्करूपी मृगो

टिप्पणी—विद्वन्मानस...गुणकलापेन—कवि ने यहाँ श्लेष की अनोखी छटा दिखा रखी है। मानस शब्द के दो अर्थ हैं—मन और मानस-सरोवर। इसी तरह गुण के भी दो अर्थ हैं—दया-दाक्षिण्य आदि और तन्तु। सरस्वती विद्वानों के मानस—मन—में रहा करती है और गुण भी विद्वानों के मन में ही रहते हैं। सरस्वती के उनके मन में रहने वाले गुण मानो सरस्वती के शरीर पर चिपके हुए गुण ही यज्ञोपवीत बने हुए हैं। कवि-ख्याति में गुणों का वर्णन श्वेत-रूप से हुआ करता है। यज्ञोपवीत भी श्वेत हुआ करता है। इसीलिए कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है, किन्तु इसके मूल में मानस (मन) में मानस (सरोवर) का आरोप और गुणों (दयादाक्षिण्यादि) में गुणों—विस-तन्तुओं-का आरोप काम कर रहा है जो श्लेषानुप्राणित है। इस तरह यहाँ उत्प्रेक्षा श्लिष्ट-रूपकोत्थापित है। आशय यह निकला कि मानस-सरोवर में होने वाले कमलों के विस-तन्तु ही मानो यज्ञोपवीत-सूत्र हैं। **ब्रह्मसूत्रं**—ब्रह्मणि=वेदग्रहणकाले धृतं सूत्रम्। **भास्वन्**—यहाँ हार की समता मोक्ष-मार्ग से की गई है, पर समता केवल शाब्दी है, आर्थी नहीं। गीताकार ने मृत्यु के बाद जीव की दो गतियाँ बता रखी हैं—'शुक्ल-कृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते'। कर्मवादियों की कृष्णगति होती है अर्थात् वे चन्द्र-मण्डल से होकर स्वर्ग जाते हैं और पुण्य भोग कर फिर 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोके विशन्ति'। इसके विपरीत ज्ञानवादी की गति शुक्ल-गति होती है। वह सूर्य-मंडल के बीच से होकर उस परम पद को पहुँचता है जहां प्राप्त हुए जीव के सम्बन्ध में वेद कहता है—"न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते'। गीता भी कहती है—'एकया

हिन्दी—चरण पद-क्रम (पैर धरने) से झनझनाते हुए दो नूपुरों द्वारा इस तरह शब्द कर रहे थे जैसे पद-क्रम (पाठ) का जोर-जोर से उच्चारण करते हुए दो शिष्य चरण—वेद की शाखा—को मुखरित किया करते हैं, जो कामदेव के नगर के सिंह-द्वार के खम्भों के-से सौन्दर्य वाली दो जंघायें रख रही थी, जो (प्रेम में) उत्सुक कलहंसों की पंक्ति की मधुर ध्वनि की तरह बजने वाली करधनी पर विलास के साथ किसलय-सा बायाँ हाथ धरे हुए थी; जिसने कन्धे पर लटके हुए ऐसे यज्ञोपवीत द्वारा शरीर को पवित्र कर रखा था जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों विद्वानों के मानस में रहने से (उनका) गुण-समूह चिपक गया हो, जो सूर्य (मंडल) के मध्य से होकर ले जाने वाले, अनेक मुक्त जीवात्माओं द्वारा सेवित मोक्ष-मार्ग के समान ऐसा हार पहने हुए भी जिसका मेरु (मध्य-मणि) चमक रहा था और जिसमें अनेक मोती पिरोये थे, जो मुख के भीतर प्रविष्ट हुई सभी विद्याओं के चरणों में लगे महावर से मानो लाल-

---

१. धाम्नि। २. विद्यालक्तक।

तीर्णंशशिहरिणामिव कपोलस्थलीं दधाना, तिर्यक्सावज्ञमुन्नमितैकभ्रूलता, श्रोत्रमेकं विस्वरश्रवणकलुषितं प्रक्षालयन्तीवापाङ्गनिर्गतेन लोचनांशुजलप्रवाहेणेतरश्रवणेन[1] च विकसितसिन्धुवारमञ्जरीजुषा हसतेव प्रकटितविद्यामदा, श्रुतिप्रणयिभिः प्रणवैरिव कर्णावतंसकुसुममधुकरकुलैरुपास्यमाना, सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञाप्रतानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा, वाङ्मयमिव निर्मलं दिक्षु दशनज्योत्स्नालोकं विकिरन्ती देवी सरस्वती श्रुत्वा जहास ।

टीका—यस्यां तथाभूताम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, कपोलयोः स्थलीम्=गण्डस्थलम् दधानां=धारयन्तीम् तिर्यक्=कुटिलं यथा स्यात् तथा सावज्ञम्=अवज्ञया=तिरस्कारेण सहितं यथा स्यात्तथा उन्नमिता=उच्चैः कृता, एका भ्रूः लतेव यया तथाभूता (उपमिततत्पु०), विकृतः स्वरः विस्वरः, स्वरभङ्ग इत्यर्थः तस्य श्रवणेन आकर्णनेन कलुषितम्=अपवित्रं प्रक्षालयन्ती=धावन्ती पवित्रीकुर्वतीत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अपाङ्गात्=नेत्र-प्रान्तात् निर्गतेन =निःसृतेन, प्रवहतेत्यर्थः लोचनस्य=नेत्रस्य, अंशवः=किरणा एव जलं तस्य प्रवाहः=प्रस्रवः तेन, अत्र प्रक्षालनस्य संभावनादुत्प्रेक्षा सा च अंशव एव जलमिति रूपकोत्थापिता, इतरेण=अन्येन श्रवणेन=कर्णेन च विकसित०—विकसिता=प्रफुल्ला, सिता=श्वेतवर्णा सिन्धुवारस्य=एतदाख्यस्य पुष्पवृक्षस्य या मञ्जरी=अभिनवनिर्गता आयता सकुसुमा वल्लरिः तां जुष्टे इति जुट् तेन (कर्तरि क्विप्), हसता=विस्वरं कुर्वतो दुर्वाससः सावज्ञमुपहासं कुर्वतेत्यर्थः, प्रकटितः=अभिव्यक्तः विद्याया मदः=अभिमानो यया तथाभूता, श्रुतिः=श्रवणेन्द्रियं तस्यां प्रणयः प्रेम, आसक्तिरिति यावत् एषामस्तीति तैः कर्णावतंसकुसुम-कारणात् कर्ण-पातिभिरित्यर्थः, पक्षान्तरे श्रुतिः=वेदः वेदमन्त्र इत्यर्थः तां प्रणयन्ति=पुरस्कुर्वन्ति मन्त्राणां पुरोगामिनो भवन्तीति यावत् तथाभूतैः, प्रणवैः=ॐकारैः, कर्ण०=कर्णावतंसानि=कर्णाभरणानि कर्णाभरणभूतानीत्यर्थः यानि कुसुमानि=पुष्पाणि तेषु (लग्नानि) यानि मधुकराणां=भ्रमराणां कुलानि=वृन्दानि तैः उपास्यमाना=सेव्यमाना, सूक्ष्मं=सूक्ष्मतन्तुनिर्मितं धवलमिति यावत् तेन, पक्षान्तरे, सूक्ष्मः=गभीर इत्यर्थः विमलः=शुद्धः, सत्त्वगुणोपेत इत्यर्थः तेन, प्रज्ञा=बुद्धिः तस्याः प्रतानः=प्रसारः, तेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अंशुकेन=कौशेयवसनेन आच्छादितम्=आवृतं शरीरं=देहो यस्याः सा, वाङ्मयम्=वाग् एव वाङ्मयम् वाक्स्वरूपमित्यर्थः अथवा वाचः विकारः वाङ्मयम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निर्मलं=शुद्धं, पक्षान्तरे धवलम्, दिक्षु=दिशासु, दशनानां=दन्तानां ज्योत्स्नायाः=चन्द्रिकायाः आलोकम्=प्रकाशं विकिरन्ती=प्रसारयन्ती वर्षन्तीति यावत् सरस्वती=वागधिष्ठात्री देवी श्रुत्वा विस्वरमिति शेषः जहास=हसितवती ।

टिप्पणी—'यान्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्तते पुनः' । इसी को मुक्ति-मार्ग कहते हैं । इन दोनों गतियों को देव-यान और पितृयाण भी कहते हैं । वदन०—सभी विद्यायें सरस्वती के अन्तर्गत हैं । सरस्वती साकार देवी है । उसके होंठ स्वभावतः पाटल थे, पर कवि की उत्प्रेक्षा—कल्पना—देखिए—सभी विद्यायें (मूर्तिमती देवियाँ) जब सरस्वती के मुख से भीतर गई, तो उनके चरणों का अलक्तकरस—महावर—जाते समय सरस्वती के होठों को छू बैठा और इसी से मानो सरस्वती के होंठ लाल हो गये हों । संक्रांत०—सरस्वती के स्वच्छकपोल-स्थल पर ब्रह्मा के आसन का काला मृगचर्म प्रतिबिम्बित हो रहा था । उस पर भी कवि की कल्पना देखिए । मृग संगीत-प्रिय पशु हुआ करता है । ब्रह्मा की गोष्ठी में सामगान सुनने के लिए मानो आकाशस्थ चन्द्रमा के भीतर का अंक-रूप मृग नीचे उतर कर सरस्वती के मुख-चन्द्र में बैठ गया हो । श्रोत्र०—स्वर-भंग सुनने से सरस्वती का कान अपवित्र हो गया था । उसकी शुद्धि होनी चाहिए थी, अतः एक भ्रू को टेढ़े किये कान तक पहुँची हुई दृष्टि की जल-धार से मानो सरस्वती अपवित्र एक कान को स्नान करा रही थी । इतरश्रवणेन—दूसरा कान सिन्धुवार पुष्प की श्वेतछटा में दुर्वासा की अवज्ञा में उपहास-सा कर रहा था । संस्कृत कवि-जगत में हास श्वेत हुआ करता है । श्रुतिप्र०—यहाँ श्रुति-प्रणयि शब्द श्लिष्ट है । मधुकर श्रुति-प्रणयी थे, क्योंकि श्रुति—कान में पुष्पमञ्जरी पहन रखी थी । प्रणव (ॐ) भी श्रुति-प्रणयी—वेद मन्त्रों के अगुआ होते है, क्योंकि ओंकार-पूर्वक ही मन्त्रोच्चारण का विधान है—"ओङ्कारः स्वर्गद्वारः

हिन्दी—लाल बने फड़कते अधरोष्ठ से शोभित हो रही थी, जो ब्रह्मा के काले रंग के मृग-चर्म की परछाईं लिये हुए कपोल-स्थल को धारण करती हुई ऐसी लग रही थी मानो सामवेद के मंत्रों का मधुर गान सुनने के लिए चन्द्रमा का मृग नीचे उतर आया हो, जो (दुर्वासा के प्रति) तिरस्कार से ऊपर उठाई लता-जैसी एक भ्रू को टेढ़े किये हुए थी, जो स्वर-भंग सुनने से अपवित्र बने एक कान को कनखी से निकले नयन के रश्मिरूपी जल-प्रवाह से मानो शुद्ध करती हुई और विकसित सिन्धुवार की मंजरी वाले हँसते हुए-से दूसरे (कान) से विद्या का अभिमान प्रकट किये हुए थी, जो श्रुति (वेदमंत्रों) के अग्रगामी ओंकारों की तरह श्रुति (कान) के प्रेमी, कर्णाभरण बने कुसुमों पर बैठे भ्रमर-समूहों से सेवित हो रही थी, जो बारीक और निर्मल बुद्धि के प्रसार की तरह बारीक और सफेद रेशमी वस्त्र से शरीर ढके हुए थीं, जो दिशाओं में दाँतों की धवल चन्द्रिका के प्रकाश को बिखेरती हुई ऐसी लगती थी मानो शुद्ध वाङ्मय बरसा रही हो—(ऐसी) देवी सरस्वती (स्वरभंग) सुन कर हँस पड़ी ।

---

१. लोचनाश्रुजल० ।

दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीं स मुनिः 'आः पापकारिणि, दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे, मामुपहससि' इत्युक्त्वा शिरःकम्पशीर्यमाणबन्धविशरारोरुन्मिषत्पिङ्गलिम्नो जटाकलापस्य रोचिषा सिञ्चन्निव रोषदहनद्रवेण दश दिशः, कृतकालसन्निधानामिवान्धकारितललाटपट्टाष्टापदामन्तःपुरमण्डनपत्रभङ्गमकरिकां[1] भ्रुकुटिमाबध्नन्, अतिलोहितेन चक्षुषामर्षदेवतायै स्वरुधिरोपहारमिव प्रयच्छन्, निर्दयदष्टदशनच्छदभयपलायमानामिव वाचं रुन्धन्दन्तांशुच्छलेन,[2] शापशासन-

---

टीका—हसन्तीम्=उपहासं कुर्वतीम्, आः इति क्रोधे, पापं करोतीति पापकारिणी तत्सम्बुद्धौ हे पापकारिणि !=पापिनि ! दुर्गृहीत०—दुः=दुष्प्रकारेण, गृहीतः=प्राप्तः विद्यायाः=ज्ञानस्य, लवः=कणः तेन दुर्विदग्धा=दुश्चतुरा, दुर्विनीतेति यावत् तत्सम्बुद्धौ, शिरः०—शिरसः=मूर्ध्नः, कम्पेन=विधूननेन, शीर्यमाणः=त्रुट्यन् यो बन्धः=जटाबन्धः तेन विशरारोः=विशीर्यते—इति (वि+√शृ+आरुः) विशरणवतः स्रंसतः पर्याकुलस्येति यावत् उन्मिषन्=स्फुरन्, पिङ्गलिमा=पिङ्गलत्वं यस्य तस्य जटानां=लग्नकचानां सञ्चयस्य=समूहस्य रोचिषा=दीप्त्या सिञ्चन्=प्रोक्षन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, रोषः=क्रोध एव दहनः=अग्निः तस्य द्रवेण=रसेन, कृत०—कृतं कालस्य=कृष्णवर्णस्य सन्निधानं=नैकट्यं यया (१) (भ्रुकुटिपक्षे), कृतं कालस्य=कृष्णवर्णशारस्य, सन्निधानं येन (२) (अष्टापदपक्षे), कृतं कालस्य=यमस्य सन्निधानं यया (३) (अन्तःपुर...मकरिकापक्षे) तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्धकारितम् अन्धकारमयीकृतं श्यामितमित्यर्थः ललाटस्य=भालस्य पट्टं=फलकमेव अष्टापदं=शारिफलं यया ताम् ('अष्टापदं शारिफलम्' इत्यमरः)। अन्तःपुरस्य=अवरोधस्य, अन्तःपुरस्थित-स्त्रीजनस्य यमस्य पत्नीनामिति यावत् मण्डनाय=प्रसाधनाय, अलङ्करणायेत्यर्थः, पत्रभङ्गस्य=पत्र-विशेषकस्य मुखादौ चित्रणस्य मकरिका=मकराकृतिः ताम्, भ्रुकुटौ मकरिकात्वस्यारोपाद् रूपकं, तदुत्थापिता चोत्प्रेक्षा। अतिलोहितेन=रक्त-रक्तेन चक्षुषा=नेत्रेण अमर्षस्य=क्रोधस्य

टिप्पणी—तस्मात् ब्रह्म अध्येष्यमाणः एतदादि प्रतिपद्येत"। (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र १।१३।६) पिङ्गलिमा—पिङ्गलस्य भाव इति पिङ्गल+इमनिच् (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा पा० ५।१।१२२) भाव में इमनिच्प्रत्ययान्त सभी शब्द पुंल्लिङ्ग हुआ करते हैं। सिञ्चन्निव=खुली हुई जटाओं की लाल-लाल सी कान्ति पर ग्रन्थकार दुर्वासा की क्रोधाग्नि की द्रव-रूप की कल्पना कर रहा है। कृतकाल०—यहाँ कवि ने बड़े जटिल श्लेष का प्रयोग किया है। दुर्वासा ने क्रोध में भ्रुकुटि तान ली। उसके भाल पर बल पड़ गए। भाल बन गया अष्टापद—शतरंज—का फलक (चैसबोर्ड) और बल बन गए फलक की आठ लाइनें। शतरंज-फलक को संस्कृत में 'अष्टापद' इसीलिए कहते हैं कि उसमें आठ लाइनें होती हैं और हर एक लाइन में आठ-आठ पैर—खाने—होते हैं (अष्टौ पदानि अस्य)। भ्रुकुटि के पक्ष में कृतकाल० का अर्थ हुआ—जिसके पास काल—कालिमा आ गई थी, भ्रुकुटि से दुर्वासा का भाल स्याह हो गया था। भाल को अष्टापद बनाने पर उसके पक्ष में यह अर्थ हुआ—जिसके पास काले-काले रंग के शारि (शतरंज के मोहरे) थे। शतरंज के खेल में काले और सफेद मोहरे वाले दो परस्पर-विरोधी दल हुआ करते हैं। कृतकाल० का तीसरा अर्थ 'पत्रभङ्ग-मकरिका के पक्ष में यह है—जिसके पास काल—यम—है। दुर्वासा की भ्रुकुटि काल—मृत्यु—को पास में रखने वाली थी, क्योंकि उसका शाप काल का आह्वान था। भ्रुकुटि यम की उपस्थिति में यमपत्नियों के मुखों पर अलंकरण-रूप में 'मकरिका'—मगरमच्छ की पत्रभंगि थी, क्योंकि भ्रुकुटि मगरमच्छ की आकृति-जैसी हुआ करती है। मगरमच्छ मृत्यु का प्रतीक हुआ करता है, अतः यमपत्नियों के मुखों पर मकराकृतियों का चित्रण समुचित ही है। अतिलोहितेन०=क्रोध में दुर्वासा की आँखें लाल हो उठी थीं, वे खून-सा टपकाती दिखाई पड़ रही थीं। इसी से कवि ने कल्पना की कि मानो मुनि क्रोधाधिष्ठात्री देवी को अपने ही खून की बलि दे रहा हो। निर्दयदष्ट०—दुर्वासा ने क्रोध में अपना ओंठ काटा, तो दाँतों की

हिन्दी—उसे उस तरह हँसती देखकर वह मुनि (दुर्वासा)—'अरी पापिनी ! बुरी तरह से प्राप्त किये विद्या के कण के अभिमान में बिगड़े मस्तिष्क वाली !'—यह कहकर शिर हिलाने से गाँठ टूट जाने पर बिखरे हुए, चमकती हुई पीलिमा वाले जटा-कलाप की कान्ति से मानो क्रोधाग्नि के द्रव से दस दिशाओं को सींचता हुआ, (मुख पर) कालिमा आ जाने से अन्धेरे बने, काले मोहरों से युक्त भाल-रूपी शतरंज के फलक वाली काल (यम) की उपस्थिति में उसकी पत्नियों के (कपोलों पर) शोभार्थ चित्रित मकराकृति रूपी भ्रुकुटि को तानता हुआ, लाल-लाल आँख से क्रोध की देवी को अपने रुधिर की बलि-जैसी देता हुआ, जोर से काटे हुए होठ के डर के कारण भागती हुई-सी

---

१. अन्तकमण्डन, अन्तकान्तःपुरमण्डन। २. दशनच्छदो, दन्तांशुच्छलेन।

पट्टस्येव प्रंसावस्रंसिनो ग्रथ्नन्ग्रन्थिमन्यथा कृष्णाजिनस्य, स्वेदकणप्रतिबिम्बितैः शापशङ्काशरणागतैरिव सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवः, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिना करेण प्रसादनलग्नामक्षरमालामिवाक्षमालामाक्षिप्य कामण्डलवेन वारिणा समुपस्पृश्य शापजलं जग्राह ।

टीका—देवतायै=अधिष्ठात्र्यै देव्यै, स्वस्य रुधिरस्य=रक्तस्य, उपहारं=बलिम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, प्रयच्छन्= ददत्, निर्दयं=निष्करुणं दृढमिति यावत् यथा स्यात्तथा, दष्टः=संदष्टः, दशनच्छदः=अधरोष्ठः तस्मात् यद् भयं तेन पलायमानाम्=त्वरया बहिर्गच्छन्तीम्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वाचम्=वाणीम् रुन्धन्=निवारयन्, दन्तानाम्=दशनानाम् अंशवः=किरणाः, तेषां छलेन=व्याजेन, व्याजापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षालङ्कारः, अंसात्=स्कन्धात् न अवस्रंसते= अधः पततीत्यवस्रंसि तस्य क्रोधावेशकारणात्स्रंसमानस्येत्यर्थः कृष्णाजिनस्य=कृष्णवर्ण-मृगचर्मणः शापस्य शासनपट्टम्=आज्ञा-पत्रम् तस्य इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ग्रन्थि=गाँठ इति भाषायाम्, अन्यथा=प्रकारान्तरेण क्रोधावेश-कारणादयुक्तप्रकारेणेति भावः, ग्रथ्नन्=बध्नन्, स्वेदस्य=घर्मजलस्य कणेषु=बिन्दुषु, प्रतिबिम्बितैः=प्रतिफलितैः शापस्य शङ्का=भयं तया शरणम् आगतैः प्राप्तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सुराश्च मुनयश्च तैः, प्रतिपन्नाः=समाश्रिताः सर्वे अवयवाः=अङ्गानि यस्य तथाभूतः, कोपेन=क्रोधेन यः कम्पः=वेपथुः, तेन तरलिताः=चलिताः अङ्गुलयो यस्य तेन करेण=हस्तेन, प्रसादनाय=प्रसन्नीकरणाय, लग्नां=सक्ताम्, अक्षराणां=वर्णानां मालाम्=पङ्क्तिम्, इव, अक्षमालां=रुद्राक्षमालाम्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आक्षिप्य=प्रक्षिप्य, त्यक्त्वेत्यर्थः, कामण्डलेन=कमण्डलोः इदमिति (कमण्डलु+अण्) कामण्डलं तेन वारिणा=जलेन, समुपस्पृश्य=आचम्य शापाय जलम् इति शापजलं, जग्राह= गृहीतवान् ।

टिप्पणी—श्वेत छटा बाहर निकली। इस पर कवि कल्पना करता है कि मुनि की वाक् को डर लगा कि मुनि ने ओंठ काटा तो मेरे साथ भी ऐसा ही व्यवहार कर बैठेगा। वह बाहर भाग निकलने लगी। मुनि समझ गया। वह अपने दांतों की किरणों के बहाने उसे रोकने लगा। शापशासनपट्ट॰ क्रोध में दुर्वासा का शरीर काँप उठा, तो कन्धे का मृगचर्म खिसकने लगा। वह उसे फिर बाँधने लगा। मृगचर्म तो उसके पास मानो शाप देने का आज्ञा-पत्र था। दानादि-कार्यों में आज्ञा-पत्र या तो ताम्र-पट्ट अथवा कोमल वस्त्र-खण्ड के रूप में होता था। मृदु मृगचर्म भूरे रंग का सा था। वह कोमल वस्त्र बना और उस पर काले धब्बे काली स्याही में लिखे आज्ञा के अक्षर थे। स्वेदकणप्र॰—क्रोध में दुर्वासा गरमाया, तो सारे शरीर में पसीने की बूदें झलक उठीं और उन पर गोष्ठी में बैठे सभी सुरासुर मुनियों की परिछाई पड़ गई। कवि कल्पना करता है कि मानो वे सब शाप के भय से मुनि की शरण में चले गए यह अनुनय-विनय करने कि 'महाराज, शाप न दीजिए'। अक्षरमालामिव—क्रोध में दुर्वासा ने हाथ की अक्षमाला फेंक दी। इस पर कवि कल्पना करता है कि वह अक्षमाला मानो अक्षरों की माला थी, जो दुर्वासा को मनाने के लिए उसका हाथ पकड़े हुए थी कि सरस्वती को शाप न दीजिए। अक्षर वाक् के ही अंग होते हैं और साकार वाक् ही सरस्वती है। सरस्वती की पक्षपाती वर्णमाला अपनी स्वामिनी की तरफ से सिफारिश करने आई, पर उस क्रोधी ने उसे इस विचार से हटा दिया कि मेरे काम में किसी को भी हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। व्यङ्ग्यार्थ यह निकला कि दुर्वासा के हाथ में अक्षमाला सरस्वती की पक्षपातिनी अक्षरमाला ही थी। अक्ष अक्षरों का संक्षिप्त रूप है। अ से लेकर क्ष तक सभी अक्षर प्रत्याहार की तरह इसके अन्तर्गत हैं, अतः दुर्वासा सरस्वती की पक्षपातिनी अक्षरमाला को क्यों अपने हाथ में रखता ?

हिन्दी—वाणी को दाँतों की किरणों के बहाने रोकता हुआ, कन्धे से खिसकते हुए शाप के आज्ञा-पत्र-जैसे काले मृगचर्म को दूसरे ही ढंग से बाँधता हुआ, पसीने के कणों में प्रतिबिम्बित शाप-भय से शरण में आये हुए सुर, असुर और मुनियों द्वारा सभी अंगों में जकड़ा हुआ-सा, मनाने में लगी हुई अक्षर-माला-जैसी रुद्राक्ष-माला को पटककर उसने फेंक दिया। क्रोध में काँपती हुई अंगुलियों वाले हाथ से कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिए जल ग्रहण कर बैठा।

अत्रान्तरे स्वयम्भुवोऽभ्याशे समुपविष्टा देवी मूर्तिमती पीयूषफेनपटलपाण्डरं कल्पद्रुमदुकूलवल्कलं वसाना, बिसतन्तुमयेनांशुकेनोन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः, तपोबलनिर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिरिव तिसृभिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितलला॰टाजिरा, स्कन्धावलम्बिना[1] सुधाफेनधवलेन तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन[1] गङ्गास्रोतसेव योगपट्टकेन विरचितवैकक्ष्यका, सव्येन ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव स्फटिककमण्डलुं करेण कलयन्ती, दक्षिणमक्षमालाकृतपरिक्षेपं कम्बुनिर्मितोर्मिका-

---

टीका—अत्रान्तरे=एतन्मध्ये, स्वयम्भुवः=ब्रह्मणः अभ्याशे=समीपे समुपविष्टा=स्थिता, मूर्तिमती=मूर्तरूपा इतः परं सावित्र्या विशेषणानि। पीयूषस्य=अमृतस्य, फेन-पटलं=फेन-समूहः तद्वत् पाण्डरं=श्वेतं, कल्पद्रुमस्य=कल्प-वृक्षस्य, दुकूलवत्=कौशेयवस्त्रवत् वल्कलं=त्वचं वसाना=परिदधती, बिसस्य=मृणालस्य तन्तवः=सूत्राणि तान्येव तन्मयेन=तत्स्वरूपेण (स्वरूपार्थे मयट्), अंशुकेन सूक्ष्म-वस्त्रेण उन्नतौ=उच्चौ यौ कुचौ=स्तनौ तयोर्मध्ये बद्धा गात्रिका-ग्रन्थिः=ग्रन्थि-विशेषः (स्वस्तिकाकारः स्त्रीणाम् उत्तरीयस्य स्तनमध्ये भवति) यया सा, तपसः=तपस्यायाः बलेन=प्रभावेण निर्जितं=पराजितं यत् त्रिभुवनं=त्रयाणां भुवनानां समाहारः इति, लोकत्रयमित्यर्थः, तस्य जयः विजयः तस्य पताकाभिः=ध्वजैः इवेत्युपमायाम्, तिसृभिः=त्रिसंख्याकाभिः, भस्मनः पुण्ड्रराजिभिः=पङ्क्तिभिः ('वक्रा ललाटगास्तिस्रो भस्मरेखास्त्रिपुण्ड्रकम्') विराजितं=शोभितं, ललाटम् अजिरं प्राङ्गणमिव (उपमिततत्पु॰) यस्याः सा, स्कन्धयोः=अंसयोः अवलम्बत इति तेन स्कन्धलम्बेनेत्यर्थः, सुधा=अमृतं तस्य फेनवद् धवलेन=श्वेतेन तपसः प्रभावः=बलं, तेन अकुण्डलं कुण्डलं सम्पद्यमानं कृतमिति कुण्डलीकृतं तेन, कुण्डलं स्त्रीणां गोलाकारं कर्णाभरणं, तद्वत् गोलाकारं प्रापितेनेत्यर्थः, गङ्गायाः=भागीरथ्याः स्रोतसा=प्रवाहेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, योगाय=योगसमाध्यर्थं पट्टमेव पट्टकं=वस्त्र-विशेषः अर्थात् यद्वस्त्रेण पृष्ठ-जानु-बन्धनं भवति तत्, यथा चोक्तम्—'पृष्ठ-जान्वोः समायोगे वस्त्रं वलयवद् दृढम्। परिवेष्टय यदूर्ध्वंजुस्तिष्ठेत् तद् योगपट्टकम्', तेन विरचितं=कृतं वैकक्ष्यकं=यज्ञोपवीतवत् उरसि तिर्यक् क्षिप्तं माल्यादि (यथाऽऽहामरः'—वैकक्ष्यकं तु तत्। यत् तिर्यक् क्षिप्तमुरसि), यया सा, सव्येन=वामेन ब्रह्मणः=परमेष्ठिनः उत्पत्तिः=जन्म यस्मात् तत् यत् पुण्डरीकं=कमलं तस्य मुकुलं=कलिकाम् इवेत्युपमायाम् स्फटिकस्य कमण्डलुम् करेण=हस्तेन कलयन्ती=धारयन्ती दक्षिणम्=अक्षमालया=रुद्राक्षमालया, कृतः परिक्षेपः=परिवेष्टनं यस्य तादृशः कम्बुः=शङ्खः, तेन निर्मिता=रचिता ऊर्मिकाः=अङ्गुरीयकाणि ताभिः दन्तुरितं=उन्नताः दन्ता सन्ति अस्येति (दन्त+उरच्=दन्तुरः, दन्तुरः कृत इति दन्तुरितः), तम् उन्नतावनतमिति यावत् तर्जने—भर्त्सने, तरलिता=चालिता तर्जनी=प्रदेशिनी अङ्गुष्ठात् परवर्तिनी अङ्गुलिरित्यर्थः यस्य तादृशं हस्तम् उत्क्षिपन्ती=उत्थापयन्ती! पाप!=पापिन्! क्रोधेन उपहत=मारित! दुष्ट आत्मा यस्य तत्सम्बुद्धौ इति दुरात्मन्! अज्ञ=मूर्ख! अनात्मज्ञ=आत्मानं न जानातीति तत्सम्बुद्धौ, ब्रह्म-बन्धो ब्राह्मणस्य बन्धुः परं ब्राह्मणोचित-कर्मानुष्ठानाभावाज्जातिमात्रेण ब्राह्मणः तत्सम्बुद्धौ नीच-ब्राह्मण इति यावत्

टिप्पणी—पुण्ड्रक-राजिभिः—भस्म की माथे पर लगाई तीन पड़ी रेखाओं को त्रिपुण्ड्रक कहते हैं। इसका विधान देखिए - 'ऊर्ध्व-पुण्ड्रमृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना सदा। तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन निजेच्छया।' इनकी कवि त्रिलोक-विजय की तीन पताकाओं से तुलना करता है। ललाट बना अजिर-सा जिस पर कोई भी विजेता अपनी विजय-पताका फहराया करता है। योगपट्टकम्—योगी का एक वस्त्र-विशेष होता है जिससे वह ध्यान के समय अपने को कमर से लेकर जानु तक कसकर बाँधे रहता है। वैकक्ष्यकम्—विशिष्टः कक्षः विकक्षः=उरः तत्र भवम्। बायें कन्धे से यज्ञोपवीत की तरह तिरछे डाली हुई कोई भी वस्तु—जैसे हार, दुपट्टा आदि वैकक्ष्यक या वैकक्षक या वैक्षक कही जाती है। आजकल भी बहुत से पण्डित लोग अथवा लड़कियाँ गर्ल्स गाइड की तरह चौपर्त दुपट्टे को

हिन्दी—इसी बीच ब्रह्मा के समीप बैठी हुई देवी मूर्तरूप (सावित्री) अमृत के फेन-समूह की तरह श्वेत कल्प-वृक्ष का रेशम-जैसा वल्कल पहने हुए, मृणाल-तन्तुओं से बने महीन वस्त्र द्वारा ऊँचे स्तनों के मध्य स्वस्तिकाकार-सी गाँठ बाँधे हुए, तप के बल से जीते हुए तीनों लोकों की विजय-पताकाओं की तरह भस्म के पुण्ड्र क की तीन रेखाओं से शोभित प्राङ्गण-सदृश ललाटवाली, कन्धे पर लटके हुए अमृतफेन की तरह श्वेत योग-पट्ट का इस तरह वैकक्ष्यक बनाये हुए जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो तपके प्रभाव से उसने गङ्गा का प्रवाह गोलाकार कर रखा हो, बायें हाथ से ब्रह्मा को जन्म देने वाले कमल के मुकुल की तरह स्फटिक का कमण्डल धारण करती हुई, रुद्राक्ष-माला द्वारा वेष्टित, शंख की बनी अंगूठियों से ऊँचा-नीचा, (दुर्वासा की) भर्त्सना में हिलती हुई तर्जनी-अंगुलि

---

१. ॰लम्बिना फेन॰।
२. गगन-गङ्गा॰

वल्गुरितं तर्जनतरङ्गिततर्जनीकमुत्क्षिपन्ती करम्, 'आः पाप, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनि-खेट, अपसद, निराकृत, कथमात्मस्खलितविलक्षः सुरासुरमुनिमनुजवृन्दवन्दनीयां त्रिभुवनमातरं भगवतीं सरस्वतीं शप्तुमभिलषसि' इत्यभिदधाना, रोषविमुक्तवेत्रासनैरोङ्कार[1]मुखरैरुत्क्षेपदोलायमानजटाभारभरितदिग्भिः परिकरबन्ध-भ्रमितकृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामायमानदिवसैरमर्षनिःश्वासदोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः सोमरसमिव स्वेदविसरव्याजेन स्रवद्भिरग्निहोत्रभस्मस्मेरललाटैः कुशतन्तुचारुचामरचीरचीवरिभिराषाढिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैर्मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह वृषीमपहाय सावित्री समुत्तस्थौ ।

टीका—मुनि-खेट != मुनिषु खेट = अधम ! ('खेट-गर्ह्याणकाः समाः' इत्यमरः) अपसद != नीच ! निराकृत != निष्कासित ! 'निराकृतोऽस्वाध्यायः' इति कश्चिट्टीकाकारः अर्थात् वेदम् अनधीयान ! आत्मनः = स्वस्य स्खलितं = दोषः तेन विलक्षः = विस्मयान्वितः ('विलक्षो विस्मयान्विते' इत्यमरः) लज्जित इति यावत् सुरा०—सुराश्च असुराश्च मुनयश्च मनुजाश्च तेषां वृन्दानि = समूहाः तैः वन्दनीयां = प्रणम्यां, त्रिभुवनस्य = त्रैलोक्यस्य मातरम् = जननीं, शप्तुं = शापविषयीकर्तुम् अभिलषसि = इच्छसि इति अभिदधाना = कथयन्ती रोषात् = क्रोधात् विमुक्तं = त्यक्तं वेत्रासनं = वेत्रनिर्मितमासनं यैः तथाभूतैः, इतः पराणि 'वेदैः' इत्यस्य विशेषणानि, ओङ्कारेण = प्रणवेन 'ओम्' इति ध्वनिनेत्यर्थः मुखरितं = शब्दायमानं मुखं येषां तैः उत्क्षेप०—उत्क्षेपेण = उत्थानेन दोलायमानः = दोलां करोतीति (दोला + क्यङ् + शानच्) दोलन-विशिष्टः इतस्ततश्चलन् इत्यर्थः यः जटानां = लग्नकचानां भारः = समूहः तेन भरिताः = पूरिताः दिशः = दिशा यैः तथाभूतैः, परिकर०—परिकरः = कटिवस्त्रं तस्य यः बन्धः = बन्धनं तस्मिन् भ्रमितं = चालितं यत् कृष्णाजिनं = कृष्णमृगचर्म, तस्य आटोपः = विस्तारः तस्य छाया = कान्तिः तया श्यामायमानः = श्यामीभवन् दिवसः येषां तथाभूतैः, तद्गुणालङ्कारः, अमर्ष० अमर्षः = क्रोधः तस्मात् ये निःश्वासाः = दीर्घ-श्वासो-च्छ्वासाः ते एव दोलाः = प्रेङ्खाः ('हिण्डोला' इति भाषायाम्) तासु प्रेङ्खोलितः = दोलितः ब्रह्मलोकः यैस्तथाभूतैः । सोमः = एतदाख्यलताविशेषः तस्य रसः = द्रवः तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, स्वेदः = घर्मजलं तस्य विसरः = समूहः तस्य व्याजेन = कैतवेन स्रवद्भिः = क्षरद्भिः प्रवाहयद्भिरित्यर्थः व्याजापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षालङ्कारः । अग्नि०—अग्निहोत्रम् = आग्नेयं होत्रं = हविः यत्रेति प्रत्यहं प्रातः सायं क्रियमाणः यज्ञविशेषः, तस्य पवित्रं यद् भस्म तेन स्मेरं = स्मयमानं भासमानमिति यावत् ललाटं = भालं येषां तैः, कुश०—कुशस्य = दर्भस्य ये तन्तवः = सूत्राणि तेषां तन्निर्मितमित्यर्थः चारु = सुन्दरं चामरं च चीराणां = वल्कलानां चीवराणि = वस्त्राणि च सन्ति एषाम्, आषाढः = पलाश-दण्डः ('पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यमरः) अस्ति एषाम्, प्रहरणी०—अप्रहरणं प्रहरणं सम्पद्यमानं कृतमिति प्रहरणीकृतं कमण्डलूनां मण्डलं = समूहः यैः तथाभूतैः, मूर्तैः = मूर्तिमद्भिः साकारैरिति यावत् चतुर्भिर्वेदैः सह वृषीं = कुश-निर्मितमासनम् ('व्रतिनामासनं वृषी' इत्यमरः) अपहाय—त्यक्त्वा, सावित्री समुत्तस्थौ—समुत्थितवती ।

टिप्पणी—बायें कन्धे के ऊपर दायें कन्धे के नीचे बाँधे रहती हैं। **ब्रह्मबन्धु**—ब्रह्म का अर्थ यहाँ ब्राह्मण है। ब्राह्मण-भाई को ब्रह्मबन्धु कहते हैं अर्थात् जो जाति का तो ब्राह्मण है, परन्तु ब्राह्मणोचितकर्म सन्ध्यावन्दनादि नहीं करता, वह ब्रह्म-बन्धु, विप्रबन्धु ब्राह्मणब्रुव अर्थात् नीच ब्राह्मण कहलाता है। यह शब्द ब्राह्मणों को गाली देने में प्रयुक्त होता है। **सोमरसमिव**—चारों साकार वेदों को क्रोध आ जाने के कारण उनके शरीर से पसीने की बूंदें चूने लगीं जिस पर कवि कल्पना करता है कि वे पसीने की बूंदें नहीं थीं, प्रत्युत पसीने के बहाने मानो वे सोमरस की बूंदों को बाहर निकाल रहे थे, जिन्हें उन्होंने पी रखा था।

हिन्दी—वाला दायाँ हाथ खड़ा करते हुए—"अरे पापी ! क्रोध का मारा ! दुष्टात्मा ! मूर्ख ! अपने को न जानने वाला, नीच ब्राह्मण ! अधम मुनि ! निकृष्ट ! बहिष्कृत ! अपने दोष से लज्जित हुआ तू क्यों देवों, असुरों मुनियों एवं मनुजों के समूह द्वारा पूजी जाने वाली, तीनों लोकों की माता भगवती सरस्वती को शाप देना चाहता है ?" कहती हुई उन साकार चारों वेदों के साथ-साथ—जिन्होंने क्रोध से अपने बेंत का आसन छोड़ दिया था, जिनका मुख 'ओम्' ध्वनि से मुखरित हो रहा था, जिन्होंने उठने के कारण हिलते हुए जटा-भार से दिशायें भर दी थीं, जिनके कमर कसते (समय) हिले काले मृग-चर्म के विस्तार की छटा से दिन काला हो रहा था, जो क्रोध के कारण (निकले) दीर्घ-निश्वासों की भूलाओं में ब्रह्मलोक को हिला बैठे थे; जो पसीने की बूंदों के बहाने मानो सोम-रस को टपका रहे थे, जिनका माथा अग्निहोत्र की भस्म से खिला हुआ था, जो कुश के तन्तुओं का चामर, तापसों का वल्कल-वसन और पलाश दंड रखे हुए थे एवं जो कमण्डलु के समूह को (ही) अपना शस्त्र बनाये हुए थे—कुशासन को छोड़कर सावित्री उठ खड़ी हुई।

---

१. आक्षेप ।

ततो 'मर्षय भगवन्, अभूमिरेषा शापस्य' इत्यनुनाथ्यमानोऽपि विबुधैः, 'उपाध्याय, स्खलितमेकं क्षमस्व' इति बद्धाञ्जलिपुटैः प्रसाद्यमानोऽपि स्वशिष्यैः, 'पुत्र, मा कृथास्तपसः प्रत्यूहम्' इति निवार्यमाणोऽप्यत्रिणा, रोषावेशविवशो दुर्वासाः 'दुर्विनीते, व्यपनयामि ते विद्याजनितामुन्नतिमिमाम्, अधस्ताद् गच्छ मर्त्यलोकम्' इत्युक्त्वा तच्छापोदकं विससर्ज। प्रतिशापदानोद्यतां सावित्रीं 'सखि, संहर रोषम्, असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः' इत्यभिदधाना सरस्वत्येव न्यवारयत्।

अथ तां तथा शप्तां सरस्वतीं दृष्ट्वा पितामहो भगवान्कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव धवलयज्ञोपवीतिनीं तनुमुद्वहन्, उद्गच्छदच्छाङ्गुलीयकमरकतमयूखलताकलापेन त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणेव दक्षिणेन करेण निवार्य

टीका—मर्षय=क्षमस्व अभूमिः=अस्थानम् अपात्रमिति यावत्, अनुनाथ्यमानः=प्रार्थ्यमानः विबुधैः=देवैः, स्खलितं=दोषम् अपराधमित्यर्थः, बद्धं=कृतमित्यर्थः अञ्जलिपुटम्=कर-सम्पुटः यैः तैः प्रसाद्यमानः=अनुनीयमानः, स्वशिष्यैः=स्वच्छात्रैः. मा कृथाः=न कुरु तपसः प्रत्यूहं=विघ्नम्, शापेन हि तपःक्षयो भवतीत्यर्थः; निवार्यमाणः=रुध्यमानः, रोषः=क्रोधः तस्य आवेशः=आवेगः तस्य विवशः=विशेषेण अधीनः, दुर्विनीते!=धृष्टे, निर्लज्जे! इत्यर्थः। व्यपनयामि=अपसारयामि, दूरीकरोमि, विद्यायाः लवः=कणः तेन यः अवलेपः=अभिमानः तस्य विशेषः=अतिशयः तेन जनितां=कृताम् उन्नतिम्=उत्कर्षम्। अधस्तात्=नीचैः, मर्त्यलोकं=मनुष्यलोकम्। इति उक्त्वा=कथयित्वा, तत् शापाय=शापदानायेत्यर्थः उदकं=जलं विससर्ज=तत्याज, प्रक्षिप्तवानित्यर्थः। ततः प्रतिशापः=प्रतिगतः शापः शापस्योत्तरे शाप इत्यर्थः तस्य दानं तस्मिन् उद्यताम्=उद्युक्तां, संहर=अपनय, रोषं=क्रोधम्। न संस्कृता=परिष्कृता विशुद्धेति यावत् मतिः=बुद्धिः येषां ते जात्या एव=जन्ममात्रेण, द्विजन्मानः=द्वे जन्मनी येषां ते द्विजाः ब्राह्मणा इत्यर्थः, माननीयाः=मानयोग्याः इति अभिदधाना=कथयन्ती सरस्वती एव न्यवारयत्=निरुद्धवती। शप्तां=दत्तशापाम्, पितामहः=ब्रह्मा, कमल०=कमलात् विष्णोर्नाभिपद्मात्=उत्पत्तिः=जन्म तस्यां लग्नानि=संसक्तानि मृणालानां=बिसानां सूत्राणि=तन्तवः यस्याः ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् धवलं=श्वेतं यज्ञोपवीतम् अस्या अस्तीति धवलयज्ञोपवीतिनी तां तनुं=शरीरम् उद्वहन्=धारयन्। उद्गच्छत्—उद्गच्छन्=उत्सर्पन् अच्छस्य=स्वच्छस्य अङ्गुलीयकमरकतस्य अङ्गुलीयक-स्थित-मरकतमणेरित्यर्थः ये मयूखाः=किरणाः लता इव तेषां कलापः=समूहः यस्मिन् तेन, त्रिभुवन०—त्रिभुवनस्य=त्रिलोकस्य उपप्लवः=संकटः, विपत्तिः तस्य प्रशमाय=

टिप्पणी—द्विजन्मानः—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों को द्विजन्मा अथवा द्विज कहते हैं, क्योंकि इनके दो जन्म होते हैं—एक तो माता के उदर से और दूसरा संस्कारों से। देखिये याज्ञवल्क्य—'मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्। ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः।'' प्रकृत में 'द्विज शब्द से ब्राह्मण ही लिया जाता है। ब्राह्मण सर्वथा पूज्य होते हैं—इसके लिए देखिए महाभारत—''यथा श्मशाने दीप्तौजाः पावको न प्रदुष्यति। एवं विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवतं महत्॥''

त्रिभुवनो०—सरस्वती को शाप दिये जाने पर तीनों लोकों के लिए एक महान् संकट उपस्थित हो गया था। उसका शमन आवश्यक था। उपद्रव-शमन की शक्ति कुश में ही हुआ करती है। कुश शब्द की 'कु=पापं श्यति=नाशयतीति कुशः' इस व्युत्पत्ति में ही यह अर्थ निहित है। इसलिए कवि ब्रह्मा के हाथ में पहनी अंगूठी में जड़ी मरकत मणि की लम्बी-लम्बी फैली हुई किरणों के समूह में 'कुशापीड' की कल्पना करता है।

हिन्दी—तदनन्तर ''क्षमा कीजिए भगवन्! यह शाप के योग्य नहीं है।'' इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थित किया जाता हुआ भी, ''गुरुजी! एक अपराध क्षमा कर दें'' इस तरह अंजलि-बाँधे अपने शिष्यों द्वारा मनाया जाता हुआ भी, ''बेटा, (अपने) तप में विघ्न मत डालो'' यों (पिता) अत्रि द्वारा रोका जाता हुआ भी क्रोधावेश के विवश हुआ दुर्वासा ''दुष्टा! विद्या द्वारा उत्पन्न हुए तेरे इस उत्कर्ष को दूर करता हूँ। जा नीचे मर्त्यलोक में चली जा''—यह कह कर शाप देने के लिये उस जल को छोड़ बैठा। शाप के उत्तर में शाप देने के लिए तय्यार हुई सावित्री को—सखी! क्रोध ठंडा करो, अशुद्ध बुद्धि वाले होते हुए भी ब्राह्मण जाति-मात्र से पूज्य हुआ करते हैं—ऐसा कहती हुई सरस्वती ही रोक बैठी।

इसके बाद उस तरह शाप-ग्रस्त सरस्वती को देखकर ब्रह्मा उन्हीं को जन्म देने वाले कमल के मृणालों के लगे हुए तन्तुओं-जैसे प्रतीत हो रहे श्वेत यज्ञोपवीत वाले शरीर को रखते हुए दायें हाथ से—जिसमें अंगूठी पर (जड़े) मरकत की ऊपर उठती हुई निर्मल लता-सी किरणावली ऐसी लग रही थी कि मानो तीनों लोकों के संकट

शापकलकलम्, अतिविमलदीर्घैर्भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातमिव दिक्षु पातयन् दशनकिरणैः, सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव पूरयन्नाशाः स्वरेण, सुधीरमुवाच—'ब्रह्मन्, न खलु साधुसेवितोऽयं पन्था येनासि प्रवृत्तः। निहन्त्येष परस्तात्। उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्। कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते। विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा। निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि। क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न त आत्मरागदोषं पश्यति। क्व महातपोभारवैवधिकता, क्व पुरोभागित्वम्। अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः। नहि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा। कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः। आदाविन्द्रियाणि[1] रागः समास्कन्दति,

टीका—शान्तये, यः कुशानाम् आपीडः=समूहः तं धारयतीति तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दक्षिणेन करेण=हस्तेन निवार्य=निरुद्धय शापकलकलं=शापकृत-कोलाहलम्, सरस्वत्यै शापदानात्तत्र महान् कोलाहलः समभूत्। अति०—अतिशयेन विमलैः=श्वेतैः दीर्घैश्च, भाविनः=भविष्यतः कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य आरम्भे यः सूत्रस्य=तन्तोः पातः=विन्यासः मानार्थमिति शेषः, तम्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दिक्षु=दिशासु, पातयन्=कुर्वन्नित्यर्थः, अत्र पातस्य पातो न सम्भवतीति जीवानन्दानुसारेण—"इह केवलधात्वर्थगतानुष्ठानवृत्तिकः क्रियार्थः"। दशनानां=दन्तानां किरणैः=अंशुभिः, सरस्वत्याः प्रस्थानं=शापकारणात् मर्त्यलोकगमनं, तस्य मङ्गलः=माङ्गलिकः यः पटहः=दुन्दुभिः=तेन तद्ध्वनिनेत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पूरयन् भरन् आशाः=दिशाः सुधीरं=सुगम्भीरं यथा स्यात् तथा उवाच=प्रोक्तवान्। ब्रह्मन्!=ब्राह्मण साधुभिः=सज्जनैः सेवितः अनुसृतः, स्वीकृत इत्यर्थः अयं पन्थाः=मार्गः येन प्रवृत्तः असि। उद्दाम०—उद्गतं दाम्नः=बन्धनात् इत्युद्दामम्=उच्छृङ्खलं यथा स्यात् तथा प्रसृतानि=चलितानि इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि, एव वाजिनः=अश्वाः तैः समुत्थापितं=समुत्क्षिप्तं रजः=रागः रेणुश्च, कलुषयति=कलुषां करोति, आविलयति, दृष्टि=ज्ञानं चक्षुश्च, अक्षाणि=इन्द्रियाणि जयतीति अक्षजित् (कर्तरि क्विप्) न अक्षजित् इत्यनक्षजित् तेषाम्=अजितेन्द्रियाणाम्। चक्षुः ईक्षते=पश्यति। कृतबुद्धयः=कृता, परिष्कृता बुद्धिः=मतिः येषां ते विद्वांसः असतः सतः=अनुचितोचितानित्यर्थः। निसर्गतः=स्वभावतः विरोधिनी=विरुद्धा पयश्च पावकश्च तयोः=जल-वह्न्योः एकत्र=एकस्मिन् स्थाने काले वा वृत्तिः=अवस्थानम्। आलोकं=प्रकाशम् अपहाय=त्यक्त्वा। परस्य दोषस्य=त्रुटेः दर्शने दक्षा=चतुरा कुपिता=पित्तविकारं क्रोधं च प्राप्ता आत्मनि=स्वस्मिन्, यः रागः=(दृष्टिपक्षे) लालिमा=(बुद्धिपक्षे)=मनोविकारः आसक्तिः तस्य दोषं=स्खलितम्। महा०—महच्च तत् तपः तस्य भारः तस्य वैवधिकता वाहकत्वम् विवधः=स्कन्ध-वाह्यः काष्ठ-विशेषः (वहँगीति भाषायाम्) तेन हरति भारमिति विवधिकः (विवध+ठक्) तस्य भावः तत्ता, पुरोभागिनो भावः पुरोभागित्वम्=दोषैकदृक्त्वम्('दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः)। अतिशयेन रोषतीति अतिरोषणः=अतिक्रोधी चक्षुष्मान्=नयनवान्। कोपेन=क्रोधेन, कलुषिता=आविला मतिः=बुद्धिः न विमृशति=

टिप्पणी—सूत्र-पातमिव—ब्रह्मा के दांतों की सफेद-सफेद किरणें चारों दिशाओं में फैल रही थीं। इस पर भी कवि-कल्पना देखिए—मानो ब्रह्मा कलियुग के बाद अब सत्य-युग का निर्माण करने की सोच रहे हैं। कोई भी शिल्पी भवन-निर्माण से पूर्व चूने की लकीरें लगाता हुआ भूमि को सूत्र से नाप लेता है। ब्रह्मा की श्वेत दशन-किरणें भी युग निर्माण से पूर्व मानों चारों दिशाओं को मापने के सूत हैं।

हिन्दी—शमन करने के लिए कुशाओं की गुच्छी हो—शाप के कोलाहल को रोककर, भविष्यकालीन सत्ययुग का निर्माण करने के लिए (नापने की) डोरियाँ-जैसी प्रतीत होने वाली दाँतों की बिलकुल सफेद लम्बी-लम्बी किरणों को दिशाओं में डालते हुए सरस्वती के (मर्त्यलोक को) प्रस्थान हेतु मांगलिक नगाड़े की ध्वनि-जैसे गम्भीर स्वर में बोले—"ब्राह्मण! जिस रास्ते तुम चले हो, वह सचमुच सज्जनों द्वारा अपनाया हुआ नहीं है। यह आगे मार देता है। कारण यह है कि उच्छृंखल होकर चले हुए इन्द्रिय-रूपी घोड़ों से उड़ाई हुई रज (राग, धूलि) अजितेन्द्रियों की दृष्टि (ज्ञान, चक्षु) को मैला कर देती है। अथवा आँख कितनी दूर देखती है। विद्वान् लोग भली-बुरी सभी बातों को विशुद्ध बुद्धि से देखा करते हैं। धर्म और क्रोध का एक जगह होना ऐसा ही स्वभावतः विरुद्ध है जैसा कि पानी और आग का। प्रकाश को छोड़कर क्यों तुम अन्धेरे में डूब रहे हो? क्षमा सभी तपों का मूल होती है। दूसरों के दोषों को देखने में निपुण पित्तप्रकोप-दूषित तुम्हारी आँख की तरह तुम्हारी कोप-भरी बुद्धि अपने राग (लाली, आसक्ति) का दोष नहीं देखती। कहाँ तो महातप का भार धारण करना और कहाँ दूसरों की बुराई देखना। अतिक्रोधी व्यक्ति आँख वाला होता हुआ भी अन्धा ही है। क्रोधी की विद्या पर अंधेरा पहले छाता है, तब भौंह पर।

1. इन्द्रियाधिष्ठानं रागः।

चरमं चक्षुः । आरम्भे तपो गलति, पश्चात्स्वेदसलिलम् । पूर्वमयशः स्फुरति, अनन्तरमधरः । कथं लोकविनाशाय ते विषपादपस्येव जटावल्कलानि जातानि । अनुचिता खल्वस्य मुनिवेशस्य हारयष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः । शैलूष इव वृथा वहसि कृत्रिममुपशमशून्येन चेतसा तापसाकल्पम् । अल्पमपि न ते पश्यामि कुशलजातम् । अनेनातिलघिम्नाद्याप्युप-र्येव प्लवसे ज्ञानोदन्वतः । न खल्वनेलमूका एडा[1] जडा वा सर्व एते महर्षयः । रोषदोषनिषद्ये स्वहृदये निग्राह्ये किमर्थमसि निगृहीतवाननागसं सरस्वतीम् । एतानि तान्यात्मप्रमाद[2]स्खलितवैलक्ष्याणि, यैर्याति [3]वाच्यतामविदग्धो जन' इत्युक्त्वा पुनराह—'वत्से सरस्वति विषादं मा गाः । एषा त्वामनुयास्यति सावित्री विनोदयिष्यति चास्मद्विरहदुः-खिताम् । आत्मजमुखकमलावलोकनावधिश्च ते शापोऽयं भविष्यति' इति । एतावदभिधाय विसर्जितसुरासुरमुनिमनुज-मण्डलः ससंभ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः समुचिताह्निककरणायोदतिष्ठत् । सरस्वत्यपि शप्ता किञ्चिदधोमुखी

टीका—विचारयति । अन्धकारीभवति = अन्धकाराच्छन्ना भवति । रागः = आसक्तिः, लालिमा च । समास्कन्दति = आक्रामति अभिभवति, चरमं = पश्चात् । गलति = नश्यति, (स्वेदपक्षे) स्रवति । स्फुरति = उद्भवति, (अधरपक्षे) कम्पते । उपरि प्रस्तुतानाम् एकधर्माभिसम्बन्धात् तुल्ययोगिता । विष-पादपस्य = विष-वृक्षस्य जटा = मूलं पक्षान्तरे लग्नकचाः ('मूले लग्नकचे जटा' इत्यमरः) वल्कलानि = त्वचः, पक्षान्तरे वल्कल-वसनानि, हारः यष्टिः इवेति उपमित-तत्पुरुषः । वृत्त-मुक्ताः = वृत्ताः = वृत्ताकाराः गोलाकारा इति यावत्, मुक्ताः = मौक्तिकानि यस्यां, पक्षान्तरे वृत्तेन = सदाचारेण मुक्ता = त्यक्ता रहितेति यावत्, चित्तस्य वृत्तिः = मनोवृत्तिः, अत्र श्लेषोपमा । शैलूषः = नटः इव कृत्रिमम् = कृत्या निर्वृत्तं ($\sqrt{}$कृ + क्ति + मप्) कृतकमित्यर्थः । उपशमः = शान्तिः तेन शून्यं = रहितं तेन, तापसानां = तपस्विनाम् आकल्पं = वेशम् भूषाञ्च । कुशलानां = कल्याणानां जातं = समूहम् लघोर्भावः लघिमा = नीचता, गुरुत्वा-भावश्च (समुद्रपक्षे) अतिशायितः लघिमा तेन, अद्य अपि उपरि एव, प्लवसे = तरसि, ज्ञानम् एव उदन्वान् = समुद्रः तस्येति रूपकालङ्कारः । अनेला (डा) श्च ते मूकाश्च = श्रोतुं वक्तुं चासमर्थाः (जडोऽज्ञेऽनेडमूकस्तु वक्तुं श्रोतुमशिक्षिते' इत्यमरः) एडाः = बधिराः जडाः = मूर्खाः अर्थात् ते विद्वांसः सन्ति, तेषामग्रे स्व-स्वरभङ्गकृते त्वया लज्जितव्यमासीत्, परमेतद्विपरीतं त्वं सरस्वतीं शपसि । रोषः = क्रोध एव दोषः तस्य निषद्या = निषीदन्त्यस्यामिति (नि + $\sqrt{}$सद् + क्यप् (अधिकरणे) + टाप्) क्षुद्रखट्वेति त्रिकाण्डशेषः अथवा आपणः (आपणस्तु निषद्यायाम् इत्यमरः) यस्मिन् तथाभूते स्व-हृदये, निग्राह्ये = निग्रहीतुं = रोद्धुं योग्ये, अनागसम् = न आगः = अपराधो यस्याः ताम् सरस्वतीम् । आत्मनः = स्वस्य, प्रमादस्य = अनवधानतायाः स्खलितानि = दोषाः त्रुटयः इत्यर्थः तैः वैलक्ष्याणि = विलक्षस्य भावाः व्रीडितानि लज्जाकृतव्याकुलत्वानीति यावत्, वाच्यतां = निन्द्यताम्, याति = प्राप्नोति अविदग्धः = मूर्खः । विषादं = दुःखं, मा गाः = मा गच्छ । अनुयास्यति = अनुगमिष्यति, अस्माकं विरहः वियोगः, तेन दुःखितां = खिन्नाम्, आत्मज० = आत्मनः जायते इत्यात्मजः = पुत्रः तस्य मुखं कमलमिव (उपमिततत्पु०) तस्य अवलोकनं = दर्शनम् अवधिः = सीमा यस्य तथाभूतः । अभिधाय = कथयित्वा, विसर्जिताः = गन्तुमादिष्टाः सुराश्च असुराश्च मुनयश्च

हिन्दी—पहले इन्द्रियों पर राग (आसक्ति, लाली) आक्रमण करता है, तब चक्षु पर । पहले तप गिरता है, तब पसीना । पहले अपयश स्फुरित होता है, तब होंठ । विष-वृक्ष की जटा (जड़) और वल्कल (त्वचा) की तरह तुम्हारी जटा (केश) और वल्कल (वस्त्र) क्यों संसार के विनाश के लिए हुए हैं ? वृत्तमुक्त (गोल मोतियों की) यष्टि-जैसी माला की तरह तुम्हारी वृत्त-मुक्त (आचारभ्रष्ट) मनोवृत्ति निश्चय से इस मुनि-वेश के अयोग्य है । शान्ति-शून्य मन से तुम नट की तरह व्यर्थ ही तपस्वियों का कृत्रिम वेश रख रहे हो । मैं तुम्हारा थोड़ा सा भी कुशल-समूह नहीं देख रहा हूँ । इस बड़े भारी हल्केपन के कारण तुम आज भी ज्ञान-समुद्र के ऊपर तैर रहे हो । सब महान् ऋषि लोग सचमुच बहरे, गूंगे और मूर्ख नहीं हैं । क्रोध-दोष के आश्रय-भूत अपना हृदय दबाये जाने योग्य रहते-रहते तुम क्यों निरपराध सरस्वती को दबा बैठे । अपनी प्रमादभरी गलतियों से पैदा होने वाली ये वे लज्जा की बातें हैं, जिनसे मूर्ख मनुष्य निन्दा-योग्य होता है''—यह कहकर (ब्रह्मा) फिर बोले—''बेटी सरस्वती ! तुम दुःख मत करो । यह सावित्री तुम्हारे पीछे-पीछे जाएगी और हमारे वियोग से दुःखी बने तुम्हारा मन बहलायेगी । अपने पुत्र का मुख-कमल देखने तक ही शाप रहेगा'' इतना कहकर सुरों, असुरों, मुनियों और मनुष्यों के समूह को विदा किये हुए, शीघ्र पास में आये नारद के कन्धे पर हाथ रखे (ब्रह्मा) उचित दैनिक नित्य कर्मों को करने के लिए उठ खड़े हुए । शाप-ग्रस्त सरस्वती

१. पण्डा जडा वा । २. प्रसाद । ३. याप्यतां यात्यविदग्धो ।

धवलकृष्णशारां कृष्णाजिनलेखामिव[1] दृष्टिमुरसि पातयन्ती, सुरभिनिःश्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा, शापशोकशिथिलितहस्ता, अधोमुखीभूतेनोपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गेव नखमयूखजालकेन, नूपुरव्याहाराहूतैर्भवनकलहंसकुलैर्ब्रह्मलोकनिवासिहृदयैरिवानुगम्यमाना समं सावित्र्या गृहमगात् ।

अत्रान्तरे सरस्वत्यवतरणवार्तामिव कथयितुं मध्यमं लोकमवततारांशुमाली । क्रमेण च मन्दायमाने मुकुलितबिसिनीविसरव्यसनविषण्णसरसि वासरे, मधुमदमुदितकटाक्षक्षिप्यमाण इव क्षेपीयः क्षितिधरशिखरमवतरति तरुणतरकपि-

टीका—मनुजाश्च तेषां मण्डलं=समूहः येन सः, सम्भ्रमेण=त्वरया सहितं यथा स्यात्तथा उपगतः=समीपे आगतः यः नारदः तस्य स्कन्धे=अंसे विन्यस्तः=स्थापितः हस्तः येन सः, समुचितानि=युक्तानि यानि आह्निकानि=प्रत्यहं क्रियमाणानि नित्यकर्माणि (आह्निकं स्यात्पुनरहर्निवर्त्ये नित्यकर्मणि इति हेमचन्द्रः) तेषां करणाय=अनुष्ठानाय । उदतिष्ठत्=उत्थितः । अधः=नीचैः मुखं यस्याः सा, धवलः श्वेतश्च कृष्णः श्यामश्च ताभ्यां शारा=शबला सम्मिश्रितेत्यर्थः कृष्णाजिनस्य=कृष्णमृगचर्मणः लेखां=रेखां खण्डमित्यर्थः इवेत्युपमायाम् उरसि=वक्षःस्थले । सुरभिः=सुगन्धिः यः निःश्वासः श्वासोच्छ्वासः तस्य परिमले=सौरभे लग्नैः=संसक्तैः, शापस्य (दुर्वाससा दत्तस्य) अक्षरैः=वर्णैः इवेत्युत्प्रेक्षायां, षट्चरणाः=भ्रमराः तेषां चक्रैः=चक्राकार-समूहैः, आकृष्यमाणा=बलान्नीयमाना, शापस्य शोकेन=दुःखेन शिथिलितौ=शैथिल्यं प्रापितौ हस्तौ यस्याः सा, अधोमुखीभूतेन=निम्नमुखीभूतेन, अशुभ-समाचारं हि जनोऽधोमुखीभूत एव ददातीति लोकाचारः, उपदिश्यमानः=निर्दिश्यमानः मर्त्यलोके अवतरणस्य=नीचैः गमनस्य मार्गः यस्यै सा इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, नखानां ये मयूखाः=किरणाः तेषां जालकेन=समूहेन, नूपुरयोः=मञ्जीरयोः ये व्याहाराः शिञ्जितानि ते एव व्याहाराः=वचनानि तैः आहूतैः=आकारितैः, भवनस्य=गृहस्य कलहंसानां कुलैः=समूहैः, ब्रह्मलोकस्य निवासिनां=वास्तव्यानां हृदयैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अनुगम्यमाना=अनुस्रियमाणा । समम्=सह अगात्=अगच्छत् सरस्वत्या अवतरणं=नीचैः मर्त्यलोके गमनं तस्य वार्तां=समाचारम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मध्यमं लोकम्=मर्त्यलोकम् । सूर्यो हि उच्चाकाशात् सायं पश्चिमक्षितिजे भूलोकं प्रत्यवतरति, अत एव कविरुत्प्रेक्षते सरस्वत्यवतरण-वार्तां श्रावयितुमिवासौ मध्यमलोकमवतरतीति, अवततार=अवातरत्, अंशुमाली=सूर्यः । मन्दायमाने=तेजसा मन्दे भवति सति इत आरम्य 'स्पष्टे प्रदोष-समये' इत्यन्तं 'सति' सप्तमी, मुख्यवाक्यं 'सरस्वतीमवादीत्' इत्यस्ति । मुकुलित०—मुकुलितानां=मुकुलतां प्राप्तानां म्लानानामिति यावत्, बिसिनीनाम्=कमलिनीनां, विसरस्य=समूहस्य यद् व्यसनं=विपत्तिः तेन विषण्णानि=दुःखितानि, सरांसि=सरोवराणि यस्मिन् तथाभूते वासरे दिवसे पुत्रीस्थानीयानां कमलिनीनां विपत्ति दृष्ट्वा पितृस्थानीयानां सरोवराणां विषादः स्वाभाविकः, मधु०—मधु=मदिरा तेन मदः=मत्तता तेन मुदिताः=प्रहृष्टाः याः कामिन्यः=प्रमदाः तासां कोपेन=क्रोधेन कुटिलाः=वक्राः ये कटाक्षाः अपाङ्गदर्शनानि तैः क्षिप्यमाणे=अधः क्रियमाणे निस्सार्यमाणे इत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, क्षेपीयः=क्षिप्रतरम्, अतिशयेन क्षिप्रं (क्षिप्र+ईयसुन् र इत्यस्य लोपे इकारस्य गुणः) यथा, क्षितिधरस्य=अस्ताचलस्य, शिखरं=शृङ्गम्, अवतरति=नीचैरागच्छति सति, तरुणतरः यः कपिः=वानरः तस्य लपनं=मुखं तद्वत् लोहिते=रक्ते, लोकानां=जगताम्

टिप्पणी—मधुमद०—मदिरा-पान से मस्त हुई कामिनियों में कामोद्रेक होने के कारण संभोगेच्छा उत्पन्न हो उठी, इसके लिए उन्हें रात्रि की आवश्यकता हुई । 'यह सूर्य हमारे संभोग में विघ्न डाल रहा है, छिपता नहीं है ।' इससे कुपित होकर उन्होंने सूर्य पर अपने जो कुटिल कटाक्ष फेंके, उनसे मानो सूर्य शीघ्र ही अस्ताचल के शिखर पर जा गिरा हो ।

हिन्दी—भी मुख कुछ नीचे किये, कृष्णमृग-चर्म की रेखा-जैसी प्रतीत हो रही काले और श्वेत रंग से चितकबरी बनी दृष्टि वक्ष स्थल पर डालती हुई, सुगन्धित निश्वासों के सौरभ पर लगे साकार शाप के अक्षरों-जैसे लग रहे भ्रमर-समूह से खींची जाती हुई, शाप के दुःख से हाथों को ढीला किये, पायजेबों की झुनझुनाहट की बोली से बुलाये गए ब्रह्मलोक के निवासियों के हृदयों-जैसे दिखाई दे रहे घर के कलहंसों के समूह द्वारा पीछा की जाती हुई सावित्री के साथ घर चली गई ।

इसी बीच सरस्वती के (मर्त्य-लोक में) उतरने का समाचार कहने के लिए मानो सूर्य भूलोक की ओर नीचे उतर आया । मुर्झाई हुई कमलिनियों के समूहों पर पड़ी विपत्ति के कारण खिन्न हुए सरोवरों वाले दिन के ढल जाने पर, मदिरा के नशे में प्रसन्न हुई कामिनियों के क्रोधभरे कुटिल कटाक्षों द्वारा मानो नीचे फेंक जाते हुए, अच्छे युवा वानर के मुख की तरह लाल-लाल, जगत् के एक (मात्र) चक्षु भगवान सूर्य के अतिशीघ्र ही अस्ताचल के

१. लेखामिव तपसे ।

लपनलोहिते लोकैकचक्षुषि भगवति, प्रस्नुत[1]मुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलितेष्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येषु, अपराह्णप्रचारचलिते चामरिणि चामीकरतटताडनारुणितरदने[2] रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरमैरावते, प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्, तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तमयार्घ्यावर्जिते रञ्जितककुभि कुसुम्भभासि स्रवति पिनाकिप्रणतिमुदितसंध्यास्वेदसलिल इव रक्तचन्दनद्रवे, वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दबध्यमानाञ्जलिवने धाम्रोत्पत्तिकमल-

---

टीका—एकम् एव चक्षुः=नेत्रं भगवति=पूजार्हे सूर्ये इति यावत्, प्रस्नुत०—प्रस्नुतानि=प्रस्नुतानि मुखानि=स्तनाग्राणि ऊधांसि, आपानानीत्यर्थः यासां ताः याः माहेय्यः=सौरभेय्यः गाव इति यावत् (माहेयी गौः सौरभेयी इत्यमरः) तासां यूथस्य=वृन्दस्य क्षरन्त्यः=स्रवन्त्यः याः क्षीरस्य धाराः ताभिः धवलितेषु=श्वेतीकृतेषु, आसन्न०—आसन्नः=सन्निहितः यः चन्द्रस्य उदयः तेन उद्दामः=अनियन्त्रितः क्षुब्ध इत्यर्थः यः क्षीरोदः=क्षीरसागरः तस्य लहरीभिः=तरङ्गैः क्षालितेषु=धौतेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दिव्याः=स्वर्गीयाः ये आश्रमाः=मुनीनां वासस्थानानि तेषाम् उपशल्येषु=ग्रामान्तेषु प्रान्तभागेष्वित्यर्थः ('ग्रामान्त उपशल्यं स्यात्' इत्यमरः) अपराह्णे=दिनस्यापरभागे यः प्रचारः=प्रचलनं तदर्थं चलिते=प्रस्थिते, चामरम् (शिरसि) अस्त्यास्तीति तस्मिन्, चामी०—चामीकरस्य सुवर्णस्य ये तटाः=स्वर्गङ्गायाः सुवर्णवन्ति तीराणि तेषु ताडनेन=आघातेन अरुणिताः=लोहिता रदनाः=दन्ताः यस्य तस्मिन् रदति=खनति, विदारयतीत्यर्थः सुर-स्रवन्त्याः=स्वर्गङ्गायाः रोधांसि=तीराणि, स्वैरम्=यथेच्छम् ऐरावते=दिव्यकरिणि, प्रसृत०—प्रसृताः=चलिताः स्वप्रियतमान् अभिसरन्त्य इति यावत् अनेकाः याः विद्याधराभिसारिकाः=विद्याधर्यः अभिसारिकाः तासां सहस्रेषु चरणेषु=पादेषु यः अलक्तकस्य=लाक्षायाः रसः=द्रवः तेन अनुलिप्ते=कृतलेपे इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, प्रकटयति=प्रकाशयति तारापथे=नक्षत्रमार्गे, आकाश-मार्गे, इति यावत् पाटलतां=लौहित्यम् । तारापथ०—तारापथे=नक्षत्रमार्गे आकाशे इत्यर्थः प्रस्थिताः चलिताः ये सिद्धाः=देवयोनि-विशेषाः (विद्याधराप्सरस्सिद्धा'''भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः) तैः दत्तम्=अर्पितं, दिनकरस्य सूर्यस्य अस्तङ्गमने यत् अर्घ्यं=पूजार्थं दूर्वाक्षतचन्दनपुष्पजलादिकं तस्मिन् आवर्जिते=त्यक्ते, प्रक्षिप्ते इत्यर्थः, रञ्जिताः=रक्तवर्णीकृताः ककुभः=दिशः येन तथाभूते, कुसुम्भस्य=रक्तवर्णपुष्पविशेषस्य भाः=कान्तिः इव भाः यस्य तथाभूते स्रवति=क्षरति, पिनाकि०—पिनाकिनि=शिवे प्रणतिः=प्रणामः तया मुदिता=प्रहृष्टा या सन्ध्या=सन्ध्यादेवी तस्याः स्वेद-सलिलं=घर्मजलं तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् रक्तचन्दनस्य द्रवे=जले, वन्दारु०—वन्दन्ते इति वन्दारवः (√वन्द+आरुः कर्तरि) ये मुनयः तेषां वृन्दारकाः=श्रेष्ठाः तेषां वृन्दं=समूहः तेन बध्यमानं=संयुज्यमानं सन्ध्यायां=सायम् अञ्जलीनां=करपुटानां वनं=समूहः यस्मिन्

टिप्पणी—**चामीकर०**—स्वर्गङ्गा के स्वर्णिम तटों पर ऐरावत जब दाँतों का आघात करता था, तो तट का कुछ सोना उनपर लग जाता था जिससे वे पीले-लाल बन जाया करते थे। **प्रसृता०**—तारों के दिखाई पड़ने पर आकाश स्वतः लाल हो उठा था, लेकिन कवि की कल्पना है कि सायं विद्याधरियां अपने प्रियतमों के प्रति अभिसरण करने चलीं, तो उनके पैरों पर लगे महावर से लिप्त हो जाने के कारण मानो आकाश लाल-लाल हो गया हो। अभिसारिका उस नायिका को कहते हैं जो सायं या रात को नियत स्थान और समय पर अपने प्रियतम के पास छिपकर पहुँचती है, देखिए अमरकोश—"कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साभिसारिका"।

स्वेदसलिले—सन्ध्या होने पर आकाश-चारी सिद्ध लोग सूर्य भगवान को रक्तचन्दन-मिश्रित अर्घ्य-जल छोड़ रहे थे। इस पर कवि की कल्पना है कि मानो वह शिव की वन्दना में प्रसन्न हुई सन्ध्यादेवी का स्वेद-जल हो। सन्ध्या लाल होती है, अतः उसका स्वेद भी स्वभावतः लाल होता है। सन्ध्या का यहाँ चेतनीकरण किया गया है।

हिन्दी—शिखर पर उतर आने पर; चू रहे (थनों के) मुंहवाली गायों के समूहों की बहती हुई दूध की धाराओं से श्वेत बने स्वर्गीय आश्रमों के प्रान्त-भागों के समीपवर्ती चन्द्रोदय के कारण क्षुब्ध हुए क्षीरसागर के तरंगों से धुले हुए जैसे-दिखाई देने पर; अपराह्ण के भ्रमणार्थ निकले, (सिर पर) चावरी रखे, सुवर्ण के तटों पर टक्कर मारने से लाल-लाल बने हुए दाँतों वाले ऐरावत के स्वर्गंगा के कगारों को यथेच्छ खोदने लगने पर; (संकेत-स्थानों को) चली अनेक विद्याधरी अभिसारिकाओं के हजारों चरणों पर लगे महावर के लिप जाने से जैसे नक्षत्र-मार्ग (आकाश) के लालिमा प्रकट कर देने पर; महादेव की वन्दना में प्रसन्न हुई सन्ध्या (देवी) के पसीना का जल-जैसा प्रतीत हो रहे नक्षत्र-मार्ग में गए सिद्धों द्वारा प्रदत्त सूर्यास्त-समय के अर्घ्य में छोड़े, दिशाओं को लाल-लाल बना देने वाले, कुसुम्भ पुष्प की-सी कांति वाले रक्त चन्दन के जल के बहने पर; वन्दना करते हुए श्रेष्ठ मुनियों के वृन्द द्वारा बाँधे

---

१. प्रस्नुतमुखमाहेयी।
२. ताडनारुणितरदने।

सेवागतसकलकमलाकर इव राजति ब्रह्मलोके, समुच्चारिततृतीयसवनब्रह्मणि[1] ब्रह्मणि, ज्वलितवैतानज्वालाजटालाजिरेष्वारब्धधर्मसाधनशिबिरनीराजनेष्विव सप्तर्षिमन्दिरेषु, अघमर्षणमुषितकिल्बिषविषगदोल्लाघलघुषु यतिषु, संध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने प्लवमाननलिनयोनियानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि मन्दाकिनीजले, जलदेवतातपत्रे पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीति-

---

टीका—तथाभूते, ब्रह्मो०—ब्रह्मणः उत्पत्तिः यस्मात् तत् यत् कमलं तस्य सेवार्थं आगतः सकलानां=सर्वेषां कमलानाम् आकरः=समूहः यस्मिन् तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायां राजति=भ्राजमाने प्रतीयमाने इत्यर्थः ब्रह्मलोके, समुच्चा०—समुच्चारितम्=उदीरितं तृतीयसवनस्य सायंकालीन-सोमयज्ञस्येति यावत्, ब्रह्म=वेदः येन तथाभूते ब्रह्मणि=परमेष्ठिनि, ज्वलित०—ज्वलिताः=प्रज्वलिताः ये वैतानाः=वितानस्य=यज्ञस्य सम्बन्धिनः ज्वलनाः=वह्नयः तेषां ज्वालाभिः=अर्चिभिः जटालानि=पूर्णानि, अजिराणि=प्राङ्गणानि येषां तेषु, आरब्धं=प्रक्रान्तं धर्म-साधनस्य=धर्मानुष्ठानस्य शिबिरस्य=स्कन्धावारस्य नीराजनम्=आरात्रिकं येषु तेषु इवेत्युत्प्रेक्षायां सप्तर्षीणां मन्दिरेषु=धर्मगृहेषु, अघमर्ष०—अघमर्षणमन्त्रेण, अघं=पापं मर्षयति=विनाशयतीत्यघमर्षणः मन्त्रविशेषः ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायतेत्याद्यात्मकः तेन मुषितः=हृतः इति यावत् किल्बिषं=पापम् एव विषगदः=विषकृतरोगः येषां ते अतएव उल्लाघाः=नीरोगाः प्रकृतिस्थाः इत्यर्थः ('उल्लाघो निर्गतो गदात्' इत्यमरः) लघवः=लघूभूता विगतभारा इति यावत् तेषु यतिषु, तपस्विषु मुनिष्वित्यर्थः, सन्ध्योपा०—सन्ध्योपासनाय=सन्ध्यावन्दनाय आसीनाः=स्थिताः ये तपस्विनः=तापसाः तेषां पङ्क्त्या=श्रेण्या पूतं=पवित्रितं पुलिनं=सैकतं यस्य तथाभूते, प्लवमान०—प्लवमानाः=तरन्तः नलिनं=कमलं योनिः=उत्पत्तिस्थानं यस्य तस्य ब्रह्मण इत्यर्थः ये यान-हंसाः=वाहनभूताः हंसाः त एव हासः तेन दन्तुरिताः=उन्नतदन्ताः नतावनता इत्यर्थः ऊर्मयः=तरङ्गाः यस्य तस्मिन् मन्दाकिन्याः वियद्गङ्गायाः जले, हंसेषु हासत्वारोपाद् रूपकमलङ्कारः तेषां दन्तसदृशत्वात् । जल-देवतानां=जलनिवासिनीनामप्सरसाम्-आतपत्रे=छत्रे, पत्ररथानां=(जलीय) पक्षिणां यत् कुलं तस्य कलत्राणि पक्षिण्य इत्यर्थः तेषाम् अन्तःपुरस्य सौधम्=अन्तःपुरहर्म्यम् तस्मिन्, निजं यत् मधु=मकरन्दः तस्य मधुरः आमोदः=सौरभम् अस्यास्तीति तस्मिन्, कृता मधुपानां मुत्=मोदः प्रसन्नता येन तस्मिन् मुमुदिषमाणे=मोदितुमिच्छति विकासोन्मुखे इति यावत् कुमुदवने=कैरववने, दिवस०—दिवसस्य अवसाने=समाप्तौ ताम्यतां=म्लायतां तामरसानां=रक्तकमलानां यत् मधुरं मधु=मकरन्दः तस्य सपीतिः=सहपानं (सपीतिः स्त्री तुल्य-पानम् इत्यमरः) तया प्रीते=प्रसन्ने सुषुप्सति

टिप्पणी—ज्वलित० सप्तर्षियों के गृहों में यज्ञीय अग्नियों की ज्वालायें उठ रही हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वे गृह धर्मानुष्ठान के खेमे हों जिनमें यज्ञाग्नि-ज्वालायें खेमों के ऊपर की जाने वाली मंगलकारी आरती हो। खेमों, सैनिक उपकरणों अथवा वीरों की मङ्गलार्थ आरती की प्रथा बड़ी प्राचीन है। ध्यान रहे कि ये 'ऋषिमन्दिर' धर्म-साधन के खेमे हैं, जय-साधन अथवा अर्थ-साधन के खेमे नहीं। यहाँ साधन शब्द का अर्थ सेना भी कर सकते हैं। धर्म ही ऋषियों की सेना है और कुटीर ही स्कन्धावार है। यज्ञीय अग्नि की ज्वालायें मानो स्कन्धावारों पर उतारी जाने वाली आरती है।

हिन्दी—हुए अंजलि-समूह से युक्त ब्रह्मलोक के ब्रह्मा को जन्म देने वाले कमल की सेवा में आये हुए निखिल कमलसमूह से युक्त-जैसे प्रतीत होने पर ; ब्रह्मा द्वारा सायं सवन के वेद (मंत्रों) का उच्चारण कर चुकने पर, धर्मानुष्ठान के खेमों पर की जा रही नीराजना (आरती) वाले जैसे प्रतीत हो रहे सप्तर्षियों के प्रांगणों के यज्ञीय अग्नि की ज्वालाओं से पूर्ण अर्थात् प्रदीप्त हो उठने पर; तपस्वियों के अघमर्षण मन्त्र द्वारा पापरूपी विष-रोग से उन्मुक्त, स्वस्थ एवं हल्के हो जाने पर; सन्ध्या-वंदन के लिए बैठे तपस्वियों की पंक्ति द्वारा पवित्र हुए तीर वाली मन्दाकिनी के जल के तैरते हुए ब्रह्मा के वाहनभूत हंसों-रूपी हास से उन्नतावनत तरंगों वाले बन जाने पर; जल-देवियों के छत्र तथा (जलीय) पक्षि समूह की स्त्रियों का अन्तःपुर-गृह बने हुए कुमुद-वन के अपने मकरन्द के मधुर सौरभ से सुगन्धित भ्रमरों को आनन्दप्रद एवं विकसित होने के लिए तय्यार हो जाने पर; राजहंसमंडल के दिन की समाप्ति पर अलसाये हुए कमलों के मधुर मकरन्द का सह-पान करने से प्रसन्न, शयन के इच्छुक, कोमल मृणाल-दण्ड से खुजलाने के लिए गोला-

---

१. सवनव्रतब्रह्मणि।

प्रीते सुषुप्सति मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकन्धरे धुतपक्षराजिवीजितराजीवसरसि[1] राजहंसयूथे, तटलताकुसुमधूलि-धूसरितसरिति सरति[2] सिद्धपुरपुरंध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि सायन्तने तनीयसि निशानिःश्वासनिभे नभस्वति सङ्कोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिसङ्कटकुशेशयकोश[3] कोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे, नृत्तोद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मल-निकरनिभे नभस्थलं स्तबकयति तारागणे, संध्यानुबन्धताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे मेदिनीं मीलयति नववयसि तमसि, तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि समुन्मिषति यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकदम्बके

टीका—शयितुमिच्छति, मृणालस्य काण्डं—दण्डः तेन कण्डूयनं—खर्जनं तस्मै कुण्डलिता—कुण्डलाकारीकृता कन्धरा ग्रीवा येन तथाभूते, **धुत०**—धुतानां—कम्पितानां चालितानामित्यर्थः पक्षाणां—पतत्राणां राज्या—पङ्क्त्या वीजितं राजीवानां—कमलानां सरः—सरोवरं येन तस्मिन् राजहंसानां यूथे—समूहे। **तट०**—तटेषु याः लताः तासां यानि कुसुमानि तेषां धूलिभिः—परागैः धूसरिताः—धूसरवर्णीकृताः सरितः—नद्यः येन तस्मिन् सरति—वहति, सिद्धानां—देवयोनिविशेषाणां पुरे—नगर्यां याः पुरन्ध्र्यः—स्त्रियः तासां धम्मिल्लेषु—बद्धकेशकलापेषु याः मल्लिकाः—पुष्प-विशेषाः तासां गन्धं—सौरभं गृह्णातीति तस्मिन्, सायन्तने—सायंभवे सायंकालीने इत्यर्थः, तनीयसि—अतिशयेन तनुः तनीयान् तनुतरे मन्द-मन्दे इत्यर्थः, निशा—रात्रिः सचेतना नायिकेति यावत् तस्याः निश्वासः तन्निभे—तत्सदृशे नभस्वति—पवने, **सङ्कोच०**-सङ्कोचेन—म्लान्या निमीलनेनेत्यर्थः उदञ्चन्तः—उद्गच्छन्तः उच्चाः—उन्नताः ये केसराः—किञ्जल्काः तेषां कोटिभिः—अग्रभागैः सङ्कटाः—पूर्णाः कुशेशयानां—कमलानां ये कोशाः—मुकुलानि तेषां कोटराः—अन्तभागा एव कुटयः—कुटीराणि तासु शेरते इति तस्मिन् षट्चरणानां—भ्रमराणां चक्रे—समूहे, **नृत्त०**—नृत्ते—नृत्ये ताण्डवनृत्ये इत्यर्थः उद्धूताः—उत्क्षिप्ताः धूर्जटेः—महादेवस्य जटा एव अटवी—अरण्यं तस्याः ये कुटजानां—पुष्पविशेषाणां कुड्मलाः—मुकुलाः तेषां निकराः—समूहाः तन्निभे—तत्तुल्ये, नभस्थलं—गगनतलं स्तबकयति—स्तबकाः—गुच्छका अस्मिन् सन्तीति (स्तबक+अच्, मतुबर्थे) स्तबकं—गुच्छकयुक्तं करोतीति स्तबकयति, (स्त-बक शतृ+ङि, (सप्तमी), तारागणः नभसि कुटज-मुकुल-निकर इव दृश्यते स्म इत्यर्थः, सन्ध्यायाः अनुबन्धः—अनुगमनं सहभाव इत्यर्थः तेन ताम्रे—रक्तवर्णे, परिणमत्—परिपक्वं भवत् यत् तालफलं तस्य त्वचः त्विड् कान्तिः इव त्विड् यस्य तस्मिन्, कालः—कृष्णवर्णः यः मेघः तद्वत् मेदुरे—घने। मेदिनीं—पृथ्वीम्, मीलयति—आच्छादयति, अवगुण्ठयति, नवं वयः यस्य तस्मिन् नवोत्पन्ने इत्यर्थः तमसि—अन्धकारे। **तरुण०**—अतिशयेन तरुणम् इति तरुणतरं यत् तिमिरस्य—अन्धकारस्य पटलं—समूहः तस्य पाटने—विदारणे ध्वंसे इत्यर्थः, अतिशयेन पटुः—प्रखरः इति पटीयान् (पट+इयसुन्) तस्मिन्; समुन्मिषति—प्रदीप्यमाने प्रज्वलतीत्यर्थः, **यामिनी०**—यामिनी—रात्रिः एव कामिनी, तस्याः कर्णपूरः—कर्णाभरणम् एव चम्पकानाम्—चम्पकपुष्पाणां कलिकानां—मुकुलानां कदम्बकं—समूहः तस्मिन्। प्रदीपानां—दीपकानां प्रकरे—समूहे, अत्र रात्रौ कामिनीत्वस्य प्रदीपप्रकरे च कर्णपूरत्व-

टिप्पणी—**प्रतनु०** ऐन्द्री दिशा (पूर्व) के क्षितिज में चाँद उगने को था, उसकी थोड़ी-थोड़ी किरण उठने लगी थीं जिससे पूर्व-क्षितिज पाण्डु कुछ सफेद और कुछ काला-सा दिखाई पड़ने लगा, किरणों वाला ऊपर का भाग श्वेत और निचला भाग काला हो उठा, इसलिए वह यमुना के उस तीर के समान हो गया जिसका जल कुछ उतर गया हो और कुछ नहीं उतरा हो। जलरहित भाग वालुका से श्वेत, और जलवाला भाग काला बना रहता है। ध्यान रहे कि यमुना का जल काला होता है। यहाँ उपमालंकार है।

हिन्दी—कार गर्दन किये एवं फड़फड़ाते पंख-समूह से कमलों के सरोवर पर हवा करने वाले बन जाने पर, तीरों की लताओं के फूलों की पराग से नदी को मटमैला किये, सिद्धों के नगर की महिलाओं के केशपाशों पर बँधे चमेली के पुष्पों की सुगन्ध लिये हुए, निशा (नायिका) के निश्वास की तरह सांयकालीन मन्द-मन्द पवन के बहने लगने पर; सिकुड़ जाने के कारण खड़े होते हुए ऊँचे-ऊँचे केसरों की नोकों से भरे कमल-मुकुलों के भीतरी भागों की कुटियों में भ्रमरसमूह के सो जाने पर; (ताण्डव) नृत्य में ऊपर उछले हुए महादेव की जटा में स्थित अरण्य के कुटज-फूलों के समान तारा-गण के गगन-तल को (कुटज के) गुच्छों से युक्त कर देने पर; सन्ध्या साथ रहने के कारण लाल-लाल, पकते हुए ताल-वृक्ष के फल के छिलके की-सी कान्ति वाले, काले मेघ की तरह प्रारम्भिक अवस्था वाले अन्धकार के

---

१. राजीवरजसि।
२. क्वचित् पुस्तकेष्वेतन्नास्ति।
३. कुशेशयकोटर०।

प्रदीपप्रकरे, प्रतनुतुहिनकिरणकिरणलावण्यालोकपाण्डुन्याश्याननीलनीरमुक्तकालिन्दीकूल[1]वालुकापुलिनायमाने शतक्रतोः कृशयति[2] तिमिरमाशामुखे, खमुचि मेचकितविकचितकुवलयसरसि शशधरकरनिकरकचग्रहाविले विलीयमाने मानिनीमनसीव शर्वरीशबरीचिकुरचये चाषपक्षत्विषि तमसि, उदिते भगवत्युदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितमिव लोहितं वपुरुदयरागधरमधरमिव विभावरीवध्वा धारयति

टीका—स्यारोपात्सांगरूपकम् । प्रतनु०—प्रकर्षेण तनु=स्तोकम् अल्पाल्पमित्यर्थः तुहिनकिरणस्य=शीतरश्मेः चन्द्रस्येत्यर्थः किरणानां यत् लावण्यं=सौन्दर्यं तस्य आलोकेन=प्रकाशेन पाण्डुनि=पाण्डुवर्णे, श्वेतकृष्णे इत्यर्थः, आश्यान०—आश्यानम्=ईषत् शुष्कं, नील-नीरेण=नीलजलेन मुक्तं=त्यक्तं यत् कालिन्द्याः=यमुनायाः कूलं=तीरं तस्य वालुकापुलिन=वालुकायुक्तं पुलिनं सैकतं तदिव आचरति पुलिनायमाने (पुलिन+क्यङ् आचारार्थे) शतक्रतोः=इन्द्रस्य इदम् इति शातक्रतवम्=इन्द्रसम्बन्धि तस्मिन्, कृशयति=कृशं करोतीति (कृश+णिच्+शतृ+ङि ऋकारस्य रकारः) कृशयति=कृशं कुर्वति, तिमिरम्=अन्धकारम् । आशामुखे=दिशामुखे । खम्=आकाशं मुञ्चतीति तस्मिन्, मेचकितं=मेचकीकृतं श्यामवर्णीकृतमित्यर्थः, विकचितानां=विकसितानां कुवलयानां=कैरवाणां सरः=सरोवरं येन तथाभूते, शशधरस्य=शशिनः कराणां=किरणानाम् एव कराणां=हस्तानां, निकरेण=समूहेन यः कचानां केशानां ग्रहः=ग्रहणं तेन आविले=मलिने, विलीयमाने=तिरोभवति, क्षयं गच्छतीत्यर्थः, मानिनीनां=मानवतीनां, कुपितानामिति यावत् मनसि=मानसे इवेत्युपमायाम्, शर्वरी=रात्रिः एव शबरी=शबरस्त्री तस्याः चिकुराणां=कुन्तलानां चये=कलापे तद्रूपे इत्यर्थः, चाषस्य=नीलवर्णपक्षिविशेषस्य नीलकण्ठस्येति भाषायां पक्षस्य पतत्रस्य त्विट्=कान्तिः इव त्विट् यस्य तस्मिन् तमसि=अन्धकारे । उदिते=उदयं प्राप्ते भगवति=देवे उदय०—उदयगिरेः=उदयाचलस्य शिखराणां=शृङ्गाणां यानि कटकानि=नितम्बाः पार्श्वभागा इत्यर्थः तेषु यानि कुहराणि=कन्दराः तेषु यः हरिः=सिंहः तस्य खराणां तीक्ष्णानां नखराणां=नखानां यः निवहः=समूहः स एव हेतिः=शस्त्रं तया निहतः=मारितः यः निज-हरिणः=स्वान्तःस्थितः मृगः तस्मात् गलितः=क्षरितः यः रुधिरस्य=शोणितस्य निचयः=समूहः तेन निचितं व्याप्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लोहितं=रक्त-वर्णं वपुः=शरीरम्, उदयस्य=उदयकालस्येत्यर्थः यः रागः=लालिमा तस्य धरतीति धरम्, विभावरी=रात्रिः एव वधूः तस्याः अधरम् =अधरोष्ठमिव, धारयति=बिभ्राणे, श्वेतभानौ=चन्द्रमसि । अचल०—अचलात् पर्वतात, उदयगिरेरिति यावत् च्युताः=क्षरिताः, चन्द्रकान्तानां=चन्द्रकान्तमणीनां याः जल-धाराः ताभिः धौतं=प्रक्षालितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, तस्मिन् ध्वस्ते=नष्टे, ध्वान्ते=तमसि ।

टिप्पणी—शशधर०—यहाँ तम पर रात्रिरूपी शबरी के कुन्तलकलाप का आरोप किया गया है । रात्रि भी काली और शबरी भी काली होती है, इसी तरह तम भी काला होता है और कुन्तल-कलाप भी काला होता है । फिर तम की तुलना मानिनी अर्थात् प्रणय-कुपिता नारी के मन से की गई है । हम देखते हैं कि किसी भी मानी व्यक्ति का कचग्रहणपूर्वक अपमान किया जाय तो उसका मन मलिन हो जाता है और लज्जा के मारे वह छिप जाता है । यही बात यहाँ भी है पर ज्यों ही चन्द्रमा की किरणें मानिनी के कचों पर पड़ती हैं, वह कामोद्दीप्त होकर मान-भंग कर बैठती है । उसका सारा कोप विलय हो जाता है । यहाँ श्लेष, साङ्गरूपक और उपमा की अच्छी छटा बाण ने दिखाई है । उदयगिरि०—यहाँ उदयकालीन लाल-लाल चन्द्रमण्डल पर दो उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं । एक तो है अपने भीतर में मृग के रुधिर से लिप्तता की और दूसरी विभावरी-वधू के अधरोष्ठ की ।

हिन्दी—पृथिवी को ढक देने पर; अतिशय तरुण अन्धकार-समूह को फाड़ डालने में खूब तीक्ष्ण निशा-कामिनी का कर्णाभरण बने चम्पककलिसमूह-रूपी दीप-पुञ्ज के जल उठने पर; चन्द्रमा की किरणों के हल्के-हल्के लावण्यप्रभा के प्रकाश के कारण श्यामधवल, कुछ सूखे नीले जल से रहित यमुना नदी के तट के रेतीले प्रदेश के समान पूर्व दिशा के अग्रभाग के अन्धकार को क्षीण बना देने पर; आकाश छोड़ देने वाले, विकसित कुमुदों के सरोवर को काला किये हुए रात्रि-रूपी भीलनी का केशकलाप बने, नीलकंठ की कान्ति के-से अन्धकार को चन्द्रमा के किरण-रूपी हाथों से केश-ग्रहण (किये जाने) पर मलिन बने मानिनी के मन की तरह विलय हो जाने पर; उदयाचल से शिखरों के पार्श्व-भागों की गुफाओं में (रहने वाले) सिंह के तेज नाखूनों के शस्त्र से मारे गए अपने (भीतर के) मृग की बहती हुई रुधिर राशि से रञ्जित जैसा, रात्रिरूपी वधू का अधरोष्ठ-जैसा प्रतीत हो रहा, उदय की लाली वाला लाल-लाल शरीर धारण किए हुए भगवान् चन्द्र के उदय हो जाने पर, उदयाचल से बह रहे चन्द्रकान्त मणियों की जलधाराओं द्वारा धुले

१. बालपुलिना० ।
२. कृशयति ।

श्वेतभानो, प्रबलच्युतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते, गोलोकगलितदुग्धविसरवाहिनि दन्तमयमकरमुखमहाप्रणाल इवापूरयितुं प्रवृत्ते पयोधिमिन्दुमण्डले, स्पष्टे प्रदोषसमये सावित्री शून्यहृदयामिव किमपि ध्यायन्तीं सास्रां सरस्वतीमवादीत्—'सखि, त्रिभुवनोपदेशदानदक्षायास्तव पुरो जिह्वा जिह्रेति मे जल्पन्ती। जानास्येव यादृश्यो विसंस्थुला गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्षणभङ्गिन्यो दुरतिक्रमणीया न रमणीया[1] दैवस्य वामा वृत्तयः। निष्कारणा च निकारकणिकापि कलुषयति[2] मनस्विनोऽपि मानसमसदृशजनादापतन्ती। अनवरतनयनजलसिच्यमानश्च तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा प्ररोहति शोकः।[3] अतिसुकुमारं च जनं सन्तापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमानयन्ति। महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम्। सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता

टीका—गोलोक०—गवां लोकः तस्मात् गलितः=निर्गतः यः दुग्धस्य विसरः=राशिः तं वहतीति तस्मिन्, दन्तः एव दन्तमयः (स्वरूपार्थे मयट्) स च मकरस्य मुखम् इव मुखं यस्य तथाभूतश्च प्रणालः=प्रणालिका तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आपूरयितुं=भर्तुं प्रवृत्ते प्रक्रान्ते पयोधिं=समुद्रम्, इन्दुमण्डले=चन्द्रबिम्बे। प्रदोष-समये=रात्र्यारम्भे। शून्यं हृदयं यस्याः तामिवेत्युत्प्रेक्षायाम्। अस्रम्=अश्रु तेन सहिताम् अवादीत्=अकथयत्। त्रिभुवने०—त्रिभुवनस्य=लोकत्रयस्य उपदेशदाने दक्षायाः=निपुणायाः जिह्रेति=लज्जते, जल्पन्ती कथयन्ती। विसंस्थुलाः=सम्यक् तिष्ठन्तीति (सम्+स्था+उलच् कर्तरि) वि=न संस्थुलाः=न स्थिराः अव्यवस्थिता इत्यर्थः, निर्दाक्षिण्याः=दाक्षिण्येन औदार्येण दयालुतयेत्यर्थः रहिताः कठोरा इति यावत्, निकारस्य=अपमानस्य कणिका=स्वल्पः कणः ईषदप्यपमान इत्यर्थः। मनस्विनः=महामनसः (अत्र प्रशस्तार्थे विन् प्रत्ययः) मानसं=मनः, असदृशः=अनर्हः निकृष्ट इति यावत् जनः तस्मात्। अत्र सरस्वत्या उत्कृष्टत्वं दुर्वाससश्च निकृष्टत्वमभिप्रेतम्। आपतन्ती=आगच्छन्ती प्राप्तेत्यर्थः। अनवरत०—अनवरतं=निरन्तरं यथा स्यात् तथा, नयनयोः जलेन=अश्रुजलेन सिच्यमानः=सेकं प्रापितः, तरुः=वृक्षइवेत्युपमायाम्, विपदः=विपत्तेः लवः=कणः यस्मिन् सः, तरुपक्षे विगताः पल्लवाः=पत्राणि यस्य सः। सन्तापस्य=शोकस्य परमाणवः=लघुतमाः कणाः, अणुरपि=अल्पोऽपि सृणिः=अङ्कुशः इवेत्युपमायाम्। कदर्थनाय=पीडनाय, अलम्=पर्याप्तम्। सह जायते इति सहजः=नैसर्गिकः यः स्नेहः पाशः इव तस्य ग्रन्थिना बन्धनं यासां ताः, बान्धवभूताः=बान्धवतुल्याः, दुःखेन त्यक्तुं योग्याः दुस्त्यजाः, जन्म-भूमयः=जन्मस्थानानि।

टिप्पणी—गोलोक०—यहाँ इन्द्रमण्डल पर ऐसे महाप्रणाल (नाल) की उत्प्रेक्षा की गई है जिसका आकार मगरमच्छ के मुख का-सा है और जो हाथी-दाँत का बना हुआ है। श्वेत होने के कारण इन्दुमण्डल हाथी-दाँत के समान है। भाव यह है कि चन्द्रमा की ज्योत्स्ना सारे समुद्र में भर गई है। ज्योत्स्ना श्वेत है। ऐसा लग रहा है कि मानो गोलोक से दुग्ध का नाला बहकर समुद्र में गिर रहा हो। चन्द्र-मण्डल नाले (बंबे) का अन्तिम सिरा है। जिसमें से होकर दूध नीचे बहकर समुद्र में गिर रहा है।

हिन्दी—हुए-जैसे अन्धकार के मिट जाने पर; गोलोक से गिरा ढेरों दूध बहता हुआ (हाथी के) दाँत का बना, मगरमच्छ के मुख के आकार का बड़ा भारी बम्बा-जैसे दिखाई दे रहे चन्द्रमण्डल के समुद्र को (ज्योत्स्ना से) भरने लगने पर, एवं रात्रि-प्रारम्भ के स्पष्ट हो जाने पर सावित्री शून्यहृदय-जैसी बनी, कुछ सोचती और आँसू बहाती सरस्वती को बोली—"सखी, तीनों लोकों को उपदेश देने में निपुण तुम्हारे आगे कहती हुई मेरी जिह्वा लजाती है। तुम जानती ही हो कि भाग्य के काम दुर्जन की तरह गुणवान् के प्रति भी अस्थिर, क्षणभंगुर, दुर्लंघ्य, बुरे और प्रतिकूल हुआ करते हैं। निकृष्ट व्यक्ति से प्राप्त होता हुआ थोड़ा सा भी अपमान महामना के भी मन को मलिन बना देता है। बिना पत्तों के वृक्ष की तरह लगातार अश्रु-जल से सींचा जाता हुआ थोड़ी-सी भी विपत्ति वाला शोक हजारों प्रकारों से पल्लवित हो उठता है। मालती के फूल की तरह अति कोमल व्यक्ति को थोड़े से सन्ताप भी मुरझा डालते हैं। हाथियों के ऊपर पड़ने वाले छोटे से अङ्कुश की तरह बड़े लोगों के ऊपर आ पड़ने वाला थोड़ा सा भी क्लेश पीड़ा पहुँचाने के लिए काफी हो जाता है। रज्जु-जैसे स्वाभाविक स्नेह की गाँठ से बंधी, बान्धव बनी जन्मभूमियों को छोड़ना

---

१. न रमणीया—क्वचित्पुस्तकेष्वेतन्नास्ति।
२. कलुषयति।
३. क्वचित् पुस्तकेषु नास्ति।

दुस्त्यजा जन्मभूमयः। दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः। सा नार्हस्येवं भवितुम्। अभूमिः खल्वसि दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानाम्[1]। अपि च पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्? इदं च ते त्रिभुवनमङ्गलैककमलममङ्गलभूताः कथमिव मुखमपवित्रयन्त्यश्रुबिन्दवः। तदलम्। अधुना कथय कतमं भुवो भागमलङ्कर्तुमिच्छसि। कस्मिन्नवतितीर्षति ते पुण्यभाजि प्रदेशे हृदयम्। कानि वा तीर्थान्यनुग्रहीतुमभिलषसि? केषु वा धन्येषु तपोवनधामसु तपस्यन्ती स्थातुमिच्छसि। सज्जोऽयमुपचरणचतुरः[2] सहपांसुक्रीडापरिचयपेशलः प्रेयान्सखीजनः क्षितितलावतरणाय। अनन्यशरणा चाद्यैव प्रभृति प्रतिपद्यस्व मनसा वाचा क्रियया च सर्वविद्याविधातारं धातारं[3] च स्वश्रेयसे [4]स्वचरणरजःपवित्रितत्रिदशासुरं सुधासूतिकलिकाकल्पितकर्णावतंसं देवदेवं त्रिभुवनगुरुं त्र्यम्बकम्। अल्पीयसैव कालेन स ते शापशोकविरतिं वितरिष्यति'। इति।

एवमुक्ता मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजललवा सरस्वती प्रत्यवादीत्—'प्रियसखि, त्वया सह विचरन्त्या न मे

टीका—दारयति=कृन्तति, क्रकचस्य=करपत्रस्य(आरी इति भाषायाम्) पातः उपरि पतनम् इवेत्युपमायाम् संस्तुताः=परिचिताश्च ये जनाः तेषां विरहः=वियोगः (न+अर्हसि+एवम्)। अभूमिः=अस्थानम् अपात्रमिति यावत्, दुःखं एव क्ष्वेडः=विषं तस्य अंकुराणां=पल्लवानां ये प्रसवाः=कुसुमानि तेषां, पुराकृते=पूर्वजन्मनि कृते फलं करोतीति फलकृत् (कर्तरि क्विप्) तस्मिन् फलदातरि अधिष्ठातरि=नियन्तरि प्रष्ठे=प्रतिष्ठते य इति प्रष्ठः तस्मिन् अग्रे स्थिते। शुचां शोकानाम्। त्रिभुवनस्य=लोकत्रयस्य यत् मङ्गलं तदर्थम् एकं=केवलं कमलम्, अमङ्गलभूताः=अमङ्गल्या इत्यर्थः। अपवित्रयन्ति=अपवित्रीकुर्वन्ति। अवतितीर्षति=अवतरितुमिच्छति; पुण्यं भजतीति पुण्यभाक् तस्मिन् पुण्यवति। तपोवनस्य धामसु=स्थानेषु तपस्यन्ती तपः कुर्वती सज्जः=उद्यतः, उपचरणे सेवायां चतुरः=दक्षः, सह पांसुना=रेणुना या क्रीडा खेलनं ततः परिचयः तेन पेशलः=निपुणः घनिष्ठपरिचयकारणात् त्वत्सेवायां सिद्धहस्त इति भावः अतिशयेन प्रिय इति प्रेयान्=प्रियतरः। क्षितितले अवतरणाय=अवतरितुम्। न अन्यत् शरणम्=रक्षितृ यस्याः सा। प्रतिपद्यस्व=आश्रय, सर्वासां विद्यानां विधातारं=निर्मातारं, धारकं, स्वश्रेयसे=स्वकल्याणाय, स्वचरण०—स्वस्य चरणयोः रजसा=धूल्या पवित्रिताः=पवित्रीकृताः त्रिदशाः=देवाश्च असुराश्च येन तं सुधा०—सुधायाः सूतिः=उत्पत्तिः यस्मात् सः सुधाकरः चन्द्र इति यावत्, तस्य कला एव कलिका=रेखा सा एव कलिका=मुकुलं तया कल्पितः=रचितः अवतंसः=कर्णाभरणं यस्य तं, देवानां देवं,—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तस्य गुरुम्=उपदेष्टारं, त्र्यम्बकं=त्रीणि अम्बकानि=नेत्राणि यस्य सः त्र्यम्बकः तं शिवमित्यर्थः। अतिशयेन अल्पः इति अल्पीयान् (अल्प+ईयसुन्)=अत्यल्पेन। शापेन शोकः=दुःखं तस्य विरतिं=समाप्तिं, वितरिष्यति=दास्यति अर्थात् शिवानुग्रहेण सुतोत्पत्त्यनन्तरं शापविमोचनं भविष्यति। एवम्+उक्ता=कथिता, मुक्ताः=त्यक्ताः मुक्ताफल-

हिन्दी—बड़ा कठिन काम होता है। परिचित लोगों का वियोग तेज आरा पड़ने की तरह हृदय को काट देता है। वह तुम ऐसीहोने योग्य नहीं हो। तुम दुखरूपी विषवृक्ष के पल्लवों में लगने वाले पुष्पों के लिये उपयुक्त भूमि नहीं हो। और भी, पहले के किये हुए बलवान् और फलदायक शुभ अथवा अशुभ कर्मों के आगे-पीछे सर्व-नियामक-रूप में रहते-रहते विद्वानों को शोक का अवसर क्या! तुम्हारे इस त्रिभुवन मंगल के लिए एकमात्र कमल-रूपी मुख को अमंगलकारी आँसू की बून्दें क्यों अपवित्र कर रही हैं। तो अब बस करो। अब कहो तुम किस भू-भाग को अलङ्कृत करना चाहती हो। किस पुण्यशाली प्रदेश में तुम्हारा हृदय अवतरित होना चाहता है। किन तीर्थस्थानों पर तुम अनुग्रह करना चाहती हो? अथवा तपोवन के किन भाग्यवान् स्थानों में तपस्या करती हुई तुम ठहरना चाहती हो! सेवा करने में चतुर, साथ-साथ धूल-मिट्टी में खेलने (के समय) से लेकर हुए परिचय के कारण (सेवा में) सिद्ध-हस्त तुम्हारी यह प्रियसखी भूतल में उतरने के लिए तय्यार है। दूसरा कोई अन्य कारण न रखे हुए तुम आज से ही अपने कल्याण के लिए सब विद्याओं के विधाता और धर्ता निज चरणों के रज से देवों और असुरों को पवित्र कर देने वाले, चन्द्रमा की कला-रूपी कली को अपना कर्णाभरण बनाए हुए, देवताओं के देवता, तीनों लोकों के गुरु शिव को मन, वचन और कर्म से भजो! थोड़े ही समय में वे तुम्हें शाप के दुःख की समाप्ति दे देंगे।"

ऐसा कही जाती हुई मोतियों-जैसे आँसुओं के बूँदें छोड़े हुए सरस्वती उत्तर में बोली—"प्रियसखी, तुम्हारे

---

१. प्रभावानाम्।
२. अनुचरण।
३. वाचारम्।
४. चरणरज:।

काञ्चिदपि पीडामुत्पादयिष्यति ब्रह्मलोकविरहः शापशोको वा। केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे हृदयम्। अपि च त्वमेव वेत्सि मे भुवि धर्मधामानि समाधिसाधनानि योगयोग्यानि च स्थानानि स्थातुम्' इत्येवमभिधाय विरराम रणरणकोपनीतप्रजागरा चानिमीलितलोचनैव तां निशामनयत्।

अपरेद्युरुदिते भगवति त्रिभुवनशेखरे खणखणायमान खरखलीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेनेव पाटलितवपुष्युदयाचलचूडामणौ जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे विरोचने नातिदूरवर्ती विविच्य पितामहविमान[२]हंसकुलपालः पर्यटन्नपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम्॥

टीका—वत्=मौक्तिकवत् धवलाः=श्वेताः लोचनजलस्य=अश्रुजलस्य लवाः=कणाः यया सा। कमलासनः=ब्रह्मा तस्य सेवा तया सुखम् आर्द्रयति=आर्द्रीकरोति स्निग्धीकरोति। अर्थात् शापकारणात् ब्रह्मसेवासुखवञ्चिताऽहं भविष्यामीति मे दुःखम्। धर्मस्य धामानि=स्थानानि=तीर्थानीत्यर्थः, समाधिः=ब्रह्मचिन्तने एकतानता तस्य साधनानि=साधन-भूतानि, योगः=चित्तवृत्तिनिरोधः तस्य योग्यानि। विरराम=विरताऽभवत्, रणरणकेन=उद्विग्नतया चिन्ताकुलतयेत्यर्थः उपनीतः दत्तः प्रजागरः=जागरणं निद्राऽभाव इत्यर्थः यस्यै सा, न निमीलिते=निमिषिते, लोचने नेत्रे यया सा।

अपरेद्युः=अन्येद्युः अपरदिने इत्यर्थः, त्रिभुवनस्य=लोकत्रयस्य शेखरे=शिरोभूषणे, खणखणा०—खणखणायमानाः=खणखणशब्दं कुर्वाणाः, खराः=कठिनाः ये खलीनाः कविकाः (कविका तु खलीना स्त्री इत्यमरः) लोहादि-निर्मिताः अश्वमुखमध्ये निहिताः अग्रहभागा इति यावत् (लगाम की रास) इति भाषायाम्, तैः क्षतानि=आहतानि निजतुरगाणां=स्वकीयाश्वानां यानि मुखानि तेभ्यः क्षिप्तेन=क्षरितेन क्षतजेन=रुधिरेण इवेत्युत्प्रेक्षायां, पाटलितं=लोहितीभूतं वपुः=शरीरं यस्य तथाभूते, उदयाचलस्य=उदयगिरे, चूडामणौ=शिरोरत्ने, जरत्०—जरत्=जीर्णः वृद्ध इति यावत् यः कृकवाकुः=कुक्कुटः तस्य चूडा=शिखरं तद्वत् अरुणः=रक्तवर्णः यः अरुणः तन्नामा (सूर्य) सारथिः पुरःसरः=अग्रगामी यस्य तस्मिन् विरोचने=सूर्ये। न अति दूरे वर्तते इति, निकट-वर्ती इत्यर्थः, विविच्य=विचार्य, पितामहस्य=ब्रह्मणः विमानाः=वाहनभूताः ये हंसाः तेषां कुलस्य=वंशस्य पालः=पालकः रक्षक इति यावत्, पर्यटन्=भ्रमन्, अपरवक्त्रम्=एतदाख्यवृत्तम् उच्चैः=तारस्वरेण अगायत्।

तरलयसि०—अकलुषं निर्मलं यत् मानसम्=एतन्नामकं सरोवरं, तत्र वासः=आवासः तेन लालिता=पालिता तत्संबुद्धौ, सरस्वतीपक्षे अकलुषं=रागद्वेषादिरहितं मानसं=मनः यस्य तथाभूतः ब्रह्मा तेन सह वासः=अवस्थानं तेन

टिप्पणी—तरलयसि० आख्यायिका-गद्यकाव्य में यत्र तत्र वक्त्र अपरवक्त्र छन्दों का विधान है। यहाँ अपरवक्त्र है जिसका लक्षण यह है—"अयुजि न नरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ"। अर्थात् जिसके प्रथम और तृतीय पादों में दो नगण और एक रगण और एक लघु और एक गुरु एवं द्वितीय और चतुर्थ पादों में एक नगण दो जगण और एक रगण हो, वह अपरवक्त्र वृत्त होता है। इस पद्य में कवि ने राजहंसी के वाहन सरस्वती को सम्बोधित किया है। सरस्वतीपरक अर्थ व्यङ्ग्य है अतः इसे हम अन्योक्ति कहेंगे।

हिन्दी—साथ विचरण करते हुए मुझे ब्रह्म-लोक के वियोग का अथवा शाप का शोक कुछ भी पीड़ा नहीं करेगा। केवल ब्रह्मा की सेवा का सुख मेरे हृदय को गीला कर रहा है। और भी, तुम ही भूलोक में मेरे ठहरने के लिए धर्म के स्थान, समाधि के साधन और योग के योग्य स्थानों को जानती हो।" इस तरह कहकर चुप हो गई और बेचैनी के कारण जागते-जागते बिना आँख मीचे ही रात बिता बैठी।

दूसरे दिन तीनों लोकों के शिरोरत्न, लगाम की खण-खणाती कठोर रास से कटे हुए अपने घोड़ों के मुखों से गिरे रुधिर से मानो लाल-लाल बने देहवाले, उदयाचल के चूड़ामणि, बूढ़े मुर्गे की कलगी की तरह लालवर्ण के (सारथि) अरुण को आगे किए हुए सूर्य के उदय हो जाने पर, पास में ही स्थित इधर-उधर घूमता हुआ ब्रह्मा के वाहन हंसों का रक्षक सोच विचारकर ऊँचे स्वर में अपरवक्त्र गा बैठा :—

अकुलाई दृष्टि चपल क्योंकर करती, निर्मल-मानस-निवास से पली हुई ?
कलहंसि ! वापिका में अब तुम उतरो निज कमलाऽऽलय को फिर आ जाओगी।

१. खखत्खलीन।

२. पितामहवाहनहंस।

तच्छ्रुत्वा सरस्वती पुनरचिन्तयत्—'अहमिवानेन पर्यनुयुक्ता। भवतु। मानयामि मुनेर्वचनम्' इत्युक्त्वोत्थाय कृतमहीतलावतरणसङ्कल्पा परित्यज्य वियोगविक्लवं स्वपरिजनं ज्ञातिवर्गमवगणय्यावगणा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्मुखं कथमप्यनुनयनिर्वर्तितानुयायिव्रतिव्राता ब्रह्मलोकतः सावित्रीद्वितीया निर्जगाम।

ततः क्रमेण ध्रुवप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाधोधावमानधवलपयोधराम्, उद्धुरध्वनिम्, अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम्,

---

टीका—लालिते ! कलहंसि ! राजहंसि, सरस्वतीपक्षे राजहंसीवत् शुभ्रे ! किम्=कस्मात् कारणात् उत्सुकां=सोत्कण्ठाम् उत्कण्ठाकुलितामिति यावत् दृशं=दृष्टिं=तरलयसि=चञ्चलीकरोषि, इतस्ततः प्रहिणोषीति भावः। वापिकां=दीर्घिकाम्, अन्यत्र उप्यन्तेऽत्र कर्माणि इति वापिका=कर्मभूमिः तां मर्त्य-लोकमिति यावत्, अवतर=गच्छ, पुनरपि पङ्कजानां=कमलानाम् आलयम्=आवासं मानससरोवरमित्यर्थः, अन्यत्र पङ्कजम् आलयः यस्य तं कमलासनं ब्रह्माणमिति यावत् यास्यसि=प्राप्स्यसि। अत्रान्योक्तिरलङ्कारः, स च श्लिष्टः।

अहम्इव अनेन पर्यनुयुक्ता=पृष्टा सङ्केतितेत्यर्थः। मुनेः=दुर्वाससः वचनं=शापमित्यर्थः मानयामि=स्वीकरोमि। कृत०—कृतः महीतले=मर्त्यलोके अवतरणस्य=गमनस्येत्यर्थः संकल्पः=निश्चयः यया सा, वियोगेन=विरहेण विक्लवं=व्याकुलं, स्वपरिजनं=स्वसेवकान् परित्यज्य ज्ञातिवर्गं=बन्धु-बान्धवगणम्, अवगणय्य=न गणयित्वा, अवगणा=अवयुक्ता गणात् सहचर-वर्गाद् विच्छिन्नेत्यर्थः, चतुराननं ब्रह्माणं त्रिः=त्रिवारं प्रदक्षिणीकृत्य परिक्रम्य, कथमपि=केनाऽपि प्रकारेण अतिकठिनतयेत्यर्थः, अनुनयेन=नम्रनिवेदनेन निर्वर्तितं=परावर्तितम् अनुयायिनाम्=अनुगामिनां व्रतिनाम्=तपस्विनां व्रातं=समूहः यया सा, सावित्री द्वितीया=सहचरीत्यर्थः, यस्याः तथाभूता अर्थात् सावित्रीसहिता, निर्जगाम=निरगच्छत्।

तत क्रमेण ध्रुवात् विष्णोः ("धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः" महाभारतम् १३।१७।१०३) विष्णुपदादित्यर्थः, प्रवृत्तां=निस्सृतां, गंगा हि अच्युत-चरण-तरंगिणी कथ्यते। धेनुपक्षे ध्रुवः=स्तम्भः कीलकः शङ्कुरित्यर्थः 'कीला' इति भाषायाम् (स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुः इत्यमरः) तस्मात् प्रवृत्तां=चलिताम्। इत आरम्य द्वितीयान्ताः शब्दाः 'मन्दाकिनीम्' इत्यस्य विशेषणानि। धर्म०—यज्ञादिकर्मणे धेनुः=गौः होमधेनुरित्यर्थः ताम् इवेत्युपमायाम्। अधो०—अधः=नीचैः धावमानं=त्वरितं गच्छत् यत् धवलं=शुभ्रं पयः=जलं तस्य धरतीति धरा ताम्। धेनुपक्षे—अधः धावमाना=क्षरन्त इत्यर्थः धवलाः पयोधराः=स्तनाः यस्याः ताम्, उद्धुरः अनियन्त्रितः अनिरुद्धः ध्वनिः=कलकलनिनादः अन्यत्र हम्भारवः यस्याः ताम्। अन्धक०—अन्धकः एतदाख्यासुरविशेषः, तम् मथ्नाति=विनाशयतीत्यर्थः। अन्धकमथनः=महादेवः तस्य मौलौ=शिरसि मालत्याः=एतदाख्यपुष्पविशेषस्य

टिप्पणी—बालखिल्य—प्रजापति क्रतु और उनकी पत्नी सन्नति के साठ हजार पुत्रों को बालखिल्य कहते हैं। ये आकार में अङ्गुष्ठ मात्र थे। स्वर्गंगा में स्नान करते हुए नीचे बैठ जाते थे क्योंकि बहुत छोटे थे। उनके कारण जलप्रवाह रुक सा जाता था। बाण ने कादम्बरी में भी इनका उल्लेख कर रखा है—"अनेकशो बालखिल्यकदम्बककृतसंध्योपासनं (सरः)" बालखिल्यों के लिए देखिये विष्णुपुराण—षष्टिर्यानि सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करतेजसाम् ॥२।१०।१२।

हिन्दी—सुनकर सरस्वती ने सोचा कि जैसे उसने मुझे ही पूछा है। अच्छा, मुनि दुर्वासा का वचन मानती हूँ—इतना कहकर खड़ी ही भूतल पर अवतरित होने का निश्चय किए हुए, वियोग के कारण व्याकुल हुए अपने नौकर-चाकरों एवं बन्धु-बान्धवों की परवाह न करके (उनके) समूह से पृथक् हुई ब्रह्मा की तीन बार परिक्रमा करके किसी तरह अपने पीछे-पीछे आने वाले तपस्वि-वृन्द को लौटाए हुए सावित्री-सहित ब्रह्मलोक से चल पड़ी।

तदनन्तर उस मन्दाकिनी का अनुसरण करती हुई जो ध्रुव (खूंटे) से खुली सफेद थनों से चूते हुए दूध वाली रांभती होमधेनु की तरह ध्रुव (विष्णु-पद) से निकली, नीचे बहता श्वेत जल रखे हुए निरोध कल-कल निनाद कर रही थी, जो अन्धकासुर को मारने वाले शिव के सिर पर मालती की माला (जैसी) थी, जिसका प्रवाह (नीचे) छिपे हुए बालखिल्यों द्वारा रोका हुआ था, जहाँ अरुन्धती ने वृक्षवल्कल धो रखा था, जहाँ उठते हुए ऊँचे तरंगों पर चंचल-चंचल देदीप्यमान तारे तैर रहे थे, जिसका रेतीला प्रदेश तपस्वियों द्वारा बिखेरे हुये विरले विरले तिलों और उदक से रोमाञ्चित हो रहा था, जिसका किनारा स्नान से पवित्र हुए ब्रह्मा द्वारा पितरों के

आलीयमानवालखिल्यरुद्धरोधसम्, अरुन्धतीधौततारवत्वचम्, त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतरत्तरलतरतारतारकाम्[1], तापसविकीर्णविरल[2]तिलोदकपुलकितपुलिनाम्, आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपाराम्, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम्, आचमनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम्, शिवपुरापतितनिर्माल्यमन्दारदामकाम्, अनावरदारितमन्दरदरीदृषदम्, अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्, [3]ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम्, सुषुम्णास्रुतशशिसुधाशीकरस्तबकतारकिततीराम्, धिषणाग्निकार्यधूमधूसरितसैकताम्, सिद्धविरचितवालुकालिङ्गलङ्घनत्रासविद्रुतविद्याधराम्, निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य, लीलाललाटिकामिव

टीका—मालाम् एव मालिकाम् (रूपकालङ्कारः) आकाशादिगङ्गा महादेव-शिरसि पतितेति पुराण-प्रसिद्धम्। **आलीय०**—आलीयमानाः=जलान्तःस्थिताः ये वालखिल्याः=एतन्नामकलघुकाया ऋषिविशेषाः तैः रुद्ध=बाधितं रोधः=तटं यस्याः ताम्। **अरुन्ध०**—अरुन्धत्या=वशिष्ठपत्न्या धौता=क्षालिता, तारवी=तरोः इयम् इति (तरु+अण्+ङीप्) तारवी=तरुसम्बन्धिनी त्वक्=वल्कलं यत्र ताम्। **त्वङ्गत्०**—त्वङ्गन्तः=ज्वलन्तः उच्चलन्तः इत्यर्थः ये तुङ्गाः=उच्चाः तरङ्गाः=ऊर्मयः तेषु तरन्त्यः=प्लवमानाः प्रतिबिम्बिता इत्यर्थः तरलतराः=अतिचञ्चलाः ताराः=देदीप्यमानाः। 'मुक्ता शुद्धौ च तारः स्यात्' इत्यमरः तारा एव तारकाः नक्षत्राणि यस्यां ताम्। **तापस०**—तापसैः तपस्विभिः, विकीर्णं=प्रक्षिप्तं, विरलम्=अघनं यत् तिलोदकं तिलाश्च उदकञ्च तयोः समाहारः तेन पुलकितानि=संजात-पुलकानि उल्लासितानीत्यर्थः पुलिनानि=सैकतानि बालुकामयतटानीत्यर्थः यस्याः ताम्। **आप्लवन०**—आप्लवनं=स्नानं तेन पूतः=पवित्रः यः पितामहः ब्रह्मा तेन पातिताः=स्थापिताः समर्पिता इत्यर्थः ये पितृपिण्डाः=पितृभ्यो दत्ताः पिण्डाः तैः पाण्डुरितः=श्वेतवर्णीकृतः पारः=तीरस्थलं यस्याः ताम्। अत्र पितृशब्देन अग्निष्वात्तादिदेवविशेषाः ग्राह्याः न तु पितृपितामहादयः, स्वयंभूब्रह्मणि तदनुपपत्तिः। **पर्यन्त०**—पर्यन्ते=प्रान्ते सुप्ताः=शयिताः ये सप्तर्षयः=मरीच्यादयः ऋषयः तेषां कुशा एव शयनम्=शय्या तेन सूचितः=बोधितः सूर्यग्रहस्य=सूर्यग्रहणस्य सूतके=अशौचे उपवासः=अनशनं यस्याः ताम्। **आचमन०**—आचमनेन शुचिः=शुद्धः यः शचीपतिः=इन्द्रः तेन मुच्यमानः=समर्प्यमाणः अर्चन-कुसुमानां=पूजापुष्पाणां निकरः समूहः तेन शारां शबलवर्णाम्। **शिव०**—शिवपुरात्=शिवपुरीतः आपतितम्=प्रक्षिप्तं, निर्माल्यं=देवोच्छिष्टद्रव्यं यथा पुष्पादिकं तद्रूपं मन्दारस्य=देवतरुविशेषस्य तत्कुसुमानामित्यर्थः दाम एव दामकं=माला यस्यां ताम्। **अनावर०**—अनादरं=न आदरः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा=अवहेलनापूर्वकं दारिताः=विखण्डिताः मन्दरस्य=एतन्नामकपर्वतविशेषस्य दरीणां=गुहानां दृषदः=प्रस्तराः यया ताम्। **अनेक०**—अनेके नाकस्य स्वर्गस्य ये नायकाः=नेतारः तेषां ये निकायाः=समूहाः तेषां कामिनीनां=सुन्दरीणां ये स्तनाः कलशा इव तैः विलुलितः=विलोलः प्रकम्पित इत्यर्थः विग्रहः=कलेवरं यस्याः ताम्। **ग्राहग्राव०**—ग्राहाः जलचरविशेषाश्च ग्रावाणः=प्रस्तराश्च तेषां ग्रामे=समूहे

टिप्पणी—सुषुम्णा—वास्तव में ये सुषुम्ण शब्द है जो सूर्य की एक विशेष किरण का प्रतिपादक है। यह चन्द्रमा को प्रकाश दिया करती है। यास्क कहते हैं—'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते'। 'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः'। विष्णुपुराण में भी कहा है—'सूर्य-रश्मिः सुषुम्नो यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः'। 'कृष्णपक्षेऽमरैः शाश्वत् पीयते वै सुधामयः'॥ २।११।२२।

हिन्दी—लिए गिराए गए पिण्डों से सफेद हो रहा था, जहाँ पास में ही सोये ब्रह्मर्षियों की कुशशय्या से सूर्यग्रहण के सूतक पर (उनके द्वारा किए) उपवास का पता चल जाता था, जो आचमन से शुद्ध हुए इन्द्र द्वारा छोड़े गए पूजा के पुष्पसमूह से रंग-विरंगी बनी हुई थी। जिसमें (शिव की) चढ़ाई हुई मन्दार की माला शिवपुरी से बहकर आई पड़ी थी, जो मन्दराचल की गुफाओं की चट्टानों को अवहेलना के साथ तोड़े हुए थी, जिसका (जलमय) कलेवर अनेक स्वर्ग-नेताओं की कामिनियों के कुचकलशों से क्षुब्ध हो रहा था, जिसका प्रवाह ग्राहों और शिलाखण्डों पर गिरते रहने से मुखरित होता रहता था, जिसका तट सुषुम्णा से बहते हुए चन्द्रमा के अमृत-बिन्दुओं के गुच्छों से तारों-जैसे चिह्नित हुआ पड़ा था, जिसका रेतीला प्रदेश बृहस्पति द्वारा किए अग्नि-होम के धूम से धूसरवर्ण का हो रहा था, जहाँ के सिद्धों द्वारा (पूजार्थ) बनाए हुए (शिव) लिंगों के लांघ जाने के डर से विद्याधर पलायन कर चुके थे, जो आकाशरूपी नाग की छोड़ी हुई केंचुली-जैसी, सुरलोकरूपी लम्पट के विला-

१. तुङ्गतुङ्गतरङ्गतरलिततारकाम्।
२. विकीर्णतरल०।
३. ग्राहग्रावस्खलन।

त्रिविष्टपविटस्य, विक्रयवीथीमिव पुण्यपण्यस्य, [1]दन्तार्गलामिव नरकनगरद्वारस्य, अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव सुमेरुनृपस्य, दुकूलकदलिकामिव कैलासकुञ्जरस्य, पद्धतिमिवापवर्गस्य, नेमिमिव कृतयुगचक्रस्य, सप्तसागरराजमहिषीं मन्दाकिनीमनुसरन्ती मर्त्यलोकमवततार। अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिष्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरसप्रस्रवणमिव दिशाम्, स्फाटिकशिलापट्टशयन-

---

टीका—स्खलनेन=पतनेन मुखरितं=शब्दायमानं स्रोतः=प्रवाहो यस्याः ताम्। सुषुम्णा०—सुषुम्णा=सूर्यस्य रश्मि-विशेषः तस्याः स्रुता=स्यन्दिता या शशिनः सुधा=चन्द्रस्य अमृतं तस्याः शीकराणां=बिन्दूनां स्तबकैः=गुच्छकैः तारकितं=सञ्जाततारकं ताराभिरिव चिह्नितमिति यावत् तीरं यस्याः ताम्। धिषणा०—धिषणः=बृहस्पतिः "(बृहस्पतिः सुराचार्यो गीष्पतिर्धिषणो गुरुः" इत्यमरः) तस्य यत् अग्नि-कार्यम्=अग्निहोमः तस्य धूमेन धूसरितं=धूसरवर्णीकृतं मलिनीकृतमिति यावत् सैकतं=बालुकामयप्रदेशः यस्याः ताम्। सिद्धा०—सिद्धाः=देवयोनिविशेषाः तैः विरचितानि यानि (पूजार्थं) लिंगानि=शिवलिङ्गानि तेषां लङ्घनात्=पादाभ्यामतिक्रमणात् यः त्रासः=भयम्, देवमूर्तिलङ्घनं हि महाभयमिति भयकारणम्, तेन विद्रुताः=पलायिताः विद्याधराः=देवयोनिविशेषाः यस्यां ताम्। निर्मोकः=कञ्चुकः तस्य मुक्तिः=मोचनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् गगनम्=आकाशम् एव उरगः=सर्पः तस्य। लीलार्थं=विलासार्थं ललाटिकाम्=ललाटे कृतं चन्दनं—तिलकम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, त्रिविष्टपः=सुरलोकः एव विटः=लम्पटः, रूपकालङ्कारः। विक्रय-वीथीम्=आपणम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पुण्यम् एव पण्यं=विक्रेय-द्रव्यं तस्य, रूपकालङ्कारः। दन्तस्य=हस्तिदन्तस्य हस्तिदन्तनिर्मितामिति यावत् अर्गलाम्=कपाटावष्टम्भक-मुसलम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, नरकम् एव नगरं तस्य द्वारं तस्येति रूपकालङ्कारः। अंशुकं=कौशेयवस्त्रं तस्य उष्णीषं=शिरोवेष्टनं तस्य पट्टिकां=पटीम्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सुमेरुः=देवगिरिः एव नृपः=नृपतिः तस्येति रूपकम्। स्वर्गङ्गा हि सुमेरुपर्वतान्निःसरति। दुकूलं=सूक्ष्मवसनं तस्य तन्निर्मितामिति यावत् कदलिकाम्=पताकाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कैलासः एव कुञ्जरः=करी तस्येति रूपकम्। पद्धतिम्=मार्गम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अपवर्गस्य=मोक्षस्य नेमिम्=प्रधिम् चक्रपरिधिमिति यावत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कृतयुगं=सत्ययुगम् एव चक्रं=रथाङ्गं, तस्येति रूपकम्, सप्तानां सागराणां राजा=क्षीरसागरः तस्य महिषीं=पट्टराज्ञीम् मन्दाकिनीम्=वियद्गङ्गाम् अनुसरन्ती=अनुगच्छन्ती। मर्त्यलोकम्=भूलोकम् अवततार=अवतीर्णाऽभवत्। अम्बर-तले=आकाश-तले स्थिता। अमृतस्य निर्झरम् प्रपातम्, चन्द्रः एव अचलः=पर्वतः तस्य। शशिमणीनां=चन्द्रकान्तमणीनां निष्यन्दम्=प्रस्रवणम्। कर्पूरस्य द्रुमाणां=वृक्षाणां द्रवस्य=रसस्य प्रवाहम्=स्रोतः इव। दिशाम्=दिशानां (नायिकानाम्) लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य यः रसः=द्रवः तस्य प्रस्रवणम्=धारा इव। अम्बरस्य=आकाशस्य श्रियाः लक्ष्म्याः स्फाटिकी=स्फटिकमयी या शिला तस्याः पट्टम्=फलकम् एव शयनं=शय्या तदिव। आकाशं हि जले

टिप्पणी—सप्तसागर—पुराणों के अनुसार वसुन्धरा 'सप्तद्वीपा' है और प्रत्येक द्वीप को एक एक सागर घेरे रहता है। देखिये—विष्णुपुराण "एते द्वीपाः समुद्रैश्च सप्त सप्तभिरावृताः। लवणेक्षु-सुरासर्पिर्दधि-दुग्धजलैः समम्"। सात सागरों में श्रेष्ठ क्षीरसागर है, इसलिए वह सागरराज कहलाता है।

हिन्दी—सायं माथे पर लगाये चन्दन-तिलक जैसी, पुण्य-रूपी विक्रेय वस्तुओं की बाजार की गली जैसी, नरक-रूपी नगर के द्वार की (हाथी-) दाँत की बनी साँकल जैसी, सुमेरु-रूपी नृपति के सिर पर रेशमी पगड़ी जैसी, कैलास-रूपी हाथी (के ऊपर) की महीन पताका जैसी, मोक्ष की पगडण्डी जैसी, सत्य-युग-रूपी पहिये की परिधि जैसी प्रतीत हो रही थी और जो सात समुद्रों के राजा (क्षीरसागर) की पटरानी थी—(सरस्वती) मर्त्यलोक में उतर आई और आकाशतल में स्थित ही उसने भगवान् पितामह का पुत्र हिरण्यबाहु नामक महानद देखा जिसे लोग 'शोण' ऐसा कहते हैं—वह शोण जो वरुण का हार-जैसा, चन्द्ररूपी पर्वत का अमृतप्रपात जैसा, विन्ध्यपर्वत का चन्द्रकान्त-मणियों का प्रवाह-जैसा, दण्डकारण्य के कपूरवृक्षों का रस-निष्यन्द जैसा, दिशाओं के सौन्दर्यरस का झरना जैसा, आकाश की श्री का स्फटिक-मणिमय शिलापट्ट का शयन-जैसा प्रतीत हो रहा था और जो निर्मल,

---

1. दत्तार्गला०।

मिवाम्बरश्रियाः, स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यबाहुनामानं महानदम्, यं जनाः शोण इति कथयन्ति। दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतहृदया तस्यैव तीरे वासमरोचयत्[1]। उवाच च सावित्रीम्—'सखि, मधुरमयूरविरुतयः कुसुमपांशुपटलसिकतिलतरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीया रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकण्ठभूमयः। पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्यातुं मे' इति। अभिनन्दितवचना च तयेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्। एकस्मिंश्च शुचौ शिलातलसनाथे तटलतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध। विश्रान्ता च नातिचिरादुत्थाय सावित्र्या सार्धमुच्चितार्चनकुसुमा सस्नौ। पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठापित[2]सैकतशिवलिङ्गा च भक्त्या परमया पञ्चब्रह्मपुरःसरां सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकरां ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयजमानमयी-

टीका—प्रतिफलितमासीत्। अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। स्वच्छञ्च शिशिरञ्च सुरसञ्च यद् वारि=जलं तेन पूर्णम्। दृष्ट्वा च तं शोणनदम् रमणीयस्य भावः रामणीयम् (रमणीय+वुञ्, भावे) सौन्दर्यं तेन हृतम्=आकृष्टं हृदयं यस्याः सा, वासं=निवासम् अरोचयत्। रोचितवती इयेषेत्यर्थः। मधुराः=मिष्टाः मयूराणां विरुतयः=केकाः यासु ताः। कुसुम०—कुसुमानां यत् पांशुपटलं=पराग-राशिः तेन सिकतिलानि=सिकताः (बालुकाः) सन्त्येषु इति (सिकता+इलच्) बालुकामयानि बालुकामयानीव प्रतीयमानानीति यावत् तरूणां=वृक्षाणां तलानि=अधोभागाः यासु ताः। परिमल०—परिमलेन=सौरभेण मत्तानां मदोन्मत्तानां मधुपानां=भ्रमराणां वेणी=श्रेणी एव वीणा=वादनयन्त्रविशेषः तस्याः रणितेन=ध्वनिना रमणीयाः=मनोज्ञाः रमयन्ति=आनन्दयन्ति मां मन्दी०—मन्दीकृताः=न्यूनीकृताः मन्दाकिन्याः=वियद्गङ्गायाः द्युतिः=कान्तिः येन तस्य उपकण्ठस्य=पार्श्वस्य सान्निध्यस्येत्यर्थः भूमयः=स्थानानि समीपवर्ति-प्रदेशा इत्यर्थः। पक्षपाति=समर्थकम्। अनुमोदितं वचनं यस्याः सा समवातरत्=अवतीर्णाऽभवत्। शुचौ=पवित्रे शिलातलेन=शिलाफलकेन सनाथे=युक्ते तटे यः लतामण्डपः तस्मिन्, गृहबुद्धिम् ममेदं गृहं भविष्यतीति विचारं बबन्ध=चकारेत्यर्थः। विश्रान्ता=कृतविश्रमा। नातिचिरात्=किञ्चित्कालानन्तरम्। उच्चितानि=संचितानि अर्चनाय=पूजार्थं कुसुमानि यया सा सस्नौ=स्नातवती। पुलिन०—पुलिनस्य सैकत-तीरस्य पृष्ठे=उपरि प्रतिष्ठापितं सैकतं सिकताया इदं बालुकामयमित्यर्थः शिवलिङ्गं यया सा। परमया उत्कृष्टया भक्त्या पञ्च-ब्रह्माणि पुरस्सराणि=अग्रगानि यस्यां ताम्, इत आरभ्य 'अष्टपुष्पिकाम्' इत्यस्य विशेषणानि। सम्यक् यः मुद्रा=सन्ध्यापूजायां कराङ्गुलीनां विशेषप्रकारेण स्थितिः तस्याः बन्धः=बन्धनम् रचनमित्यर्थः तेन विहितः=कृतः परिकरः=प्रारम्भः यस्याः ताम्। ध्रुवा एतन्नाम्नी गीतिः गानं गर्भे=मध्ये यस्याः ताम्। अवनि०—अवनिः=पृथिवी पवनः=वायुः वनं=जलं दहनः=अग्निः तपनः=सूर्यः तुहिनकिरणः=शीतरश्मिः चन्द्र इत्यर्थः यजमानः=यज्ञकर्ता जीव इति यावत् ते एवेति यजमानमय्यः ताः अष्टौ

टिप्पणी—पञ्चब्रह्म०—पुष्पिका-प्रदान से पूर्व सरस्वती ने पञ्चब्रह्मों की प्रार्थना की। वे पञ्च ब्रह्म सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान हैं। ब्राह्मणों को इनकी प्रार्थना शरीर पर पवित्र भस्म का लेप करते समय करनी होती है। मुद्राबन्ध०—पूजा में मुद्राबन्ध का भी विधान है। बिना मुद्राबन्ध किए कर्म के सम्बन्ध में लिखा है:—'मुद्राविमुक्तहस्तेन क्रियते कर्म दैविकम्। यदि तन्निष्फलं तस्मात्कर्म मुद्रान्वितश्चरेत्॥' अष्टपुष्पिका०

हिन्दी—शीतल एवं सुस्वादु पानी से भरा हुआ था। उसे देखकर हृदय में सौन्दर्य से आकृष्ट हुई (सरस्वती) उसी के तीर पर रहना पसन्द कर बैठी और सावित्री से बोली—"सखि! मन्दाकिनी की कान्ति को फीका कर देनेवाले इस महानद के आसपास के स्थान—जहाँ मयूरों की मीठी-मीठी ध्वनि (सुनाई पड़ती) है, जहाँ वृक्षों के तल भूभाग कुसुमों की परागराशि से रेतीले (जैसे) बने हुए हैं और जो सुगन्धि से मदमत्त हुए मधुकरों की पंक्तिरूपी वीणा के निनाद से रमणीय हैं—मुझे आनन्द दे रहे हैं। मेरा हृदय यहीं टिकने का पक्षपाती है"। "ऐसा ही सही"—यों उसके द्वारा अनुमोदित किये हुए वचनवाली (सरस्वती) उसके पश्चिम तट पर उतर गई और पत्थर की शिला से युक्त एक पवित्र तीरवर्ती लतामण्डप को (अपना) घर समझ बैठी। थकान मिटाये हुई देर बाद उठकर सावित्री के साथ पूजार्थ कुसुमों को तोड़कर वह नहाई। रेतीले प्रदेश पर रेत का शिवलिंग स्थापित किये हुए बड़ी भक्ति से पञ्चब्रह्म (प्रार्थना) पूर्वक, अच्छी तरह मुद्राबन्ध से (पूजा का) प्रारम्भ किए हुए, बीच-बीच में ध्रुवा गीति के गान के साथ-साथ पृथिवी, पवन, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान—इन रूपोंवाली आठों ही मूर्तियों को देर तक

१. अरचयत्।
२. अविष्ठिव।

मूर्तीरष्टावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात् । अयत्नोपनतेन फलमूलेनामृतरसमप्यतिशिशयिषमाणेन स्वादिम्ना शिशिरेण शोणवारिणा शरीरस्थितिमकरोत् । अतिवाहितदिवसा च तस्मिंस्तस्मिल्लतामण्डपशिलातले कल्पितपल्लवशयना सुष्वाप । अन्येद्युरप्यनेनैव क्रमेण नक्तन्दिनमत्यवाहयत् ।

एवमतिक्रामत्सु दिवसेषु गच्छति च काले कदाचिद्याममात्रोद्गते च रवावुत्तरस्यां ककुभि प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं गम्भीरतारतरं तुरङ्गहेषितह्लादमशृणोत् । उपजातकुतूहला च निर्गत्य लतामण्डपाद्विलोकयन्ती विकचकेतकीगर्भपत्र-पाण्डुरं रजःसङ्घातं नातिदवीयसि संमुखमापतन्तमपश्यत् । क्रमेण च सामीप्योपजायमानाभिव्यक्ति तस्मिन्महति शफरोदरधूसरे रजसि पयसीव मकरचक्रं प्लवमानं पुरः प्रधावमानेन, प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटकेन,

---

टीका—अपि मूर्तीः शिवस्येति शेषः । ध्यायन्ती=चिन्तयन्ती । सुचिरम्=पर्याप्त-समयं यथा स्यात् तथा । अष्ट-पुष्पिकाम्=अष्टानां पुष्पाणां समाहारः इति अष्टपुष्पी सा एव अष्टपुष्पिका (स्वार्थे कः) ताम् अदात्=शिवाय अर्पित-वती । न यत्नः=प्रयत्नो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा विना प्रयत्नमिति यावत् उपनतेन=प्राप्तेन । फलं च मूलञ्च तयोः समाहारः इति तेन, अमृतरसं=सुधा-स्वादम् अपि अतिशयितुमिच्छतीति (अति+√शी+सन्+शानच्) तेन अतिशयितुमिच्छुकेन । स्वादिम्ना=स्वादेन (स्वाद+इमनिच् भावे) । शिशिरेण=शीतलेन । वारिणा=जलेन शरीरस्य स्थितिं निर्वाहमित्यर्थः अकरोत् । अतिवाहितः=अतीतः दिवसः यया सा । कल्पितं=रचितं पल्लवानां=किसलयानां शयनं=शय्या यया सा । सुष्वाप=अस्वपत् । अन्येद्युः अपि नक्तंदिनम्=रात्रि दिनम् । अत्यवाहयत्=अत्यक्रामत् । यामम् एव याममात्रं=प्रहरमात्रम्, उद्गते=उदिते, रवौ=सूर्ये । ककुभि=दिशायाम् । प्रतिशब्देन=प्रतिध्वनिना पूरितानि=भरितानि वनानां गह्वराणि=गहनानि येन तम् । अतिशयेन गम्भीरः तारश्चेति गम्भीरतारतरम्=अतिगम्भीरमतिपटुञ्च । तुरङ्गाणाम्=अश्वानां हेषितस्य=हेषायाः ह्लादं=शब्दम् अशृणोत् । उपजातम्=उत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्याः तथाभूता । विलोकयन्ती=पश्यन्ती । विकच०—विकचानि=विकसितानि केतक्या यानि गर्भ-पत्राणि=आन्तरिकपत्राणि तद्वत् पाण्डुरं=श्वेत-पीतम् रजसां=धूलीनां सङ्घातं=समूहम् । न अतिशयेन दूरतरे इति (दूर+इयसुन् रस्य लोपे उकारस्य गुणे) दवीयसि । संमुखम्=अभिमुखम् । आप-तन्तम्=आगच्छन्तम् । क्रमेण च पदातिबलेन सनाथम् अश्ववृन्दं संददर्शेत्यन्वयः । सामीप्य०—सामीप्येन=समीप-तया उपजायमाना अभिव्यक्तिः=प्राकट्यं यस्य तत् अश्ववृन्दमित्यस्य विशेषणम् । शफरः=मत्स्यविशेषः तस्य उदरवत् धूसरे=धूसरवर्णे । पयसि=जले इवेत्युपमायाम् । मकरचक्रं=मकर-समूहं प्लवमानं=सन्तरन्तम्, पुरः=अग्रे । प्रधावमानेनेत्यादीनि पदाति-बलेन इत्यस्य विशेषणानि । प्रलम्ब०—प्रलम्बैः=लम्बाकारैः कुटिलैः=कुञ्चितैः कच-पल्लवैः पल्लवैरिव कचैः=केशैः (उपमित तत्पु०) घटितं=रचितं ललाटे=भाले जूटकं=केशसमूहः येन । धवल०—

टिप्पणी—इसमें आठ फूलों का समूह होता है : शिव की जो पृथ्वी आदि आठ मूर्तियाँ बाण ने गिनाई हैं वे कालिदास ने भी शकुन्तला नाटक की नान्दी में गिना रखी हैं । प्रत्येक मूर्ति को चढ़ाया जाने वाला फूल पृथक् होता है । वे आठ फूल हैं—बकं द्रोणश्च दुर्धूरं सुमना पाटला तथा । पद्ममुत्पलगोसूर्यमष्टौ पुष्पाणि शङ्करे ॥

हिन्दी—ध्यान करते हुए (उसने) आठ पुष्प समर्पित किए । बिना प्रयत्न के प्राप्त हुए फल-मूल तथा स्वाद में अमृत-रस को भी अतिक्रमण कर देने वाले शोण नद के शीतल जल से शरीर की स्थिति को बनाये रखा । दिन बिताये हुए उसी लतामण्डप के शिलातल पर किसलयों की शय्या बनाये सो गई । दूसरे दिन भी इसी क्रम से रात और दिन काटा ।

इस प्रकार दिनों के बीतते रहने और समय के कटते रहने पर किसी समय सूर्य के एक प्रहर मात्र उदय हुए उत्तर-दिशा में उसने घोड़ों की हिनहिनाहट का ऐसा जोर का गहरा शब्द सुना जिसकी गूँज से वन-निकुञ्ज व्याप्त हो गए और कुतूहल से युक्त (वह) लतामण्डप से निकल कर देखती हुई पास में ही सामने आते हुए, खिले केवड़े के भीतरी पत्तों की तरह पीले-पीले-से धूलि-समूह को देख बैठी । एवं समीप (में आजाने) के कारण स्पष्ट होता हुआ, जल के भीतर तैरते हुए मगरमच्छों के समूह की तरह मछली के पेट-जैसे धूसर वर्ण की उस महान् धूलि-राशि में तैरता हुआ एक अश्व-समूह उसने देखा—जिसके साथ आगे-आगे दौड़ता एक हजार पैदल सेना का दल था, जिसने लम्बे-लम्बे घुंघराले पल्लव-जैसे (मुलायम) बालों का भाल पर जूड़ा बना रखा था, जिसके गण्डस्थल हाथी-दाँत के बने

धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना, पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कच्छुरणकृष्णशबलकषायकञ्चुकेन, उत्तरीयकृत-शिरोवेष्टनेन, वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना, अनवरतव्यायामकृश-कर्कशशरीरेण, वातहरिणयूथेनेव मुहुर्मुहुः खमुड्डीयमानेन, लङ्घितसमविषमावटविटपेन, कोणधारिणा, कृपाण-पाणिना, सेवागृहीतविविधवनकुसुमफलमूलपर्णेन, 'चल चल, याहि याहि, अपसर्पापसर्प, पुरः प्रयच्छ पन्थानम्' इत्य-नवरतकृतकलकलेन, युवप्रायेण, सहस्रमात्रेण पदातिबलेन सनाथमश्ववृन्दं सन्ददर्श ।

मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविधरत्नखण्डखचितेन शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं

टीका—धवलाः=श्वेतवर्णाः याः दन्तपत्रिकाः हस्तिदन्तनिर्मितानि कर्णाभरणानि तासां-द्युत्या=कान्त्या हसिताः=कृतहासाः प्रकाशमाना इति यावत् कपोलभित्तयः=गण्डस्थलानि यस्य तेन । पिनद्धः०—पिनद्धाः=अपिनद्धाः (भागुरिमते अकारस्य लोपः) बद्धाः परिहिताः इत्यर्थः कृष्णागुरुः=सुगन्धितद्रव्यविशेषः तस्य पङ्कः=समूहः तस्य यः कल्कः=पिष्टं जल-पेषः (तदुक्तम् "द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् । तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभि-धीयते" ॥) तस्यच्छुरणेन=लेपेन कृष्णाः शबलाः=चित्रवर्णाः कषायाः=सुगन्धिताः कञ्चुकाः=वार-बाणाः चोलाकृतिसन्नाहाः इति यावत् जाकेट इति भाषायां, येषां तेन । उत्तरीयेण=उत्तरीयवस्त्रेण कृतं शिरो-वेष्टनम् उष्णीषं येन तेन । वाम०—वामप्रकोष्ठे=अग्रहस्ते, निविष्टं=स्थापितं स्पष्टं=भासमानं हाटकस्य=सुवर्णस्य कटकं=वलयं येन तेन । द्विगुण०—द्विगुणा द्विगुणिता द्विपूरितेत्यर्थः या पट्टस्य=कौशेयवस्त्रस्य पट्टिका=खण्डः तस्याः गाढः=दृढः यः ग्रन्थिः=ग्रन्थिकाबन्ध इत्यर्थः तेन ग्रथिता=बद्धा असिधेनुका=छुरिका येन तेन । अनवरत०—अनवरतः=सततः यः व्यायामः=अङ्गसञ्चालनादिश्रमः तेन कृशं=क्षीणं कर्कश=कठिनं च शरीरं यस्य तेन । वात-हरिणानां=वातप्रमीणां वातवत् त्वरितगामिनां मृगाणामित्यर्थः यूथेन समूहेन इवेत्युपमायाम् । मुहु-र्मुहुः=पुनः पुनः । खम्=आकाशम्, उड्डीयमानेन तीव्रवेगेन प्रधावतेत्यर्थः । लङ्घित=लङ्घितानि समानि=समस्थलानि विषमाणि=विषमस्थलानि अवटाः=गर्ताः विटपाः गुल्माश्च येन तेन। कोणं दण्डं धारयतीति तेन । कृपाणः=खड्गः पाणौ=हस्ते यस्य तेन । सेवा० सेवार्थं=पूजार्थं गृहीतानि विविधानि वनस्य कुसुमानि फलानि मूलानि पर्णानि=पत्राणि च येन तेन । अपसर्प=अपगच्छ । इति अनवरतं=सततं कृतः कलकलः=कोलाहलः येन तेन । युवप्रायेण=युवानः तरुणाः, तेषां प्रायः बाहुल्यं यस्मिन् तेन । सहस्रं मात्रा=परिमाणं यस्य तेन । पदातीनां=पत्तीनां बलेन=सेनया सनाथं=युक्तम् । अश्वानां=वाजिनां वृन्दं=समूहं । संददर्श=अपश्यत् ।

मध्ये च तस्येत्यारभ्य 'अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत्' इत्यन्तं वाक्यमस्ति । सार्धचन्द्रेण=सार्धचन्द्रेण सदृशेन, क्षीरोदपक्षे अर्धचन्द्रसहितेन । मुक्ताफलानां मौक्तिकानां जालं=समूहः तस्य माला=मण्डलं यस्य तेन, उभयत्र समानम् । विविध०—विविधैः रत्नखण्डैः रत्नशकलैः खचितेन=प्रतिबद्धेन, अन्यत्र पूर्णेन, सागरो हि रत्नाकर उच्यते । शङ्खः-क्षीरं=दुग्धं फेनः=हिण्डीरः तद्वत् पाण्डुरेण=श्वेतेन, अपरत्र तैः पाण्डुरेण । क्षीरोदेन=क्षीरसमुद्रेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम्

टिप्पणी—क्षीरोदेनेव—यहाँ सिर के ऊपर के छत्र पर क्षीर-समुद्र की कल्पना की जा रही है और इसका आधार है श्लेष । छत्र 'सार्धचन्द्र' अर्थात् अर्धचन्द्राकार है तो क्षीरसमुद्र भी 'सार्धचन्द्र' अर्थात् अर्धचन्द्र वाला है क्योंकि समुद्रमन्थन में अर्ध-चन्द्र ही निकला था । छत्र पर मोतियों की मण्डलाकार झालर लगी हुई थी, समुद्र में भी मोतियों की लाइनें पड़ी रहती हैं । तरह-तरह के रत्न भी दोनों में एक जैसे ही हैं । एक शंख, क्षीर और फेन की तरह श्वेत है तो दूसरा भी शंखों, क्षीर और फेन से श्वेत है । दोनों गगनगामी हैं । छत्र लक्ष्मी (सौंदर्य) प्रदान द्वारा छाया किए हुए है तो क्षीरोद भी लक्ष्मी (देवी) प्रदान करता हुआ 'छाया'—कान्ति बढ़ा रहा है । ध्यान रहे कि

हिन्दी—कर्णाभरणों की श्वेत छटा से भासित हो रहे थे, जिसने काले-अगर-समूह के पिष्ट (paste) के लेप से काले रंग-बिरंगे और सुगन्धित बने हुए कञ्चुक (शरीर में) कस रखे थे, जिसने दुपट्टे की पगड़ी बना रखी थी, जिसने बायें हाथ के अग्रभाग में सोने का उज्ज्वल कड़ा पहन रखा था, जिसने दोहरी रेशमी-कपड़े की पट्टी की मजबूत गाँठ से कटार बाँध रखी थी, जिसका शरीर निरन्तर व्यायाम से पतला और ठोस बना हुआ था, जो हवा से बात करने वाले मृगों की तरह बार-बार आकाश में उड़ रहा था, जिसने सम-विषम स्थलों, गर्तों तथा झाड़-झंकारों को लांघ लिया था, जो डंडा रखे हुए था, जिसके हाथ में कृपाण थी, जिसने (देव) सेवा के लिए नाना-प्रकार के जंगली फूल, फल मूल और पत्ते रखे हुए थे, जिसने चल-चल, जा-जा, हट-हट, आगे मुझे रास्ता दे, इस तरह का हल्ला लगातार मचा रखा था और जिसमें अधिकतर युवा थे ।

उसके मध्य में (सरस्वती ने) लगभग अठारह वर्ष का युवा देखा जिस पर अर्धचन्द्राकार मौक्तिक समूह की झालर

लक्ष्मीं दातुमागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतच्छायम्, अच्छाच्छेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवालेनानुगम्यमानम्, आनितम्बविलम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकलभुवनविजयार्जितया रूपपताकयेव विराजमानम्, उत्सर्पिभिः शिखण्डखण्डिका[1] पद्मरागमणेररुणैरंशुजालैरदृश्यमानवनदेवताविधृतैर्बालपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्ग[2] रेणुपरुषवपुषम्, बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण कुटिलकुन्तलस्तबकमालिना मौलिना मीलितातपं पिबन्तमिव

टीका—स्वयं लक्ष्मीं=सौन्दर्यम् अन्यत्र देवीम्; गगने आकाशे गतेन=स्थितेन उत्थापितेनेत्यर्थः आतपत्रेण=छत्रेण कृता छाया अनातपः अन्यत्र कान्तिः यस्य तथाभूतम्। अच्छा०—अच्छाच्छानाम् उज्ज्वलोज्ज्वलानाम् आभरणानाम्=अलङ्काराणां द्युतीनां=कान्तीनां निवहेन=समूहेन दिशां=दिशानाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दर्शने=साक्षात्करणे यः अनुरागः आसक्तिः तेन लग्नेन=संसक्तेन चक्रवालेन=मण्डलेन अनुगम्यमानम् अनुस्रियमाणम्, आनितम्बं=नितम्बपर्यन्तं विलम्बिन्या विलम्बमानया मालत्या शेखर-स्रजा=शिरोमालया, सकलानां भुवनानां विजयेन अर्जितया प्राप्तया रूपस्य =सौन्दर्यस्य पताकया=ध्वजेन इवेत्युत्प्रेक्षायां विराजमानं=शोभमानम्। उत्सर्पिभिः उद्गच्छद्भिः शिखण्डखण्डिका=चूडाभरणं तस्याः यः पद्मरागमणिः=लोकहितमणिविशेषः तस्य अरुणैः=रक्तवर्णैः अंशूनां=किरणानां जालैः=समूहैः अदृश्यमानया=अदृश्यया वन-देवतया=वनाधिष्ठात्र्या देव्या विधृतैः धारितैः बालाः=नवाः ये पल्लवाः=किसलयाः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, प्रमृज्यमानं=परिष्क्रियमाणं मार्गस्य=अध्वनः रेणुना=धूल्या परुषं=मलिनं वपुः=शरीरं यस्य तम्। वकुल०—वकुलस्य=पुष्पविशेषस्य (मौलसरीः इति भाषायां प्रसिद्धस्य) यानि कुड्मलानि=मुकुलानि तेषां मण्डली=चयः तस्याः। मुण्डमालया=शिरस्रजा मण्डनेन=अलङ्कारेण मनोहरेण=रमणीयेन। कुटिलाः=कुञ्चिता ये कुन्तलाः=केशाः तेषां स्तबकानां=गुच्छानां माला=निचयः अस्यास्तीति तेन मौलिना=शिरसा मीलितः=रुद्धः

टिप्पणी—यहाँ 'स्वयं' शब्द से यह ध्वनित होता है कि दुर्वासा द्वारा इन्द्र को दिए गए शाप के कारण जब जगत् लक्ष्मी-विहीन हो गया था तब देवताओं को लक्ष्मी आदि रत्न प्राप्त करने के लिए समुद्र का मन्थन करना पड़ा था, लेकिन यहाँ तो बिना मन्थन के ही समुद्र स्वयं इस युवा को 'लक्ष्मी प्रदान करने के लिए' आया हुआ है। यहाँ श्लिष्टोत्प्रेक्षालङ्कार है। अच्छाच्छेन—अभिप्राय यह है कि वह युवा अंगों में पहने हुए उज्ज्वलोज्ज्वल आभूषणों के किरण-जाल से घिरा हुआ था जिस पर कवि कल्पना करता है कि वह किरण आवलियाँ नहीं प्रत्युत मानो दिशा-नायिकायें हों जो उस सुन्दर युवा को देखने के लिए उन्मत्त हो उसके पीछे-पीछे लगी हुई हैं। बकुल०—भाव यह है कि वह घुंघराले बालों से घिरा हुआ और बकुल-मुकुलों की शिरोमाला से मंडित था जिससे ऐसा लगता था मानो वह 'दिवस' को पी रहा हो। हम देखते हैं कि रात्रि के आगमन पर दिन की चमक कम हो जाया करती है। श्वेत बकुल दिन की चमक की तरह है और उसका काला केश-कलाप श्वेत बकुल-मुकुल से सम्पर्क रखे हुए रात्रि की तरह है। काले केश-कलाप ने मानो दिन की चमक मन्द कर दी जो अब बकुल-मुकुलों के रूप में बिखरा हुआ शेष रह गया है।

हिन्दी—से युक्त, तरह-तरह के रत्न खण्डों से जड़ित, शंख, दूध और फेन जैसे श्वेतरंग का, (सिरके ऊपर) आकाश-स्थित एक ऐसा छत्र छाया किए हुए था जो यों लग रहा था मानो अर्ध-चन्द्र साथ लिए हुए, मौक्तिक-समूह की पंक्तियों एवं विविध-रत्नखण्डों से परिपूर्ण, शंख, क्षीर तथा फेन से श्वेत बना हुआ स्वयं लक्ष्मी (सौन्दर्य) प्रदान करने के लिए आया हुआ सुरलोक का क्षीर-समुद्र हो, जिसके पीछे-पीछे चला आता हुआ उज्ज्वल-उज्ज्वल आभूषणों का कान्ति-समूह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उसे देखने के अनुराग के कारण पीछे लगा हुआ दिङ्मण्डल हो, जो नितम्बमण्डल तक लटकनेवाली चमेली के फूलों की शिरो-माला से ऐसा शोभित हो रहा था मानो वह (माला) विश्व-विजय में प्राप्त उसकी सौन्दर्य-पताका हो, जिसका मार्ग की धूलि से मैला बना शरीर शिखाभरण के पद्मराग से निकलते हुए लाल किरण-समूह से मानो अदृश्य बनी वन-देवी द्वारा पकड़े हुए नव-पल्लवों से साफ किया जा रहा था, जो मौलसरी-मुकुल-समूह की शिरोमाला से विभूषित होने के कारण मनोहर बने हुए घुंघराले केश-कलाप से घिरे सिर से फीकी पड़ी चमकवाले दिवस को पी-सा रहा था, जो महादेव के जटाजूट के चन्द्र के दूसरे

---

१. गण्डिका।
२. रेणुरूषितपरुष।

दिवसम्, पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य मनः शिलापङ्कपिङ्गलेन लावण्येन लिम्पन्तमिवान्तरिक्षम्, अभिनवयौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य चक्षुषः प्रथिम्ना विकचकुमुदकुवलयकमलसरःसहस्रसञ्छादितदशदिशं शरदमिव प्रवर्तयन्तम्, आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन ललाटतटशशिमणिशिलातलगलितेन कान्तिसलिलस्रोतसेव द्राघीयसा घोणावंशेन शोभमानम्, अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलमुचा मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण मुखेन सनन्दनवनं वसन्तमिव वमन्तम्,[1] आसन्नसुहृत्परिहास-

---

टीका—मन्दीकृत इत्यर्थः आतपः=सूर्यद्योतः यस्य तम्, पिबन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दिवसम्। पशुपति०—पशुपतिः=शिवः तस्य मुकुटं=मुकुटभूतः शेखरीभूतः इत्यर्थः यः मृगाङ्कः=मृगलाञ्छनः अर्धचन्द्रः इत्यर्थः तस्य यत् द्वितीयं शकलं=खण्डं तेन घटितस्य=निर्मितस्य इवेत्युत्प्रेक्षायां, सह जायते इति सहजा=नैसर्गिकी या लक्ष्मीः श्रीः सौन्दर्यमित्यर्थः तया समालिङ्गितस्य=समाश्लिष्टस्य, ललाट-पट्टस्य=भालफलकस्य, मनःशिलायाः=रक्तवर्णधातुविशेषस्य 'मनसिल' इति भाषायां प्रसिद्धस्य पङ्कवत्=कर्दमवत् पिङ्गलेन=रक्तपीतेन लावण्येन=सौन्दर्येण लिम्पन्तम्=लिप्तं कुर्वन्तम् इवेत्युप्रेक्षायाम् अन्तरिक्षम्=आकाशम्। अभिनव०—अभिनवं=नवीनं यत् यौवनं=तारुण्यं तस्य आरम्भेण यः अवष्टम्भः=दर्पः तेन प्रगल्भाः=निर्विशङ्का ये दृष्टिपाताः=अवलोकनानि तैः तृणीकृतं=तृणवत् तुच्छीकृतं भुवनं=जगत् येन तथाभूतस्य चक्षुषः=नयनस्य प्रथिम्ना=पृथुभावेन। विकच०—विकचानि=विकसितानि यानि कुवलयानि=नीलोत्पलानि, कुमुदानि=कैरवाणि कमलानि=पद्मानि च तेषां यानि सरसां=सरोवराणां सहस्राणि तैः सञ्छादिताः=संवृताः दश-दिशः यया तां शरदम् इवेत्युत्प्रेक्षायां प्रवर्तयन्तं=जनयन्तम्। आयत०—आयते=विशाले नयने=नेत्रे एव नद्यौ तयोः सीमान्तयोः=सीमापर्यन्तयोः सेतुबन्धेन=तटबन्धेन, ललाटतटं='भालतलम् एव शशिमणेः=चन्द्रकान्तस्य शिलातलं तस्मात् गलितेन=निस्सृतेन कान्तिः सौन्दर्यम् एव जलं तस्य स्रोतसा=प्रवाहेण इवेत्युत्प्रेक्षा सा च रूपकोत्थापिता, द्राघीयसा=अतिशयेन दीर्घेण घोणा=नासिकावंशः=दण्ड इवेत्युपमिततत्पु० तेन शोभमानम् विराजमानम्। अतिसुरभि०—अतिसुरभिः अतिसुगन्धितः यः सहकारः=आम्रः, कर्पूरः=घनसारः कक्कोलः=फलवृक्षविशेषः लवङ्गपारिजातकौ=वृक्षविशेषौ च तेषां तन्निर्मितमुखश्वासविशेषाणामित्यर्थः परिमलं=सौरभं मुञ्चति=वहिर्निस्सारयतीति तेन मत्ताः=मदोन्मत्ताः ये मधुकराः=भ्रमराः तेषां कुलस्य=समूहस्य कोलाहलेन=झङ्कारशब्देन मुखरेण=शब्दितेन मुखेन नन्दनवनेन=सुरलोकोद्यानेन सहितं वसन्तं=वसन्तर्तुम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, वमन्तम्

टिप्पणी—पशुपति०—युवा का भालपट्ट चन्द्र जैसा सुन्दर था, अतएव कवि कल्पना करता है कि चन्द्र का आधा खण्ड तो महादेव का शेखर बना हुआ है, बचे हुए दूसरे खण्ड से मानो युवा का भाल बनाया गया हो और यही कारण है कि लक्ष्मी अपने भाल-चन्द्र भाई से लिपट गई। भाई-बहन का स्वाभाविक स्नेह हुआ ही करता है। समुद्र से उत्पन्न चन्द्र और लक्ष्मी—दोनों 'सहज' हैं। अतिसुरभि०—नाना प्रकार के मुखवासों की सुगन्धि से युवा नन्दनवन सहित वसन्त ऋतु को मानो बाहर उगल रहा था। नन्दनवन में सभी प्रकार का सौरभ एवं भ्रमरझङ्कार रहता है, युवा के साथ भी यही है। 'वमन्तम्' के स्थान में 'अवतारयन्तम्' वाला पाठ अधिक मिलता है और वह अच्छा भी लगता है। 'अवतारयन्तम्' पाठ देने वालों का यह तर्क है कि 'वमन्तम्' पाठ में ग्राम्यता-दोष आ जाता है परन्तु वे भूल जाते हैं कि वमन्तम् शब्द यहाँ लाक्षणिक है, अतः वह दोष-मुक्त है। दण्डी ने यह व्यवस्था कर रखी है—'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते॥" १।२५।

हिन्दी—खण्ड से मानो बने हुए नैसर्गिक-सौन्दर्य-पूर्ण भाल-स्थल के मन-सिल के गारे-जैसे लाल-पीले लावण्य से आकाश को लीप-सा रहा था, जो आरम्भ हुए नव यौवन के दर्प के कारण निःशंक दृष्टिपातों द्वारा तीनों लोकों को तृण की तरह तुच्छ समझनेवाले नयन की विशालता से विकसित कुमुदों, कुवलयों और कमलों के हजारों सरोवरों द्वारा दसों दिशाओं को आच्छादित कर देने वाली शरदृऋतु का निर्माण-जैसा कर रहा था, जो विशाल नयन-रूपी नदियों के सीमान्तों के तटबन्ध एवं भाल-स्थलरूपी चन्द्र-कान्तमणि के शिलातल से बहते हुए सौन्दर्य-रूपी जल के झरने-जैसे प्रतीत हो रहे दीर्घ नासिका-दण्ड से शोभित हो रहा था, जो अति-सुगन्धित आम, कपूर, कंकोल, लौंग और पारिजात की सुगन्ध छोड़नेवाले, मदमत्त भ्रमर-समूह के कोलाहल-से गुंजित मुख से मानो नन्दनवन सहित वसन्तऋतु का वमन

---

1. अवतारयन्तम्।

भावनोत्तानितमुखमुग्धहसितैर्दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः पुनः पुनर्नभसि सञ्चारिणं चन्द्रालोकमिव कल्पयन्तम्, कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य प्रेङ्खतः प्रभया समुत्सर्पन्त्या कृतसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंसमिवोपलक्ष्यमाणम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरं भुजयुगलमुद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव मकरकेतुकेतुदण्डद्वयं दधानम्, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतःसन्दानितमिव मन्दरं देहमुद्वहन्तम्, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव कान्तोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनोरःस्थलेन स्थूलभुजायाम-

---

टीका—उद्गिरन्तम्। आसन्न०—आसन्नाः=समीपवर्तिनः ये सुहृदः=मित्राणि, तेषां परिहासाः=हास्यानि तेषां भावनायै=अवबोधाय उत्तानितम्=उन्नमितं यत् मुखं तस्य मुग्धैः=सरलैः निर्व्याजैरित्यर्थः हसितैः, दशन०—दशनानां दन्तानां ज्योत्स्नया=चन्द्रिकया स्नपितानि=स्नानं कारितानि धौतानीत्यर्थः दिङ्मुखानि यैः तैः पुनः पुनः नभसि=आकाशे सञ्चारिणं=संचरन्तं चन्द्रालोकं=चन्द्रप्रभाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कल्पयन्तं=सृजन्तम्। कदम्ब०—कदम्बस्य पुष्पविशेषस्य यत् मुकुलं=कुड्मलं तद्वत् स्थूलं मुक्ताफलयोः मौक्तिकयोः यद् युगलं=द्वयं तस्य मध्यं=मध्यभागम् अधिश्रितम् मध्येस्थितमित्यर्थः मरकतम्=एतन्नामको मणिविशेषः यस्मिन् तथाभूतस्य त्रिकण्टक-कर्णाभरणस्य। 'त्रिकण्टकस्तु यत्र स्यात् त्रिभी रत्नैश्च भूषणम्' इत्यनुसारेण त्रीणि कण्टकानि अस्राः कोणा इति यावत् यस्य तथाभूतः त्र्यस्रः अर्थात् त्रिकोणः। त्रिरत्नघटितः अलङ्कारो भवति। प्रेङ्खतः=लम्बमानस्य प्रभया=कान्त्या, समुत्सर्पन्त्या=समुद्गच्छन्त्या, कृतः सकुसुमेन=कुसुमसहितेन हरितेन=हरितवर्णेन कुन्दस्य=श्वेतपुष्पविशेषस्य पल्लवेन=किसलयेन अवतंसः=कर्णाभरणम् येन तम्। आमोदित०—आमोदितः=आमोदः सञ्जातः अस्येति सुरभितमित्यर्थः यः मृगमदस्य कस्तूरिकायाः पङ्कः=पिष्टम् तेन लिखितःचित्रितः यः पत्रभङ्गः=पत्राद्याकार-रचना तेन भास्वरं=भ्राजमानं भुजयोः युगलम् द्वयम्, उद्दामः=उग्रः भीषण इति यावत् यः मकरः=मकरमत्स्यः तेन आक्रान्तम्=अधिष्ठितं शिखरम्=अग्रं यस्य तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। मकरकेतोः=कामदेवस्य केतु-दण्डयोः=ध्वजदण्डयोः द्वयं युगलं दधानं=धारयन्तम्। धवलेन=श्वेतेन ब्रह्मसूत्रेण=यज्ञोपवीतेन सीमन्तितम्=सीमन्तः-सीमारेखा सञ्जातः अस्येति कृतविभागमित्यर्थः, सागरस्य=क्षीरसमुद्रस्य मथनेन सामर्षा=अमर्षेण सहिता क्रुद्धा या गङ्गा तस्याः स्रोतसा=प्रवाहेण सन्दानितं=बद्धम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। कर्पूर०—कर्पूरस्य क्षोदः=चूर्णं तस्य मुष्टेः=मुष्टिपरिमाणस्य मुष्टिपरिमित-कर्पूरचूर्णस्येत्यर्थः छुरणेन=लेपनेन पांशुलेन=पांशुमता धवलितेनेत्यर्थः। कान्ता०—कान्तायाः (भाविन्याः) पत्न्याः उच्चौ=उन्नतौ कुचौ स्तनौ एव चक्रवाकौ तयोः युगलं=द्वयम्, तस्मै विपुलं=विशालं पुलिनं=सैकतं तेन उरःस्थलेन=वक्षःस्थलेन

टिप्पणी—**आसन्न०**—जब-जब हँसी में युवा की दशनप्रभा बाहर पड़ती थी, तब-तब ऐसा लगता था मानो वह आकाश में चाँदनी का सृजन कर रहा हो। हँसी के बाद चाँदनी लुप्त हो जाती थी। 'पुनः पुनः' शब्द से कवि का यही अभिप्राय है। यहाँ नभसि शब्द में श्लेष है। आकाश के अतिरिक्त इसका दूसरा अर्थ श्रावण मास है। श्रावण में चन्द्रमा कभी मेघों में छिप जाता है, कभी प्रकट हो जाता है, इसीलिए चाँदनी भी 'पुनः पुनः' प्रकट होती है जैसे कि युवा की हँसी। **धवलब्रह्मसूत्र०** शरीर की सीमा-रेखा बने धवल ब्रह्मसूत्र पर धवल-जल गंगा की कल्पना की गई है: युवा का शरीर मानो मन्दराचल हो जो समुद्रमन्थन का दण्ड है। समुद्र अन्य नदियों की तरह गंगा का भी पति है। उसके मन्थन से उसको दुःख होना स्वाभाविक ही है, इसलिए क्रुद्ध होकर गङ्गा (ब्रह्मसूत्र) मन्दर (उनके देह) को बाँधे हुए है जिससे पति का मन्थन न हो सके। समुद्रमन्थन के लिए देखिये विष्णुपुराण—"मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्। मथ्यताममृतं देवाः साहाय्ये मय्यवस्थिते॥" १।९।७९।

हिन्दी—कर रहा था, जो समीप के मित्रों का परिहास समझने के लिए ऊँचा किये हुए मुख की सरल हँसी से—जिसमें (उसके) दाँतों की प्रभा दिङ्मुखों को नहला देती थी—मानो आकाश में फैलनेवाली चाँदनी का बार-बार सृजन कर रहा था, जो कदम्ब की कलियों के समान (बड़े-बड़े) दो मोतियों के बीच जड़े मरकत मणिवाले (कानों में) लटकते हुए त्रिकोण कर्ण-भूषण की ऊपर उठती हुई प्रभा से ऐसा लगता था मानो उसने (दो) कुसुम-सहित कुन्द के हरे पल्लवों का कर्णावतंस बना रखा हो, जो सुगन्धित कस्तूरी के द्रव से बनाई गई पत्र-रचनाओं से चमकती हुई दो भुजाओं को यों धारण कर रहा था मानो वे कामदेव के दो ध्वजदण्ड हों जिनके अग्र-भाग पर भीषण मगर-मच्छ बैठा रहता है, जो धवल यज्ञोपवीत से सीमांकित हुआ शरीर धारण कर रहा था कि मानों वह (शरीर) समुद्र-मन्थन से क्रुद्ध हुई गंगा के प्रवाह से बाँधा हुआ मन्दराचल हो, जो मुट्ठीभर कपूर-चूर्ण के लेप से

पुञ्जितं पुरो विस्तारयन्तमिव दिक्चक्रम्, पुरस्तादीषदधोनाभिनिहितैककोणकमनीयेन पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतः संवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्, अनवरतश्रमोपचितमांसकठिनविकट[1] मकरमुखसंलग्नजानुभ्यां विशालवक्षःस्थलोपलवेदिकोत्तम्भनशिलास्तम्भाभ्यां चारुचन्दनस्थासकस्थूलकान्तिभ्यामूरुदण्डाभ्यामुपहसन्तमिवैरावतकरायामम्, अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव तनुतरजङ्घाकाण्डम्, कल्पपादपपल्लवद्वयस्येव पाटलस्योभयपार्श्वावलम्बिनः पादद्वयस्य दोलायमानैर्नखमयूखैरश्वमण्डनचामरमालामिव रचयन्तम्, अभिमुखमुच्चैरुदञ्चद्भिरतिचिरमुपरि विश्राम्यद्भिरिव वलितविकटं पतद्भिः खुरैः

टीका—स्थूलयोः=आयतयोः विस्तीर्णयोरित्यर्थः आयामेन=दैर्घ्येण पुञ्जितं=पुञ्जीकृतं पुरः=अग्रे विस्तारयन्तं=वितन्वन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दिक्-चक्रं=दिशामण्डलम् अत्र रूपकोत्प्रेक्षालंकारः। पुरस्तात्=अग्रतः ईषत्=किमपि नाभेः अधः इत्यधोनाभि नाभेः नीचैरित्यर्थः निहितः=स्थापितः एकः कोणः अन्त-भागः तेन कमनीयेन=मनोज्ञेन, पृष्ठतः=पृष्ठभागे कक्ष्यायां=मेखलायाम् अधिकं यथा स्यात्तथा क्षिप्तः=निहितः पल्लवः=प्रान्तः यस्य तेन, उभयतः द्वयोः एव पार्श्वयोः, संवलनेन=मिलनेन प्रकटितः=प्रकाशितः ऊर्वोः=जंघयोः त्रिभागः=तृतीयो भागः येन तेन, हारीतः=हरितवर्णपक्षिविशेषः तद्वत् हरिता=हरितेन निबिडं=दृढं यथा स्यात्तथा निपीडितेन=बद्धेन अधरवाससा=अधोवस्त्रेण विभज्यमानः तनुतरः=अतितनुः अतिकृश इत्यर्थः मध्यभागः=कटि-भागः यस्य तम्। अनवरतः०—अनवरतः=सततः यः श्रमः व्यायामः तेन उपचितं=प्रवृद्धं मांसं ययोः तथाभूते, कठिने, दृढे, विकटे=विस्तीर्णे, मकरमुखे=जानुनोरुपरिभागे संलग्ने सम्बद्धे जानुनी ययोः ताभ्यामिति ऊरुदण्डाभ्यामित्यस्य विशेषणम्। विशाल०—विशालं=विस्तीर्णं यत् वक्षःस्थलम् तदेव उपलवेदिका=प्रस्तरवेदी तस्याः उत्तम्भनाय=धारणाय शिलास्तम्भाभ्यां प्रस्तरस्थूणाभ्याम्। चारुच०—चारुः=सुन्दरः चन्दनस्य स्थासकः=चर्चा लेप इत्यर्थः (**'स्नानं चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकोऽथ प्रबोधनम्'** इत्यमरः) तेन स्थूला=विपुला कान्तिः ययोः ताभ्याम् ऊरुदण्डाभ्याम्=ऊरू दण्डाविवेत्युपमिततत्पु० ताभ्याम् उपहसन्तम्=उपहासास्पदीकुर्वन्तम् अवहेलयन्तमित्यर्थः, ऐरावतस्य=इन्द्रहस्तिनः करस्य=शुण्डायाः आयामं=दैर्घ्यम्। अति०—अति=अतिशयेन भरितौ=मांसलौ स्थूलौ इत्यर्थः यौ ऊरू तयोः वहनेन=धारणेन यः खेदः=श्रमः तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अतिशयेन तनु=कृशं जङ्घयोः काण्डं=भागः यस्य तम्। कल्प०—कल्पपादपस्य=कल्पवृक्षस्य पल्लवयोः=किसलयोः द्वयस्य=युगलस्य इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पाटलस्य=रक्तवर्णस्य, उभयपार्श्वाभ्याम् उभाभ्यां पार्श्वाभ्याम् अश्वस्येति शेषः अवलम्बते इति अवलम्बितस्य पादयोः द्वयस्य, दोलायमानैः=सञ्चरद्भिः नखानां मयूखैः=किरणैः, अश्वस्य मण्डनम्=अलङ्करणसाधनं यत् चामरं=चमरमृगपुच्छबालव्यजनं तस्य मालाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, रचयन्तं=सृजन्तम्। अभिमुखं=संमुखम्, उच्चैः=उपरि उदञ्चद्भिः=

टिप्पणी—कर्पूर०—युवा की छाती विस्तीर्ण और भुजाएँ विशाल थीं। कवि कल्पना करता है कि उसने अपनी विशाल भुजाओं से सुदूर दिशाओं को अपने आश्लेष में ले लिया और उनका पुञ्ज बना कर ले आया एवं बाद में मानो उसने अपने वक्षस्थल पर उनका विस्तार कर दिया। वक्षस्थल पर चक्रवाकों के विचरण के लिए विस्तृत रेतीले तीर की कल्पना का भी यही आशय है कि वह विस्तृत और विशाल था।

हिन्दी—श्वेत बने हुए (भावी) पत्नी के उन्नत कुचरूपी चक्रवाकों के लिए विस्तृत संकत-प्रदेश-जैसे वक्षस्थल से (अपनी) विशाल भुजाओं के विस्तार द्वारा (बटोर कर) इकट्ठे किए हुए दिशा-मण्डल को मानो सामने फैला रहा था, जिसकी अति कृश कटि (कमर) हारीत की तरह हरे रंग के दृढ़ कसे हुए अधोवस्त्र द्वारा—जो आगे से नाभिके नीचे डाले एक किनारे से सुन्दर और पीछे से करधनी के ऊपर बड़ा पल्ला रखे हुए दोनों तरफ से मिलकर जाँघों के तृतीय भाग को उघाड़े हुए था—(शरीर के ऊपर के भाग से) विभक्त की जा रही थी, जो निरन्तर व्यायाम करते रहने से खूब मांसल, ठोस, विकट और जानु-भाग से लगे हुए, विशाल वक्षस्थल-रूपी प्रस्तर-वेदी को धारण करनेवाले दो शिला-स्तम्भ-रूप सुन्दर चन्दन-लेप से खूब कान्तिमान बने दो ऊरु-दण्डों से ऐरावत की सूंड की दीर्घता का उपहास जैसा कर रहा था, जिसका अधो-भाग खूब (मांस से) भरे हुए ऊरुओं का भार वहन करने की थकान से मानो बड़ा पतला हो रहा था, जो (घोड़े के) दोनों तरफ लटके हुए कल्प वृक्ष के दो कोंपलों-जैसे लाल-लाल पैरों की इधर-उधर पड़ती हुई नख-किरणों से मानो घोड़े की सजावट के लिए चामर-माला का-सा निर्माण कर रहा था, जो एक ऐसे बड़े भारी घोड़े पर सवार था-जो ऊँचे उठते हुए और पर्याप्त समय तक ऊपर ही विश्राम-जैसे लेते हुए,

१. मांसबन्धविकट।

खण्डितभुवि प्रतिक्षणदशनग्रहमुक्ति[1]खणखणायितखरखलीने दीर्घघ्राणलीनलालिक[2]ललाटलुलित[3]चारुचामीकरचक्रके शिञ्जानशातकौम्भजयन[4]शोभिनि मनोरंहसि गोलाङ्गूलकपोलकालकायलोम्नि नीलसिन्धुवारवर्णे वाजिनि महति समारूढम्, उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्यामासन्नपरिचारकाभ्यां दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम्, अग्रतः पठतो वन्दिनः सुभाषितमुत्कण्टकितकपोलफलकेन लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेनेव मुखशशिना भावयन्तम्, अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम्,

---

टीका—उद्गच्छद्भिः विश्राम्यद्भिः=विश्रामं कुर्वद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वलितम्=अश्वस्य गतिविशेषः तेन विकटं दृढं यथा स्यात् तथा पतद्भिः खुरैः खण्डिता=विदारिता भूः=पृथिवी येन तथाभूते इतः परं 'वाजिनि' इत्यस्य सप्तम्यन्तविशेषणानि। प्रतिक्षण०—प्रतिक्षणं दशनैः=दन्तैः आदौ ग्रहः=ग्रहणं पश्चात् मुक्तिः=त्यागश्च ताभ्यां खणखणायितं=खणखणशब्दयुक्तं कृतं खरं=कठिनं खलीनं=कविका अश्वमुखमध्यगतप्रग्रहलोहभागः इत्यर्थः, येन तस्मिन्। दीर्घ०—दीर्घं यत् घ्राणं=नासिका तस्मिन् लीना=लग्ना लालिका खलीनस्य प्रान्तः यस्य तथाभूतश्च ललाटे=भाले लुलितानि=इतस्ततः प्रचलितानि चारूणि=सुन्दराणि चामीकरस्य=सुवर्णस्य चक्रकाणि=चक्राकारपत्राणि यस्य तथाभूतश्च तस्मिन्। शिञ्जान०—शिञ्जानानि=शब्दायमानानि झणझणायमानानीत्यर्थः यानि शातकुम्भस्य=सुवर्णस्य इमानीति शातकौम्भानि [शातकुम्भ+अण्, उभयपदवृद्धिः] सुवर्णमयानि जयनानि=अश्वमण्डनमालाः ('अश्वादीनां च सन्नाहे जये च जयनं मतम्' इति शाश्वतः ५१५) तैः शोभते इति शोभी तस्मिन्। मनसः इव रंहः=वेगः यस्य तस्मिन्। गोलाङ्गूलः=श्याममुखः गोपुच्छाकारपुच्छश्च कपिविशेषः('कृष्णमुखो गोलाङ्गूलः' इति क्षीरस्वामी) तस्य कपोलवत्=गण्डस्थलवत् कालानि=श्यामानि कायस्य=देहस्य लोमानि=रोमाणि यस्य तस्मिन्, नीलः यः सिन्धुवारः=वृक्षविशेषः तस्य कुसुममित्यर्थः तद्वत् वर्णः=रूपं यस्य तथाभूते वाजिनि=अश्वे, महति=विशालाकारे समारूढं=स्थितम्। उभयतः=उभयोः पार्श्वयोः अश्वस्येति शेषः पर्याणं=पल्ययनम् अश्वपृष्ठस्थितासनम् इत्यर्थः, जीन अथवा काठी इति भाषायां प्रसिद्धम्, तस्य पट्टं=फलकं तस्मिन् श्लिष्टः=संयुक्तः हस्तः=करः याभ्यां तथाभूताभ्याम् आसन्नाभ्यां समीपवर्तिभ्यां परिचारकाभ्याम्=अङ्गरक्षकसेवकाभ्यां दोधूयमानं=पौनःपुन्येन संचाल्यमानं वीज्यमानमित्यर्थः ($\sqrt{}$धू+यङ्+शानच् कर्मणि) धवलं=श्वेतं चामरिकयोः=चामरयोः युगलं=द्वयं यस्मिन् तथाभूतम् वन्दिनः=स्तुतिपाठकस्य ('वन्दिनः स्तुतिपाठकाः' इत्यमरः) सुभाषितम्=सूक्तिम् उत्=ऊर्ध्वं कण्टकाः सञ्जाताः अस्येति उत्कण्टकितः=रोमाञ्चितः कपोलफलकः गण्डस्थलं यस्य तेन। लग्न०—लग्नानि=संसक्तानि कर्णोत्पलस्य कर्णावतंसभूतकमलस्य केसराणां=किञ्जल्कानां पक्ष्मणां=तन्तूनां शकलानि=खण्डानि यस्मिन् तस्मिन्। मुखं शशीवेत्युपमिततत्पु० तेन भावयन्तं=चिन्तयन्तम्। अनङ्गस्य=कामस्य=युगं कालविशेषः तस्य अवतारम्=भूमौ अवतरणम्, अथवा अनङ्गयोः मदनयोः युगं=द्वयं तदवतारमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्। चन्द्र एव चन्द्रमयी=चन्द्रात्मिका ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सृष्टिं=सर्गम् उत्पादयन्तम्, विलासस्य प्रायः=प्राधिक्यं यस्मिन् तथाभूतं, जीवलोकं संसारं जनयन्तं=

टिप्पणी—लग्नकर्णोत्पल०—भाव यह है कि बन्दी द्वारा गाये हुए सुभाषित से भाव-विभोर होकर युवा का कपोल रोमाञ्चित हो उठा जिसपर कवि कल्पना करता है कि रोमाञ्च मानो उसके कर्णोत्पल के किञ्जल्कों के सूक्ष्म तन्तु खण्ड-समूह हो। चन्द्रमयी—वह चाँद जैसा उज्ज्वल था और सारे संसार में अपनी छटा छिटक रहा था मानो

हिन्दी—(फिर) अपनी चाल में जोर से झुकते हुए खुरों से भूमि को तोड़ता जाता और क्षण-क्षण में दांतों से पकड़ते तथा छोड़ते रहने से लगाम की कठिन रास को खणखणाता रहता था, जिसकी लंबी नासिका पर रास का छोर लगा हुआ था और ललाट पर सुवर्ण के सुन्दर चक्के हिलते रहते थे, जो झनझनाती हुई सुवर्ण-मालाओं से सज्जित और मन के-से वेगवाला था, जिसके शरीर के रोम गोलांगूल-नामक वानर के कपोल की तरह काले और जिसका रंग नीले सिन्धुवार के कुसुम का-सा था, जिस युवा के ऊपर काठी के दोनों ओर (बायीं) हाथ रखे हुए दो समीपवर्ती सेवकों द्वारा बार-बार दो चाँवर डुलाए जा रहे थे, जो आगे-आगे पढ़ते हुए-चारण की सूक्ति को, पहने हुए कर्णोत्पल के केसरों के सूक्ष्म तन्तुखण्ड-जैसे लग रहे रोमाञ्च से भरे कपोलस्थल वाले मुखचन्द्र से मनन करता जा रहा था, मदन के युग का अवतार सा दिखला रहा था, चन्द्रमयी-जैसी सृष्टि उत्पन्न कर रहा था, विलास-भरा-सा संसार निर्माण कर रहा था,

---

१. दशनविमुक्त।
२. घ्राणालीनलालिके।
३. ललाटपट्टलुठित।
४. कुम्भायान।

अनुरागमयमिव सर्गान्तर¹मारचयन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्तयन्तम्, आकर्षणाञ्जनमिव चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः, स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असन्तोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोगमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौवनस्य, एकराज्यमिव रामणीयकस्य कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूलकोषमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमाङ्कुरमिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिव विभ्रमस्य, यशःप्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत्। पार्श्वे च तस्य द्वितीयमपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्, प्रांशुमुत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्, परिणतवयसमपि व्यायामकठिनकायम्, नीचनखश्मश्रुकचम्, शुक्तिखलितम्, ईषत्तुन्दिलम्, रोमशोरःस्थलम्, अनुल्बणोदारवेशतया जरामपि विनयमिव शिक्षयन्तम्,

टीका—सृजन्तम्। अनुरागमयम्=अनुरागात्मकम् अन्यः सर्गः इति सर्गान्तरं द्वितीयां सृष्टिम् शृङ्गारमयं=शृङ्गार-रसमयं दिवसम्=आपादयन्तम्=उत्पादयन्तम्। रागः=प्रेम तस्य राज्यम्। प्रवर्तयन्तम्=प्रारभमाणम्। चक्षुषोः=नयनयोः आकर्षणाय अञ्जनम्=कज्जलम्। मनसा वशीकरणस्य मन्त्रम् इव। स्वस्थान्=सुस्थान् अपि आवेशयति=प्रभावयतीति तादृशं चूर्णम्। कौतुकस्य कुतूहलस्य, असन्तोषम्=अतृप्तिम् इव, अर्थात् तं दृष्ट्वाऽपि मनसः दर्शनेच्छा न तृप्यतिस्म। सौभाग्यस्य=सौभाग्यशालितायाः सिद्धम् अमोघं योगम्=उपायम्। मन्मथस्य=मदनस्य पुनर्जन्मनः दिवसं—दिनम् इव। पूर्वं महादेवनेत्रार्चिषा मदनो भस्माभवत्, इदानीं प्रस्तुतयुवकरूपेण तस्य पुनर्जन्म जातम् इति भावः। यौवनस्य=रसायनम्=शरीरस्याजरत्वामरत्वकारकमौषधविशेषम् इव, रसः=पारदः तस्य अयनम्=ग्रहम् इति व्युत्पत्त्या पारदात्मकमौषधं रसायनमुच्यते अतएव पारदसम्बन्धे इयमुक्तिः—'संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः' अपि च 'एकोसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते'। रमणीयस्य भावः रामणीयकं=सौन्दर्यं तस्य एकम्=अद्वितीयं राज्यमिव। मूल-कोषं=मूलधनम् इव, अर्थात् अन्यत्र तु लावण्यं वार्द्धक्यरूपेण गौणरूपेणेति यावत् तिष्ठति, युवा तु लावण्यमूलराशिरेव। संसारस्य पुण्यकर्म० अर्थात् संसारेण यदपि पुण्यकर्मजातं कृतं तत्फलरूपं युवास्ति। कान्तिः=सौन्दर्यम् एव लता तस्याः प्रथमाङ्कुरम् अर्थात् इतः पूर्वमेतादृशः सुन्दरजनो नैव जातः। सर्गाभ्यास०—अर्थात् प्रजापतिना कतिशः सृष्ट्यभ्यासः कृतः तदवाप्त-नैपुण्यानन्तरमेव युवाऽसौ सृष्टः। विभ्रमः=शृङ्गारात्मकचेष्टा तस्य प्रतापम्=ओजस्विताम् इव वैदग्ध्यस्य=नैपुण्यस्य, यशःप्रवाहम्=कीर्तिस्रोतइवेति सर्वत्रो-त्प्रेक्षा। अष्टादशवर्षेभ्य ईषद् ऊनः इति अष्टादशवर्ष+देशीयर्=[ईषदसमाप्तौ कल्प-देश्य-देशीयरः पा० ५।३।६७] तम्। अपर०—नपरेण=अन्येन संश्लिष्टः=संयुक्तः तुरङ्गः=अश्वो यस्य तथाभूतम् इतः परम् 'पुरुषम्' इत्यस्य द्वितीयान्त-विशेषणानि। प्रांशुम्=दीर्घम् उन्नतकायमित्यर्थः। उत्तप्तं=वह्निसंतप्तम् यत् तपनीयम्=सुवर्णं तस्य स्तम्भः=स्थूणा तस्य आकार इव आकारो यस्य तम्। परिणतं=परिपक्वं वयः=अवस्था यस्य तम् अपि व्याया-मेन=अङ्गचालनादिश्रमेण कठिनः=कठोरः कायः=शरीरं यस्य तम्। नीचा ह्रस्वाः कर्तनेन लघुभूता इत्यर्थः नखाः श्मश्रूणि कचाः=केशाश्च यस्य तम्। शुक्तिवत्=मुक्तास्फोटवत् खलितं=खल्वाटम्। ईषत् यथा स्यात् तथा तुन्दिलं=तुन्दं=विशालमुदरमस्यास्तीति तुन्द+इलच् तम्। रोमशं=लोमयुक्तं (रोम+श लोमादि० पा०

टिप्पणी—चन्द्रमय संसार बना रहा हो, अपरसंश्लिष्ट०—युवा के घोड़े की जीन को तो दो अन्य पुरुष बायें हाथ से पकड़े हुए थे और वे चांवर कर रहे थे पर इस दूसरे पुरुष के घोड़े पर किसी अन्य का हाथ नहीं रखा हुआ था।

हिन्दी—अनुरागात्मक-जैसा दूसरा ही सर्ग रच रहा था, शृंगाररसमय जैसा दिन बना रहा था, और प्रेमराज्य जैसा आरम्भ कर रहा था, जो ऐसा लग रहा था मानो आकर्षण के लिए आंखों का अञ्जन हो, मन को वश में करने का मन्त्र हो, स्वस्थ (व्यक्तियों) को प्रभाव में लाने के लिए इन्द्रियों का चूर्ण हो, कुतूहल की अतृप्ति हो, सौभाग्य का अमोघ योग हो, कामदेव के पुनर्जन्म का दिन हो, यौवन की रसायन औषधि हो, सौन्दर्य का अद्वितीय राज्य हो, रूप का यश-स्तम्भ हो, लावण्य का मूल-धन हो, संसार के पुण्य-कर्मों का फल हो, कान्तिरूपी लता का पहला अंकुर हो, ब्रह्मा के सृष्टि-अभ्यास का फल हो, शृङ्गारिक हाव-भावों का प्रताप हो और निपुणता का कीर्ति-स्रोत हो और उसके पास (सरस्वती) ने ऊँचे कद का दूसरा पुरुष भी देखा—जिसके घोड़े से दूसरे ने हाथ द्वारा सम्पर्क नहीं कर रखा था, जिसका आकार गलाये हुए सोने के खम्भे का-सा था, जिसका शरीर प्रौढ़ावस्था वाला होता हुआ भी व्यायाम के कारण कठोर था, जिसके नख, दाढ़ी, मूंछ और शिर के बाल छोटे-छोटे थे, जिसकी गंजी खोपड़ी सीप की तरह (सफेद) थी, जिसकी कुछ तोंद निकली हुई थी, जिसकी छाती पर बाल थे, जो (अपने) सौम्य और

१. मार्गान्तरमानयन्तम्।

गुणानपि गरिमाणमिवानयन्तम्, महानुभावतामपि शिष्यतामिवानयन्तम्, आचारस्याचार्यकमिव कुर्वाणम्, धवलवारबाणधारिणम्, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं पुरुषम् ।

अथ स युवा पुरोयायिनां यथादर्शनं प्रतिनिवृत्य[1] विस्मितमनसां कथयतां पदातीनां सकाशादुपलभ्य दिव्याकृति तत्कन्यायुगलमुपजातकुतूहलः प्रतूर्णतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपोद्देशमाजगाम दूरादेव च तुरगादवततार । निवारितपरिजनश्च तेन द्वितीयेन साधुना सह चरणाभ्यामेव सविनयमुपससर्प । कृतोपसंग्रहणौ तौ सावित्री समं सरस्वत्या किसलयासनदानादिना सकुसुमफलार्घावसानेन वनवासोचितेनातिथ्येन यथाक्रममुपजग्राह । आसीनयोश्च तयोरासीना

टीका—५।२।१००) उरःस्थलं यस्य तम् । न उल्बणः=उत्कटः इत्यनुल्बणः सौम्य इति यावत् उदारः=सारवान् वेशः यस्य तस्य भावः तत्ता तया, जराम्=वृद्धावस्थाम् अपि विनयं=नम्रताम् इव शिक्षयन्तं=शिक्षितां कुर्वन्तम् । गुणान्=विनयदाक्षिण्यादीन्, गरिमाणं=गुरोः भावं गौरवमित्यर्थः आनयन्तं=प्रापयन्तम् । महान् अनुभावः=प्रभावः यस्य तस्य भावः तत्ता ताम् अपि शिष्यस्य भावं शिष्यतां=शिष्यत्वम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आनयन्तं=प्रापयन्तम् । आचारस्य=सद्वृत्तस्य आचार्यकम्=आचार्यस्य भावं कर्म वा (आचार्य+वुञ् 'योपधाद्गुरूपोत्तमाद् वुञ्' पा० ५।१।१३२) कुर्वाणं=कुर्वन्तम् । धवलं=शुभ्रं वारबाणं=कञ्चुकं धारयतीति तम् ('कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः) धौतं=क्षालितं यद् दुकूलं कौशेयवस्त्रं तस्य पट्टिकया परिवेष्टितः मौलिः=शिरः यस्य तम् पुरुषम् अद्राक्षीदित्यनया क्रियया सम्बन्धः ।

पुरः यान्तीति पुरोयायिनः तेषाम्=अग्रगामिनां दर्शनम् अनतिक्रम्येति यथादर्शनं=दर्शनानुसारेण प्रतिनिवृत्य=प्रत्यागत्य, विस्मितम्=आश्चर्यचकितं मनः येषां तथाभूतानां कथयतां=सूचयतां पदातीनां=पदगानां सैनिकानां सकाशात् पार्श्वात् उपलभ्य=ज्ञात्वा दिव्या=द्युलोकीया आकृतिः यस्य तत्, कन्ययोः=कुमार्योः युगलं=द्वयम्, उपजातं=समुत्पन्नं कुतूहलं=कौतुकं यस्य सः प्रतूर्णः=(प्र+√त्वर्+क्त) प्रकर्षेण त्वरां प्रापितः तुरगः येन तथाभूतः दिदृक्षुः=द्रष्टुमिच्छुक इत्यर्थः, लतामण्डपस्य उद्देशं=प्रदेशम् आजगाम, अवततार=अवातरत् । निवारितः=प्रतिषिद्धः परिजनः=भृत्यगणः येन सः । साधुना=सज्जनेन प्रौढपुरुषेणेत्यर्थः, विनयेन सहितं यथा स्यात्तथा, उपससर्प उपजगाम । कृतम् उपसंग्रहणं=सादरमभिवादनं याभ्यां तथाभूतौ किसलयासनस्य=किसलयनिर्मितासनस्य दानम् आदिर्यस्य तेन, सकुसुमैः=पुष्पसहितैः फलैः अर्घः=पूजाविधिः अवसानम्=अन्तः यस्य तेन, वने वासः तस्य उचितेन=योग्येन अतिथेः भावः कर्म वा इत्यातिथ्यं तेन क्रमम् अनतिक्रम्य इति यथाक्रमम्=क्रमानुसारेण उपजग्राह=आदृतवती । आसीनयोः=उपविष्टयोः आसीना=उपविष्टा नातिचिरमिव=किञ्चित्कालानन्तरं प्रवयसं=प्रकृष्टं=प्रौढं वयः=अवस्था यस्य तम् उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य अवादीत्=अवदत् । सहजा स्वाभाविकी लज्जा एव घनं यस्य

टिप्पणी—अशालीनता—शालीन लज्जालु को बोलते हैं । इस शब्द की व्युत्पत्ति 'शाला-प्रवेशमर्हतीति शाला+ख (ईन) शालीनः अधृष्टः' (सि० कौ०) तत्त्वबोधिनी का यह स्पष्टीकरण है—'अप्रागल्भ्यादन्यत्र गन्तुमशक्तः शालामेव प्रवेष्टुमर्हति' ।

हिन्दी—अच्छे वेश के कारण मानो वृद्धावस्था को भी विनय की शिक्षा दे रहा था, जो मानो गुणों को भी गरिमा में पहुँचा रहा था, जो मानो महानुभावता को भी (अपना) शिष्य बना रहा था, जो मानो सदाचार का भी आचार्य बन रहा था, जो शुभ्र कञ्चुक धारण किए हुए और धुली रेशमी पगड़ी से सिर ढके हुए था ।

इसके बाद आगे जाने वाले और जैसा देखा था, उसके अनुसार वापस आकर मन में आश्चर्य-चकित होकर सूचना देते हुए पैदल सैनिकों से दिव्याकृति वाली उन दो कन्याओं का पता पाकर कुतूहल-युक्त और देखने का इच्छुक वह युवा घोड़े को तेज दौड़ाए हुए उस लता-मण्डप के प्रदेश में आ पहुँचा और दूर से ही घोड़े से उतर गया । नौकर चाकरों को रोके हुए (युवा) उस दूसरे सज्जन के साथ पैदल ही नम्रता-पूर्वक (उन कन्याओं के) पास आ पहुँचा । आदरपूर्वक अभिवादन किये हुए उन दोनों को सावित्री ने सरस्वती के साथ यथाक्रम पत्रासन-दान आदि से लेकर पुष्प-सहित फलों से पूजन पर्यन्त वनवास के योग्य आतिथिसत्कार से सम्मानित किया । दोनों के बैठ जाने पर बैठी (सावित्री) कुछ देर ठहर कर उसे दूसरे प्रौढ़ पुरुष को लक्ष्य करके बोली—'आर्य, जन्मजात

---

१. प्रतीत्य ।

नातिचिरमिव स्थित्वा तं द्वितीयं प्रवयसमुद्दिश्याबाबीत्—'आर्य, सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणमशालीनता, विशेषतो वनमृगीमुग्धस्य कुलकुमारीजनस्य। केवलमियमालोकनकृतार्थाय चक्षुषे स्पृहयन्ती प्रेरयत्युदन्तश्रवणकुतूहलिनी श्रोत्रवृत्तिः। प्रथमदर्शने चोपायनमिवोपनयति सज्जनः[1] प्रणयम्। अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनो मध्विव वाचालयति। अयत्नेनैव चातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोहति[2] विस्रम्भः। जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्ट्यतिशयाः, यतस्त्रिभुवनाभिभावि रूपमिदमस्य महानुभावस्य। सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानांप्रियस्यातिभद्रता कारयति कथां न तु युवतिजने सहोत्था तरलता। तत्कथयागमनेनापुण्यभाक्कतमो विजृम्भितविरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः। क्व वा गन्तव्यम्। कस्य वायमपहृतहरहुङ्काराहङ्कारोऽपर

टीका—तस्य प्रमदाजनस्य=स्त्रीजनस्य, अभिभाषणं=वार्तालापः, अशालीनता=धृष्टता, वनस्य मृगी तद्वत् मुग्धस्य =सरलस्य, कुलकुमारीजनस्य=कुलीनकन्यकाजनस्य। आलोकनेन=दर्शनेन कृतार्थं=कृतकृत्यं तस्मै चक्षुषे स्पृहयन्ती =स्पृहां स्पर्धामित्यर्थः कुर्वंती, प्रेरयति=प्रणुदति उदन्तस्य=युष्मद्-विषयक-वृत्तान्तस्येत्यर्थः श्रवणे=आकर्णने कुतूहलं=कौतुकम् अस्याः अस्तीति तादृशी श्रोत्रस्य=कर्णस्य वृत्तिः=व्यापारः। उपायनम्=उपहारम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उपनयति=अर्पयति, सज्जनः=सत्पुरुषः प्रणयं=स्नेहम्। अप्रगल्भम्=अधृष्टं भीरुमित्यर्थः, प्रभवता=प्रभुणा महता पुरुषेणेत्यर्थः अथवा प्रभवता=प्रभावोत्पादकेन प्रश्रयेण=शिष्टतया आदरभावेनेत्यर्थः अर्पितं=दत्तं मनः मधु=मदिरा इवेत्युपमायाम्, वाचालयति वाचालं करोतीति (वाचाल+णिच्+लट्) वाचालः=बहु भाषते इति (वाच्+आलच् 'आलजाटचो बहुभाषिणि' पा० ५।२।१२५) अयत्नेन=विना प्रयत्नम् एव अतिनम्रे=अतिविनीते पक्षान्तरे अतिशयेन आनमिते साधौ=सज्जने, धनुषि इवेत्युपमायाम् गुणः=प्रत्यञ्चा परां कोटिं=पराकाष्ठां पक्षान्तरे दूरतमम् अग्रम् आरोहति=गच्छति विस्रम्भः=विश्वासः। जनयन्ति=कुर्वन्ति विस्मयम्,=आश्चर्यम् अतिशयेन-धीरा=गभीरा धीः बुद्धिः येषां तथाभूतानाम् अपि न पूर्वं दृष्टाः इत्यदृष्टपूर्वाः दृश्यमानाः=दृग्गोचरीक्रियमाणाः स्रष्टुः=ब्रह्मणः, सृष्टयाः सर्गस्य अतिशयाः=उत्कर्षाः ब्रह्मनिर्मितोत्कृष्टपदार्थाः इत्यर्थः। त्रिभुवनम् अभिभवति= =अतिशेते इति तादृशं रूपं=सौन्दर्यं, महानुभावस्य=महाशयस्य सौजन्यस्य=सज्जनतायाः परतन्त्रा=परवशा, देवानां प्रियस्य=परमादरणीयस्य अस्य युवकस्येति शेषः अतिभद्रता=अतिभद्रतापूर्णव्यवहार इत्यर्थः कारयति कथां =कथयितुं प्रेरयति, सहोत्था=सहजा, तरलता=चञ्चलता। न पुण्यं भजतीति तादृशः अपुण्यवान् इत्यर्थः। विजृम्भिता=प्रवृद्धा विरहस्य व्यथा=वेदना यस्य तथाभूतः, शून्यतां नीतः=शून्यीकृतः। अपहृत०—अपहृतः= अपनीतः हरस्य=शिवस्य हुङ्कारस्य='हुम्' इति शब्दस्य अहंकारः येन सः। अनन्यजः=न अन्यस्मात् जन्म यस्य सः

टिप्पणी—देवानां प्रियः—यह शब्द बाण ने अच्छे अर्थ में प्रयुक्त कर रखा है। इसका अर्थ है 'आदरणीय' अथवा 'मान्य'। अशोक ने भी अपने को शिलालेखों में 'देवानां प्रिय' उल्लिखित कर रखा है। महाभाष्यकार भी यही अर्थ करते हैं।—"के पुनर्भवदादयः? भवान् दीर्घायुः 'देवानां प्रियः आयुष्मान्'' इति। बाद के वैयाकरणों ने इस शब्द का अर्थ (मूर्ख) कर दिया है। अपहृत०—महादेव ने क्रोध में हुम् करके कामदेव को भस्म कर दिया था परन्तु कामदेव के समान अतिसुन्दर इस युवा ने अपनी सत्ता से महादेव का हुंकाराभिमान भंग कर दिया है।

हिन्दी—लज्जा के धनी स्त्रीजनों का—विशेषतः वनमृगी की तरह भोली-भाली कुलीन कन्याओं का—पहले बोलना धृष्टता है। केवल (आपलोगों के) दर्शन से कृतार्थ हुई आँख से स्पर्धा करती हुई (आपलोगों का) वृत्तान्त सुनने का कुतूहल रखे श्रोत्रवृत्ति (बोलने को) प्रेरित कर रही है। सज्जन पुरुष पहले साक्षात्कार में (ही) मानो भेंट-रूप में प्रेम समर्पित कर देता है। प्रभावशाली शिष्टता के साथ दिया हुआ हृदय मदिरा की तरह लज्जाशील व्यक्ति को वाचाल बना देता है। अत्यन्त झुके हुए धनुष में प्रत्यञ्चा जिस तरह खूब ऊपर चढ़ जाती है, उसी तरह अति विनम्र सज्जन पुरुष में विश्वास पराकाष्ठा में पहुँच जाता है। संसार में पहले कभी न देखी गई ब्रह्मा की सृष्टि की उत्कृष्ट रचनायें देखने में आती हुई अतिगंभीर बुद्धिवालों को भी आश्चर्य में डाल देती हैं। क्योंकि इस महानुभाव का रूप तीनों लोकों को पराजित करने वाला है। सौजन्य से दबी इस महामान्य की अतिभद्रता (ही) मुझसे बुलवा रही है न कि युवतिजनों की स्वाभाविक चञ्चलता। तो कहिए (यहाँ) आगमन से इसने विरहव्यथा भरा कौन सा अभागा देश सूनाकर दिया है। कहाँ जाना है? महादेव के हुंकार के अहंकार को मिटा देने वाला दूसरा-जैसा कामदेव लग रहा यह

१. नयन्ति सज्जनाः।
२. कोटिमारोपयति।

इवानन्यजो युवा। किंनाम्नः समृद्धतपसः पितुरयममृतवर्षी कौस्तुभमणिरिव हरेर्हृदयमाह्लादयति। का चास्य त्रिभुवननमस्या प्रभातसंध्येव महतस्तेजसो जननी। कानि वास्य पुण्यभाञ्जि भजन्त्यभिख्यामक्षराणि। आर्यपरिज्ञानेऽप्ययमेव क्रमः कौतुकानुरोधिनो हृदयस्य'। इत्युक्तवत्यां तस्यां प्रकटितप्रश्रयोऽसौ प्रतिव्याजहार—'आयुष्मति, सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या। न केवलमाननं हृदयमपि च ते चन्द्रमयमिव सुधाशीकरशीतलैरानन्दयति वचोभिः। सौजन्यजन्मभूमयो भूयसा शुभेन सज्जननिर्माणशिल्पकला[1] भवादृश्यो जायन्ते। दूरे तावदन्योन्यस्यालापनमभिजातैः सह दृशोऽपि मिश्रीभूता महतीं भूमिमारोपयन्ति[2]। श्रूयताम्—अयं खलु भूषणं भार्गववंशस्य भगवतो भूर्भुवःस्वस्त्रितयतिलकस्य, अदभ्रप्रभावस्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भस्य, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपङ्करुहस्य, निजतेजः-

टीका—कामदेवः। कामदेवो हि मनोजः नतु कस्याप्यन्यस्य शरीर-संसर्गेण जातः। किं नाम यस्य तस्य, समृद्धं तपो यस्य तस्य। अमृतं वर्षतीति तादृशः। अमृतवत् कौस्तुभमणिरपि समुद्रमन्थनादुद्भूतः, विष्णुना धृतश्च। आह्लादयति =आनन्दयति। त्रिभुवनस्य नमस्या=नमस्कार्या प्रभात-सन्ध्या=प्रातःकालीन-संध्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, महतः तेजसः =तेजोरूपस्य अस्य युवकस्य पक्षान्तरे सूर्यस्य। जननी=माता। पुण्यं भजन्तीति तादृशानि, अभिख्यां=नाम। आर्यस्य =भवतः परिज्ञाने=परिचये। कौतुकं=कुतूहलम् अनुरुध्यते अनुसरति इति तादृशस्य। प्रकटितः=प्रकाशितः प्रश्रयः=विनयः येन सः, प्रतिव्याजहार=प्रत्युक्तवान्। प्रियं वदतीति (प्रियं√वद्+खच्+मुम्) प्रियम्वदः तस्य भावः तत्ता, कुलस्य विद्या=कुलपरम्परागता विद्या कलेत्यर्थः, चन्द्रएव चन्द्रमयम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सुधायाः=अमृतस्य शीकराः=कणाः तद्वत् शीतलैः आनन्दयति=आनन्दं ददाति वचोभिः=वचनैः। सुजनस्य भावः सौजन्यं=सज्जनता तस्य जन्मभूमयः=जन्मस्थानानि, भूयसा=महता शुभेन=पुण्येन, सज्जनानां निर्माणं तस्मिन् शिल्पकलाः= शिल्पविद्याः भवादृश्यः भवत्सदृश्यः=जायन्ते रूपकालङ्कारः। अन्योन्यस्य=परस्परस्य आलापनं=वार्तालापः अभिजनैः=कुलीनैः दृशः=नयनानि अपि मिश्रीभूताः=मिलिताः प्राप्तसाक्षात्कारा इत्यर्थः। महतीं भूमिम्= सौजन्यस्य चरमोत्कर्षम् आरोपयन्ति=प्रापयन्ति। भार्गववंशस्य भृगुगोत्रस्य, दधीचस्य पिता च्यवनो हि भृगुगोत्रीय आसीत्। भूः भुवः स्वः इत्येतेषां लोकानां त्रितयस्य=त्रयस्य तिलकस्य=भूषणस्य। अदभ्र० अदभ्रः=प्रचुरः यः प्रभावः तेजः सामर्थ्यमित्यर्थः तेन स्तम्भितः=रुद्धः जम्भारेः जम्भासुरशत्रोः इन्द्रस्येत्यर्थः भुजः=बाहुः एव स्तम्भः स्थूणा येन तस्य। सुरासुरा०—सुराश्च असुराश्च तेषां मुकुटेषु=किरीटेषु याः मणिशिलाः=रत्नभूतप्रस्तराः तासु यत् शयनं पतनमित्यर्थः तेन दुर्ललितम्=अतिलालितं दुराराध्यमिति यावत् पादः=चरणः पङ्केरुहं= कमलम् इवेत्युपमिततत्पु०, यस्य तस्य। निजं तेजः=वर्चः तस्य यः प्रसरः=प्रसारः तेन प्लुष्टः=दग्धः पुलोमा=

टिप्पणी—सज्जन......कला—भाव यह है कि तीनों लोकों के पुण्यों के परिणामस्वरूप ही आप-जैसी महिलायें सज्जनों के निर्माण हेतु शिल्प कला के रूप में अवतरित हुआ करती हैं। आप-जैसी कुलीन नारियाँ ही मनुष्यों को सज्जन बनाया करती हैं। ठीक उसी तरह जिस तरह कि कला मनुष्य को कच्चे माल से सुसंस्कृत वस्तुयें बनाने योग्य बना देती है।

हिन्दी—युवा किसका पुत्र है? विष्णु के हृदय को आनन्द देने वाली कौस्तुभ मणि की तरह अमृतवर्षा करने वाला यह युवा विपुल तप वाले किस नाम के पिता के (हृदय को) आनन्द देता है और प्रातःसंध्या की तरह तीनों लोकों की वन्दनीय कौन इस महान् तेज की जननी है और कौन से भाग्यवान अक्षर इसके नाम पर लगते हैं? कुतूहल भरे हृदय का आपके सम्बन्ध में परिचय प्राप्त करने का यही क्रम है"। इस तरह उस (सावित्री) के कह चुकने पर नम्रता प्रकट करता हुआ वह उत्तर में बोला—"आयुष्मती! मधुर बोलना सज्जनों की कुल-विद्या है। तुम्हारा मुख ही नहीं अपितु चन्द्रमय-जैसा हृदय भी अमृत कणों की तरह शीतल वचनों से आनन्द देता है। सौजन्य की जन्मभूमियाँ आप-जैसी नारियाँ (ही) बड़े सज्जनों के निर्माण हेतु शिल्पकलायें हुआ करती हैं। परस्पर वार्तालाप की बात तो दूर रही कुलीनों के साथ मिली हुई दृष्टियाँ भी (सौजन्य के) चरमोत्कर्ष पर चढ़ा देती हैं। सुनिये—भार्गवकुल का भूषण यह युवा उन भगवान् च्यवन का—जो भार्गव वंश के रत्न हैं, जिन्होंने अपने विपुल प्रभाव से इन्द्र की स्तम्भ-जैसी भुजा रोक दी थी, जिनका चरण-कमल सुरों-असुरों के मुकुटों की रत्नशिलाओं पर पड़ते रहने के कारण दुराराध्य बना हुआ है और जिन्होंने पुलोमा (राक्षस) को भस्म कर दिया था—बाहर चलता-फिरता प्राण

---

१. शिल्पकला इव।
२. मिश्रीकृता महतीं......पयन्ति प्रणयम्।

प्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य बहिर्वृत्ति जीवितं दधीचो नाम तनयः। जनन्यस्य जितजगतोऽनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य शर्यातस्य सुता राजपुत्री त्रिभुवनकन्यारत्नं सुकन्या नाम। तां खलु देवीमन्तर्वत्नीं विदित्वा वैजनने मासि प्रसवाय पिता पत्युः पार्श्वात्स्वगृहमानाययत्। असूत च सा तत्र देवी दीर्घायुषमेनम्। अनेहसावर्धत तत्रैवायमानन्दितज्ञातिवर्गो बालस्तारकाराज इव राजीवलोचनो राजगृहे। भर्तृभवनमागच्छन्त्यामपि दुहितरि नासेचनकदर्शनमिमममुञ्चन्माता-महो मनोविनोदनं नप्तारम्। अशिक्षतायं तत्रैव सर्वा विद्याः सकलाश्च कलाः। कालेन चोपारूढयौवनमिममालोक्याह-मिवासावप्यनुभवतु मुखकमलावलोकनानन्दमस्येति मातामहः कथंकथमप्येनं पितुरन्तिकमधुना व्यसर्जयत्। मामपि तस्य देवस्य सुगृहीतनाम्नः शर्यातस्याज्ञाकारिणं विकुक्षिनामानं भृत्यपरमाणुमवधारयतु भवती। पितुः पादमूल-मायान्तं मया साभिसारमकरोत्स्वामी। तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम्। उत्तमानां च चिरन्तनता जनयत्यनुजीविन्यपि

टीका—एतन्नामा राक्षसः येन तस्य, बहिः वृत्तिः=स्थितिर्यस्य तथाभूतम् बहिश्चरमित्यर्थः प्राणतुल्य इति यावत्। जितानि जगन्ति=लोकाः येन तस्य अनेकेषां पार्थिवानां=महीपानां सहस्रैः। अनुयातस्य=अनुगतस्य, त्रिभुवनस्य कन्या रत्नमिवेत्युपमितसत्पु०। अन्तः अस्ति अस्यां गर्भ इति अन्तर्वत्नी=गर्भवती ताम् ('अन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इत्यमरः) विदित्वा=ज्ञात्वा। वैजनने=विजननस्य अयम् इति (विजनन+अण्) तस्मिन् मासि=मासे प्रसूतिमासे इत्यर्थः ('सूति-मासो वैजननः' इत्यमरः) आनाययत्= (आ+√नी+णिच्+लङ्) आनायितवान्। अनेहसा=कालेन, आनन्दितः=आह्लादितः ज्ञातिवर्गः=बन्धुगणः येन सः, तारकाणां=नक्षत्राणां राजा=चन्द्र इवेत्युपमायाम्। राजीववत्=कमलवत् लोचने=नेत्रे यस्य सः, अत्र लुप्तोपमा। भर्तुः=पत्युः भवनं=गृहम्, आसेचनकं=दर्शनेन अतृप्तिकरं दर्शनं यस्य तम्। दृष्ट्वा=दृष्ट्वाऽपि येन दृग् न तृप्यति तद् आसेचनकमुच्यते (यथाऽऽह अमरः 'तदासेचनकं यस्य दर्शनाद् दृग्न तृप्यति) मनो विनोदयतीति (कर्तरि ल्युट्) तम्, नप्तारं दौहित्रम्। उपारूढं=समुद्भूतं यौवनं यस्मिन् तम्। असौ=पिता च्यवनः। मुखं कमलमिव तस्य अवलोकनेन=दर्शनेन, अस्य=दधीचस्य, व्यसर्जयत् प्रेषितवान्। सुगृहीतं=सुष्ठु गृहीतं मङ्गलकरमित्यर्थः नाम यस्य तस्य स्वनामधन्यस्येति यावत् ("स सुगृहीतनामा स्यात् यः प्रातः स्मर्यते बुधैः") विकुक्षिः नाम यस्य तम्। भृत्यस्य परमाणुः तम् अर्थात् अतितुच्छम्, अवधारयतु=अवगच्छतु। साभिसारम्=अभिसरतीति (अभि+√सृ+घञ् कर्तरि) अभिसारः=सहचरः सहाय इत्यर्थः अभिसारेण सह वर्तमानम्। कुलक्रमात्=वंशपरम्परतः आगतं 'राजकुलम् राज-गृहम्। चिरन्तनता=चिरं भवं चिरन्तनं चिरन्तनस्य भावः चिरात् क्रियमाणा भृत्यतेत्यर्थः, अनु-जीविनि=भृत्ये मन्दाक्षम्=मन्दम् अक्षि इव यत्र इति (अक्ष्णोऽदर्शनात् पा० ५।४।७६ इति अच् समासान्तः)

टिप्पणी—च्यवन०—पुराणों में कथा आती है कि भृगुपुत्र च्यवन ने इतनी घोर तपस्या की थी कि उनके इर्द गिर्द दीमकों ने पहाड़ खड़ा कर दिया था। खेल-खेल में ही एकदिन राजा शर्याति की लड़की सुकन्या ने बाहर से वल्मीक में सुई चुभा दी जिससे च्यवन की आँख फूट गई। ऋषि को प्रसन्न करने के लिए शर्याति ने अपनी कन्या उसे ब्याह दी। च्यवन ने सोमयाग किया और पहली बार अश्विनीकुमारों को सोम दिया। इससे इन्द्र कुपित हो उठा और उसने च्यवन पर वज्र-प्रहार करने के लिए हाथ उठाया ही था कि च्यवन ने अपने तपोबल से उसका हाथ स्तम्भित कर दिया। अश्विनियों ने प्रसन्न होकर उसे नेत्रज्योति दे दी और यौवन भी दे दिया। निबर्तेब:... पुलोम्नः—महाभारत के आदि पर्व में भृगुवंश के आख्यानानुसार जब भृगुपत्नी गर्भवती थी, तो एकदिन भृगु उसे घर में अकेली छोड़ कहीं बाहर चले गए थे। पुलोमा राक्षस ने मौका पाया और वह उसे पकड़ने लगा। बेचारी डर के मारे भागी तो उसका गर्भपात हो गया। उस गिरे हुए गर्भ को देखते ही पुलोमा भस्म हो गया। गर्भ से च्युत होने के कारण ही बालक का नाम च्यवन पड़ा, जो बाद को दधीच का पिता बना।

हिन्दी—दधीच-नामक पुत्र है। इसकी जननी जगत्-विजयी, अनेक हजारों राजाओं द्वारा सेवित शर्याति की पुत्री राजकुमारी तीनों लोकों की कन्याओं में रत्नभूत सुकन्या नाम की है। उस देवी को गर्भवती जानकर प्रसव के महीने प्रसव के लिए पिता पति के पास से अपने घर लिवा लाया और वहाँ उस देवी का यह दीर्घायु (पुत्र) पैदा हुआ। बन्धु-बान्धव-गण को आनन्दित किए हुए, कमल-जैसी आँखों वाला यह बालक चन्द्रमा की तरह समय (क्रम) से वहीं राजगृह में बड़ा हुआ। पुत्री के पतिगृह आ जाने पर भी देखते-देखते भी आँखों को अतृप्त किए हुए मनोरञ्जन करने वाले नाती को नाना ने नहीं भेजा। समयानुसार यौवन को प्राप्त हुए इसे देखकर 'मेरी तरह वह भी इसका मुखकमल देखने का

जने कियन्मात्रमपि मन्दाक्षम्। अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्। इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः। तदवधिश्चेयं नो यात्रा। यदि च गृहीतक्षणं दाक्षिण्यमनवहेलं वा हृदयमस्माकमुपरि भूमिर्वा प्रसादानामयं जनः श्रवणार्हो वा, ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः प्रणयः कुतूहलस्य। वयमपि शुश्रूषवो वृत्तान्तमायुष्मत्योः। नेयमाकृतिर्दिव्यतां व्यभिचरति। गोत्रनामनी तु श्रोतुमभिलषति नो हृदयम्। तत्कथय कतमो वंशः स्पृहणीयतां जन्मना नीतः। का चेयमत्रभवती भवत्याः समीपे समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्। तथा हि। सन्निहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलोचना च, बालातपप्रभाधरा कुमुदहासिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च, कमलकोमलकरा हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा

टीका—मन्दाक्षम्=अक्ष्णोः मन्दता, उपेक्षाभावः पक्षपात इति यावत्। दाक्षिण्यस्य औदार्यस्य कोशः=निधिः। गव्यूतिः=क्रोशयुगम् एव गव्यूतिमात्रम्। शोणस्य=एतदाख्यनदस्य पारे इति पारेशोणम् (पारे मध्ये षष्ठ्या वा)। निर्मितः=कृतः व्यपदेशः =नाम यस्य तथाभूतम् च्यवनस्येदं च्यावनम्। चैत्ररथात् कुबेरोद्यानात् ईषत् ऊनम् इति [चैत्ररथ+कल्प (ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः पा० ५।३।६७)] तत्=काननम्। अवधिः=सीमा यस्याः तथाभूता। गृहीतः=स्वीकृतः क्षणः=अवकाशः येन तत्, दाक्षिण्यं=सौजन्यं शिष्टतेति यावत्, न अवहेला=अनादरः यस्मिन् तथाभूतम्। भूमिः स्थानम् पात्रमित्यर्थः। श्रवणं=भवत्योः वृत्तान्ताकर्णनम् अर्हतीति। विमाननीयः=तिरस्करणीयः=प्रणयः=प्रार्थना, कुतूहलस्य=कौतूहलस्य। शुश्रूषवः श्रोतुमिच्छव इति (श्रू+सन्+उ सनाशंसभिक्ष उः पा० ३।२।१६८) आयुष्मत्योः भवत्योः। देवस्येयं दिव्या तस्याः भावः तत्ता तां, व्यभिचरति=व्यत्येति। गोत्रञ्च नाम चेति गोत्रनामनी। नो=आवयोः। स्पृहणीयतां स्पर्धनीयताम्। समवासः=सम्मेलनम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, विरोधिनां=परस्परविरुद्धानां सन्निहितः=सन्निकटः बालः अभिनवः अन्धकारः यस्यां तथाभूता, भास्वतः=सूर्यस्य मूर्तिर्यस्यां तथाभूता च, अत्र अभिनवान्धकार-सन्निधाने सूर्यस्य मूर्तिः इति विरोधः तत्परिहारस्तु, सन्निहितः स्थितः बालेषु=केशेषु अन्धकारः=अन्धकारवत् श्यामता यस्यां, भास्वती=प्रकाशमाना मूर्तिः=आकारो यस्याः इति। पुण्डरीकः=व्याघ्रः (व्याघ्रेऽपि पुण्डरीको ना इत्यमरः) मुखे यस्याः सा, हरिणः=मृगः लोचने यस्याः सा, अत्र मुखे व्याघ्रः लोचने च मृग इति विरोधः, तत्परिहारश्च पुण्डरीकवत्=कमलवत् मुखं यस्याः सा, हरिणस्य लोचने इव लोचने यस्याः तथाभूता। बालः=अभिनवः यः आतपः सौरालोकः तस्य या प्रभा=कान्तिः तस्या धरतीति धरा, कुमुदानां=कैरवाणां हासः=विकासः अस्याम् अस्तीति, अत्र सौरालोके कुमुदविकासः इति विरोधः, तत्परिहारस्तु, बालातपस्य प्रभाइव प्रभा तस्याः धरा, कुमुदवत् हासः=हसितम् अस्या अस्तीति। हसितं धवलं भवतीति कविख्यातिः। कलहंसानां स्वनः=शब्दः यस्यां सा, समुन्नताः पयोधराः=मेघाः यस्यां सा, वर्षर्तुरित्यर्थः वर्षाकाले हंसानां स्वनः इति विरोधः, तदानीं हि ते मानस गता भवन्ति। विरोध-परिहारस्तु-कलहंसवत् स्वनः=कण्ठध्वनिः यस्याः सा, समुन्नतौ=उच्चौ पयोधरौ=कुचौ यस्याः

हिन्दी—आनन्द ले' इसकारण नाना ने बड़ी मुश्किल से इसे पिता के पास भेजा है। मुझे भी आप स्वनामधन्य महाराजा शर्याति का आज्ञाकारी विकुक्षिनामक तुच्छ सेवक समझें। स्वामी ने मुझे पिता की चरण रज सेवा में आते हुए इसका सहचर बनाया है। कारण यह है कि (सेवार्थ) कुलपरम्पराप्राप्त वह हमारा राजकुल है। उत्तमपुरुषों की (सेना की) लंबी अवधि भृत्यजन के प्रति भी थोड़ा-बहुत पक्षपात कर ही देती है। बड़े लोगों की उदारता का कोष सचमुच अक्षय हुआ करता है। यहाँ से केवल दो कोस दूर शोण-नद के पार उन भगवान च्यवन का निवास-स्थान चैत्ररथ जैसा वन है जिसका नाम उन्होंने अपने ही नाम पर 'च्यावन' रखा हुआ है। वहाँ तक ही हम दोनों की यात्रा है। यदि सौजन्य क्षणमात्र समय देता हो अथवा हृदय हमारे ऊपर अवहेलना का भाव न रखता हो अथवा यदि यह जन कृपाओं का पात्र अथवा वृत्तान्त सुनने के योग्य हो तो हमारे कुतूहल की इस पहली प्रार्थना का अनादर न किया जाय। हम भी दोनों आयुष्मतियों का वृत्तान्त सुनने के इच्छुक हैं। यह आकृति देवत्व के अभाव में नहीं होती है। हम दोनों का हृदय गोत्र और नाम सुनना चाहता है। तो कहो कौन सा वंश (अपने) जन्म से स्पृहणीय बनाया है। आपके समीप में परस्पर विरोधी-पदार्थों का सम्मिश्रण-जैसी यह आदरणीया कौन है? जैसे-इनके पास बाल अन्धकार (१ नया अन्धेरा २ बालों की कालिमा) है और (साथ ही) भास्वत्-मूर्ति (१—सूर्य की मूर्ति २—चमकता चेहरा) भी है; इनका मुख पुण्डरीक (१—व्याघ्र २—कमल) का है। और आँखें हिरन की हैं; ये प्रातःकालीन आतप की प्रभा रख रही हैं; और (साथ ही) इनमें कुमुदों का हास (१—विकास २—हंसी) है, इनमें कलहंस की

च, करभोरुर्विलम्बितगमना च, अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च' इति । सा त्ववादीत्—'आर्य, श्रोष्यति कालेन । भूयसो दिवसानत्र स्थातुमभिलषति नो हृदयम् । अल्पीयांश्चायमध्वा । परिचय एव प्रकटीकरिष्यति । आर्येण न विस्मरणीयोऽयमनुषङ्गदृष्टो जनः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत् । दधीचस्तु नवाम्भोभरगम्भीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्वनलताभवनभाजो भुजगभुजः सुधीरमुवाच—'आर्य, करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना । पश्यामस्तावत्तातम् । उत्तिष्ठ । व्रजामः' इति । तथेति च तेनाभ्यनुज्ञातः शनकैरुत्थाय कृतनमस्कृतिरुच्चचाल । तुरगारूढं च तं प्रयान्तं सरस्वती सुचिरमुत्तम्भितपक्ष्मणा निश्चलतारकेण लिखितेनेव चक्षुषा व्यलोकयत् । उत्तीर्य शोणमचिरेणैव कालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम । गते च तस्मिन्सा तामेव विशमालोकयन्ती सुचिरमतिष्ठत् । कृच्छ्रादिव च सञ्जहार दृशम् ।

टीका—सेति । कमलानां कोमलाः=मृदुलाः कराः किरणाः कान्तिरित्यर्थः यस्यां सा, हिमगिरेः=हिमालयस्य शिले=शिलापट्टौ पृथू=विशालौ । नितम्बौ=कटिभागौ यस्याः सा च । अत्र हिमशिलयोः सद्भावे कमल-कान्तिः इति विरोधः हिमस्य कमलघातकत्वात्, तत्परिहारस्तु कमलवत् कोमलौ करौ=हस्तौ यस्याः सा । हिमगिरिशिलावत् पृथू नितम्बौ यस्याः तथाभूतेति । करभः=उष्ट्रशिशुः ('उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्गाः करभः शिशुः'—इत्यमरः) तस्य ऊरुः=जानूपरिभागः यस्याः सा, विलम्बितं=मन्दं गमनं यस्याः सा, अत्र करभोरुत्वे मन्दगमनमिति विरोधः उष्ट्रस्य त्वरितगामित्वात्, तत्परिहारस्तु करभः=मणिबन्धावधिकनिष्ठापर्यन्तं करस्य बहिर्भागः (मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः) तद्वत् ऊरू यस्याः सा, विलम्बितं=विलासेन मन्दं गमनं यस्याः सेति । न मुक्तः कुमारे=कार्तिकेये भावः=भक्तिः यया सा, स्निग्धः=स्नेहपात्रभूतः प्रिय इत्यर्थः तारकः=एतन्नामकासुरः यस्याः सा; अत्र कार्तिकेये भक्तिः तारकासुरेऽपि च स्नेहः इति विरोधः कार्तिकेयस्य तारक-शत्रुत्वात्; तत्परिहारस्तु न मुक्तः कुमार-भावः=कौमार्यावस्था यया सा, स्निग्धा मनोज्ञा तारका=कनीनिका यस्याः सेति । भूयसो दिवसान्=बहूनि दिनानि (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे पा० २।३।५ द्वितीया) अतिशयेन अल्प इति अल्प+इयसुन् अल्पीयान् । अनुषङ्गेण=गौण-रूपेण अकस्मात् इति यावत् दृष्टः । नवाम्भो०=नवः=नूतनः यः अम्भसां=अपाम् भरः=भारः तेन गम्भीरः=गभीरः यः अम्भोधराणां=मेघानां ध्वानः=ध्वनिः तन्निभया=तत्तुल्यया भारत्या=वाण्या, नर्तयन् अयं मेघध्वान इति धिया नृत्यपरान् कुर्वन्, वनलताः एव भवनानि=निवासस्थानानि भजन्ते इति भाजः तान्, भुजगान् सर्पान् भुञ्जते=भक्षयन्तीति भुजगभुजः मयूराः तान् । सुधीरं यथा स्यात् तथा, प्रसादम्=अनुग्रहम् । आराध्यमाना=प्रसाद्यमाना । अभ्यनुज्ञातः=अनुमतः, कृता नमस्कृतिः=नमस्कारः येन तथाभूतः । उच्चचाल=अचलत् । तुरगे=अश्वे आरूढं स्थितं, प्रयान्तं=गच्छन्तम्, उत्तम्भितम्=ऊर्ध्वं कृतं पक्ष्म=नेत्रच्छदः यस्य तेन, निश्चला=स्थिरा तारका=कनीनिका यस्य तेन, लिखितेन=चित्रितेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, व्यलोकयत्=अपश्यत् । कृच्छ्रात्=कठिनतया इवेति

टिप्पणी—सन्निहित०—यहाँ बाण श्लेषद्वारा विरोधाभास दिखा रहा है । एक अर्थ करने में विरोध होता है, झट दूसरा अर्थ करने से विरोध का परिहार होता है । इसलिए विरोध तो आपाततः है वस्तुतः नहीं । इसी को विरोधाभास अलङ्कार कहा गया है, जैसे 'बालान्धकार' का एक अर्थ नया अन्धेरा होता है तो दूसरा बालों का अन्धेरा अर्थात् कालापन । इसी तरह 'भास्वत्' सूर्य को कहते हैं और चमकीले को भी कहते हैं । पहले अर्थ में विरोध है, तो दूसरे अर्थ में कोई विरोध नहीं होता । विस्तार के लिए ऊपर टीका देखिये । वहाँ हमने विस्तृत स्पष्टीकरण दे रखा है ।

हिन्दी—ध्वनि और उठे हुए पयोधर (१—मेघ २—स्तन) भी हैं, इनके कोमल कमल के कर (१—किरणें २—हाथ) हैं, और (साथ ही) हिमालय की शिला के विशाल नितम्ब हैं, इनका ऊरू-स्थल करभ (१—ऊँठ का बच्चा २—पहुँचे और अंगूठे के बीच का करभाग) का है और चाल मन्द है, एवं इन्होंने कुमार-भाव (१—कार्तिकेय की भक्ति २—कौमार्य) नहीं छोड़ा है और (साथ ही) स्निग्ध-तारका (१—तारकासुर पर स्निग्ध २—सुन्दर आँख की पुतली वाली) हैं" । किन्तु वह (सावित्री) बोली—"आर्य समय पर आप सुन लेंगे । हम दोनों का हृदय यहाँ बहुत दिनों तक रहना चाहता है । रास्ता थोड़ा ही है । परिचय ही प्रकट कर देगा । संयोगवश दिखलाई पड़े इस जन को आप न भूलिएगा' इतना कह कर वह चुप हो गई । किन्तु दधीच नये पानी के भार के कारण मेघों की गहरी ध्वनि के समान स्वर से वन के लता-गृहों में रह रहे मयूरों को नचाते हुए धीरता के साथ बोला—"आर्य ! प्रसन्न की जाती हुई यह देवी अनुग्रह करेंगी । अभी तो हम पिताजी को देखते हैं । उठो,

अथ मुहूर्तमिव स्थित्वा स्मृत्वा च तां तस्य रूपसम्पदं पुनः पुनर्व्यस्मयतास्या हृदयम्। भूयोऽपि चक्षुराचकाङ्क्ष तद्दर्शनम्। अवशेव केनाप्यनीयत तामेव दिशं दृष्टिः। अप्रहितमपि मनस्तेनैव सार्धमगात्। अजायत च नवपल्लव इव बालवनलतायाः कुतोऽप्यस्या अनुरागश्चेतसि। ततः प्रभृति सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमनयत्। अस्तमुपयाति च प्रत्यक्पर्यस्तमण्डले लाङ्गलिकास्तबकताम्रत्विषि कमलिनीकामुके कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि सावित्रे त्रयीमये तेजसि, तरुणतरतमालश्यामले च मलिनयति व्योम व्योमव्यापिनि तिमिरसञ्चये, सञ्चरत्सिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि च मन्दं मन्दं मन्दाकिनीहंस इव समुत्सर्पति शशिनि गगनतलम्, कृतसंध्याप्रणामा निशामुख एव

टीका—वाक्यालङ्कारे, सञ्जहार=प्रत्यावर्तयत्, दृशम्=चक्षुः तस्माद् दविभागात् इति शेषः। मुहूर्तं=क्षणं किञ्चित् कालमित्यर्थः, इवेति वाक्यालङ्कारे। रूपस्य=सौन्दर्यस्य सम्पदम्=समृद्धिम्। व्यस्मयत=विस्मयं प्राप्तम्। आचकाङ्क्ष=ऐच्छत्, तस्य युवकस्य दर्शनम्। अवशा=न वशं यस्याः सा, विवशेत्यर्थः। अप्रहितम्=अप्रेषितम्। अगात्=अगच्छत्। नवपल्लवे=अभिनवकिसलये, बाला=लघ्वी या वनस्य लता तस्याः, अनुरागः=पल्लवपक्षे लालिमा, सरस्वत्याः हृदयपक्षे=प्रेम। आलस्येन सह वर्तमाना इति सालस्या, शून्या=रिक्ता, निद्रया सह वर्तमाना इति सनिद्रा। अस्तम् उपयाति=गच्छति प्रत्यक्=पश्चिम-दिशि पर्यस्तं=पतितं मण्डलं=विम्बं यस्य तथाभूते, लाङ्गलिका रक्तपुष्प-वृक्षविशेषः तस्याः स्तबकानां=गुच्छानाम् इव ताम्रा=रक्तवर्णा त्विट्=कान्तिः यस्य तस्मिन्, कमलिनीनां=पद्मिनीनां कामुके=कान्ते, कठोरः=प्रौढः य सारसः=बकः तस्य शिरसः इव शोणं=रक्तवर्णं शोचिः=कान्तिः यस्य तस्मिन् सवितुः इदम् इति (सवितृ+अण्) सावित्रं तस्मिन्। त्रयी=वेदत्रयी एव त्रयीमयं तस्मिन् ऋग्यजुःसामात्मके अतिशयेन तरुणः=तरुणतरः यः तमालः=वृक्षविशेषः तद्वत् श्यामले=श्यामवर्णे, मलिनयति=मलिनं कुर्वति, व्योम=आकाशं, व्योम व्याप्नोतीति व्योमव्यापी तस्मिन्, तिमिरस्य=अंधकारस्य सञ्चये=समूहे। सञ्चरत्०—सञ्चरन्त्यः=इतस्ततः गच्छन्त्यः याः सिद्धानां=देवयोनि-विशेषाणां सुन्दर्यः=वरस्त्रियः तासां नूपुराणां=मञ्जीराणां रवं=शब्दम् अनुसरति=अनुगच्छतीति तस्मिन् मन्दाकिन्याः=स्वर्गङ्गायाः हंसः इवेत्युपमायां, समुत्सर्पति=समुद्गच्छति, शशिनि=चन्द्रमसि गगनतलम्=आकाशतलम्। कृतः सन्ध्यायै प्रणामः

टिप्पणी०—त्रयीमये तेजसि—सूर्य भगवान् को त्रयीमय कहा गया है। त्रयी वेदत्रयी अर्थात् ऋग्, यजु और सामवेद को कहते हैं। वैसे तो संहितारूप में वेद चार हैं और चौथा वेद अथर्ववेद है किन्तु वाक्यरचना वेदों की तीन तरह की है—पद्यात्मक, गद्यात्मक और गीत्यात्मक। अथर्ववेद पद्य-गद्यात्मक होने से पद्यात्मक-गद्यात्मक रचना के अन्तर्गत हो जाता है, इसलिए वेद तीन ही हुए। सभी वेदों में सविता की स्तुति आती है, ऋग्वेद का पवित्रतम गायत्री-मन्त्र सविता का स्तुतिपरक ही है, अतः सविता 'त्रयीमय' कहा गया है, देखिये भागवत—त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते।५।२०।४।

हिन्दी—चलो"। 'ऐसा ही सही'—इस तरह उसकी अनुमति लिए धीरे-से उठकर (देवियों को) नमस्कार किए चल पड़ा। घोड़े पर चढ़े जाते हुए उसे सरस्वती पलकें ऊपर उठाए, पुतली निश्चल किए चित्रित-जैसी आंखों से खूब देर तक देखती रही। शोण पार करके शीघ्र ही दधीच पिता के आश्रम-स्थान को चला गया। उसके चले जाने पर वह उसी दिशा को देखती हुई देर तक खड़ी रही और मुश्किल से आंख को वापस खींच पाई।

इसके बाद थोड़ी देर ठहर कर और उसके सौन्दर्य-वैभव को रह-रहकर याद करके उसका हृदय आश्चर्य में पड़ गया। आंख फिर उसे देखना चाहती थी। विवश-सी हुई उसकी दृष्टि किसी द्वारा उसी दिशा को ले जाई गई। न भेजा हुआ भी मन उसी के साथ चल पड़ा। किसी कारणवश छोटी सी वनलता के कोंपल में उत्पन्न होने वाले अनुराग (लालिमा) की तरह उसके हृदय में (भी) अनुराग (प्रेम) उत्पन्न हो गया। तब से लेकर अलसाई-सी, सूनी-सी, सोती हुई-सी उसने दिन काटा और लांगला के (कुसुमों के) गुच्छों की तरह लाल-लाल कान्तिवाले, कमलिनियों के वल्लभ, प्रौढ़ सारस-पक्षी के सिर के समान रक्त-दीप्ति वाले वेदत्रयीमय सावित्र तेज मण्डल के पश्चिम दिशा में ढल जाने पर, और बड़े भारी तमाल वृक्ष की तरह काले वर्ण के, आकाश में व्याप्त अन्धकारसमूह के आकाश को मलिन बना देने पर और इधर-उधर जाती हुई सिद्धों की सुन्दरियों के पायजेब की झनझनाहट का पीछा करने वाले मंदाकिनी

निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ। सावित्र्यपि कृत्वा [illegible] क्रियाकलापमुचिते शयनकाले किसलयशयनमभजत । जातनिद्रा च सुष्वाप ।

इतरा तु मुहुर्मुहुरङ्गवलनैर्विलुलितकिसलयशयनतला निमीलितलोचनापि नाभजत निद्राम् । अचिन्तयच्च—'मर्त्यलोकः खलु सर्वलोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि सम्भवन्ति त्रिभुवनभूषणानि सकलगुणग्रामगुरूणि रत्नानि। तथा हि । तस्य मुखलावण्यप्रवाहस्य निष्यन्दबिन्दुरिन्दुः । तस्य च चक्षुषो विक्षेपा विकचकुमुदकुवलयकमलाकराः। तस्य चाधरमणेर्दीधितयो विकसितबन्धूकवनराजयः । तस्य चाङ्गस्य परभागोपकरणमनङ्गः । पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंषि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रैणानि, येषामसौ[1] विषयो दर्शनस्य । क्षणं नु दर्शयता च तमन्यजन्मजनितेनेव मे फलित-

टीका—=वन्दनं यया तथाभूता कृतसन्ध्यावन्दनेत्यर्थः, निशामुखे=रात्रेरारम्भकाले एव निपत्य विमुक्तानि=स्रस्तानि विश्लथितानीत्यर्थः अङ्गानि यस्याः सा। पल्लवानां=किसलयानां शयने=शय्यायाम् । क्रियमाणमनतिक्रम्य, सायं भवं सायन्तनं सायङ्कालीनं, क्रियाकलापं=क्रियासमूहम् । जाता निद्रा यस्याः सा सुष्वाप=शयितवती ।

इतरा=अपरा सरस्वतीत्यर्थः, अङ्गानाम्=अवयवानां वलनैः=चालनैः विलुलितं=व्यस्तं किसलयानां पल्लवानां शयनस्य तलं पृष्ठं यस्याः तथाभूता । निमीलिते=निमिषिते लोचने यस्याः सा । न अभजत=प्राप्तवती । उपरि उत्कृष्टमित्यर्थः । त्रिभुवनस्य भूषणानि=मण्डनानि सकलाः=समग्राः ये गुणाः=सौन्दर्य-विनम्रतादयः तेषां ग्रामः समूहः तेन गुरवः=आदरणीयाः । इदं-श्लिष्टविशेषणं दधीचपक्षे रत्नपक्षे च समानम्. दधीचपक्षे पुंल्लिङ्गे परिवर्तनीयम् । रत्नपक्षे सकलाः ये गुणाः=सूत्राणि तेषां ग्रामः=समूहः तस्मिन्नपि गुरूणि=भारवन्ति, रत्नशिलाः तथा गुर्व्यो भवन्ति यथा सूत्रसमूहोऽपि ताः वोढुं न प्रभवतीति भावः । अत्र श्लिष्टरूपकम् । दधीचस्य गुणग्रामं विशदयति तथाहीति—इन्दुः=चन्द्रः, तस्य दधीचस्य मुख-लावण्यस्य=मुखसौन्दर्यस्य प्रवाहस्य=स्रोतसः निस्यन्दस्य=स्यन्दनस्य बिन्दुः=कणः अर्थात् तन्मुखात् स्यन्दमानस्य सौन्दर्यस्य कणमात्रमेव । चक्षुषः विक्षेपाः=पाताः विकचानि=विकसितानि कुमुदानि=कैरवाणि च कुवलयानि=नीलोत्पलानि च कमलानि=पद्मानि च तेषाम् आकराः समूहाः । चक्षुषः धवल-नील-रक्तत्वात् कुमुदादीनां त्रिवर्णत्वं जातमित्यर्थः । अधरः=ओष्ठः मणिरिव तस्य दीधितयः=किरणाः विकसितानां बन्धूकानां=रक्तपुष्पविशेषाणां वनराजयः—वन-पङ्क्तयः । अनङ्गः=कामदेवः तस्य=दधीचस्य अङ्गस्य=देहस्य परभागः=परस्य श्रेष्ठस्य भागः गुणोत्कर्ष इत्यर्थः ('परभागो गुणोत्कर्षः' इति क्षीरस्वामी) तस्य उपकरणं=साधनम् अर्थात् अनङ्गः तद्देहसौन्दर्योत्कर्षसाधनमात्रमेव । सर्वत्र रूपकम् प्रतीपश्च व्यङ्ग्यः । पुण्यं भजन्तीति=पुण्यवन्ति, स्त्रीषु भवानीति स्त्री + नञ् ('स्त्री-पुंसाभ्यां नञ्-स्नञौ भवनात्' पा०४।१।८७) स्त्रीसम्बन्धीनीत्यर्थः । असौ=दधीचः ।

टिप्पणी—साहित्य शास्त्र के अनुसार जब हृदय में काम होता है तो वह अपनी दश दशाओं में प्रगति करता हुआ चला जाता है । विश्वनाथ के अनुसार वे दश कामदशायें ये हैं—'अभिलाषश्चिन्ता-स्मृति गुण-कथनोद्वेग सम्प्रलापश्च । उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः (सा० द० परि० ३) । बाण ने यहाँ 'अजायत च नवपल्लव' पृ० ४६ से सरस्वती की पाँच कामदशाओं को बताया है । "अजायत०" में 'अभिलाषा', 'ततः प्रभृति...' में 'चिन्ता', 'कृतसंध्याप्रणामाः...तस्थौ' में 'स्मृति', 'मर्त्यलोकः खलु' में 'गुणकथन', और 'मदनशरताडितायाः... में 'उद्वेग' ।

हिन्दी—के हंस की तरह चन्द्रमा के धीरे-धीरे आकाशतल में उदय हो जाने पर सन्ध्यावन्दन किए हुए (सरस्वती) सांझ की वेला में ही ढ़ीले अंग किए पत्तों की शय्या पर लेट कर पड़ी रही। सावित्री भी सायंकालीन (संध्यावन्दनादि) क्रियाकलाप को, जैसा कि किया जाना चाहिए था—करके सोने के उचित समय में किसलयों की शय्या पर चली गई और निद्रा को प्राप्त हुई सो गई । किन्तु अंगों को बार-बार पलटते रहने पर पत्तों की शय्या को अस्त-व्यस्त किए हुए दूसरी (सरस्वती) को आँखें मीचे हुए भी नींद नहीं आई । वह सोच रही थी—मर्त्य-लोक सचमुच सभी लोकों से उत्कृष्ट है, जहाँ तीनों लोकों के भूषण, सभी गुण-समूह में महान् ऐसे (दधीच) जैसे रत्न होते हैं जो सकल तन्तु-समूह (पिरोये) रहने पर भी भारी ही रहते हैं, जैसे—उसके मुख-सौन्दर्य के प्रवाह का रिसता हुआ बूंद चन्द्रमा है, उसकी चितवन खिले हुए कुमुद, कुवलय और कमलों के समूह हैं, उसके ओठों की किरणें विकसित बन्धूक (गुड़हल) पुष्पों की वनराजियां हैं और कामदेव उसके शरीर को सौन्दर्योत्कर्ष देने का साधन (मात्र) है । स्त्रियों की वे आँखें, हृदय और यौवन भाग्यवान् हैं जिनकी इस पर दृष्टि पड़ी है । क्षणभर ही उसका दर्शन दिलाने

१. येषामसावविषयो ।

मधर्मेण । ...कथंकथमप्युपजातनिद्रा चिरात्क्षणमशेत । सुप्ता च तं दीर्घलोचनं स्वप्ने ददर्श । स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना चाकर्णाकृष्टकार्मुकेण मनसि निर्दयमताड्यत[1] प्रतिबुद्धा मकरकेतुना । मदनशरताडितायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम । तथा हि । ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलाभिर्वनलताभिरताडितापि वेदनामधत्त । मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिरदूषितलोचनाप्यश्रुजलं मुमोच । हंसपक्षतालवृन्त[2]वान्तवातविततैः शोणशीकरैरसिक्ताप्यार्द्रतामगात् । प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनै[3]रनूढाप्यघूर्णत वनकमलिनीकल्लोलदोलाभिः । विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैरस्पृष्टापि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः । पुष्पधूलिधूसरैरदष्टापि व्यचेष्टत मधुकरकुलैः ।

अथ गणरात्रापगमे निवर्तमानस्तेनैव वर्त्मना तं देशमागत्य तथैव निवारितपरिजनश्छत्रधारद्वितीयो विकुक्षिर्डुढौके ।

टीका—अन्यस्मिन्=पूर्वस्मिन् जन्मनि जनितेन=कृतेन, अधर्मेण=पाप-कर्मणा, फलितं=परिणतम् प्रतिपत्तिः=कर्तव्यकर्म । उपजाता=सञ्जाता निद्रा यस्याः सा । स्वप्ने आसादितं द्वितीयं दर्शनं दधीचस्येति शेषः यया सा । आकर्णं=कर्णपर्यन्तम् आकृष्टं कार्मुकं=धनुः येन तेन । निर्गता दया यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अताड्यत=प्राह्रियत मकरकेतुना=मदनेन । प्रतिबुद्धायाः=जागरितायाः । वार्ताम्=समाचारम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उपलब्धुं=ज्ञातुम्, अरतिः=व्याकुलता, उद्विग्नता । कुसुमानां धूलिभिः=रेणुभिः धवलाभिः=श्वेताभिः, वनस्य लताभिः अताड्यमाना=न आहन्यमाना अपि वेदनां=पीडाम् आधत्त=धृतवती । मन्दमन्देन मारुतेन=वायुना विधुतैः=प्रक्षिप्तैः उड्डायितैरित्यर्थः, कुसुमरजोभिः=परागैः न दूषिते=कलुषिते लोचने यस्याः तथाभूताऽपि अश्रुजलम्=बाष्पं, मुमोच=प्रवाहितवती । हंसानां पक्षाः एव तालवृन्ताः=व्यजनानि तैः वान्ताः=उद्गीर्णाः उत्पादिताः इत्यर्थः ये वाताः=पवनाः तैः विततैः=प्रसारितैः शोणस्य=शोण-नदस्य शीकरैः जल-कणैः न सिक्ता=सेकं प्रापिता अपि आर्द्रतां=क्लिन्नताम् अगात्=प्राप्तवती । प्रेङ्खन्ति=परिभ्रमन्ति यानि कादम्बानां=कलहंसानाम् ('कादम्बः कलहंसः स्यात्' इत्यमरः) मिथुनानि=युगलानि तैः अनूढा=अधृता अनुपवेशितेत्यर्थः वनस्य कमलिनीनां=कमलस्थलीनाम् ('पुष्करादिभ्यो देशे' पा० ५।२।१३५। पुष्करिणी, पद्मिनी सि० कौ०) कमलसरोवराणामित्यर्थः, कल्लोलाः=ऊर्मयः एव दोलाः दोलन-यन्त्राणि ताभिः अघूर्णत=अभ्राम्यत् अर्थात् कमलसरोवरकल्लोलप्रसारितैः कमल-सौरभैः समुद्दीप्तकामा सा स्वकिसलयशय्यायाम् अघूर्णत । विघटमानानि=वियुज्यमानानि चक्रवाकानां युगलानि=मिथुनानि तैः विसृष्टैः=मुक्तैः विरह-निःश्वासस्य धूमैः अस्पृष्टा=अजातस्पर्शा अपि श्यामतां मलिनताम् आससाद=प्राप । पुष्पधूलिभिः=परागैः धूसरैः=पाण्डुरैः मधुकराणां=भ्रमराणां कुलैः=समूहैः अदष्टा न कृतदंशा अपि व्यचेष्टत विविधम् अचेष्टत, इतस्ततः अङ्गानि पर्यचालयदित्यर्थः । इह सर्वत्र विभावनालङ्कारः, यथोक्तं मम्मटेन 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' (काव्य प्र० १०) । अथ गणरात्रम्=गणानां=बह्वीनां रात्रीणां समाहारः (गणशब्दस्य संख्यावत्त्वात् तद्धितार्थेति द्विगुसमासः । अच्-समासान्ते रात्राह्नाहाः पुंसि, पा० २।४।२६ । इति क्लीबत्वम्) ('गणरात्रं निशा बह्व्यः, इत्यमरश्च) तस्य अपगमे—अतिक्रमे, निवर्तमानः—प्रत्यागच्छन् वर्त्मना=मार्गेण निवारितः=प्रतिषिद्धः परिजनः=भृत्यवर्गः येन तथाभूतः, छत्रधारः छत्रवाहकः द्वितीयः=सहचारी यस्य सः विकुक्षिः डुढौके=(√ढौकृ गतौ+लिट्) आजहिन्दी—वाले पूर्वजन्म के किए हुए पाप ने जैसे फल दिखाया है । अब क्या करना चाहिए?"—इस तरह सोचते-सोचते किसी तरह निद्रा को प्राप्त हुई बड़ी देर से क्षणभर के लिए सोई हुई उसने स्वप्न में उस विशाल नयन वाले को देखा । स्वप्न में दूसरा दर्शन प्राप्त किए हुए वह कानतक धनुष ताने कामदेव द्वारा हृदय में निर्दयता से आहत हो गई । जागी और कामदेव के बाणों द्वारा आहत हुई उसका हाल-समाचार जानने के लिए जैसे बेचैनी उसके पास आ गई, क्योंकि—तब से लेकर पुष्प-धूलि से श्वेत बनी वन-लताओं से चोट न खाए हुए भी वह पीड़ा अनुभव करती थी, मन्द-मन्द वायु से उड़ाये गए पुष्पपरागों से आँखें मैली न होते हुए भी आँसू बहाती थी । हंसों के पंखों से निकली पवन द्वारा प्रसारित शोणनद के जलकणों से न सींची जाती हुई भी गीली हो जाती थी, इधर-उधर घूमते हुए हंस-युगलों द्वारा न ले जाई जाती हुई भी वनकमलिनियों के सरोवरों की तरंगों की झूलाओं द्वारा झूमती थीं, बिछुड़ते हुए चक्रवाकयुगलों द्वारा छोड़े गए विरह की आहों के धूम से अछूती हुई भी काली पड़ रही थी और पुष्पधूलि से मटमैले बने भ्रमर-समूहों द्वारा न काटी जाती हुई भी तड़फड़ा रही थी ।

---

१. अताड्यत प्रतिबुद्धा मकरकेतुना । मदन० ।
२. वृन्तव्रात । ३. मिथुनाभिरनूढा ।

सरस्वती तु तं दूरादेव समुखमागच्छन्तं प्रीत्या ससंभ्रममुत्थाय वनमृगीवोद्ग्रीवा विलोकयन्ती मार्गपरिश्रान्तमस्नपयदिव धवलितदशदिशा दृशा। कृतासनपरिग्रहं तु तं प्रीत्या सावित्री पप्रच्छ—'आर्य, कच्चित्कुशली कुमारः' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मति, कुशली। स्मरति च भवत्योः। केवलममीषु दिवसेषु तनीयसीमिव तनुं बिभर्ति। अविज्ञायमानां चानिमित्तां शून्यतामिवाधत्ते। अपि च। अन्वक्षमागमिष्यत्येव[1] मालतीति नाम्ना वाणिनी वार्तां वो विज्ञातुम्। उच्छ्वसितं सा कुमारस्य' इति। तच्छ्रुत्वा पुनरपि सावित्री समभाषत—'अतिमहानुभावः खलु कुमारो यदेवमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचितिमनुबध्नाति। तस्य हि गच्छतो यदृच्छया कथमप्यंशुकमिव मार्गलतासु मानसमस्मासु मुहूर्तमासक्तमासीत्। अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः। अलसः खलु लोको यदेवं सुलभसौहार्दानि येनकेनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि। सोऽयमौदार्यातिशयः कोऽपि महात्मनामितरजनदुर्लभो येनोपकरणीकुर्वन्ति त्रिभुवनम्' इति। विकुक्षिरुच्चावचैरालापैः सुचिरमिव स्थित्वा यथाभिलषितं देशमयासीत्।

टीका—ग्राम तत्र प्रापेत्यर्थः। प्रीत्या=प्रसन्नतया संभ्रमेण=त्वरया सहितं यथा स्यात्तथा, वनमृगी=वनस्य हरिणी इवेत्युपमायाम्, उत्=ऊर्ध्वं ग्रीवा यस्याः तथाभूता, विलोकयन्ती=पश्यन्ती, मार्गेण परिश्रान्तं=क्लान्तम् अस्नपयत्=स्नानं कारितवती इवेत्युत्प्रेक्षायां, धवलिताः=श्वेतीकृता दश दिशः यया तया दृशा=चक्षुषा। कृत आसनस्य परिग्रहः=ग्रहणं येन तं पप्रच्छ=अपृच्छत्। कच्चित्=आशासे, कुशली=सकुशलः, कुमारः=दधीच इत्यर्थः स्मरति भवत्योः ('अधिगर्थदयेशानाम्' पा० २।३।५२ इति अधिगर्थे (स्मरणे) कर्मणि षष्ठी) अमीषु=एतेषु अतिशयेन तन्वी इति तनीयसी (तनु+ईयसुन्+ङीप्) ताम् अतिकृशाम् तनुं=शरीरम्, बिभर्ति=धारयति। अविज्ञायमानां=ज्ञातुमशक्यामित्यर्थः निमित्तं=कारणं यस्यां तथाभूतां शून्यताम्=अभावम् इव आधत्ते=धारयति। अन्वक्षम्=अनुगतः अक्षम्=इन्द्रियम् इति (अव्ययीभावः)=अन्वक्, अनुपदमित्यर्थः ("अन्वगन्वक्षमनुगेऽनुपदं क्लीबमव्ययम्' इत्यमरः) वाणिनी=दूती ('वाणिन्यौ नर्तकी-दूत्यौ' इत्यमरः) वार्ता=समाचारम्। उच्छ्वसितं=प्राणः जीवितं कुमारस्य महाविश्वासपात्रमित्यर्थः अविज्ञायमाने=अपरिचिते इत्यर्थः, क्षणं दृष्टे=क्षणमात्रम् अवलोकिते परिचितिं=परिचयम्, अनुबध्नाति=निर्वाहयति यदृच्छया अकस्मात् अंशुकम् सूक्ष्मवसनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मार्गे या लताः तासु, मानसं=मनः, मुहूर्तं=क्षणमात्रम् आसक्तं=लग्नम्। शून्यं=न शून्यं=रहितं पूर्णमित्यर्थः। आभिजात्येन=अभिजातस्य=कुलीनस्य भावः तेन कुलीनतयेत्यर्थः स्वामि-सूनोः=स्वामिनप्तुः कुमारस्येत्यर्थः। अत्र सूनु-शब्देन नप्ता एव ग्राह्यः, दधीचो हि शर्यातस्य नप्ता आसीत् न तु पुत्रः, अथवा सूनु-शब्देन पुत्र एव ग्राह्यः, प्राचीनसमये दौहित्रोऽपि औरसपुत्र इव मन्यतेस्म, तदाह याज्ञवल्क्यः—'औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः' २।१२८। अलसः मन्दः मूर्खः इत्यर्थः सुलभं=सुखेन लब्धुं योग्यं सौहार्दं=सौहृदं मैत्रीत्यर्थः येषां तानि येनकेनचित्=येनकेनापि वस्तुनेत्यर्थः। क्रीणाति=क्रीतानि करोति महतां=महापुरुषाणां मनांसि=हृदयानि। उदारस्य भावः औदार्यं तस्य अतिशयः=आधिक्यम्, इतर-जनेषु=पामरेषु नीचेष्वित्यर्थः ('इतरस्त्वन्य-नीचयोः' इत्यमरः) दुर्लभः=दुष्प्रापः उपकरणीकुर्वन्ति=साधनीकुर्वन्ति वशीकुर्वन्तीत्यर्थः। उच्चावचैः=उदक् च अवाक् चेति उच्चावचम्, उन्नतं चावनतं च तैः विविधैरित्यर्थः। आलापैः=वार्तालापैः सुचिरं बहुकालपर्यन्तम्, इवेति वाक्यालङ्कारे, अभिलषितमनतिक्रम्य इति यथाभिलषितं=यथाकाङ्क्षितम् देशम् अयासीत्=अगच्छत्।

हिन्दी—इसके बाद बहुत सी रात्रियों के बीत जानेपर उसी मार्ग से लौटता हुआ विकुक्षि उस स्थान में आकर उसी तरह भृत्य-जनों को पीछे रोके (और) छत्रवाहक को साथ रखे आ पहुँचा। सरस्वती ने तो दूर से ही सामने आते हुए उसे प्रसन्नता में जल्दी-जल्दी खड़ी हो वनमृगी की तरह गर्दन ऊपर किये देखते हुए दश दिशाओं को श्वेत बना देने वाली (अपनी) दृष्टि से मार्ग के थके हुए (उसे) नहला सा दिया। किन्तु सावित्री आसन ग्रहण किये हुए उसे प्रसन्नता-पूर्वक पूछ बैठी—'आर्य ! कुमार सकुशल हैं क्या" ?। वह बोला—"आयुष्मती ! कुशल हैं। आप दोनों को याद करते हैं। केवल इन दिनों बड़ा दुबला-पतला-सा शरीर रख रहे हैं। समझ में न आने वाला, बिना कारण का सूनापन-सा अनुभव कर रहे हैं। और भी—मेरे तुरन्त बाद मालती नाम की दूती आप लोगों का हाल-समाचार जानने के लिये आएगी ही, वह कुमार की प्राण है।" यह सुनकर फिर भी सावित्री बोली—सचमुच कुमार

---

१. 'अन्वक्षमागमिष्यत्येव।

अपरेद्युरुद्दामद्युतौ द्युमणावभिद्रुततारके तिरस्कृततमसि तामरसव्यास[1] व्यसनिनि सहस्ररश्मौ शोणमुत्तीर्यायान्ती, तरलदेहप्रभावितानच्छलेनात्यच्छं सकलं शोणसलिलमिवानयन्ती, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तबकसमत्विषि सटाले महति मृगपताविव गौरी तुरङ्गमे स्थिता, सलीलमुरोबध्रा[2]रोपितस्य तिर्यगुत्कर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुरपटुरणितस्यातिबहलेन पिण्डालक्तकेन पल्लवितस्य कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितैः प्रभाप्रवाहैरुभयतस्ताडनदोहदलोभागतानि किसलयितानि रक्ताशोकवनानीवाकर्षयन्ती, सकलजीवलोकहृदय-

---

अपरेद्युः=अन्यदिवसे द्युमणौ=द्युलोकस्य मणिभूते, उद्दामा=उद्गता दाम्नः निर्बाधा उत्कटेत्यर्थः द्युतिः=दीप्तिः यस्य तथाभूते, अभिद्रुताः=आक्रान्ताः तारकाः=नक्षत्राणि येन तस्मिन् तिरस्कृतम्-अपसारितमित्यर्थः तमः येन तस्मिन्. तामरसानां=कमलानां यः व्यासः=विकासः व्यसनं=वृत्तिः शीलमित्यर्थः अस्यास्तीति तस्मिन् सहस्ररश्मौ=सूर्ये उत्तीर्य=तीर्त्वा, आयान्ती आगच्छन्ती मालती समदृश्यत इत्यन्वयः। तरला=चञ्चला स्फुरन्तीत्यर्थः या देहस्य प्रभा कान्तिः तस्याः वितानः=विस्तारः तस्य छलेन=व्याजेन अत्यच्छं=स्वच्छ, शोणस्य सलिलं=जलम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अत्र कैतवापह्नुत्युत्प्रेक्षालङ्कारः। आनयन्ती=आददाना। स्फुटिता०=स्फुटितः विकसितः अतिमुक्तकस्य कुसुमानां=पुष्पाणां स्तबकः गुच्छः तेन समा=सदृशी त्विट्=कान्तिः यस्य तस्मिन् सटाले=सटा=केसरः अस्यास्तीति (सटा+लच् मतुबर्थे) तस्मिन्, मृगाणां पतिः तस्मिन्=सिंहे गौरी=गौरवर्णा, पार्वती च, तुरङ्गमे=अश्वे, स्थिता=आरूढा, सलीलं=लीलया सहितं यथा स्यात्तथा उरोबध्रम्=उरः=वक्षःस्थलं बध्नातीति (उरस्+√बन्ध+ष्ट्रन्) उरोबन्धकः चर्मपट्टः तस्मिन् आरोपितस्य=स्थापितस्य चरण-युगलस्येत्यस्य विशेषणम्, तिर्यग०—तिर्यक्=तिरः यथा स्यात्तथा उत्=ऊर्ध्वं कर्णौ यस्य तथाभूतः यः तुरगः=अश्वः तेन आकर्ण्यमानं=श्रूयमाणं नूपुरयोः पटु=तीव्रं रणितं=झण-झण शब्दः यस्य तस्य। पिण्डः=घनः यः अलक्तकः=लाक्षा तेन पल्लवितस्य=सञ्जातपल्लवस्य अर्थात् घनालक्तकरसेन रक्तं चरणयुगलं पल्लवयुक्तमिव दृश्यतेस्म पल्लवानामपि रक्तत्वात्। कुङ्कुमेन=काश्मीरजन्मना पिञ्जरितं=रक्तपीतवर्णीकृतं पृष्ठं यस्य तस्य चरणयोः=पादयोः युगलस्य=द्वयस्य प्रसरद्भिः=निर्गच्छद्भिः प्रभायाः=कान्त्याः प्रवाहैः=झरैः उभयतः=उभाभ्यां पार्श्वाभ्याम् अश्वस्येति शेषः ताडनस्य=प्रहारस्य यत् दोहदम्=इच्छा, 'अथ दोहदम् इच्छाकाङ्क्षास्पृहेहातृट्' इत्यमरः।

टिप्पणी—ताडन-दोहद०—जिस तरह गर्भवती स्त्री को विविध वस्तुओं का दोहद अथवा इच्छा हुआ करती है उसी तरह परम्परानुसार कुछ वृक्ष भी फूलने के लिये कुछ इच्छा रखते हैं। उदाहरण के लिए अशोक वृक्ष सुन्दर नवयुवतियों के पाद-प्रहार की अपेक्षा रखता है जिसकी बाण ने यहाँ कल्पना कर रखी है। किस वृक्ष का क्या दोहद होता है उसके लिये मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ का यह श्लोक देखिए—'स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधु-गण्डूषसेकात्, पादाघातादशोकस्तिलक-कुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्। मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वस्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः' (उत्तर मेघ० १७)।

हिन्दी—बड़े महानुभाव हैं जो अपरिचित (एवं) क्षणभर देखे हुए जन के प्रति इस तरह परिचय का निर्वाह कर रहे हैं क्योंकि जाते हुए अकस्मात् उनका हम पर मन क्षणभर के लिए किसी तरह ऐसा ही लगा था जैसा कि जाते हुए वनलताओं में आंचल लग जाया करता है। सचमुच आपके स्वामी के पुत्र का सौजन्य उच्च कुलीनता से खाली नहीं है। वास्तव में लोग आलसी हैं जो महापुरुषों के सुलभ-मैत्री वाले हृदयों को जिस-किसी वस्तु से भी नहीं खरीद लेते। नीच जनों में न मिलने वाली महात्माओं की यह कोई बड़ी भारी उदारता ही है जिससे वे तीनों लोकों को वश में कर लेते हैं। विकुक्षि विविध वार्तालापों से देर तक ठहर कर जहाँ जाना चाहता था, उस स्थान को चल पड़ा।

दूसरे दिन गगन के मणि, उत्कट कान्ति वाले तारों पर आक्रमण किये, अन्धकार को मिटाये, कमलों को विकसित करने के व्यसनी भगवान् सूर्य के उदय होने पर, शोण नदी को पार करके कुछ नौकर-चाकरों को साथ लिये आती हुई मालती दिखलाई पड़ी—जो झिलमिलाती देह-प्रभा के विस्तार के बहाने ऐसी लग रही थी मानो शोण-नदी का सारा ही स्वच्छ-जल ला रही हो, जो खिले हुए अतिमुक्त-पुष्पों के गुच्छों की सी कान्तिवाले केशरयुक्त सिंह पर बैठी हुई गौरी की तरह बड़े घोड़े पर स्थित थी, जो विलासपूर्वक घोड़े की कमर पेटी पर फैलाए

---

१. तामरसव्याकोश।
२. उरोबन्धारोपित०।

हठहरणाघोषणयेव रशनया [illegible] लघुतरेणाप्रपदीनेन कञ्चुकेन तिरोहिततनुलता, छातकञ्चुकान्तरदृश्यमानैराश्यानचन्दनधवलैरवयवैः स्वच्छसलिलाभ्यन्तरविभाव्यमानमृणालकाण्डेव सरसी, कुसुम्भरागपाटलं पुलकबन्धचित्रं चण्डातकमन्तःस्फुटं[1] स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमादधाना, हारेणामलकीफलनिस्तल[2]मुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रहगणशारा शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः, कुचपूर्णकलशयोरुपरि रत्नप्रालम्बमालिकामरुणहरितकिरणकिसलयिनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवन[3]मालिकामिव बद्धां धारयन्ती, प्रकोष्ठ-

---

टीका—तस्य लोभेन=लोलुपतया आगतानि किसलयितानि=सञ्जातकिसलयानि रक्ताशोकस्य वनानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आकर्षयन्ती=समाकृषन्ती सह आनयन्तीत्यर्थः। **सकल॰**—सकलाः च ते जीवलोकाः=प्राणि-वर्गाः तेषां हृदयानां हठेन=बलात् हरणम्=अपनयनम्, तस्य आघोषणा=आ-समन्तात् घोषणा=घोषणं तया इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, रशनया=काञ्चीदाम्ना शिञ्जानं=झणझणायमानं जघन-स्थलं यस्याः तथाभूता। धौतं=प्रक्षालितं धवलं=श्वेतञ्च यत् नेत्रम्=अंशुकम् ('स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमरः) तेन निर्मितेन चीनांशुकरचितेनेत्यर्थः निर्मोकात्=सर्पकञ्चुकात् अपि लघुतरेण=सूक्ष्मतरेण, आप्रपदीनेन=पादस्य अग्रं=प्रपदं तन्मर्यादीकृत्येति आप्रपदम्, आप्रपदं प्राप्नोतीति [आप्रपद+ख (ईन) पा॰ ५।२।८) तेन पादाग्रपर्यन्त-व्यापिनेत्यर्थः, कञ्चुकेन=वस्त्रेण तिरोहिता आच्छादिता तनुः=शरीरं लता इवेत्युपमिततत्पु॰ यया सा। छातः=सूक्ष्मः यः कञ्चुकः=(परिहितं) वस्त्रं तस्य अन्तरे अभ्यन्तरे दृश्यमानैः=दृष्टिपथमागच्छद्भिः, आश्यानम्=ईषत् शुष्कं यत् चन्दनम्=चन्दनलेपः तेन धवलैः=श्वेतैः अवयवैः—अङ्गैः **स्वच्छ॰**—स्वच्छं=निर्मलं यत् जलं तस्य अभ्यन्तरे विभाव्यमानाः=परिलक्ष्यमाणाः मृणालानां=बिसानां काण्डाः=नालीः यस्या सा इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सरसी=सरः। कुसुम्भस्य=रक्तपुष्पविशेषस्य कुंकुमस्येत्यर्थः रागेण=रंगेण पाटलं=रक्तं कुंकुमाक्तमित्यर्थः पुलकानां=विविधवर्ण-बिन्दूनां बन्धेन=विन्यासेन, चित्रं कर्बुरं चित्रविचित्रमित्यर्थः चण्डातकम्=अर्धोरुकम् ['अर्धोरुकं वरस्त्रीणां स्याच्चण्डातकम-स्त्रियाम्'—इत्यमरः] पेटीकोट इति भाषायां प्रसिद्धम्। अन्तः=अभ्यन्तरे स्फुटं=परिस्फुरत् स्फटिकस्य भूमिः=स्थली इवेत्युत्प्रेक्षायाम् रत्नानां निधानं=निधिम् आदधाना=बिभ्रती। अयं भावः तस्याः कञ्चुकः स्फटिकवत् धवलः, तदन्तश्च कुसुम्भाक्तः चण्डातकः स्फटिकान्तःस्था रत्नशिलेव प्रतीयतेस्म, चण्डातके नानावर्णबिन्दुविन्यासश्च नानावर्णमणिमाणिक्यादिवत् प्रतीयतेस्म। आमलकीफलवत् निस्तलानि=गोलाकाराणि मुक्ताफलानि=मौक्तिकानि यस्मिन् तेन हारेण=स्रजा स्फुरिताः=देदीप्यमानाः ये ग्रहगणाः=तारासमूहाः तैः शारा=शबला, चित्रा, शरदः इयम् इति शारदी शरत्कालीना, श्वेताः विरलाः=अल्पाल्पाश्च ये जलधराः=मेघाः तेषां पटलेन=आवरणेन आवृता=आच्छन्ना द्यौः=आकाशम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। कुचौ=स्तनौ पूर्णकलशौ=जलभरित-घटौ इवेत्युपमिततत्पु॰, तयोः उपरि रत्नानां प्रालम्बमालिका=कण्ठात् वक्षःपर्यन्तमालम्बिनी माला ['प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात् कण्ठात्'—इत्यमरः] ताम्, अरुणाः=रक्ताः [पद्मरागाणामिति शेषः] हरिताः=हरिद्वर्णाः [मरकतमणीनामिति शेषः] ये किरणाः=कान्तयः तद्वत् किसलयाः=पल्लवाः अस्याः सन्तीति ताम्, पुण्यवतः=भाग्यवतः हृदये=मनसि प्रवेशः तदर्थं वनमालिकाम्=पत्र-कुसुम-गुम्फितां, मालाम्

टिप्पणी—**द्यौरिव**—आँवले-जैसे मोटे-मोटे मोतियों का हार पहने हुए वह ऐसी लगती थी मानो शरद ऋतु की 'द्यौ' हो। उसका धवल कञ्चुक सफेद मेघों का आवरण-जैसा था और गोल-गोल मोती तारे-जैसे थे जो आकाश को 'शार' बनाये हुए थे।

हिन्दी—हुए, टेढ़े किए कानों से घोड़े द्वारा सुनी जाने वाली पायजेबों की तीव्र झनझनाहट वाले, खूब गाढ़े महावर से पल्लवयुक्त-जैसे बने ऊपर की तरफ कुंकुम से रंगे दोनों पैरों की फैलती लाल-लाल प्रभा के प्रवाहों से ऐसी लग रही थी मानो (घोड़े के) दोनों तरफ दोहद के लोभ से आये हुए किसलय-भरे रक्ताशोक के पत्तों को खींच रही हो, जिसका जघन-स्थल सभी प्राणी-वर्गों के हृदयों को बलात् हर ले जाने की घोषणा-जैसी करधनी से झनझना रहा था, जिसकी लता-सी गात साँप की केंचुली से भी हलके पैरों तक के, धुले हुए सफेद रेशमी कञ्चुक से ढकी हुई थी, जो महीन कञ्चुक के भीतर दिखलाई पड़ने वाले, कुछ सूखे-चन्दन से श्वेत बने अंगों से ऐसी लग रही थी मानो झील हो, जिसके निर्मल जल के भीतर मृणाल-दण्ड परिलक्षित होते रहते हैं, जो कुसुम रंग में रंगे लाल-लाल (और) रंग-विरंगे बिन्दुओं की छाप से चित्र-विचित्र बने चण्डातक (घुटनों तक का पेटी कोट) पहने हुए ऐसी लग रही थी मानो स्फटिक की स्थली हो, जिसके भीतर (नाना प्रकार के) रत्नों का खजाना जगमगाता रहता है, जो आँवले-जैसे (मोटे) गोल-गोल मोतियों के हार से ऐसी प्रतीत हो

---

१. अन्तःस्फुरत्स्फटिक। २. निस्तुल॰। ३. चन्दनमालिका॰।

निविष्टस्यैकैकस्य हाटक[1]कटकस्य मरकतमकरवेदिका [illegible] स्थलकमलिनीभिरिव लक्ष्मीशङ्कयानुगम्यमाना, बहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेनाधरसम्पुटेन मुखशशिपीतं ससंध्यारागं तिमिरमिव वमन्ती, विकचनयनकुवलयकुतूहलालीनयालिकुलसंहत्या नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धार्धवदना, नीलीरागनिहितनीलिम्ना शिखि[2]-गलशितिना वामश्रवणाश्रयिणा दन्तपत्रेण कालमेघपल्लवेन विद्युदिव द्योतमाना, बकुलफलानुकारिणीभिस्तिसृभिर्मुक्ताभिः

वन्दनमालामित्यर्थः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् बद्धां=संसक्तां धारयन्ती बिभ्रती। प्रकोष्ठे=अग्रहस्ते निविष्टस्य=स्थितस्य एकैकस्य एकस्य एकस्य हाटक-कटकस्य=सुवर्णकंकणस्य मरकतस्य=हरितमणिविशेषस्य या मकरवेदिका=मकराकारपीठिका तया सनाथस्य=युक्तस्य। हरितीकृताः=हरितवर्णीकृताः दिगन्ताः=दिक्प्रान्तभागाः याभिः=तथाभूताभिः मयूखानां=किरणानां सन्ततिभिः=सन्तानैः प्रसारणैरित्यर्थः स्थल-कमलिनीभिः=स्थल-पद्मिनीभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लक्ष्म्याः=श्रियः शङ्कया=भ्रान्त्या अनुगम्यमाना अनुस्रियमाणा। अत्र भ्रान्त्युत्थापितोत्प्रेक्षा। बहल०—बहुलम्=अधिक यत् ताम्बूलं ताम्बूल-चर्वणमित्यर्थः तेन या कृष्णिका=कालिमा तया अन्धकारितेन=सञ्जातान्धकारेण कृष्णवर्णेनेत्यर्थः अधर-सम्पुटेन=ओष्ठपुटेन मुखम् एव शशी=चन्द्रः तेन पीत संध्यायाः रागेण=लालिम्ना सहित तिमिरम्=अन्धकारम् इव वमन्ती=उद्गिरन्ती। अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा। विकच०—विकचे=विकस्वरे नयने कुवलये इवेत्युपमा, तयोः यत् कुतूहलम्=इमे कुवलय इति भ्रान्ति-जनितकौतुकं तस्मात् (कारणात्) आ=समन्तात् लीनया=संसक्तया अलि-कुलानां=भ्रमरपङ्क्तीनां संहत्या=समूहेन नीला या अंशुक-जालिका=चीनांशुकस्य सच्छिद्रावगुण्ठिका तया इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निरुद्धम्=आवृतम् अर्धं-वदनं=मुखस्यार्ध-भागो यस्याः तथाभूता। नीलीरागेण नीलीनामकवृक्षविशेषस्य रंगेण निहितः=दत्त इत्यर्थः नीलिमा=नीलत्वं यस्मिन् तेन, शिखी=मयूरः तस्य गलवत्=कण्ठवत् शितिना=नीलेन, वामं च तत् श्रवणं=श्रोत्रम् आश्रयतीति तेन, दन्तपत्रेण=दन्ताः इव पत्राणि यस्य तेन कर्णाभरणविशेषेण, कालः=कृष्णश्चासौ मेघः तस्य पल्लवेन=विस्तारेण ("पल्लवोऽस्त्री किसलये विस्तारे विटपे वने' इति मेदिनी) विद्युत्=तडित् इव द्योतमाना देदीप्यमाना।

टिप्पणी—कुचपूर्णकलशयोः······धारयन्ती—जब कोई वर-प्रवेश आदि मङ्गल-कार्य होता है तो घर के आगे पुष्प-पल्लव-सहित जलपूर्ण घटों और वन्दनवार का विधान है—'वनमाला विधातव्या पल्लवैः कुसुमैः फलैः'। कवि कल्पना करता है कि उसके स्तन जिनके ऊपर रत्नों की प्रालम्ब-माला है मानो मङ्गल-घट हैं, जिनपर फूल-पत्ते बांधे हुए हैं। मालूम होता है कि जैसे उसके हृदय में भीतर किसी भगवान् का माङ्गलिक प्रवेश होने को है। कादम्बरी में भी बाण ने इस प्रथा का उल्लेख किया है—'उभयपार्श्वस्थापितोत्पल्लवमुखपूर्णहेमकलशम्'। प्रकोष्ठ०—उसके हाथ में मरकत जड़े कंगन थे। मरकत की लम्बी-लम्बी किरणें चारों दिशाओं में पड़ रही थीं। कवि कल्पना करता है कि वे मानो स्थल-कमलिनियां हों। लक्ष्मी कमलिनियों में निवास करती है। लड़की को कमलिनियां लक्ष्मी समझ बैठीं और उसके पीछे-पीछे चलने लगीं। तिमिरमिव वमन्ती—चन्द्रमा अन्धकार को पी-जाया करता है। उसका मुख चन्द्रमा सा था। अत्यधिक पान चबाते रहने से उसके ओठों पर जो लाल-काली रेखा पड़ गई थी वह संध्या-लालिमा-मिश्रित अंधकार जैसी लग रही थी।

हिन्दी—रही थी मानो शरद् ऋतु का गगन हो, जो जगमगाते हुए मोटे-मोटे तारा गणों से चित्र-विचित्र (और) मेघ के हल्के आवरण से आच्छादित रहता है, जो पूर्ण कलशों से—जैसे कुचों के ऊपर गले से वक्षःस्थल तक लटकती हुई रत्नों की माला पहने हुए ऐसी लग रही थी मानो किसी भाग्यशाली के हृदय में प्रवेशार्थ बाँधी हुई लाल-हरे किरणों-जैसे किसलयों की वन्दनमाल हो, जो हाथ में पहने हुए, मरकतमणि के मगरमच्छाकार आधार वाले एक-एक सोने के कंगन की दिगन्तों को हरा बना देने वाली किरणावलियों से ऐसी लग रही थी मानों भ्रान्ति से लक्ष्मी समझकर स्थलकमलिनियां उसके पीछे-पीछे जा रही हों, जो अत्यधिक पान (चबाने) के कारण बनी कालिमा की रेखा से ऐसी लग रही थी मानो मुखरूपी चन्द्रमा द्वारा पिये हुए अन्धकार को सन्ध्याकालीन लालिमा-सहित उगल रही हो, जो खिले हुए कुवलयों-जैसी आंखों के प्रति कुतूहल के कारण बैठी हुई भ्रमर पंक्तियों के समूह से ऐसी लग रही थी मानो (उसने) नीली रेशमी जाली से आधा मुख ढक रखा हो, जो नील में रखने से नीले बने, मोर की गर्दन की तरह नीले-नीले बायें कान में पहने कुण्डल से ऐसी लग रही थी मानो काले मेघ के उमड़ पड़ने से बिजली चमक रही हो।

---

१. प्रवाल०।
२. खिति।

कल्पितेन बालिकायुगलेनाधोमुखेनालोकजलमिव सिञ्चन्तीव भुजलते, दक्षिणकर्णावतंसितया केतकीगर्भपलाशलेखया रजनिकरजिह्वालतयेव लावण्यलोभेन लिह्यमानकपोलतला, तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती, ललाटलासकस्य सीमन्तचुम्बिनश्चटुल[1] तिलकमणेरुदञ्चता चटुलेनांशुजालेन रक्तांशुकेनेव कृतशिरोवगुण्ठना, पृष्ठप्रेङ्खदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावचूलिनीव चूडामणिमकरिकासनाथा मकरकेतुकेतुपताकेव, कुलदेवतेव चन्द्रमसः, पुनःसञ्जीवनौषधिरिव पुष्पधनुषः, वेलेव राग-

टीका—वकुलः=पुष्पवृक्षविशेषः मौलसरी इति भाषायां प्रसिद्धः तस्य फलम् अनुकुर्वन्तीति ताभिः=मुक्ताभिः=मौक्तिकैः कल्पितेन=निर्मितेन बालिकयोः=गोलाकार-कर्णाभरण-विशेषयोः 'बालियां' इति भाषायां प्रसिद्धयोः ['बालिका। बालायां बालुकापत्रकाहलाकर्णभूषणे' इति मेदिनी] युगलेन=द्वयेन अधः=नीचैः स्कन्धौ प्रति इति यावत् मुखम्=अग्रं यस्य तेन आलोकः=दीप्तिः एव जलं तं वर्षतीति तेन सिञ्चतीव। भुजे एव लते। बालिकाद्वयम् अपि अधोमुखीयलताद्वयं सिञ्चति। अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षालङ्कारः। दक्षिणे कर्णे अवतंसितया=कर्णाभरणीकृतया, केतक्याः=पुष्पवृक्षविशेषस्य "केवड़ा" इति भाषायां प्रसिद्धस्य यः गर्भः=अभ्यन्तरस्य पलाशः=पत्रं तस्य लेखया रेखया अर्थात् रेखाकारलम्बपत्रेण, रजनिं करोतीति रजनिकरः=चन्द्रः तस्य जिह्वालता इवेत्युपमितसमु० तया इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य लोभेन=लिप्सया, लिह्यमानम्=आस्वाद्यमानं कपोल-तल=गण्डस्थलं यस्याः तथाभूता। तमालवत् श्यामलेन=कृष्णवर्णेन मृगमदः=कस्तूरी, तस्य यः आमोदः=परिमलः तं निष्यन्दति=स्रवतीति तेन, तिलकस्य कस्तूरीद्रवकृतस्य। मनोभवस्य=मदनस्य=सर्वस्वं=स्वं स्वं समुदायधनमित्यर्थः वदनं=मुखम्, उद्वहन्ती=बिभ्रती। ललाटे=भाले लासकस्य=विलसतः नृत्यतः लोलस्येत्यर्थः सीमन्तः=केशेषु वर्त्म, केशविभाजनरेखेत्यर्थः 'मांग' इति भाषायां प्रसिद्धः तं चुम्बति=स्पृशतीति तस्य, चटुलः=लोलः यः तिलक-मणिः=तिलकाकृतिः पद्मरागः तस्य, उदञ्चता=उद्गच्छता चटुलेन=स्फुरता अंशूनां=रश्मीनां जालेन=समूहेन रक्तांशुकेन=रक्तवर्णसूक्ष्मवसनेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कृतं शिरसः अवगुण्ठनम्=आच्छादनं यया सा। पृष्ठे=पृष्ठभागे प्रेङ्खन्=लम्बमानः इतस्ततः प्रचलन्, अनादरेण=अनवधानेन सप्रमादमित्यर्थः यत् संयमनं=बन्धनं तेन शिथिलः=श्लथः जूटिकाबन्धः=केशपाशः 'जूड़ा' इति भाषायां प्रसिद्धः यस्याः सा। नीलं=श्यामं चामरम् एव अवचूलं=चिह्नं ध्वजस्याधोभागे बद्धं शोभार्थं चामरवसनादिकम् अस्याः अस्तीति तादृशी इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, चूडामणिः यः मकरिका अर्थात् मकरमत्स्याकारशिरोभूषणं तया सनाथा=युक्ता मकरकेतोः=कामस्य केतुपताका=ध्वजपताका। कुलदेवता=कुलाधिष्ठात्री देवी

टिप्पणी—सिञ्चतीव···भुजलते—बालियों में जड़े मोटे-मोटे मोतियों की धवल छटा उसके कन्धों पर पड़ रही थी, जिनपर कोमल भुजायें थीं। चमक मानो पानी हो और भुजायें मानो मृदुलतायें हों जिन्हें वह सींच रही हो। दो बालिकायें (कन्यकायें) भी नीचे मुंह किए लताओं को सींचा करती ही हैं। रजनिकर-जिह्वयेव—उसका मुख बहुत सुन्दर था, चन्द्रमा को लोभ हो गया कि वह कहीं से और सौन्दर्य लाये। इसलिए केतकी की लम्बी-सी पत्रलेखा चांद की लपलपाती जीभ बन गई और उससे वह मालती के कपोलों का सौन्दर्य चाटने लगा। मुद्रितमिव—उसका मुख कामदेव का सर्वस्व था अर्थात् अपने सुन्दर मुख से वह हरेक के हृदय में काम भड़का देती थी। उसके मुख पर कस्तूरी बिन्दी मानो मुद्राछाप (seal) थी। सर्वस्व-खजाना-सीलमोहर लगाकर ही रखा जाता है। पृष्ठप्रेङ्खत्—उसने ढीले ढाले बांधे बाल पीठ पर छोड़ रखे थे और उनके ऊपर मकराकार शिरोभूषण भी बांध रखा था।

हिन्दी—जो मौलसरी के फलों जैसी तीन-तीन मोतियों की बनी नीचे लटकी एवं आलोक-रूपी जल बरसाती हुई कान की दो बालियों से ऐसी लग रही थी मानो अतिकोमल भुज-रूपी लताओं को खींच रही हो, जो दायें कान में आभरणरूप धारण की हुई केवड़े की भीतरी लंबी पत्ती से ऐसी लग रही थी मानो सौन्दर्य के लोभ से चांद की जीभ द्वारा उसका कपोल-स्थल चाटा जा रहा हो; जो तमाल-वृक्ष की तरह काली कस्तूरी की सुगन्धि बहाने वाली तिलक-बिन्दी से मोहर-लगे-जैसे कामदेव के सर्वस्व-(भूत) मुख को धारण कर रही थी, जो माथे पर लटकती, मांग पर स्थित, हिलती हुई तिलकाकार (पद्मराग) मणि की ऊपर उठती हुई झिलमिलाती किरणावली से ऐसी लग रही थी मानो (उसने) लाल रेशमी वस्त्र से शिर ढक रखा हो, जो पीठ पर लटकता हुआ लापरवाही से ढीला-ढाला बांधा जूड़ा रखे हुए (और) मगरमच्छ के आकार की चूड़ामणि पहने ऐसी लग रही थी मानो कामदेव की ध्वज-पताका

१. चटुलातिलक।

सागरस्य, ज्योत्स्नेव यौवनचन्द्रोदयस्य, महानदीव रतिरसामृतस्य, कुसुमोद्गतिरिव सुरततरोः, बालविद्येव वैदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य, बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानाम्, मनस्वितेव महानुभावतायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया पाटलाधरया कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया कमलकोमलकरया बकुलसुरभिनिःश्वसितया चम्पकावदातया कुसुममय्येव ताम्बूलकरङ्कवाहिन्या

टीका—चन्द्रमसः=चन्द्रस्य इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । पुनः सञ्जीवनं=जीवन-प्राप्तिः तस्य ओषधिम् इव, पुष्पाणि एव धनुः यस्य कामदेवस्येत्यर्थः । राग-सागरस्य=प्रेमसमुद्रस्य वेला=कूलम् इव अर्थात् यथा समुद्रः वेलां न अतिक्रामति एवमेव मालतीं दृष्ट्वा तामतिक्रम्य अन्यत्र प्रेम कर्तुं न कोऽपि प्रभवति । अथवा वेला=क्षुब्धसमुद्रस्य महातरंगः 'ज्वार भाटा' इति भाषायां प्रसिद्धा ('अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला' इत्यमरः) सा इव अर्थात् यथा महातरङ्गेण समुद्रः क्षुब्धो जायते तथैव साऽपि स्वसौन्दर्यातिशयेन कामविषयकक्षोभं जनयतिस्म । यौवनम् एव चन्द्रोदयः तस्य ज्योत्स्ना चन्द्रिका इव अर्थात् यथा चन्द्रोदये चन्द्रिका सर्वमपि परार्थ-जातं व्याप्नोति तथैव इयमपि स्व-सौन्दर्य-पूर्ण-यौवनेन सर्वमपि स्ववशे करोतिस्म । रति-रसः=प्रेम-रसः एव अमृतं तस्य महानदी=नद इव अर्थात् यथा नद्यां विपुलं जलं भवति एवमेव तस्याम् अपि अमृतमयं प्रेम वर्तते । सुरतं=सम्भोगः=एव तरुः=वृक्षः तस्य कुसुमोद्गतिः=पुष्पोद्गम इव, वृक्षो हि पुष्पोद्गमे पूर्णतां प्राप्नोति । उपरि सर्वत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षालङ्कारः । वैदग्ध्यस्य=नैपुण्यस्य बालविद्या बाल्यकालगृहीतं ज्ञानम् इव, अर्थात् बाल्यकाले गृहीतं यथा कश्चिन्न विस्मरति तथैव नैपुण्यं न कदापि तां मुञ्चति । कान्तेः=सौन्दर्यस्य कौमुदी ज्योत्स्ना इव । धृतिः=धारण-शक्तिः इव धैर्यस्य अर्थात् सा एवं धीरा आसीत् यत् स्वयं धीरताऽपि तस्याः सकाशात् धैर्यं ग्रहीतुमिच्छति स्म । गौरवस्य=महत्तायाः प्रतिष्ठायाः वा गुरुशाला=गुरु-गृहम् इव । विनयस्य=नम्रतायाः बीज-भूमिः=बीज-क्षेत्रम् इव अर्थात् सा नम्रतायाः—प्रेरणास्रोत आसीत् । गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनां गोष्ठी=सभा इव अर्थात् गुणानां सा समुदाय इव आसीत् । महानुभावतायाः=महाशयतायाः मनस्विता=उच्चमनस्कता इव अर्थात् महानुभावा अपि तस्याः सकाशात् मनस्वितां शिक्षन्तेस्म । तारुण्यस्य=यौवनस्य तृप्तिः=सन्तुष्टिः इव अर्थात् तारुण्यं तां प्राप्य परां सन्तुष्टिं लेभे, अन्यम् अन्यां वा न लभतेस्म या सौन्दर्यातिशये ताम् अतिशयीत । उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । कुवलयस्य=नीलोत्पलस्य दलानि=पत्राणि तेषां दाम=माला तद्वत् लोचने=नेत्रे यस्याः तया । तृतीयान्तानि पदानि 'ताम्बूलकरङ्कवाहिन्या' इत्यस्य विशेषणानि । पाटलः=रक्तः अधरः ओष्ठः यस्याः तया । कुन्दस्य=एतन्नामकपुष्पविशेषस्य कुड्मलवत् कलिकावत् स्फुटाः=उज्ज्वलाः दशनाः=दन्ताः यस्याः तया । शिरीषस्य=पुष्पविशेषस्य मालावत् सुकुमारं=सुकोमलं भुजयोः युगलं=द्वयं यस्याः तया । कमलवत् कोमलौ=मृदू करौ हस्तौ यस्याः तया । बकुलवत्=एतन्नामकपुष्पविशेषवत् सुरभि=सुगन्धितं निःश्वसितं=श्वासोच्छ्वासौ यस्याः तया । चम्पकवत्=एतन्नामकपुष्पविशेषवत् अवदातया=सितपीतया ('अवदातः सिते पीते' इत्यमरः) कुसुमानि एव कुसुममयी तया [स्वरूपार्थे मयट्] ताम्बूलानां='पान' इति भाषायां प्रसिद्धानां पत्र-विशेषाणां करङ्कं=पात्र वहतीति वाहिनी तया । महत्=प्रमाणं=परिमाणं यस्य तथाभूतः यः अश्वतरः=अश्वायां गर्दभेन जनितः=

टिप्पणी—इस पर कवि कल्पना करता है कि मानो वह कामदेव का झण्डा हो जिसपर मकर रहता है और सजाने के लिए चामर बंधा रहता है। पीठ पर लटकते हुए बाल झंडे पर नीचे की ओर बंधे काले रंग के चामर का काम दे रहे थे।

हिन्दी—हो जिसके नीचे चामर-चिह्न है, जो चन्द्रमा की कुल-देवता जैसी, कामदेव को पुनर्जीवित करने की औषधि-जैसी, प्रेम-सागर के ज्वारभाटा-जैसी, यौवन-रूपी चन्द्रोदय की चांदनी-जैसी, प्रेम-रस-रूपी अमृत की महानदी-जैसी, सम्भोग-रूपी वृक्ष के पुष्पोद्गम-जैसी, निपुणता की बाल्य-काल में पढ़ी विद्या-जैसी, सौन्दर्य की ज्योत्स्ना-जैसी, धैर्य की धृति-जैसी, गौरव के गुरु-गृह-जैसी, नम्रता की बीज-भूमि-जैसी, गुणों की सभा-जैसी, महानुभावता की मनस्विता-जैसी और यौवन की तृप्ति-जैसी थी, और जिसके पीछे-पीछे नीलोत्पल की पंखुड़ियों की माला की तरह नेत्र, पाटलपुष्प की तरह अधर, कुन्दपुष्प की कलियों की तरह उज्ज्वल दांत, शिरीष-पुष्प की माला की तरह दो सुकुमार भुजाओं, कमल की तरह कोमल हाथों (एवं) मौलसरी की तरह सुगन्धित निःश्वास वाली, चम्पा के फूल की तरह गौर-पीत, पुष्प-रूपिणी-जैसी, बड़े ऊंचे खच्चर पर चढ़ी पान-दान ले जाने वाली नौकरानी आ रही थी और दधीच का

महाप्रमाणाश्वतराश्वतरारूढयानुगम्यमाना, [illegible] चप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवोत्कलिकाभिः, आलिङ्गितेवोत्कण्ठया, अन्तःप्रवेशितेव हृदयेन, स्नपितेवानन्दाश्रुभिः, विलिप्तेव[1] स्मितेन, वीजितेवोच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा, अभ्यर्चितेव वदनपुण्डरीकेण, सखीकृतेवाशया सविधमुपययौ। अवतीर्य च तुरगाद्दूरादेवावनतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्। आलिङ्गिता च ताभ्यां सविनयमुपाविशत्। सप्रश्रयं ताभ्यां सम्भाषिता च पुण्यभाजमात्मानममन्यत। अकथयच्च दधीचसन्दिष्टं शिरसि विनिहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्। अगृह्णाच्चाकारतः प्रभृत्यग्राम्यतया तैस्तैरपि पेशलैरालापैः सावित्रीसरस्वत्योर्मनसी।

क्रमेण चातीते मध्यन्दिनसमये शोणमवतीर्णायां सावित्र्यां स्नातुमुत्सारितपरिजना साकूता मालती कुसुमप्रस्तरशायिनीं समुपसृत्य सरस्वतीमाबभाषे—'देवि, विज्ञप्यं नः किञ्चिदस्ति रहसि। अतो मुहूर्तमवधानदानेन प्रसादं

टीका—अश्वाकारपशुविशेषः 'खच्चर' इति भाषायां प्रसिद्धः तम् आरूढया। कतिपये=केचित् परिचारकाः=भृत्याः एव परिकरः=परिवारः सहचारिवर्ग इत्यर्थः यस्याः सा। मालती=दधीचस्य दूती, समदृश्यत=दृष्टिपथमागता। दधीचस्य सरस्वतीं प्रति प्रेम्णा=प्रणयेन, सरस्वत्याः मनोरथैः अभिलाषैः लुण्ठिता=अपहृता, अर्थात् यद्यपि मालती दूरे आसीत् तथाऽपि तस्याः मुखाकृत्या सरस्वती ज्ञातवती यत् सा किं कथयिष्यति, दधीचस्य प्रेमसन्देशम् आनेष्यतीति यावत्, अतएव सरस्वती-मनोरथा मालतीं लुण्ठितवन्तः। कुतूहलेन=कौतुकेन आकृष्टा इव, उत्कलिकाभिः=औत्सुक्यैः ['उत्कण्ठोत्कलिके समे इत्यमरः] प्रत्युद्गता=अग्रे गत्वा कृत-स्वागता इव। अर्थात् सरस्वत्याः समुत्सुकं हृदयं संदेशं ज्ञातुं मालत्याः सकाशम् अग्रेगतमिव। उत्कण्ठया=मिलन-लालसया आलिङ्गिता=आश्लिष्टा इव। हृदयेन अन्तः प्रवेशिता=कारितान्तःप्रवेशा इव, स्नपिता=कारितस्नाना इव, स्मितेन=स्मयेन विलिप्ता=कृतचन्दनलेपा इव। उच्छ्वसितैः=निःश्वासैः वीजिता=कृतवीजना इव। चक्षुषा आच्छादिता=आवृता इव। वदनं=मुखम् एव पुण्डरीकं=कमलं तेन अभ्यर्चिता पूजिता इव। आशया सखीकृता=सहचरीकृता इव। अत्र सर्वत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः। सविधं=समीपम् उपाययौ=उपागच्छत्। तुरगात् अश्वात् अवतीर्य=नीचैः आगत्य दूरात् एव अवनतेन=निम्नीकृतेन मूर्ध्ना=शिरसा। आलिङ्गिता=आश्लिष्टा। प्रश्रयेण=विनयेन सहितं यथा स्यात्तथा सम्भाषिता=कृतसंलापा, पुण्यभाजम् पुण्यवन्तं भाग्यवन्तमित्यर्थः। अमन्यत=अवगतवती। दधीचेनसंदिष्टं=कथितमित्यर्थः। विनिहितेन स्थापितेन अञ्जलिना=कर-पुटेन अगृह्णात्=आकृष्टवती, आकारः=आकृतिः ततः प्रभृति=आरभ्य, अग्राम्यतया प्राकृतजनसुलभग्राम्यताराहित्येन शिष्टतया इत्यर्थः। पेशलैः=मृदुभिः, आलापैः=संलापैः तयोः मनसी=हृदये अगृह्णात् इत्यस्य कर्म। अतीते=व्यतीते माध्यन्दिनस्य=मध्याह्नस्य समये, अवतीर्णायां=गतायां, स्नातुं=स्नानं कर्तुम्, उत्सारितः=अपसारितः परिजनः=भृत्यवर्गः यया तथाभूता, साकूता=आकूतम्=अभिप्रायः तेन सह वर्तमाना कुसुमानां प्रस्तरे=शयने शेते इति शायिनी ताम्, समुपसृत्य=समीपे गत्वा आबभाषे=अभाषत। विज्ञप्यं निवेदनीयम्, रहसि=एकान्ते, अवधानं=ध्यानं तस्य दानेन=प्रदानेन, प्रसादम्,=अनुग्रहम्,

हिन्दी—प्रेम होने के कारण दूर से ही सरस्वती के मनोरथों से लूटी हुई जैसी, कुतूहल से खींची-हुई जैसी, उत्सुकता से अगवानी की हुई जैसी, मिलन-लालसा से गले लगाई-जैसी, हृदय से भीतर प्रविष्ट कराई हुई जैसी, (आनन्द के) आँसुओं से नहलाई-जैसी, मुस्कुराहट से लिपी-जैसी, आहों से वीजित-जैसी, आँख से आच्छादित-जैसी, मुख-रूप कमल से पूजित-जैसी, आशा से सखी-बनाई-जैसी (मालती) समीप में आ गई और घोड़े से उतर कर उसने दूर से झुकाये हुए सिर से प्रणाम किया। दोनों के द्वारा गले लगाई हुई वह नम्रता के साथ बैठ गई और दोनों के द्वारा विनयपूर्वक किये गए सम्भाषण से उसने अपने को भाग्यशाली समझा और सिर पर अंजलि बाँधे दधीच का कहा हुआ नमस्कार कहा। वह आकृति से लेकर शिष्टतापूर्वक (किये गये) उन-उन मधुर वार्तालापों तक (सभी बातों) से सावित्री और सरस्वती—दोनों का हृदय ले बैठी। क्रम से मध्याह्न-समय बीत जाने पर (और) सावित्री के स्नान करने के लिए शोण-नदी पर उतर जाने पर नौकर-चाकरों को पीछे हटाये हुए, साभिप्राय मालती कुसुम-शय्या पर लेटी सरस्वती के पास जाकर बोली—'देवी, एकान्त में कुछ निवेदन करना है' इसलिए

---

१. विलुप्तेव।

क्रियमाणमिच्छामि' इति । सरस्वती [illegible]शङ्किनी किं वक्ष्यतीति स्तनविनिहितवामकरनखकिरणदन्तुरित-मुद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरमिव हृदयमुत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन सञ्छादयन्ती, गलतावतंसपल्लवेन श्रोतुं श्रवणेनेव धावमानेनानवरतश्वाससन्दोहदोलायितां जीविताशामिव समासन्नलतामवलम्बमाना, समुत्फुल्लस्य मुखशशिनो लावण्य-प्रवाहेण शृङ्गाररसेनेव प्लावयन्ती जीवलोकम्, शयनकुसुमपरिमललग्नैर्मधुकरकदम्बकैर्मदनानलदाहश्यामलैर्मनोरथैरिव

टीका—क्रियमाणम् = अनुष्ठीयमानम् इच्छामि । दधीचस्य संदेशं = वाचिकम् आशंकते = मनसिकरोतीति आशङ्किनी, वक्ष्यति = कथयिष्यति इति = कारणात्, स्तने = कुचे विनिहितः = स्थापितः यः वामः करः = हस्तः तस्य नखानां किरणैः = अंशुभिः दन्तुरितम् = उन्नतदन्तं रोमाञ्चितमित्यर्थः, उद्भिद्यमानाः = प्रस्फुटन्तः कुतूहलस्य = कौतुकस्य अङ्कुराणां = प्ररोहाणां निकराः = समूहाः यस्मात् तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । हृदयम्, उत्तरीयं प्रावारः यत् दुकूलं = सूक्ष्मवसनं वल्कलं 'दुकूलं सूक्ष्मवसनम्' इति मेदिनी । अर्थात् वल्कल-निर्मित-सूक्ष्मवसनात्मकमुत्तरीयं तस्य एकदेशेन = एकभागेन सञ्छादयन्ती = पिदधती । गलता—पतता, अवतंसः = कर्णाभरणं तद्रूपं यत् पल्लवं = किसलयं, श्रोतुम् = आकर्णयितुं श्रोत्रेण = कर्णेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, धावमानेन = त्वरया गच्छता (पल्लवेन) उपलक्षिता [उपलक्षणे तृतीया] । अनवरत०—अनवरतः = निरन्तरः श्वासानां = श्वासोच्छ्वासानां या दोला = प्रेङ्खा, ताम् आयिता = [√इ + णिच् क्तः] प्रापिता ताम् दोलारोपितामित्यर्थः, जीवितस्य = जीवनस्य प्राणानामित्यर्थः आशाम् इवेत्यु-त्प्रेक्षायाम्, समासन्ना-समीपवर्तिनी या लता = वल्ली ताम् अवलम्बमाना = आश्रयन्ती । समुत्फुल्लस्य = विकसितस्य, मुखं शशी इवेत्युपमिततत्पु० तस्य लावण्यस्य = सौन्दर्यस्य प्रवाहेण = स्रोतसा शृङ्गार-रसेन = प्रेमात्मकेन एतन्नामक-रसविशेषेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, जीवलोकं = प्राणि-वर्गं संसारमित्यर्थः । प्लावयन्ती = परिवाहयन्ती । शयने शय्यायां यानि कुसुमानि शयनभूतानि कुसुमानीत्यर्थः तेषां परिमलेन लग्नैः = समासक्तैः आकृष्टैरित्यर्थः, मधुकराणां = भ्रमराणां कदम्बकैः = समूहैः, मदनः कामः एव अनलः = अग्निः तेन यः दाहः = प्लोषः तेन श्यामलैः = कृष्णवर्णैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निर्गत्य = निःसृत्य मूर्तैः = मूर्तिमद्भिः साकारैरिति यावत् उत्क्षिप्यमाणा = उत्थाप्यमाना, कुसुम-

टिप्पणी—हृदयं...सञ्छादयन्ती—सरस्वती के हृदय को सन्देश सुनने का बड़ा कुतूहल था । कवि कल्पना करता है कि उसके वक्ष पर पड़ी नखों की किरणावली मानो हृदय से फूटते हुए कुतूहल के अङ्कुर हों । **गलता... पल्लवेन**—हड़बड़ी में सरस्वती का कान में पहना पल्लव खिसक पड़ा । मानो वह उसका कान हो जो दधीच का सन्देश सुनने के लिए आगे दौड़ बैठा है ।

जीविताशामिव—सरस्वती जिस समीपवर्ती लता का सहारा ले रही थी वह उसकी आहों की हवा से इधर-उधर हिल-डुल रही थी । कवि कल्पना करता है मानो वह 'जीविताशा' हो । उसके जीवन की आशा भी दोलायमान थी, क्योंकि वह लम्बी-लम्बी आहें खींच रही थी । ऐसा प्रतीत होता था कि उसके क्षुब्ध शरीर से न जाने कब प्राण निकलने वाले हैं । **मनोरथैरिव**—तात्पर्य यह है कि जिस कुसुम-शयन से वह उठी उस पर भ्रमर बैठे हुए थे । कवि कल्पना करता है कि मानो काले भ्रमर दधीच से समागम करने के लिए उसके मनोरथ हों जो साकार रूप में निकलकर उसे उठा रहे हैं । कामानल से जलाये जाने से वे मनोरथ काले हो गए हैं क्योंकि जलाये जाने पर सभी काले हो जाते हैं ।

हिन्दी—थोड़ी देर के लिए ध्यान-दान द्वारा किया जाने वाला अनुग्रह चाहती हूँ' । सरस्वती—जो दधीच के सन्देश की आशंका कर रही थी, जो 'यह क्या कहेगी' इस कारण फूट रहे कुतूहल के अङ्कुर समूह-जैसे लग रहे स्तन पर रखे बायें हाथ के नखों की किरणों से दन्तुरित हुए हृदय को वल्कल की बनी महीन चादर के एक कोने से ढक रही थी, जो गिरते हुए अवतंस-रूप पल्लव से ऐसी लग रही थी मानो (दधीच का सन्देश) सुनने के लिए (उसका) कान दौड़ा जा रहा हो, जो जीवन की आशा-जैसी लग रही, लगातार आहों के समूह से हिल-डुल रही समीपवर्ती लता का सहारा ले रही थी, जो चाँद-से खिले मुख के सौन्दर्य-प्रवाह से शृङ्गार-रस (की बाढ़) से जैसे संसार को डुबो रही थी, जो पुष्प-शयन की सुगन्धि के कारण लगे हुए भ्रमरसमूहों से कामाग्नि द्वारा जलाये जाने के कारण काले पड़े साकार हो निकलकर मनोरथों से-जैसे उठायी जा रही थी, और जिसे कामदेव के बाणों (के प्रहार) से ज्वर हो

निर्गत्य मूर्तेरुत्क्षिप्यमाणा, कुसुमशयनीयात्स्मरशरसञ्ज्वारिणी मन्दं मन्दमुदगात्। 'उपांशु कथय' इति कपोलतलप्रतिबिम्बितां लज्जयेव कर्णमूलं मालतीं प्रवेशयन्ती मधुरया गिरा सुधीरमुवाच—'सखि मालति किमयंमेवमभिदधासि। काहमवधानदानस्य शरीरस्य प्राणानां वा। सर्वस्याप्रार्थितोऽपि[1] प्रभवत्येवातिवेलं[2] चक्षुष्यो जनः। सा न काचिद्या न भवसि मे स्वसा सखी प्रणयिनी प्राणसमा च। नियुज्यतां यावतः कार्यस्य क्षमं क्षोदीयसो गरीयसो वा शरीरकमिदम्। अनवस्करमाश्रवं मे त्वयि हृदयम्। प्रीत्या प्रतिसरा[3] विधेयास्मि ते। व्यावृणु वरवर्णिनि विवक्षितम्' इति। सा त्ववादीत्—'देवि, जानास्येव माधुर्यं विषयाणाम्, लोलुपतां चेन्द्रियग्रामस्य, उन्मादितां च नवयौवनस्य, पारिप्लवतां च मनसः। प्रख्यातैव मन्मथस्य दुर्निवारता। अतो न मामुपालम्भेनोपस्थातुमर्हसि। न च बालिशता चपलता चारणता वा वाचालतायाः कारणम्। न किंचिन्न कारयत्यसाधारणा स्वामिभक्तिः। सा त्वं देवि यदैव

टीका—शयनीयात्=पुष्पशय्यातः, स्मरः=कामः तस्य शरैः=बाणैः=संज्वरः=सन्तापः अस्याः अस्तीति संज्वरिणी, मन्दं-मन्दं=शनैः-शनैः उदगात्=उदतिष्ठत्। उपांशुः=रहः। कपोलयोः—तले=स्थले प्रतिबिम्बितां=प्रतिफलितां लज्जया=त्रपया इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कर्णयोः मूले समीपे इत्यर्थः। प्रवेशयन्ती=आनयन्तीत्यर्थः। गिरा=वाण्या, सुधीरं=सुगम्भीरं यथा स्यात्तथा अभिदधासि=कथयसि। अवधानदानस्य=ध्यान-प्रदानस्य अप्रार्थितः=अविद्यमानं प्रार्थितं=प्रार्थना (भावे क्तः) यस्य तथाभूतः अपि प्रार्थनां विना अपि इत्यर्थः। प्रभवति ईष्टे स्वामी अस्तीत्यर्थः, अतिवेलम्=अतिक्रान्तं=लङ्घितं वेलां मर्यादां यथा स्यात्तथा=अत्यर्थम्, चक्षुष्यः=चक्षुषि साधुः इति [चक्षुष्+यत्] प्रियदर्शन इत्यर्थः। स्वसा=भगिनी, प्रणयिनी=प्रिया, प्राणैः समा=तुल्या। नियुज्यतां=नियुक्तं क्रियताम् क्षमं=समर्थम्, अतिशयेन क्षुद्रम् इति [क्षुद्र+इयसुन्) अतिक्षुद्रम्, अतिशयेन गुरु इति गरीयः तस्य कार्यस्य, शरीरकम्=कुत्सितं शरीरम् इति [शरीर+क ('कुत्सिते' पा० ५।३।७४] अनवस्करम् न अवस्करः=गुह्यं गुप्तमिति यावत् यस्य तथाभूतम् रहस्यरहितमित्यर्थः, अथवा अवस्करः=मलं तद्रहितं विशुद्धमित्यर्थः, आश्रवम् आशृणोति वचनमिति [आ√श्रु+अच्] आज्ञाकारि इत्यर्थः ('वचने स्थित आश्रवः' इत्यमरः] प्रतिसरा=नियोज्या=सेविकेत्यर्थः ["प्रतिसरश्चमूपृष्ठे नियोज्य—करसूत्रयोः" ! इति हेमः] विधेया=विधातुं शक्या इति [वि+√धा+यत्] वचने स्थिता अधीनेत्यर्थः। व्यावृणु=[वि+आ√वृ+लोट् मध्य० पु० एकव०] प्रकाशय स्पष्टी कुरु इत्यर्थः। वरवर्णिनि वरः=सुन्दरः वर्णः=रूपं यस्याः तथाभूते। वरं=पाणिग्रहीतारं वर्णयति=निरूपयतीति तत्सम्बुद्धौ इति व्यङ्ग्यार्थः। विवक्षितम्=वक्तुम् इष्टम् इति [√वच्+सन्+क्तः] विषयाणां=भोग्यपदार्थानाम्। लोलुपताम्=उत्कटेच्छाम्। उन्मादयति=उन्मत्तीकरोतीति उन्मादि तस्य भावः तत्ता ताम्, नव-यौवनस्य=अभिनव-तारुण्यस्य। पारिप्लवं=चञ्चलता तस्य भावः तत्ता ताम् ['चञ्चलं तरलञ्चैव पारिप्लव-परिप्लवे' इत्यमरः]। मन्मथस्य=कामस्य दुर्निवारता=दुःखेन निवारयितुं योग्यः दुर्निवारः तस्य भावः तत्ता। उपालम्भेन=निन्दया, आक्षेपेण बालिशता=मूर्खता, चारणता=चारयति=प्रचारयति नृत्यगीतादि-विद्यां तज्जन्यकीर्तिं वा इति [√चर्+णिच्+ल्युट्] नट-विशेषः कुशीलव इत्यर्थः ["चारणस्तु कुशीलवः" इत्यमरः] तस्य भावः तत्ता धूर्तता छद्मचारिता इति यावत्। वाचालता=बहुभाषते इति [वाच्+आलच् वाचाला 'आलजाटचौ बहुभाषिणि'

हिन्दी—रखा था—धीरे-धीरे कुसुम-शयन से उठ बैठी। 'एकान्त में कहो'—इस तरह कपोलस्थल पर प्रतिबिम्बित हुई मालती को लज्जा से जैसे कान के पास बुलाती हुई मधुर वाणी से गम्भीरतापूर्वक बोली—"सखी मालती! ऐसा क्यों कहती हो? ध्यान देने वाली, शरीर वाली अथवा प्राणों वाली मैं कौन होती हूँ? आँखों का अतिप्रिय व्यक्ति प्रार्थना के बिना भी सब कुछ का मालिक है। ऐसी क्या जो तुम (मेरी) न हो, (तुम) मेरी बहन (हो), प्रिय सखी हो, और प्राणों के बराबर हो। छोटे से छोटे अथवा बड़े से बड़े जितने कामों के योग्य यह तुच्छ शरीर है, (इसे) लगाओ। मेरे हृदय में दुराव छिपाव नहीं है—वह तेरे कहने में है। प्रेम के कारण मैं तेरी नौकरानी हूँ, तेरे अधीन हूँ। सुन्दर रूपवाली जो तुम बोलना चाहती हो, खुलकर बोलो"। वह बोली—"देवी! भोग्य पदार्थों की मधुरता इन्द्रिय-समूह की लोलुपता, नव यौवन की उन्मादकता और मन की चञ्चलता को तुम जानती ही हो। काम की दुर्निवारता प्रसिद्ध ही है, अतः तुम मुझे उलाहना नहीं दे सकती और मूर्खता, चपलता अथवा ठगी मेरी वाचालता का

---

१. अर्पितेऽपि। २. प्रभवत्येवातिपेशलः। ३. प्रतिसरास्मि ते।

दृष्टासि देवेन तत एवारभ्यास्य कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः, मलयमरुदुच्छ्वासहेतुः, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु, सन्तापः परमसुहृत्, प्रजागर आप्तः, मनोरथाः सर्वगताः, निःश्वासा विग्रहाग्रेसराः, मृत्युः पार्श्ववर्ती, रणरणकः सञ्चारकः, सङ्कल्पा बुद्ध्युपदेशवृद्धाः । किं वा विज्ञापयामि । अनुरूपो देव्या[1] इत्यात्मसम्भावना, शीलवानिति प्रक्रमविरुद्धम्, धीर इत्यवस्थाविपरीतम्, सुभग इति त्वदायत्तम्, स्थिरप्रीतिरिति निपुणोपक्षेपः, जानाति सेवितुमित्यस्वामिभावो-

---

टीका—पा० ५।२।१२५] तस्याः भावः तत्ता । कारयति=कर्तुं प्रेरयति, असाधारणा=अनन्या । देवेन=कुमार-दधीचेन । कामः गुरुः=आचार्यः, कामः तस्मै शिक्षां ददातीत्यर्थः । तस्य त्वयि गुरुः=महान् कामः=प्रेम इत्यर्थः । जीवितेशः=प्राणेशः अर्थात् अमृतमयकिरणैः काम-संतप्तं शीतलयति; जीवितेशः=मृत्युः अर्थात् चन्द्रं दृष्ट्वा स उद्दीप्त-कामो भवति, अतः चन्द्रः तस्य मृत्युमपि जनयेत् इत्यप्यर्थः । मलय-मरुत्=मलयाचल-पवनः उच्छ्वासस्य=समाश्वासस्य हेतुः अर्थात् मित्रम्; उच्छ्वासस्य=दीर्घ-निःश्वसितस्य हेतुः कारणम्, मलय-मरुत् हि काममुद्दीप्य कामिनि दीर्घनिःश्वासं जनयति इत्यपि अर्थः । आधयः=मनोव्यथाः अन्तरङ्गाः=विश्वसनीयव्यक्तयः तेषां, स्थानेषु स्थितौ अर्थात् आधयस्तस्य विश्वसनीय-मित्रस्थानीयाः सन्ति, आधय एव मित्राणि सन्तीति यावत्, अन्तरङ्ग-स्थानेषु=अन्तर्वर्तिषु हृदयादिमर्मस्थानेषु इत्यपि अर्थः । सन्तापः कामजनितदाहः परमसुहृत्=महामित्रम् अर्थात् मित्रवत् सहचरः, परम्=अत्यन्तं यथा स्यात्तया असून्=प्राणान् हरतीति परमसुहृत्=प्राणघातक इत्यपि अर्थः । प्रजागरः=निद्राक्षयः आप्तः=बन्धुः मित्रं वा, आप्तः=प्राप्त इत्यपि अर्थः । मनोरथाः=कामनाः सर्वगताः=चाराः, गुप्तचराः (त्वन्मिलनेच्छाः तं सर्वतः व्याप्नुवन्तीति अप्यर्थः । निःश्वासाः=दीर्घश्वासोच्छ्वासाः विग्रहे=युद्धे अग्रे सरन्तीति अग्रगामि-सैनिका इत्यर्थः, विग्रहस्य=शरीरस्य अग्रेसराः इत्यपि अर्थः अर्थात् शरीरस्याग्रे निःश्वासा निस्सरन्तिस्म । मृत्युः पार्श्ववर्ती=पार्श्ववर्ति-सेवक इत्यर्थः । पार्श्ववर्ती=सन्निकटः अर्थात् त्वदनवाप्तौ तस्य मृत्युः शीघ्रं भवि-ष्यतीत्यपि अर्थः । रणरणकः=उद्विग्नता, सञ्चारकः=प्रणधिः दूत इत्यर्थः (इतस्ततः) सञ्चारयतीति सञ्चारक इत्यपि अर्थः । सङ्कल्पाः=कल्पनाः बुद्धयै=मत्यै उपदेशे=उपदेशदाने वृद्धाः=गुरवः, बुद्धेः उपदेशेन=प्रेरणये-त्यर्थः; वृद्धाः=वृद्धिं प्राप्ताः इत्यपि अर्थः । यथा खलु कश्चित् वृद्धानाम् उपदेशं शृणोति तथा सोपि सङ्कल्पान् शृणोतिस्म । विज्ञापयामि=निवेदयामि । अनुरूपः=योग्यः, देव्याः=भवत्याः । आत्मनः=स्वस्य सम्भावना=सम्मानना स्वस्वामिमहत्त्वप्रख्यापनं तं प्रति पक्षपातः इत्यर्थः । शीलं सद्वृत्तम् अस्यास्तीति शीलवान्, प्रक्रमस्य=पूर्वोक्त-तदवस्था-प्रकरणस्य विरुद्धम्, शीलवान् हि क्षणदृष्ट-कुमारीमधिकृत्य एवं कामव्यथितो न भवति । सुभगः=सौभाग्यवान् स्वप्रणयिनी-प्रेमावाप्ति-भाग्यवान् इत्यर्थः त्वयि आयत्तम्=अधीनम् अवलम्बितमित्यर्थः । स्थिरा=दृढा प्रीतिः प्रेम यस्य तथाभूतः इति निपुणस्य=चतुरस्य उपक्षेपः=कथनमित्यर्थः । सेवितुं=सेवां कर्तुं जानाति इति न स्वामिभावस्य=स्वामित्वस्य उचितं=योग्यम् राजकुमारो हि सेवां कर्तुं न जानाति, स तु शासन-

टिप्पणी—विकीर्यमाण०—कामोद्रेक में होने वाले सात्त्विक भाव आठ बताए गए हैं—स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः । वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥ सरस्वती को स्वेद हो रहा था । पास में पंखा न होने से हाथ द्वारा ही वह अपने पसीजते कपोलस्थल पर पंखा कर रही थी । हाथ हिलाते हुए उसके उज्ज्वल नखों की किरणें इधर-उधर पड़ रही थीं जो चन्द्र कलायें-जैसी थीं । इस पर कवि कल्पना करता है कि मानो वह चन्द्रकलाओं के बने पंखे से हवा कर रही हो । **वेत्रलतामिव**—भीतर जाने से रोकने के लिए द्वार के आर-पार बाँस का डंडा रखा जाता है ।

हिन्दी—कारण नहीं है। ऐसी कुछ बात नहीं जो असाधारण स्वामी-भक्ति नहीं कराती। देवी ! वह जभी देव (दधीच) ने देखी, तभी से लेकर काम इसका गुरु है, चन्द्रमा, जीवितेश [प्राणेश, मृत्यु] है, मलय-पवन उच्छ्वास का कारण है, मनोव्यथायें अन्तरङ्ग स्थानीय हैं, सन्ताप महामित्र है, निद्रा-क्षय आप्त है, मनोरथ सर्वगत (गुप्तचर, व्याप्त) हैं, आहें विग्रह (युद्ध, शरीर) के अग्रसर हैं, मृत्यु पार्श्ववर्ती है, उद्वेग सञ्चारक (दूत, घुमाने वाला) है, संकल्प-विकल्प बुद्धि को उपदेश देने वाले वृद्ध हैं । अथवा क्या निवेदन करूँ । 'तुम्हारे योग्य हैं' यह (कहना) अपनी बड़ाई है, 'शीलवान हैं' यह प्रकरणविरुद्ध है, 'धीर हैं' यह अवस्था के विपरीत है, 'सौभाग्य शाली हैं' यह तुम पर निर्भर है, 'दृढ़ प्रेम है' यह

---

१. देव ।

चितम्, इच्छति दासभावमामरणादिति धूर्तालापः, भवनस्वामिनी भवसीत्युपप्रलोभनम्, पुण्यभागिनी भवति भर्तारं तादृशमिति स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य मृत्युरित्यप्रियम्, अगुणज्ञासीत्यधिक्षेपः, स्वप्नेऽस्य बहुशः कृतप्रसादासीत्यसाक्षिकम्, प्राणरक्षार्थमर्थयत इति कातरता, तत्रागम्यतामित्याज्ञा, वारितोऽपि बलादागच्छतीति परिभवः। तदेवमगोचरे गिरामसीति श्रुत्वा देवी प्रमाणम्' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत् ।

अथ सरस्वती प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा प्रत्यवादीत्—'अयि, न शक्नोमि बहु भाषितुम् । एषास्मि ते स्मितवादिनि वचसि स्थिता । गृह्यन्तामभी प्राणाः' इति । मालती तु 'यदाज्ञापयस्यति प्रसादः[1]' इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण ततार शोणम् । अगाच्च दधीचमानेतुं च्यवनाश्रमपदम् । इतरा तु सखीस्नेहेन सावित्रीमपि विदितवृत्तान्तामकरोत् । उत्कण्ठाभारभृता च ताम्यता चेतसा कल्पायितं कथंकथमपि दिवसशेषमनैषीत् । अस्तमुपगतवति

टीका—सेव कर्तुं जानाति । आमरणात्=मृत्यु-पर्यन्तं दासभावं=दास्यम् इच्छति इति धूर्तस्य=वञ्चकस्य आलापः =कथनम्, राजकुमारो हि भूत्वा स कथं दास्यं करिष्यति । भवनस्य=गृहस्य स्वामिनी=अधिष्ठात्री भवसि इति उपप्रलोभनम्=लोभप्रदर्शनम् । पुण्यं भजतीति पुण्यभागिनी=पुण्यवती । स्वामिनः=स्वप्रभोः कुमारस्येत्यर्थः पक्षपातः पक्षपातिता, स्नेहाधिक्यमित्यर्थः । तस्य मृत्युः=त्वामन्तरेण स मृत्युमवाप्स्यतीति, अप्रियम्=अशुभम् । गुणान् जानातीति गुणज्ञा न गुणज्ञा इति अगुणज्ञा=गुणानभिज्ञा । अधिक्षेपः=आक्षेपः । कृतः प्रसादः=अनुग्रहः यया तथाभूता । न साक्षी यस्य तथाभूतम् अर्थात् स त्वां बहुशः स्वप्ने पश्यति—अत्र कोऽपि साक्षी नास्ति स्वप्नानां व्यक्तिगतत्वात् । प्राणानां=स्वजीवनस्य रक्षार्थम् अर्थयते=प्रार्थनां करोति इति कातरता=कापुरुषता भीरुता इत्यर्थः । आज्ञा= आदेशः आदेशश्च प्रभुत्व-स्थापनां द्योतयति । वारितः=त्वया प्रतिषिद्धः अपि बलात्=हठात् आगच्छतीति परिभवः =अपमानः तवेति शेषः । गिरां=वाचाम् अगोचरे=अविषये असि मालत्या अयमाशयः यत् 'मम पार्श्वे शब्दाः न सन्ति यैः अहं त्वद्विषयकं तस्य प्रणयातिरेकं प्रतिपादयेयम्, नापि एतद् वक्तुं शक्नोमि त्वयापि तमुद्दिश्य किं कर्तव्यमिति । देवी=भवती प्रमाणम्=अर्थात् अत्र मया किं कर्तव्यम्—इति आदिशतु । अभिधाय कथयित्वा, तूष्णीम् अभूत् मौनमाकलयाञ्चकार ।

प्रीतिः=प्रसन्नता तया विस्फारितेन=उत्फुल्लेन चक्षुषा उपलक्षिता [उपलक्षणे तृतीया] प्रत्यवादीत्=प्रत्यवोचत् स्मितेन वदतीति स्मितवादिनी तत्सम्बुद्धौ । [पाठान्तरे] यत् आज्ञापयिष्यति=आज्ञां करिष्यति भवती, प्रसादः=कृपा अर्थात् यद् भवती आज्ञापयति तत् भवत्याः महती कृपा अस्ति । प्रहर्षः=अतिप्रसन्नता तत्परिवशा=तन्निर्भरा, प्रजविना=वेगवता । इतरा=सरस्वती, सख्याः स्नेहेन विदितः वृत्तान्तः=वृत्तं यया तथाभूताम् अकरोत् अर्थात् सरस्वती स्वसख्यै सर्वमपि वृत्तान्तम् अकथयत् । उत्कण्ठायाः=उत्सुकतायाः भारम्=आधिक्यं बिभर्ति=धारयतीति भृत् तेन, ताम्यता=परिक्लाम्यता खिन्नेनेत्यर्थः, कल्प इव आचरतीति [कल्प+क्यङ् कल्पायते निष्ठायां क्तः] अर्थात् दिवसशेषभागः कल्प इव व्यतीतः । कल्पे हि ब्रह्मणः एकदिनम् अर्थात् महायुगानाम् एकसहस्रं भवति । कृत-त्रेता-द्वापर

हिन्दी—चालाकी की बात है, 'सेवा करना जानते हैं' यह स्वामी-भाव के लिए अनुचित है, मृत्यु तक तुम्हारी दासता करना चाहते हैं' यह धूर्त का आलाप है, 'घर की स्वामिनी बन रही हो'—यह लोभ दिखाना है; 'वैसे पति को भाग्यवान् स्त्री पाती है'—यह (अपने) स्वामी का पक्षपात है, 'तुम उनकी मृत्यु हो'—यह बुरी बात है, 'तुम गुणों को नहीं जानती'—यह आक्षेप है, 'स्वप्न में तुम कितनी ही बार उनपर अनुग्रह किये हुए हो'—इसका साक्षी (कोई) नहीं है, 'प्राणरक्षा के लिए वे प्रार्थना करते हैं'—यह कायरता है, 'वहाँ आइए'—यह आदेश है, 'रोके हुए भी वे बलात् आते हैं'—यह अपमान है। इस प्रकार तुम वाणी से परे हो, यह सुनकर आप जैसी आज्ञा करें। इतना कहकर मालती चुप हो गई।

इसके बाद प्रसन्नता में आँखें फाड़े हुए सरस्वती बोली—'अरी, मैं अधिक नहीं बोल सकती हूँ। हे स्मितपूर्वक बोलने वाली मैं तेरे कहने पर हूँ। ये प्राण ले लो'। मालती—'जो आज्ञा करेंगी, आपकी कृपा है,' इतना कह कर खुशी में फूली न समाती हुई प्रणाम करके घोड़े से शोण पार कर गई और दधीच को लाने च्यवन के आश्रम-स्थान में चली गई किन्तु दूसरी (सरस्वती) ने सखी-स्नेह के कारण सावित्री को भी वृत्तान्त से अवगत करा दिया और उत्सुकता के भार से भरे हुए अतएव थके मन से दिन का शेष-भाग कल्प की तरह किसी न किसी तरह बिताया। भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर, अन्धकार के चुपके-चुपके उतर जाने पर (एवं) गुफा को छोड़ देने वाले केसरी

1. यथाज्ञापयिष्यथि प्रसादः ।

भगवति गभस्तिमति, स्तिमिततरमवतरति तमसि, प्रहसितामिव सितां दिशं पौरन्दरीं दरीमिव केसरिणि मुञ्चति चन्द्रमसि, सरस्वती शुचिनि चीनांशुकसुकुमारे तरङ्गिणि दुकूलकोमले शयन इव शोणसंकते समुपविष्टा स्वप्नकृत-प्रार्थनापादपतनलग्नां दधीचचरणनखचन्द्रिकामिव ललाटिकां दधाना, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बितेन 'चारुहासिनि, अयमसावाहृतो हृदयदयितो जनः' इति श्रवणसमीपवर्तिना निवेद्यमानमदनसन्देशेवेन्दुना, विकीर्यमाणनखकिरणचक्र-वालेन बालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव[1] करेण वीजयन्ती स्वेदिनं स्पष्टकपोलपट्टम्, 'अत्र दधीचादृते न केनचित्प्र-वेष्टव्यम्' इति तिरश्चीनं चित्तभुवा पातितां विलासवेत्रलतामिव बालमृणालिकामधिस्तनं स्तनयन्ती[2] कथमपि हृदयेन वहन्ती प्रतिपालयामास । आसीच्चास्या मनसि—'अहमपि नाम सरस्वती यत्रामुना मनोजन्मना जघन्येव[3] परवशी-

---

टीका—कलयः सम्भूय एको महायुग इत्युच्यते । अनैषीत्=अत्यवाहयत् । गभस्तयः=किरणाः अस्य सन्तीति गभ-स्तिमान्=सूर्यः तस्मिन् सरस्वती प्रतिपालयामास इत्यस्ति वाक्यम् । स्तिमिततरम्=अतिशयेन स्तिमितं निश्चलं यथा स्यात्तथा मन्दं-मन्दमित्यर्थः, अवतरति=प्रकटीभवतीत्यर्थः प्रहसितां=कृतहासाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सितां=श्वेताम्, पुरन्दरस्य=इन्द्रस्य इयम् इति पौरन्दरी ताम् दिशम्=दिशाम् पूर्वदिशामित्यर्थः; दरीं=कन्दरां केसरिणि=सिंहे, मुञ्चति=त्यजति सति । शुचिनि-श्वेते चीनांशुकवत्=चीनदेशोद्भवसूक्ष्मवसनवत् सुकुमारे=कोमले तरङ्गिणि=तरङ्गाः=ऊर्मयः अस्मिन् सन्तीति तस्मिन् जल-समये तरङ्गकृत-रेखे इत्यर्थः शोणस्य सैकते=वालुकामयप्रदेशे दुकूलेन=सूक्ष्मवसनेन कोमले शयने=शय्यायाम् इवेत्युपमायाम्, समुपविष्टा=स्थिता, स्वप्ने कृता (दधीचं प्रति) या प्रार्थना=मामनुगृहाणेत्यभ्यर्थनेत्यर्थः तस्यां यत् दधीचस्य पादयोः पतनं तस्मिन् लग्नां, दधीचस्य चरणयोः=पादयोः नखानां या चन्द्रिका=ज्योत्स्ना द्युतिरित्यर्थः ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ललाटिकाम्=ललाटस्थ-चन्दनतिलकम् दधाना=बिभ्रती, गण्डस्थलं=कपोलतलम् एव आदर्शः=दर्पणः, रूपकालङ्कारः, तस्मिन् प्रतिबिम्बितेन=प्रतिफलि-तेन इन्दुना इत्यस्य विशेषणम् चारुः मनोहरः हासः=हसनम् अस्या अस्तीति चारुहासिनी तत्सम्बुद्धौ, आहृतः=आनीतः हृदयस्य दयितः=प्रियः प्राणप्रिय इत्यर्थः जनः=दधीचः इत्यर्थः श्रवणस्य=कर्णस्य समीपे=मूले वर्तते इति ० वर्ती तेन, निवेद्यमानः=विज्ञाप्यमानः मदनस्य=कामस्य संदेशः यस्यै तथाभूता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विकीर्य०—विकीर्य-माणम्=इतस्ततः प्रक्षिप्यमाणं नखानां=कररुहाणां किरणानाम्=अंशूनां चक्रवालं=समूहः यस्य तेन, बाल०—अबालव्यजनं बालव्यजनं सम्पद्यमानं कृतः इति बालव्यजनीकृतः चन्द्रकलायाः=चन्द्रलेखायाः कलापः=समूहः येन तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, करेण=हस्तेन वीजयन्ती=वीजिनं कुर्वती, स्वेदिनं=स्विद्यमानं कामोद्रेकादिति भावः, स्पष्टं=समुज्ज्वलं कपोलपट्टं=गण्डस्थलम् । दधीचात् ऋते=विना, तिरश्चीनं=तिर्यक् स्तनयोः मध्ये प्रवेशासंभवादित्यर्थः, चित्तभुवा=मनोजेन पातितां=क्षिप्ताम्, विलासस्य=केल्याः वेत्रः लता इव वेत्रयष्टिरित्यर्थः, बाला=अभिनवा मृणालिका=मृणाली मृणालदण्डः इत्यर्थः ताम्, अधिस्तनं स्तनयोः इति अधिस्तनं सप्तम्यर्थे अव्ययीभावः, सन्ताप-निवारणार्थमिति भावः स्तनयन्ती=आक्रन्दती, वहन्ती=धारयन्ती, प्रतिपालयामास=प्रतीक्षाम् अकरोत् । अमुना=अनेन मनोजन्मना=मनसिजेन, नाम=धिक् कुत्सायां ['नाम प्रकाश्य......कुत्सने' इत्यमरः] जघन्या=

हिन्दी—की तरह चन्द्रमा के हँसती हुई-जैसी श्वेत-वर्ण की पूर्व-दिशा को छोड़ चुकने पर, रेशमी चादर (पड़ने से) कोमल बनी शय्या की तरह श्वेत, चायना सिल्क जैसे मृदु (और) तरङ्गों के चिह्नों वाले शोण नदी के रेतीले तीर प्रदेश पर बैठी स्वप्न में (सरस्वती द्वारा) की हुई प्रार्थना के समय पैरों पर पड़ने से लगी हुई दधीच के चरणों की नखज्योत्स्ना-जैसे लग रहे (श्वेत चन्दन के) तिलक को धारण किये हुए, कपोलतल के दर्पण पर प्रतिबिम्बित, कान के समीपवर्ती चन्द्रमा द्वारा 'मधुर हँसने वाली ! यह तेरे हृदय का प्रियतम ले आया हूँ'—इस तरह मदन-सन्देश से अवगत कराई जाती हुई-जैसी, चन्द्रकलाओं का बना पंखा-जैसा प्रतीत हो रहे, इधर-उधर बिखरती हुई नख-किरणावलियों वाले हाथ से (कामोद्रेक में) पसीजे उज्ज्वल कपोलस्थल पर हवा करती हुई, 'यहाँ दधीच को छोड़ कोई न प्रवेश करे'—इस तरह कामदेव द्वारा टेढ़ी डाली हुई विलास की बेंत छड़ी-जैसी लग रही, ताजी-ताजी मृणालदण्डिका को स्तनों पर रखे और बड़बड़ाती हुई सरस्वती किसी न किसी तरह (दधीच की) बाट जोहती रही । और इसके मन में (विचार) हुआ—'धिक्कार है एक मैं भी सरस्वती हूँ जिसे इस कामदेव ने हीन स्त्री की

---

१. कृतचन्द्रकरेणेव करेण ।
२. स्वनन्ती ।
३. जानत्येव ।

कृता । तत्र का [illegible]

आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवहः, हंस इव कृतमृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः, मलयानिल इवाहितसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः, कृष्यमाण इव कृतकरकचग्रहेण ग्रहपतिना, प्रेर्यमाण इव कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण दक्षिणानिलेन, उह्यमान इवोत्कलिकाबहलेन रतिरसेन, परिमलसम्पातिना मधुपपटलेन पटेनेव नीलेनाच्छादिताङ्गयष्टिः, अन्तःस्फुरता मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन प्रतिमेन्दुना प्रथमसमागमविलासविलक्षस्मितेनेव धवलीक्रियमाणक-

---

नीच-स्त्री इवेत्युपमायाम्, परवशीकृता पराधीना कृता । गणना संख्यानम्, इतरासु=अन्यासु तपस्विनीषु=वराकीषु, अतिशयेन तरलासु=चञ्चलासु, तरुणीषु=युवतिषु । मधुमासः=चैत्रमासः वसन्तर्तोः प्रथमः मासः [‘स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधु’ इत्यमरः) इव दधीचः इत्यनेन अन्वयः । सुरभिः=परिमल-पूर्णः यः गन्धः=गन्धद्रव्यम् अधिवासः इत्यर्थः तं वहतीति० वहः=मधुमासपक्षे सुरभिः=सुगन्धिः गन्धवहः=पवनः यत्र तथाभूतः । हंस इव कृता मृणालैः धृतिः=प्राणधारणं येन सः, दधीचो हि ज्वरसन्तप्ताङ्गेषु मृणालधारणेन एव प्राणान् रक्षतिस्म, अन्यत्र कृता मृणालस्य धृतिः=मुखे धारणं येन सः, हंसा हि मृणालभोजिनः भवन्ति । शिखण्डी=मयूरः इव घना=निविडा या प्रीतिः=हर्षः भाविप्रियतमामिलनजनित इत्यर्थः तस्याम् उन्मुखः=अभिमुखः सज्जीभूतः प्रतीक्षमाण इत्यर्थः, अन्यत्र घने=मेघे मेघदर्शने इत्यर्थः या प्रीतिः= प्रसन्नता तस्याम् उत्=ऊर्ध्वं मुखं यस्य सः । मलयानिलः=मलय-पवनः इव आहितः=कृतः सरसेन=सान्द्रेण चिक्कणेनेत्यर्थः चन्दनेन=चन्दनलेपेनेत्यर्थः धवलायाः=श्वेतायाः तनुलतायाः=तनुः लता इव तस्याः उत्कम्पः=वेपथुः यस्मिन् सः कम्पः सात्त्विकभावविशेषः । अन्यत्र आहितः=कृतः सरसाः स्निग्धाः ये चन्दनाः चन्दनवृक्षाः धवाः=एतन्नामकवृक्षाः च तान् लान्ति=आश्रयन्ति इति ०धवलाः याः तन्व्यः=लघ्व्यः लताः=वल्लयः तासाम् उत्कम्पः येन सः । अत्र सर्वत्र श्लिष्टोपमा । कृष्यमाणः=बलात् आनीयमानः, कृतः करैः=किरणैः एव करेण=हस्तेन कचानां केशानां ग्रहः=ग्रहणं येन तथाभूतेन ग्रहाणां=नक्षत्राणां पतिः=स्वामी चन्द्र इत्यर्थः तेन अर्थात् चन्द्रकराः दधीचस्य शिरसि पतन्तिस्म, चन्द्रश्च कामोद्दीपको भवति, अतएव कविकल्पना चन्द्रः तं केशग्रहणपूर्वकमिव बलात् आनयति इति । अत्र श्लिष्टरूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा । प्रेर्यमाणः=प्रणुद्यमान इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कन्दर्पस्य=कामस्य उद्दीपने=उत्तजने दक्षेण=निपुणेन दक्षिणानिलेन=दक्षिणपवनेन=मलयवायुना इत्यर्थः । उह्यमानः=आप्लाव्यमानः इवेत्युत्प्रेक्षा सा च श्लिष्टरूपकोत्थापिता । उत्कलिकाः=उत्कण्ठाः एवम् उत्कलिकाः=ऊर्मयः ताभिः बहलः=पूर्णः इत्यर्थः तेन रतिः=प्रेम तस्य रसः=भावः एव रसः जलं तेन, प्रेमरसजलाप्लाव्यमान इत्यर्थः । परिमले=सौरभे सम्पततीति ०सम्पाति तेन मधुपानां=भ्रमराणां पटलेन=समूहेन नीलेन=नीलवर्णेन पटेन=वसनेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आच्छादितम्=आवेष्टितम् अङ्गं=शरीरम् यष्टिः इवेत्युपमिततत्पु० येन तथाभूतः । अन्तः=अभ्यन्तरे कपोलस्येति शेषः स्फुरता=भ्राजमानेन । मत्त०=मदोन्मत्तः यः मदनः=कामः स एव करी=हस्ती तस्य कर्णे=कर्णोपरितनभागे इत्यर्थः यः शङ्खः ललाटास्थि (‘शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि’ इत्यमरः) अथवा कर्णे शोभार्थम् आलम्बितः शङ्खः=कम्बुः तद्वत् आचरतीति० शङ्खायमानः (आचारार्थे क्यङ्) तेन, प्रतिमा=प्रतिच्छाया तद्रूपः यः इन्दुः= चन्द्रः तेन, प्रथमः यः

टिप्पणी—अन्तःस्फुरता—दधीच के एक तरफ के कपोल पर चन्द्रमा की परिछाई पड़ रही थी जिससे वह श्वेत हो रहा था । प्रतिबिम्बित चन्द्र की तुलना कवि मदन को हाथी बनाकर उसके कुम्भस्थल—कनपट्टी की हड्डी अथवा शङ्ख से कर रहा है । चन्द्र की तरह हड्डी अथवा शङ्ख भी श्वेत और गोल-गोल होता है । चाँद की परिछाई पर कवि कल्पना करता है कि मानो वह प्रियतमा के साथ प्रथम मिलन पर विलास-रूप घबराहट भरा मुस्कान हो । विलास का स्वरूप देखिए—‘धीरा दृष्टिर्गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः’ ।

हिन्दी—तरह पराधीन बना रखा है, तो अन्य बेचारी अति चंचल युवतियों की क्या गिनती" ? और सुगन्धित पवनवाले वसन्त-मास की तरह सुगन्धि-पूर्ण गन्ध-द्रव्य [इत्र आदि] लगाए, मृणाल को (मुख में) धारण किए हुए हंस की तरह मृणालों पर जीवन रखे, सरस चन्दन-वृक्ष और धव-वृक्षों पर लिपटी हुई छोटी-छोटी लताओं को हिला देने वाले मलय पवन की तरह गीले चन्दन (के लेप) से धवल बनी लता-जैसी (कृश) गात में कंपकंपी रखे, कर (किरण) रूपी कर (हाथ) से केश ग्रहण-पूर्वक चन्द्रमा द्वारा खींच लाया जाता हुआ-जैसा, काम-वासना भड़काने में

१. धृतिः ।

कपोलोदरो मालतीद्वितीयो दधीचः । आगत्य च हृदयगतदयितानूपुररवमिश्रयेव हंसगद्गदया गिरा कृतसम्भाषणो यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथानुरागः शिक्षयति, यथा विदग्धताध्यापयति, तथा तामभिरामां रामामरमयत् । उपजातविस्रम्भा चात्मानमकथयदस्य सरस्वती । तेन तु सार्धमेकं दिवसमिवानयत्संवत्सरमधिकम् ।

अथ दैवयोगात्सरस्वती बभार गर्भम् । असूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामं तनयम् । तस्मै च जातमात्रायैव 'सम्यक्सरहस्याः सर्वे वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कलाः मत्प्रसादात्स्वयमाविर्भविष्यन्ति' इति वरमदात् । सद्भर्तृश्लाघया दर्शयितुमिव हृदयेनादाय दधीचं पितामहादेशात्समं सावित्र्या ब्रह्मलोकमारुरोह । गतायां च तस्यां

टीका—समागमः=सरस्वत्या सह सङ्गमः तस्मिन् यः विलासः=शृङ्गारचेष्टाविशेषः तद्रूपं विलक्षं विस्मयान्वितं ['विलक्षो विस्मयान्विते' इत्यमरः] सम्भ्रान्तं, प्रतिपत्तिमूढमित्यर्थः यत् स्मितं=मृदु हसितं तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, धवलीक्रियमाणं=धवलतां प्राप्यमाणम् एकस्य कपोलस्य उदरम्=अभ्यन्तरं यस्य सः । मालतीद्वितीयः=मालती द्वितीया-सहचरी यस्य, केवलं मालती-सहितः इत्यर्थः । हृदये=मनसि गता=स्थिता या दयिता=प्रियतमा सरस्वतीत्यर्थः तस्याः नूपुराणां यः रवः=झणत्कारः तेन मिश्रया=मिलितया इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । हंसवत् गद्गदया=स्खलन्त्या गिरा=वाचा कृतं सम्भाषणं संलापः येन सः, यथा मन्मथः=मदनः समाज्ञापयति=आदिशति, यौवनम् उपदिशति=उपदेशं करोति, अनुरागः=प्रणयः शिक्षयति शिक्षां ददाति, विदग्धता=नैपुण्यं तत्तत्कलादिविषयकम् अध्यापयति=पाठयति तथा ताम् अभिरामां=सुन्दरीं रामां=नारीं सरस्वतीमिति यावत्, अरमयत्=रन्तुं प्रैरयत् तया सह रमणं चकारेत्यर्थः । उपजातः=समुत्पन्नः विस्रम्भः=विश्वासः यस्याः तथाभूता सा आत्मानं=स्वम् अहं सरस्वती अस्मि, दुर्वाससः शापादहं मर्त्यलोकमागता इत्यादि स्ववृत्तं तस्मै अकथयत् इति भावः । सार्धं=सह, अनयत्=अत्यवाहयत् संवत्सरं=वर्षम्, अधिकं=ततोऽधिकञ्च । दैवयोगात्=भाग्यवशात्, बभार धृतवती अनेहसा =समयेन असूत=अजीजनत्, सर्वाणि च तानि लक्षणानि=शुभचिह्नानि तैः अभिरामं=मनोरमं तनयं=पुत्रम् । जातः एव जात-मात्रः तस्मै=उत्पन्न-मात्राय, सम्यक्=सम्यक् प्रकारेण रहस्यैः उपनिषद्भिः ['रहस्यमुपनिषदः' इति मेधातिथिः] सहवर्तमानाः सर्वे चत्वारः वेदाः=मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशयः, कलाः=संगीताद्याः चतुःषष्टिसंख्यकाः, मम प्रसादात्=कृपया आविर्भविष्यन्ति=प्रकटीभविष्यन्ति । सन्=श्रेष्ठः यः भर्ता=पतिः तस्मिन् या श्लाघा= अभिमानः गौरवमित्यर्थः तया, दर्शयितुं=स्वर्गस्थानामग्रे प्रकटीकर्तुम् इत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पितामहस्य=ब्रह्मणः आदेशात्=आज्ञायाः, सम=सार्धं ब्रह्मलोकम् आरुरोह=आरूढवती उद्गतेत्यर्थः । ह्लादिन्या=वज्रेण [ह्लादिन्यौ

टिप्पणी—रामामरमयत्—एक साल से भी अधिक समय तक दधीच और सरस्वती साथ-साथ रहे । 'वश्यवाणी कवि चक्रवर्ती' बाण को शृंगार-वर्णन का इससे अच्छा अवसर कहाँ मिल सकता था, पर उसने चार पंक्तियों में ही संकेत-मात्र कर दिया है । कारण यह है कि बाण ने इस साहित्यिक मर्यादा का पालन किया है कि उत्तम प्रकृति के पात्रों—देवी-देवता, माता-पिता आदि—का सम्भोगवर्णन निषिद्ध है । **सद्भर्तृश्लाघया**—ब्रह्मा की आज्ञानुसार सरस्वती पुत्र पैदा करके जब ब्रह्मलोक गई, तो हृदय में अपने पति को भी ले गई जिसपर कवि

हिन्दी—निपुण दक्षिण पवन द्वारा प्रेरित किया जाता हुआ-जैसा, उत्कलिकाओं (उत्कण्ठाओं) रूपी उत्कलिकाओं [तरंगों] से भरे प्रेम के रस (भावना) रूपी रस (जल) बहाया जाता हुआ-जैसा, सौरभ पर टूट पड़ने वाले भ्रमरों के समूह से काले वस्त्र से-जैसे शरीर को ढके हुए दधीच आ पहुँचा, जिसके साथ केवल मालती ही थी और जिसके एक कपोल का अभ्यन्तर भाग भीतर चमकते हुए, मदमत्त मदन रूपी हाथी के कान के ऊपर की ललाट की हड्डी के समान प्रतिबिम्ब रूप चन्द्रमा द्वारा श्वेत बनाया जा रहा था जो (चन्द्र प्रतिबिम्ब) ऐसा लग रहा था मानो पहले-पहल के समागम में विलास की घबराहटभरी मुस्कान हो । और आकर हृदय में बैठी प्रियतमा के नूपुरों की झनझनाहट के साथ मिली हुई-जैसी हंस की सी गद्‌गद वाणी से वार्तालाप किए हुए वह जैसा कि मदन आज्ञा करता है, जैसा कि यौवन उपदेश देता है, जैसा कि प्रेम सिखाता है (और) जैसा कि निपुणता पढ़ाती है—तदनुसार उस सुन्दर रमणी के साथ रमण करता रहा । उसके साथ (सरस्वती ने) एक वर्ष और कुछ अधिक (समय) बिताया ।

इसके बाद दैव-योग से सरस्वती गर्भ धारण कर बैठी और यथासमय उसने सभी लक्षणों से युक्त रमणीय पुत्र को जन्म दिया । और उत्पन्न होते ही उसे—'अच्छी तरह उपनिषदों सहित सभी वेद और सब शास्त्र तथा सभी कलायें स्वयं प्रकट हो जायेंगी' यह वर दे दिया । श्रेष्ठ पति (प्राप्त करने) के गौरव से, दिखाने के लिए-जैसे दधीच को हृदय में लेकर ब्रह्मा की आज्ञा से सावित्री के साथ ऊपर ब्रह्मलोक चली गई ।

दधीचोऽपि हृदये [illegible] मुनिकन्यकामात्मसूनोः संवर्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात् । यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती । तौ तु सा निर्विशेषं सामान्यस्तन्या शनैः शनैः शिशू समवर्धयत् । एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत्, द्वितीयोऽपि वत्सनामाभवत् । आसीच्च तयोः सोदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः ।

अथ सारस्वतो मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्यासम्भारस्तस्मिन्सवयसि भ्रातरि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि वत्से वाङ्मयं समस्तमेव सञ्चारयामास । चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम् । आत्मनाप्याषाढी, कृष्णाजिनी, वल्कली, अक्षवलयी, मेखली, जटी च भूत्वा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम् ।

टीका—वज्रतडितौ' इत्यमरः] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अभिहतः=ताडितः, भार्गव-वंशे=भार्गव-कुले सम्भूतस्य=जातस्य भ्रातुः=पितृव्यपुत्रस्य ब्राह्मणस्य=ब्राह्मणजातीयस्य, जायां=पत्नीम्, अक्षमाला अभिधानं=नाम यस्याः तथाभूतां मुनि-कन्याम्=ऋषि-पुत्रीम् आत्मसूनोः=स्वपुत्रस्य सरस्वतीजातस्येत्यर्थः संवर्धनाय=पालनपोषणाय, नियुज्य=नियुक्तां कृत्वा, विरहेण=सरस्वत्याः बियोगेन आतुरः=आकुलः तपसे=तपःकरणार्थमित्यर्थः वनम् अगात्=अगच्छत्। असूत=जनितवती, प्रसूतवती=जनितवती । निर्विशेषं=निर्गतः विशेषः=भेदभावः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा सामान्यं=समानं भेदरहितमित्यर्थः स्तन्यं=स्तन-दुग्धं यस्याः तथाभूता, शिशू=बालकौ समवर्धयत् वृद्धिं प्रापितवती । तयोः बालयोः एकः सारस्वताख्यः=सरस्वत्याः अपत्यं पुमान् इति सारस्वतः आख्या=नाम यस्य तथाभूतः । अक्षमाला-सुतः इत्यर्थः । वत्सः नाम यस्य तथाभूतः । सोदर्ययोः=समाने=एकस्मिन् उदरे शयितः इति सोदर्यः, विकल्पे सहोदरः [पा० ६।३।८८ एवं ४।४।१००) तयोः इवेत्युपमायाम्, स्पृहणीया स्पृहा=योग्या प्रीतिः=प्रेम आसीत् ।

मातुः=सरस्वत्याः महिम्ना, वरमाहात्म्येनेत्यर्थः । यौवनस्य आरम्भे=प्रारम्भे आविर्भूतः=प्रकटीभूतः अशेषाणां=सकलानां विद्यानां सम्भारः=समूहः यस्मिन् तथाभूतः सवयसि=समानं वयः=अवस्था यस्य तथाभूते प्रेयसि=प्रियतरे, प्राणैः समे=तुल्ये, सुहृदि=मित्रे समस्तं=सकलम् एव वाङ्मयम्=वाग् एव वाङ्मयम् वाग्रूप-शास्त्रादिकमित्यर्थः, सञ्चारयामास=सङ्क्रान्तं चकार, सर्वं वाङ्मयम् अध्यापयामासेत्यर्थः । कृतः दाराणां परिग्रहः विवाहः इति यावत् येन तथाभूतस्य अस्य वत्सस्य प्रीत्या=प्रेम्णा प्रीतिकूटः नाम यस्य तथाभूतं निवासं=निवासस्थानम्। आत्मना स्वयं चापि आषाढी पलाशदण्डधारी । कृष्णाजिनं यस्य सः, वल्कली=वल्कलम् अस्य अस्तीति वल्कलधारी इत्यर्थः, मेखली=मेखला=मौञ्जं कटि-सूत्रम् अस्य अस्तीति, जटी=जटा लग्नकचाः अस्य अस्तीति जटाधारीत्यर्थः, तपस्यतः=तपः आचरतीति (नामधातुः√तपस्य+शतृ+षष्ठी) तपस्यां कुर्वतः इत्यर्थः जनयितुः=पितुः=दधीचस्य अन्तिकं=समीपम् जगाम=गतवान् । अथ तस्मात्=वत्सात् प्रावर्तत विपुलो वंशः इत्यन्वयः । विशेषणानि च

टिप्पणी—कल्पना करता है कि मानो दधीच-जैसे सद्भर्ता को प्राप्त करने का गौरव रखती हुई वह उसे स्वर्गस्थ देवताओं को दिखाना चाहती है कि मेरा पति कितना आदर्श-पति है । **भ्रातुः ब्राह्मणस्य**—दधीच का असली भाई तो कोई नहीं था, इसलिए भ्रातृ शब्द से यहाँ चचेरा भाई लिया जाना चाहिए और चचेरा भाई ब्राह्मणजातीय है। दधीच तो च्यवन द्वारा क्षत्रिय-कन्या सुकन्या में उत्पन्न होने से ब्राह्मण नहीं, 'ब्राह्मण-सदृश' है । कोई टीकाकार भ्रातृ-शब्द को संज्ञावाचक मानता है और उसका अर्थ करता है 'भ्रातृ नामक ब्राह्मण' ।

हिन्दी—उसके चले जाने पर दधीच भी हृदय में वज्राहत-सा हुआ भार्गववंश में उत्पन्न ब्राह्मण भाई की अक्षमाला नामक मुनिकन्या को अपने पुत्र के पालन-पोषण के लिए नियुक्त करके (स्वयं) विरहाकुल हुआ-हुआ तप (करने) के लिए वन चला गया । जिस समय सरस्वती ने पुत्र को जन्म दिया था, उसी समय अक्षमाला ने भी पुत्र पैदा किया । उसने बिना भेद-भाव के उन दोनों बच्चों को समान रूप से स्तन पिलाते हुए पालन-पोषण किया । उनमें से एक का नाम सारस्वत हुआ और दूसरे का नाम वत्स हुआ और दोनों का सहोदरों का-जैसा स्पृहणीय प्रेम था।

इसके बाद सारस्वत जिसे माता (के वर) की महिमा से यौवन के आरम्भ में ही सकल विद्या-समूह आविर्भूत हो गया था, समान वय वाले प्रिय, प्राणसम मित्र वत्स में सारा वाङ्मय संक्रमित कर बैठा और विवाहित हुए इसके लिए उसी प्रदेश में प्रीति के कारण प्रीतिकूट-नामक निवासस्थान बना दिया । अपने आप पलाश-दण्ड,

अथ [1]तस्मात्प्रवर्धमानाद्विपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिनिर्गतप्रघोषः, परमेश्वरशिरोधृतः, सकलकलागमगम्भीरः, महामुनिमान्यः, विपक्षक्षोभक्षमः, क्षितितललब्धायतिः, अस्खलितप्रवृत्तो भागीरथीप्रवाह इव पावनः प्रावर्तत विपुलो[2]

टीका—श्लिष्टानि । भागीरथी=गङ्गा तस्याः प्रवाहः इव । प्रवर्धमान०=प्रवर्धमानैः=पुत्र-पौत्रादिरूपेण वृद्धि गच्छद्भिः आदिपुरुषैः=भार्गवादिभिः पूर्वपुरुषैः जनिता=कृता आत्मनः=स्वस्य चरणस्य=वेद-शाखायाः उन्नतिः=उन्नयनं तया निर्गतः प्रसृतः प्रघोषः=नादः ख्यातिरित्यर्थः यस्य सः । भागीरथीप्रवाहपक्षे प्रवर्धमानः=वृद्धि गच्छन् आदि-पुरुषः=नारायणः तेन जनिता=कृता आत्मनः=स्वस्य चरणस्य=पादस्य उन्नतिः=उन्नयनम् उत्थापनमित्यर्थः तया निर्गतः=निःसृतः प्रघोषः=प्रकृष्टनिनादः यस्य तथाभूतः । परमेश्वरैः=महाराजैः शिरसि=मूर्ध्नि धृतः शिरोऽञ्जलिपूर्वकं सम्मानितः इत्यर्थः । अन्यत्र परमेश्वरेण=शिवेन शिरसि धृतः । समग्राः=सकलाः चतुःषष्टिसंख्यकाः याः कलाः=संगीत-नृत्यादयः तासाम् आगमे=प्राप्त्यां ज्ञाने इत्यर्थः गम्भीरः निष्णातः इत्यर्थः, अन्यत्र कलकलेन=कल-कलशब्देन सहितः सकलकलः यः आगमः=आगमनं प्रवहणमित्यर्थः तेन गम्भीरः अगाधः । महान्तः ये मुनयः तैः मान्यः=माननीयः । उभयत्रापि समान-विशेषणम् । विपक्षाणां=शत्रूणां यः क्षोभः=उद्वेजनं दलनमित्यर्थः तस्य क्षमः=समर्थः, अन्यत्र विगताः=नष्टाः इन्द्रेण स्ववज्रद्वारा कृत्ताः इत्यर्थः । पुरा किल पर्वतानां पक्षाः भवन्ति स्म । यत्र कुत्रापि च गत्वा ते लोकान् क्लेशयन्ति स्म । अतः इन्द्रः तेषां पक्षान् अच्छिनत् इति पुराणेषु लिखितम्, तेषां क्षोभः=प्रकम्पनम् ऊर्मिभिः=त्रोटनमित्यर्थः तस्य क्षमः । क्षितितले=भूतले लब्धा=प्राप्ता आयतिः=महत्ता प्रभावः इत्यर्थः येन सः, अन्यत्र आयतिः=आयामः विस्तारः इत्यर्थः येन सः । न स्खलितः सत्पथाद् भ्रंशः (भावे क्तः) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अन्यत्र अस्खलितं=स्खलितं विना, मार्गगतरोधान् न गणयन् इत्यर्थः यथा स्यात्तथा, प्रवृत्तः=चलितः पावनः=पवित्रः विपुलः=प्रचुरः वंशः=कुलम् प्रावर्तत=प्रचलितः । श्लिष्टोपमालङ्कारः । यस्मात् वंशात्, वात्स्यायनाः=वत्सस्य गोत्रापत्यानि पुमांसः इति [वत्स+यञ्+फक् (आयन), नाम (अव्ययम्)=नामवन्तः इत्यर्थः, गृहमुनयः=गृहस्थाः मुनयः गृहे सन्तोऽपि मुनितुल्य-जीवनाः इत्यर्थः, आश्रित०—आश्रितम्=अभ्युपेतम् अवलम्बितमित्यर्थः । श्रौतं=श्रुतिः=श्रवणं तत्सम्बन्धि श्रौतं श्रवण-परम्पराप्राप्तज्ञानमित्यर्थः यैः तथाभूतः । कर्णाकर्णि-ज्ञानवन्तः इत्यर्थः अपि न आलम्बिता=आश्रिता अलीका=मिथ्यात्मिकी बकस्य=पक्षिविशेषस्य इव काकुः=कण्ठध्वनिभेदः यैः ते [भिन्नः कण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते, सा० द० २] ये खलु स्वयं न साक्षात्कृत्य जनश्रुतिमेवाश्रयन्ति ते बकवत् अलीक-कण्ठध्वनिमेव आलम्बन्ते, गृह-मुनयश्च न तथा इति विरोधः, तत्परिहारस्तु आश्रितः श्रौतः=श्रुतिः=वेदः तस्या अयं वैदिक इत्यर्थः आचारः यैः ते । अथ च बकवत् न आलम्बिता अलीका काकुः

टिप्पणी—प्रवर्धमानादि०—यहाँ भगवान् नारायण के वामनावतार की ओर संकेत है जब वामन भगवान् का तीसरा पैर धरती नापते हुए द्युलोक में पहुँचा तो ब्रह्मा ने अपने कमण्डल के जल से उसका प्रक्षालन किया। प्रक्षालित पैर उठाते ही जो जल बहा वही गंगा-प्रवाह बना। बाद को भगीरथ के तप-प्रभाव से प्रसन्न हुई गंगा भूतल पर उतरती हुई शिव के जटा-भार पर पड़ी। इसीलिए कहा गया है—'विष्णु-चरण से निकली शिव की जटा समाई'। विष्णुपुराण में भी लिखा हुआ है—'वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठे नखस्रोतोविनिर्गता। विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः [२।८।१०]

विरोधाभास के स्पष्टीकरण के लिए यही पृष्ठ देखिए। एक शब्द के दो-दो अर्थ होते हैं, एक में विरोध, दूसरे में उसका परिहार रहता है। जैसे—आश्रित-श्रौता अपि अना०—जो श्रौत (१-अफवाहों २-वैदिक आचार) पर टिके रहते हुए भी 'अलीक-वक-काकु' [१—बगुला का-सा भूठा स्वर २—भूठा छद्म भरा स्वर] अपनाये नहीं थे।

हिन्दी—कृष्णमृगचर्म, वल्कल, रुद्राक्ष-माला, मेखला और जटा धारण किए हुए सारस्वत, तपस्यारत पिता के ही पास चला गया। बाद को उस (वत्स) से बढ़ते हुए आदि-पुरुष विष्णु द्वारा किए गए अपने चरण (पैर) के उत्थान के कारण निकले हुए महान् शब्द वाले, महादेव द्वारा सिर पर रखे, कलकल-ध्वनि के साथ बहते रहने से अगाध, महामुनियों द्वारा मान्य, पर्वतों को काट देने में सक्षम, भूतल पर खूब विस्तार से फैले, बेरोकटोक चलते हुए भागीरथी के पवित्र प्रवाह के समान [संतति रूप में] बढ़ते हुए आदि पुरुषों (वंशधरों) द्वारा की गई अपने चरण (वेदशाखा) की उन्नति के कारण जय-घोष प्राप्त किए, राजाओं द्वारा शिर माथे पर धरा हुआ, सभी कलाओं के ज्ञान में

---

१. वत्सात्।
२. विमलः।

वंशः । यस्मादजायन्त वात्स्यायना नाम गृहमुनयः, आश्रितश्रौता अप्यनालम्बितालीकबककाकवः, कृतकुक्कुटव्रता अप्यवैडालवृत्तयः, विवर्जितजनपङ्क्तयः, परिहृतकपटकीर[1]कुचीकूर्चाकूताः, अगृहीतगह्वराः, न्यक्कृतनिकृतयः, प्रसन्नप्रकृतयः, विगतविकृतयः, परपरिवादपराचीनचेतसः, वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः, धीरधिषणावधूताध्येषणाः, असङ्कुसुकस्वभावाः, प्रणतप्रणयिनः, शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः, उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः, कवयः, वाग्मिनः, विमत्सराः, सरस[2]भाषितव्यसनिनः, विदग्धपरिहासवेदिनः, परिचयपेशलाः, नृत्यगीतवादित्रेष्वबाह्याः, ऐतिह्यस्यावितृष्णाः,

---

टीका—यैः ते । बको हि छद्मनः प्रतीकमुच्यते । वैदिक-कर्मरताः छद्मरहिताः सत्यवादिनश्चासन् इति भावः । कृतं कुक्कुटानां व्रतं=भक्षणं यैः ते ['व्रतं भक्षणम्', इत्युणादिकोषः] अपि च विडालस्य=मार्जारस्य इयम् इति [विडाल+अण्+ङीप्] वैडाली वृत्तिः=आचरणं येषां ते । ये कुक्कुटभक्षिणः ते कथं न वैडालवृत्तयः इति विरोधः, तत्परिहारस्तु कृतं कुक्कुट-व्रतं=कुक्कुटाण्ड-परिमित-भोजन-नियमः यैः ते, अथ च अवैडालवृत्तयः=अहिंसावृत्तयः इत्यर्थः । सर्वत्र विरोधाभासालङ्कारः । विवर्जिता=त्यक्ता=साधारणजनानां पङ्क्तिः=समाजः यैः ते, गृह-मुनित्वात् भोगरतसाधारण-जनतातः दूरस्थिताः इत्यर्थः । परिहृतं=परित्यक्तं कपटे कीराणां=शुकानां कुची-कूर्चे='किचिर-मिचिर' इत्यव्यक्तशब्दे च [इति जीवानन्दः] आकूतम्=अभिप्रायः यैः ते । अर्थात् ते छलकपटादिकं शुकवच्च निरर्थक-शब्दोच्चारणं न अभिप्रयन्ति स्म । वस्तुतस्तु बाणस्य 'कुची-कूर्च' शब्दौ अप्रसिद्धौ एव । न गृहीतम्=आश्रितं गह्वरं=गिरिगुहा यैस्ते अर्थात् मुनयः सन्तोऽपि ते गृहं विहाय मुनिवद् गह्वराणि नाश्रितवन्तः अतएव उक्तं 'गृहमुनयः' इति, अथवा गह्वरं=दम्भः यैः ते, अर्थात् दम्भरहिताः ['गुहा-दम्भौ गह्वरे द्वे' इत्यमरः] न्यक्कृता=धिक्कृता तिरस्कृता इत्यर्थः निकृतिः=शाठ्यं यैः ते ['कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम्' इत्यमरः] । प्रसन्ना=प्रहृष्टा प्रकृतिः स्वभावः येषां ते । विगताः अपगताः विकृतयः विकाराः येभ्यः ते । परेषाम्=अन्येषां यः परिवादः=निन्दा तस्मात् पराचीनं=पराङ्मुखं चेतः=मनः येषां ते । वर्णानां त्रयम्=त्रयः वर्णाः क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः इत्यर्थः तस्य व्यावृत्तिः=वर्जनं तया विशुद्धम् अन्धः=अन्नं येषाम् ते अर्थात् स्वजातीयैः सह एव ते भुञ्जते स्म । धीरा=दृढा या धिषणा=बुद्धिः तया अवधूताः=तिरस्कृताः अध्येषणाः=इच्छा याच्ञाः ['सनिस्त्वध्येषणा याच्ञा' इत्यमरः] यैः ते । असङ्कुसुकः=स्थिरः [सङ्कुसुकोऽस्थिरः इत्यमरः] स्वभावः येषां ते । प्रणतेषु=नम्रेषु सहायतार्थमागतेषु इत्यर्थः, प्रणयिनः=अनुरागवन्तः । शमिताः=प्रशमं नीताः निराकृताः इत्यर्थः । समस्तानां=सकलानां शाखान्तराणाम्=अन्याः शाखाः ऐतरेय-तैत्तिरीय-शाकलादि-वेदशाखाभेदाः इति शाखान्तराणि तेषां संशीतयः=संशयाः यैः ते । उद्घाटिताः=विवृताः समग्राः ग्रन्थार्थानां ग्रन्थप्रतिपाद्यानां ग्रन्थयः=कठिनस्थलानि इत्यर्थः यैः ते । कवयः=काव्यकाराः । वाग्मिनः=वक्तारः वाक्-पटवः इत्यर्थः, विमत्सराः=विगतः मत्सरः=ईर्ष्या येभ्यः तथाभूताः ईर्ष्यारहिता इत्यर्थः, सरसं=रसपूर्णं मधुरमित्यर्थः यद् भाषितं वचनं तत्र व्यसनम्=आसक्तिः येषां ते, मधुर-भाषिणः इत्यर्थः । विदग्धाः वैदग्ध्य-पूर्णाः चातुरी-भरिताः इत्यर्थः ये परिहासाः=नर्मालापाः तान् विदन्तीति वेदिनः=ज्ञातारः विवेचका इत्यर्थः वेदाभ्यासरताः सन्तोऽपि ते परिहासविजल्पितानि साधु अवगच्छन्ति स्म प्रशंसन्ति स्म चेति भावः, 'वेदाभ्यासजडाः' नासन्नित्यर्थः । परिचये=संस्तवे लोकैः सह सम्पर्क-स्थापने इत्यर्थः पेशलाः=दक्षाः नृत्यं च गीतं च वादित्रं=वाद्यते इति [√वद्+णिच्+णित्रम्] वाद्यमित्यर्थः तेषु अबाह्याः न बहिर्भूताः तेषां यत्किञ्चिज्ज्ञानवन्तः, न तु तेषु एव रताः इत्यर्थः । ऐतिह्यम्=[इति+ह+ञ्य पा० ५।४।२३] पारम्पर्योपदेशः इतिहासः इति यावत् ['पारम्पर्योपदेशे स्यात् ऐतिह्यमितिहाव्ययम्' इत्यमरः] तस्मात् अवितृष्णाः=न विगता तृष्णा येषां ते अविरक्ताः=सक्ताः इत्यर्थः । अनुक्रोशः=दया तेन सह वर्तमाना दयालवः इत्यर्थः । सत्येन=सत्यभाषित्वेन इत्यर्थः । शुचयः=पवित्राः सर्वे च ते सत्त्वाः=प्राणिनः तेषु यत् सौहार्दं=सद्भावः एव द्रवः तेन आर्द्रं=क्लिन्नं हृदयं येषां ते । सर्वे च ते गुणाः=सत्त्वं रजः तमः इति

टिप्पणी—**अध्येषणा**—इच्छायें हुआ करती हैं । सम्भवतः बाण उपनिषदों में उल्लिखित मानव की तीन अध्येषणाओं की ओर संकेत कर रहे हैं । बृहदारण्यक उपनिषद् में आता है—'ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यां चरन्ति' [४।४।२२] । मानव की ये तीन इच्छायें स्वाभाविक हैं ।

हिन्दी—गम्भीर, महामुनियों द्वारा सम्मान्य, प्रतिपक्षियों को कँपा देने में सक्षम, संसार में खूब विस्तृत, (सत्पथ से) च्युत न हुआ, विशाल शुद्ध वंश चला—जिसमें वात्स्यायन नाम के असाधारण ब्राह्मण हुए, जो गृहस्थी होते हुए भी मुनियों-जैसे थे, जो श्रौत [१-सुनी-सुनाई बात, २—वैदिक आचार] पर आश्रित होते हुए भी मिथ्या बक-स्वर

---

१. कौर, कोर ।

२. परसुभाषित ।

सानुक्रोशाः, सत्यगुरवः, साधुसम्मताः, सर्वसत्त्वसौहार्दद्रवार्द्रहृदयाः, तथा सर्वगुणोपेताः, राजसेनानभिभूताः, क्षमाभाज आश्रितनन्दनाः अनिस्त्रिंशा विद्याधराः, अजडाः कलावन्तः, अदोषास्तारकाः, अपरोपतापिनो भास्वन्तः, अनु-

टीका=सांख्योक्ता त्रयो गुणाः तैः उपेताः=युक्ताः। राजसेन=रजोगुणसम्बन्धि-कामक्रोधादिरूपविकारेण अनभिभूताः=अपराजिताः इति विरोधः। रजोगुणयुक्तत्वेन=राजसविकाराभिभवस्य स्वाभाविकत्वात्, तत्परिहारस्तु सर्वगुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः युक्ता, अथच राजसेनया=राजकीयसैनिकैः अनभिभूताः अपराभूताः, सेनया आदृताः इत्यर्थः। क्षमा=पृथिवी तां भजन्तीति भाजः पृथिवीस्थाः इत्यर्थः। आश्रितम्=अध्युषितं नन्दनम्=इन्द्रवनं यैः ते, ये खलु पृथिवीस्थाः ते कथम् आश्रितनन्दनाः इति विरोधः, तत्परिहारस्तु, क्षमा=क्षान्तिः तद्वन्तः क्षमाशीलाः इत्यर्थः। अथ च आश्रितान्=निजाश्रये स्थितान् लोकान् नन्दयन्ति आनन्दयन्तीति। अनिस्त्रिंशाः=निस्त्रिंशः निष्क्रान्तः त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः अर्थात् त्रिंशदङ्गुलिपरिमाणतोऽपि दीर्घः खड्गः इत्यर्थः, अविद्यमानः निस्त्रिंशः खड्गः येषां ते अर्थात् खड्गरहिताः अपि विद्याधराः=यक्षाः [देवयोनिविशेषाः] शास्त्रानुसारेण माला-खड्ग-गुलिकाञ्जनादिना भेदेन भिन्नानामपि विद्याधराणां खड्ग-हस्तत्वं न व्यभिचरति इति खड्गरहिताः विद्याधराश्चेति विरोधः, तत्परिहारस्तु अनिस्त्रिंशाः=अक्रूरा दयालवः इत्यर्थः विद्यायाः धराः विद्यावन्तः इत्यर्थः। अजडाः=अशीताः ['शिशिरो जडः' इत्यमरः] कलावन्तः कलावान्-चन्द्रः चन्द्राः इत्यर्थः। अजडाः चन्द्राश्चेति विरोधः चन्द्रस्य सर्वदा शीतलत्वात्, तत्परिहारस्तु अजडाः=अमूर्खाः विद्वांसः इत्यर्थः। कलाः=चतुष्षष्टिसंख्यकाः नृत्यसंगीताद्याः आसां सन्तीति कलावन्तः। अदोषाः=दोषा=रात्रिः ['दोषा च नक्तं च रजनावपि' इत्यमरः] तद्रहिताः (अपि) तारकाः=नक्षत्राणि, तारकाः रात्रिरहिताः इति विरोधः। रात्रौ एव तारकाणामुद्गमात्, तत्परिहारस्तु अदोषाः=दोषरहिताः, अथ च तारकाः तारयन्तीति अर्थात् सदुपदेश-द्वारा पापोद्धारकाः। अपरोपतापिनः न परान् उपतापयन्ति=उष्णीकुर्वन्तीति तथाभूताः (अपि) भास्वन्तः सूर्याः, सूर्यः खलु सर्वेषामपि उपतापको भवतीति विरोधः, तत्परिहारः अपरोपतापकाः=अपरोत्पीडकाः अथ च भास्वन्तः=स्ववर्चसा दीप्यमानाः। न उष्मा=उष्णता येषाम् अस्तीति तथाभूताः अपि हुतभुजः=अग्नयः। अग्नौ तु उष्मा स्वाभाविकः इति विरोधः, तत्परिहारस्तु उष्मा=गर्वः तद्रहिताः, हुतं=देवेभ्यः यज्ञेषु प्रदत्तं भुञ्जते इति भुजः (कर्तरि क्विप्) यज्ञशिष्टाशिनः इत्यर्थः। अकुसृतयः=कुः=पृथिवी तस्यां न सृतिः=गतिः येषां तथाभूताः अभूगामिनः इत्यर्थः।तथाभूता अपि भोगिनः=सर्पाः, सर्पाः भुवि च न सर्पन्ति इति विरोधः, तत्परिहारश्च, न कुसृतिः=शाठ्यं येषां ते ['कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम्' इत्यमरः] अर्थात् शाठ्यरहिताः अथच अभोगिनः=सांसारिकभोगरहिताः। अस्तम्भाः स्तम्भरहिताः अपि पुण्यालयाः=पुण्यगृहाः देवालयादयः। देवालयाः स्तम्भरहिताः च इति विरोधः, तत्परिहारश्च स्तम्भः=जडीभावः। ["स्तम्भौ स्थूणा-जडीभावौ" इत्यमरः] हतप्रतिभतेत्यर्थः या कामादि-भावेषु दृश्यते तद्रहिताः। अथ च

टिप्पणी—सर्वगुणोपेताः—ये विशेषण यदि एक-एक करके लें तो कोई अनुपपत्ति नहीं आती। जैसे—सब गुणों वाले हैं, राजस विकार से अछूते हैं इत्यादि, परन्तु यदि इन्हें युगल रूप में लें तो इनमें विरोधाभास लगता है। विरोधवाचक 'अपि' शब्द के न होने से यह वाच्य नहीं है, व्यंग्य ही है।

हिन्दी—[१-बगुले का-सा स्वर २—छल-छद्म-भरा स्वर] नहीं अपनाये हुए थे, जो कुक्कुट-व्रत [१ कुक्कुट-भक्षण २—कुक्कुटाण्ड-परिमाण-भोजननियम] करते हुए भी बिल्ली की-जैसी आजीविका से रहित थे, साधारण जन-समाज से दूर रहा करते थे, छलछद्म और तोते की टें-टें-जैसे व्यर्थालाप के विचार से बचे रहते थे, पाखण्ड नहीं अपनाये हुए थे, धूर्तता को ठुकराए, प्रसन्न प्रकृति के मनोविकारों से परे (और) दूसरों की निन्दा से मन को फेरे हुए थे, जिनका तीनों वर्णों को छोड़कर (स्वजातीयों से) ही शुद्ध भोजन हुआ करता था, जो दृढ़ बुद्धि से (सांसारिक) इच्छाओं को परे किए हुए थे, स्थिर स्वभाव के थे, सिर झुकाने वालों से अनुराग किया करते थे, (वेदों की) अन्य सभी शाखाओं का संशय मिटाये हुए थे, सभी ग्रन्थों की गांठों को खोले हुए थे, कवि, वक्ता, ईर्ष्या-द्वेष से रहित सरस वाक्य बोलने वाले, नैपुण्य-भरे परिहासों के वेत्ता, नाचने, गाने और बजाने में (भी) थोड़ी बहुत गति रखने वाले, इतिहास से अतृप्त, दयावान, सत्य से पवित्र, सभी प्राणि-जात के प्रति सद्भावना के द्रव से सरस हृदय वाले थे, सब गुणों [१—दयादाक्षिण्यादि, २—सत्त्व, रज, तम] से युक्त होते हुए भी राजस [१ राजस काम-क्रोधादि वृत्तियों २ राज-सेना] से न दबाये जाने वाले थे; क्षमा [१. पृथिवी, २ क्षान्ति) वाले (होते हुए भी) आश्रित-नन्दन [१-नन्दनवन में रहने वाले, २-आश्रितों को आनन्द देने वाले] थे; अनिस्त्रिंश [१-खड्गरहित, २-अनिर्दय] होते हुए भी विद्याधर (१-यक्ष, २-विद्यावान्) थे; जड़ [१-शीतल, २-मूर्ख] न होते हुए (भी) कलावान् [१-चन्द्र, २-कलानिपुण] थे; अदोष [१-रात्रिरहित, २-दुर्गुणरहित] होते हुए (भी) तारक [१-तारे, २-तारने वाले] थे;

ज्मारणो हुतभुजः, अकुसृतयोऽभोगिनः, अस्तम्भाः पुण्यालयाः, अलुप्तक्रतुक्रिया दक्षाः, अव्यालाः कामजितः असाधारणा द्विजातयः ।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु, संसरति संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे कलौ, वहत्सु वत्सरेषु, व्रजत्सु वासरेषु, अतिक्रामति च काले, प्रसवपरम्पराभिरनवरतमापतति विकाशिनि वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव गुरुपक्षपाती द्विजो जन्म लेभे। तस्याभवन्नच्युत ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्रह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सच्चक्रनन्दकास्तनयाः । तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद्भूभार इवाचलकुलस्थितिश्चतुरुदधिगम्भीरोऽर्थपतिरिति नाम्ना समग्राग्रजन्मचक्रचूडामणिर्महात्मा सूनुः । सोऽजनयद्भृगुं हंसं शुचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं

टीका—पुण्यालयाः=पुण्यपात्राणि पुण्यवन्तः इत्यर्थः । न लुप्ता क्रतोः=यज्ञस्य क्रिया=अनुष्ठानं येषां तथाभूताः अपि दक्षाः=दक्षप्रजापतयः, दक्षयज्ञक्रिया च न लुप्ता इति विरोधः, दक्षप्रजापतेः यज्ञस्य शङ्करेण लोपितत्वात् तत्परिहारश्च दक्षा, निपुणाः । अव्यालाः न व्यालाः=सर्पाः येषां तथाभूताः अपि कामं जयन्तीति कामजितः (कर्तरि क्विप्) महादेवाः, महादेवस्य सर्परहितत्वे विरोधः । अव्यालाः=अशठाः ['भेद्य-लिंगे शठे व्यालः पुंसि श्वापद-सर्पयोः' इत्यमरः] अथ च कामजितः=कामनासु कृतसंयमाः । असाधारणाः=असामान्याः विशिष्टजातयः इत्यर्थः । द्विजातयः =ब्राह्मणाः ।

उत्पद्यमानेषु गृहीत-जन्मसु संसरति=गच्छति, यात्सु=[√या √शतृ]=व्यतत्सु, अवतीर्णे=प्रारब्धे कलौ= कलि-युगे, वहत्सु=गच्छत्सु, वत्सरेषु=वर्षेषु, अतिक्रामति=गच्छति, प्रसवानाम्=सन्ततीनां परम्पराभिः=श्रेणीभिः, अनवरतं=सततं यथा स्यात् तथा, आपतति=आगच्छति, विकाशः=विस्तारः अस्य अस्तीति तथोक्ते । कुबेरः नाम यस्य तथाभूतः विनतायाः अपत्यं पुमान् इति वैनतेयः=गरुडः सः इवेत्युपमा सा च श्लिष्टा । गुरौ=पितरि आचार्ये वा पक्षपातः=भक्तिः यस्य सः अन्यत्र गुरुभ्यां=विशालाभ्यां पक्षाभ्यां=गरुद्भ्यां पतति=उद्गच्छति इति० पाती द्विजः=ब्राह्मणः अन्यत्र पक्षी, जन्म=उत्पत्तिं लेभे=गृहीतवान् । युगानां=सत्य-त्रेता-द्वापर-कलीनाम् आरम्भाः= उपक्रमाः इवेत्युपमा सा च श्लिष्टा । ब्रह्म०—ब्रह्म=वेदः तस्य यत् तेजः=वर्चः वेदज्ञानजनितोद्योतः इत्यर्थः तेन जन्यमानः=उत्पद्यमान; प्रजानां=सन्तानानां विस्तारः=प्रसारः येषां ते, अन्यत्र ब्रह्मा=चतुर्मुखः तस्य तेजसा जन्यमानः प्रजानां=प्राणिजातानां विस्तारः येषु ते । नारायणस्य=विष्णोः बाहवः=भुजाः दण्डाः=इवेत्युपमिततत्पु० सतां= सत्पुरुषाणां चक्रं=समूहः तत् नन्दयन्ति=आह्लादयन्तीति० नन्दकाः अन्यत्र सन्तौ=विद्यमानौ चक्रं=सुदर्शनाख्यं नन्दकः=तन्नामकखड्गश्च येषु ते । भूः=पृथ्वी तस्याः भारः भारवती पृथिवीत्यर्थः, इवेत्युपमा सा च श्लिष्टा, अचला=स्थिरा कुलस्य स्थितिः=प्रतिष्ठा यस्मिन् तथाभूतः, अन्यत्र अचलानां=पर्वतानां कुले=समूहे स्थितिः=अवस्थानं यस्य तथाभूतः । चत्वारश्च ते उदधयः समुद्राः तद्वद् गम्भीरः [सूनुः], अन्यत्र चतुर्भिः उदधिभिः गम्भीरः=परिगतः इत्यर्थः । समग्राः च ते अग्रजन्मानः=ब्राह्मणाः तेषां चक्रं=समूहः तस्य मणिः

टिप्पणी—दक्ष प्रसिद्ध प्रजापति हुए । उन्होंने एक बार यज्ञ किया पर अपनी पुत्री सती और दामाद महादेव को आमन्त्रित नहीं किया । सती अपने आप ही गई तो उसका निरादर हुआ । क्रोध में आकर उसने अपने आपको यज्ञ-कुण्ड में भस्म कर दिया । सुनते ही महादेव ने रौद्र-रूप धारण किया और दक्ष के सारे यज्ञ को ध्वस्त करके दक्ष को भी समाप्त कर दिया । बाण ने कादम्बरी और अन्यत्र हर्षचरित में भी इसका उल्लेख कर रखा है । ब्रह्मतेजो० —सत्ययुग के प्रारम्भ में केवल-मात्र ब्रह्मा थे । बाद में उन्होंने अपने तेज—अपने मनः संकल्प—से चारों युगों में प्राणिजात का विस्तार किया । भूभार०—कहते हैं शेष के शिर पर स्थित पृथ्वी पहले हिलती-डुलती रहती थी, पीछे कुलाचलों से उसे स्थिर बनाया गया । पृथ्वी के प्रत्येक वर्ष के अपने-अपने सात-सात कुलपर्वत होते हैं, भारत के कुलपर्वत हैं—'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः' ।। [वायु पु० ४५.८८] बाण आगे चतुर्थ उच्छ्वास में भी लिख रहे हैं—'भिषजो भूधरा इव भुवो धृतिं चक्रुः' । भूधर शब्द सार्थक है ।

हिन्दी—दूसरों को सन्ताप [१-गर्मी २-पीडा] न देने वाले होते हुए (भी) भास्वान् [१-सूर्य, २-तेजस्वी] थे; उष्ण [१-गर्म, २-गर्वीले] न होते हुए (भी) हुतभुक् [१-अग्नि, २-यज्ञशिष्टभोजी] थे, कुसृति [१-पृथ्वी पर चलने, २-शठता] वाले न होते हुए (भी) भोगी [१-सर्प, २-धर्मविरुद्ध भोग वाले] थे; जो स्तम्भ [१-खम्बा, २-जड़भाव]-रहित होते हुए (भी) पुण्यालय [१-पुण्य-स्थान, २—पुण्यवान्] थे; यज्ञ-क्रिया का लोप न किये हुए (भी) दक्ष [१-दक्षप्रजापति, २-निपुण] थे; जो अव्याल [१-असर्प, २-अशठ) होते हुए

चित्रभानुं त्र्यक्षमहिदत्तं[1] विश्वरूपं चैकादशरुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान्पवित्रान्पुत्रान्। अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्। स बाल एव विधेर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्। अवर्धत च तेनाधिकतरमाधीयमानधृति[2]र्धाम्नि निजे।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगात्। संस्थिते च पितरि महता शोकेनाभीलमनुप्राप्तो दिवानिशं दह्यमानहृदयः

टीका—(रूपकालङ्कारः)। महात्मा सूनुः=पुत्रः। अजनयत्=उदपादयत्, रुद्रान् इवेत्युपमा, सा च श्लिष्टा। सोमा०—सोमः अमृतरसः इवेत्युपमिततत्पु०, तस्य शीकरैः=कणैः छुरितानि=पूर्णानीत्यर्थः मुखानि येषां तान्, रुद्रपक्षे सोमस्य=चन्द्रमसः शिरस्स्थितस्येति शेषः यः अमृत-रसः सुधा-द्रवः तेन छुरितानि मुखानि येषां तान्, पवित्रान् पुत्रान्। रुद्राणां शिव-रूपत्वात् तेषां मुखानां शिरस्स्थितचन्द्र-सकाशात् स्यन्दसुधाशीकरैः व्याप्तत्वं स्वाभाविकम्। राजदेवी अभिधानं=नाम यस्याः तथाभूतायाम्। बलवतः=प्रबलस्य विधेः=भाग्यस्य वशात् उपसम्पन्ना=मृता ['यथाह मनुः 'श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्'] तया जनन्या=मात्रा। जातः स्नेहः (मयि) यस्य सः, नितरां=पूर्णतया, मातुः कर्म इति मातृता ताम्=मातृसदृश-कार्यमित्यर्थः, तेन पित्रा, अधिकतरम् अतिशयेन अधिकं यथा स्यात्तथा आधीय-माना=उत्पाद्यमाना धृतिः धैर्यं यस्मिन् सः धाम्नि=गृहे कृतः=अनुष्ठितः उपनयनम् आदिः यस्य तथाभूतः क्रियाणां कलापः समूहः शास्त्रविहितकर्मजातं यस्य तथाभूतस्य, समावृत्तस्य=जातसमावर्तनसंस्कारस्य, गुरुगृहे वेदाध्ययनं कृत्वा तदाज्ञया गृहमागतस्येत्यर्थः। चतुर्दशवर्षेभ्यः ईषद् ऊनः असमाप्त-चतुर्दशवर्षः इति यावत् [चतुर्दश वर्ष+देशीय, 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्-देश्यदेशीयरः' पा० ५।३।६७] तस्य, श्रुतिः=वेदः, स्मृतिः=धर्मशास्त्रञ्च तयोः विहितं=कृतविधानं श्रौतं स्मार्तञ्चेत्यर्थः। द्विज-जना=ब्राह्मणाः तेषाम् उचितं=योग्यं पुण्य-जातं=सत्-कर्मजातं कृत्वा कालेन=यथाकालम्, अदशमीस्थः=दशम्यां वयोऽवस्थायां तिष्ठतीति दशमीस्थः, न दशमीस्थः इति अदशमीस्थः अर्थात् वयसः दशमं दशकं न प्राप्तः, अस्तम् अगात्=मृतः इत्यर्थः। संस्थिते=मृते। आभीलं=कृच्छ्रं कष्टम् आ समन्तात् भयं लातीति

टिप्पणी—अदशमीस्थः=दशमीस्थ वृद्ध को कहते हैं ['दशमीस्थौ क्षीणराग-वृद्धौ' इत्यमरः] वेदानुसार 'शतायुर्वै पुरुषः' अर्थात् मनुष्य की आयु शत-वर्ष है। सौ के दश दशक होते हैं, दशम दशक ९१-१०० वाला है। उसका पिता सौ से कम आयु का था।

हिन्दी—(भी) काम को जीतने वाले [१-महादेव, २-इच्छाओं पर नियन्त्रण रखने वाले] थे। और उनके इस तरह उत्पन्न होते, संसार (चक्र) के चलते रहते, युगों के बीतते, कलियुग के लगते, वर्षों के जाते, दिनों के कटते, और समय के व्यतीत होते रहते सन्तान-परम्पराओं से प्रगतिशील बने, लगातार आते हुए वात्स्यायन कुल में क्रम से बड़े-बड़े पक्षों (पंखों) से उड़ने वाले गरुड़पक्षी की तरह माता-पिता के पक्षपाती कुबेर-नामक ब्राह्मण ने जन्म लिया। ब्रह्मा के तेज से रची जाने वाली प्रजा के विस्तार वाले चार युगों के समान ब्रह्मवर्चस्व से सन्तति का विस्तार किये, चक्र और नन्दक रखे हुए नारायण की भुजाओं की तरह साधु-समाज को आनन्द देने वाले अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत—ये चार पुत्र हुए। उनमें से पाशुपत के अर्थपति नाम के एक ही महात्मा पुत्र हुए, जो अचलों के कुल पर स्थित, चार समुद्रों से घिरे हुए, भू-भार की तरह कुलस्थिति को अचल बनाए, चार समुद्रों के समान गम्भीर (एवं) सकल ब्राह्मण-समाज के चूड़ामणि थे। उन्होंने भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेद, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप इन ग्यारह पवित्र पुत्रों को जन्म दिया जिनका मुख चन्द्रमा के सुधा-रस की बूंदों से लिप्त रुद्रों के मुख की तरह अमृत-जैसे सोम-रस के कणों से लिप्त रहा करता था। उनके मध्य में से चित्रभानु ने राजदेवी-नामक ब्राह्मणी में बाण (नामक) पुत्र प्राप्त किया। वह बालक ही था कि प्रबल भाग्यवश स्वर्ग-सिधारी जननी से उसका वियोग हो गया। स्नेह रखे हुए पिता ने ही पूरी तरह से उसके लिए माता का काम किया और उस (पिता) के द्वारा खूब धैर्य दिलाया जाता हुआ वह अपने

---

१. त्र्यक्षं 'महिदत्तं'

२. धेधीयमानधृति।

कथंकथमपि कतिपयान्दिवसानात्मगृह एवानैषीत् । गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव । अभवंश्चास्य वयसा[1] समानाः सुहृदः सहायाश्च । तथा च । भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ,[2] वर्णकविर्वेणीभारतः, प्राकृतकृत्कुलपुत्रो

टीका—[क्षीरस्वामी] ['स्यात् कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्' इत्यमरः] अनुप्राप्तः, दिवा-निशं=रात्रिन्दिवं दह्यमानं=शोकेन ज्वलत् हृदयं यस्य तथाभूतः, कतिपयान्=कांश्चित् दिवसान्=दिनानि आत्म-गृहे स्वधाम्नि अनैषीत्=अतिवाहितवान् । विरलस्य भावः विरलता तां गते न्यूने भूते इत्यर्थः, अविनयस्य=दुर्विनीततायाः, दुर्वृत्तस्येत्यर्थः, निदानं=मूलकारणम् ['निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः] तस्य भावः तत्ता तया, स्वातंत्र्यस्य=स्वाधीनतायाः अर्थात् स्वतन्त्रता अविनयस्य आदिकारणं भवति, एतस्मात् कारणात् एव, कुतूहलं=कौतुकं बहलं=बहुलं यस्मिन् तस्य भावः तत्ता तया बालस्य भावः=बाल्यं तस्य, बाल्यावस्था हि कुतूहलपरा भवति इति हेतोः इत्यर्थः । यौवनारम्भस्य धैर्यस्य=धृतेः प्रतिपक्षः=विरोधी तस्य भावः तत्ता तया, यौवनम् अधीरं भवतीत्यर्थः, शिशोः भावः शैशवम् बाल्यम्=तस्य उचितानि=योग्यानि चपलस्य भावः चापलं [चपल्+अण्-भावे] तानि=चाञ्चल्यस्य कार्याणि इत्यर्थः आचरन्=कुर्वन् इत्वरः=एतीति [√इण्+क्वरप् 'इण्-नश्-जि-सर्तिभ्यः क्वरप्' पा० ३।२। १६३] अयनशीलः पर्यटकः यथेच्छावनविहारी इत्यर्थः, वयसा=वयोऽवस्थया, सुहृदः=मित्राणि, पारशवौ=शूद्रायाम् उत्पन्नौ, भाषायाः=जनभाषायाः, प्रणयिनौ=प्रेमिणौ, वर्णकविः=गाथादिषु गीतिदः, 'अपभ्रष्टगीतविद्' (शंकरः) अपभ्रंश-भाषागीतकारः इत्यर्थः प्राकृतकृत्=प्राकृतानां=महाराष्ट्री-शौरसेनी-मागधी-पैशाची-भाषाणां प्रणेता, कुलस्य=उच्चवंशस्य पुत्रः, बन्दिनौ=चारणौ, कात्यायनिका=अर्ध-वृद्धा काषाय-वसना विधवा ['कात्यायन्यर्धवृद्धा या काषायवसनाऽधवा' इत्यमरः] जाङ्गुलिकः=विषवैद्यः सर्पादि-विषाणां-चिकित्सकः इत्यर्थः ['विष-वैद्यो जाङ्गुलिकः इत्यमरः] ताम्बूल-दायकः=ताम्बुलिकः 'तमोली' इति भाषायां प्रसिद्धः, भिषक्-पुत्रः=भिषजः वैद्यस्य पुत्रः युवा वैद्यः इत्यर्थः, कलादः=स्वर्णकारः ['कलादो रुक्मकारके' इत्यमरः । 'कलाम् आदत्ते कलं=सुवर्णकलिकाम् 'आद्यति=आखण्डयति वा' इति क्षीरस्वामी] हैरिकः=स्वर्ण-काराणाम् अध्यक्षः इति शङ्करः । तदुक्तं—'स्वर्णकारः कलादः स्यात् तदध्यक्षस्तु हैरिकः' अथवा 'हीरकपण्योपजीवी' इति जीवानन्दः, अथवा हेरम्=आसुरीमाया तज्जानाति (ठक्) [चौरः इति धरणिः] चित्राणि करोतीति चित्रकृत्=चित्रकारः, पुस्तकृत्=पुस्तानि=लेप्यानि मृदादिना प्रतिमाः मूर्तीरिति यावत् करोति=निर्मातीति पुस्तकृत (√कृ+कर्तरि क्विप्) 'मृदा वा दारुणा वाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा ।

टिप्पणी—पारशवौ—ब्राह्मण द्वारा शूद्रा में उत्पन्न हुए वर्ण संकर को पारशव कहते हैं । बाण के चचा ताउओं के शूद्रा में उत्पन्न दो भाई थे । देखिए मनु०—'यः ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत् सुतम् । स पारयन्नेव शवः तस्मात् पारशवः स्मृतः' ।। [९।१७८] पारयन्नेव=जीवन्नेव शवः अर्थात् वह अपने पितरों को कुछ भी आध्यात्मिक लाभ नहीं पहुँचा सकता है, निरा शव है ।

हिन्दी—घर में बढ़ा । उपनयन आदि क्रिया-कलाप (एवं) समावर्तन संस्कार किए हुए लगभग चौदह वर्ष की आयु वाले (बाण के) पिता भी वेद और धर्मशास्त्र में विहित, ब्राह्मणोचित पुण्य के सभी काम करके समयानुसार (आयु का) दशवाँ दशक न पूरा किए ही चल बसे । और पिता के स्वर्ग सिधारने पर महान् शोक के कारण बड़े भारी संकट में फँसे, रात दिन हृदय में संतप्त हुए (उसने) कुछ दिन येन-केन प्रकार से अपने घर में ही काटे । स्वतन्त्रता के अविनय का मूल होने के कारण, बचपन के कुतूहलों से भरा होने के कारण, चढ़ती तरुणाई के अधीर होने पर अनेक बचकानी चपलताओं को करता हुआ घुमक्कड़ बन बैठा । समान आयु वाले इसके मित्र और सहायक हो गए । जैसे—दो वर्णसंकर भाई चन्द्रसेन और मातृषेण, जनभाषा-कवि ईशान, दो स्नेही रुद्र और नारायण, दो विद्वान् वारबाण और वासबाण, अपभ्रंशगीतकार वेणीभारत, प्राकृतकार कुलीनयुवा वायुविकार, अनंगबाण और सूचीबाण दो चारण, गेरुआ वस्त्रधारिणी जोगिन चक्रवाकिका, विषवैद्य मयूरक, तमोली चण्डक, युवावैद्य मन्दारक, पुस्तक वाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर, चौर्य-विद्यानिपुण सिन्धुषेण, लेखक गोविन्दक, चित्रकार वीरवर्मा, मूर्तिकार कुमारदत्त, मृदङ्ग बजाने वाला जीमूत, गायक सोमिल और ग्रहादित्य, केशविन्यासादि-शिल्पिका कुरङ्गिका, वंशीवादक मधुकर

१. सवयसः ।
२. वासधारो ।

वायुविकारः, वन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ, कात्यायनिका चक्रवाकिका, जाङ्गुलिको मयूरकः[1], ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः, हैरिकः सिन्धुषेणः[2], लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका केरलिका, लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहङ्गमः, दार्दुरिको[3] दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूडः । स एतैश्चान्यैश्चानुगम्यमानो बालतया निघ्नतामुपगतो देशान्तरालोकनकौतुकाक्षिप्त-

---

टीका—लोहरत्नैः कृतं चापि पुस्तमित्यभिधीयते' । मार्दङ्गिकः=मृदङ्ग-वादनं शिल्पम् अस्येति [मृदङ्ग+ठक् 'शिल्पम्' पा० ४।४।५५] मृदङ्गवादकः । गायनौ गायति=संगीतविद्यया उपजीवतीति [√गै+ण्युट् 'ण्युट् च' ३।१। १४७] गायकौ । सैरन्ध्री=अन्यवेश्मस्था स्वतन्त्रा केशादिप्रसाधिका शिल्प-जीविनी ['सैरन्ध्री परवेश्मस्था स्ववशा शिल्पकारिका' इत्यमरः] । वांशिकौ=वंशीवादनं शिल्पम् अनयोः इति वंशीवादकौ । गान्धर्वम्=गन्धर्वाणाम् इदम् इति (गन्धर्व+अण्) संगीतशास्त्रं तस्य उपाध्यायः आचार्यः । संवाहिका=संवाहयति=मर्दयति पादाद्यङ्गानीति [सम्+√वह्+णिच्+ण्वुल्] अङ्गमर्दिका । लासक-युवा=लसति=नृत्यति इति [√लस्+ण्वुल्] लासकः, स चासौ युवा=तरुण-नर्तकः । आक्षिकः=अक्षैः=पाशकैः दीव्यतीति (अक्ष+ठक् 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' पा० ४।४।२] आक्षिकः=द्यूतकारः । कितवः=धूर्तः । शैलालि-युवा=शिलालिना प्रोक्तं नट-सूत्रम् अधीते इति [पा० ४।३।११] शिलालि-सम्प्रदायस्य नटः । पाराशरी=पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रम् अधीते इति पाराशरी (पा० ४।३।११०) पाराशर्य-सम्प्रदायस्य बौद्धभिक्षुकः । क्षपणकः=जैनभिक्षुः । कथकः=कथयतीति [√कथ्+ण्वुल्] कथोपजीवी । शैवः=शिवोपासकः । मन्त्रसाधकः=मन्त्रान् साधयतीति कृतमन्त्रसिद्धिः इत्यर्थः । असुर-विवर-व्यसनी= असुराणां यद्विवरं=छिद्रं भूगर्तः इत्यर्थः तस्य व्यसनी=अनुरागी । धातूनां=सुवर्णादीनां वादं=सिद्धान्तं वेत्तीति ०विद्=रसायनसिद्धान्तविद्, रासायनिक-प्रक्रियया पारदादिभिः सुवर्णनिर्माता इत्यर्थः । दार्दुरिकः=दर्दुरः=मुरली-सदृशः वाद्ययन्त्रविशेषः तद्वादनं शिल्पम् अस्येति दार्दुरिकः । ऐन्द्रजालिकः=इन्द्रजालेन दीव्यतीति (इन्द्रजाल+ठक्) इन्द्रजालकारकः, मायाकारक इत्यर्थः । इन्द्रजालम् इन्द्राणाम्=इन्द्रियाणां जालम्=आवरकम् अथवा इन्द्रस्य=परमेश्वरस्य जालं माया इवेति । मस्करी=परिव्राजकः संन्यासीत्यर्थः ['भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी' इत्यमरः] महाभाष्यानुसारेण—'मा कृत मा कृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीति आह, अतो मस्करी परिव्राजकः' । अनुगम्यमानः=अनुसियमाणः, बालतया=बाल्यात् कारणात् निघ्नतां=निघ्नः=अधीनः तस्य भावः तत्ता ताम् ['अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः] उपगतः=प्राप्तः अर्थात् उक्तव्यक्तीनामधीनो भूतः, अन्ये देशाः इति देशान्तराणि तेषाम् आलोकनस्य=दर्शनस्य यत् कौतुकं=कुतूहलं तेन आक्षिप्तम्=आकृष्टं हृदयं=मनो यस्य तथा-

टिप्पणी—असुर-विवर—बाण ने इस शब्द का प्रयोग कितनी ही बार हर्षचरित में ही नहीं, कादम्बरी में भी किया है, किन्तु इसका सही-सही अर्थ करना कठिन है। म० म० काणे के अनुसार पूर्वापर प्रसंग देखकर इस शब्द का उन खानों की खड्डों से अभिप्राय है, जिनमें से खनिज कभी का निकाल लिया गया है । बाद में ऐसा विश्वास चल पड़ा कि वे असुरों की बनाई हुई हैं और वहाँ से जाते हुए पाताल का खजाना मिल जाता है । ये विवर खतरनाक होते हैं ।

हिन्दी—और पारावत, संगीताचार्य दर्दुरक, पाँव दबाने वाली केरलिका, युवा नर्तक ताण्डविक, जुआरी आखण्डल, धूर्त भीमक, शैलालि-सम्प्रदाय का युवा नट शिखण्डक, नर्तकी हरिणिका, पाराशर्य-सम्प्रदाय का बौद्ध भिक्षुक सुमति, जैन भिक्षुक वीरदेव, कथा सुननेवाला जयसेन, शिवभक्त वक्रघोण, मन्त्रसिद्धि वाला कराल, असुरविवरों (में जाने) का शौकीन लोहिताक्ष, रसायनविद्या का ज्ञाता विहङ्गम, दर्दुर बजाने वाला दामोदर, मदारी चकोराक्ष और संन्यासी ताम्रचूड़ ; इन्हें एवं अन्यों को साथ लिए, छोकरपन के कारण (उनके) अधीन बना हुआ, हृदय में अन्य देशों को देखने के कौतुक से आकृष्ट हुआ वह बाप-दादों से मिली ब्राह्मणलोगों के योग्य धन-सम्पत्ति के होते-होते भी एवं विद्यापरिशीलन (की परम्परा) के सतत चलते रहते भी घर से निकल भागा और स्वतन्त्र बना हुआ (एवं)

---

१. मायूरकः । २. सिद्धसेनः । ३. दार्दरिकः ।

हृदयः सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगात्। अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन[1] स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम् ।

अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिर्मनोहृन्ति बृहन्ति राजकुलानि वीक्षमाणः, निरवद्यविद्याविद्योतितानि च गुरुकुलानि सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः, स्वभावगम्भीरधीधनानि[2] विदग्धमण्डलानि च गाहमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत् । महतश्च कालात्तामेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रयामात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमत् । तत्र च चिरदर्शनादभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः [3]ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैराप्तैरुत्सवदिवस इवाभिनन्दिताभिगमनो बालमित्रमण्डलस्य मध्यगतो मोक्षसुखमिवान्वभवदिति ।

इति श्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते वात्स्यायनवंशवर्णनं नाम प्रथम उच्छ्वासः ।[4]

टीका —भूतः, सत्सु=विद्यमानेषु अपि पितृपितामहेभ्यः उपात्तेषु=प्राप्तेषु पैतृकेषु इत्यर्थः ब्राह्मणजनानाम् उचितेषु =योग्येषु विभवेषु=सम्पत्तिषु, अविच्छिन्ने=अविरते विद्यायाः प्रसङ्गे=समासङ्गे परिशीलने इत्यर्थः गृहात् निरगात् =निरगच्छत् । निरवग्रहः=अवग्रहात्=प्रतिबन्धात् निष्क्रान्तः निरङ्कुशः स्वच्छन्दः इत्यर्थः ['स्वच्छन्दो निरवग्रहः इत्यमरः]। ग्रहः=ग्रहणं तद्वान् गृहीतः इत्यर्थः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, नवयौवनेन=नवयौवनवता स्वैरिणा=स्वेच्छाचारिणा मनसा महतां=महापुरुषाणाम् उपहसितुं योग्यः उपहास्यः तस्य भावः तत्ता ताम् उपहासपात्रतामित्यर्थः । अगात्= प्राप्तवान् ।

अतिशयेन उदाराः=सरला उत्कृष्टा इति यावत् व्यवहृतिः=व्यवहारः=आचरणमित्यर्थः यस्य तथाभूतः। मनः हरन्तीति [मनः+√हृ+क्विप्+तुक्] मनोहराणि बृहन्ति=महान्ति, राजकुलानि=राजगृहान् वीक्षमाणः= अवलोकयन्, निरवद्या=अवद्या=न वदितुं योग्या इति [नञ्+√वद्+यत् 'अवद्य-पण्य० पा० ३।१।१०१ इति निपातनात्] गर्ह्या इत्यर्थः । अथवा अवद्यं=दोषः तद्रहिता इति निरवद्याः अगर्ह्याः निर्दोषा याः विद्याः ताभिः विद्यो- तितानि=प्रकाशितानि प्रथितानीत्यर्थः, गुरु-कुलानि शिक्षा-स्थानानि आश्रमाणीत्यर्थः, सेवमानः=भजमानः । महार्हा= महान् अर्हः=मूल्यं येषां तथाभूताः बहुमूल्याः इत्यर्थः ये आलापाः=वार्तालापाः वाद-विवादाः इत्यर्थः तैः गम्भीराः =गभीराः पूर्णाः इत्यर्थः, या गुणवतां=गुणिनां गोष्ठ्यः=सभाः ताः उपतिष्ठमानः=तासु उपस्थितः सन् इत्यर्थः स्वभावेन=प्रकृत्या गम्भीरा धीः=बुद्धिः एव धनं येषां तथाभूतानि विदग्धानां=विदुषां मण्डलानि समाजानि गाहमानः=अन्तः प्रविशन् विपश्चित्=विद्वान् ['विद्वान् विपश्चिद् दोषज्ञः' इत्यमरः] तस्य इयम् इति [विपश्चित्+ अण्+ङीप्] विद्वत्सम्बन्धिनी ताम्, आत्मनः+स्वस्य वंशस्य कुलस्य उचितां=योग्यां प्रकृतिं=स्वभावम् अभजत्= प्राप्तवान् । वात्स्यायनवंशस्य आश्रयः= निवास-स्थानं यस्यां तथाभूताम्, जन्मनः भुवं=जन्म-भूमिम् । अभिनवीभूतः =नूतनीभूतः स्नेहश्च सद्भावश्च येषां तैः । संस्तवः=परिचयः ['संस्तवः स्यात् परिचयः' इत्यमरः] तेन सहितं यथा स्यात् तथा परिचय-पूर्वकमित्यर्थः, प्रकटितं=प्रकाशितं ज्ञातेयम्=ज्ञातेः भावः इति [ज्ञाति+ढक् 'कपि-ज्ञात्यो- ढंक्' पा० ५।१।१२७] यैः तैः आप्तैः=बन्धुभिः, मोक्षपक्षे यथार्थवक्तृभिः तत्त्वदर्शिभिः इत्यर्थः, अभिनन्दितः=प्रशस्तः अभिगमनं यस्य तथाभूतः । बालकालीनं मित्रमण्डलम्, बालमित्रमण्डलम् अन्यत्र बालः=निस्तेजा यः मित्रः सूर्यः तस्य मण्डलं=बिम्बम् तस्य मध्यगतः=मध्यस्थितः मध्येभूत्वा गतः मोक्षस्य=मुक्तेः सुखम्=आनन्दम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अन्वभवत्=अनुभूतवान् । योगिनः सूर्यमण्डलं भित्त्वा परमपदं गच्छन्तीति प्रागुक्तम् । योगिनं दृष्ट्वा सूर्यो निस्तेजस्त्वं याति । यथोक्तम्—'तपस्यन्तं रविं दृष्ट्वा निस्तेजा जायते रविः' । मोक्षमार्गप्रयत्ने तु तेजो नैवास्य विद्यते ।।

हिन्दी—नवयौवन वाले स्वेच्छाचारी मन से जकड़ा हुआ जैसा वह बड़े लोगों का उपहास-पात्र बन गया । बाद को धीरे-धीरे उदार व्यवहार को अपनाता हुआ, वह बड़े-बड़े रमणीय राजकुलों को देखता हुआ, पवित्र विद्याओं से उज्ज्वल बने गुरुकुलों में जाता हुआ, गुणी लोगों की बहुमूल्य वार्तालापों से भरी गोष्ठियों में उपस्थित होता हुआ, स्वभावतः विपुल प्रज्ञा के धनी विद्वानों की मंडलियों में मग्न हुआ, फिर अपने कुल के योग्य पण्डितोचित स्वभाव पर आ गया । और बहुत समय के बाद फिर वात्स्यायनवंश के आश्रय, अपने जन्मस्थान ब्राह्मणाधिवास में आ पहुँचा और वहाँ चिरकाल बाद देखने के कारण नया स्नेह और सद्भाव-भरे, परिचय-पूर्वक नाता रिश्ता प्रकट करते हुए बन्धुओं द्वारा उत्सव-दिवस की तरह आगमन पर अभिनन्दित किया जाता हुआ, बाल्य-काल के मित्र-मण्डल के मध्यस्थित वह ऐसा लग रहा था मानो निस्तेज बने मित्र (सूर्य) मण्डल के मध्यस्थित होकर तत्त्वदर्शियों द्वारा प्रशस्त मोक्ष-सुख को पा गया हो ।

श्री बाणभट्ट-कृत हर्षचरित का वात्स्यायनवंश-वर्णन नाम का प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।

---

१. यौवनस्वैरिणा ।
२. धीधनानि ।
३. ससंभ्रम०, संस्तवप्रकटित ।
४. इति श्रीमहाकविचक्रचूडामणिश्रीबाणभट्टविरचिते हर्षचरिते महाकाव्ये वात्स्यायनवंशवर्णनं नाम प्रथम उच्छ्वासः सम्पूर्णः ।।

द्वितीय उच्छ्वासः

अतिगम्भीरे भूपे कूप इव जनस्य निरवतारस्य ।
वधति समीहितसिद्धिं गुणवन्तः पार्थिवा घटकाः ॥ १ ॥
रागिणि नलिने लक्ष्मीं दिवसो निदधाति दिनकरप्रभवाम् ।
अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम् ॥ २ ॥

टीका—अतिशयेन गम्भीरे=गभीरे अगम्ये इत्यर्थः, कूपे=उदपाने इवेत्युपमायाम्, अतिगम्भीरे=अतिदुर्बोधे अज्ञातहर्षामर्षादिविकारे इत्यर्थः, भूपे=राज्ञि निरवतारस्य=अवतारः=नीचैः अवतरणसाधनं सोपानपङ्क्तिः इत्यर्थः, निः=न अवतारः यस्य तथाभूतस्य । भूप-पक्षे अवतारः=आगमनं राज्ञः समीपे प्रवेशः इत्यर्थः तद्रहितस्य जनस्य=व्यक्तेः, गुणः=रज्जुः सः एषाम् अस्तीति रज्जुयुक्ताः इत्यर्थः । अन्यत्र गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः तद्वन्तः पार्थिवाः=पृथिव्याः विकाराः मृत्तिकया निर्मिताः इत्यर्थः । अन्यत्र राजानः ['राजा राट् पार्थिव-क्ष्माभृत्' इत्यमरः] घटका=घटाः एव घटकाः (स्वार्थे कः) कलशाः । अन्यत्र घटयन्ति=संयोजयन्तीति √घट्+णिच्+ण्वुल् (कर्तरि) घटकाः=संयोजकाः सहायाः इत्यर्थः, समीहितस्य=अभिलषितस्य कूपपक्षे जलाहरण-रूपस्य, भूप-पक्षे च राज्ञः समीपे प्रवेश-रूपस्य सिद्धिं=निष्पत्तिं प्राप्तिमित्यर्थः, दधति=कुर्वन्तीत्यर्थः ।

दिवसः=दिनम्, रागिणि=रागः लौहित्यं रक्तवर्णः इत्यर्थः सः अस्य अस्तीति तस्मिन्=रक्तवर्णे नलिने=कमले दिनं करोतीति दिनकरः=सूर्यः तस्मात् प्रभवः=उत्पत्तिः यस्याः तथाभूतां सूर्यजनितामित्यर्थः लक्ष्मीं=शोभां निदधाति=आरोपयति लक्ष्मीयुक्तं करोतीत्यर्थः । अर्थात् दिवसः कमले सूर्य-जनितां शोभां स्थापयति, विना दिवसं न सूर्यः उदेति, नापि च कमलानि विकसितानि भूत्वा श्री-सम्पन्नानि जायन्ते । अत्रायमर्थः-अप्रस्तुतः प्रस्तुतार्थस्तु दिवसः=दिवस-सदृशपरोपकारी सामन्तः कृष्णः रागिणि=रागः अनुरागः हर्षवर्धनम् प्रति भक्तिः इत्यर्थः तद्युक्ते नलिने=नलिनसदृशे परापेक्षविकासशीले बाणे दिवसकरः=सूर्य-सदृश-तेजस्वी-सम्राट् श्रीहर्षवर्धनः प्रभवः=उत्पत्तिस्थानं यस्याः तथाभूतां लक्ष्मीम्=सम्पदम् निदधाति=दधातीत्यर्थः, अर्थात् कृष्णः मध्यगः भूत्वा

टिप्पणी—इस प्रारम्भिक पद्य में बाण द्वितीय उच्छ्वास के प्रतिपाद्य की ओर संकेत कर देते हैं । आख्यायिका के लिए यह नियम है—'आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् । अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थ-सूचनम्' । अर्थात् उच्छ्वास के प्रारम्भ में अन्यापदेश—अन्योक्ति—द्वारा किसी पद्य से भावी अर्थ की सूचना दे देनी चाहिए । द्वितीय उच्छ्वास में बाण बताएँगे कि किस तरह सम्राट् हर्षवर्धन का कोई कृष्ण नाम का सामन्त—जो सम्राट् का चचेरा भाई था—उन्हें घर से बुलाकर सम्राट् के पास ले गया और उनसे मिला दिया । उक्त पद्य में सामान्यतया उन गुणवान् राजाओं का वर्णन किया गया है, जिनकी सहायता से साधन-हीन लोग अपने कार्य में सफल हो जाते हैं । परन्तु संकेत विशेष राजा—कृष्ण—की ही ओर है । बाण ने उपकारी राजाओं की तुलना

हिन्दी—बड़े गहरे कुएँ पर नीचे उतरने के साधन से रहित व्यक्ति का अभिलषित (जल ग्रहण) पूरा कर देने वाले रस्सी बंधे मिट्टी के घड़ों की तरह गुणी सामन्त, सम्राट् के समीप प्रवेश न पा सकने वाले मनुष्य की मनोरथ-सिद्धि कर दिया करते हैं ॥ १ ॥

दिवस लाल-कमल में सूर्य द्वारा उत्पन्न हुई शोभा को धर देता है । (कृष्ण राज-भक्त बाण को सम्राट् हर्षवर्धन द्वारा प्रदत्त धन-सम्पत्ति से पूर्ण कर देता है । बिना गुण-दोष का विचार किए दूसरों का भला करना सज्जन पुरुषों का व्यसन हुआ करता है ॥ २ ॥

अथ तत्रानवरताध्ययनध्वनिमुखराणि, भस्मपुण्ड्रकपाण्डुरललाटैः कपिलशिखाजालजटिलैः कृशानुभिरिव क्रतुलोभागतैर्बटुभिरध्यास्यमानानि, सेकसुकुमारसोमकेदारिकाहरितायमानप्रघनानि, कृष्णाजिनविकीर्णशुष्यत्पुरोडाशीयश्यामाकतण्डुलानि, बालिकाविकीर्यमाणनीवारबलीनि, शुचिशिष्यशतानीयमानहरितकुशपूलीपलाशसमिन्धि, इन्धनगोमयपिण्ड-

---

टीका—बाणाय श्रीहर्षवर्धन-सकाशात् बहु धनं दापितवान् । न अपेक्षिताः=विचारिताः गुणाश्च दोषाश्च यस्मिन् तथाभूतः परेषाम्=अन्येषाम्, उपकारः=हितकरणम् सतां=सज्जनानां व्यसनम्=आसङ्गः स्वभावः भवतीत्यर्थः। अत्राऽपि कृष्ण-कृत बाणोपकारोऽर्थः सूच्यते, बाणस्य दोषेषु अपि सङ्केतः । अत्र सामान्येन अर्थेन पूर्वार्ध-गत-विशेषार्थस्य समर्थनाद् अर्थान्तर-न्यासालङ्कारः । स च सामान्येन विशेषस्य कृष्णभूपस्य व्यज्यमानत्वेन अप्रस्तुतप्रशंसया सङ्कीर्यते । छन्दश्च आर्या ।

अथ 'तत्र ''बान्धवानां भवनानि भ्रमन् सुखमतिष्ठत्' इत्यन्वयः । अनवरतं=निरन्तरं यत् अध्ययनं=पठनं तस्य ध्वनिभिः=मुखोच्चारणैः मुखराणि=शब्दायमानानि भवनानि इत्यस्य विशेषणम् । **भस्म०**—भस्मनः पुण्ड्रकैः=त्रिपुण्ड्रैः पाण्डुराणि=श्वेतानि ललाटानि=भालानि येषां तथाभूतैः 'बटुभिः' इत्यस्य विशेषणम् । कपिलानि=पीतानि यानि शिखाजालानि=शिखाकलापाः, कृशानु-पक्षे ज्वाला-समूहाः तैः जटिलैः=जटावद्भिः, अन्यत्र पूर्णैः । क्रतुः=यज्ञः तस्य लोभः तद्दर्शनस्य तत्र प्राप्तव्य-दक्षिणायाश्च अभिलाषः, अग्नयोऽपि क्रत्वभिलाषिणः भवन्ति । कृशानुभिः वह्निभिः इवेत्युत्प्रेक्षा, सा च श्लिष्टा । बटुभिः=बालैः अध्यास्यमानानि=अधिष्ठीयमानानि । **सेक०**—सेकेन=जलसिञ्चनेन सुकुमारः=सुकोमला सोमस्य=सोमलतायाः केदारिका=लघुकेदारः इति केदारिका क्षुद्र-क्षेत्रं ('क्यारी' इति भाषायां प्रसिद्धा) तया हरितायमानाः=हरितीभवन्तः प्रघनाः (णाः) अलिन्दाः ['प्रघाण-प्रघणालिन्दाः बहिर्द्वार-प्रकोष्ठके' इत्यमरः] येषां तथाभूतानि । **कृष्णा०**—कृष्णाजिनेषु=कृष्णवर्णमृगचर्मसु विकीर्णाः=विस्तारिताः शुष्यन्तः=आतपे शुष्काः भवन्तश्च ये पुरोडाशीयाः=पुरोडाशाय हिताः [पुरोडाश+छ, छस्य ईय] पुरोडाशः=पुरः=अग्रे दाश्यते=दीयते इति√दाश्+घञ् (कर्मणि) निपातनात् दस्य डः । देवेभ्यो दीयमानः अन्नचूर्ण-निर्मितः हविर्विशेषः । यः कपालेषु (पात्रविशेषेषु) दीयते, श्यामाकाः=एतन्नामकाः ('सौंक' इति भाषायां प्रसिद्धाः) तण्डुलाः येषु तथाभूतानि । **बालिका०**—बालिकाभिः=कन्यकाभिः विकीर्यमाणाः=प्रक्षिप्यमाणाः नीवाराः=वन्यधान्यविशेषाः एव बलयः भूतयज्ञ-रूपेण पशु-पक्ष्यादिभ्यः दीयमानाः उपहाराः येषु तथाभूतानि । **शुचि०**—शुचयः=पवित्राः ये शिष्याः=छात्राः तेषां शतैः=शतसंख्याभिः आनीयमानाः=आह्रियमाणाः हरित-कुशस्य=हरितवर्ण-दर्भस्य पूल्यः पूलाः गुच्छाः इत्यर्थः पलाशानि पत्राणि च समिधः=यज्ञार्थम् इन्धनानि च येषु तथाभूतानि । **इन्धन०**—इन्धनानि=काष्ठानि च गोमय-पिण्डाः=शुष्कगोमयगोलकाश्च ['उपले'

टिप्पणी—घटों से की है । विशेषण श्लिष्ट हैं, अतः यहाँ श्लिष्टोपमा और साथ ही सामान्य पार्थिव से विशेष पार्थिव—कृष्ण—की ओर संकेत होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार भी है । छन्द आर्या है, जिसका लक्षण यह है : 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या' ॥ अर्थात् जिसके प्रथम और तृतीय पाद में १२-१२ मात्रायें हों,—द्वितीय पाद में १८ और चतुर्थ में १५ मात्रायें हों वह आर्या होती है ॥१॥

इस पद्य में भी अन्यापदेश द्वारा भाव्यर्थ की ओर संकेत किया गया है । बाण को सम्राट् हर्षवर्धन से मिलाकर कृष्ण ने उनका महान् उपकार किया । सम्राट्, बाण की योग्यता और कवित्व पर मुग्ध हो गए और उन्हें राजकवि बनाकर धन-सम्पत्ति से लाद दिया ॥ २ ॥

हिन्दी—इसके बाद (बाण) वहाँ बहुत समय से देखे बन्धु-बान्धवों के घरों में प्रसन्न होकर घूमता-फिरता हुआ सुख-पूर्वक रहा—ऐसे घर, जो लगातार (छात्रों की) अध्ययन-ध्वनि से मुखरित होते रहते थे, जहाँ भस्म के त्रिपुण्ड्र से श्वेत बने भालों वाले, पीतवर्ण के ज्वाला-पुञ्जों से पूर्ण, यज्ञ के लोभ में आई हुई अग्नियों-जैसे लग रहे, पीत शिखा-जाल से जटाधारी बने, यज्ञ [में दक्षिणा] के लोभ से आए हुए बालक रह रहे थे, जहाँ द्वारों के बाहर के प्रकोष्ठ जल-सिंचन से कोमल बनी सोमलताओं की क्यारियों से हरे बने रहते थे, जहाँ काली मृग-छालाओं पर बिखरे पुरोडाशोपयोगी श्यामक-चावल सूखते रहते थे, जहाँ बालिकाओं द्वारा बलि-रूप में नीवार का चारा बिखेरा जाया करता था, जहाँ सैंकड़ों पवित्र शिष्यों द्वारा कुशा की हरी-हरी पूलियां, पत्ते एवं समिधायें लाई जाती रहती थीं, जहाँ इन्धन और उपलों के ढेर पड़े रहते थे, जहां आमिक्षा [दही और गर्म दूध की बनी बलि) में

कूटसङ्कटानि, आमिक्षीयक्षीरक्षारिणीनामग्निहोत्रधेनूनां खुरवलयविलिखिताजिरवितर्दिकानि, [1]कमण्डलव्यमृत्पिण्डमर्दन-व्यग्रयतिजनानि, वैतानवेदीशङ्कव्यानामौदुम्बरीणां शाखानां राशिभिः पवित्रितपर्यन्तानि, वैश्वदेवपिण्डपङ्क्ति[2]पाण्डुरितप्रदेशानि, हविर्धूमधूसरिताङ्गनविटपिकिसलयानि, [3]वत्सीयवत्सपालकलालितलत्तरलतर्णकानि, क्रीडत्कृष्ण-शारच्छागशावकप्रकटितपशुबन्धप्रबन्धानि, शुकसारिकारब्धाध्ययनदीयमानोपाध्यायविश्रान्तिसुखानि, साक्षात्त्रयीतपो-

---

टीका—इति भाषायां प्रसिद्धाः] तेषां कूटैः=चयैः सङ्कटानि=पूर्णानि। आमिक्षीय०—आमिक्षा=दधि-योगेन क्षीरे जायमाना विकृतिः ['आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद् दधियोगतः' इत्यमरः। तत्र च श्रुतिः—'पक्वे पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेव्यामिक्षा' इति क्षीरस्वामी] अर्थात् दधि-तप्तक्षीरसम्मिश्रणात्मकवैश्वदेवबलिः तस्यै हितानि इति आमिक्षीयाणि [पुरोडाशीयवत्] यानि क्षीराणि=दुग्धानि तानि क्षरन्ति=श्च्योतन्ति इति० क्षारिण्यः तासाम्। अग्निहोत्रार्थं (पालिताः) धेनवः=गावः तासाम् [च० तत्पु०] खुराणां वलयैः=परिधिभिः गोलाकार-खुरैः इत्यर्थः विलिखिता=उत्खाता मृदिता इत्यर्थः अजिरेषु=प्राङ्गणेषु ['अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः] वितर्दिकाः=वेदिकाः ['स्याद् वितर्दिस्तु वेदिका' इत्यमरः। तत्र 'दारु-परिष्कृता चतुरस्रा विश्रान्तभूः' इति क्षीरस्वामी] येषां तथाभूतानि। कमण्डल०—कमण्डलुः=मुनीनां योगिनां वा मृत्काष्ठादिमय-पात्रविशेषः तस्मै हितम् इति कमण्डलु+यत् ['उगवादिभ्यो यत् [पा० ५।१।२]=कमण्डलव्यं यत् मृदः=मृत्तिकायाः पिण्डम्=राशिः तस्य मर्दने—चूर्णीकरणे व्यग्रः=लग्नः यतिजनः=यतयः येषु तथाभूतानि। वैतान०—वितानः=यज्ञः तस्य इयमिति वितान+अण्+ङीप् वैतानी यज्ञसम्बन्धिनी या वेदी=वेदिका तदर्थं तन्मानार्थमिति यावत् ये शङ्कवः=कीलकाः तेभ्यः हिताः इति शङ्कु+यत् ['तस्मै हितम्' पा० ५।१।५] शङ्कव्याः तासाम्, औदुम्बरीणाम् उदुम्बर नामक—वृक्षविशेष—सम्बन्धिनीनां शाखानां=विटपानां राशिभिः=समूहैः पवित्रिताः=पवित्रीकृताः [तत्करोति० णिच्+क्त] पर्यन्ताः प्रान्त-भागाः येषां तथाभूतानि। वैश्वदेव०—विश्वेषां देवानाम् इमे इति वैश्वदेवाः ये पिण्डाः=ओदन-गोलकाः तेषां पङ्क्तिभिः=श्रेणिभिः पाण्डुरिताः श्वेतीकृताः प्रदेशाः=भूभागाः येषु तथाभूतानि। हविर्धू०—हविषाम्=अग्नौ हुतानां हव्यानां धूमैः धूसरितानि=धूसरवर्णीकृतानि अङ्गनस्य=प्राङ्गणस्य विटपिनां=वृक्षाणां किसलयानि=पल्लवानि येषु तथाभूतानि। वत्सीय०—वत्सेभ्यः=गोशिशुभ्यः हिताः इति वत्सीयाः [वत्स+छ+ईय] गोवत्स-प्रेमिणः इत्यर्थः ये वत्सपालकाः=वत्सरक्षकाः तैः लालिताः=परामृष्टाः परिरब्धाः तरलाः=चञ्चलाः इतस्ततः कूर्दमानाः इत्यर्थः, तर्णकाः=सद्योजाताः वत्साः येषु तथाभूतानि ['सद्योजातस्तु तर्णकः' इत्यमरः]। क्रीडत्०—क्रीडन्तः=विहरन्तः ये कृष्णाः=श्यामवर्णाः शाराः=मिश्रितवर्णाश्च ये छागानाम्=अजानां शावकाः=शिशवः तैः प्रकटितः=सूचितः पशुबन्धानां=यज्ञविशेषाणां [यत्र पशवो बध्यन्ते] प्रबन्धः सन्ततिः सातत्यमित्यर्थः येषु तथाभूतानि। एतेन ज्ञायते बाण-समये पशु-यज्ञाः सततं प्रवर्तन्ति स्म। शुक०—शुकाः=कीराः सारिकाः=पक्षिविशेषाश्च [मैना इति भाषायां प्रसिद्धाः] ताभिः आरब्धम्=उपक्रान्तं यत् अध्ययनम्=वेदादीनां पाठः तेन दीयमानं=प्रतिपाद्यमानम् उपाध्यायेभ्यः=आचार्येभ्यः विश्रान्तेः=विश्रामस्य सुखं येषु तथाभूतानि। अर्थात् शुक-सारिका अपि आचार्यैः अध्याप्यमानान् वेद-मन्त्रान् पुनः पुनः श्रुत्वा तान् रटन्ति स्म। शिष्यांश्च तासामुच्चारणानुसारेण मन्त्रान् उच्चारयतो

टिप्पणी—वैश्वदेव—हमारे शास्त्रानुसार भोजन करने से पूर्व भात की वैश्वदेव बलि देने का विधान है। 'विश्वदेव' विशेष देवताओं के एक समूह को कहते हैं। जिसके अन्तर्गत ये दश देवता हैं—'वसुः सत्यः क्रतुर्दक्षः कालः कामो धृतिः कुरुः। पुरुरवा माद्रवाश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः'॥

हिन्दी—काम आने वाला दूध चुआने वाली अग्निहोत्र के लिए रखी गायों के गोल खुरों से आंगनों की वेदियां खनी हुई रहती थीं, जहाँ यति लोग कमण्डलों [को बनाने] के काम में आने वाली मिट्टी के ढेलों के चूरने में व्यस्त रहा करते थे, जिनके प्रान्त-भाग यज्ञ-वेदी [नापने] की खूटियों का काम देने वाली गूलर की टहनियों के समूहों से पवित्र बने रहते थे, जहाँ के प्रदेश विश्वेदेवों के निमित्त (रखे) भात के पिण्डों की पंक्तियों से सफेद बने रहते थे, जहाँ हवियों के धुएँ से आँगन वृक्षों के पत्ते काले पड़ जाया करते थे, जहाँ बछड़ों से प्रेम करने वाले वत्सपालक तत्काल जन्मे हुए (और) किलोलें करते हुए बछड़ों से लाड़ प्यार करते रहते थे, जहाँ क्रीड़ा करते हुए काले और चितकबरे बकरी के बच्चों से पशुबन्ध यज्ञों की परम्परा प्रकट होती रहती थी, जहाँ तोते-मैनाओं द्वारा आरम्भ किये

---

१. कामण्डलव्य। २. ० पिण्ड-पाण्डुरित०। ३. वत्सीयबालकलालित०।

वनानीव [illegible]

तत्रस्थस्य चास्य कदाचित्कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः सम्फुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः। प्रत्यग्रनिर्जितस्यास्तमुपगतवतो वसन्तसामन्तस्य बालापत्येष्विव पयःपायिषु नवोद्यानेषु दर्शितस्नेहो मृदुरभूत्।

टीका—दृष्ट्वा आचार्याः विश्राम्यन्ति स्म। साक्षात्=प्रत्यक्षं त्रय्या=वेदत्रयस्य=तपोवनानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, चिरात्=बहुकालात् दृष्टानां बान्धवानां=बन्धूनां भवनानि=गृहाणि प्रीयमाणः प्रहृष्यन् भ्रमन्=अटन् सुखं यथा स्यात् तथा अतिष्ठत्=गृहे तस्थौ। तत्र तिष्ठतीति√स्था+क [कर्तरि] तत्रस्थः तस्य अस्य=बाणस्य, कुसुमानां समयः=वसन्तः एव युगम्=तत् उपसंहरन्=समापयन् अजृम्भत=प्रकटीभूतः इत्यर्थः, ग्रीष्मः अभिधानं यस्य तथाभूतः, सम्फुल्लाः=विकसिताः याः मल्लिकाः=ग्रीष्मर्तोः पुष्पविशेषाः ताभिः धवलाः=श्वेताः अट्टाः=अट्टालिकाः एव हासः यस्य तथाभूतः ग्रीष्मः। महादेवपक्षे सम्फुल्लमल्लिकावत् धवलः अट्टहासः शब्दयुक्तहास्यं यस्य तथाभूतः। पुनः कविः ग्रीष्मे विजेतृभूपत्वारोपं करोति, प्रत्यग्र=सद्यः यथा स्यात्तथा निर्जितस्य=पराजितस्य, अस्तं=क्षयम् उपगतवतः=प्राप्तवतः वसन्तः एव सामन्तः=अधीनीकृतनृपः तस्य बालाः=बाल्यावस्थायां स्थितानि यानि अपत्यानि=सन्तानानि तेषु, इवेत्युपमायाम्, पयः=जलं पिबन्तीति अपत्य-पक्षे पयः=दुग्धं पिबन्तीति ०पायीनि तेषु। नवोद्यानेषु—नूतनोपवनेषु अपत्य-पक्षे नवम्=प्रत्यग्रम् उद्यानम्=उत्=उत्थाय यानं=चलनं येषां तथाभूतेषु अर्थात्, अचिरात् एव चलितुं प्रारब्धेषु, दर्शितः=प्रकटितः स्नेहः=क्लिन्नता, अन्यत्र वात्सल्यं येन तथाभूतः मृदुः कोमलः अभूत् अर्थात् प्रारम्भे ग्रीष्मः तत्कालमेव नवोद्यानानि स्वप्रखरतेजसा न निरदहत्। अभिनवं यथा स्यात् तथा उदितः=प्रवृत्तः अन्यत्र सिंहासने

टिप्पणी—यहां कवि ग्रीष्म के महाकाल—भीषण काल—पर महाकाल—शिव—का और वसन्त-ऋतु पर युग का आरोप करता है। खिली हुई मल्लिका (चमेली का एक भेद) के पुष्पों से श्वेत बनी अट्टालिकाओं पर शिव की मल्लिका की तरह धवल अट्टहास का आरोप है। युग संहार के समय महादेव का अट्टहास प्रसिद्ध ही है। जिसप्रकार महादेव युग का संहार करते हैं उसी तरह ग्रीष्म भी वसन्त-ऋतु का संहार कर बैठा। महाकाल शब्द श्लिष्ट है। अतः यहाँ साङ्ग-रूपक है और उपमा के साथ उसका संकर है। **वसन्त-सामन्तस्य**—ग्रीष्म-भूपति ने वसन्त-सामन्त को जीत तो लिया, पर उसके छोटे-छोटे दूध पीने वाले बच्चों पर बड़ा मृदु रहा। बच्चे अभी-अभी चलना सीख रहे थे। उनके साथ उसने वात्सल्य भाव का व्यवहार रखा। अन्य विजयी क्रूर राजा तो शत्रु का समूलोच्छेद कर देता है। ग्रीष्म के प्रारम्भ में नवोद्यानों में पानी की सिंचाई होती रहती है और वे गीले रहते हैं क्योंकि ग्रीष्म अभी मृदु है। यहाँ ग्रीष्म पर विजयी भूप का आरोप गम्य है जबकि वसन्त पर सामन्त का आरोप वाच्य है; इसलिए एकदेशविवर्ति रूपक है जिसका अंग 'बालापत्येष्विव' यह श्लिष्टोपमा है, इस तरह दोनों का अंगांगीभाव संकर है। **ऋतुराजस्य**—यहाँ ग्रीष्म पर राजत्वारोप है, राज्याभिषेक के समय जल-प्रोक्षण से छींटे पड़ने से डुलाई जा रही चांवरी भी गीली हो गई और वह चाँवरी बनी ग्रीष्म में स्नान किए हुए कामिनियों के गीले-खुले केश-समूह जिसे कामदेव पकड़े हुए था। वसन्त में तो कामविकार स्वतः स्फूर्त होता है, किन्तु ग्रीष्म में नहाई कामिनियों के गीले तथा खुले बाल कामविकार पैदा करते हैं। यहाँ रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर है। इसी तरह के भाव के लिए देखिए कालिदास—स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्त-सायन्तनमल्लिकेषु। कामो वसन्तात्यय-मन्दवीर्यः केशेषु लेभे रतिमङ्गनानाम्'। [रघु० १६।५०]

हिन्दी—जा रहे (मंत्रों के) अध्ययन के कारण आचार्य-लोगों को विश्राम-सुख दिया जाता रहता था और जो ऐसे लग रहे थे मानो तीनों वेदों के तपोवन हों। और उसके वहीं रहते-रहते कभी खिली हुई चमेली से धवल बनी अट्टालिकाओं का हास लिये ग्रीष्म-नामक महाकाल [उग्रसमय] खिली चमेली की तरह धवल अट्टहास करनेवाला महाकाल [महादेव] बनकर वसन्त-रूपी युग का संहार करता हुआ जमुहाई ले बैठा। नयी-नयी हार खाये हुए और समाप्त हुए वसन्त-रूपी सामन्त के दूध पीने वाले (एवं) पहले-पहल चलने लगने वाले छोटे-छोटे बच्चों की तरह जल पीने वाले नये उद्यानों के प्रति स्नेह [१. वात्सल्य २. आर्द्रता] दिखाता हुआ [विजयी ग्रीष्म भूप] मृदु (१. दयालु २. कम ताप-वाला) रहा। और अभी-अभी उदित [१. प्रवृत्त २. राज्याभिषिक्त] और तपता हुआ ग्रीष्म समय सारी पृथिवी के सभी फूलों को बन्धन-मुक्त कर बैठा। स्नान करने से गीले बने कामिनियों के खुले केश ऐसे लग रहे थे मानो ग्रीष्म

अभिनवोदितश्च [illegible]कुसुम[illegible]मोक्षमकरोत्प्रतपन्नुष्णसमयः। स्वयमृतुराजस्याभिषेका[1]र्द्राश्चामरकलापा इवागृह्यन्त कामिनीनां चिकुरचयाः कुसुमायुधेन। हिमदग्धसकलकमलिनीकोपेनेव हिमालयाभिमुखीं यात्रामदादंशुमाली।

अथ ललाटन्तपे तपति तपने [2]लिखितललाटिकापुण्ड्रकैरलकचीरचीवर[3]संवीतैः स्वेदोदबिन्दुमुक्ताक्षवलयवाहिभिर्दिनकराराधननियमा इवागृह्यन्त ललना ललाटेन्दुभिः[4]। चन्दनधूसराभिरसूर्यम्पश्याभिः कुमुदिनीभिरिव दिव-

---

टीका—स्थितः, प्राप्तराज्याभिषेकः इत्यर्थः। सकलानि च तानि कुसुमानि तेषां बन्धनात्=वृन्तात् मोक्षं=विमुक्तिम् अकरोत्, प्रतपन्=१. प्रतापीभवन्, २. प्रकर्षेण तापं कुर्वन् उष्णसमयः=ग्रीष्मकालः। अत्र ग्रीष्मसमये अभिनवराज्याभिषिक्तभूपस्य कुसुमेषु च बन्दिजनस्य व्यवहार-समारोपः। यथा खलु प्रहृष्टः नवाभिषिक्तः नृपः कारागारतः बन्दिजनान् मोचयति तथैव ग्रीष्मसमयोऽपि पुष्पाणि वृन्तेभ्यः विमुक्तानि अकरोत्। अत्र समासोक्तिः। ऋतुः=ग्रीष्मः एव राजा तस्य अभिषेकेण=स्नानेन [चिकुरपक्षे] शिरसि पवित्रोदक-सिञ्चनेन, (चामरपक्षे) आर्द्राः=क्लिन्नाः चामराणां कलापाः=समूहाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कामिनीनां=सुन्दरीणां चिकुराणां केशानां चयाः=कलापाः कुसुमानि एव आयुधानि यस्य तेन=कामदेवेन। हिम०—हिमेन=तुषारेण दग्धाः=प्लुष्टाः याः कमलिन्यः=पद्मिन्यः तत्कारणात् कोपेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। हिमालयः=उत्तरदिक्स्थितः हिमवान् पर्वतः तस्य अभिमुखीं=सम्मुखी तं प्रति इत्यर्थः। यात्राम्=अभियानम् अदात्=अकरोदित्यर्थः। अंशुमाली=सूर्यः।

ललाटं=मूर्धानं तपतीति ललाट+√तप्+खश् मुम् ['असूर्यललाटयोर्दृशितपोः' पा० ३।२।३६]=ललाटतापकः तस्मिन्। तपति=तापं कुर्वति, तपने=तपतीति√तप्+ल्युट् (कर्तरि) सूर्यः तस्मिन्। लिखितः रचितः इत्यर्थः ललाटिका=ललाटे चन्दनस्य अङ्कः एव पुण्ड्रकः यैः तथाभूतैः, अलकाः=चूर्णकुन्तलाः एव चीरचीवरैः=चीराणां=वल्कलानां चीवराः=वस्त्राणि तैः संवीतैः=वेष्टितैः। स्वेदस्य=उदबिन्दवः जल-बिन्दवः एव मुक्तानां=मौक्तिकानाम् अक्षवलयाः=अक्षमालाः ताः वहन्ति=धारयन्तीति तथोक्तैः। दिनकरस्य=सूर्यस्य आराधनं=प्रसादनं तस्य व्रतानि=नियमाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अगृह्यन्त=अध्रियन्तः, ललनानां=कमिनीनां=ललाटानि एव इन्दवः चन्द्राः। स्त्रीणां मुखचन्द्राः ललाटिका-रूपं पुण्ड्रकम् अलक-रूप चीर-चीवरं स्वेदबिन्दुरूप-मौक्तिकाक्षमालां धृत्वा सूर्याराधनव्रतमिवाचरन्तीति भावः, अत्र रूपकाणामङ्गाङ्गिभावसम्बन्धात् साङ्गरूपकम्। चन्दनेन धूसराभिः=धवलिताभिः चन्दनचर्चिताभिः इत्यर्थः। अन्यत्र चन्दनवत् धूसराभिः=धवलाभिः, न सूर्यं पश्यन्तीति असूर्यम्पश्याः ताभिः (उपर्युक्तललाटंतप-शब्दवत्

टिप्पणी—हिमदग्ध०—ग्रीष्म में सूर्य का उत्तरायण होता है। इसपर कवि कल्पना करता है कि सूर्य मानो क्रुद्ध होकर हिमालय पर अभियान कर रहा है क्योंकि हिम ने उसकी पत्नियों—कमलिनियों—को भस्म कर डाला था। कमलिनियां सूर्य के प्रकाश में खिलती हैं और सूर्य 'कमलिनी-वल्लभ' कहा जाता है।

हिन्दी—ऋतु-रूपी भूप के (राज्य) अभिषेक में गीले हुए चामर हों जिन्हें स्वयं कामदेव ने (हाथ में) ग्रहण कर रखा है। हिम द्वारा जलाई गई कमलिनियों के कारण क्रोध में मानो सूर्य ने हिमालय के प्रति अभियान छेड़ दिया हो।

बाद को सूर्य के ललाट तपा देने वाला बन जाने पर ललाट पर चित्रित चन्दन के रूप में त्रिपुण्ड्र लगाये, बालों की लटों के रूप में वल्कल वस्त्र पहने, पसीने की बूंदों के रूप में मोतियों की जपमाला धारण किए, ललनाओं के मुखरूपी चन्द्रों ने मानो सूर्य की उपासना का व्रत ले लिया। नींद में अलसाई हुई आँखें रत्नों की चमक तक भी नहीं सह पाईं, तेज धूप की तो बात ही क्या? चक्रवाकों के युगलों द्वारा सराहे जाने वाली उडुपों (बेड़ों) सहित नदियों की तरह उडुप (चन्द्र) सहित रात्रियाँ ग्रीष्म-समय द्वारा छोटी कर दी गईं। सूर्य के ताप के कारण लोगों की न केवल ताजी और तीव्र पाटल पुष्पों की सुगन्ध से सुगन्धित सौरभ वाले जल पीने की ही, अपितु बैसी ही हवा लेने की भी इच्छा हो गई।

---

१. ० राजस्यागृह्यन्ताभिषेका०।

२. चन्दनलिखित।

३. अलकचीवर०।

४. ललाटेन्दुद्युतिभिः।

समसुप्यत कुमुदिनीभिः। निद्रालसा रत्नालोकमपि नासहन्त दृशः, किमुत जरठमातपम्। अशिशिरसमयेन चक्रवाक-मिथुनाभिनन्दिताः सरित इव तनिमानमानीयन्त सोडुपाः शर्वर्यः। अभिनवपटुपाटलामोदसुरभिपरिमलं न केवलं जलम्, जनस्य पवनमपि पातुमभूदभिलाषो दिवसकरसन्तापात्।

क्रमेण च खरखगमयूखे,[1] खण्डितशैशवे, शुष्यत्सरसि, सीदत्स्रोतसि, मन्दनिर्झरे, झिल्लिकाझाङ्कारिणि, कातरकपोतकूजितानुबन्धबधिरितविश्वे, [2]विश्वसत्पतत्त्रिणि, करीषङ्कषमरुति, विरलवीरुधि, रुधिरकुतूहलिकेसरि-किशोरकलिह्यमानकठोरधातकीस्तवके, ताम्यत्स्तम्बेरमयूथवमथुतिम्यन्महामहीधरनितम्बे, [3]दिनकरदूयमानद्विरदवीन-

टीका—व्युत्पत्तिः] कुमुदिनीभिः=कुमुद्वतीभिः इवेत्युपमायाम्, असुप्यत शयनम् अक्रियत। निद्रया अलसाः=आलस्ययुक्ताः रत्नानाम् आलोकं=प्रकाशम् अपि दृशः=चक्षूंषि किमुत=किं वक्तव्यम्, जरठं=प्रवृद्धम् आतपम्=घर्मम्। अशिशिर-समयेन=ग्रीष्मकालेन चक्रवाकानां मिथुनैः=युगलैः अभिनन्दिताः=कृताभिनन्दनाः, सरितः=नद्यः इवेत्युपमायाम्, सरित्स्थितोडुपेषु चक्रवाकाणां गृहाणि भवन्तीत्यभिनन्दकारणम्, तनोः कृशस्य भावः इति तनु+इमनिच् (भावे) तम् आनीयन्त प्रापितवत्यः। उडुपैः=प्लवैः परस्परबद्धकाष्ठदण्डनिर्मितैः नौका-विशेषैः 'बेड़ी' इति भाषायां प्रसिद्धैः (सरित्पक्षे), उडूनि=नक्षत्राणि पातीति उडुपः नक्षत्रेशः चन्द्रः इत्यर्थः तैः तेन च सह वर्तमाना शर्वर्यः=रात्रयः। अभिनव०—अभिनवः=नवीनः पटुः तीव्रः पाटलानां=पुष्पविशेषाणां 'पादर' इति भाषायां प्रसिद्धानां यः आमोदः=सुगन्धः तेन सुरभिः=सुगन्धिः परिमलः=वासः यस्य तथाभूतम्। इदं जलस्य पवनस्यापि च समानं विशेषणम्। अभिलाषः=इच्छा दिवसकरस्य=सूर्यस्य सन्तापात्=तपनकारणात्। कालिदासेन तुलना क्रियताम्—'सुलभ-सलिलावगाहाः पाटल-संसर्ग-सुरभि-वनवाताः' (शाकुन्तलम्)।

क्रमेण च…प्रावर्तन्त…मातरिश्वानः इत्यस्ति वाक्यम्। खराः=प्रखराः भीषणाः इत्यर्थः, खगस्य=खे=आकाशे गच्छतीति खगः सूर्यः तस्य मयूखाः=किरणाः यस्मिन् तथाभूते, एतत् अन्यानि च 'निदाघ-समये' इत्यस्य विशेषणानि सन्ति। खण्डितं=समाप्तमित्यर्थः शैशवं=बाल्यं यस्य तथाभूते अर्थात् ग्रीष्मकालः अत्यन्तं प्रवृद्धः। शुष्यन्ति=शोषमुपगच्छन्ति सरांसि यस्मिन् तथाभूते सीदन्ति=क्षयं गच्छन्ति स्रोतांसि=नदी-जल-धाराः यस्मिन् तथाभूते। मन्दाः=स्वल्पीभूताः निर्झराः=झराः यस्मिन् तथाभूते। झिल्लिकानां=भृङ्गारीणां 'झींगुर' इति भाषायां प्रसिद्धानां कीटविशेषाणां झङ्कारः='झां' इति शब्दः अस्मिन् अस्तीति तथाभूते। कातराः=ग्रीष्माकुलाः इत्यर्थः ये कपोताः पक्षिविशेषाः तेषां कूजितानां=कूजनानाम् अनुबन्धेन=अविच्छेदेन सातत्येन इत्यर्थः, बधिरितं=बधिरीकृतम् विश्वं=जगत् येन तथाभूते। विशेषेण श्वसन्तः=दीर्घमुच्छ्वसन्तः इत्यर्थः, पतत्रिणः=पक्षिणः यस्मिन् तथाभूते करीषं=शुष्कगोमयं कषति=उपवाहयति भिनत्ति वा इति करीष्+खश् मुम् च ['सर्व-कूलाभ्रकरीषेषु कषः' पा० ३।२।४२] 'गोविड् गोमयमस्त्रियाम्। तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री' इत्यमरः। मरुत्=वायुः यस्मिन् तथाभूते। विरलाः=अल्पाः वीरुधः=लताः यस्मिन्। ग्रीष्मे पत्राणां विगलनात् लताः विरला एव दृश्यन्ते इति भावः। रुधिर०—रुधिरे=रक्ते यत् कुतूहलं=कौतुकम् इच्छेत्यर्थः तत् एषाम् अस्तीति कुतूहलिनः ये केसरिणां=सिंहानां किशोरकाः=शिशवः तैः लिह्यमानाः=रक्तभ्रान्त्या आस्वाद्यमानाः कठोराः=पूर्णविकसिताः इत्यर्थः, धातक्याः=रक्तपुष्पविशेषस्य लतायाः स्तबकाः=गुच्छकाः यस्मिन् तथाभूते। अत्र भ्रान्तिमान् अलङ्कारः। ताम्यत्०—ताम्यत् क्लाम्यत् घर्माकुलमित्यर्थः यत् स्तम्बेरमाणाम्=स्तम्बे=तृणे रमन्ते इति स्तम्ब √रम्+अच् (स्तम्ब-कर्णयोरमिजपोः' पा० ३।२।१३] स्तम्बेरमाः (अलुक् समासः)=हस्तिनः तेषां यत् यूथं=समूहः तस्य वमथुः √वम्+अथुच् [पा० ३।३।८२] शुण्डनिर्गतजलकणाः तेन तिम्यन्तः (√तिम् + शतृ) आर्द्रीभवन्तः महतां=विपुलानां महीधराणां=गिरीणां नितम्बाः=कटकाः पार्श्वभागाः इत्यर्थः यस्मिन् तथाभूते। दिनकर०—दिनकरेण=सूर्येण दूयमानाः=खिद्यमानाः ये द्विरदाः=द्वौ रदौ=दन्तौ येषां तथाभूताः हस्तिनः इत्यर्थः तेषां दीनेषु

हिन्दी—धीरे-धीरे ग्रीष्म समय के उग्र हो जाने पर—ऐसा ग्रीष्म समय, जिसमें सूर्य की किरणें तेज हो गईं, जिसका शैशव समाप्त हो बैठा, जिसमें झील-तालाब सूखने लगे, (नदियों की) जल-धारायें क्षीण होने लगीं, झरने हल्के पड़ गए, झींगुरों का झंकार चल पड़ा, तापभीत कबूतरों के लगातार चल रहे कलरवों द्वारा जगत् बहरा बना दिया गया, पक्षी दीर्घ सांस लेने लगे, हवा सूखा गोबर उड़ा ले जाने लगी, लतायें विरली हो गईं, खून के कुतूहल से सिंहों के शिशु पूरे खिले हुए धातकी के गुच्छों को चाटने लगे, (गर्मी में) थके हाथियों के झुण्डों की सूड़ों के जल-कणों से

1. मयूखखण्डित०।　　2. श्वसत्पत०।　　3. 'दिनकर' एतन्नास्ति।

वदनाश्यानदानश्यामिकालीनमूकमधुलिहि, लोहितायमानमन्दारसिन्दूरितसीम्नि, सलिलस्यन्दसन्दोह[1]सन्देहमुह्यन्महा-महिषविषाणकोटिविलिख्यमानस्फुटत्स्फाटिकदृषदि, घर्ममर्मरितगर्मुति, तप्तपांशुकुकूलविकिरणकातरविकिरे[2], विवरशरणश्वाविधे, तटार्जुनकुररकूजाज्वरविवर्तमानोत्तानशफरशारपङ्कशेषपल्वलाम्भसि, दावजनितजगन्नीराजने, रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले, प्रतिदिशमाटीकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकटलुण्ठकाः,[3]

टीका——=व्यथितेषु वदनेषु=मुखेषु आश्याना किमपि शुष्का या दानश्यानिका=मदजलस्य कृष्णवर्णलेखा इत्यर्थः तस्याम् आलीनाः=स्थिताः मूकाः=झङ्कारशब्दम् अकुर्वाणाः इत्यर्थः मधुलिहः=भ्रमराः यस्मिन् तथाभूते। **लोहिता०**—लोहितायमानाः पुष्पविकासकारणात् रक्तवर्णीभवन्तः ये मन्दाराः=वृक्षविशेषाः तैः सिन्दूरिताः=जातसिन्दूराः सिन्दूरलिप्ताः इवेति गम्योत्प्रेक्षा, सीमानः=ग्रामप्रान्ताः यस्मिन् तथाभूते। सीमासु आरोपिताः मन्दारवृक्षाः सिन्दूर-रञ्जितस्तम्भाः इव दृश्यन्ते स्म इति भावः। **सलिल०**—सलिलस्य=जलस्य यः स्यन्दः=प्रस्रवः तस्य सन्दोहः समूहः तस्य सन्देहेन=भ्रान्त्या मुह्यन्तः=मोहं बुद्धिभेदमित्यर्थः गच्छन्तः, विकृतचित्ताः इत्यर्थः महान्तः=विशालाः ये महिषाः तेषां विषाणानां=शृङ्गाणां कोटिभिः=अग्रभागैः विलिख्यमानाः=खन्यमानाः अतएव स्फुटन्त्यः=त्रुटयन्त्यः स्फाटिकाः=स्फटिकसम्बन्धिन्यः दृषदः=शिलाः यस्मिन् तथाभूते, सौरातपे भ्राजमानाः स्फटिकशिलाः जलमिति बुद्धया महिषाः शृङ्गैः विदारयन्ति स्मेति भावः। **घर्म०**—घर्मेण आतपेन मर्मरिताः=मर्मर-शब्दं कुर्वत्यः गर्मुतः=तृणधान्यविशेषाः ['गर्मुच्छ्यामाकप्रमुखा अपि' इत्यमरः] यस्मिन् तथाभूते। **तप्त०**—तप्ताः=उष्णीभूताः पांशवः=धूलयः एव कुकूलाः=तुषानलाः ['कुकूलं शङ्कुभिः कीर्णे श्वभ्रे ना तु तुषानले' इत्यमरः] तेषु यत् विकिरणम्=अपस्किरणं पादनखैः भूमेः उत्खननमित्यर्थः, तस्मात् कातराः=भीताः विकिराः कुक्कुटादिपक्षिणः यस्मिन् तथाभूते ['विष्किरः शकुनिर्विकरो वा' पा० ६।१।१५०]। विवरं=रन्ध्रं शरणम्=आश्रयः येषां तथाभूताः श्वाविधाः=शल्याः यस्मिन् तथाभूते ['श्वावित्तु शल्यः' इत्यमरः) 'श्वाविध्' शब्दः बाणेन 'श्वाविधः' इत्यकारान्तः प्रयुक्तः। **तटार्जुन०**—तटेषु=तीरेषु अर्जुनाः=तन्नामकवृक्षविशेषाः तेषु ये कुरराः=पक्षिविशेषाः तेषां कूजैः=कूजितैः आसमन्तात् यः ज्वरः=महाकष्टमित्यर्थः तेन विवर्तमानाः=विलुण्ठन्तः ये शफराः=आजिष्णु-लघुमत्स्यविशेषाः तैः शाराणि=चित्राणि पङ्कशेषाणि=पङ्कः=कर्दमः एव शेषः=अवशिष्टः येषां तथाभूतानि पल्वलानां=तडागानाम् अम्भांसि=जलानि यस्मिन् तथाभूते। ग्रीष्मकारणात् शुष्कजलेषु कर्दम-शेषेषु पल्वलेषु स्वभक्षणोद्यतानां कुरराणां कूजनं शृण्वन्तः भीत-भीताः शफराः कर्दमे विलुण्ठन्ति स्मेति भावः। **दाव०**—दावः=वनाग्निः तेन जनितं=कृतं जगतः नीराजनम्=आरार्तिकं यस्मिन् तथाभूते। अत्र नीराजनमिति गम्योत्प्रेक्षा। रजन्याः=रात्रेः राजयक्ष्मणि=क्षयरोगे। रात्रिर्हि ग्रीष्मे क्रमशः क्षयं गच्छति। रूपकालङ्कारः। कठोरीभवति वृद्धिं गच्छति उग्रे भवति सति। प्रतिदिशं=दिशि दिशि आटीकमानाः आहिण्डमानाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ऊषरेषु=मरुस्थलेषु प्रपाः=पानीयशालाः ['प्रपा पानीयशालिका' इत्यमरः] च वाटाः=वृति-स्थानानि ['वाटो वृतिस्थानम्' इति मेदिनी] च कुट्यः कुटीराणि पटलानि=छदयश्च तेषां प्रकटं यथा स्यात् तथा लुण्ठकाः=अपहर्तारः। एतत् अन्यानि च 'उन्मत्ताः मातरिश्वानः' इत्यस्य विशेषणानि।

हिन्दी—बड़े-बड़े पर्वतों के पार्श्व-भाग गीले होने लगे, सूर्य से खिन्न होते हुए हाथियों के व्यथित मुखों पर कुछ सूखी पड़ी मद-जल की काली रेखाओं पर बैठे हुए भ्रमर चुपचाप हो गए, लाल बने हुए मन्दार-वृक्षों से (ग्राम) सीमायें सिन्दूर-लिप्त (सी) हो गईं, जलप्रवाह-समूह के सन्देह के कारण भ्रम में पडे बड़े-बडे भैंसों के सींगों की नोकों से स्फटिक की शिलायें खोदी और फोड़ी जाने लगी, धूप के कारण गर्मुत नाम का तृण-धान्य मर्मर-ध्वनि कर बैठा, तपी हुई धूलि-रूपी तुषाग्नि को (मुर्गे आदि) पक्षी पैरों द्वारा खरोंचकर डरने लगे, शल्य (साही) छेदों की शरण ले बैठे, तालाबों का कीचड़-मात्र शेष रहा जल किनारों के अर्जुन-वृक्षों पर (स्थित) क्रौंच-पक्षियों के शब्द [सुनने] से आकुलता में छटपटाती हुईं चितलेटीं मछलियों से रंगबिरंगा हो उठा, वनाग्नि द्वारा जगत् का नीराजन कर दिया गया और जो (ग्रीष्म-समय) रात्रि का क्षय-रोग है, उन्मत्त वायु चल पड़े जो प्रत्येक दिशा में इधर-उधर भ्रमण करते हुए मरुस्थलों के प्याउओं, बाड़ों, झोपड़ियों और छतों के प्रत्यक्ष लुटेरे थे, जो खूब पके हुए

१. सन्दोहमुह्य।
२. कुकूलकातर०।
३. प्रपाकूट०।

प्रपक्वकपिकच्छूगुच्छ[illegible], स्थूलदृषच्चूर्णमुचः, मुचुकुन्दकन्दलदलनदन्तुराः, समन्ततः[1] पतन्मुखरचीरीगणमुखशीकरशीक्यमानतनवः, तरुणतरणितापतरले तरन्त इव तरङ्गिणि मृगतृष्णिकातरङ्गिणीनामलीकवारिणि, शुष्यच्छमीमर्मरमारवमार्गलङ्घनलाघवजवजङ्घालाः, रैणवा-

टीका—प्रपक्व०—प्रकर्षेण पक्वाः=परिणताः कपिकच्छूनां कपीनाम् अपि कच्छूः=कण्डूः याभ्यः इति कपिकच्छूः तासाम् कण्डूकारकवृक्षविशेषाणां—'बूटी' अथवा 'केवाँच' इति भाषायां प्रसिद्धानां ये गुच्छाः=स्तबकाः तेषां छटानां पंक्तीनां छोटने=भंगे चापलैः=चपलस्य कर्मभिः अकाण्डे=अकस्मात् कण्डूलाः=जातकण्डवः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शर्करिलाः=शर्करावत्यः ['शर्करिलः शार्करः शर्करावति' इत्यमरः] बालुकायुक्ताः इत्यर्थः, कर्कराः=कठोराः स्थलीः=स्थानानि कर्षन्तः=खर्जयन्तः । स्थूल०—स्थूलानि दृषदां=प्रस्तराणां चूर्णानि=चूर्णितकणानित्यर्थः मुञ्चतीति ०मुचः," मुचुकुन्द०—मुचुकुन्दानां यानि कन्दलानि=प्ररोहाः नवोद्भिन्नपत्राणि इत्यर्थः तेषां दलनेन=त्रोटनेन दन्तुराः सञ्जात-दन्ताः इवेति गम्योत्प्रेक्षा । उन्मत्तोऽपि दन्तान् विवृणोति । समन्ततः=परितः । पतन्०—पतन्तः=उत्पतन्तः उड्डीयमानाः इत्यर्थः, मुखराः शब्दायमानाः चीरीणां=झिल्लिकानां [भृङ्गारी चीरुका चीरी झिल्लिका च स्त्रियामिमाः'—इत्यमरः] 'झींगुर' इति भाषायां प्रसिद्धानां कीटविशेषाणां ये गणाः=समूहाः तेषां मुखानां शीकरैः जलकणैः शीक्यमानाः=सिच्यमानाः आर्द्रीक्रियमाणाः इत्यर्थः [√शीकृ सेचने, भ्वा०, शानच् कर्मणि] तनवः=शरीराणि येषां तथाभूताः । तरुण०—अतिशयेन तरुणः तीव्रः इत्यर्थः यः तरणेः=सूर्यस्य तापः तेन तरले=चञ्चले, तरङ्गिणि=तरङ्गाः अस्मिन् सन्तीति तथोक्ते, तरङ्गयुक्ते, मृगतृष्णिकाः=मरीचिकाः ['मृगतृष्णा मरीचिका' इत्यमरः] एव तरङ्गिण्यः=नद्यः तासाम् अलीके=असत्ये वारिणि जले तरन्तः=तरणं कुर्वन्तः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । शुष्यत्०—शुष्यन्तः=तापकारणात् शुष्काः भवन्त्यः याः शम्यः अग्निगर्भाः वृक्षविशेषाः ताभिः मर्मरः=मर्मर-ध्वनियुक्तः यः मारवः=मरोः अयम् इति [मरु+अण्] मरुसम्बन्धी मार्गः तस्य लङ्घने=अतिक्रमणे लाघवं=नैपुणं तेन यः जवः=वेगः तेन जङ्घालाः=क्षिप्राः आशुगामिनः इत्यर्थः ['जङ्घालोऽतिजवस्तुल्यौ' इत्यमरः]। रैणव०—रेणूनाम् इमे इति रैणवाः (अण्) रेणुसम्बन्धिनः ये आवर्ताः=भ्रमयः

टिप्पणी—मृग-तृष्णा—गर्मी में एक तरफ से पृथिवी की गर्मी ऊपर उठती है तो दूसरी तरफ से सूर्य की किरणें पड़ती हैं। दोनों तेजों के मिलने से लहराते हुए जल का-सा प्राकृतिक दृश्य बन जाता है। ऐसा विशेषतः मरुस्थलों में होता है। इसे मृगतृष्णा या मृगमरीचिका कहते हैं। जल का आभास होने के कारण मृगों को तृष्णा हो जाने से इसे मृगतृष्णा कहते हैं। हवायें मरुस्थलों पर उड़ती हुई ऐसी लग रही थीं मानो मिथ्या-नदियों के जल में तैर रही हों। पागल भी यों ही स्थल को जल समझकर तैरने लगते हैं। रैणव०—अब कवि वायुओं पर आरभटी-नटों का आरोप करता है। आरभटी नाटक-रचना की एक विशेष शैली होती है जिसमें मार-धांड़, तोड़-फोड़, युद्ध-ठगी आदि बातें हुआ करती हैं जैसी कि आजकल हमें किसी चलचित्र में भी देखने को मिलती हैं। [देखिये साहित्यदर्पण--'मायेन्द्रजाल-संग्रामक्रोधोभ्रान्तादिचेष्टितैः। संयुक्ता वध-बन्धाद्यैरुद्धताऽऽरभटी मता ।।' ६।१३२-३३]। रास मण्डलाकार नृत्य को कहते हैं जैसा कि कृष्णलीला में हम देखते हैं। रेचक भी एक नृत्य का ही भेद है। नाट्यशास्त्र में इन सबका विस्तृत वर्णन है। वायु स्तम्भाकार बवंडर बनाकर आरभटी-नटों की तरह अपना उग्र ताण्डव—भीषण रास-लीला—दिखा रहे थे। पागल भी एसी तरह का विकट नृत्य किया करते हैं। वे घर और बाहर तोड़-फोड़ एवं मार-धाड़ आदि किया करते हैं।

हिन्दी—केवाँच के गुच्छों की पंक्तियों-की-पंक्तियाँ तोड़ डालने की चपलताओं के कारण अकस्मात् खुजली लिए-जैसे रेतीले-कर्करे स्थानों को रगड़ रहे थे, जो पत्थरों के मोटे-मोटे चूरों को छोड़ रहे थे, जो मुचुकन्द-वृक्षों के नये अंकुरों को तोड़ डालने से दाँतों वाले-जैसे बने हुए थे, जिनके शरीर चारों ओर उड़ते और शब्द करते हुए झींगुरों के समूहों के मुखों के जल-कणों से सींचे जा रहे थे, जो तीव्रतर सूर्य के ताप के कारण हिलती हुई (एवं) तरंग वाली बनी हुई मृगतृष्णाओं की नदियों के झूठे जल में तैर-से रहे थे, जो सूखे हुये शमी-वृक्षों की मर्मर-ध्वनि से युक्त मरुस्थलों का मार्ग लाँघने की निपुणता के वेग से खूब तेज बने हुए थे, जो धूलि के बवंडरों के समूहों को ले जाने वाला (एवं) रास-लीला के प्रति रुचि होने के कारण प्रचण्ड रूप से किया जाने वाला नृत्य प्रारम्भ करने में मार-

1. सन्ततपनतापमुखर०।

वर्तमण्डलीरेचकरासरसरभसारब्धनर्तनारम्भारभटीनटाः, दावदग्धस्थलीमषीमलनमलिनाः, शिक्षितक्षपणकवृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुच्चिन्वन्तः, सप्रयाणगुञ्जा इव शिञ्जानजरत्करञ्जमञ्जरीबीजजालकैः, सप्ररोहा इवातपातुर-वनमहिषनासानिकुञ्जस्थूलनिःश्वासैः, सापत्या इवोड्डीयमानजवनवातहरिणपरिपाटीपेटकैः, सभ्रुकुटय इव दह्यमान-खलधानबुसकूटकुटिलधूमकोटिभिः, सावीचिवीचय इव महोष्ममुक्तिभिः, लोमशा इव शीर्यमाणशाल्मलिफलतूल-

---

टीका—चक्राणि इत्यर्थः, तेषां मण्डली=समूहः तस्याः रेचकं=रेचयतीति [√रिच्+णिच्+ण्वुल्] रयेण अपवाहकमित्यर्थः रासे=नृत्यविशेषे रसेन=रुच्या रभसेन=उग्रतया प्रचण्डतयेत्यर्थः आरब्धम्=उपक्रान्तं यत् नर्तनं =नृत्यं तस्य आरम्भे आरभट्याः=विकटनर्तन-प्रकारविशेषस्य नटाः=अभिनेतारः। **दाव०**—दावेन=वनवह्निना दग्धा=प्लुष्टा स्थली=अकृत्रिमा भूमिः तस्यां या मसी=काली श्यामद्रव्यमित्यर्थः तस्याः मलनेन=दलनेन मलिनाः =मलिनवर्णाः कृष्णाः इत्यर्थः, शिक्षिता=शीलिता क्षपणकानां=जैनभिक्षूणां वृत्तिः=वर्तनं यैः तथाभूताः। वनानां ये मयूराः तेषां पिच्छानां=पक्षाणां चयान् समूहान् उच्चिन्वन्तः संगृह्णन्तः, क्षपणकाः अपि मलिनाः मयूरपिच्छ-संग्राहकाः भवन्ति। ते मयूर-पिच्छैः स्वमार्गागतान् कीटान् अपमार्जयन्ति, तदुक्तं सर्वदर्शनसंग्रहकारेण—'लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्राः दिगम्बराः'। प्रयाणस्य=प्रस्थानस्य गुञ्जा=पटहः ['गुञ्जा तु काकचिञ्चायां पटहे च कलध्वनौ'—इति मेदिनी] तया सह वर्तमानाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शिञ्जानैः=शब्दायमानैः जरतां=जीर्णानां परिपक्वानामित्यर्थः करञ्जानां=वृक्षविशेषाणां मञ्जरीणां बीजजालकैः=बीज-समूहैः।

आतपा०—आतपेन=घर्मेण आतुराः=आकुलाः ये वनानां महिषाः तेषां नासाः निकुञ्जाः इवेत्युपमित-तत्पु०, ['निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः] नासोपरि रूढानि लोमानि लताः इव, नासाच्छिद्रञ्च लता-पिहितोदरम् इव दृश्यन्ते स्म तासां स्थूलाः=विपुलाः ये निःश्वासाः तैः। प्ररोहैः=अङ्कुरैः नवपल्लवैः इत्यर्थः सहिताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। **उड्डीय०**—उड्डीयमानाः=अत्यधिक-तापकारणात् उत्पतन्तः जवनाः=वेगवन्तः ये वात-मृगाः वातवत् त्वरितगामिनः मृगविशेषाः तेषां परिपाट्यः पङ्क्तयः तासां पेटकैः=समूहैः अपत्यैः=सन्तानैः सह वर्तमानाः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वातवत् वेगगामिनः वातमृगाः वायूनाम् अपत्यानि इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः। **दह्यमान०**—दह्यमानाः=ज्वलन्तः खलेषु=खलाधानेषु 'खलियान' इति भाषायां प्रसिद्धेषु ये धानानां=धान्यानां बुस-कूटाः तुष-समूहाः तेषां कुटिलाभिः=वक्राभिः धूमस्य कोटिभिः=अग्रैः भ्रुकुटिभिः=भ्रूभङ्गैः सह वर्तमानाः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अर्थात् तुषानल-धूमस्य कुटिल-कोटयः वायूनां भ्रूभङ्गाः इव प्रतीयन्ते स्म। **सावी०**—महान् यः ऊष्मा=उष्णिमा तस्य मुक्तिभिः मोचनैः अवीचिः=नरकविशेषः ['स्यान्नारकस्तु नरको···। तद्भेदास्तप-नावीचिमहारौरव-रौरवाः' इत्यमरः] तस्य वीचिभिः=तरङ्गैः सह वर्तमानाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वायुकृता ऊष्मोत्सर्गाः अवीचि-नरकस्य ज्वलदग्निवीचय इव प्रतीयन्ते स्म इति भावः। **शीर्यमाण०**—शीर्यमाणानि ऊष्मकारणात् स्फुटन्ति यानि शाल्मलि-फलानि=शाल्मलि-वृक्षाणां बीज-कोशाः, 'डोडे' इति भाषायां प्रसिद्धाः, तेषां तूलस्य=कार्पासस्य, 'रुई' इति भाषायां प्रसिद्धस्य तन्तुभिः=सूत्रैः लोमशाः=लोमानि सन्ति एषाम् इति लोम+श ['लोमादिभ्यः शः'] ग्रीष्मोष्म-स्फुटित-शाल्मलि-बीजकोषानां वायुषु उड्डीयमानानि तूल-सूत्राणि वायूनां लोमानि इव भासन्ते स्म

हिन्दी—धाड़, तोड़-फोड़ करनेवाले नट बने हुए थे, जो वनाग्नि से जली हुई भूमि की कालिख से मलिन बने, जैन-भिक्षुओं की वृत्ति सीखे हुए-जैसे जंगली मोरों के पंखों के समूहों को इकट्ठा कर रहे थे, जो बजते हुए सूखे करंज-वृक्षों की मंजरियों के बीजसमूहों से ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो दुन्दुभि के साथ प्रयाण कर रहे हों, जो गर्मी से अकुलाये हुए जंगली भैंसों के निकुञ्जों के समान नथुनों से (निकल रहे) प्रबल श्वासों के रूप में नये कोंपलों से युक्त-से हो रहे थे, जो उछलते हुए बड़े तेज वात-मृगों की कतारों के समूहों के रूप में सन्तानों को साथ लिये हुए-जैसे थे, जो खलियानों में जलते हुए धान के भूसे के ढेरों से (निकलते हुए) टेढ़े-मेढ़े धुएँ की नोकों के रूप में मानो भृकुटी ताने हुए थे, जो तेज गर्मी के भभके छोड़ने से अवीचि नामक नरक की (आग की) तरंगों को साथ लिये हुए-जैसे लग रहे थे, जो सेमल के फूटते हुए डोडों की रुई के तन्तुओं के रूप में रोम-युक्त-जैसे बने हुए थे, जो सूखे पत्तों के समूह खींचते रहने से ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे उन्हें दाद हो रखा हो, जो घास की बिखरी हुई लड़ियों से धमनीयुक्त-जैसे प्रतीत हो रहे थे, जो हिलती हुई जौ की नई बालों की सूई जैसी नोकों के रूप में दाढ़ी-जैसी रखे हुए थे, जो हिलते हुए सूई-जैसे सैंकड़ों शलकोनों के रूप में दाढ़ें-जैसी रखे हुए थे, जो आग की लपटों

तन्तुभिः, दद्रुणा इव शुष्कपत्रप्रकराकृष्टिभिः, सिराला इव तृणवेणीविकरणैः,[1] उच्छ्मश्रव इव धूयमाननवयवशूक-शकलशङ्कुभिः, दंष्ट्राला इव चलितशललसूचीशतैः, जिह्वाला इव वैश्वानरशिखाभिः, उत्सर्पत्सर्पकञ्चुकचूडालाः,[2] ब्रह्मस्तम्भरसाभ्यवहरणाय कवलग्रहमिवोष्णैः कमलमधुभिरभ्यस्यन्तः, सकलसलिलोच्छोषणघर्मघोषणापटहैरिव[3] शुष्कवेणुवनास्फोटनपटुरवैस्त्रिभुवनभीषिकामुद्भावयन्तः, च्युतचलचाषपक्षश्रेणीशारितसृतयः, त्विषिमन्मयूखलतालात-

---

टीका—इत्याशयः। उन्मत्ता अपि श्मश्रुलाः अकृतक्षौराश्च भवन्ति। दद्रुणा:—शुष्काणि च तानि पत्राणि तेषां प्रकाराणां=समूहानाम् आकृष्टिभिः=आकर्षणैः दद्रुः=त्वग्रोग-विशेषः ('दाद' इति भाषायाम्) एषाम् अस्तीति दद्रु+न [लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः—पा० ५।२।१००] दद्रोः ह्रस्वत्वं च अर्थात् उड्डीयमानानि शुष्कपत्राणि वायुषु दद्रु-रोग इव प्रतीयन्ते स्म। तृणानां वेण्यः=पङ्क्तयः तासां विकरणैः=निरसनैः सिराः= धमन्यः एषां सन्तीति सिरा+ल, सिरायुक्ता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वायुषु लव-तृण-पङ्क्तयः सिराः इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः। उन्मत्ता अपि दुर्बलत्वात् दृश्यमानसिराः भवन्ति। धूयमान०=धूयमानाः प्रकम्पमानाः नवानाम्=अभिनवानां यवानां ये शूकाः श्लक्ष्ण-तीक्ष्णाग्राणि ['शूकोऽस्त्री श्लक्ष्णतीक्ष्णाग्रे' इत्यमरः] तेषां शकलाः खण्डाः शङ्कवः=कीलाः, इवेत्युपमितितत्पु०, उच्छ्मश्रवः=उद्गतं श्मश्रु=कूर्चं येषां तथोक्ताः। वायुषु कम्पमानानि यवशूकाग्राणि तेषां श्मश्रूणीव प्रतीयन्ते स्म इति भावः। उन्मत्ता अपि क्षौराभावात् प्रवृद्धश्मश्रवो भवन्ति। चलितानि=इतस्ततः सृतानि यानि शललानि=शल्यकानां कण्टकाः सूच्यः=सूचिकाः, इवेत्युपमितितत्पु० तेषां शतैः दंष्ट्राः=दश्यते अनया इति √दंश्+ ष्ट्रन्+टाप् ['दाम्नीशसेति' पा० ३।२।१८२] बृहद् दन्ताः एषां सन्तीति दंष्ट्रा+ल [मतुबर्थे]। उन्मत्ता अपि स्व-दन्तान् दर्शयन्ति। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। वैश्वानरः=अग्निः तस्य शिखाभिः=ज्वालाभिः जिह्वाः सन्ति एषाम् इति। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। उन्मत्ता अपि जिह्वां दर्शयन्ति। उत्सर्प०—उत्सर्पन्तः उड्डीयमानाः ये सर्पाणां कञ्चुकाः=निर्मोकाः ते एव चूडाः=शिखाः सन्ति एषाम् इति चूडा+ल। उन्मत्ताः अपि मुक्तशिखाः दृश्यन्ते। ब्रह्म०—ब्रह्म-स्तम्भः=ब्रह्माण्डं विश्वमित्यर्थः। एष शब्दः प्रायः ब्रह्मस्तम्ब इत्येवं व्यवह्रियते, (अत्र वीरराघवः—स्तम्बशब्देनोर्ध्वत्वादिसादृश्याद् गौण्या भुवनाण्डान्युच्यन्ते) तस्य यः रसः=द्रवः जलमित्यर्थः तस्य अभ्यवहरणाय=भोजनाय पानायेत्यर्थः कवलस्य= ग्रासस्य ग्रहम्=ग्रहणम्। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। उष्णैः कमलानां मधुभिः अभ्यस्यन्तः=पौनःपुन्येन कुर्वन्तः, अर्थात् वायवः सकल-जगद्-रसान् पातुं शोषयितुमिति यावत् वाञ्छन्ति तदर्थं च कमलोष्णमधुपान-द्वारा अभ्यासं कुर्वन्तीव। सकल०—सकलं=समग्रं यत् (जगतः) सलिलं=जलं तस्य उच्छोषयतीति उच्छोषणः (कर्तरि ल्युट्) यः घर्मः= ऊष्मा तस्य घोषणा=उद्घोषः तदर्थं पटहैः=दुन्दुभिभिः। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। शुष्काः ऊष्मकारणात् शोषम् उपगताः ये वेणवः वंशाः तेषाम् आस्फोटनस्य=विदलनस्य पटुभिः=तीव्रैः रवैः=ध्वनिभिः त्रिभुवनस्य=त्रिलोकस्य विभीषि-काम्=त्रासम् उद्भावयन्तः=कुर्वन्तः। उन्मत्ता अपि शब्दायमानाः लोकान् विभीषयन्ति। च्युत०—च्युताः= पतिताः चलाः=चलिताः इतस्ततः सर्पन्तः इत्यर्थः, चाषाणां=पक्षिविशेषाणां ये पक्षाः=पिच्छानि तेषां श्रेणीभिः= पङ्क्तिभिः शारिताः=चित्रवर्णीकृताः सृतयः=सरन्ति=गच्छन्ति आसु इति √सृ+क्तिन् (अधिकरणे) मार्गाः यैः तथाभूताः। उन्मत्ताः अपि एवं कुर्वन्ति। त्विषिमन्०—त्विषयः किरणाः अस्य सन्तीति त्विषिमान्=सूर्यः तस्य

हिन्दी—से जिह्वा युक्त-जैसे बने हुए थे, जो उड़ती हुई साँप की केंचुली की शिखा रखे हुए थे, जो जगत् का रस चट कर जाने के लिए कमलों के गर्म-गर्म शहद के ग्रास लेकर अभ्यास-जैसा कर रहे थे, जो सभी जलों को सुखा देने वाली धूप के ढिंढोरे के लिए नगाड़ों-जैसा काम देने वाले सूखे हुए बाँसों के वनों को फाड़ देने के तीव्र शब्दों से तीनों लोकों को चुनौती दे रहे थे, जो गिरे और हिलते हुए नीलकंठ पक्षियों के पंखों की कतारों से मार्ग को रंग-बिरंगा बनाये हुए थे, जो (ताप से) विदीर्ण हुए रत्ती-रूपी चिनगारी और कोयले से चिह्नित अंग वाले ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सूर्य की लता-जैसी (लंबी) किरण-रूपी जलती लकड़ी द्वारा जलाये जाने पर चित्रवर्ण देह धारण किए हुए हों, जो पर्वतों की गुफाओं में गहरी सनसनाहट से भयंकर बने घूम रहे थे, जो जगत् को भस्म करने के लिए अभिचार यज्ञ का चरु पकाने में निपुण बने हुए रुधिर की आहुतियों से मानो पारिभद्र वृक्षों के फूलों के

---

१. विकिरणैः।
२. कञ्चुकैश्चूडाला इव।
३. घोषणाघोरपटहैरिव।

प्लोषकल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफलस्फुलिङ्गाङ्गाराङ्किताङ्गाः, गिरिगुहागम्भीरझाङ्कारभीषणभ्रान्तयः, भुवन-भस्मीकरणाभिचारचरुपचनचतुरा रुधिराहुतिभिरिव पारिभद्रद्रुमस्तबकवृष्टिभिस्तर्पयन्तस्तारवान्वनविभावसून्, अशिशिरसिकतातारकितरंहसः, तप्तशैलविलीयमानशिलाजतुरसलवलिप्तदिशः, दावदहनपच्यमानचटकाण्डखण्डखचित-तरुकोटरकीटपटलपुटपाकगन्धकटवः, प्रावर्तन्तोन्मत्ता मातरिश्वानः।

सर्वतश्च भूरिभस्त्रासहस्रसन्धुक्षणक्षुभिता इव जरठाजगरगम्भीरगलगुहावाहिवायुभिः, क्वचित्स्वच्छन्दतृणचारिणो

टीका—मयूखाः=लताः। इवेत्युपमिततत्पु० एव आलातं=ज्वलत्काष्ठं तेन यः प्लोषः=दाहः तेन कल्माषं=शारं चित्रवर्णमित्यर्थः वपुः=शरीरं येषां तथाभूताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। स्फुटितानि=तापकारणात् कोषविदलनेन बहिरागतानि यानि गुञ्जाफलानि एव स्फुलिङ्गाः=अग्निकणाः अङ्गाराः=अग्न्युच्छिष्टानि तैः अङ्कितं=चिह्नितम् अङ्गं वपुः येषां तथाभूताः। स्फुटितानि रक्तश्यामानि गुञ्जाफलानि वायु-शरीरेषु दाहे स्फुलिङ्गाः दग्धभागाश्च प्रतीयन्ते स्म, स्फुलिङ्गाः रक्ताः दग्धभागाश्च श्यामाः भवन्ति। गिरि०—गिरीणां गुहासु=गह्वरेषु गम्भीराः ये झाङ्काराः=झमितिशब्दाः तैः भीषणा=भयङ्करा भ्रान्तिः=भ्रमणं येषां तथाभूताः। उन्मत्ताः अपि गिरि-गह्वरेषु भ्रमन्ति। भुवन०—भुवनस्य=जगतः भस्मीकरणाय=दाहाय यः अभिचारः परहिंसात्मकः यागविशेषः तस्य चरुः=हवनीय-द्रव्यं तस्य पचने=पाके चतुराः=निपुणाः, रुधिरस्य=रक्तस्य आहुतिभिः=हविर्भिः। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। पारिभद्रद्रुमाणां रक्तपुष्पविशेषाणां स्तवकानां=गुच्छानां वृष्टिभिः=वर्षणैः उड्डायनैरित्यर्थः, तर्पयन्तः=तृप्तिं नयन्तः तरूणाम् इमान् इति तारवान् [तरु+अण्] वृक्ष-सम्बन्धिनः वनविभावसून्=वनाग्नीन्। अशिशिर०—अशिशिराभिः=उष्णाभिः सिकताभिः=बालुकाभिः तारकितं=सञ्जात-तारकं, तारक-युक्तमिवेति गम्योत्प्रेक्षा, रंहः वेगः मार्गः इत्यर्थः येषां तथाभूताः। तप्त०—तप्ताः ये शैलाः=पर्वताः तेभ्यः विलीयमानः स्यन्दन् यः शिलाजतु-रसः=धातुविशेषस्य द्रवः तस्य लवैः=बिन्दुभिः। लिप्ताः=दिग्धाः दिशः यैः तथाभूताः। दाव०—दाव-दहनेन=वनाग्निना पच्यमानानि=दह्यमानानि यानि चटकानां=पक्षिविशेषाणाम् अण्डानि तेषां खण्डैः=शकलैः खचितानि व्याप्तानीत्यर्थः। तरूणां कोटरेषु=गर्तेषु यानि कीटानां पटलानि=समूहाः तेषां पुटपाकस्य अभ्यन्तरपाकस्य गन्धेन कटवः=तीक्ष्णाः प्रावर्तन्त=प्राचलन् उन्मत्ताः मातरिश्वानः=वायवः [मातरि=अन्तरिक्षे श्वयति श्वसिति अथवा मातरि शु=आशु अनति इति मातरिश्वा इति यास्काचार्यः।

सर्वतः=परितः, प्रत्यदृश्यन्त दावाग्नयः इत्यस्ति वाक्यम्। जरठा०—जरठाः=वृद्धाः ये अजगराः=बृहन्तः सर्पविशेषाः तेषां गम्भीराः=गहनाः गलाः=कण्ठाः गुहाः=गह्वराणि। इवेत्युपमिततत्पु०। तेभ्यः वहन्तीति० वाहिनः वायवः=श्वासमरुतः तैः भूरीणां=विशालानां भस्त्राणां=चर्मप्रसेविकानां ['भस्त्रा चर्मप्रसेविका' इत्यमरः] चर्म-निर्मितानाम् अग्निसन्धुक्षणयन्त्राणामित्यर्थः सहस्रैः सन्धुक्षणेन=उद्दीपनेन क्षुभिताः=क्षोभं गताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। क्वचित् स्वच्छन्दं=यथेच्छं यथा स्यात् तथा तृणं=घासं चरन्तीति चारिणः हरिणाः पाण्डुवर्णाः

टिप्पणी—अभिचार०—दूसरों के मारणोच्चाटन के लिए किये जाने वाले अथर्ववेद-विहित एक यज्ञ-विशेष को 'अभिचार' कहते हैं। इसमें रक्तवर्ण की हवि अथवा रक्त ही की हवि दी जाती है। प्रकृत में पारिभद्र के लाल पुष्प खून की आहुतियों-जैसे हैं जो वनाग्नि में पड़ रही हैं। कवि कल्पना करता है कि वायु मानो जगत् को भस्म करने का अभिचार कर रही हैं और वनाग्नि में पारिभद्र-पुष्पों के रूप में रुधिर की आहुतियाँ डाल रही हैं। **पुटपाक**—आयुर्वेद में औषध-निर्माण के लिए 'पुटपाक' नामक एक विशेष प्रक्रिया होती है। पत्तों के बीच ओषधिद्रव्य रखा जाता है और बाहर से उस पर उपलों की आग देकर वह सब भीतर-ही-भीतर पकाया जाता है। अण्डों के आवरण कीड़ों से भरे खोखलों में पड़े और कीड़ों को घेर बैठे। कीड़े भीतर-ही-भीतर पुट में पड़े-जैसे पकते गए। **उन्मत्ताः**—वायुओं पर उन्मत्तता का आरोप है। विशेषण वायुओं और उन्मत्तों में समान रूप से लग जाते हैं, इसलिए यह रूपक हुआ। इसके साथ-साथ जहाँ उत्प्रेक्षायें भी हैं, वहाँ उनका रूपक के साथ अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर हो जाता है।

हिन्दी—गुच्छों की वृष्टियों से वृक्षों में लगी वनाग्नियों को तृप्त कर रहे थे, जो तपे हुए पर्वत से चू रही शिलाजीत के रस के बूँदों से दिशाओं पर लेप किये हुए थे, और जो वनाग्नि में जलते हुए चिड़ियों के अण्डों के टुकड़ों से भरे हुए वृक्षों के खोखलों में (स्थित) कीड़ों के समूहों के पुटपाक की गन्ध से तीव्र बने हुए थे।

और चारों ओर ऐसे भीषण दावानल दिखलाई पड़े जो बूढ़े अजगरों के गुफा-जैसे गहरे कंठ से आने वाले (श्वास)-

हरिणाः, क्वचित्तरुतलविवरविवर्तिनो बभ्रवः, क्वचिज्जटावलम्बिनः कपिलाः, क्वचिच्छकुनिकुलकुलायपातिनः श्येनाः, क्वचिद्विलीनलाक्षारसलोहितच्छवयोऽधराः, क्वचिदासादितशकुनिपक्षकृतपटुगतयो विशिखाः, क्वचिद्दग्धनिःशेषजन्महेतवो निर्वाणाः, क्वचित्कुसुमवासिताम्बरसुरभयो रागिणः क्वचित्सधूमोद्गारा मन्दरुचयः, क्वचित्सकल-

टीका—अथ च मृगाः ['हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः' इत्यमरः] मृगा अपि स्वच्छन्दं तृणं चरन्ति। इदम् इतः परञ्च० 'स्थितयः' इत्यन्तं कविना यानि शब्दयुगलानि प्रयुक्तानि तानि 'दावाग्नयः' इत्यस्य विशेषणानि। अपि च युगलस्य अन्तिमः शब्दः विशेष्यमपि अस्ति, प्रथमशब्दश्च तस्य विशेषणमपि भवति। इदं श्लिष्टरूपकं तच्च मालारूपकम्। तरु०—तरूणां=वृक्षाणां तलेषु=अधोभागेषु यानि विवराणि गर्ताः तेषु विवर्तन्ते परिभ्रमन्तीति ०विवर्तिनः, बभ्रवः =बभ्रुवर्णाः रक्तपीताः इत्यर्थः अथच बभ्रवः=नकुलाः ['विपुले नकुले विष्णौ बभ्रुः स्यात् पिङ्गले त्रिषु' इत्यमरः] नकुला अपि वृक्षतलविवरेषु भ्रमन्ति। जटा०—जटाः तरु-मूलानि अवलम्बन्ते=आश्रयन्तीति० अवलम्बिनः, दावाग्नयः वृक्षमूलेषु गच्छन्ति, कपिलाः=कपिलवर्णाः=पिङ्गलाः इति यावत्, अथच कपिलाः=सांख्यमतप्रवर्तकाः=मुनिविशेषाः, आदरार्थे बहुवचनम्। अथवा कपिलाः=कपिलमतानुगामिनः, जटाम्=लग्नकचान् आलम्बन्ते इति जटाधारिणः इत्यर्थः ['मूले लग्नकचे जटा' इत्यमरः] शकुनि०=शकुनीनां=पक्षिणां कुलानां=समूहानां ये कुलायाः नीडानि ['कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः] तान् पातयन्तीति ०पातिनः। दावाग्नयो हि प्रज्वाल्य पक्षिनीडानि नीचैः पातयन्ति। श्येनाः=श्वेताः अथ च श्येनाः=विहगान्तकाः पक्षिविशेषाः तेऽपि कुलायान् पातयन्ति। विलीन०—विलीनः= द्रवरूपः यः लाक्षारसः=अलक्तकरसः तद्वत् लोहिता=रक्तवर्णा छविः=कान्तिः येषां तथाभूताः अधराः=धरणं धरः ($\sqrt{}$धृ+अप् भावे)=नियमनं रोधनमित्यर्थः, न धरः येषां तथाभूताः धर्तुमशक्याः निर्निरोधाः इत्यर्थः। अथच विलीनलाक्षारसेन लोहिता छविः येषां तथाभूताः अधराः=अधरोष्ठाः। आसादि०—आसादिताः=प्राप्ताः शकुनीनां=पक्षिणां ये पक्षाः तैः कृता पटुः=तीव्रा गतिः=प्रसरः यैः तथाभूताः, पक्षाणां स्निग्धत्वात् तान् प्राप्य दावानलाः अधिकं प्रसृताः इति भावः, विशिखाः वि=विशिष्टाः शिखाः=ज्वालाः येषां तथाभूताः अथच विशिखाः =बाणाः ते अपि लग्नशकुनिपक्षत्वात् तीव्रगामिनो भवन्ति। दग्ध०—दग्धाः=भस्मसात्कृताः निःशेषाः=सरलाः जन्महेतवः=आरमजन्मकारणभूताः तृणकाष्ठादयः यैः तथाभूताः निर्वाणाः=शान्ताः दाह्याभावे अग्नयः शान्ताः इत्यर्थः, अथ च निर्वाणाः=मुक्तिं प्राप्ताः तेऽपि दग्धाः तत्त्वज्ञानद्वारा क्षयं नीताः निःशेषाः जन्महेतवः=जन्मकारणभूतानि कर्माणि यैः तथाभूताः भवन्ति। कुसुम०—कुसुमैः=पुष्पैः पुष्पपरिमलैः इत्यर्थः, वासितं=सुरभितं यत् अम्बरम्=आकाशं तेन सुरभयः=सुगन्धिताः रागिणः=लोहितवर्णाः, अथ च रागिणः=प्रेमिणः ते अपि कुसुमवासितेन अम्बरेण=वस्त्रेण सुरभयो भवन्ति। धूमस्य उद्गारः=निस्सरणं तेन सह वर्तमाना मन्दा=क्षीणा रुचिः दीप्तिः येषां तथाभूताः। अथ च सधूमः दुर्गन्धिधूमयुक्तः उद्गारः=मुखात् उदरवायोः बहिःनिस्सरणं, 'डकार' इति भाषायां प्रसिद्धः, तेन सह वर्तमानाः। मन्दा रुचिः=भोजनाभिलाषः येषां तथाभूताः अजीर्णरोगग्रस्ताः इति यावत्। सकल०— सकलं=समग्रं जगत् एव ग्रासः=कवलं तस्य घस्मराः=अद्याराः भक्षका इत्यर्थः [$\sqrt{}$घस्+क्मरच् कर्तरि] ['भक्षको घस्मरोऽद्मरः' इत्यमरः] भस्मना सह वर्तमाना इति भस्मसहिताः इत्यर्थः। अथ च

टिप्पणी—निर्वाणाः—निर्वाण मुक्त आत्माओं को भी कहते हैं। जन्म के हेतुभूत कर्मों के क्षय से मुक्ति होती है। हम अपनी तत्तद् इच्छाओं की पूर्ति-हेतु तत्तत् कर्म करते हैं और उनके परिणामस्वरूप हम जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसकर बँधे रहते हैं। परन्तु जब हमें आत्मा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब हमारी ज्ञानाग्नि हमारे सब कर्मों को भस्म कर देती है जैसा गीताकार ने भी कहा है—'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा'।

हिन्दी—वायुओं से भड़के हुए ऐसे लग रहे थे मानो हजारों बड़ी-बड़ी धौंकनियों से सुलगाये गए हों, जो कहीं स्वेच्छानुसार तृणों को चरते (१. जलाते, २. खाते) हुए हरिण (१. श्वेत-पीत, २. मृग) बने हुए थे, जो कहीं वृक्षतलों के गर्तों में विचरण करने वाले बभ्रु (१. लाल-पीले, २. नेवले) बने हुए थे, जो कहीं पेड़ों की जटाओं (जड़ों) पर लगे (एवं) कपिल (पीले) हुए जटायें रखें कपिल (मुनि) बने हुए थे, जो कहीं पक्षि-समूहों के घोंसलों को गिरा देते हुए श्येन (१. श्वेत, २. बाज) बने हुए थे, जो कहीं अलक्तक रस की लाल छवि लिए हुए अधर [१. नियंत्रण से बाहर २. होंठ] बने हुए थे, जो कहीं प्राप्त किये पक्षियों के पंखों से तीव्रगति वाले (एवं) विशिख (बड़ी-बड़ी लपटों वाले) होते हुए, पक्षियों के पंख लग जाने से तीव्रगति दिये गए विशिख (बाण) बने हुए थे, जो कहीं (अपने) जन्म के सभी कारणों (काष्ठादि) को जलाते (एवं) निर्वाण (शान्त) हुए, जन्म के सभी कारणों (कर्मों) को

जगद्ग्रासघस्मराः सभस्मकाः, क्वचिद्वेणुशिखरलग्नमूर्तयोऽत्यन्तवृद्धाः,[1] क्वचिदचलोपयुक्तशिलाजतवः क्षयिणः, क्वचित्सर्वरसभुजः पीवानः, क्वचिद्दग्धगुग्गुलवो रौद्राः, क्वचिज्ज्वलितनेत्रदहनदग्धसकुसुमशरमदनाः कृतस्थाणुस्थितयः, चटुलशिखानर्तनारम्भारभटीनटाः, शुष्ककासारसृतिभिः[2] स्फुटन्नीरसनीवारबीजलाजवर्षिभिर्ज्वालाञ्जलिभिरर्चयन्त इव

टीका—भस्मकरोग-सहिताः ते सकले जगति ग्रासानां घस्मराः भवन्ति । वेणु०—वेणूनां=वंशानां शिखरेषु= अग्रभागेषु लग्नाः सम्बद्धाः मूर्तयः=शरीराणि येषां तथाभूताः अत्यन्तं यथा स्यात्तथा वृद्धाः=वृद्धिं प्राप्ताः, अथ च अत्यन्तवृद्धाः=अतिजरठाः, तेऽपि वंश-दण्डाग्रेऽवलम्बित-शरीराः भवन्ति । अचला०—अचलेषु=पर्वतेषु उपयुक्तानि=उपयोगं नीतानि भक्षितानीत्यर्थः शिला-जतूनि=अश्मजानि यैः तथाभूताः क्षयः=शमनम् एषाम् अस्तीति क्षयिणः प्रशान्ताः इत्यर्थः अथ च क्षयिणः=क्षयरोगग्रस्ताः ते अचलं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा उपयुक्तं=सेवितं शिलाजतु यैः तथाभूताः भवन्ति । शिलाजतु-प्रयोगेण क्षयरोगः शाम्यतीति निदानाचार्याः वदन्ति । सर्वे च ते रसाः =द्रवाः । तान् भुञ्जते शोषयन्तीत्यर्थः (कर्तरि क्विप्) पीवानः=विशालाकाराः अथ च=स्थूलशरीराः, ये खलु मधुरादीन् सर्वरसान् भुञ्जते ते पीवानः [प्यायन्ते=वर्धन्ते इति √प्येङ् वृद्धौ+क्वनिप् सम्प्रसारणं दीर्घश्च] भवन्ति । दग्धाः गुग्गुलवः=गुग्गुलुनामक-गन्धद्रव्यविशेषस्य वृक्षाः यैः तथाभूताः रौद्राः=भीषणाः, अथ च रौद्राः= शैवाः ते शिवाराधने गुग्गुल-धूपं प्रज्वालयन्ति । ज्वलित०—ज्वलितानि यानि नेत्राणि=वृक्षमूलानि [स्यात् जटांशुकयोः नेत्रम् इत्यमरः । जटा=मूलम्] तेषां दहनेन=प्लोषेण दग्धाः सकुसुमाः=सपुष्पाः शराः=तृणविशेषाः मदनाः= एतन्नामकवृक्षविशेषाः यैः तथाभूताः, कृता स्थाणुषु=शाखारहितेषु वृक्षेषु स्थितिः=अवस्थानं यैः तथाभूताः । अथ च ज्वलितः यः नेत्रदहनः=तृतीयनेत्राग्निः तेन दग्धः=भस्मसात्कृतः, सकुसुमशरः=कुसुम-शरैः सहितः मदनः= कामदेवः यैः तथाभूताः । कृता स्थाणोः=शिवस्य स्थितिः=व्यवहारः यैः तथाभूताः शिवव्यवहारकर्तारः । चटुल०— चटुलाः=चञ्चलाः याः शिखाः=ज्वालाः अन्यत्र केशपाशयः शिरोमध्यस्थकेशाः इत्यर्थः तासां नर्तनस्य आरम्भे आरभट्याः=उद्धत-शैली-विशेषस्य नटाः=अभिनेतारः । उद्धताः दावानलाः स्वचटुलार्चिषां नर्तनं कुर्वन्ति स्म । आरभटी-नटा अपि स्वशिखानर्तनसहितं नृत्यन्ति इत्याशयः । आरभटी-सम्बन्धे पश्चात् पृ० ८२ दृश्यताम् । अत्र रूपकम् । शुष्क०—शुष्काः=शोषमुपगताः ये कासाराः=तडागाः तेषु सृतिः=संसरणम् येषां तथाभूतैः, स्फुटन्ति =तापकारणात् विदलन्ति यानि नीरसानां=शुष्काणां नीवारस्य=वन्यधान्यविशेषस्य बीजानि तेषां लाजान्= भृष्ट-धान्यानि वर्षन्तीति ०वर्षिणः तैः ज्वालाः=अर्चींषि एव अञ्जलयः=हस्तसम्पुटाः तैः अर्चयन्तः=पूजयन्तः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । घर्मघृणिम्=घर्माः उष्णाः घृणयः=अंशवो यस्य तथाभूतं घर्मांशुं सूर्यमिति यावत् । अघृणाः=

टिप्पणी—सभस्मकाः—'भस्मक' एक ऐसा रोग होता है कि जिससे मनुष्य की भूख इतनी बढ़ जाती है कि वह खाता ही जाता है, कभी अघाता नहीं। भस्मक की व्युत्पत्ति 'योगरत्नाकर' में यह कर रखी है—कट्वादिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ । अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निः क्षणाद्रसं शोषयति प्रसह्य ।। भुक्तं क्षणाद् भस्म करोति यस्मात् तस्मादयं भस्मकसंज्ञकोऽभूत् ।।

हिन्दी—(ज्ञानाग्नि द्वारा) जला देने वाले निर्वाण [मुक्त] बने हुए थे, जो कहीं कुसुमों से सुरभित अम्बर [आकाश] से सुगन्धित (एवं) रागी [लाल] हुए कुसुमों [के इत्र] से सुवासित अम्बर (कपड़े) वाले रागी (प्रेमी) बने हुए थे, जो कहीं धुआँ छोड़े हुए (एवं) मन्दरुचि [धीमी दीप्तिवाले] हुए, (गन्दी) भाप के साथ डकार निकालने वाले मन्दरुचि [अजीर्ण रोगी] बने हुए थे, जो कहीं सारे जगत् को ग्रास-रूप में खा जाने वाले (एवं) भस्मक (राख रखे) हुए सारे जगत् में ग्रास खाने वाले सभस्मक (भस्मक-रोगी) बने हुए थे, जो कहीं बाँस के वृक्षों के सिरों पर अंग लगाए (एवं) अत्यन्त वृद्ध [वृद्धि को प्राप्त] हुए, ऐसे अत्यन्त वृद्ध [बूढ़े] बने हुए थे जो बाँस (के डंडे) के सिरे पर सारा शरीर टिकाये रहते हैं, जो कहीं पर्वतों पर शिलाजीत खाए (एव) क्षयी (क्षीण) हुए निरन्तर शिलाजीत खाने वाले क्षयी (क्षय के रोगी) बने हुए थे, जो कहीं सभी रसों को खाते हुए स्थूलकाय बने हुए थे, जो कहीं गुग्गुलु जलाते रौद्र (भीषण) हुए, गुग्गुलु जलाने वाले रौद्र (रुद्रोपासक) बने हुए थे, जो कहीं जलाये हुए वृक्षों की नेत्रों [जड़ों] को फूंक देने के कारण कुसुमों-सहित सरकंडे और मदन-वृक्षों को भस्म किये (एवं) स्थाणुओं [वृक्षों के ठुंडों] पर स्थित हुए जलती हुई (तृतीय) नेत्र (आँख) की आग से पुष्प-बाण के सहित मदन (कामदेव) को भस्म कर देने वाले स्थाणु (महादेव) का काम कर रहे थे, जो चंचल शिखा [१. लपट, २. चोटी] नचाने से

१. क्वचिदवलम्बितवेत्रयष्ट्योऽत्यन्त०।   २. सृतिषु।

घर्मघृणिम्, अघृणा इव हठहूयमानकठोरस्थलकमठवसाविस्रगन्धगृध्नवः, स्वमपि धूममम्भोदसमुद्भूतिभियेव भक्षयन्तः, सतिलाहुतय इव स्फुटद्बहलबालकीटपटलाः कक्षेषु[1], श्वित्रिण इव प्लोषविचटद्वल्कलधवलशम्बूकशुक्तयः[2] शुष्केषु सरःसु, स्वेदिन इव विलीयमानमधुपटलगोलगलितमधूच्छिष्टवृष्टयः काननेषु, खलतय इव [3]परिशीर्यमाणशिखासंहतयो महोषरेषु, गृहीतशिलाकवला इव ज्वलितसूर्यमणिशकलेषु शिलोच्चयेषु, प्रत्यदृश्यन्त दारुणा दावाग्नयः।

टीका—घृणारहिताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। हठ०—हठात्=बलात् हूयमानाः=हव्यरूपेण दीयमानाः दह्यमानाः इत्यर्थः ये कठोराः=प्रौढाः स्थलस्य कमठाः=स्थलीय-कच्छपाः तेषां वसानां=मेदसां यः विस्र-गन्धः=आमगन्धः ['विस्रं स्यात् आमगन्धि यत्' इत्यमरः] तस्य गृध्नवः=गृध्यन्ति=लिप्सन्ति इति √गृध्+क्नुः कर्तरि लिप्सवः लोभिनः इत्यर्थः। स्वम्=स्वकीयम् अपि धूमम्। अम्भोदाः=मेघाः तेषां समुद्भूतिः=उत्पत्तिः तस्या भीत्याः=भयेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, भक्षयन्तः=खादन्तः, शुष्ककाष्ठादिषु विना धूमं ज्वलन्तः दावानलाः स्वधूमं पिबन्त इव प्रतीयन्ते स्म। धूमात् हि मेघा जायन्ते, मेघाश्च जलवृष्टिद्वारा तेषाम् उपशमनं न कुर्युः इति हि दावानलानां भीतिः। कालिदासोऽपि अकथयत्—'धूम-ज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः' इति। **सतिल०**—तिलानाम् आहुतिभिः=होमैः सह वर्तमानाः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, स्फुटन्ति=तिड़तिड़ायमानानि बाल-कीटानां=क्षुद्रकीटानां पटलानि=समूहाः येषु तथाभूताः कक्षेषु=तृणेषु ['कक्षौ तु तृणवीरुधौ' इत्यमरः] श्वित्रिणः=श्वित्रं=धवल-कुष्ठम् एषाम् अस्तीति श्वित्रिणः, इवेत्युपमायाम्, प्लोषः=दाहः तेन विचटन्तः चट्-चटत्-कुर्वन्तः, वल्कलवत्=वृक्षत्वग्वत् धवलाः=श्वेताः शम्बूकाः 'घोंघा'ख्य-जलकीटविशेषाः शुक्तयः=मुक्तास्फोटाः जलजन्तुविशेषाः इत्यर्थः येषु तथाभूताः, श्वित्रिपक्षे—प्लोषेण=आन्तरिकेण ऊष्मणा विचटद्धवल-शम्बूक-शुक्तयः इवेत्युपमिततत्पु०, वल्कलं=त्वचा येषां तथाभूताः, शुष्केषु=ग्रीष्मकारणात् शोषं गतेषु सरःसु=सरोवरेषु। स्वेदः=घर्मजलम् अस्तीति स्वेदिनः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, **विलीय०**—विलीयमानानि=द्रवतां गच्छन्ति यानि मधुपटलानि=मधुकोषाः तेषां गोलेभ्यः=चक्रेभ्यः गलितं=स्यन्दितं यत् मधूच्छिष्टं=सिक्थं तस्य वृष्टिः=वर्षणं येषां तथाभूताः काननेषु=वनेषु। खलतयः=खल्वाटाः, इवेत्युपमायाम्, परिशीर्यमाणाः=क्षीयमाणाः शिखानां=ज्वालानाम्, अन्यत्र चूडानाम्, संहतिः समूहः येषां तथाभूताः, महान्ति=विशालानि यानि ऊषराणि=मरुस्थलानि तेषु। मरुभूमिषु दाह्य-घासादीनाम् अभावात् अग्नयः शांत-ज्वालाः भवन्ति। गृहीतं शिलानां कवलं=ग्रासः यैः तथाभूताः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ज्वलितानि सूर्यताप-कारणात् उद्दीप्तानि सूर्य-मणीनाम्=सूर्यकान्त-मणीनाम् शकलानि=खण्डानि येषु तथाभूताः, शिलोच्चयेषु=शिलानाम् उच्चयाः=समूहाः पर्वताः इत्यर्थः तेषु। सूर्यकिरणतापात् सूर्यकान्ताः ज्वलन्ति स्म, दावानलाः स्वार्चिभिः तैः मिलित्वा एवं प्रतीयन्ते स्म यथा ते शिलाः कवलयन्तीति भावः, प्रत्यदृश्यन्त=दृष्टिपथमागताः दारुणाः=भीषणाः दावाग्नयः=

हिन्दी—प्रारम्भ करने वाले मार-धाड़-भरे नाटक के नट थे, जो सूखे पड़े तालाबों में फैलने के कारण फूटते हुए सूखे नीवारधान्य के बीजों की लाजाओं की वृष्टि कर देने वाली लपटों-रूपी अंजलियों से मानो सूर्य की अर्चना कर रहे थे, जो निर्घृणी-जैसे (बनकर) बलात् आहुति-रूप में दिये जाने वाले खूब तगड़े स्थलचर कछुओं की चर्बी की कच्ची दुर्गन्ध के लोभी बने हुए थे, जो अपने ही धुएँ को मानो इस डर से खा रहे थे कि कहीं यह मेघ न बन जायें, जो तृणों में तिड़तिड़ाते हुए बहुत-से छोटे-छोटे कीड़ों के समूहों वाले ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो उनमें तिलों की आहुतियाँ (पड़ी) हों, जो सूखे सरोवरों में प्लोष (दाह) के कारण चटचटाते हुए वल्कल [वृक्ष-त्वचा] की तरह सफेद घोंघों और सीपी-कीड़ों से उन धोली-कौड़ियों के समान बने हुए थे जिनकी घोंघों और सीपी के कीड़ों की तरह सफेद (त्वचा—वल्कल) प्लोष (भीतरी गर्मी) के कारण चट-चट करती (फटती रहती) है, जो जंगलों में पिघलते हुए शहद के छत्तों के चक्कों से टपकती हुई मोम की वृष्टियों से ऐसे लग रहे थे मानो पसीज रहे हों, जो विस्तृत मरुस्थलों में क्षीण होती हुई शिखाओं (ज्वालाओं) के समूहों से उन गंजों के समान बने हुए थे, जिनका शिखा-समूह (शिर के बाल) झड़ता रहता है और जो जलते हुए सूर्यकान्त मणियों के टुकड़ों वाले पर्वतों में शिलाओं का ग्रास लिये हुए-जैसे प्रतीत हो रहे थे। और उस भीषण ग्रीष्म-समय के उस तरह होते हुए, कभी अपने घर

---

१. कक्ष्येषु।
२. धवलाः।
३. पर्यन्तक्षीयमाण०।

तथाभूते च [illegible] स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—'एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मन्, अविलम्बितं प्रवेशयैनम्' इति।

अथ तेनानीयमानम्, अतिदूरागमनगुरुजडजङ्घम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रन्थिम्,[1] अतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नि[2]तान्तरालकृतव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च दूरादेव—'भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्रभवतः कृष्णस्य' इति।

टीका—दावानलाः उग्रे=भीषणे। स्वगृहे अवस्थितस्य भुक्तवतः=भोजनं कृतवतः अस्य=बाणस्य, अपराह्णस्य=पराह्णस्य समये पारशवः=शूद्रायां जातः वर्णसङ्करः चन्द्रसेनः नाम यस्य तथाभूतः भ्राता। देवस्य=महाराजस्य चत्वारश्च ते समुद्राः तेषाम् अधिपतेः=अधिपस्य। सकल०—सकलं च तत् राजचक्रं=राजमण्डलं तस्य चूडामणीनां=शिरोरत्नानां या श्रेणी=पंक्तिः सा एव शाणः=निकषः तस्य कोणैः=प्रान्तैः यत् कषणं=घर्षणं तेन निर्मलीकृताः=उज्ज्वलीकृताः चरणानां=पादानां नखाः एव मणयः यस्य तथाभूतस्य, सर्वे च ते चक्रवर्तिनः=सार्वभौमाः तेषां धौरेयस्य=धुरं=यानमुखं वहतीति धुर्+ढक् ['धुरो यड्ढकौ'—पा० ४।४।७७] धुर्यस्य मुख्यस्येत्यर्थः, महान्तश्च ते राजाधिराजाः तेषां परमेश्वरः परमश्रेष्ठः स चासौ श्रीहर्षदेवः तस्य, एते सर्वे श्रीहर्षस्य उपाधयः विरुदाश्च सन्ति। कृष्णः नाम यस्य तथाभूतेन भ्रात्रा पितृव्य-पुत्रेण, प्रज्ञाततमः अतिशयेन प्रज्ञातः प्रसिद्धतमः इत्यर्थः, दीर्घाध्वगः=दीर्घम् अध्वानं गच्छतीति दीर्घाध्वगः=दूतः संदेशवाहकः इत्यर्थः। प्रहितः प्रेषितः द्वारम्=द्वारदेशम् अध्यास्ते=अधितिष्ठति। अविलम्बितं यथा स्यात्तथा शीघ्रमित्यर्थः। प्रवेशय=आनयेत्यर्थः।

तेन आनीयमानम्=प्रवेश्यमानम्, लेखहारकमद्राक्षीत् इत्यन्वयः। अतिदूरा०—अतिदूरात् आगमनेन गुर्वी=भारवती जडा मन्दा चलितुमक्षमेति यावत् जङ्घा यस्य तथाभूतम्। कार्दमिक०—कार्दमिकं=कर्दमेन रक्तं लिप्तमित्यर्थः इति कर्दम+ठक् (इक) ['लाक्षा-रोचनाट्ठक्'—पा० ४।२।२—शकल-कर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्'] कर्दमपूर्णमार्गगमनकारणादित्यर्थः, यत् चेलं=वस्त्रं तस्य चीरिकया=पट्टिकया नियमितं=बद्धम् उच्चण्डम् उज्ज्वलमित्यर्थः, चण्डातकम्=अर्धोरुकं यस्य तथाभूतम्। पृष्ठ०—पृष्ठे=पृष्ठभागे प्रेङ्खन्=चलन् पटच्चरस्य=जीर्णवस्त्रस्य ['पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्' इत्यमरः] कर्पटेन=चीरिकया घटितः=कृतः गलितः=शिथिलश्च ग्रन्थिः सन्धिबन्धनं यस्य तथाभूतम्। अतिनिबिड० अतिनिबिडः=अतिघनः यः सूत्रेण बन्धः=बन्धनं तस्मिन् निम्नितं=निम्नीकृतं नमितमित्यर्थः यत् अन्तरालं=मध्यं तेन कृतः व्यवच्छेदः=विभागः यस्याः तथाभूतया लेखानां=पत्राणां मालिकया=मालया एव मालिकया (स्वार्थे कः) समूहेन परिकलितः=आक्रान्तः अधिष्ठितः इत्यर्थः, मूर्धा=शिरः यस्य तथाभूतम्। तस्य पार्श्वे अन्यानि अपि पत्राणि आसन् अतः उक्तं 'लेखमालिकया' इति। लेखान्=पत्राणि हरति=नयति इति लेखहारकम्=पत्रवाहकम्। अप्राक्षीत्=अपृच्छत्। भद्र=भद्रपुरुष! भद्रं=कुशलम्, अशेषाणि=सकलानि यानि

हिन्दी—में बैठे (और) भोजन किये हुए उस (बाण) का चन्द्रसेन नाम का शूद्रा से उत्पन्न वर्णसङ्कर भाई अपराह्णसमय में आकर बोला—"यह महाराज चारों समुद्रों के अधिपति, सारे राज-मण्डल की चूड़ामणियों की पङ्क्ति-रूपी शाण पर रगड़ जाने से उज्ज्वल बनी हुई चरणों की नख-मणियों वाले, सभी चक्रवर्तियों के अग्रणी, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीहर्षदेव के कृष्ण नामक भाई द्वारा आपके पास भेजा, दूर से आया हुआ अत्यन्त प्रसिद्ध दूत ड्योढ़ी पर खड़ा है।" वह (बाण) बोला—"आयुष्मन्, इसे अतिशीघ्र लिवा लाओ।"

इसके बाद (बाण ने) प्रवेश करते हुए पत्रवाहक को देखा जो उस (चन्द्रसेन) के द्वारा लाया जा रहा था, जिसने कीचड़ से मैली कपड़े की चियड़ी से भड़कीला-सा कच्छा बाँध रखा था, जिसकी पीठ पर जीर्ण वस्त्र के चिथड़े-से बनी एक गाँठ लटकी हिल रही थी और जिसका सिर खूब घने डोरों से बाँधे जाने के कारण धँसे हुए मध्यभाग वाला था और उसपर इस कारण (द्विधा) विभक्त किया गया पत्रों का समूह लदा हुआ था। और दूर से ही (बाण ने) पूछा—'भद्र-पुरुष! सकल संसार के बिना कारण के बन्धु आदरणीय कृष्ण जी का कुशल तो है?' 'कुशल है' यह कहकर वह प्रणाम करके पास में बैठ गया। और विश्राम लिये बोला—'यह निश्चय ही माननीय स्वामी का

१. गलग्रन्थिम्।
२. निर्मित।

सः 'भद्रम्' इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—'एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेखः प्रहितः' इति विमुच्य चार्पयत्। अथ बाणः सादरं गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—'मेखलकात्सन्दिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी धीमद्भिरपहरणीयः कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासंवादनमात्रकम्'। अवधृतलेखार्थश्च समुत्सारितपरिजनः सन्देशं पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—'एवमाह मेधाविनं स्वामी—जानात्येव मान्यो यथैकगोत्रता वा, समानजातिता[१] वा, समं संवर्धनं वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतवः। त्वयि तु विना कारणेनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपीन्दाविव कुमुदाकरे। भवन्तमन्तरेणान्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः। शिशुचाप-

टीका—भुवनानि=जगन्ति तेषां निष्कारणः निर्गतं कारणं यस्मात् तथाभूतः निर्हेतुकः निःस्वार्थः इत्यर्थः बन्धुः=मित्रं तस्य तत्रभवतः=आदरणीयस्य। समुपाविशत=उपविष्टवान्। विश्रान्तः=कृतविश्रामः अब्रवीत्=अकथयत्। प्रहितः=प्रेषितः। विमुच्य=निस्सार्य अर्पयत्=समर्पितवान्। अवाचयत्=वाचितवान्। मेखलात्=एतन्नामकसन्देशवाहकात् सन्दिष्टं=वाचिकम्, अवधार्य=उपलभ्य फलस्य=अभिलषितार्थस्येत्यर्थः। प्रतिबन्धी=प्रतिबन्धकः बाधकः इत्यर्थः, धीमद्भिः=बुद्धिमद्भिः जनैः अपहरणीयः=परिवर्जनीयः कालस्य=समयस्य अतिपातः अत्ययः, एतावत् अत्र अर्थजातं=सर्वं प्रतिपाद्यवस्तु सारभूतोर्थं इति यावत्। इतरत्=अन्यत् वार्तानां (साधारण) समाचाराणां संवादनं=विज्ञापनं सूचनमिति यावत् एव संवादनमात्रकम्। अवधृतः=अवगतः लेखस्य=पत्रस्य अर्थः प्रतिपाद्यं येन तथाभूतः, समुत्सारितः=अपसारितः दूरीकृतः इत्यर्थः, परिजनः=भृत्यवर्गः येन तथाभूतः सन्देशं=वाचिकं पृष्टवान्=अपृच्छत्। अवादीत्=अवदत्। मेधाविनि=मेधा=धीः अस्यास्तीति मेधा+विन् तस्मिन् धीमति भवति इत्यर्थः, मान्यः=माननीयः भवानित्यर्थः, एकं गोत्रं यस्य तस्य भावः तत्ता, समानगोत्रीयतेत्यर्थः समाना=एका जातिः यस्य तस्य भावः तत्ता एकजातीयतेत्यर्थः, समं=सह संवर्धनं=पालन-पोषणमित्यर्थः, एकस्मिन् देशे निवासः दर्शनस्य साक्षात्कारस्य अभ्यासः=पौनःपुन्येन करणं, पुनः पुनः दर्शनमित्यर्थः, परस्परस्मिन् अनुरागस्य=प्रेम्णः श्रवणम्—आकर्णनम्, परोक्षे उपकाराणां=हितानां करणम्=अनुष्ठानम्, समानं शीलं=स्वभावः यस्य तस्य भावः तत्ता परस्पर-स्वभाव-मिलनमित्यर्थः, स्नेहस्य=प्रेम्णः हेतवः=कारणानि भवन्तीति शेषः। अदृष्टे=असाक्षात्कृते अपि दूरे तिष्ठतीति दूर+$\sqrt{}$स्था+क दूरस्थः तस्मिन् इन्दोः=चन्द्रमसः इवेत्युपमायाम् कुमुदानां=कैरवाणाम् आकरे=उत्पत्तिस्थाने प्रत्यासन्ने=समीपस्थे बन्धौ=बान्धवे इवेत्युपमायाम् बद्धः पक्षपातः=आनुकूल्यं यस्मिन् तथाभूतं हृदयं स्निह्यति=अनुरागं करोति। अन्तरेण=विना अर्थात् भवदनुपस्थितौ अन्यथा अन्यथा अन्यान्यप्रकारेण मिथ्येत्यर्थः। चक्रवर्ती=सम्राट् हर्षवर्धनः इति यावत् ग्राहितः=बोधितः आसीत् अर्थात् भवद्विरुद्धं सम्राजः कर्णौ भरितौ आस्ताम् न च तत् तथा, अर्थात् दुर्जनैः यदुक्तं तत् न सत्यम्, सताम् अपि सताम्=सज्जनानाम् अपि सज्जनानाम् अर्थात् महासज्जनानाम् अपि मित्राणि च उदासीनाश्च शत्रवश्च जायन्ते तदुक्तम्—"मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः। उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षा मित्रोदासीनशत्रवः"। शिशु०—शिशोः

हिन्दी—भेजा हुआ पत्र है' और (गठड़ी से) खोलकर समर्पित कर दिया। बाद को बाण ने आदर के साथ ग्रहण करके स्वयं पढ़ा—'मेखलक से सन्देश जानकर बुद्धिमानों (आप) को सफलता का बाधक विलम्ब पास में नहीं आने देना चाहिए। इतनी ही सारी बात है, अन्य तो समाचारों की सूचना-मात्र है।' और लेख की बात को समझे और नौकर-चाकरों को हटाये हुए बाण ने सन्देश पूछा, तो मेखलक बोला—'आप मेधावी को स्वामी ने ऐसा कहा—"माननीय आप जानते ही हैं कि जिस तरह एक गोत्र अथवा एक जाति का होना, साथ-साथ पालन-पोषण होना, अथवा एक देश में रहना अथवा बार-बार मिलना अथवा परस्पर अनुराग सुनना अथवा परोक्ष में उपकार करना अथवा एक-जैसे स्वभाव का होना स्नेह के कारण हुआ करते हैं। किन्तु बिना किसी कारण के, न देखे हुए भी आपके प्रति समीपस्थ बन्धु की तरह कुछ पक्षपात रखे हुए मेरा हृदय दूर रहने पर भी इस तरह स्नेह करता है जैसे कि चन्द्रमा दूरस्थित कुमुदाकर के प्रति करता है। आपकी अनुपस्थिति में दुर्जनों ने चक्रवर्ती को और ही और तरह से बहका दिया था। और वह वैसा नहीं था। भले ही सज्जन से सज्जन (कोई) क्यों न हों, वे ऐसे नहीं कि (उनके) मित्र, तटस्थ और शत्रु

१. समानज्ञातता।

लापराचीनचेतोवृत्तितया च भवतः [illegible] दसदृशमुदीरितमितरो लोकस्तथैव तद्गृह्णाति वक्ति च। सलिलानीव खलु गतानुगतिकानि[1] लोलानि भवन्त्यविवेकिनां मनांसि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चयः किं करोतु पृथिवीपतिः। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थं यथा—प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधीति। तथेति च प्रतिपन्नं स्वामिना। अतो भवता राजकुलमकृत-कालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकोशीवादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नासि मे बहुमतः। न च सेवावैषम्यविषादिना वा परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा वा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि—

स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।

टीका—बालकस्य चापलानि=चपलताः तेभ्यः अपराचीना=अपराङ्मुखी चेतसः वृत्तिः यस्य तस्य भावः तत्ता तया [पराङ्मुखः पराधीनः' इत्यमरः] असहिष्णुना=असहमानेन यत् किञ्चित् असदृशं=भवतः अयोग्यम् उदीरितं=कथितम्, इतरः=अन्यः गृह्णाति अवगच्छति, वक्ति=कथयति च। सलिलानि=जलानि इवेत्युपमायाम्, गतस्य (पुरुषस्य) अनुगतिः=अनुगमनं येषां तानि अर्थात् गड्डरिकाप्रवाहन्यायेन कार्यं कुर्वन्ति लोलानि=चञ्चलानि अविवेकिनां=विवेकरहितानां जनानां मनांसि=चित्तानि। बहुभ्यः=अनेकेभ्यः मुखेभ्यः श्रवणेन=आकर्णनेन निश्चलीकृतः=स्थिरीकृतः निश्चयः येन तथाभूतः पृथिवीपतिः=राजा श्रीहर्षः इत्यर्थः, किं करोतु। राजानो हि यत्किञ्चिदपि लोकमुखात् शृण्वन्ति तथैव अवधारयन्तीति भावः। तत्त्व=सत्यम् अन्विष्यन्ति=अनुसंदधते इति तत्त्वान्वेषिणः तैः अस्माभिः दूरे स्थितः=वर्तमानोऽपि त्वं प्रत्यक्षीकृतः=दृष्टः असि अर्थात् प्रत्यक्षमिव त्वां पश्यामि। विज्ञप्तः=बोधितः, चक्रवर्ती—सम्राट् श्रीहर्षः त्वदर्थं=त्वत्सम्बन्धे, प्रथमे वयसि=नवयौवने चापलैः=चञ्चलताकार्यैः शैशवं=बालत्वम् अपराधः अस्य अस्तीति तथोक्तम् प्रतिपन्नं स्वीकृतम्, स्वामिना=भूपतिना। न कृतः कालक्षेपः कालातिपातः विलम्ब इति यावत् यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा राजकुलं=राजगृहम्। अवकोशी=फलरहितो वृक्षः ['वन्ध्योऽफलोऽवकोशी च' इत्यमरः] इवेत्युपमायाम्, न दृष्टः=साक्षात्कृतः परमेश्वरः=महाराजाधिराजः श्रीहर्षः इत्यर्थः, अथ च सूर्यः येन सः बन्धूनां=बान्धवानां अथ च स्वजातीयानां वृक्षाणां मध्यम् अधिवसन्=अधितिष्ठन् मे=मम न बहु यथा स्यात्तथा मतः=आदृतः अर्थात् यथा बहूनां स्वजातीयानां वृक्षाणां मध्ये तेषां छायासु स्थित इत्यर्थः सूर्यं न पश्यन् अवकोशी न लोकैः आद्रियते तथैव त्वम् अपि राजानं न पश्यन् स्वबन्धुमध्यस्थितः न मे आदरपात्रम्। सेवायां=परिचर्यायां सम्राजः इति शेषः, यत् वैषम्यं=कठिनता असौकर्यमित्यर्थः, तेन विषीदतीति ०विषादी तेन अर्थात् निर्विण्णेन निराशेनेत्यर्थः, राज्ञः सेवायामुपस्थातुं महत् कठिनं कार्यमिति विचार्य त्वया निराशेन अथवा परमेश्वरस्य=महाराजाधिराजस्य उपसर्पणं=समीपे गमनं तस्मात् भीरुणा भीतेन न भवितव्यम्।

हिन्दी—नहीं होते। और आपकी मनोवृत्ति बचकानी चंचलताओं के पराङ्मुख न होने के कारण किसी न सहन कर सकने वाले शत्रु ने (आपके सम्बंध में) न कहे जाने योग्य जो कुछ कह दिया, लोग वैसा ही समझ लेते हैं और बोल देते हैं। वास्तव में अविवेकियों के मन पानी की तरह अस्थिर (और) भेड़ चाल चलने वाले होते हैं। बहुत मुखों से सुनने से स्थिर किये निश्चय वाला राजा क्या करे। सचाई का पता लगाने वाले हमने दूर रहते हुए भी आपको देख लिया है। आपकी तरफ से (हमने) सम्राट् को समझाया जैसे—'यौवनारम्भ में प्रायः सभी का शैशव चपलताओं का अपराधी होता ही है। और (हां) ऐसा ही है।' यह स्वामी ने मान लिया है। इसलिए आपको बिना विलम्ब किये राज-दरबार आ जाना चाहिए। राजा को न देखे हुए आप बन्धुओं के मध्य बैठे इस तरह मुझे अधिक अच्छे नहीं लगते जैसे कि स्वजातियों (वृक्षों) के बीच स्थित, सूर्य को न देखे हुए फल न देने वाला वृक्ष। और सेवा (में उपस्थित होने) की कठिनाई से निराश अथवा महाराजाधिराज के पास आने से भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि यद्यपि

स्वेच्छानुसार विषयों के भोगों वाला भी,
कामदेव देही नहीं है कहलाता,
सैकड़ों मार्गणों (बाणों) द्वारा पीड़ा पहुँचाकर,

---

१. गतागतिकानि।

मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे

कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः ॥ ३ ॥

टीका—स्वेच्छोप०—स्वस्य इच्छा=सङ्कल्पः तेन उपजातः उत्पन्नः विषयः=ऐन्द्रियकोपभोगः यस्य तथाभूतः (मनोभवपक्षे) मनोभवो हि सङ्कल्पजः उच्यते, स्वेच्छया—स्वेच्छानुसारम् उपजाताः=स्वाधीनीभूताः इत्यर्थः विषयाः=देशाः यस्य तथाभूतः। (दुर्विदग्ध-राजपक्षे) स हि स्वेच्छानुसारं परराज्यानि स्वाधीनीकरोति। अपि देही=देहः=शरीरम् अस्यास्तीति तथोक्तः देहवान् इति वक्तुं न याति=प्रतिपादन-विषयो न भवतीत्यर्थः कामो हि अनङ्गः तस्मात् 'देही' इति न कथयितुं शक्यते, अन्यत्र 'देहि' अस्माकं राज्यं वा धनं वा 'ददस्व' इति वक्तुं न शक्यते, तथा कथने दुष्टराजाद् भयस्योदयाद् दण्डप्रसङ्गाच्च। मार्गणाः मार्गयन्ति लक्ष्यम्=बाणाः तेषां शतैः=शतशः बाणप्रहारैः इत्यर्थः दुःखं ददाति, मनोभवो हि बाणप्रहारैः कामिनः दुःखयतीति भावः, अन्यत्र मार्ग्यते इति मार्गणम् [√मार्ग+ल्युट् भावे] याचनं मार्गणानां शतैः दुःखं ददाति, अर्थात् दुष्टो हि राजा शतशः याच्ञाकरणेऽपि याचकेभ्यः न किमपि ददाति अपितु दुःखमेव ददाति अथवा शतशः कराणां याचनात् प्रजाभ्यो दुःखं ददाति, मोहात्=कामपीडा-जनित-मूर्छातः अकाण्डे=अकस्मात् असमये वा जीवनं=प्राणान् आक्षिपति=आकर्षति हरतीत्यर्थः, अतएव वियोगिनां मारकत्वात् मनोभवः 'मारः' इत्युच्यते, अन्यत्र मोहात्=अज्ञानात् मूर्खत्वादित्यर्थः दुर्विदग्धो राजा अकाण्डे जीवनं=जीवनसाधनम् (जीवन्ति अनेनेति करणे ल्युट्) आजीविकामित्यर्थः आक्षिपति=आच्छिनत्ति। कष्टम्=(अव्ययम्) दुःखस्य विषयः अस्ति ईश्वरेण=शिवेन दुः=दुःखं वि=विशिष्टं यथा स्यात्तथा दग्धः=भस्मीकृतः मनोभवः=मनसि भवतीति=मनोजः इवेत्युपमा सा च श्लिष्टा, दुर्विदग्धः=दुर्विनीतः अल्पबुद्धिः मूर्खः इति यावत् ईश्वरः=नराणाम् ईशः राजेत्यर्थः, भवतीति शेषः। अत्र राजपक्षे दुर्विदग्धश्चासौ ईश्वरः इति कर्मधारये 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' पा. २।२।३७ इति सूत्रेण ईश्वर-पदस्य विकल्पेन पूर्वनिपातः।

टिप्पणी—अंग्रेजी-अनुवादक कॉवेल महोदय 'ईश्वर-दुर्विदग्ध' शब्द को 'दुर्विनीत राजा' अर्थ न करके 'ईश्वरे दुर्विदग्धः' विग्रह करके 'राजा के प्रति सेवा करने में जो ठीक निपुण नहीं होता' ऐसा अर्थ करते हैं। वह 'मनोभव जैसा होता है; वह अपनी प्रार्थना बोल नहीं सकता यद्यपि 'उसकी इच्छानुसार' वह विषम राजा के आगे आया हुआ रहता है, वह असमय में की हुई अपनी सैंकड़ों प्रार्थनाओं से (अपने राजा को) दुःख देता रहता है और फिर गलती से अकस्मात् नौकरी छोड़ देता है। पर यह अर्थ हमें प्रकरण-विरुद्ध लगता है। हम देखते हैं कि आगे कृष्ण के मुख से बाण भले और बुरे राजाओं का उल्लेख कर रहा है, इसलिए यहाँ 'दुष्ट राजा' ही अर्थ संगत है। श्लोक के शब्द-विन्यास से हमें कवि का यहाँ एक तीसरा अर्थ भी विवक्षित प्रतीत होता है, जो व्यङ्ग्य है। यह अर्थ शिव-परक है। ईश्वर शिव को भी कहते हैं। वे जब दुर्विदग्ध—क्रोध में जले-भुने होते हैं तब मनोभव की तरह प्रलय-ताण्डव करने लगते हैं। वे 'स्वेच्छोपजातविषयः' स्वेच्छया उपजाताः विषयाः यस्य—हैं। उनकी अपनी इच्छा-मात्र से सारा विषय-रूप संसार प्रकट हुआ है, उनको हम 'देही' नहीं कह सकते क्योंकि वे सर्व-व्यापक हैं और देह में सीमित नहीं हो सकते; उनके 'मार्गण'—खोज—अर्थात् प्राप्त्युपायों से कितने कष्ट होते हैं, अपनी खोज में भक्तों को बहुत क्लेश देते हैं, और 'मोहात्' तमोगुण के प्रबल होने पर सारे जीव-जगत् का प्रलय कर देते हैं।

हिन्दी—मूर्छा (मोह) से वह सहसा जीवन (प्राण) भी हर लेता,
वैसे ही दुर्विनीत राजा को भी समझो,
स्वेच्छानुसार विषयों (देशों) के भोगों वाला भी,
'दो हमें' ऐसा उसे नहीं कहा जा सकता,
सौ-सौ मार्गणों (करों की माँगों) द्वारा दुख ही देकर,
मूर्खता-(मोह) वश सहसा जीवन (नौकरी) भी छीन लेता ॥

अर्थात् जिस तरह कामदेव अपनी इच्छा से उत्पन्न होने वाले ऐन्द्रियक उपभोगों वाला होता हुआ भी 'देहवान है' ऐसा कहने में नहीं आता है, सैंकड़ों बाण-प्रहारों से कष्ट देता रहता है और मूर्छा के कारण सहसा प्राणों को ले लेता है, उसी तरह दुर्विनीत राजा स्वेच्छा से देशों को हथियाता हुआ भी 'दीजिए' इस प्रकार संबोधित नहीं किया जा सकता है, सैंकड़ों करों की माँगों से दुःख (ही) देता है और मूर्खता के कारण आजीविका भी छीन लेता है।

तथाप्यन्ये ते भूपतयः। अन्य एवायं न्यक्कृतनृगनलनिषधनहुषाम्बरीषदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमयः स्वामी। नास्याहङ्कारकालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टयः, न गर्वगुरुगरगलग्रहगदगद्गदा गिरः, नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदर्पदाहज्वरवेगविक्लवा विकाराः, नाभिमानमहासंनिपातनिर्मिताङ्गभङ्गानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतोष्ठनिष्ठ्यूतनिष्ठुराणि जल्पितानि। तथा च, अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकोटेषु। सर्वाप्रेसरे[1] यशसि महा-

---

टीका—तथाऽपि अन्ये ते भूपतयः=राजानः दुर्विदग्धाः इति यावत्; अन्य एव अयं श्रीहर्षदेवः। न्यक्कृताः=अधःकृताः नृगश्च नलश्च निषधश्च नहुषश्च अम्बरीषश्च दशरथश्च दिलीपश्च नाभागश्च भरतश्च भगीरथश्च ययातिश्च येन तथाभूतः अमृतम् एव अमृतमयः देवसमानः इत्यर्थः स्वामी=प्रभुः। अस्य=सम्राजः श्रीहर्षदेवस्य अहङ्कारः=अभिमानः एव कालकूटविषं तेन दिग्धाः=अक्ताः लिप्ताः इत्यर्थः दृष्टयः=दर्शनानि। अहङ्कारः एव कालकूटम् इति रूपकम्। गर्वः=दर्पः एव गुरुः=महान् गरः=विषं तेन यः गलग्रहः=गलग्रहणरूपः एव गदः=रोगः, गलग्रहः गलपाकः अपि उच्यते येन स्वर-भङ्गः जायते, तेन गद्गदाः अस्पष्टाः गिरः=वचनानि, अति=अत्यन्तः यः स्मयः मदः तेन यः ऊष्मा=उष्णिमा एव अपस्मारः=रोगविशेषः 'मिरगी' इति भाषायां प्रसिद्धः तेन विस्मृतं स्थैर्यं=स्थिरता येषु तथाभूतानि स्थानानि एव स्थानकानि=स्थितयः, अपस्मारी हि विगतचेतनो भूत्वा कुत्र स्थितोऽस्मीति विस्मरति। उद्दामः=उत्कटः यः दर्पः एव दाहवज्ज्वरः=दाहकः तस्य वेगेन=रंहसा विक्लवाः=आकुलाः=आक्रान्ताः इत्यर्थः विकाराः=मनोविकृतयः; अभिमानः एव महान् सन्निपातः=मारकज्वरविशेषः यस्मिन् वात-पित्त-कफाः सर्वेऽपि धातवः दूषिताः भवन्ति, तेन निर्मितः=कृतः अङ्ग-भङ्गः=अङ्गानां भङ्गः=कठिनता व्यथा च येषु तथाभूतानि गतानि=गमनानि, मदः=अवलेपः एव अर्दितं=वातव्याधि-विशेषः तेन वक्रीकृतः=भुग्नीकृतः यः ओष्ठः तस्मात् निष्ठ्यूतानि=निर्गतानि निष्ठुराणि=कठोराणि अक्षराणि=वर्णाः येषु तथाभूतानि जल्पितानि=जल्पनानि वचनानीत्यर्थः, सर्वत्र रूपकम्। विमलेषु=शुद्धचरित्रेष्वित्यर्थः साधुषु=सज्जनेषु रत्न-बुद्धिः 'इमे रत्नानि' इति ज्ञानं विचारः इत्यर्थः, न विमलेषु=उज्ज्वलेषु शिलानां=पद्मरागादिपदवाच्यानां प्रस्तराणां शकलेषु=खण्डेषु अर्थात् शुद्धचरित्राः साधवः एव रत्नानि न पुनः पद्मरागादीनीति श्रीहर्षदेवस्य विचारः। अत्र इतः परं च परिसंख्यालङ्कारः। यथोक्तं काव्यप्रकाशकारेण—'किंचित् पृष्टम् अपृष्टं वा कथितं यत् प्रकल्प्यते। तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता'। अत्र अप्रश्नपूर्विका परिसंख्या सा च श्लिष्टा। मुक्तावत्=मौक्तिकवत् धवलेषु=स्वच्छेषु गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिषु प्रसाधनम् अलङ्करणं तस्य धीः बुद्धिः न तु मुक्ताभिः=धवलेषु आभरणानां=कटक-कुण्डलादिभूषणानां भारेषु=समूहेषु अर्थात् तस्य दृष्टौ मानवस्य मण्डनं गुणाः भवन्ति न तु

टिप्पणी—नृग वैवस्वत मनु का पुत्र था, जिसे एक ब्राह्मण ने किसी विवाद ग्रस्त विषय पर निर्णय देने में विलम्ब करने के कारण गिरगिट बनने का शाप दे दिया था, देखिए रामायण उत्तरकाण्ड अध्याय ५३। नल राजा प्रसिद्ध ही है। निषध नामक राजा का पता नहीं चल रहा है। सम्भवतः वह रघुवंश के सर्ग १८ के अनुसार, राम का पड़पोता हो। नहुष ययाति का पिता और आयु का पुत्र था जो कि शाप से अजगर बन गया था। अम्बरीष 'अरि-षट्क'-विजयी राजा हुआ। दिलीप राम का एक वंशधर राजा था। नाभाग का वर्णन विष्णुपुराण और मार्कण्डेय पुराण में आता है। अन्य राजा प्रसिद्ध ही हैं।

हिन्दी—तथापि वे राजा लोग और ही हैं, नृग, नल, निषध, नहुष, अम्बरीष, दशरथ, दिलीप, नाभाग, भरत, भगीरथ और ययाति को नीचा दिखा देने वाले यह अमृतमय प्रभु और ही हैं। इनकी दृष्टियाँ अहंकार-रूपी कालकूट से विषाक्त और दूषित नहीं हैं, वाणियाँ गर्व रूपी महान् विष से गला बैठ जाने के कारण अस्पष्ट नहीं हैं, स्थितियाँ [उठना-बैठना आदि] महान् मद-रूपी अपस्मार रोग के कारण स्थिरता भूली-बैठी नहीं है, मनोविकार उत्कट दर्प-रूपी दाह-ज्वर के कारण अकुलाये नहीं रहते हैं, गतियाँ अभिमान-रूपी महासन्निपात द्वारा किए गए अंग-भंग वाली नहीं हैं और वचन मद-रूपी अर्दित-रोग के कारण टेढ़े होंठ से निकले हुए कठोर अक्षरों वाले नहीं हैं। अपि च यह विमल [चरित्र वाले] सज्जनों में रत्न की बुद्धि रखते हैं, विमल (उज्ज्वल) पत्थर के टुकड़ों में नहीं; मोतियों की तरह स्वच्छ गुणों को यह भूषण समझते हैं, मोतियों से सफेद बने गहनों के समूहों को नहीं; साधन (लक्ष्य-

---

1. सर्वाग्रेसरे।

प्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे । गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनताभियोगः, न निजकलत्रचर्मपुत्रिकासु । गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने । अपि च । अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोपकरणं लक्ष्मीः, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्, द्विजोपकरणं सर्वस्वम्, सुकृतसंस्मरणोपकरणं हृदयम्, धर्मोपकरणमायुः, साहसोपकरणं शरीरम्, असिलतोपकरणं पृथिवी, विनोदोपकरणं राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्षः । नास्याल्पपुण्यैरवाप्येत सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया' इति । श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेनं समा-

---

टीका—सुवर्णादिरचितकुण्डलादीनि, दानं=दक्षिणा एषु अस्तीति तथोक्तेषु कर्मसु=कार्येषु साधनम्=स्वलक्ष्यसाधनोपायः तस्य श्रद्धा=विश्वासः न तु दानवत्सु=मदजलवत्सु ('मदो दानम्' इत्यमरः) करिणः=हस्तिनः कीटाः=क्षुद्रजीवाः इव तेषु साधनं=सेना तस्य श्रद्धा, गजाः अपि सेनाङ्गम् भवतिस्म, अर्थात् दानादिकर्माणि एव स स्वलक्ष्यपूर्तिसाधनत्वेन अमन्यत न पुनः तुच्छ-गज-सेनादीनि । सर्वेषाम् अग्रे सरतीति तथोक्ते सर्वप्रथमं स्थानं प्राप्ते यशसि=कीर्तौ महती प्रीतिः=अनुरागः, न तु सर्वाग्रेसरे जीवितं=जीवनम् एव जरत्=जीर्णं तृणं तस्मिन्, अर्थात् स स्वकीर्तये एव महत्त्वपूर्णं स्थानं ददाति न तु साधारणजनैः सर्वमुख्यत्वेन मन्यमानाय जीर्णतृणसमान-तुच्छ-क्षणभङ्गुर-जीवनाय । गृहीतः=प्राप्तः करः राजस्वं याभ्यः तथाभूतासु आशासु=दिक्षु प्रसाधनतायाः=स्वाधीनीकरणस्य अभियोगः उद्योगः, न तु गृहीतः धृतः करः पाणिः विवाहसमये इति शेषः यासां तथाभूतासु निजकलत्राणि=स्वपत्न्यः एव चर्मपुत्रिकाः=चर्माच्छादितपुत्तलिकाः तासु, प्रसाधनतायाः=प्रसाधनस्य अलङ्कारस्येत्यर्थः अभियोगः=उद्योगः अर्थात् स दिशाभ्यः सर्वदिशानां भूपेभ्यः इति यावत् कर-ग्रहणं कृत्वा तान् स्ववशीकर्तुम् उद्युङ्क्ते, न तु चर्मपुत्तलिका-सदृशतुच्छासु कृतपाणिग्रहणासु स्वभार्यासु भूषणादिभिः समलङ्करणे प्रयतते । गुणः=मौर्वी अस्मिन् अस्तीति गुणवति धनुषि=कार्मुके सहायः=सहायकः इति बुद्धिः, न पुनः गुणयुक्ते पिण्डे=अन्नग्रासे उपजीवति=जीवननिर्वाहं करोतीति ०जीविनि सेवक-जने=भृत्यवर्गे, अर्थात् स स्वाधिज्यं धनुः एव सहायकत्वेन मन्यते न तु पिण्डभोजिनः गुणवतः सेवकान् । अस्य आत्मा मित्राणां=सुहृदाम् उपकरणम्=उपकारकं कर्म-साधकमित्यर्थः अर्थात् तस्यात्मा मित्राणां सेवायै अस्ति सर्वात्मना स मित्राण्युपकरोतीति यावत् । अस्य प्रभुत्वं=प्रभुता आधिपत्यमित्यर्थः, भृत्यानां=सेवकानाम् उपकरणम् अर्थात् तस्य प्रभुता सेवकानामुपकाराय अस्ति । अस्य वैदग्ध्यम्=विद्यावैचक्षण्यमित्यर्थः पण्डितानां विदुषाम् उपकरणम् तस्य विद्यावत्त्वं विदुषां पाण्डित्यमूल्याङ्कनाय तेषां सहायतायै चास्तीति भावः । अस्य लक्ष्मीः=धनसम्पत्तिः बान्धवानां=बन्धूनाम् उपकरणम् अस्ति । अस्य ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यशालित्वं वैभववत्त्वमित्यर्थः । कृपणानां=निर्धनानाम् उपकरणम् अर्थात् तस्य विभवः दीनानामुपकाराय अस्ति । अस्य सर्वस्वं=सर्वमेव धनं द्विजानां=ब्राह्मणानाम् उपकरणम्, अर्थात् स ब्राह्मणेभ्यः सर्वस्वमपि ददाति । अस्य हृदयम् सुकृतानां=परैः कृतानां शोभन-कर्मणाम् उपकाराणामित्यर्थः यत् संस्मरणं=सम्यक्तया स्मरणं तस्य उपकरणं=साधनम् अर्थात् स परैः कृतानां शोभनकर्मणां कृते हृदयतः कृतज्ञतामावहति । आयुः=जीवनसमयः धर्मस्य=सत्कर्मानुष्ठानस्य उपकरणम्=साधनम्, शरीरं साहसस्य=साहसपूर्णकार्याणां वीरोचितकर्मणामिति यावत् उपकरणम् । पृथिवी असिः=खड्गः लता इवेत्युपमिततत्पु० तस्य उपकरणम् अर्थात् पृथिवी तस्य कृते स्वखड्गनैपुणीप्रदर्शनस्य जगति सर्वत्र विनाशस्येति यावत् उपकरणं=साधनम् । राजकं=राज्ञां समूहः ('अथ राजकम् । राजन्यकं च नृपतिक्षत्रियाणां गणे क्रमात्' इत्यमरः) विनोदस्य=मनोरञ्जनस्य उपकरणम् अर्थात्

हिन्दी—प्राप्त्युपाय) के रूप में इनकी आस्था दान के कामों में है, साधन (सेना) के रूप में मदजल (बहाने) वाले कीड़े-जैसे (तुच्छ) हाथियों में नहीं; (जीवन में) सबसे आगे रहने वाले यश में इनकी प्रीति रहती है, सर्वमुख्य माने जाने वाले जीर्ण तृण-जैसे (तुच्छ) जीवन में नहीं; जिनसे इन्होंने करग्रहण (राजस्व-प्राप्ति) कर रखा है, ऐसी दिशाओं [के राज्यों] को अधीन बनाये रखने में इनका उद्योग रहता है, चमड़े की गुड्डियों-जैसी पत्नियों को सँवारने में नहीं, जिनसे इन्होंने कर-ग्रहण (विवाह) कर रखा है; प्रत्यञ्चाचढ़े धनुष को यह सहायक समझते हैं, गुणी टुकड़-खोर नौकर-चाकरों को नहीं । अपि च, इनकी आत्मा मित्रों की उपकारक है, विद्या-निपुणता विद्वानों की कारक है, हृदय (किसी के द्वारा) किए हुए अच्छे कामों की याद का साधन है, आयु धर्म का साधन है, शरीर साहस (के कामों) का साधन है; पृथिवी लता जैसी तलवार (का पराक्रम) दिखाने का साधन है, राज-मण्डल

---

१. दिक्षु प्रसाधनताभियोगः ।

दिशत्—'कृतकशिपुं विश्रान्तं सुखिनमेनं कारय' इति।

अथ गते च तस्मिन्, पर्यस्ते च वासरे, सङ्घट्टमान[1] रक्तपङ्कजसम्पुटपीयमान इव क्षयिणि क्षामतां व्रजति बालवायसास्यारुणेऽपराह्णातपे, शिथिलितनिजवाजिजवे जपापीडपाटले[2]ऽस्ताचलशिखरस्खलिते खञ्जतीव कमलिनीकण्टकक्षतपादपल्लवे पतङ्गे पुरः परापतति प्रेङ्खदन्धकारलेश[3]लम्बालके शशिविरहशोकश्याम इव श्यामामुखे, कृतसंध्योपासनः

टीका—तस्य कृते राजमण्डलस्य आवश्यकता केवल मनोविनोदाय अस्ति न तु युद्धे सहायतार्थम्। प्रतिपक्षः= शत्रवः प्रतापस्य=वर्चसः उपकरणं=साधनम् अर्थात् स्वकीय-प्रताप-प्रकाशनाय स शत्रून् अपेक्षते। सर्वम् अतिशेते= अतिक्रामति इति ०शायि यत् सुखं तदेव रसः=द्रवः तस्य प्रसूतिः=उत्पत्तिः यस्याः तथाभूता। पादौ एव। पल्लवौ=किसलयौ तयोः छाया=अनातपः अथवा कान्तिः पल्लवा हि छायां करोति सम्राजः पादोऽपि शरणागतेभ्यः स्वचरणच्छायां (रक्षाम्) करोति अथवा पल्लववत् पादयोरपि लोहिता छाया कान्तिरित्यर्थः समाना एव। अल्पानि पुण्यानि=सत्कर्माणि येषां तैः जनैरित्यर्थः न अवाप्यते=प्राप्यते अर्थात् तच्चरणाश्रयत्वं महता पुण्येन लभ्यते। अत्र रूपकालङ्कारः। श्रुत्वा=कृष्णस्य सन्देशम् आकर्ण्य बाणः=चन्द्रसेनं=स्ववर्णसङ्करभ्रातरम् समादिशत्= आज्ञापयत्। कृतं कशिपु=भोजनाच्छादनं यस्य तथाभूतम् ('कशिपु त्वन्नमाच्छादनं द्वयम्' इत्यमरः) विश्रान्तं= कृतविश्रामं सुखिनञ्च एनं=पत्रवाहकं कारय=कर्तुं प्रेरय।

पर्यस्ते परितः अस्ते=क्षिप्ते समाप्तिम् उपगते इत्यर्थः वासरे=दिवसे, संघट्ट०—संघट्टमानानि मिलन्ति संकोचं गच्छन्तीत्यर्थः यानि रक्तपङ्कजानि=रक्तकमलानि एव सम्पुटाः=समुद्गाः तैः पीयमाने=पानविषयीक्रियमाणे इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, क्षयिणि=क्षयं प्राप्ते क्षयरोगग्रस्ते च क्षामस्य=कृशस्य भावः इति क्षामता तां व्रजति=गच्छति बालः=अल्पवयाः यः वायसः=काकः तस्य आस्यवत्=मुखवत् अरुणे=रक्ते अपराह्णकालस्य आतपे=घर्मे शिथिलित०—शिथिलितः=शिथिलीकृतः मन्दीकृतः इत्यर्थः निजवाजिनां=स्वकीयाश्वानां जवः=वेगः येन तथाभूते जपायाः=रक्तवर्णपुष्पविशेषस्य आपीडवत् स्तबकवत् पाटले=रक्तवर्णे अस्ताचलस्य शिखरे=शृङ्गे स्खलिते= पतिते। खञ्जति=विकलं गच्छति [√खजि (गतिवैकल्ये) भ्वा० शतृ०+ङि] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कमलिनीनां=पद्मिनीनां कण्टकैः क्षतः पादानां=किरणानां पल्लवः=विस्तारः एव पादाः=चरणाः पल्लवाः इवेत्युपमिततत्पु० यस्य तथाभूते [पल्लवोऽस्त्री किसलयं विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः] पतङ्गे=सूर्ये पुरः=पूर्वस्यां दिशि अन्यत्र अग्रे परापतति=त्वरया आगच्छति, प्रेङ्खन्तः=पृष्ठे लुठन्तः अन्धकारस्य लेशः अल्पमात्रा एव लम्बालकाः=लम्बाः केशाः यस्मिन् तस्मिन्, शशिनः=चन्द्रस्य विरहेण=वियोगेन यः शोकः तेन श्यामे=श्यामवर्णे इवेत्युत्प्रेक्षायाम् श्यामा=रात्रिः एव श्यामा=यौवनमध्यस्था सुन्दरी ['श्यामा यौवनमध्यस्था' इति मल्लिनाथः] तस्याः मुखम्=

टिप्पणी—सूर्य पश्चिमाचल के शिखर पर जा गिरा। इस पर कवि कल्पना करता है कि मानो वह लंगड़ा कर गिर पड़ा हो। उसके पाद (किरण) रूपी पाद (पैर) कमलों पर पड़े। कमल-नालों पर बाल-जैसे कांटे होते हैं जिनसे सूर्य के 'पाद' बिंध गए। लंगड़ाता हुआ सूर्य धड़ाम से पश्चिमाचल के शिखर पर जा गिरा। जिसके पैर पर कांटा चुभता है, उसका लंगड़ाते-लंगड़ाते चलते कभी गिर जाना भी स्वाभाविक है। यहां रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर है। पुरः परा०—श्यामा-रात्रि के मुख अर्थात् प्रारम्भ में थोड़ा-थोड़ा अन्धेरा रहता है। इस पर कवि का अप्रस्तुतविधान देखिए—श्यामा बनी श्यामा-सुन्दरी, अन्धकार-लेश बन गए पीछे बिखरे पड़े केश, 'मुख' बना चेहरा और मुख की लालिमा का कारण बना पति-विरह का शोक, पति बना चन्द्रमा। श्लिष्ट परम्परित रूपक का उत्प्रेक्षा के साथ अङ्गाङ्गि-भाव संकर है। विरहिणी के लिए केशादि संस्कार वर्जित हैं—"हास्यं परगृहे यानं समाजोत्सवदर्शनम्।

क्रीडा शरीरसंस्कारं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका॥

हिन्दी—विनोद का साधन है; शत्रु-लोग प्रताप (दिखाने) के साधन हैं। इनके पाद-रूपी पल्लवों की छाया— जिनसे सबको अतिक्रमण कर देने वाला सुख-रूपी रस निकलता रहता है—कम पुण्य वालों को नहीं मिला करती।" और सुनकर (बाण ने) उसी चन्द्रसेन को आज्ञा दी—'इसे भोजन-वस्त्र, विश्राम और सुख से युक्त कराओ।'

इसके बाद उसके चले जाने पर और दिन के ढल जाने पर, कौवे के बच्चे के मुंह की तरह लाल-लाल अपराह्ण-समय क्षीण होते हुए, बन्द होते हुए कमल-रूपी दोनों द्वारा पीये हुए-जैसा मन्द पड़ जाने पर हल्के अन्धकार-रूपी केशों को (पीछे) लटकाए, चन्द्रविरह के शोक के कारण मानो काले पड़े श्यामा [१-रात्रि २-सुन्दरी]' के

१. संघटमान। २. पाटलिम्नि। ३. लेखा।

शयनीयमगात् । अचिन्तयच्चैकाकी—'किं करोमि । अन्यथा सम्भावितोऽस्मि राज्ञा । निर्निमित्तबन्धुना च सन्दिष्टमेवं कृष्णेन । कष्टा च सेवा । विषमं च भृत्यत्वम् । अतिगम्भीरं महद्राजकुलम् । न च तत्र मे पूर्वजनप्रवर्तिता प्रीतिः, न कुलक्रमागता गतिः, नोपकारस्मरणानुरोधः, न बालसेवास्नेहः, न गोत्रगौरवम्[1], न पूर्वदर्शनदाक्षिण्यम्, न प्रज्ञासंविभागोपप्रलोभनम्, न विद्यातिशयकुतूहलम्, नाकारसौन्दर्यादरः, न सेवाकाकुकौशलम्, न विद्वद्गोष्ठीबन्धवैदग्ध्यम्, न वित्तव्ययवशीकरणम्, न राजवल्लभपरिचयः । अवश्यं गन्तव्यम् । सर्वथा भगवान्पुरारातिर्भुवनगुरु[2]र्गतस्य मे[3] सर्वं साम्प्रतमाचरिष्यति' इत्यवधार्य गमनाय मतिमकरोत् ।

टीका—प्रारम्भः एव मुखम्=आननं तस्मिन् कृतं सन्ध्योपासनम्=सन्ध्याकालीन-कृत्यं येन तथाभूतः, शयनीयं=शय्यायाम् अगात्=अगच्छत् । एकाकी=एकलः, अन्यथा=अल्पेन प्रकारेण विरुद्धप्रकारेणेत्यर्थः, सम्भावितः=अवगतः, राज्ञा=श्रीहर्षेण । निर्निमित्तं=कारणं विनैव बन्धुः=मित्रं तेन । सेवा=सेवावृत्तिः परिचर्येति यावत् राज्ञः इति शेषः । कष्टा=कष्टकरी भवतीति शेषः । भृत्यत्वं भृत्यकर्म विषमं=कठिनं भवतीति शेषः । महत् राजकुलं=राजगृहम् अतिशयेन गम्भीरं=दुर्ज्ञेयमित्यर्थः । पूर्वजैः=पूर्वपुरुषैः प्रवर्तिता=प्रचलिता प्रीतिः=प्रेम अर्थात् कुलपरम्परा-चलिता राजप्रीतिः अस्मासु नास्ति । कुलक्रमेण=वंशक्रमेण आगता=प्राप्ता गतिः=राजकुले गमनम् । उपकारस्य=राजकुलेन कृतस्य ममोपकारस्य यत् स्मरणं=स्मृतिः तस्य अनुरोधः=विचारः आग्रहः इति यावत् । 'बाल-सेवा' अत्र बालशब्दः बालभावपरकः अर्थात् बाल्यकालात् प्रभृति या सेवा=राज-सेवा तया स्नेहः=राजानं प्रति प्रीतिः, अर्थात् बाल्यात् राजसेवा नानुष्ठिता तस्मान्न तत्र स्नेहः । गोत्रस्य=वंशस्य गौरवम्=महत्त्वम्, राजसेवया मम गोत्रे किमपि महत्त्वं नापादितमित्यर्थः । पूर्वं=पूर्वकालीनं यत् दर्शनं=साक्षात्कारः तेन दाक्षिण्यं=शिष्टाचारः, अर्थात् राज्ञः पूर्वपरिचयाभावात् तत्पार्श्वे गमने शिष्टाचारप्रश्नोऽपि नोदेति, प्रज्ञा=बुद्धिः विचारः इति यावत्, तस्याः संविभागः=विभाजनं परस्परादानप्रदानमित्यर्थः तस्य उपप्रलोभनम्=आकर्षणमित्यर्थः, विद्यायाः=विद्वत्तायाः इत्यर्थः यः अतिशयः=आधिक्यं तस्य कुतूहलम् अर्थात् मयि तादृशं विशिष्टविद्वत्त्वमपि नास्ति येनाहं राज्ञः कुतूहलपात्रं भवेयम् । न आकारस्य=आकृतेः यत् सौन्दर्यं तस्य आदरः=मानः, अहं सुन्दराकृतिरपि नास्मि येनाहं मानार्हः स्याम् इति भावः । सेवायां=परिचर्यायां यः काकुः=भिन्नकण्ठध्वनिः ('भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते' इति विश्वनाथः] तस्मिन् कौशलं=नैपुण्यम्, अर्थात् सेवायां प्रभुप्रसादनाय विभिन्न-कण्ठ-स्वर परिग्रहणीयो भवति, तस्मिन् चाहं न पटुः । विदुषां या गोष्ठयः=सभाः तासां बन्धे=आयोजने वैदग्ध्यम्=चातुर्यम् । वित्तस्य=धनस्य व्ययेन=धन-व्ययं कृत्वेत्यर्थः, वशीकरणं=लोकानां स्वानुकूलीकरणमित्यर्थः । राजकुले हि उत्कोचादिना कर्मचारिणः स्ववशीक्रियन्ते, न च मे तन्मात्रं धनमस्तीति भावः । राज्ञः वल्लभाः प्रियाः तैः सह परिचयः नास्तीति । अवश्यं गन्तव्यम् अर्थात् उक्त-प्रत्यूहानां विद्यमानत्वेऽपि मम तत्र गमनम् आवश्यकम् एव । पुराणां=त्रिपुराणाम् अरातिः=शत्रुः शिवः इत्यर्थः । मयासुरेण असुराणां कृते दिवि, अन्तरिक्षे पृथिव्यां च क्रमशः सुवर्ण-रजत लोहैः त्रीणि पुराणि निर्मितानि आसन्, देवानाम् अनुरोधेन शिवेन तानि सासुरं भस्मीकृतानि, ततः एव शिवः त्रिपुरारिः इति कथ्यते । भुवनस्य=जगतः गुरुः=पूज्यः इत्यर्थः । साम्प्रतम्=उचितम् आचरिष्यति=करिष्यति । अवधार्य=निश्चित्य, गमनाय मतिं विचारम् अकरोत्=कृतवान् ।

हिन्दी—मुख (१-प्रारम्भ, २-चेहरे) के शीघ्र सामने आ जाने पर सन्ध्योपासन किये हुए (बाण) शय्या पर चला गया और अकेला सोचने लगा—"क्या करूँ ? राजा मुझे और ही तरह समझ बैठा है । और निस्वार्थ बन्धु कृष्ण ने ऐसा सन्देश भेजा है । सेवा में कष्ट है । भृत्यता कठिन होती है । बड़ा राज-कुल गम्भीर होता है । और न मेरे वंशधरों ने उसके प्रति प्रेम का रुझान कर रखा है; न कुल-परम्परा से आना-जाना रहा है; न उपकार की स्मृति का अनुरोध ही है; न बचपन से सेवा करने की ओर स्नेह है; न कुल का गौरव है; न पूर्व परिचय के कारण (कोई) शिष्टाचार (ही) बनता है; न विचारों के आदान-प्रदान का प्रलोभन है; न विशिष्ट विद्वत्ता का कुतूहल है; न शारीरिक सौन्दर्य का आदर (आकर्षण) है; न नौकरी में ठकुरसुहाती कण्ठध्वनि का चातुर्य है; न विद्वानों की गोष्ठियों के आयोजन की कुशलता है; न धन व्यय करके वश में करना आता है; न राजा के प्रिय लोगों से परिचय है । जाना अवश्य है । जगद्वन्द्य भगवान् शंकर वहाँ पहुँचे हुए मेरा सर्वथा सब कुछ उचित ही करेंगे । इस तरह निश्चय करके उसने जाने का विचार कर लिया ।

---

१. तन्त्रगौरवम् । २. भवानीपतिर्भुवनपतिः । ३. मे शरणं सर्वं ।

अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधौतधवलदुकूलवासाः, गृहीताक्षमालः, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्र-पदानि च बहुशः समावर्त्य, देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपक-बहुलां विधाय पूजां परमया भक्त्या, प्रथमहुततरलतिलत्वग्विघटन[1]चटुलमुखरशिखाशेखरं प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणा-र्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्वा द्युम्नं यथाविद्यमानं द्विजेभ्यः, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखीं नैचिकीम्, शुक्लाङ्गरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः, रोचनाचित्रदूर्वाप्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनी-

---

टीका—अन्यस्मिन् अहनि=दिने प्रीतिकूटात् निरगात् इत्यस्ति वाक्यम् । अत्र कमंठ-ब्राह्मणस्य यात्राविधेः वर्णन-मस्ति । धृत०—धृतं=परिहितं धौतं=प्रक्षालितं धवलं=शुभ्रं दुकूलवासः=पट्टवसनं येन तथाभूतः । गृहीत०—गृहीता=धृता अक्षमाला=जपमाला येन सः । प्रास्थानिकानि=प्रस्थानं=यात्राप्रयोजनम् एषाम् इति प्रस्थान+ठक् ['प्रयो-जनम्' पा० ५।१।१०९] प्रस्थानप्रयोजनकानि, प्रस्थान-काले कर्तव्यानीत्यर्थः, सूक्तानि=वेदमन्त्र-समूहान् मन्त्राणां पदानि=सुबन्ततिङन्तशब्दान् बहुशः=बहुवारं समावर्त्य=उच्चार्य देवानां देवस्य=देवाधिपतेः इत्यर्थः । विकृतं रूपं यस्येति विरूपम्, विरूपे अक्षिणी यस्य तथाभूतस्य शिवस्येत्यर्थः । त्रिनेत्रधारित्वात् शिवस्य विरूपाक्षत्वम्, क्षीरेण=दुग्धेन स्नपनम्=अभिषेकः इत्यर्थः पुरःसरं पूर्वं यस्याः तथाभूताम् 'पूजाम्' इत्यस्य विशेषणम्, सुरभि०—सुरभीणि=सुगन्धितानि कुसुमानि=पुष्पाणि च धूपश्च गन्धश्च ध्वजा=पताका च बलिः=उपहारश्च विलेपनं=विलेपन-द्रव्यं च प्रदीपः एव प्रदीपकश्चेति ०प्रदीपकाः तैः बहुलां=पूर्णां विधाय=कृत्वा पूजाम्=अर्चनां परमया=महत्या भक्त्या=भक्तिभावेन. प्रथम०—प्रथमं=पूर्वं हुताः=हवीरूपेण प्रक्षिप्ताः अतः एव तरलाः=चञ्चलाः उत्पतन्तः इत्यर्थः ये तिलाः तेषां त्वचाम्=आवरणानां विघटनेन चटचटत्कारेण चटुलाः=चपलाः मुखराः=शब्दायमानाः शिखाः=ज्वालाः एव शेखरः=शिरोभूषणं यस्य तथाभूतम्, प्राज्या०—प्राज्यं=बहुलं यत् आज्यं=घृतं तस्य आहुत्या=होमेन प्रवर्धिता=वृद्धिं प्रापिता दक्षिणार्चिः=दक्षिणदिग्गामिनी अर्चिः=ज्वाला यस्य तथाभूतम् । यज्ञे दक्षिणोन्मुखी अर्चिः शुभलक्षणम्—कालिदासेनाप्युक्तम्—प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे, बभूव सर्वं शुभ-शंसि तत्क्षणम् [रघु० ३।१४] भगवन्तम्=आशुशुक्षणिम्=आ+समन्तात् शोष्टुमिच्छतीति आ+√शुष्+सन्+अनि, अग्निः तम् ['कृशानुः पावकोऽनलः रोहिताश्वो वायुसखः शिखावान् आशुशुक्षणिः' इत्यमरः] द्युम्नं=धनम् ['हिरण्यं द्रविणं द्युम्नम्' इत्यमरः] विद्यमानम् अनतिक्रम्य इति यथाविद्यमानम्, यथा गृहे लभ्यमासीत् इत्यर्थः । द्विजेभ्यः=ब्राह्मणेभ्यः प्राक्=पूर्वदिशि मुखं यस्याः तथाभूताम् नैचिकीम्=उत्तमां गाम् ['उत्तमा गोषु नैचिकी' इत्यमरः] प्रदक्षिणीकृत्य=परिक्रम्य, शुक्लः=शुभ्रवर्णः अङ्गरागः=चन्दनलेपः इत्यर्थः यस्य तथाभूतः, शुक्लं माल्यं=माला एव माल्यम् (स्वार्थे ष्यञ्) यस्य तथाभूतः, शुक्लानि वासांसि=वस्त्राणि यस्य सः । रोचना०—रोचनया गोरोचना-रूपपीतद्रव्यविशेषेण चित्राः=चित्रिताः रञ्जिताः इत्यर्थः ये दूर्वायाः=माङ्गलिकदर्भविशेषस्य अग्रपल्लवाः=अङ्कुराः तैः ग्रथितानि=बद्धानि यानि गिरिकर्णिकायाः=पुष्पवृक्षविशेषस्य कुसुमानि=पुष्पाणि तैः कृतः=रचितः कर्णपूरः=कर्णाभरणं येन सः, शिखायाम्=चूडायाम् आसक्ताः=संयोजिताः सिद्धार्थकाः=श्वेतसर्षपाः येन सः श्वेत-सर्षपाः माङ्गलिकाः भवन्ति, सिद्धः अर्थः येभ्यः इति तेषामन्वर्थसंज्ञा सिद्धार्थक इति । कनीयस्याः=प्रथम् अनयोः अतिशयेन युवा अल्पो वा इत्यर्थे ईयसुन् ततः युवाल्पयोः कनादेश इति कनीयस्+ङीप्, अनुजा इत्यर्थः सभा, स्वसा=

हिन्दी—इसके बाद दूसरे दिन उठकर प्रातःकाल ही स्नान करके धुले हुए सफेद रेशमी वस्त्र पहने, जपमाला लिए, प्रस्थान काल के सूक्तों और मन्त्र-पदों को बहुत बार उच्चारण करके, देवों के देव महादेव की परम भक्ति के साथ दुग्ध-स्नान-पूर्वक सुगन्धित पुष्प, धूप, गन्ध, ध्वजा, उपायन, विलेपन और दीपक से बड़ी भारी पूजा करके पहले होम किये गए हिलते-डुलते तिलों का छिल्लड़ फटने से चञ्चल और तिड़तिड़ाती लपटों का शिरोभूषण रखे हुए, प्रचुर घी की आहुतियों से बढ़ी हुई दक्षिणोन्मुख अर्चियों वाली पवित्र अग्नि में हवन करके, जितना हो सका, ब्राह्मणों को धन देकर, पूर्व को मुँह किये हुए उत्तम गाय की परिक्रमा करके, श्वेत अंगराग (चन्दन), श्वेत पुष्पमाला और श्वेत कपड़े धारण किये गोरोचन से रंगे दूर्वाङ्कुरों में गूँथे हुए गिरिकर्णिका के श्वेत पुष्पों का कर्णपूर बनाये, शिखा में सफेद सरसों के दाने रखे, कुल देवताओं को प्रणाम करके प्रीतिकूट से चल पड़ा—जिसकी यात्रा का सारा मङ्गलकार्य माता की तरह स्नेहार्द्र हृदयवाली, श्वेत वस्त्र पहने, साक्षात् भगवती महाश्वेता-जैसी प्रतीत हो रही

---

१. विचटन ।

यस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमङ्गलः, दत्ताशीर्वादो बान्धववृद्धाभिः, अभिनन्दितः परिजनजरन्तीभिः, वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातो गुरुभिः, अभिवादितैराघ्रातः शिरसि कुलवृद्धैः, वर्धितगमनोत्साहः शकुनैः, मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहदः, शोभने मुहूर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिर-स्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठं पिष्ट[1]पञ्चाङ्गुलपाण्डुरं मुखनिहितनवचूतपल्लवं पूर्णकलशमुदीक्ष-माणः प्रणम्य कुलदेवताभ्यः, कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः, प्रथमचलितदक्षिणचरणः, प्रीतिकूटान्निरगात् ।

टीका—भगिन्या मात्रा=जनन्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्नेहेन आर्द्रं=विलन्नं हृदयं यस्याः तया श्वेतानि वासांसि=वस्त्राणि यस्याः तया, साक्षात्=प्रत्यक्षम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, भगवत्या महाश्वेतया=गौर्या मालती आख्या=नाम यस्याः तया कृतं सकलं गमनाय=प्रस्थानाय मङ्गलं=मङ्गलकार्यं यस्य सः । बान्धवानां वृद्धाभिः=वृद्धस्त्रीभिः दत्तः आशीर्वादः यस्मै सः । परिजने=भृत्यवर्गे याः जरन्त्यः=वृद्धस्त्रियः ताभिः अभिनन्दितः कृताभिनन्दनः । वन्दितौ=प्रणतौ=चरणौ येषां तथाभूतैः गुरुभिः उपाध्यायैः अभ्यनुज्ञातः=अनुमतः । अभिवादितैः=वन्दितैः कुले=परिवारे वृद्धैः=वृद्धपुरुषैः शिरसि=मस्तके आघ्रातः=आघ्राणविषयीकृतः । शकुनैः=शुभलक्षणैः वर्धितः=वृद्धिं प्रापितः गमनाय उत्साहः=उद्योगः यस्य सः अर्थात् दक्षिणनयनस्फुरणादिलक्षणैः तस्योत्साहः वृद्धिं गतः । मौहूर्तिकानाम्=मुहूर्तं=शुभ-समयं द्वादशक्षणात्मकं वेद इति मुहूर्त+ठक् ['तदधीते तद्वेद' पा० ४।२।५३] मौहूर्तिकः गणकः ज्योति-र्विद इत्यर्थः, मौहूर्तिकानां मतेन=विचारानुसारेणेत्यर्थः कृतः नक्षत्राणाम् अश्विनीभरण्यादीनां तारकाणां दोहदः=इच्छापूर्तिः येन तथाभूतः अर्थात् तत्तन्नक्षत्र-दोषोपशमनार्थं दानादिना तेषामिच्छापूर्तिम् अपेक्षितोपायानिति यावत् कृत्वा, शोभने=कल्याणकारके हरित०—हरितेन गोमयेन उपलिप्तं=कृतलेप यत् अजिरं=प्राङ्गणं तस्मिन् यत् स्थण्डिलं=चत्वरं संस्कृत-भूभाग इत्यर्थः ('समे स्थण्डिलचत्वरे' इत्यमरः] स्थापितं=निहितम्, असिताः=कृष्णवर्णाः ताभ्यः इतरा=अन्याः अर्थात् श्वेतवर्णाः याः कुसुमानां=पुष्पाणां मालाः ताभिः परिक्षिप्तः=परिवृतः कण्ठः=गल-भागो यस्य तम्, पिष्टं=पिष्टतण्डुलद्रव इत्यर्थः तेन पञ्च अङ्गुलयः प्रमाणम् एषाम् इति पञ्चाङ्गुलानि चिह्ना-नीति यावत् पिष्ट-द्वारा पञ्चाङ्गुलिमुद्राभिरित्यर्थः पाण्डुरं=श्वेतवर्णं, मुखे=उपरीत्यर्थः निहिताः=स्थापिताः नवाः=नूतनाः चूतस्य=आम्रस्य पल्लवाः=पत्राणि यस्मिन् तथाभूतं पूर्णकलशं जलपूर्णकलशमित्यर्थः, उदीक्षमाणः=पश्यन्, जलपूर्णकलशं हि माङ्गलिकं भवति, कुसुमानि फलानि च पाणिषु हस्तेषु येषां तैः अप्रतिरथम् एतन्नामकं मङ्गलकारकं मन्त्रविशेषं जपद्भिः=उच्चारयद्भिः तदुक्तं—'यद् यात्रा मङ्गलं साम तदप्रतिरथं विदुः' (हारावली)। निज-द्विजैः=स्वपुरोहितैः ब्राह्मणैः अनुगम्यमानः=अनुस्रियमाणः । प्रथमं चलितः दक्षिणः चरणः यस्य तथाभूतः, पुरुषाणां दक्षिणचरणः दक्षिणनेत्रं दक्षिणहस्तश्च शुभो भवति, स्त्रीणाञ्च वामचरणः वामनेत्रं वामहस्तश्च शुभः। प्रीतिकूटात्=तन्नामकात् अधिवासात् निरगात् यात्रायं निरगच्छत् ।

टिप्पणी—महाश्वेतया—महाश्वेता शब्द से ग्रन्थकार का किस देवी की ओर संकेत है—स्पष्ट नहीं हो रहा है। दुर्गा और सरस्वती दोनों गौर वर्ण हैं। हो सकता है यहाँ भगवती दुर्गा अभिप्रेत हो। दुर्गा को गौरी और सर्वमङ्गला कहा जाता है। मंगलार्थ दुर्गा-पूजन का विधान है। देवी भागवत में दुर्गा को महाश्वेता कह रखा है—'श्वेतं शुक्लं शिव-स्थानं यस्माच्चेह समागता। महाभावसमुत्पन्ना महाश्वेता ततः स्मृता'। परन्तु शंकर ने 'महाश्वेता देवताविशेषः' लिखा है। किन्तु हो सकता है कि 'महाश्वेता' मालती का ही विशेषण हो क्योंकि वह रूप में महा-गौर-वर्ण रही हो और भगवती-जैसी लगती हो।

हिन्दी—मालती-नामक पिता की छोटी बहन द्वारा सम्पन्न कर दिया गया था, जिसे बन्धु-बान्धवों की वृद्धाओं ने आशीर्वाद दे दिया था, जिसका भृत्य वर्ग की वृद्ध स्त्रियों की ओर से अभिनन्दन हो चुका था, जिसे गुरुजनों की—जिनकी उसने चरणवन्दना की—आज्ञा मिल गई थी, जिसका माथा कुल के वृद्ध पुरुषों ने—जिन्हें उसने प्रणाम किया—सूँघ लिया था, जिसका जाने का उत्साह शुभ शकुनों ने बढ़ा दिया था, जिसने ज्योतिषियों के मतानुसार नक्षत्रों की इच्छा-पूर्ति कर ली थी, जो शुभ मुहूर्त में हरे गोबर से लिपे हुए आंगन की वेदी पर स्थापित, कण्ठ-भाग में श्वेतपुष्पमालाओं से आवेष्टित, पीठे से लगाई पाँच अंगुलियों (की छाप) से सफेद बने एवं मुख में आम के नये पत्ते रखे जलपूर्ण कलश को देख रहा था, जिसके पीछे-पीछे हाथों में फूल फल रखे अप्रतिरथ मन्त्र जपते हुए अपने

---

१. रक्तपिष्ट।

प्रथमेऽहनि घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्र[illegible]क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं, शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुललम्बितलोलजिह्वालतासहस्रैः, पुलकितमिवाच्छभल्लगो[1]लाङ्गूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासङ्घातैः रोमाञ्चितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः शनैश्चण्डिकाकानन[2]मतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्राममगात् । तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना सम्पादितसपर्यः सुखमवसत् । अपरेद्युस्तीर्त्वा भगवतीं भागीरथीं यष्टिग्रहक[3]नाम्नि वनग्रामके निशामनयत् । अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणितारमन्व[4]जिरवति कृतसंनिवेशमाससाद । प्रतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य ।

टीका—प्रथमे अहनि=दिवसे घर्मकालात=ग्रीष्मसमयकारणात् कष्टं=कष्टकरम्, इदं रोमाञ्चितमिवेतिपर्यन्तं च काननम् इत्यस्य विशेषणानि निरुदकं=निर्जलं निष्पत्राः=पत्र-रहिताः ये पादपाः=वृक्षाः तैः विषमं=भीषणम् पथिक०—पथिकजनेन=पथिकैः नमस्क्रियमाणाः=प्रणम्यमानाः प्रवेशे=वन-प्रवेश-प्रारम्भे यः पादपः=वृक्षः तस्मिन् उत्कीर्णाः=नष्टाः उल्लिखिताः इत्यर्थः याः कात्यायिन्याः=दुर्गा-देव्याः प्रतियातनाः=प्रतिमाः मूर्तयः इत्यर्थः ['प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया' इत्यमरः] यस्मिन् तम् शुष्कम्=पत्ररहितम् अपि । तृषित०—तृषिताः=तृषार्ताः ये श्वापदाः=हिंसकजीवाः तेषां कुलस्य=समूहस्य लम्बिताः बहिरागत्य लम्बीभूताः लोलाः=चञ्चलाः च याः जिह्वाः लताः इवेत्युपमिततत्पु०, तासां सहस्रैः पल्लवितम् सञ्जातपल्लवम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सर्वमपि वनं शुष्कमासीत् किन्तु तृषार्तजीवानां मुखाद्बहिरागतैः रक्तवर्णजिह्वासहस्रैः पल्लवयुक्तमिव प्रतीयते स्मेति भावः । अच्छभल्ल०—अच्छभल्लाः=अच्छाः निर्मलाः भल्लाः=शस्त्राणि नखानि येषां तथाभूताः भल्लूकाः=ऋक्षाः. ['ऋक्षाच्छभल्ल-भल्लूकाः' इत्यमरः] गोलाङ्गूलाः=श्यामदेहाः रक्तकपोलाः गोवत्पुच्छाश्च वानर-विशेषाः तैः लिह्यमानाः=आस्वाद्यमाना ये मधुगोलाः=मधुचक्राणि तेभ्यः चलितानाम्=उड्डीनानां सरघाणां=मधुमक्षिकाणां सङ्घातैः=समूहैः पुलकितं=सञ्जातपुलकं कण्टकितं चिह्नितमित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । दग्धा०—दग्धाः=दावानलेन प्लुष्टाः या स्थल्यः=अकृत्रिम-भूमयः तासु रूढानि=उत्पन्नानि स्थूलानि अभीरोः=औषधिविशेषस्य शतावरीनामान्तरस्य यानि कन्दलानां=नवाङ्कुराणां शतानि=समूहाः इत्यर्थः, तैः रोमाञ्चितम्=जातरोमाञ्चम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । चण्डिकायाः काननं=वनम् अतिक्रम्य=अतीत्य, मल्लकूटः नाम यस्य तथाभूतं ग्रामम् अगात्=अगच्छत् । हृदयात् निर्गतः विशेषः=भेदः यस्य सः, अभिन्नहृदय इत्यर्थः, तेन भ्रात्रा पितृव्यपुत्रेण अथवा मातुलपुत्रेण, सुहृदा=मित्रेण जगत्पतिः नाम यस्य तेन सम्पादिता=कृता सपर्या=पूजा आदर-सत्कारः इत्यर्थः यस्य सः, सुखं यथा स्यात् तथा अवसत्=वासमकरोत् । अपरेद्युः=अपरस्मिन् द्यवि अपरदिने इत्यर्थः, भगवतीं भागीरथीं=गङ्गाम् उत्तीर्य=तीर्त्वा, यष्टिग्रहकः नाम यस्य तथाभूते वन-ग्रामे=वनस्थे ग्रामे निशां=रात्रिम् अनयत्=अत्यवाहयत् । स्कन्धावारम्=शिबिरम्, निवेशस्थानमित्यर्थः, मणितारस्य=एतन्नामक-नगरस्य समीपे इत्युपमणितारम् (अव्ययीभावः सामीप्ये) अजिरवतीम्=एतदाख्यनदीम् अनु=पश्चात् इत्यजिरवति (अव्ययी०), अजिरवतीनदी-तीरे इत्यर्थः कृतः सन्निवेशः=स्थितिः येन तथाभूतम् आससाद=प्राप्तवान् ।

हिन्दी—ब्राह्मण जा रहे थे और जो पहले दाये पैर से चला ।

पहले दिन चण्डिका-वन धीरे-धीरे पार करके—जो ग्रीष्म-समय के कारण कष्टदायक था, जहाँ पानी न था, जो बिना पत्तों के पेड़ों से भीषण था, जहाँ पथिक लोगों द्वारा प्रवेश (=आरम्भ) के वृक्ष पर खुदी हुई कात्यायिनी मूर्तियों को नमस्कार किया जाता है, जो सूखा हुआ भी प्यासे हिंसक जन्तु समूह की (बाहर) लंबी निकली लता-जैसी हजारों जीभों से ऐसा लग रहा था मानों वह पल्लव-युक्त हो, जो भालू और वानरों द्वारा चाटे जा रहे शहद के गोल छत्तों से उड़ी मधुमक्खियों के समूहों से चिह्नित-जैसा बना हुआ था और जो जली हुई भूमि पर उगे हुए शतावरी के मोटे-मोटे नये अङ्कुरों से रोमाञ्चित-जैसा प्रतीत हो रहा था—मल्लकूट नाम के गाँव में जा पहुँचा और वहाँ अभिन्न हृदय भाई जगत्पति-नामक मित्र से अर्चना-सत्कार प्राप्त किए हुए सुख से रहा । बाद को दूसरे दिन भगवती भागीरथी को पार करके यष्टिग्रहक-नामक जंगली गाँव में रात काटी । अगले दिन मणितारक नगर के पास अजिरवती नदी के पीछे स्थित शिविर में जा पहुँचा और राजभवन से थोड़ी दूर टिक गया ।

---

१. शुष्कगलगो० ।
२. चण्डिकायतनकानन० ।
३. यष्टिगृहक० ।
४. मणिपुरमन्व० ।

निर्वर्तितस्नानाशनव्यतिकरो विश्रान्तश्च मेखलकेन सह याममात्रावशेषे दिवसे भुक्तवति भूभुजि प्रख्यातानां क्षितिभुजां बहून्शिबिरसंनिवेशान्वीक्षमाणः शनैः शनैः पट्टबन्धार्थमुपस्थापितैश्च डिण्डिमाधिरोहणायाहूतैश्चाभिनव-बद्धैश्च विक्षेपोपार्जितैश्च कौशलिकागतैश्च नागवीथीपालप्रेषितैश्च प्रथमदर्शनकुतूहलोपनीतैश्च दूतसम्प्रेषणप्रेषितैश्च पल्लीपरिवृढढौकितैश्च स्वेच्छायुद्धक्रीडाकौतुकाकारितैश्च दीयमानैश्चाच्छिद्यमानैश्च मुच्यमानैश्च यामस्थापितैश्च[1] सर्व-द्वीपविजिगीषया गिरिभिरिव सागरसेतुबन्धार्थमेकीकृतैर्ध्वजपटपटुपटहशङ्खचामराङ्गरागरमणीयैः पुष्याभिषेकदिवसैरिव कल्पितैर्वारणेन्द्रैः श्यामायमानम्, अनवरतचलितखुरपुटप्रहतमृदङ्गैर्नर्तयद्भिरिव राजलक्ष्मीमुपहसद्भिरिव सृक्विपुट-प्रसृतफेनाट्टहासेन जवजडजङ्घां हरिणजातिमाकारयद्भिरिव सङ्कटहेतोर्हर्षहेषिते[2]नोच्चैःश्रवसमुत्पतद्भिरिव दिवस-

टीका—निर्वर्तितः=कृतः स्नानस्य=अशनस्य=भोजनस्य च व्यतिकरः=कार्यम् इत्यर्थः येन सः, राजद्वारमगात् इत्यन्वयः। विश्रान्तः=कृतविश्रामः, याममात्रम्=प्रहरमात्रम् अवशेषः यस्य तथाभूते दिवसे भुक्तवति=भोजनं कृतवति भूभुजि=भूपतौ प्रख्यातानाम्=प्रसिद्धानाम्, क्षितिभुजाम्=राज्ञाम्, शिविर-सन्निवेशान्=शिबिरस्थितीः वीक्षमाणः =पश्यन्, पट्टस्य=आदरचिह्नविशेषस्य बन्धार्थं=शिरसि वेष्टनार्थम्, उपस्थापितैः=आनीतैरित्यर्थः। एतत् अन्यानि च तृतीयान्त-पदानि 'वारणेन्द्रैः' इत्यस्य विशेषणानि। डिण्डिमस्य=पटहस्य अधिरोहणार्थं=स्थापनार्थम् आहूतैः=आनीतैः। विक्षेपः (शङ्करानुसारेण) करः तस्मिन् उपार्जितैः=प्राप्तैः कर-रूपेण लब्धैरित्यर्थः, अथवा विक्षेपः=स्थानान्तरे प्रेषणम् तदर्थम् उपार्जितैः=एकत्रितैः। कौशलिका=कुशलाय=मङ्गलाय हिता इति कुशल+ठक्+टाप्, प्राभृतकम् उपहार इत्यर्थः तस्याम् आगतैः=उपहार-रूपेण प्राप्तैरित्यर्थः। नागानां=हस्तिनां वीथ्यः=पङ्क्तयः तासां पालैः=पालकैः अथवा नागानां वीथी=मार्गः अर्थात् स्थानं यत्र नागाः गृह्यन्ते विनीयन्ते च तस्याः पालैः। प्रथमं यत् दर्शनम् तस्मिन् यत् कुतूहलं=कौतुक तेन उपनीतैः=उपस्थापितैः। दूतस्य= निसृष्टार्थस्य सम्प्रेषणे=सम्प्रेषणसमये प्रेषितैः=प्रेरितैः पल्ली=क्षुद्र-ग्रामः तस्य परिवृढः=अधिपः ['प्रभुः परिवृढोऽधिपः' इत्यमरः] तेन ढौकितैः [ढौक्+क्त]=उपायनीकृतैः=उपहार-रूपेण दत्तैरित्यर्थः। स्वेच्छया भूपतेरित्यर्थः या युद्धस्य क्रीडा=खेला कृत्रिमयुद्धमित्यर्थः तत्र यत् कौतुकं=कुतूहलं तदर्थम् आकारितैः=आहूतैः। दीयमानैः= वितीर्यमाणैः=आच्छिद्यमानैः=बलात् गृह्यमाणैः मुच्यमानैः=बन्धनात् मुक्तैः क्रियमाणैः, याने=प्रहरे स्थापितैः। सर्वे च ते द्वीपाः तेषां विजिगीषया=विजेतुमिच्छया गिरिभिः=पर्वतैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सागरे=समुद्रे यः सेतुबन्धः=सेतु-निर्माणं तदर्थम् एकीकृतैः=एकत्र कृतैः, उच्चाः श्यामवर्णाश्च हस्तिनः पर्वताः इव दृश्यन्तेस्म, हस्ति-रूपान् पर्वतान् सागरे निधाय राजा सेतुं निर्मातुमिच्छतिस्मेति भावः। ध्वज०—ध्वजपटाः=पताकाश्च पटवः= गभीरशब्दं कुर्वन्तः पटहाः=आनकाश्च शङ्खाश्च चामराश्च अङ्गरागाः—विलेपनद्रव्याणि च तैः रमणीयैः=मनो-हरैः, पुष्याभिषेकस्य=पुष्यनक्षत्रकालीनस्य राज्याभिषेकस्य दिवसैः=दिनैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पुष्यनक्षत्रे हि राज्ञा-मभिषेको जायते, तेऽपि ध्वजादिभिः सह अभिषेकाय गच्छन्ति। कल्पितैः=सज्जितैः वारणेन्द्रैः=करिराजैः श्यामाय-मानं=श्यामीभवत्, श्याम-वर्णैः वारणेन्द्रैः राजद्वारं श्यामवर्णमभूदित्यर्थः। अनवरत०—अनवरतं यथा स्यात्तथा चलिताः ये खुराणां पुटाः=पुटकानि तैः प्रहतम्=आहतं मृदः=मृत्तिकायाः पृथिव्याः इत्यर्थः अङ्गं=भागः इत्यर्थः एव मृदङ्गः=मुरजः यैः तथाभूतैः। श्लिष्टरूपकम्। इदम् अन्यानि च 'तुरङ्गैः' इत्यस्य विशेषणानि, नर्तयद्भिः=नृत्यं कारयद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। राजलक्ष्मीं=राजश्रियम्, नृत्यं वाद्येन सह भवति, तुरङ्गाणां भूमौ

हिन्दी—स्नान भोजन के कार्य से निबटे और थकावट मिटाये (बाण) मेखलक के साथ, दिन के प्रहर-मात्र शेष रहे राजा के भोजन कर चुकने पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध क्षितिपालों के पड़ावों को देखता हुआ धीरे-धीरे राज-द्वार पर जा पहुँचा, जो (सिर पर) पट्ट-बन्ध के लिए उपस्थित किये हुए, (पीठ पर नगाड़ा चढ़ाने के लिए लाए हुए, नये-नये बान्धे हुए, कररूप में प्राप्त हुए, उपहार-रूप में मिले हुए हस्तिवीथीपालों द्वारा भेजे हुए, पहले पहल देखने के कौतुक के कारण बुलाए हुए, राजदूत भेजने के समय भेजे हुए, छोटे गाँव के स्वामी द्वारा भेंट किये हुए, (राजा की) अपनी इच्छा-नुसार कृत्रिम युद्ध देखने के कुतूहल के लिए बुलाए हुए, दिए जाते हुए, छीने जाते हुए, छोड़े जाते हुए, प्रहर पर स्थापित किए हुए, सभी द्वीपों को जीतने की इच्छा से समुद्र में पुल बनाने के लिए इकट्ठे किए पर्वतों-जैसे, ध्वज पताकाओं, खूब बजने वाले नगाड़ों, शंखों, चामरों और अंगरागों से शोभायमान, पुष्य नक्षत्र में होने वाले राज्याभिषेक के दिवसों-जैसे प्रतीत हो रहे सजे-धजे गजेन्द्रों से काला बन रहा था, जो निरन्तर चञ्चल खुरपुटों

१. यामावस्थितैश्च।

२. हेषितेनोच्चैःश्रवस०।

कररथतुरगरुषा [illegible] तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणम्, अन्यत्र प्रेषितैश्च प्रेष्यमाणैश्च प्रेषितप्रतिनिवृत्तैश्च[1] बहुयोजनगमनगणनसंख्याक्षरावलीमिरिव वराटिकावलीभिर्घटितमुखमण्डनकैस्तारकितैरिव संध्यातपच्छेदैररुणचामरिकारचितकर्णपूरैः सरक्तोत्पलैरिव रक्तशालिशालेयैरनवरतझणझणायमानचारुचामीकरघुरुघुरकमालिकैर्जरत्करञ्जवनैरिव रणितशुष्कबीजकोशीशतैः श्रवणोपान्त-प्रेङ्खत्पञ्चरागवर्णोर्णाचित्रसूत्रजूटजटालैः कपिक-

---

टीका—खटखटात्-कुर्वन्तः खुरपुटाः मृदङ्गमिव वादयन्तिस्म, राजलक्ष्मीं च नर्तयन्तिस्मेति कविकल्पना। सृक्किपुट०—सृक्किणाम्=ओष्ठप्रान्तानां ['प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी, इत्यमरः] पुटेषु प्रसृतः=विततः यः फेनः एव अट्टहासः=महाहासः तेन जवे=वेगे स्वापेक्षया जडा=मन्दा जङ्घा यस्याः तथाभूताम् हरिणानां=मृगाणां जातिम् उपहसद्भिः उपहासास्पदं मन्यमानैः। तुरङ्गाः जवे मृगान् अतिशेरतेस्म, अतः सृक्कि-फेन-रूपाट्टहासेन तान् उपहसन्तिस्म। फेनवद् अट्टहासोऽपि श्वेतो भवति। अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षालङ्कारः। सङ्घट्ट०—सङ्घट्टः संघर्षः=युद्धमित्यर्थः तस्य हेतोः=कारणात् हर्षस्य आह्लादस्य यत् हेषितं=हेषारवः तेन उच्चैःश्रवसम्=इन्द्राश्वम् आकारयद्भिः=आहूयमानैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्।

उत्पतद्भि०—दिवसकरः=सूर्यः तस्य रथस्य ये तुरगाः=अश्वाः तेभ्यः रुट्=क्रोधः तया ईर्ष्ययेत्यर्थः। पक्षायमाणा=पक्षाः इव आचरन्ती चामराणां माला=पङ्क्तिः येषां तैः, गगनतलम्=आकाशम् उत्पतद्भिः=उद्गच्छद्भिः उड्डीयमानैरित्यर्थः। अश्वानां चामराणि पक्षसदृशानि आसन् अतः सूर्यरथाश्वेर्ष्यया तेपि उच्छलन्तो गगनतले उड्डीयमाना इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः, तथाभूतैः तुरङ्गैः=अश्वैः तरङ्गयुक्तम् इव आचरतीति तरङ्गायमाणम्। अत्र तरङ्गशब्दः तद्वति वर्तते राजद्वारस्य तरङ्गत्वासंभवात् ['सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते सि० कौ०] तरलास्तुरगा राजद्वारे तरङ्गाइव प्रतीयन्ते स्मेति भावः। अन्यत्र अन्यस्थाने प्रेषितैः प्रेरितैः एतत् कपिलैः एतत्पर्यन्तञ्च 'क्रमेलककुलैः' इत्यस्य विशेषणानि। प्रेष्यमाणैः=प्रेर्यमाणैः, पूर्वप्रेषितैः पश्चात् प्रतिनिवृत्तैः=प्रत्यागतैश्च, बहूनि योजनानि यद् गमनं तस्य गणने=गणनायां या संख्या=एकत्वद्वित्वादि-रूपा तस्याः अक्षराणाम् आवलीभिः पङ्क्तिभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वराटिकानां=कपर्दिकानाम् आलिभिः=पङ्क्तिभिः घटितं=कृतं मुखस्य मण्डनकं=भूषणं येषां तैः। चत्वारः क्रोशाः अष्टौ नव वा 'मीलानि' मिलित्वा योजनं भवति। तारकितै० अरुणाभिः=रक्तवर्णाभिः चामरिकाभिः=लघुचामरैः रचितः कर्णपूरः कर्णाभरणं येषां तैः तारकितैः=सञ्जात-तारकैः तारकायुक्तैरित्यर्थः। सन्ध्यातपस्य सन्ध्याकालीन-घर्मस्य छेदैः=खण्डैः इवेत्युत्प्रेक्षा। अरुणचामरिकाः कर्णपूराः तारकाः स्वयञ्चोष्ट्राः सन्ध्यातपखण्डाः इव प्रतीयन्तेस्मेतिभावः। रक्त०—रक्तानां शालीनां=धान्यानां क्षेत्राणि रक्तशालेयानि, शालीनां भवनं क्षेत्रम् इति शालि+ढक् ['व्रीहि-शाल्योर्ढक्' पा० ५।२।२] शालेयम् [क्षेत्रं व्रैहेय-शालेयं व्रीहिशाल्योद्भवोचितम्, इत्यमरः] तैः रक्तोत्पलैः=रक्तकमलैः सह वर्तमानैः। उष्ट्राणां रक्तपीता त्वचा रक्तशालेयम् इव अरुणचामरिकाश्च रक्तोत्पलानि इव प्रतीयन्तेस्मेति भावः। अनवरत० अनवरतं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा झणझणायमाना=झण झण शब्दं कुर्वती चारुः=मनोहरा चामीकरस्य=सुवर्णस्य घुरुघुरुकाणां=क्षुद्रघण्टिकानां माला येषां तथाभूतैः रणितानि=शब्दं कृतवन्ति यानि शुष्काणां बीज-कोशीनां वराटकानां बीजकोशानामित्यर्थः शतानि

हिन्दी—द्वारा ताड़ित पृथिवी के रूप में मृदङ्ग (-वादन) से राजलक्ष्मी को नचाते हुए-जैसे, होठों के कोनों में लगे हुए झाग के रूप में अट्टहास द्वारा वेग में (अपनी अपेक्षा) मन्द बनी जङ्घाओं वाली मृगजाति का उपहास करते हुए-जैसे, टक्कर लेने हेतु हर्ष की हिनहिनाहट से उच्चैःश्रवा का आह्वान करते हुए-जैसे, सूर्य के घोड़ों के प्रति क्रोध के कारण पंखों के समान अलंकरण-रूप चामरों की माला रखे गगनतल में उड़ते हुए-जैसे घोड़ों से लहरा रहा था, जो कहीं दूसरी जगह भेजे गए, भेजे जा रहे, भेजे वापस आए हुए, बहुत योजन दूर जाने की गिनती की संख्या की अक्षर-पङ्क्तियों-जैसी कौड़ियों की मालाओं से मुख का मण्डन किए हुए, तारों से युक्त संध्याकालीन धूप के टुकड़ों-जैसे प्रतीत हो रहे, लाल चामरों का कर्णपूर बनाए, रक्त कमलों से युक्त लाल धान के खेतों-जैसे, बजते हुए सूखे बीजों की सैकड़ों फलियों वाले जीर्ण करंज के बनों-जैसे निरन्तर झनझनाते हुए सुवर्ण के घुंघरू की माला रखे, कानों के पास हिलते ऊन के पंचरंगी चमकीले सूत्रों के गुच्छों की जटा रखे हुए, बन्दर के कपोलों की तरह पीले ऊँठों के समूहों से पीला हो रहा था, जो कहीं दूसरी जगह तत्काल बरसे हुए पय-(जल) समूह के कारण श्वेत

---

१. प्रतीपनिवृत्तं०।

पोलकपिलैः क्रमेलककुलैः कपिलायमानम्, अन्यत्र शरज्जलधरैरिव सद्यःस्रुतपयःपटलधवलतनुभिः कल्पपादपैरिव मुक्ताफलजालकजायमानालोकलुप्तच्छायामण्डलैर्नारायणनाभिपुण्डरीकैरिवाश्लिष्टगरुडपक्षैः क्षीरोदोद्देशैरिव द्योतमानविकटविद्रुमदण्डैः शेषफणाफलकैरिवोपरिस्फुरत्स्फीतमाणिक्यखण्डैः श्वेतगङ्गापुलिनैरिव राजहंसोपसेवितैरभिभवद्भिरिव निदाघसमयमुपहसद्भिरिव विवस्वतः प्रतापमापिबद्भिरिवातपं चन्द्रलोकमयमिव जीवलोकं जनयद्भिः कुमुदमयमिव कालं कुर्वद्भिर्ज्योत्स्नामयमिव वासरं विरचयद्भिः फेनमयीमिव दिवं दर्शयद्भिरकालकौमुदीसहस्राणीव

टीका—येषु तैः, जरद्भिः=जीर्णैः करञ्जस्य वनैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । श्रवण०=श्रवणयोः=कर्णयोः उपान्ते=प्रान्तभागे प्रेङ्खन्तः=लम्बमानाः पञ्चरागवर्णानां=पञ्चरागाणां वर्णाः येषु तथाभूतानाम् ऊर्णायाः=मेषादि-लोम्नः चित्राणि=दीप्यमानानि यानि सूत्राणि=तन्तवः तेषां ये जूटाः=गुच्छाः तैः जटालैः=जटावद्भिः युक्तैरित्यर्थः । कपीनां=वानराणां कपोलवत्=गण्डस्थलवत् कपिलैः=पिङ्गलैः क्रमेलकानाम् उष्ट्राणां कुलैः=समूहैः कपिलायमानम्=कपिलं पिङ्गलमिति यावत् जायमानम् । अन्यत्र=अपरस्थाने च 'आतपत्रखण्डैः श्वेतायमानम्' इत्यस्ति वाक्यम् । सद्य०—सद्यः=तत्कालं स्रुतं=क्षरितं पयसः=जलस्य पटलं=समूहः येभ्यः तथाभूताः अतएव धवलाः=श्वेतवर्णाः तनवः क्षीणाश्च तैः, आतपत्र-पक्षे सद्यः स्रुतं यत् पयसः=क्षीरस्य पटलं तद्वत् धवला तनुः=आकृतिः येषां तैः । मुक्ता०—मुक्ताफलानां=मौक्तिकानां जालकैः जाल-सूत्रैः आतपत्राणि परितः मण्डलाकारेण मौक्तिक-ग्रथित-सूत्रजालैरित्यर्थः, जायमानः यः आलोकः=उद्योतः तेन लुप्तं=नष्टं छायायाः=अनातपस्य मण्डलं=मण्डलाकारच्छायेति यावत् येषां तथाभूतैः, अन्यत्र मुक्ताफलानां जालकैः=समूहैः, अन्यत् समानम् । यथाभिलषितं दाता कल्पवृक्षः मुक्ताफलानि अपि ददाति । नारायण० आश्लिष्टाः=संस्पृष्टाः गरुडस्य विष्णुवाहनभूतपक्षिणः पक्षाः यैः, अन्यत्र आश्लिष्टाः=संसक्ताः गरुडपक्षाः=गारुत्मतानि मरकत-मणयः इति यावत् येषु तैः ['गारुत्मतं मरकतम्' इत्यमरः] नारायणस्य=विष्णोः नाभिपुण्डरीकैः=नाभिकमलैः इव आतपत्राणि पुण्डरीकाणि चापि श्वेतानि भवन्तीति सादृश्यम् । क्षीरोद०—द्योतमानाः=भ्राजमानाः विकटाः=पृथुलाः विद्रुमस्य=प्रवालस्य दण्डाः यत्र येषाञ्च तैः, क्षीरोदस्य=क्षीरसागरस्य उद्देशैः=स्थानैः इव, क्षीरोदः अपि श्वेतो भवति विद्रुमाश्च समुद्रे जायन्त इति प्रसिद्धमेव । शेष०—उपरि=फणायाम् अन्यत्र उपरितनभागे इत्यर्थः स्फुरन्ति दीप्यमानानि स्फीतानि=पृथूनि माणिक्यखण्डानि=मणिशकलानि येषां तैः शेषस्य फणाः फलकानि इवेत्युपमितसमासः । ताभिः, शेषनागः अपि श्वेतो भवति, तस्य सहस्रफणासु अपि मणयो भवन्ति । श्वेत०—राजहंसैः=कलहंसैः । अन्यत्र राजानः हंसाः इवेत्युपमितसमासः तैः भूपोत्तमैरित्यर्थः उपसेवितैः आश्रितैः श्वेतगङ्गायाः=स्वर्गङ्गायाः, पुलिनैः=सैकततीरैः इव, सर्वत्र श्लिष्टोत्प्रेक्षा निदाघसमयं=ग्रीष्मकालम् अभिभवद्भिः=पराजयमानैः=ग्रीष्मकालीनातपस्य निवारणात्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विवस्वतः=सूर्यस्य प्रतापं=तेजः उपहसद्भिः=उपहासास्पदं मन्यमानैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आतपं=घर्मम् आपिबद्भिः=पानविषयीकुर्वद्भिः इव, जीवलोकं=जगत् चन्द्रलोक एव चन्द्रलोकमयः तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, जनयद्भिः=रचयद्भिः आतपत्राणां छायासु लोकाः एवं शैत्यमनुभवन्ति स्म यथा चन्द्रातपे इति भावः । कालं=तदानीन्तनं ग्रीष्मसमयं कुमुदमयं=कैरवमयम् इव कुर्वद्भिः, श्वेतवर्णानि आतपत्राणि श्वेत-कुमुदानि इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः, वासरं=दिनं ज्योत्स्नामयं चन्द्रिकामयमिव विरचयद्भिः=जनयद्भिः, श्वेतातपत्राणि ज्योत्स्नेव प्रतीयते स्मेतिभावः, दिवम्=आकाशं फेनमयीम्=फेनयुक्ताम् इव दर्शयद्भिः उच्चैः स्थितानि आतपत्राणि दिवि फेन-राशयः इव प्रतीयन्ते स्मेतिभावः, अकाले=असमये दिवसे इत्यर्थः । कौमुदीनाम्=चन्द्रिकाणाम् ['चन्द्रिका कौमुदी

हिन्दी—और क्षीण बने शरत्काल के मेघों-जैसे लग रहे, तत्काल चुए हुए पय (दूध) समूह की तरह श्वेत आकार वाले, मोतियों के जाल (१-जाली २-समूह) से उत्पन्न चमक से मण्डलाकार छाया को मिटाए हुए कल्प-वृक्षों-जैसे, गरुड़पक्षों (मरकत-मणियों) से जड़े हुये, गरुड़ के पक्षों (पंखों) को छू रहे नारायण के नाभि-कमलों-जैसे, चमकते हुए बड़े-बड़े प्रवाल-दंडों वाले क्षीर-सागर के स्थानों-जैसे, ऊपर जगमगाते हुए मणिखण्डों वाले शेषनाग के फणों के फट्टों-जैसे, हंसों (बड़े-बड़े भूपालों) द्वारा सेवित राजहंसों (कलहंसों) द्वारा सेवित स्वर्गंगा के रेतीले तीरों-जैसे, ग्रीष्म-समय को पराभूत करते हुए-जैसे, सूर्य के तेज का उपहास करते हुए-जैसे, धूप को पीते हुए-जैसे, भूलोक को चन्द्रलोकमय-जैसा बनाते हुए, (ग्रीष्म) समय को कुमुदमय-जैसा करते हुए, दिन को चाँदनी वाला-जैसा रचते हुए, आकाश को फेनमय-जैसा दिखाते हुए, असमय की हजारों चाँदनियों की-जैसे सृष्टि करते हुए, इन्द्र की लक्ष्मी का उपहास करते हुए-जैसे, शंखों के समान छत्रों के समूह से श्वेत हो

सृजद्भिरुपहसद्भिरिव [illegible] श्वेतायमानम् क्षणदृष्टनष्टाष्टदिङ्मुखं च मुष्णद्भिरिव भुवनमाक्षेपोत्क्षेपदोलायितं दिनं गतागतानीव कारयद्भिरिव उत्सारयद्भिरिव कुनृपतिसम्पर्ककलङ्ककालीं कालेयीं स्थितिं विकचविशदकाशवनपाण्डुरदिशं शरत्समयमिवोपपादयद्भिर्बिसतन्तुमयमिवान्तरिक्षमाविर्भावयद्भिः शशिकर-शुचीनां चलतां चामराणां सहस्रैर्दोलायमानम्, अपि च हंसयूथायमानं करिकर्णशङ्खैः, कल्पलतावनायमानं

टीका—ज्योत्स्ना' इत्यमरः] सहस्राणि=समूहान् इत्यर्थः इव सृजद्भिः=उत्पादयद्भिः श्वेतातपत्राणि दिने ज्योत्स्नासमूहाः इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः। शतक्रतोः=इन्द्रस्य इयम् इति शातक्रतवी शतक्रतुसम्बन्धिनी ताम् श्रियं==लक्ष्मीं द्युतिमित्यर्थः उपहसद्भिः, श्वेतायमानैः श्वेताः=शङ्खाः ['श्वेतः शङ्खः' इति राजनिर्घण्टः] इव आचरन्तः इति श्वेतायमानाः तैः शङ्खवद् धवलैरित्यर्थः, आतपत्राणां=छत्राणां षण्डैः=समूहैः श्वेतायमानम्=श्वेतं भवत् 'क्षण'''चामराणां सहस्रैः दोलायमानम्' इत्यस्ति वाक्यम्। क्षण०—क्षणं=क्षणमात्रं दृष्टानि=अवलोकितानि पश्चात् नष्टानि=अदर्शनं गतानि अष्टौ दिङ्मुखानि=दिग्भागाः यस्य तथाभूतं भुवनं=संसारं मुष्णद्भिः=अपहरद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। आक्षेपः=अधःकरणम्, उत्क्षेपः=उपरिकरणं ताभ्यां दोलायितं=दोला=हिंदोला इव आचरित दिनं गतानि च आगतानि च=यातायातानि इव कारयद्भिः=कर्तुं प्रेरयद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कुनृपतिभिः=दुष्टैः राजभिः सम्पर्कः=संसर्गः तेन यः कलङ्कः=लाञ्छनं तेन कालीं=कृष्णवर्णां कालेयीं=कलेः=कलियुगस्य इयम् इति कलि+ढक्+ङीप् कालेयी तां कलियुग-सम्बन्धिनीं स्थितिं=संस्थां मर्यादामित्यर्थः कलियुगराज्यमिति यावत् उत्सारयद्भिः=दूरीकुर्वद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। विकचानि=विकसितानि विशदानि=उज्ज्वलानि च यानि काशस्य=घासविशेषस्य वनानि=अरण्यानि तैः पाण्डुराः=श्वेताः दिशः यस्मिन् तथाभूतम् शरत्समयं=शरदृतुम् उपपादयद्भिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। बिसानां=मृणालानां तन्तवः=सूत्राणि एव तन्तुमयम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्तरिक्षम्=आकाशम् आविर्भावयद्भिः=प्रकटयद्भिः। शशिनः=चन्द्रस्य ये कराः=किरणाः तद्वत् शुचीनां=श्वेतवर्णानां चलतां=सरतां चामराणां सहस्रैः दोलायमानम्=दोला इव आचरत्। करिणां=हस्तिनां कर्णेषु शोभार्थम् आबद्धाः ये शङ्खाः तैः हसानां यूथः=समूहः इव आचरतीति तथोक्तम्, शङ्खाः हंसाश्चाऽपि श्वेताः भवन्ति, अतः करिकर्णलम्बितशंखाः हंसा इव दृश्यन्ते स्मेति भावः। कदलिकाभिः=कदलीभिः एव कदलिकाभिः=पताकाभिः अथवा रम्भा-वृक्षैः ['रम्भावृक्षेऽथ कदली पताका मृगभेदयोः' इति मेदिनी] कल्पलतानां वनम् इव आचरतीति तथोक्तम् [सर्वत्र आचारार्थे क्यङ्] मयूराणाम् इमानि मायूराणि (अण) च तानि आत-

टिप्पणी—क्षणदृष्टनष्ट—भाव यह है कि वहाँ हजारों चामर हिलाये-डुलाये जा रहे थे। लोग चामरों से परे प्रदेशों को तभी देख पाते थे जबकि वे नीचे हो जाते थे अथवा ऊपर हो जाते थे। ऊपर-नीचे जाने का अन्तराल बड़ा छोटा रहता था। अतः क्षण भर के लिए दुनिया दीखती और फिर लुप्त होती रहती थी। आक्षेपोत्क्षे०—जब चांवरियाँ ऊपर उठती थीं तो सूर्य दृष्टि से व्यवहित होजाता था और अंधेरा हो जाता था, यही दिन का चला जाना होता है, और जब चाँवरियां नीचे को होती थीं तो फिर सूर्य दिखलाई पड़ जाता। यही दिन का आना होता है। कवि कल्पना करता है कि चावरियों ने मानों दिन को झूले पर बिठा रखा हो जो झूले पर बैठे व्यक्ति की तरह आता-जाता रहता है। ध्यान रहे कि यहाँ प्रेरणार्थक क्रिया के 'दिन' और 'गतायतानि' दो कर्म हैं और प्रेरक कर्ता चामर है।

कुनृपति०—श्रीहर्षवर्धन के शासनाधिरूढ होने से बहुत पहले कलियुग आरम्भ हो गया था। कितने ही कुनृपति पहले राज्य कर चुके थे। हर्ष ने गद्दी पर बैठते ही कलियुगी स्थिति को—जो कुनृपतियों के सम्पर्क से काली बनी हुई थी—जैसे हटा दिया हो। बुरे कामों का वर्णन काले रूप में किया जाता है। जैसे—काला धन, काली करतूत, ब्लैक मार्केट आदि। पापों के कारण कलि काला होता है।

हिन्दी—रहा था, जो क्षण-भर देखे और लुप्त हुए आठ दिशा-भागों वाले जगत् का अपहरण करते हुए-जैसे, नीचे-ऊपर होने के कारण झूलते हुए आवागमन कराते हुए-जैसे, दुष्ट राजाओं के सम्पर्क के कलंक से काली बनी कलियुगीन स्थिति को हटाते हुए-जैसे, खिले हुए श्वेत काश के वनों से सफेद बने शरत्-समय को लाते हुए-जैसे, अन्तरिक्ष को मृणालतन्तुमय-जैसे प्रकट करते हुए, चन्द्रमा की तरह स्वच्छ, हिलते-डुलते हजारों चामरों से दोलायमान हो रहा था तथा जो हाथियों के कानों के शंखों से हंस-समूह के समान ध्वजा-पताकाओं से कल्पलताओं के वन के सदृश मोर-पंखों के छत्रों से मणि-वृक्षों के वन की तरह रेशमी कपड़ों से मन्दाकिनी का

कदलिकाभिः, माणिक्यवृक्षवनायमानं मायूरातपत्रैः, मन्दाकिनीप्रवाहायमानमंशुकैः, क्षीरोदायमानं क्षौमैः, कदली-वनायमानं मरकतमयूखैः, जन्यमानान्यदिवसमिव पद्मरागबालातपैः, उत्पद्यमानापराम्बरमिवेन्द्रनीलप्रभापटलैः, आरभ्यमाणापूर्वनिशमिव महानीलमयूखान्धकारैः, स्यन्दमानानेककालिन्दीसहस्रमिव गरुडमणिप्रभाप्रतानैः, अङ्गार-कितमिव पुष्परागरश्मिभिः, कैश्चित्प्रवेशमलभमानैरधोमुखैश्चरणनखपतितवदनप्रतिबिम्बनिभेन लज्जया स्वाङ्गानीव विशद्भिः कैश्चिदङ्गुलीलिखितायाः क्षितेर्विकीर्यमाणकरनखकिरणकदम्बकव्याजेन सेवाचामराणीवार्पयद्भिः

टीका—पत्राणि = मयूरपिच्छनिर्मितानि छत्राणि तैः माणिक्यवृक्षाणां = मणि-पादपानां वनम् इव आचरत्। अंशुकैः = लोकैः परिहितैः सूक्ष्मवसनैः मन्दाकिन्याः = गङ्गायाः प्रवाह इव आचरत्, वसनं शुभ्रं गङ्गाप्रवाहोऽपि शुभ्रः इति साम्यम्, क्षौमैः = श्वेतपट्टवस्त्रैः क्षीरोदः = क्षीरसमुद्रः इव आचरत्। मरकतानां हरितमणिविशेषाणां मयूखैः = किरणैः कदलीवनं = रम्भावनम् इव आचरत्। जन्यमानः उत्पाद्यमानः अन्यः दिवसः यस्मिन् तत्, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पद्मरागाः शोणरत्नानि बालातपाः = प्रातःकालिकाः सौरालोका इवेत्युपमिततत्पु० तैः। बाणः अपराह्णे गत आसीत् किन्तु पद्मरागाणां प्रभया राजद्वारं प्रातःकालीनम् अपरं दिनमिव प्रतीयते स्मेति भावः। उत्पद्यमानं = जायमानम् अपरम् अम्बरम् = आकाशं यस्मिन् तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, इन्द्रनीलानां नीलमणीनां प्रभापटलैः = छटा-समूहैः, इन्द्रनीला हि आकाशवत् नीलवर्णाः भवन्ति। आरभ्यमाणाः = सृज्यमाना अपूर्वा = न पूर्वं भूता निशा = रात्रिः यस्मिन् तथाभूतम् इवे-त्युत्प्रेक्षायाम्, महानीलानां = कृष्णवर्णानां महानीलमणीनां मयूखाः किरणाः, अन्धकाराः इवेत्युपमिततत्पु०, तैः, दिनेऽपि महानीलमयूखानां कालिमा रात्रिम् इव सृजति स्मेत्यर्थः, दिने रात्र्यभावात् मयूख-सृष्ट-रात्रेः अपूर्वत्वम् उक्तम्। स्यन्दमानम् = वहत् अनेकं कालिन्दीनां = यमुनानां सहस्रं = समूहः इत्यर्थः यस्मिन् तथाभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, गरुडमणीनां = श्यामवर्णमणिविशेषाणां प्रभायाः = कान्त्याः प्रतानैः = विस्तारैः गरुडमणिः यमुनाजलवत् श्यामो भवति। अङ्गारा एव अङ्गारकाः सञ्जाता अस्य इति अङ्गारकितम् [तारकादिभ्य इतच्] निर्वाणाः अङ्गाराः श्यामवर्णाः भवन्ति, ज्वल-दङ्गाराश्च रक्तवर्णाः भवन्ति, पुष्परागाणां = मणिविशेषाणां 'पुखराज' इति भाषायां प्रसिद्धानाम् रश्मिभिः = किरणैः। यदि पुष्परागाः नीलवर्णाः सन्ति तर्हि अङ्गाराः श्यामवर्णाः ग्राह्याः, यदि तु पुष्परागाः लोहितवर्णाः सन्ति तर्हि रक्तवर्णाः ज्वलदङ्गाराः ग्राह्या अथवा रक्तवर्णावस्थायाम् अङ्गारकपदेन मङ्गल-ग्रहः ग्राह्यः ['अङ्गारकः कुजो भौमः', इत्यमरः]। 'कैश्चित्...शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानम्' इत्यन्वयः। कैश्चित् शत्रुमहासामन्तैः, प्रवेशं = राजद्वारान्तःप्रवेशम् अलभमानैः अप्राप्नुवद्भिः अतएव अधः = नीचैः मुखं येषां तैः, चरणयोः नखेषु पतितः = प्रतिफलितः यः वदनस्य मुखस्य प्रतिबिम्बः = प्रतिच्छाया तस्य निभेन = व्याजेन ['निभस्तु कथितो व्याजे पुंल्लिङ्गः सदृशे त्रिषु' इति मेदिनी] लज्जया = त्रपया स्वस्य = आत्मनः अङ्गानि = शरीराणि इवेत्युत्प्रेक्षा सा च श्लिष्टा अपह्नुत्यु-त्थापिता, विशद्भिः = प्रविशद्भिः। कैश्चित् अङ्गुलीभिः लिखितायाः = अवदारितायाः क्षितेः = पृथिव्याः, विकीर्य-

टिप्पणी—अङ्गुलिलिखि०—बेचारे पराजित सामन्त चिन्ता-मग्न हुए करने को कुछ न मिलने पर हाथ के नखों से भूतल पर लाईनें खींच रहे थे। नखों की लंबी श्वेत किरणावली भूतल पर पड़ रही थी। कवि कल्पना करता है कि मानों वे चामर हों, जिन्हें सामन्त भू को सौंप रहे हैं। भूपति होने के नाते भू पत्नी है। अतः वे परास्त हो जाने के कारण चामर को उसे लौटा रहे हैं कि वह अब श्रीहर्ष को ही चामर डुलावे और उसी की सेवा करे। वैसे नखों से भूतल कुरेदना अपशकुन माना गया है—"रेखा-निर्माणमुर्व्यां च्छेदतृणलवनं पादयोश्चाप्यपूजा, दन्तानाम-प्यशौचं वसनमलिनता रूक्षता मूर्धजानाम्। सन्ध्यायुग्मे च निद्रा विवसनशयनं ग्रासहास्यातिरेकः, स्वाङ्गे वाद्यं च पुंसां निधनमुपनयेत् केशवस्यापि लक्ष्मीम्"॥

हिन्दी—प्रवाह-सा, शण के कपड़ों से क्षीर-समुद्र-सा, मरकत-मणियों की किरणों से केलों के वन के समान था, जहाँ प्रातःकालीन धूप के समान (लाल) पद्मराग-मणियों द्वारा दूसरा-जैसा दिन बनाया जा रहा था, इन्द्रनील मणियों की छटा-समूहों से दूसरा आकाश-जैसा उत्पन्न हो रहा था, अन्धेरे-जैसी बड़ी-बड़ी नील-मणियों की किरणों से अनोखी-जैसी रात बनाई जा रही थी, जहाँ गरुड़ मणियों की छटा के विस्तार से अनेक हजार यमुनायें-जैसी बह रही थीं, जो (लाल) पुखराज मणियों की राशियों से ऐसा लग रहा था मानो जलते अंगारे रखे हुए हों, जो भुजाओं (के बल) से जीते हुए ऐसे शत्रु-पक्षीय बड़े-बड़े सामन्तों द्वारा चारों तरफ से सेवित किया जा रहा था, जिनमें से कई प्रवेश न पाते हुए, नीचे मुंह किए, पैरों के नाखूनों में पड़ी (अपनी) मुख की परिछाई के बहाने लज्जा से मानो अपने ही अगों में प्रवेश कर रहे थे, कई अगुलियों से कुरेदी पृथिवी को बिखरी हुई हाथ के नखों

कैश्चिदुरःस्थलदोलायमानेन्द्रनीलतरलप्रभापट्टैः स्वामिकोपोपशमनाय कण्ठबद्धकृपाणपट्टैरिव कैश्चिदुच्छ्वाससौरभ-भ्राम्यद्भ्रमरपटलान्धकारितमुखैरपहृतलक्ष्मीशोकधृतलम्बश्मश्रुभिरिवान्यैः शेखरोड्डीयमानमधुपमण्डलैः प्रणामविडम्बना-भयपलायमानमौलिभिरिव निर्जितैरपि संमानितैरिवानन्यशरणैरन्तरान्तरा निष्पततां प्रविशतां चान्तरप्रतीहाराणा-मनुमार्गप्रधावितानेकार्थिजनसहस्राणामनुयायिनः पुरुषानश्रान्तैः पुनः पुनः पृच्छद्भिः 'भद्र, अद्य भविष्यति भुक्तास्थानं,[1] दास्यति दर्शनं परमेश्वरः, निष्पतिष्यति वा बाह्यां कक्ष्याम्' इति दर्शनाशया दिवसं नयद्भिर्भुजनिर्जितैः शत्रुमहा-सामन्तैः समन्तादासेव्यमानम्, अन्यैश्च प्रतापानुरागागतैर्नानादेशजैर्महीपालैः प्रतिपालयद्भिर्नरपतिदर्शनकालमध्यास्य-

---

टीका—माणाः प्रसरन्तः कराणां=हस्तानां नखानां ये किरणाः तेषां कदम्बकस्य व्याजेन=कैतवेन सेवार्थं=श्रीहर्षदेवसेवार्थं (च० तत्पु०) चामराणि इव अर्पयद्भिः=ददद्भिः। अत्राऽपि सापह्नवोत्प्रेक्षा। कैश्चित् उरःस्थले दोलायमानाः=लम्बमानाः ये इन्द्रनील-तरलाः=इन्द्रनीलरूपाः मध्यमणयः ['तरलो हारमध्यगः' इत्यमरः] तेषां प्रभाः=कान्तयः एव पट्टाः=फलकानि येषां तैः, स्वामिनः=श्रीहर्षदेवस्य यः प्रकोपः=तेषु क्रोधः तस्य उप-प्रशमनाय=निराकरणाय कण्ठे बद्धानि कृपाण-पट्टानि=खड्गफलकानि यैः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। खड्गं करे कृत्वाऽऽ-गमने 'अयं योद्धुम् आगतः' इति स्वामिनम् अधिकतरं प्रकोपयेत् इति सामन्तैः खड्गः गले धृतः इव। कण्ठस्य इन्द्रनीलमणिप्रभा खड्ग इव दृश्यते स्मेति भावः। कैश्चित्=अपरैः सामन्तैः उच्छ्वासेषु=निःश्वासेषु यत् सौरभं=सुगन्धित्वं तत्र भ्राम्यन्ति=सञ्चरन्ति यानि भ्रमराणां=मधुकराणां पटलानि=समूहाः तैः अन्धकारितानि=सञ्जातान्धकाराणि अन्धकारवत् कृष्णवर्णानीत्यर्थः मुखानि तेषां तैः अपहृता=श्रीहर्षदेवेन आच्छिन्ना या लक्ष्मीः=राज्यश्रीः तस्याः शोकेन धृतानि लम्बानि दीर्घाणि श्मश्रूणि=कूर्चाणि मुखरोमाणीत्यर्थः यैः तैः। ये खलु जनाः शोकाभिभूताः भवन्ति ते क्षौरकर्मणि दत्तावधानाः न भवन्ति। शेखरेभ्यः शिरोमालाभ्यः इत्यर्थः उड्डीयमानानि उद्गच्छन्ति मधुपानां=भ्रमराणां मण्डलानि=समूहाः येषां तैः प्रणामे=श्रीहर्षं प्रति नमने या विडम्बना=अवमानना तस्याः भयेन पलायमानः मौलिः=किरीटं येषां तैः ['चूडा किरीटं केशाश्च संयताः मौलयस्त्रयः' इत्यमरः] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। निर्जितैः=पराजितैः अपि सम्मानितैः=आदृतैः इव, अविद्यमानम् अन्यस्मात् शरणं=रक्षणं येषां तथाभूतैः ['शरणं रक्षणे गेहे वध-रक्षकयोरपि' इति हेमचन्द्रः] अर्थात् श्रीहर्षात् स्वसंरक्षण-प्राप्त्या पराजिताः अपि ते संरक्षणदान-द्वारा समादृताः। अन्तरा-अन्तरा=मध्ये-मध्ये समये-समये इत्यर्थः निष्पततां=निर्गच्छतां प्रविशतां=प्रवेशं कुर्वताम्, अन्तरे=अन्तः भवाः इति अन्तराः अन्तर्वर्तिनः प्रतीहाराः=द्वारपालाः तेषाम्, मार्गम् अनु इति अनुमार्गं मार्गस्य पश्चादित्यर्थः प्रधावितानि=त्वरितं चलितानि, अनेकेषाम् अर्थिजनानाम्=याचकानां सहस्राणि येषां तेषाम् अनुयायिनः=अनुगामिनः पुरुषान्=भृत्यानित्यर्थः अश्रान्तैः=अक्लान्तैः पृच्छद्भिः भद्र! भद्रजन! अद्य भविष्यति इदमिति शेषः परमेश्वरः=महाराजाधिराजः श्रीहर्षदेवः इत्यर्थः भुक्तास्थानं=भुक्तम्=अधिष्ठितम् आस्थानम्=आस्थानी सभाभवनमित्यर्थः। आस्थीयते यस्मिन् इति (आ+स्था+ल्युट् अधिकरणे) अथवा आस्थीयते यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा। भुक्त्वा स्थाने इति पाठे तु भुक्त्वा=भोजनं कृत्वा भोजनानन्तर-मित्यर्थः, स्थाने=दर्शनदानस्थाने। निष्पतिष्यति=नीचैः आगमिष्यति, बाह्यां=बहिर्भवां कक्ष्याम्=प्रकोष्ठम् ['कक्ष्या प्रकोष्ठे हर्म्यादेः' इत्यमरः] इति दर्शनस्य=साक्षात्कारस्य आशया दिवसम् अहः नयद्भिः=यापयद्भिः भुजाभ्यां=भुजबलेनेत्यर्थः, निर्जितैः पराजितैः शत्रुभूताः महान्तः सामन्ताः तैः समन्तात्=परितः आसेव्यमानम्=अधिष्ठीयमानम्।

हिन्दी—की किरणावली के बहाने मानो (श्रीहर्ष की) सेवा करने के लिए चामर सौंप रहे थे, कई वक्षःस्थल पर लटकते हुए इन्द्रनील की मध्य-मणि की प्रभा के पट्टों वाले ऐसे लग रहे थे मानो स्वामी का प्रकोप शान्त करने के लिए उन्होंने गले पर कृपाण-फलक बाँध रखे हों, कई निश्वास के सौरभ पर मंडराते हुए भ्रमरों के समूह से काले बने मुहों वाले ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो हारी हुई राजलक्ष्मी के शोक के कारण वे लंबी दाढ़ी रखे हुए हों, दूसरे कई शिर की पुष्पमाला पर से उड़ते हुए भ्रमरों के समूह वाले ऐसे लग रहे थे मानो शिर नवाने के अपमान के भय से उनके मुकुट भागे जा रहे हों, जो पराजित होते हुए भी अन्य द्वारा संरक्षण न प्राप्त करते हुए श्रीहर्ष से (संरक्षण द्वारा) सम्मानित-जैसे किये जा रहे थे, जो बीच-बीच में बाहर निकलते हुए और भीतर प्रवेश करते हुए भीतरी द्वारपालों के—जिनके मार्ग के पीछे-पीछे हजारों याचक दौड़े जा रहे थे—अनुगामी भृत्य-लोगों को बिना थके बार-बार यह पूछते हुए कि—'भद्र पुरुष! क्या आज यह होगा कि महाराजाधिराज सभाभवन में बैठे हुए दर्शन

---

1. भुक्त्वा स्थाने।

मानम्, एकान्तोपविष्टैश्च जैनैरार्हतैः पाशुपतैः पाराशरिभिर्वर्णिभिः सर्वदेशजन्मभिश्च जनपदैः सर्वाम्भोधिवेला-वनवलयवासिभिश्च म्लेच्छजातिभिः सर्वद्वीपान्तरागतैश्च दूतमण्डलैरुपास्यमानम्, सर्वप्रजानिर्माणभूमिमिव प्रजापतीनां लोकत्रयसारोच्चयरचितं चतुर्थमिव लोकम्, महाभारतशतैरप्यकथनीयसमृद्धिसम्भारम्, कृतयुगसहस्रैरिव कल्पितसं-निवेशम्, स्वर्गार्बुदैरिव विहितरामणीयकम्, राजलक्ष्मीकोटिभिरिव कृतपरिग्रहं राजद्वारमगमत् ।

अभवच्चास्य जातविस्मयस्य मनसि—'कथमिवैवमियत्प्रमाणं प्राणिजातं जनयतां प्रजासृजां [1]नासीत्परिश्रमो महाभूतानां वा परिक्षयः, परमाणूनां वा परिच्छेदः[2], कालस्य वान्तः, आयुषो वा व्युपरमः, आकृतीनां वा परिस-

टीका—अन्यैश्च महीपालैः अध्यास्यमानम् इत्यन्वयः । प्रतापः=प्रभावश्च अनुरागः=स्नेहश्च ताभ्याम् आगतैः नाना-देशजैः=विभिन्नदेशोत्पन्नैः महीपालैः=राजभिः प्रतिपालयद्भिः प्रतीक्षमाणैः नरपतेः श्रीहर्षस्य यद् दर्शनं तस्य कालं=समयम् अध्यास्यमानम् आसेव्यमानम् । एकान्ते उपविष्टैः=स्थितैः जैनैः=जिनधर्मावलम्बिभिः, आर्हतैः=बौद्धैः, पाशु-पतैः=पशुपतिः=शिवः देवता येषां शैवैरित्यर्थः, पाराशरिभिः=पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षु-सूत्रम् अधीयते इति पारा-शरिणो भिक्षवः तैः, वर्णिभिः=ब्रह्मचारिभिः [वर्ण+इन् 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' पा० ५।२।१३४] सर्वेषु देशेषु जन्म येषां तैः जनपदैः=लोकैः, सर्वे च अम्भोधयः समुद्राः तेषां वेलासु=तीरेषु यानि वनानां वलयानि=मण्डलानि तेषु वसन्तीति ०वासिनः तैः म्लेच्छदेशीयजनजातिभिः सर्वाणि च तानि द्वीपान्तराणि=अन्ये द्वीपाः तेभ्यः आगतैः दूत-मण्डलैः=निसृष्टार्थगणैः च उपास्यमानम्=सेव्यमानम्, सर्वासां प्रजानां=लोकानां निर्माणस्य=उत्पत्तेः भूमिं=स्थानम् इवेत्युत्प्रेक्षायां प्रजापतीनां=स्रष्टृणाम्, अर्थात् सर्वराष्ट्रियाणां सर्वजातीयानाञ्च लोकानां तत्रोपस्थिति दृष्ट्वा एवं प्रतीयते स्म यत् सर्वैरपि दश-प्रजापतिभिः तत्रैव सर्व-सृष्टिः रचिता इव; लोकत्रयस्य=त्रयाणां लोकानां—स्वर्ग-मर्त्य-पातालानामित्यर्थः सारस्य=सारभूततत्त्वस्य उच्चयेन=संग्रहणेन रचितं=निर्मितं चतुर्थमिवेत्युत्प्रेक्षायाम् लोकं=जगत् । महाभारतस्य=व्यासरचित-ग्रन्थविशेषस्य शतैः=शतसंख्यकमहाभारतैः इत्यर्थः अपि न कथनीयः=वर्णनीयः समृद्धेः=वैभवस्य सम्भारः=वस्तुराशिः यस्य तत् । कृतयुगानां=सत्ययुगानां सहस्रैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कल्पितः=कृतः सन्निवेशः=स्थितिः यस्य तत्, अर्थात् राजद्वारस्य एवंविधा पवित्रता धार्मिकता च आसीत् यथा सहस्राणि सत्ययुगानि तत् निर्मातुं समवेतानि स्युः । स्वर्गाणाम् अर्बुदैः दशकोटिभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विहितं=सम्पादितं रामणीयकं=सौन्दर्यं यस्य तथाभूतम् राजलक्ष्मीणां कोटिभिः इव कृतः परिग्रहः=आश्रयः यस्य तत् राजद्वारम् ।

अभवत् च अस्य=बाणस्य जातः विस्मयः=आश्चर्यं यस्य आश्चर्य-चकितस्येत्यर्थः मनसि इयत्=एतावत्प्रमाणं=परिमाणं यस्य तथाभूतं प्राणिनां=जीवानां जातं=समूहं जनयतां प्रजाः सृजन्तीति (प्रजा+√सृज् क्विप्) प्रजा-सृजः तेषां=प्रजापतीनामित्यर्थः न आसीत् परिश्रमः=क्लमः, वा=अथवा महाभूतानां=जगत्कारणीभूतानां पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाशानां परिक्षयः=व्ययः, परमाणूनां परिच्छेदः=सीमा, कालस्य=समयस्य अन्तः, आयुषः=जीवन-कालस्य व्युपरमः=अवसानम्, आकृतीनाम्=आकाराणां परिसमाप्तिः=अन्तः । द्वारपाललोकेन=द्वारपालजनेन

हिन्दी—देगे अथवा बाहर के कमरे में आएंगे ? इस तरह दर्शन की आशा से दिन काट रहे थे, और जहां प्रताप और भक्तिभाव से आए हुए नाना देशों के दूसरे राजा नरपति दर्शन के समय की प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे, और जहां एकान्त में बैठे हुए जैन, बौद्ध, पाशुपत, पाराशरि, ब्रह्मचारी तथा सब देशों के लोग, सभी समुद्रों के तटवर्ती वन-समूह में रहने वाली म्लेच्छ जातियां, सभी अन्य द्वीपों से आये हुए दूतगण स्थित थे, जो मानो प्रजापतियों का सभी प्रजाओं को रचने का स्थान था, तीनों लोकों का सार लेकर बनाया हुआ मानो चौथा लोक था, जिसकी समृद्धि की वस्तुओं का वर्णन सैकड़ों महाभारत-ग्रन्थों द्वारा भी नहीं किया जा सकता है, जिसका निर्माण मानो हजारों सत्ययुगों द्वारा किया गया था, जिसमें सौन्दर्याधान मानो अरबों स्वर्गों से किया गया था और जिसका आश्रय मानो करोड़ों राज्यलक्ष्मियों द्वारा लिया गया था ।

आश्चर्य-चकित इस (बाण) के मन में (विचार) हुआ—"इतने परिमाण में प्राणि-समूहों का सृजन करते हुए प्रजापतियों को क्यों थकान नहीं हुई ? अथवा (पृथिवी आदि) महाभूतों का क्यों क्षय नहीं हुआ अथवा परमाणुओं की क्यों हद नहीं हुई ? अथवा समय का क्यों अन्त नहीं हुआ ? अथवा आयु का क्यों विराम नहीं हुआ ? अथवा आकृतियों की क्यों समाप्ति नहीं हुई ।" मेखलक तो द्वारपाल-लोगों द्वारा दूर से ही पहचाना जाता

१. नासीन्महाभूतानां ।
२. विच्छेदः ।

माप्तिः' इति । मेखलकस्तु [illegible] प्रत्यभिज्ञायमानः 'तिष्ठतु तावत्क्षणमात्रमत्रैव पुण्यभागी' इति तमभिधायाप्रतिहतः पुरः प्राविशत् ।

अथ स मुहूर्तादिव प्रांशुना, कर्णिकारगौरेण, वीध्रककञ्चुकच्छन्नवपुषा, समुन्मिषन्माणिक्यपदकबन्धबन्धुरशस्त्र[1]-बन्धकृशावलग्नेन, हिमशैलशिलाविशालवक्षसा, हरवृषककुत्कूटविकटांसतटेन, उरसा चपलहृषीकहरिणकुलसंयमन-पाशमिव हारं बिभ्रता, 'कथयत यदि सोमवंशसम्भवः सूर्यवंशसम्भवो वा नृपतिरभूदेवंविधः' इति प्रष्टुमानीताभ्यां सोमसूर्याभ्यामिव श्रवणगताभ्यां मणिकुण्डलाभ्यां समुद्भासमानेन, [2]वहद्वदनलावण्यविसरवेणिकाक्षिप्यमाणैरधि-कारगौरवाद्दीयमानमार्गेणेव दिनकृतः किरणैः, प्रसादलब्धया विकचपुण्डरीकमुण्डमालिकयेव दीर्घया दृष्ट्या दूरा-

टीका—प्रत्यभिज्ञायमानः प्रतिसन्धीयमानः अयं स एवेति प्रत्यक्षपूर्वकं स्मृतिविषयीक्रियमाण इत्यर्थः पुण्यभागी=पुण्यवान् भवानिति यावत्, इति तं=बाणम् अभिधाय कथयित्वा अप्रतिहतः=निर्निरोधः । पुरः प्राविशत् अन्तर्जगामेत्यर्थः । मुहूर्तादिव=क्षणादिव, इवात्र वाक्यालङ्कारे, 'प्रांशुना'''पुरुषेणानुगम्यमानः निर्गत्य अवोचत् सः=मेखलकः' इत्यस्ति वाक्यम् । प्रांशुना=लम्बशरीरेण, कर्णिकारः=श्वेतपुष्पविशेषः तद्वत् गौरेण, एतत् अन्यानि च 'पुरुषेण' इत्यस्य विशेषणानि । वीध्रक०—वीध्रकेण=विमलेन ['वीध्रन्तु विमलात्मकम्' इत्यमरः] कञ्चुकेन=वस्त्रविशेषेण छन्नम्=आवृतं वपुः=शरीरं यस्य तेन । समुन्मिषन्०—समुन्मिषत्=भ्राजमानं यत् माणिक्य-पदकं=माणिक्यैः खचितं पदकं (मध्यमपदलोपी समासः) तस्य बन्धेन=बन्धनेन=बन्धुरम्=उन्नतावनतं ['बन्धुरं तून्नतानतम्' इत्यमरः] यत् शस्त्रं=मेखला कटि-पट्टिकेत्यर्थः तस्य बन्धेन कृशं=क्षीणम् अवलग्नं मध्यो यस्य तेन ['अवलग्नं च मध्योऽस्त्री' इत्यमरः] हिम०—हिमशैलस्य=हिमालयपर्वतस्य शिलावत् विशालं=विस्तृतं वक्षः यस्य तेन । हर०—हरस्य=शिवस्य यो वृषः=वृषभः तस्य यत् ककुदं=स्कन्धोपरिस्थमांसपिण्डः तस्य कूटः=शिखरं तद्वत् विकटः=विस्तृतः अंसयोः=स्कन्धयोः तटं=देशः यस्य तेन । उरसा=वक्षःस्थलेन चपलानि=चञ्चलानि यानि हृषीकाणि=इन्द्रियाणि ['हृषीकं विषयीन्द्रियम्' इत्यमरः] एव हरिणानां कुलानि=समूहाः तेषां संयमनाय=बन्धनाय पाशः=रज्जुः तम् इवेत्युत्प्रेक्षा, सा च रूपकोत्थापिता, हारं=कण्ठमालां बिभ्रता=धारयता । 'कथयतं वदतं सोमवंशे=चन्द्रवंशे सम्भवः=जन्म यस्य सः, अथवा सूर्यवंशे सम्भवो यस्य भूपतिः=भूपः एवंविधः='श्रीहर्षदेवसदृशः' इति प्रष्टुम् आनीताभ्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, श्रवणयोः=कर्णयोः गताभ्यां=स्थिताभ्यां मणि-कुण्डलाभ्यां मणिखचित-कुण्डलाभ्यां समुद्भासमानेन=देदीप्यमानेन । वहत्०—वहन्ती=प्रस्रवन्ती वदनस्य=मुखस्य यत् लावण्यं=सौन्दर्यं तस्य विसरः=समूहः एव वेणिका=नदीस्रोतः तया आक्षिप्यमाणैः=उत्सार्यमाणैः अधिकारे=प्रभुत्वे गौरवात्=आदरात्, दीयमानः=रिक्तीक्रियमाणः इत्यर्थः मार्गः यस्मै तेन दिनकृतः=सूर्यस्य किरणैः=रश्मिभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । प्रसादेन=स्वामिनः कृपया लब्धया=प्राप्तया विकचानां=विकसितानां पुण्डरीकाणां श्वेतकमलानां मुण्डस्य=शिरसः मालया एव मालिकया=शिरःस्रजा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । प्रसाद-लब्धया=लब्धः प्रसादः=प्रसन्नता यया तया लब्धप्रसादया [वाहिताग्न्यादिषु पा० २।२।३७ इत्यनेन लब्ध-शब्दस्य विकल्पेन पर-

टिप्पणी—वहद्-वदन०—उसके मुख से बहता हुआ सौन्दर्यच्छटा-प्रवाह सूर्य-तेज को भी पछाड़ गया । सूर्य की किरणें एकदम पीछे हट गईं और उसकी सौन्दर्यच्छटा के लिए मार्ग खाली कर गईं । वह एक विशिष्ट अधिकारी था और जब कोई ऐसा विशिष्ट अधिकारी आता है तो उसके प्रति गौरव दिखाने के लिए रास्ते से लोगों को हटा दिया जाता है और उसे मार्ग दिया जाता है ।

हिन्दी—हुआ 'पुण्यभागी आप क्षणभर यहीं ठहरें' उसे यह कहकर बेरोक-टोक आगे प्रविष्ट हो गया ।

बाद को थोड़े ही समय में वह अपने पीछे एक ऐसे पुरुष को लाया—जो कद का ऊँचा और कर्णिकार पुष्प की तरह गौर वर्ण का था, जिसका शरीर निर्मल कञ्चुक से आवृत था, कमर झिलमिलाते हुए मणि-जड़ित पदक (तगमा) के लगने से ऊँची-नीची बनी कमर-पेटी कसने से कृश हो रखी थी, छाती हिमाचल की शिला के समान विशाल थी, कन्धों के किनारे महादेव के बैल के कूबड़ के सिरे की तरह विस्तृत थे, जो उरःस्थल में चञ्चल इन्द्रिय रूपी हरिण-समूह को बाँधने के लिए रस्सी-जैसे लग रहे हार को धारण कर रहा था "कहो, क्या चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी कोई ऐसा राजा हुआ ?" यह पूछने के लिए चन्द्र और सूर्य-जैसे प्रतीत हो रहे कानों में पहने मणि-जड़ित कुण्डलों से चमक रहा था, जिसे मुख के बहते हुए विस्तृत लावण्य-प्रवाह से पीछे हटाये जाते हुए-जैसे सूर्य-

१. नद्धवल्गलुप्ताव ।   २. बृहद्वदन ।

देवानन्दयता नैष्ठुर्याधिष्ठानेऽपि प्रतिष्ठितेन पदे प्रश्रयमिवावनम्रेण मौलिना पाण्डुरमुष्णीषमुद्वहता, वामेन स्थूल-मुक्ताफलच्छुरणदन्तुरत्सरुं करकिसलयेन कलयता कृपाणम्, इतरेणापनीततरलतां ताडितीमिव लतां शातकौम्भीं वेत्रयष्टिमुन्मृष्टां धारयता पुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचत्—'एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवारिकः । समनुगृह्णात्वेनमनुरूपया प्रतिपत्त्या कल्याणाभिनिवेशी' इति । दौवारिकः समुपसृत्य कृत-प्रणामो मधुरया गिरा सविनयमभाषत—'आगच्छत । प्रविशत दर्शनाय । कृतप्रसादो देवः' इति । बाणस्तु 'धन्यो-ऽस्मि, यदेवमनुग्राह्यं मां देवो मन्यते' इत्युक्त्वा तेनोपदिश्यमानमार्गः प्राविशदभ्यन्तरम् ।

अथ वनायुजैः, आरट्टजैः, काम्बोजैः, भारद्वाजैः, सिन्धुदेशजैः, पारसीकैश्च, शोणैश्च, श्यामैश्च, श्वेतैश्च, पिञ्जरैश्च,

---

टीका—निपातः] दृष्ट्या=दृशा दूरात् एव आनन्दयता—आह्लादयता । निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यं=कठोरता तस्य अधिष्ठाने=स्थाने कठोरतास्थानभूते इत्यर्थः पदे=अधिकारपदे इत्यर्थः, प्रतिष्ठितेन=स्थितेन अपि, स हि द्वारपालनायकः आसीत्, अतः अनुशासन-रक्षार्थं तेन कठोरेण भवितव्यमासीत्, तथाऽपि प्रश्रयं=विनयं शिष्टता-मित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अवनम्रेण=विनतेन मौलिना=शिरसा पाण्डुरं=धवलवर्णम् उष्णीषं=शिरोवेष्टनम् उद्वहता=धारयता । बाणं प्रति आगच्छता तेन शिष्टाचार-पूर्वकं स्वशिरः नमितमिति भावः । वामेन कर-किसलयेन =करः=हस्तः किसलय इवेत्युपमिततत्पु० तेन स्थूलानि=पृथूनि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां छुरणेन= खचितत्वेन दन्तुरः=सञ्जातदन्तः उन्नतावनतः इत्यर्थः त्सरुः=मुष्टिः यस्य तम् ['त्सरुः खड्गादि मुष्टौ स्यात्' इत्यमरः । कृपाणं=खड्गं कलयता=गृह्णता । इतरेण=अन्येन अर्थात् दक्षिणेन करेण अपनीता=दूरीकृता तरलता=चपलता यस्याः तां, तडितः इयम् इति ताडिती [तडित्+अण्+ङीप्] ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायां लतां=वल्लीम् शातकौम्भीं=शातकुम्भस्य=सुवर्णस्य इयम् इति शातकौम्भी (अण्) सौवर्णी ताम् ['स्वर्णं सुवर्णं कनकं...तपनीयं शातकुम्भम्' इत्यमरः] वेत्रयष्टिम्=वेतसदण्डम् उन्मृष्टाम्=श्लक्ष्णीकृतां सुसंस्कृतामिति यावत् धारयता=बिभ्रता पुरुषेण अनुगम्यमानः अनुस्त्रियमाणः अवोचत्=अवदत् । महान्तश्च ते प्रतीहाराः=द्वारपालाः तेषाम् अनन्तरः=मुख्यः, चक्षुष्यः=चक्षुषि साधुः इति चक्षुष्+यत् प्रियदर्शनः इत्यर्थः देवस्य=महाराजाधिराजस्य श्रीहर्षदेवस्येत्यर्थः पारियात्रः नाम यस्य सः, दौवारिकः=द्वारपालः । समनुगृह्णातु=अनुगृहीतं करोतु एनम् अनुरूपया=योग्यया प्रतिपत्त्या=आचरणेन आदरपूर्णव्यवहारेणेत्यर्थः कल्याणे=श्रेयसि अभिनिवेशः आसक्तिः अस्यास्तीति ०वेशी अर्थात् कल्याणी भवानिति यावत् । समुपसृत्य=समुपगम्य कृतः प्रणामः येन सः, गिरा=वाण्या विनयेन सहितं यथा स्यात्तथा अभाषत=अवोचत्, कृतः प्रसादः=अनुग्रहः येन सः देवः=महाराजः श्रीहर्षदेवः तेन =दौवारिकेण उपदिश्यमानः=निर्दिश्यमानः मार्गः यस्य सः, प्राविशत्=प्रविष्टवान् अभ्यन्तरम्=अन्तः ।

'अथ...तुरङ्गैः आरचितां मन्दुरां विलोकयन्+अव्यक्तम् इभधिष्ण्यागारमपश्यत्' इत्यस्ति वाक्यम् । वनायुः= देशविशेषः, आरट्टोऽपि देशविशेषः, तदुक्तम्—"पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निस्सृत्य पर्वतात् । आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत्" कम्बोजदेशः हिन्दुकुश-पर्वतात् परतो वर्तते, कम्बोजे भवाः इति काम्बोजाः तैः, भरद्वाजोऽपि देश-विशेषः तज्जैः, सिन्धुदेशे जायन्ते इति सिन्धुदेशजाः तैः, पारसीकैः=पारसीकदेशोद्भवैः, शोणैः=रक्तवर्णैः, पिञ्जरैः=पीत-

हिन्दी—किरणों द्वारा अधिकार (पद) के प्रति सम्मान के कारण मार्ग दिखाया जा रहा था, जो (स्वामी की) कृपा से प्राप्त हुई विकसित कमलों की दीर्घ शिरो-माला-जैसी लग रही प्रसन्नता-भरी दीर्घ दृष्टि से दूर से ही आनन्द दे रहा था, जो निष्ठुरता के पद पर स्थित होते हुए भी विनम्र शिर पर विनय-जैसी श्वेत पगड़ी धारण कर रहा था, जो किसलय-समान बायें हाथ से मोटे-मोटे मोतियों के दाने जड़े रहने से ऊँची-नीची बनी मूठ वाली कृपाण पकड़ रहा था और दूसरे हाथ से चपलता छोड़े हुए बिजली की लता-जैसी सोने से मढ़ी चिकनी बेंत की छड़ी रख रहा था—आकर बोला "ये बड़े-बड़े द्वारपालों के अग्रणी महाराज के पारियात्र-नामक दर्शन-योग्य द्वारपाल हैं। इन्हें कल्याण-चाहने वाले आप यथोचित व्यवहार से अनुगृहीत करें।" द्वारपाल आगे बढ़कर प्रणाम किए हुए मधुर वाणी से नम्रतापूर्वक बोला—"आइए, दर्शन के लिए प्रवेश कीजिए। महाराज आप पर कृपा किए हुए हैं।" तब बाण—"धन्य हूँ मैं जिसे महाराज इस तरह अनुग्रह-योग्य मानते हैं" यह कहकर उसके द्वारा दिखाए मार्ग से जाता हुआ भीतर प्रविष्ट हो गया।

उसके बाद (बाण) राजा के प्रिय ऐसे घोड़ों से भरे घुड़साल को देखता हुआ—जो वनायु, आरट्ट, कम्बोज, भरद्वाज, सिन्धु और पारसीक देशों के थे, जो लाल, श्वेत, भूरे, हरे और तित्तिरों की तरह चितकबरे थे, जिनमें कई

हरिद्भिश्च, तित्तिरिकल्माषैश्च, पञ्चभद्रैश्च, मल्लिकाक्षैश्च, कृत्तिकापिञ्जरैश्च, आयतनिर्मांसमुखैः, अनुत्कटकर्णकोशैः, सुवृत्तश्लक्ष्णसुघटितघण्टिकाबन्धैः, यूपानुपूर्वीवक्रायतोदग्रग्रीवैः, उपचयश्वयत्स्कन्धसन्धिभिर्निर्भुग्नोरःस्थलैः, अस्थूलप्रगुणप्रसृतैर्लोहपीठकठिनखुरमण्डलैः, अतिजवत्रुटनभयादनिर्मितान्त्राणीवोदराणि वृत्तानि धारयद्भिः, उद्यद्द्रोणीविभज्यमानपृथुजघनैः, जगतीदोलायमानबालपल्लवैः, कथमप्युभयतो निखातदृढभूरि[1]पाशसंयमननियन्त्रितैः, आयतैरपि पश्चात्पाशबन्धप्रसारितैकाङ्घ्रिभिरायततरैरिवोपलक्ष्यमाणैः, बहुगुणसूत्रग्रथितग्रीवागण्डकैरामीलितलोचनैः, दूर्वारसश्यामलफेनलवशबलान्दशनगृहीतमुक्तान्करफरितत्वचः कण्डूजुषः [2]प्रतीकान्प्रचाल-

टीका—वर्णे: हरिद्भिः=हरितवर्णैः, तित्तिरिः=पक्षिविशेषः तद्वत् कल्माषैः=शबलवर्णैः, पञ्चभद्रैः=हेमचन्द्रानुसारेण 'पञ्चभद्रस्तु हृत्पृष्ठमुखपार्श्वेषु पुष्पितः' इत्युक्त-लक्षणैः, मल्लिकाक्षैः=शङ्करानुसारेण—"शुक्लपर्यन्ते असिततारके नयने येषां ते मल्लिकाक्षाः" तैः, कृत्तिका-पिञ्जरैः—कृत्तिकानक्षत्रवत् कल्माषैः कृत्तिका षट्तारकसमूहात्मिका भवति अतः कृत्तिकावत् अनेक-बिन्दुभिः चित्रैः, शङ्करोऽपि आह—'तारककदम्बकल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वचः' इति। आयतं=दीर्घं निर्मांसं=मांस-रहितम् अस्थिप्रायमित्यर्थः मुखं येषां तैः। अनुत्कटः=ह्रस्वः कर्णकोशः=कर्णपाशः येषां तैः। सुवृत्त०—सुवृत्तः=सुगोलः श्लक्ष्णः=स्निग्धः कोमलः इत्यर्थः, सुघटितः=सुनिर्मितः घण्टिकाबन्धः येषां तैः, गलस्य यस्मिन् प्रदेशे घण्टिकाः बध्यन्ते स घण्टिका-बन्धः अथवा निगालः इत्युच्यते, तस्य सुवृत्तादित्वं प्रशस्यते। यूपानु०—यूपः यज्ञीयपशुबन्धनस्तम्भः तस्य अनुपूर्व्या=अनुक्रमेण, पूर्वानुक्रमेण इति, अनुपूर्वं तस्य भावः इति अनुपूर्व=अण्+ङीप् तया वक्रा=आभुग्ना, आयता=दीर्घा उदग्रा=उन्नता च ग्रीवा येषां तैः। उपचय०—उपचयेन=(मांसस्य) वृद्ध्या श्वयन्तः=स्फायमानाः, स्फीताः भवन्तः मांसलाः इति यावत् स्कन्धस्य सन्धयः=सन्धिभागाः येषां तैः। निर्भुग्न=बहिरागतम् उत्थितमित्यर्थः उरःस्थलं=वक्षःस्थलं येषां तैः। अस्थूलाः=न स्थूलाः अल्प-मांसाः इत्यर्थः प्रगुणाः=ऋजवः ['ऋजावजिह्मप्रगुणौ' इत्यमरः] प्रसृताः= जङ्घाः येषां तैः ['जङ्घा तु प्रसृता' इत्यमरः], लोहस्य यत् पीठम्=आसनं तद्वत् कठिनं=कठोरं खुराणाम्=शफानां मण्डलं=वृत्तं येषां तैः। अतिजव—अतिशयितः जवः=वेगः तेन यत् त्रुटनं=भङ्गः तस्मात् भयात्=भीतिकारणात्, न निर्मितानि अन्त्राणि=नाडीविशेषाः येषु तानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वृत्तानि=गोलाकाराणि उदराणि=जठराणि धारयद्भिः। उद्यत्०—उद्यन्ती—उद्गच्छन्ती पृथुः इत्यर्थः या द्रोणी=संदिग्धोऽयं शब्दः। शङ्करानुसारेण 'पृष्ठोरःकटिपार्श्वस्य मांसोत्कर्षणनिर्मिता। द्रोणिकेति प्रशंसन्ति शोभावाजिनि पञ्चमी'' ॥अश्वस्य पृष्ठोरःकटिपार्श्वभागेषु मांसोत्कर्षणात्मकम् अङ्गसौष्ठवं तया विभज्यमानं विभक्तीक्रियमाणं पृथुजघनं येषां तैः। जगती—जगत्यां=भूमौ इत्यर्थः, दोलायमानाः=विलुठन्तः बालाः=पुच्छलोमानि पल्लवाः इवेत्युपमिततत्पु० येषां तैः। कथमपि=केनापि प्रकारेण उभयतः=उभयोः पार्श्वयोः निखाताः=भूमौ निवेशिताः इत्यर्थः ये दृढाः=अशिथिलाः भूरयः=बहवः पाशाः=रज्जवः तैः संयमनेन=बन्धनेन नियन्त्रितैः=निरुद्धैः। आयतैः स्वभावतः दीर्घैः सद्भिः अपि पश्चात् पाशबन्धेन रज्ज्वा संयमनेन प्रसारितः=ततः एकः अङ्घ्रिः=पादः यैः तैः अतएव आयततरैः=अतिशयेन आयतैः=दीर्घैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपलक्ष्यमाणैः=दृश्यमानैः। बहुगुण०—बहुगुणेन बहुकृत्वः आवृत्तेन सूत्रेण=तन्तुना ग्रथितः=गुम्फितः ग्रीवागण्डकः=ग्रीवाभरणं येषां तैः। आमीलिते=निमीलिते लोचने=नेत्रे येषां तैः। दूर्वारस०—दूर्वा=घासविशेषः तस्य रसेन=द्रवेण श्यामलाः

हिन्दी—पञ्चभद्र और मल्लिकाक्ष जाति के थे, कई कृत्तिका-नक्षत्र की तरह बिन्दियों वाले थे, जिनके मुख लम्बे और मांस-रहित थे; कर्ण-कोश छोटे थे, गले में घण्टियाँ बाँधने के स्थान गोल, चिकने और सुगढ़ थे, ग्रीवायें यज्ञीय पशु बाँधने के कीले की तरह क्रमानुसार टेढ़ी और ऊँची थीं, कन्धों के सन्धिभाग मांस बढ़ने से स्फीत थे, वक्षःस्थल उभरे हुए थे, जघायें पतली और सीधी थीं और खुर लोहे के पीढ़े की तरह सख्त थे, जो अति वेग से (दौड़ने के कारण) टूट जाने के भय से बिना आँतों के बने हुए-जैसे गोल पेट धारण कर रहे थे, जिनके पृथुजघन-स्थल पीठ, छाती और कटि-पार्श्वभागों मे उभरे हुए मांस द्वारा विभक्त किये जा रहे थे, जिनके पल्लव-जैसे पूछों के बाल भूतल पर लुढ़क रहे थे, जो दोनों तरफ भूमि में गाढ़ी हुई मजबूत रस्सियों द्वारा बाँधने से किसी न किसी तरह नियन्त्रण में रखे हुए थे, जो लम्बे होते हुए भी पीछे से रस्सी द्वारा बाँधे जाने के कारण एक पैर (आगे) बढ़ाए हुए और भी लम्बे-जैसे दिखलाई पड़ रहे थे, जो (चबाई हुई) दूर्वा के रस से काले बने झाग के कतरों से चित्र-विचित्र

१. भूमिपाश।
१. प्रदेशान्।

यद्भिः, सालसवलितवालधिभिः, एकशफविश्रान्तिस्रस्तशिथिलितजघनार्धैः, निद्रया प्रध्यायद्भिरिव, स्खलितहुङ्कार-मन्दमन्दशब्दायमानैश्च, ताडितखुरधरणीरणितमुखरशिखरखुरलिखितक्ष्मातलैर्घासमभिलषद्भिश्च, प्रकीर्यमाण-यवसग्रासरसमत्सरोद्भूतक्षोभैश्च, प्रकुपितचण्डालहुङ्कारकातरतरतरलतारकैश्च, कुङ्कुमप्रमृष्टिपिञ्जराङ्गतया सतत-संनिहितनीराजनानलैरिव[1] लक्ष्यमाणैरुपरिविततवितानैः, पुरः पूजिताभिमतदैवतैः, भूपालवल्लभैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्, कुतूहलाक्षिप्तहृदयः किञ्चिदन्तरमतिक्रान्तो हस्तवामेनात्युच्चतया निरवकाशमिवाकाशं कुर्वाणम्, महता कदलीवनेन परिवृतपर्यन्तं सर्वतो मधुकरमयीभिर्मदस्रुतिभिर्नदीभिरापूर्यमाणम्,[2] आशामुखविसर्पिणा बकुल-

टीका—श्यामवर्णाः, ये फेनस्य लवाः = बिन्दुकणाः तैः शबलान् = चित्रवर्णान्, दशनैः = दन्तैः आदौ गृहीताः पश्चात् मुक्ताः = त्यक्ताः तान्, फरफरिता = पुनः पुनः ईषत् कम्पिता त्वक् येषां तान्, कण्डूं = खर्जूं जुषते इति (कण्डू + √जुष् + क्विप् कर्तरि) कण्डूजुषः तान् प्रतीकान् = अवयवान् ['प्रतीकोऽवयवेऽपि स्यात्' इति मेदिनी] प्रचालयद्भिः = प्रकम्पयद्भिः। सालसम् = आलस्येन सहितं यथा स्यात्तथा वलितः = चालितः वालधिः = पुच्छं यैः तैः। एकशफ०—एकेन शफेन = खुरेण या विश्रान्तिः = स्थितिरित्यर्थः तया स्रस्तं = मुक्तम् अवनतमित्यर्थः शिथिलितं = शैथिल्यं प्राप्तञ्च जघनानां = पार्श्वाणाम् अर्धं येषां तैः। निद्रया प्रध्यायद्भिः = चिन्तयद्भिरिवेति गम्योत्प्रेक्षा। स्खलित०—स्खलिते = स्खलनेन (भावे क्तः) हुङ्कारेण = हुं-शब्देन मन्द-मन्दं यथा स्यात्तथा शब्दायमानैः = ह्निनह्निनायमानैः। ताडित०—ताडिता = आहता या खुर-धरणी—काष्ठमयपादाधारः, खुराधःकाष्ठफलकमित्यर्थः तस्याः रणितेन = शब्देन मुखर = शब्दायमानं शिखरम् = अग्रं येषां तथाभूताः ये खुराः तैः लिखितं विदारितं क्ष्मातलं = भूतलं यैः तैः। घासं तृणम् अभिलषद्भिः = इच्छद्भिः। प्रकीर्यमाण०—प्रकीर्यमाणाः = अग्रे क्षिप्यमाणाः = ये यवसस्य = घासस्य ग्रासाः = कवलाः तेषु रतः = स्वादः अभिलाषः इत्यर्थः तस्मात् तेन वा यः मत्सरः = ईर्ष्या तेन उद्भूतः = जातः क्षोभः = आकुलता अधीरतेत्यर्थः येषां तैः। प्रकुपित०—प्रकुपिताः = क्रुद्धाः अतएव चण्डाः = प्रचण्डाः उग्राः इत्यर्थः ये चण्डालाः = अश्वपालाः, ते हि चण्डाल-जातौ शूद्रजातौ परिगण्यन्ते इत्यर्थः, तेषां हुङ्कारैः = क्रोधपूर्णैः हुं-शब्दैः कातरतराः = अतिशयेन कातराः = भीत-भीताः तरलाः चञ्चलाः च तारकाः = कनीनिकाः येषां तैः। कुङ्कुम०—कुङ्कुमेन = काश्मीरजेन या प्रमृष्टिः = प्रमार्जनं मर्दनमित्यर्थः तेन पिञ्जराणि = पीतवर्णानि अङ्गानि येषां तेषां भावः तत्ता तया, सततं = निरन्तरं यथा स्यात्तथा संनिहिताः = निकटस्थाः नीराजनस्य = आरातिकस्य अनलाः = वह्नयः येषां तैः इवेत्युत्प्रेक्षायां, लक्ष्यमाणैः दृश्यमानैः कुङ्कुममर्दनेन तेषामङ्गानि रक्तपीतानि आसन्, अनलाः अपि रक्तपीताः भवन्ति। उपरि = ऊर्ध्वम् विततं = विस्तृतं वितानम् = उल्लोचः येषां तैः। पुरः = अग्रतः पूजितम् = अर्चितम् अभिमतम् = अभीष्टं दैवतं = देवता येषां तैः संकेतानुसारेण अभिमतदैवतमत्र गोविन्दः। भूपालस्य = राज्ञः श्रीहर्षवर्धनस्येत्यर्थः, वल्लभैः = प्रियैः तुरङ्गैः = अश्वैः आरचितां = भूषितां पूर्णामित्यर्थः मन्दुरां = वाजिशालाम् ['वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः] विलोकयन् = पश्यन् कुतूहलेन = कौतुकेन आक्षिप्तम् = आक्रान्तं हृदयं यस्य सः, किञ्चित् अन्तरं = मध्यवर्ति-देशम् अतिक्रान्तः = गतः हस्तवामेन = हस्तस्य वामेन = वामभागतः इत्यर्थः, अतिशयेन उच्चः इति अत्युच्चः तस्य भावः तत्ता तया निरवकाशम् = अवकाशरहितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आकाशं कुर्वाणम् = विदधत्, इभधिष्ण्यागारम् अत्युच्चमासीत्, सर्वञ्च आकाशं व्यवधात्, अतः आकाशं स्थानाभावकारणात् निरवकाशमिव जातमित्याशयः, एतत् अन्यानि च इभधिष्ण्यागारस्य विशेषणानि। महता = विशालेन कदलीनां = रम्भाणां वनेन परिवृतः = पर्यवेष्टितः पर्यन्तः प्रान्तभागो यस्य तम्। सर्वतः = परितः मधुकराः = भ्रमराः तन्मयीभिः = तद्वतीभिः भ्रमर-व्याप्ताभिरित्यर्थः मदस्य = दान-जलस्य स्रुतिभिः = स्रवैः नदीभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आपतन्तीभिः = आगच्छ-

हिन्दी—वने, दाँतों द्वारा पकड़े और छोड़े हुए, फरफराती त्वचा वाले, खुजली वाले अंगों को हिला रहे थे, जो आलस में पूँछ हिलाये हुए थे, जो नींद में ध्यान-जैसे लगा रहे थे, जो गिरते समय 'हूँ' करके धीरे-धीरे हिनहिना रहे थे, जो (खुरों से) ताडित खुरधरणी [खुर रखने के लकड़ी के फट्टे] के शब्द से मुखरित नोक वाले खुरों से भूतल को खोद रहे थे, और जो घास चाह रहे थे, जिन्हें डाले जा रहे घास के ग्रास के लोभ में ईर्ष्या के कारण बेचैनी हो रखी थी, जिनकी आँखों की पुतलियाँ कुपित कठोर अश्वपालों की हुँकार से बड़ी भयभीत और चलायमान हुई बैठी थीं, जो केशर रगड़ने से पीले हुए अंगों के कारण ऐसे दिखलाई दे रहे थे जैसे कि नीराजन की आग निरन्तर उनके पास ही हो, जिनके ऊपर चंदोआ ताना हुआ था और जिनके आगे अभीष्ट देवता की पूजा हो रखी थी—हृदय में

१. नलरुध्यमानैरिवो।

२. भिरिवापतन्तीभि०।

वनानामिव विकसतामामोदेन लिम्पन्तं घ्राणेन्द्रियं [illegible] । अपृच्छच्च—'अत्र देवः किं करोति' इति । असावकथयत्—'एष खलु देवस्यौपवाह्यो बाह्यं हृदयं जात्यन्तरित आत्मा बहिश्चराः प्राणा विक्रम-क्रीडासुहृद्दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिः । तस्यावस्थानमण्डपोऽयं महान्दृश्यते, इति । स तमवादीत्—'भद्र, श्रूयते दर्पशातः । यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद्वारणेन्द्रमेव । अतोऽर्हसि मामत्र प्रापयितुम् । अतिपरवानस्मि कुतूहलेन' इति । सोऽभाषत—'भवत्वेवम् । आगच्छतु भवान् । को दोषः । पश्यतु तावद्वारणेन्द्रम्' इति ।

गत्वा च तं प्रदेशं दूरादेव गम्भीरगलगर्जितै[2] र्वियति चातककदम्बकैर्भुवि च भवननीलकण्ठकुलैः कलकेकाकलकलमुखर-

टीका—न्तीभिः आपूर्यमाणम्=आभ्रियमाणम् । आशामुखेषु=दिङ्मुखेषु विसर्पिणा=व्याप्नुवता विकसतां=विकासं गच्छतां वकुल-वनानां=वकुलवृक्षारण्यकानाम् आमोदेन=सौरभेण । इवेत्युत्प्रेक्षायां (मदगन्धेन) घ्राणेन्द्रियं=नासिकेन्द्रियं लिम्पन्तं=लिप्तं कुर्वन्तं, दूरात्=विप्रकर्ष-कारणात् अव्यक्तं=न स्पष्टतया दृश्यमानम् इभानां=हस्तिनां धिष्ण्यागारम्=अवस्थानगृहम् गजबन्धनशालां गजबन्धनीमिति यावत् ['धिष्ण्यं स्थाने गृहे भेऽग्नौ' इत्यमरः] अत्रा-गारशब्दस्य पुंस्त्वं चिन्त्यम् । असौ=द्वारपालः देवस्य=महाराजस्य, औपवाह्यः=वाह्यते=चाल्यते इति [√वह्+णिच्+ण्यत्] वाह्यः उपवाह्यः एव औपवाह्यः राजवाहकः इत्यर्थः राज्ञः आरोहणप्रयोजनक इति यावत्, ['राजवाह्यस्त्वौपवाह्यः सन्नाह्यः समरोचितः' इति क्षीरस्वामी] अन्या जातिः इति जात्यन्तरम् तत् अस्य सञ्जा-तम् इति जात्यन्तरितम्, अन्यजातिगतः अर्थात् राज्ञः आत्मा स्वस्मिन् मानवजातिदेहे वर्तते, परन्तु स दर्पशाते गजजाति-देहे वर्तते । बहिः चरन्तीति बहिश्चराः=बाह्याः प्राणाः, विक्रमस्य=शौर्यस्य क्रीडानां=खेलानां च सुहृत्=मित्रं, दर्पम्=अभिमानम् अन्यहस्तिनामिति शेषः शातयति=नाशयतीति दर्पशातः इति यथार्थम्=अन्वर्थं नाम यस्य तथाभूतः वारणानां=हस्तिनां पतिः=अग्रणीः इत्यर्थः तस्य=दर्पशातस्य अवस्थान-मण्डपः=निवास-गृहम् । सः=बाणः तं=द्वारपालम् अवादीत्=अकथयत् यदि एवम्=अर्थात् दर्पशातस्य आवास-गृहम् इदम् । अथवा अदोषः=तद्दर्शने काऽपि आपत्तिः न स्यात् इत्यर्थः, तर्हि वारणेन्द्रं=गजेन्द्रं दर्पशातं पश्यामि एव । माम् अत्र=दर्पशातस्थाने प्रापयितुं=नेतुम् । अतिशयेन परवान्=अभिभूतः इत्यर्थः । कुतूहलेन=तद्दर्शन-कौतुकेन । सः=द्वारपालः अभाषत=अवदत् ।

'गत्वा च दूरादेव...दर्पशातमपश्यत्' इत्यस्ति वाक्यम् । गम्भीर०—गम्भीराणि=गभीराणि यानि गलस्य=कण्ठस्य गर्जितानि=गर्जनानि तैः वियति आकाशे चातकानां=पक्षिविशेषाणां कदम्बकैः=समूहैः भुवि=पृथिव्यां च भवनानां=गृहाणां नीलकण्ठ-कुलैः=मयूर-समूहैः कला=मधुरा स्फुटा या केका=मयूरध्वनिः कलकलः=चातकानां

टिप्पणी—गम्भीर०—दर्पशात की गहरी चिघाड़ को आकाश में उड़ने वाले चातक और भूतल पर घरेलू मयूर मेघ गर्जन समझ बैठे क्योंकि बड़े हाथी की चिघाड़ और मेघ का गर्जन एक जैसे ही हुआ करते हैं। दोनों पक्षी प्रफुल्लित हो उठे । चातक बेचारों को मेघ के जल-बिन्दुओं की बड़ी चाह थी और मयूरों को नृत्य करने का अवसर चाहिए था । गर्जन सुनकर दोनों हर्ष-विभोर होकर मधुर कलरव से मेघ का स्वागत करने लगे । यहाँ हाथी की चिघाड़ पर मेघ गर्जन की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान् अलंकार है ।

हिन्दी—कुतूहल रखे हुए, कुछ आगे बढ़े हुए उसने हाथ के बाईं ओर गजशाला देखी—जो बड़ी ऊँची होने के कारण आकाश को स्थान-वंचित-जैसा कर रही थी, जिसकी सीमा केलों के वन से घिरी हुई थी, जो बहती हुई नदियों से, जैसे भ्रमरों से व्याप्त (हाथियों के) मदजल के प्रवाहों से, भरी जा रही थी, जो दिशाओं में फैले हुए विकसित मौलसरी के वनों के सौरभ से, जैसे मद-गन्ध से घ्राणेन्द्रिय को लिप्त कर रही थी और जो दूरी के कारण साफ-साफ नहीं (दिखाई पड़ रही) थी और (बाण) पूछ बैठा—'यहाँ महाराज क्या कर रहे हैं ?' वह द्वारपाल बोला—यह महाराज का सचमुच बाहरी हृदय, दूसरी जाति में गई हुई अपनी आत्मा, बाहर घूमता हुआ प्राण, पराक्रम और क्रीड़ा का सुहृद्, यथार्थ 'दर्पशात' नाम वाला सवारी का गजराज है। यह बड़ा भारी मण्डप उसी के रहने का स्थान है' । वह बाण उसे बोला—"भद्र पुरुष ! दर्पशात सुना जाता है । यदि ऐसा है और (कोई) आपत्ति न हो तो पहले इस गजराज को ही देख लूं । आप मुझे यहाँ ले चलिये । मैं कुतूहल से विवश हूँ" । वह बोला—'ऐसा ही सही । आप आइए । कोई आपत्ति नहीं । पहले गजराज को देख लीजिए' ।

और उस स्थान में जाकर (बाण ने) दूर से ही दर्पशात को देखा—जिसके गले की गहरी चिघाड़ों पर मीठे कल-

१. दव्यक्तमिव धिष्ण्याकार ०धृष्ण्या । २. गर्जितोर्जितैः ।

मुखैः क्रियमाण[illegible]¹ [illegible]² मेघकालम्, अवि-रलमधुबिन्दुपिङ्गपद्मजालकितां सरसीमिवाम्यवगाढां दशां चतुर्थीमुत्सृजन्तम्, अनवरतमवतंसशङ्खैरामन्द्रकर्णतालदुन्दुभिध्वनिभिः पञ्चमीप्रवेशमङ्गलारम्भमिव गायन्तम्, अविरतचलनचित्रत्रिपदीललितलास्यलयैर्दोलायमानदीर्घदेहाभोगतया मेदिनीविदलनभयेन भारमिव लघयन्तं दिग्भित्तितटेषु कायमिव कण्डूयमानम्, आहवायोदस्तहस्तया दिग्वारण-

टीका—कलरवः ताभ्यां मुखराणि=शब्दायमानानि मुखानि येषां तैः क्रियमाणः कलः कोलाहलः यस्य तम्, एतत् अन्यानि च 'दर्पशातम्' इत्यस्य विशेषणानि। विकच॰—विकचानि=विकसितानि कदम्बानि=कदम्ब-पुष्पाणि संवदति=अनुकरोति इति ॰संवादी यः मदः=दानवारि सुरा=मदिरा इवेत्युपमिततत्पु॰ तस्याः सौरभेण=परिमलेन भरितं=पूरितं भुवनं जगत् येन तम्। काय॰—कायवन्तं=शरीरिणं मूर्तिमन्तमित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अकाले=असमये मेघ-कालम्=मेघसमयं वर्षर्तुमित्यर्थः। तदानीं ग्रीष्ममध्यम् आसीत् न तु वर्षाकालः अत उक्तम् 'अकाले' इति। अविरल॰—अविरलाः=घनाः ये मधुनः=माक्षिकस्य बिन्दवः तैः पिङ्गलानि=पिङ्गलवर्णानि पद्मानि=कमलानि तेषां जालकं=समूहः सञ्जातम् अस्याः इति ॰ जालकिता [तदस्य सञ्जातम् पा॰ ५।२।३६ इत्यनेन जालक+इतच्] ताम् अवगाढाम् =गभीरां सरसीम्=सरोवरम् इवेत्युपमा सा च श्लिष्टा, दशापक्षे अविरलाः ये मधुनः=बिन्दवः तद्वत् पिङ्गलानि पद्मजालकानि=ईषद्रक्तानि चिह्नानि सञ्जातानि अस्यास्तथोक्ताम् ['पद्मकं बिन्दुजालकम्' इत्यमरः पद्म-प्रतिकृति रक्तत्वात् पद्मकम्, तारुण्ये हि हस्तिनां देहे रक्तबिन्दवः स्युः इति क्षीरस्वामी] अवगाढां=पूर्णविकसितां प्रौढा-मित्यर्थः चतुर्थीं दशाम्=त्रिशच्चत्वारिंशद्वर्षमध्यवर्तिवयोऽवस्थाम्, इयं खलु गजानां मदावस्थाप्युच्यते, उत्सृजन्तं=यजन्तम्। अनवरत॰—अनवरतं=निरन्तरम्· आमन्द्रः=किञ्चिद्गम्भीरः कर्णयोः=श्रवणयोः तालः=फटफटा-कार एव दुन्दुभेः=पटहस्य ध्वनिः=शब्दः येषां तथाभूतैः अवतंसशङ्खैः=कर्णाभरणभूतैः शङ्खैः पञ्चम्यां=पञ्चमीदशायां प्रवेशः=गमनं तस्मिन् मङ्गलारम्भं=मङ्गलाचरणम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, गायन्तम् पञ्चमीदशाप्रवेशे शङ्ख-दुन्दुभि-वादनेन मङ्गलगानमिव कुर्वन्तम् इत्यर्थः। अविरत॰—अविरतं सततं यत् चलनं तस्मिन् चित्रा=रमणीया या त्रिपदी=त्रिभिः पादैः स्थितिः, अत्रैकपादस्य उत्क्षेपो भवति, हस्तिषु एवं बहुल दृश्यते सा एव ललितं=सुन्दरं लास्यं=नृत्यं तस्य लयैः=एकतानैः [गानगेययोरन्यूनाधिक्ये श्लिष्टता लयः वाद्यादीनामन्योन्यं समत्वमिति यावत् इति क्षीरस्वामी] दोलायमानः=इतस्ततः प्रचलन् दीर्घ-देहस्य=महतः शरीरस्य आभोगः=विस्तारः यस्य तस्य भावः तत्ता तया मेदिन्याः=पृथिव्याः यत् विदलनं=विदारणं तस्मात् भयेन=भीत्या भारं=स्वकीय-भारं लघयन्तं=लघूकुर्वन्तमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्। अयं भावः—दर्पशातः खलु एकपादमुत्थाप्य त्रिभिः पादैश्च स्थित्वा एकलयेन नृत्यमिव करोतिस्म। चतुर्भिः पादैः अवस्थानेन मम देहभारात् पृथिवी विदीर्येतेति भयेन एकपादो-त्थापनेन स देहभारं लघयतिस्म इव। दिग्॰—दिक्=दिशा एव भित्तिः=कुड्यम् तस्याः तटेषु=भागेषु कायं=शरीरं कण्डूयन्तम्=घर्षन्तम् इव, अर्थात् इतस्ततः प्रचलन् दर्पशातः दिग्रूपभित्तौ आत्मानं घर्षन् कण्डूमिवापनय-तिस्म। अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा। आहवा॰—आहवाय=युद्धाय उदस्तः=उत्क्षिप्तः हस्तः=शुण्डादण्डः येन स तस्य भावः तत्ता तया दिग्वारणान्=दिग्गजान् आह्वयमानम्=आकारयन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ब्रह्म॰—ब्रह्मस्तम्भं=

हिन्दी—रव से वाचालित मुखों वाले चातक समूह द्वारा आकाश में और घर के मयूर-समूह द्वारा भूतल पर (मेघ-स्वागत में) मधुर कोलाहल मचाया जा रहा था, जिसने विकसित कदम्ब-पुष्पों (के सौरभ) से मिलती जुलती हुई मदिरा की-सी मद की सुगन्धि से भुवन भर रखा था, जो असमय का साकार मेघ-काल-जैसा लग रहा था, जो घने शहद की बूंदों से लाल-पीले बने हुए कमल-समूह वाला गहरी झील-जैसी घने शहद की बूंदों के समान लाल-पीले गोल-गोल धब्बों वाली प्रौढ़ चौथी अवस्था को छोड़ रहा था, जो लगातार कानों की कुछ गहरी फड़फड़ाहट के रूप में नगाड़े की ध्वनि सहित कर्णाभरण बने शंखों से पाँचवीं अवस्था में प्रवेश का मंगलगान-जैसा कर रहा था, जो लगातार हिलने-डुलने में तीन पैरों पर खड़े होने की सुन्दर स्थिति के रूप में ललित नृत्य की एक तान से आगे-पीछे जाते हुए शरीर के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो (अपने भार से) पृथिवी के फट जाने के भय से (अपना) भार हल्का कर रहा हो (अथवा) दिशारूपी दीवार के किनारों पर अपना शरीर खुजला रहा हो, जो सूँड को ऊपर उठाए हुए रहने के कारण दिग्गजों को युद्धार्थ ललकारता हुआ-जैसा लग रहा था, जो विशाल तेज दाँतों वाली पत्र-जैसी

१. क्रियमाणाकालकोलाहलम्।
२. कायवन्तमिव काल।

निवाह्यमानम्, ब्रह्माण्डमिव स्थूलनिशितदन्तेन करपत्रेणेव पाटयन्तम्, अमान्तं भुवनाभ्यन्तरे बहिरिव निर्गन्तुमीहमानम्, सर्वतः सरसकिसलयलतालासिभिर्लेसिकैश्चिरपरिचयोपचितैर्वनैरिव विक्षिप्तसशैवलबिसविसरशबलसलिलैः सरोभिरिव चाधोरणकैराधीयमाननिदाघसमयसमुचितोपचारानन्दम्, अपि च प्रतिगजदानपवनादानदूरोत्क्षिप्तेनानेकसमरविजयगणनालेखाभिरिव वलिवलयराजिभिस्तनीयसीभिस्तरङ्गितोदरेणातिस्थवीयसा हस्तार्गलदण्डेनार्गलयन्तमिव

टीका—ब्रह्माण्डं स्थूलौ=विशालौ निशितौ=तीक्ष्णौ दन्तौ यस्मिन् तथाभूतेन करः पत्रमिवेति तेन स्थूलाः=निशिताः दन्ताः यस्मिन् तथाभूतेन करपत्रेण=क्रकचेन पाटयन्तम्=दारयन्तम्, इवेत्युत्प्रेक्षा, सा च श्लिष्टरूपकोत्थापिता। अमान्तं०—भुवनस्य=जगतः अभ्यन्तरे=अन्तः विशालकायत्वात् अमान्तं=न मानं प्राप्नुवन्तं बहिः इवेत्युत्प्रेक्षायां निर्गन्तुं=निस्सर्तुम् ईहमानं=चेष्टमानम्। 'सर्वतः' इत्यारभ्य 'नन्दम्' इत्यन्तमेकवाक्यखण्डम्। सर्वतः=परितः सरसाः=रसपूर्णाः किसलयाः=पल्लवाः यासाम् एवंविधाः याः लताः=वल्ल्यः ताभिः लसन्ति=राजन्ति इति ०लासिनः तैः लेसिकैः=हस्त्यारोहकैः, चिरात् परिचयेन उपचितैः संघीभूतैः वनैः=अरण्यैः इवेत्युत्प्रेक्षायां, विक्षिप्तं=पातितं सशैवलं=शैवालयुक्तं, बिसानां=मृणालानां विसरेण=समूहेन शबलं=मिश्रितञ्च सलिलं [दर्पशातोपरि] यैः तैः सरोभिः=सरोवरैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आधोरणकैः=हस्तिपकैः ['आधोरणा हस्तिपका' इत्यमरः] आधीयमानः क्रियमाणः निदाघ-समयस्य=ग्रीष्म-कालस्य समुचितेन=उपयुक्तेन उपचारेण=प्रतिक्रियया परिचर्य्ययेत्यर्थः आनन्दः=सुखं यस्य एवंभूतम्। अपरवाक्यखण्डस्य मुख्यशब्दाः 'अतिस्थवीयसा दण्डेन अर्गलयन्तमिव सकलं ककुभां चक्रवालम्' इति सन्ति। प्रतिगज०—प्रतिगजानां=प्रतिद्वन्द्वि-हस्तिनां दानस्य=मदस्य यः पवनः मदगन्धपूर्णवायुरित्यर्थः तस्य आदानेन=ग्रहणेन आघ्राणेनेति यावद् दूरं यथा स्यात्तया उत्क्षिप्तेन उत्थापितेन अनेकेषु समरेषु=रणेषु विजयाः तेषां-गणनायाः संख्यानस्य लेखाभिः=रेखाभिः इवेत्युत्प्रेक्षायां वलिनां-चर्म-भंगानां यानि वलयानि=मण्डलानि गोलाकार-वलयः इत्यर्थः तेषां राजिभिः=श्रेणिभिः तनीयसीभिः=अतिशयेन तनुभिः (तनु+ईयसुन्) तरङ्गितं=सञ्जाततरङ्गं तरङ्गयुक्तमिवेत्यर्थः उदरं=मध्यं यस्य तेन, अतिशयेन स्थूलः इति स्थवीयान् [ईयसुन्] तेन, हस्तः=शुण्डः अर्गल-दण्डः=कपाटावस्तम्भकमुसलमिवेत्युपमिततत्पु० तेन अर्गलयन्तम्=अर्गलयुक्तं करोतीति अर्गलयति ["सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते" सि० कौ०] ततः शतृ-प्रत्यये अर्गलयन् तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सकलं=समग्रं, कुल-

टिप्पणी—सर्वतः—हरी लतायें शिरों पर लादे दर्पशात के लिए लाते हुए हस्त्यारोहक ऐसे लग रहे थे मानो वन हों, जो हाथी से चिरपरिचय होने के कारण उसके ग्रीष्मकृत ताप को मिटाने के लिए इकट्ठे होकर आये हों। हाथी वनों में घूमा था। वन भी सरस लताओं से चमकते रहते हैं। महावत शैवाल-मृणाल-मिश्रित जल उसके ऊपर डाल रहे थे। वे झीलें-जैसे लग रहे थे, क्योंकि झीलें भी शैवाल-मृणाल मिश्रित जल उछालती हैं। गर्मी का ताप मिटाने के लिए हाथी कमलों वाली झीलों में जाया करते हैं।

हिन्दी—सूंड की मोटे-मोटे तेज दांतों वाली आरी से संसार (के खम्बे) को जैसे चीर रहा हो, जो भुवनों में न समाता हुआ मानो बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था, जिसे सरस पल्लवों वाली लताओं से चमक रहे लम्बे परिचय के कारण इकट्ठे [होकर आये] हुए वनों-जैसे लग रहे हस्त्यारोहकों द्वारा (और) उछाले हुए शैवाल-सहित मृणालों के समूह से चित्र-विचित्र बने जल वाले सरोवरों जैसे लग रहे महावतों द्वारा ग्रीष्म समय के योग्य उपचार से सुख पहुँचाया जा रहा था, अपि च, जो प्रतिद्वन्द्वी गजों की मद-पवन (की गन्ध) ग्रहण करने से ऊपर उठाई हुई, अनेक युद्धों में (प्राप्त) विजयों की गिनती की रेखाओं जैसी भीतर पड़ी छोटी-छोटी गोल झुरियों से तरंगित-सी हुई बड़ी मोटी आगल के डंडे के समान सूंड से मानों कुल-पर्वतों, समुद्रों, द्वीपों और जंगलों सहित सारे दिक्समूह पर आगल लगा रहा था, जो एक (दन्त-दण्ड) को सूंड के भीतर दिये हुए पत्तों सहित केले के तने से भीतर के जल-कणों से जड़ सींचे जाने पर पल्लव निकाले हुए-जैसा और दूसरे दन्त-दण्ड को विनोद में लटके हुए मृणाल समूह से युद्ध के चाव में उठे हुए रोमाञ्च से जैसा युक्त हुआ धारण कर रहा था, जो दंत-दंडों के जोड़े की फैलती हुई कान्ति से सरोवर में क्रीड़ाओं के समय खाये हुए कुमुद-समूह को जैसे बहुधा उगल रहा था, अपना यश-समूह जैसे दिशाओं को दे रहा था, तुच्छ-कीड़े-जैसे हाथियों को मार डालने से चढ़े हुए दिमागों वाले सिंहों का मानो उपहास कर रहा था और अपने लिए कल्पवृक्ष का रेशमी अवगुण्ठन-जैसा बना रहा था, जो वृक्ष के तने के समान सूंड ऊपर उठाने के विलासों के समय दिखलाई पड़ने वाले लाल-रेशमी वस्त्र के समान मृदु तले वाले तालु से खाये हुए लाल कमल समूह

सकलं सकुलशैलसमुद्रद्वीपकाननं ककुभां चक्रवालम्, एकं करान्तरार्पितोत्पलाशेन कदलीदण्डेनान्तर्गतशीकरसिच्यमान-मूलं मुक्तपल्लवमिवापरं लीलावलम्बिना मृणालजालकेन समररसोच्चरोमाञ्चकण्टकितमिव दन्तकाण्डं वहन्तम्, विसर्पन्त्या च दन्तकाण्डयुगलकस्य कान्त्या सरःक्रीडास्वादितानीव कुमुदवनानि बहुधा वमन्तं निजयशोराशिमिव दिशामर्पयन्तं कुकरिकीटपाटनदुर्ललितान्सिंहानिवोपहसन्तं कल्पद्रुमदुकूलमुखपटमिव चात्मनः कल्पयन्तम्, हस्तकाण्ड-दण्डोद्धरणलीलासु च लक्ष्यमाणेन रक्तांशुकसुकुमारतलेन तालुना कवलितानि रक्तपद्मवनानीव वर्षन्तमभिनवकिसलय-

---

टीका—शैलाश्च समुद्राश्च द्वीपाश्च काननानि च तैः सहितं ककुभां=दिशानां चक्रवालं=समूहम्। एकम् इदं दन्त-काण्डस्य विशेषणम्। करस्य=शुण्डायाःअन्तरे=मध्ये अर्पितेन=दत्तेन हस्तिपकेनेत्यर्थः, उत्पलाशेन=उद्गतानि पला-शानि=पत्राणि यस्य तेन पलाशयुक्तेन कदल्याः=रम्भायाः दण्डेन=काण्डेन, अन्तर्गताः=कदल्यन्तःस्थिताः ये शीकराः=जलकणाः तैः सिच्यमानं=सिक्तं क्रियमाणं मूलं यस्य तथाभूतम्। अतएव मुक्तानि=प्रकटितानीत्यर्थः पल्लवानि येन तम्, अपरं=द्वितीयं लीलया=सलीलम्, अवलम्बने=लोलति इति ०लम्बी तेन मृणालानां=विसानां जालेन=समूहेन समरे=युद्धे यः रसः=स्वादः अनुराग इत्यर्थः तेन उच्चाः=उद्गताः रोमाञ्चाः=रोमहर्षाः एव कण्टकाः सञ्जाताः अस्येति कण्टकितम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, दण्डः=करः एव करण्डः=दण्डः तं वहन्तं=धारयन्तम्, विसर्पन्त्या=प्रसरन्त्या दन्तौ=काण्डौ। इवेति उपमिततत्पु०, तयोः युगलम् एव युगलकं तस्य कान्त्या=दीप्त्या, सरसि=सरोवरे या क्रीडा=लीला तस्याम् आस्वादितानि=भक्षितानि कुमुदानां=कैरवाणां वनानि=समूहान् इवेत्युत्प्रे-क्षायाम्, बहुधा=बहुवार वमन्तम्=उद्गिरन्तम्, दन्तौ कुमुदानि च श्वेतानि भवन्ति, निजं यत् यशः=कीर्तिः तस्य राशि=समूहम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। दिशां=दिशानाम् अर्पयन्तम्=प्रयच्छन्तम्, स्वयशोराशि दिशासु विकिरन्तमित्यर्थः, यशोऽपि कविजगति श्वेतं भवति कु=कुत्सिता, तुच्छा इति यावत् ये करिणः=गजाः एव कीटाः=क्रिमयः क्षुद्रजीवाः इत्यर्थः तेषां पाटनेन=मारणेन दुर्ललितान्=अवलिप्तान् सिंहान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उपहसन्तम्=उपहासास्पदं मन्यमानम्, अवमन्यमानमित्यर्थः कल्पद्रुमस्य=कल्पवृक्षस्य दुकूलं=कौशेयवसनम् एव मुख-पटः=मुखाच्छादनवस्त्रम् अवगुण्ठनमित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आत्मनः=स्वस्य कल्पयन्त=रचयन्तम्। हस्तः शुण्डः काण्ड-दण्डः=स्तम्भ-दण्डः इवेत्युपमिततत्पु० तस्य उद्धरणस्य=उत्थापनस्य उपरिकरणस्येत्यर्थः लीलासु=विलासेषु लक्ष्यमाणेन=दृश्यमानेन रक्तांशुकवत्=रक्तवर्णसूक्ष्मवसनवत् सुकुमारं=मृदु तलं=तलभागो यस्य तेन तालुना=तालु-देशेन कवलितानि=ग्रासीकृतानि खादितानीत्यर्थः रक्त-पद्मानां=रक्तवर्णकमलानां वनानि=समूहानिवेत्युत्प्रेक्षायाम् वर्षन्तम्=उद्गिर-न्तमित्यर्थः, अभिनवाः=नूतनाः ये किसलयाः=पल्लवाः तेषां राशि=समूहमिवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्गिरन्तं=वमन्तम्।

टिप्पणी—एकम्……अपरम्०—महावत द्वारा एक दाँत के बीच दिये हुए पत्तों सहित केले के तने से—जिसके भीतर से पानी के कण टपक रहे थे, दांत ऐसा लगा था मानो वह वृक्ष का तना हो जिससे जल द्वारा सींचे जाने पर पत्ते फूट कर निकल रहे हों। केले से टपकते हुए जल-कण दन्त-रूप वृक्ष पर सिंचाई का काम कर रहे थे। दूसरे दांत से लटकते हुए मृणाल ऐसे लग रहे थे मानो वे युद्ध-रुचि के कारण उठे हुए रोमाञ्च हों।

हिन्दी—को मानो बरसा रहा था और नये पल्लव-समूह को मानो उगल रहा था, जो स्वभावतः भूरे वर्ण की आंख से कमल खाते समय पिये हुए मकरन्द का मानों वमन कर रहा था, जो प्रचुर मन्द-गन्ध के बहाने (पहले के) खाये हुए आम्र, चम्पक, लवली, लौंग और कक्कोल के वृक्षों वाले इलायची की लताओं से मिश्रित, सहकार-वृक्षों सहित, कपूर के वृक्षों के निर्यास-प्रवाह से भरे हुए पारिजात के वनों को मानो गण्डस्थलों से बार-बार छोड़ रहा था, जो रात-दिन (अपने) दान-पट्टों (मदवाही कनपट्टियों) के रूप में दान-पट्टों (दान-पत्रों) से जिन पर विलास के साथ हस्त (सूंड) के रूप में हस्त (हस्ताक्षर) स्थापित था, आधे-तोड़े-पुण्ड्रजातीय इक्षु-दण्ड द्वारा खुजलाने के रूप में लेख लिखा जा रहा था और जिनका भ्रमर-समूह के गुंजन के रूप में वाचन (भी) हो रहा था—मानो सभी वन गज-पतियों को दान में दे रहा था, जो घने जल-बिन्दुओं को टपकाने वाली बर्फ़ की शिला के टुकड़ों से बनी शोभार्थ (पहनी) नक्षत्र-माला के सूत्र से ठंडा किया जा रहा, सभी गजपतियों के प्रभुत्व की (निशानी) श्वेत रेशमी-पगड़ी से उन्न-तावनत हुआ बड़ा ऊँचा माथा धारण कर रहा था, जो दिग्विभागों को (पहले) ढक देने और (पीछे, खोल देने वाले दो कान-रूपी पंखाओं से स्वामी के प्रति भक्ति होने के कारण दन्तरूपी पलंगड़ी पर स्थित राजा को मानो हवा कर

राशिमिवोद्गिरन्तम्, कमलकवलपीतं मधुरसमिव [illegible] चक्षुषा, चूतचम्पकलवलीलवङ्गकक्कोल-वन्त्येलालतामिश्रितानि ससहकाराणि कर्पूरपूरपूरितानि पारिजातकवनानीवोपभुक्तानि पुनः पुनः करटाभ्यां बहलमदा-मोदव्याजेन त्रिसृजन्तम्, अहर्निशं विभ्रमकृतहस्तस्थितिभिरर्धखण्डितपुण्ड्रेक्षुकाण्डकण्डूयनलिखितैरलिकुलवाचालितैर्दान-पट्टकैर्विलभमानमिव सर्वकाननानि करिपतीनाम्, अविरलोदबिन्दुस्यन्दिना हिमशिलाशकलमयेन विभ्रमनक्षत्रमालागुणेन शिशिरीक्रियमाणम् सकलवारणेन्द्राधिपत्यपट्टबन्धबन्धुरमिवोच्चैस्तरां शिरो दधानम्, मुहुर्मुहुः स्थगितापावृतदिङ्मु-

---

टीका—स्वभावतः=निसर्गतः पिङ्गलेन कपिलवर्णेन चक्षुषा=नयनेन कमलस्य कवले=ग्रासे पीतं मधुरसं मकरन्द-मिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वमन्तम्=उद्गिरन्तम्। **चूत०**—करटाभ्यां=गण्डस्थलाभ्यां बहलः=प्रचुरः मदस्य दानस्य यः आमोदः=सौरभं तस्य व्याजेन=कैतवेन चूतः=आम्रः, चम्पकः=पुष्पवृक्षविशेषः, लवली=लताविशेषः, लवङ्गः=लवङ्गवृक्षः कक्कोलः=फलवृक्षविशेषश्च सन्ति एषु इति कक्कोलवन्ति, एलालतया मिश्रितानि=मिलितानि, सहकारेण अतिसुरभि-रसालेन सहितानि ['आम्रः चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः] कर्पूरस्य=एतन्नामक-=वृक्षस्य यः पूरः=निर्यास-प्रवाहः तेन पूरितानि=भरितानि, पारिजातः एव पारिजातकः=पुष्पवृक्षविशेषः तस्य वनानि=अरण्यानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उपभुक्तानि=पूर्वभक्षितानि पुनः-पुनः=मुहुर्मुहुः विसृजन्तं=त्यजन्तं निस्सार-यन्तमित्यर्थः, अत्र व्याजापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षा। **विभ्रम०**-विभ्रमेण=लीलया कृता हस्तस्य=शुण्डायाः, अन्यत्र हस्ता-क्षरस्य स्थितिः येषु तथोक्तैः अर्धखण्डितम्=अर्ध-त्रोटितं यत् पुण्ड्रेक्षोः=अतिमधुरस्य इक्षुविशेषस्य काण्डं=दण्डः तेन कण्डूयनं=घर्षणं तस्मिन् लिखितैः=चिह्नितैः अन्यत्र कृतलेखैः अलीनां= भ्रमराणां कुलेन=समूहेन वाचालितैः=मुखरितैः दानस्य=मदस्य अन्यत्र वितरणस्य पट्टैः एव पट्टकैः=पीठैः गण्डस्थलादिभिः अन्यत्र आज्ञा-पत्रैः 'सनद' इति भाषायां प्रसिद्धैः सर्वाणि काननानि=वनानि करि-पतीनां=गजेन्द्राणां गजेन्द्रेभ्यः इत्यर्थः अत्र चतुर्थी-स्थाने सम्बन्धविवक्षया षष्ठी ज्ञेया, विलभमानं=प्रयच्छन्तमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्। **अविरल०**—अविरलं=घनं यथा स्यात्तथा उदकस्य=जलस्य बिन्दून् उदबिन्दून् [मन्थौदनसक्तुबिन्दु० पा० ६।३।६० इत्यनेन उदक-शब्दस्य विकल्पेन उदादेशः] स्यन्दयन्ति=स्रावयन्ति इति ०स्यन्दी तेन हिमशिलायाः=प्रस्तरीभूतहिमस्येत्यर्थः शकलानि=खण्डानि एव ०मयेन विभ्र-माय=शोभार्थं (च० तत्पु०) नक्षत्रमालायाः=सप्तविंशतिमौक्तिकमालायाः गुणेन=सूत्रेण शिशिरीक्रियमाणं शीतली-क्रियमाणम् (शिरः इत्यस्य विशेषणम्) सकलाश्च ते वारणेन्द्राः=गजेन्द्राः तेषां यत् आधिपत्यं=प्रभुत्वं तस्य यः पट्ट-बन्धः=कौशेयशिरोवेष्टनं तेन बन्धुरम्=उन्नतावनतम् ['बन्धुरं तून्नतानतम् इत्यमरः'] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उच्चैस्त-राम्=अतिशयेन उच्चशिरः दधानं=धारयन्तम्। **स्थगिता०**—मुहुर्मुहुः=पौनःपुन्येन आदौ स्थगितानि=व्यवहितानि पश्चात् अपावृतानि=उद्घाटितानि दिङ्मुखानि=दिग्भागाः याभ्यां ताभ्यां कर्णौ एव तालवृन्ते=व्यजने ताभ्यां भर्तरि

टिप्पणी—विभ्रम०-दर्पशात सूंड को अपने दान-पट्टों—मद चुआने वाले गण्डस्थलादि स्थानों—पर रखे, आधे तोड़े इक्षु-दण्ड-से खुजला रहा था जिससे कुछ चिह्न पड़ गए। उन स्थानों पर मद-गन्ध के कारण भ्रमर भी गूंज रहे थे। इस पर कवि कल्पना करता है कि गज महाराज दर्पशात के दान-पट्ट मानो दान देने के पत्र हों जिन पर इक्षु-दण्ड की कलम से दान-लेख लिखे जा रहे हैं, 'हस्त' (हस्ताक्षर) भी स्थित है और जो पढ़े भी जा रहे हैं। भ्रमर-गुंजार दान-पट्ट का वाचन है, दानपात्र करिपति हैं और दी जाने वाली वस्तुएँ वन हैं।

हिन्दी—रहा था, जो लम्बी कुल परम्परा से प्राप्त हुए गजाधिपत्य के चिह्न-भूत चामर से-जैसे विस्तृत पृष्ठास्थि के अनुपात से निकले (और) इधर-उधर हिलती हुई पूछ से शोभा पा रहा था, जो स्वच्छ शीतल जल-कणों के बहाने दिग्विजय के समय पी हुई नदियों को जैसे बार-बार मुख से बाहर निकाल रहा था, जो क्षण भर ध्यान देने में सभी अंगों को निश्चल किये, दूसरे हाथियों की दुन्दुभि (का शब्द) सुनने से अंगों को तोड़ने-मरोड़ने के बाद बड़ी चिंघाड़ों के साथ मानों अपमान का दुःख प्रकट कर रहा था, जो युद्ध न प्राप्त किये हुए अपनी आत्मा को मानो कोस रहा था, जो महावतों की सवारी के अपमान से लज्जित होता हुआ—जैसा अङ्गुलियों से भूतल को कुरेदता हुआ मद (१—दान, २—अभिमान) छोड़ रहा था, जो अवहेलना के साथ (पहले) लिये और (पीछे) छोड़ दिये ग्रासों से कुपित हुए महावतों की बार-बार की चिल्लाहटों के अनुरोध पर मद के आलस्य में आँख का तीसरा भाग मीचे किसी न किसी तरह धीरे-धीरे अनादर-पूर्वक ग्रासों को ले रहा था, जो खाये हुए तमाल वृक्ष के पत्तों से चू रहे काले रंग के रस वाले

द्धाभ्यां कर्णतालवृन्ताभ्यां वीजयन्तमिव भर्तुर्भक्त्या दन्तपर्यङ्किकास्थितां राजलक्ष्मीम्, आयतवंशक्रमागतेन गजाधिपत्यचिह्नेन चामरेणेव चलता वालधिना विराजमानम्, स्वच्छशिशिरशीकरच्छलेन दिग्विजयपीताः सरित इव पुनः पुनर्मुखेन मुञ्चन्तम्, क्षणमवधानदाननिस्पन्दीकृतसकलावयवानामन्यद्विरदडिण्डिमाकर्णनाङ्गवलनानामन्ते दीर्घं फूत्कारैः परिभवदुःखमिवावेदयन्तम्, अलब्धयुद्धमिवात्मानमनुशोचन्तम्, आरोहाधिरूढिपरिभवेन लज्जमानमिवाङ्गुलीलिखितमहीतलं मदं मुञ्चन्तम्, अवज्ञागृहीतमुक्तकवलकुपितारोहारटनानुरोधेन मदतन्द्रीनिमीलितनेत्रत्रिभागं कथं

टीका—=श्रीहर्षदेवे इत्यर्थः, भक्त्या=प्रेम्णा दन्तः एव पर्यङ्किका=लघुपर्य्यङ्कः तत्र स्थितां राजलक्ष्मीं=राजश्रियं वीजयन्तं=विजितां कुर्वन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आयत०—आयतः=विस्तृतः यः वंशः=कुलं तस्य क्रमेण परम्परया आगतं=प्राप्तं तेन, गजानां=करिणां यत् आधिपत्यं=प्रभुत्वं तस्य चिह्नेन=लक्षणेन, चामरेण, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आयतः=दीर्घः यः वंशः=पृष्ठवंशः पृष्ठास्थीति यावत् तस्य क्रमेण=आनुपूर्व्येण आगतेन=निर्गतेन गजानाम् आधिपत्यस्य=श्रेष्ठत्वस्येत्यर्थः चिह्नेन, यथोक्तं शङ्करेण—'यावत्पूरितपाशश्च वंशश्चापलताकृतिः। शुभो ज्ञेयो गजेन्द्राणामायतः कुरुते सुखम्। चलता=दोलायमानेन वालधिना=पुच्छेन विराजमानं=शोभमानम्। स्वच्छ०—स्वच्छाः=निर्मलाः शिशिराः=शीतलाः ये शीकराः=जल-कणाः तेषां छलेन=व्याजेन, दिशां विजयः दिग्विजयः तस्मिन् पीताः=पानविषयीकृताः सरितः=नदीः इवेत्युत्प्रेक्षा, सा च सापह्नवा, मुञ्चन्तं=त्यजन्तम्। क्षण०—क्षणं=क्षणपर्यन्तम् अवधानं=ध्यानं तस्य दानेन निस्पन्दीकृताः=निश्चलीकृताः सर्वे अवयवाः=अङ्गानि येषु तथाविधानाम्, अन्ये ये द्विरदाः=हस्तिनः तेषां=डिण्डिमानां=तेषामुपरिस्थापितानां वाद्यमानानां पटहानाम् आकर्णने=श्रवणे अङ्गानां=स्वकीयावयवानां वलनानां=चालनानां, व्यावर्तनानां मोडनानामित्यर्थः अन्ते=अवसाने दीर्घैः=महद्भिः फूत्कारैः='फूत्' इति शब्दैः परिभवस्य=अवमानस्य दुःखं=खेदम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आवेदयन्तं=प्रकटयन्तम्। अलब्ध०—न लब्धं=प्राप्तं युद्धं येन तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आत्मानं=स्वम् अनुशोचन्तं=क्रोशन्तम्। आरोह०—आरोहन्तीति आरोहाः [अच् कर्तरि]=आरोहिणः तेषां स्वस्योपरि अधिरूढिः=अधिरोहणम् एव परिभवः=अपमानः तेन लज्जमानम्=लज्जां प्राप्नुवन्तमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अङ्गुलीभिः पादस्येति शेषः लिखितं=निभिन्नं महीतलं भूतलं येन तं मदं=दानम् अन्यत्र अभिमानम् मुञ्चन्तम्। अन्योऽपि प्राप्तापमानः लज्जया अङ्गुलीभिः महीं लिखति अभिमानञ्च मुञ्चति। अवज्ञा०—अवज्ञया=अनादरेण उपेक्षयेति यावत् आदौ गृहीताः पश्चात् मुक्ताः=त्यक्ताः ये कवलाः=ग्रासाः तैः कुपिताः=क्रुद्धाः ये आरोहाः=हस्तिपकाः तेषाम् आरटनस्य=मुहुर्मुहुः उत्क्रोशस्य अनुरोधेन=आग्रहेण, मदस्य=दानस्य तन्द्रया=निद्रालस्येन निमीलितः=पिहितः नेत्रयोः त्रिभागः=तृतीयो भागः (अत्र त्रिशब्दः पूर्णार्थको बोध्यः, 'क्वचित्संख्या-

टिप्पणी—क्षणमवधान—भाव यह है कि जब दर्पशात ने अन्य हाथियों पर रखे हुए दुन्दुभियों की ध्वनि सुनी तो क्षण भर उसने उस तरफ ध्यान दिया और फिर अंगों को मरोड़ता हुआ बेचैनी में चिंघाड़ने लगा। कवि कल्पना करता है कि मानो हाथी यह बताना चाहता है कि दुन्दुभि लिए अन्य हाथियों की उपस्थिति से वह अपमानित हो गया हो और उसे दुःख हो रहा हो कि वह इन हाथियों से लड़ नहीं सका। अपमानित कोई भी व्यक्ति उसासें लेता है और छटपटाता है।

हिन्दी—मुख से (भी) मानो प्रचुर मात्रा में मद का प्रवाह छोड़ रहा था, जो दर्प से मानो फट रहा था, शौर्य से मानो उसासें ले रहा था, नशे से मानो बेहोश हो रहा था, तरुणाई से मानो टूट रहा था, मद-जल से मानो गल रहा था, बल से मानो उछल रहा था, अभिमान से मानो मत्त हो रहा था, तेज से मानो क्लान्त हो रहा था, सौन्दर्य से मानो (जगत् को) लिप रहा था और सौभाग्य से मानो सींच रहा था, जो नखों में चिकना (पर) रोमों में कड़ा, मुख में गुरु (आचार्य, भारी) पर विनय में अच्छा शिष्य, शिर में मृदु पर परिचयों में दृढ़, गले में छोटा पर आयु में लम्बा, पेट में दरिद्र (निर्धन, ह्रस्व) पर दान(देने, मद-जल) में निरन्तर प्रवृत्त, मद (नशा, मद-जल) की चेष्टाओं में बलभद्र (बलराम, बलवान् भद्र-जातीय-गज) पर वशवर्ती होने में कुल-वधू, क्षमाओं में बुद्ध पर क्रोध-विस्तार में आग बरसाने वाला था, जो नागों (सर्पों, हाथियों) को उठा लेने में गरुड़ था, लड़ाई के कुतूहलों में नारद (नारद-मुनि, मद जल देने वाला) था, आक्रमणों में सूखा (विना मेघों का) वज्रपात था, सेनारूपी नदियों को क्षुब्ध कर देने में मगर-मच्छ था, दन्त-प्रहार-रूपी डसने के कामों में साँप था, हस्त-पाश (सुन्दर सूंड) रूपी हस्तपाश (हाथ

कथमपि मन्दमन्दम[illegible] कवलान् [illegible]श्यामलरसेन प्रभूततया मदप्रवाहमिव मुखेनाप्युत्सृजन्तम्, दलन्तमिव दर्पेण, श्वसन्तमिव शौर्येण, मूर्च्छन्तमिव मदेन, त्रुट्यन्तमिव तारुण्येन, द्रवन्तमिव दानेन, वल्गन्तमिव बलेन, माद्यन्तमिव मानेन, उद्यन्तमिवोत्साहेन, ताम्यन्तमिव तेजसा, लिम्पन्तमिव लावण्येन, सिञ्चन्तमिव सौभाग्येन, स्निग्धं नखेषु, परुषं रोमविषये, गुरुं मुखे, सच्छिष्यं विषये, मृदुं शिरसि, दृढं परिचयेषु, ह्रस्वं स्कन्धबन्धे, दीर्घमायुषि, दरिद्रमुदरे, सततप्रवृत्तं दाने, बलभद्रं मदलीलासु, कुलकलत्रमायत्ततासु, जिनं क्षमासु, वह्निवर्षं

टीका—वाचिनामपि पूरणार्थत्वम्' इति नियमात्) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा कथं कथमपि=केनापि प्रकारेण मन्दमन्दं यथा स्यात्तथा अनादरात्=अवज्ञया आददानं=गृह्णन्तं कवलान्=ग्रासान्। अवजग्ध०—अवजग्धाः भक्षिताः ये तमालस्य=तमालवृक्षस्य पल्लवाः=किसलयाः तेभ्यः स्रुतः=स्यन्दितः श्यामलः=श्यामवर्णः रसः=द्रवः यस्मिन् तेन, प्रभूततया=प्रचुरतया, मदस्य=दानस्य प्रवाहः=स्रोतः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मुखेन अपि उत्सृजन्तं=त्यजन्तम्। मदः खलु गजानां गण्डस्थलेभ्यः स्रवति। दर्पेण=अभिमानेन दलन्तं=स्फुटन्तमिव, शौर्येण=विक्रमेण=श्वसन्तं=प्राणन्तमिव, मदेन=अभिमानेन मूर्च्छन्तं=स्फायमानम् अथवा मुह्यमानमिव (मूर्च्छा मोह-समुच्छ्राययोः), मदेन खल-जनः मोहं प्राप्नोति। तारुण्येन=यौवनेन त्रुट्यन्तं=विदीर्यमाणमिव, दानेन=मदेन द्रवन्तं=प्रस्रवन्तमिव, बलेन=शक्त्या वल्गन्तं=प्लवमानमिव, मानेन=अभिमानेन माद्यन्तं=मत्तं भवन्तमिव, उत्साहेन=वीर्येण उद्यन्तम्=उदयमानमिव, तेजसा=ऊष्मणा ताम्यन्तं=क्लाम्यन्तमिव, लावण्येन=सौन्दर्येण लिम्पन्तं=लिप्तं कुर्वन्तं जगत् इति शेषः इव, सौभाग्येन=सुभगतया सिञ्चन्तम्=अभ्युक्षन्तमिव जगत् इति शेषः, सर्वत्रोत्प्रेक्षा। नखेषु स्निग्धं=चिक्कणम्, स्निग्ध-नखाः प्रशस्ताः भवन्ति। तदुक्तं संकेत-कारेण—'नखाः स्निग्धाः सिताः शस्ताः'। रोम्णां=लोम्नां विषये सम्बन्धे परुषं=कठोरम्। इतः परं प्रत्येकम् उपवाक्ययुगले आद्य-शब्दौ परस्पर-विरुद्धौ, यथा—स्निग्धं=स्नेहपूर्णं प्रियमित्यर्थः अथ च परुषम्=अप्रियमित्यर्थः इति विरोधः तत्परिहारश्च स्निग्धं=चिक्कणं परुषम्=अमृदुम् इति। अत एवात्र विरोधाभासो व्यङ्ग्यः। मुखे गुरुम्=आचार्यम्, विनये=शिक्षायां सच्छिष्यम्, यः खलु आचार्यः स कथं शिष्यः इति विरोधः तत्परिहारश्च मुखे गुरुम्=आयतं विशालमित्यर्थः विनये=अनुशासने सच्छिष्यम् अर्थात् सः सच्छिष्य इव हस्तिपकानाम् अनुशासने आसीत्, शिरसि=मूर्ध्नि मृदुं=कोमलं परिचयेषु=मैत्रीषु दृढं=कठोरम्, अत्र मृदुत्व-कठोरत्वयोः विरोधः, तत्परिहारश्च शिरसि मृदुं=प्रियम्, परिचयेषु दृढं=स्थिरम्। स्कन्ध-बन्धे=गलमूले ह्रस्वं=लघुम्, आयुषि=जीवन-काले दीर्घम्=लम्बम्, अत्र दीर्घत्व-ह्रस्वत्वयोः विरोधः, विषय-भेदात् तत्परिहारः। उदरे दरिद्रं=निर्धनं, दाने=वितरणे सततं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तं=कृतप्रवृत्तिम्। अत्र निर्धनत्व-दातृत्वयोः विरोधः, तत्परिहारस्तु उदरे दरिद्रं=ह्रस्वम्, दाने=मद-जल-प्रवाहे प्रवृत्तम् मदस्य=सुरा-पान-जन्यमत्ततायाः लीलासु चेष्टासु बलभद्रं=बलरामम् आयत्ततासु=वश्यतासु अधीनतायामित्यर्थः कुल-कलत्रं=कुलीनस्त्रियम्। अत्र यः खलु सुरा-पान-मत्ततायां बलरामः स कथं वश्यतायाम् आज्ञापरिपालने इत्यर्थः कुलकलत्रं, सुरामत्तो हि न वशमायाति, उच्छृङ्खलो भवतीति विरोधः, तत्परिहारस्तु मदस्य=दान-वारिणः लीलासु=क्रीडासु मदजनितचेष्टासु इत्यर्थः, बलभद्रं=बलम् अस्यास्तीति बल अच् (मतुबर्थीयः) बलः तं बलवन्तं भद्रं=भद्रजातीयं गजं यथोक्तम्-भद्रो मन्द्रो गजश्चेति विज्ञेयाः त्रिविधा गजा (बृहस्पतिसंहिता ६७।१) एतेषु भद्रजातीयो गजः सर्वश्रेष्ठो भवति। वश्यतायाम् हस्तिपकानाम् आज्ञापालने इति यावत् कुल-कलत्रवत् आसीत्। क्षमासु=क्षान्तिषु जिनं=जैन-धर्म-प्रवर्तकं महावीरम् अथवा बुद्धम्, क्रोधस्य मोक्षेषु=मोचनेषु प्रसरेष्विस्यर्थः वह्निम्=अग्निं वर्षतीति०—वर्षः (अच् कर्तरि) तम् अर्थात् कोप-समये अग्निमिव वर्षति स्म। अत्र क्षमा-क्रोधयोः एक-कालिकत्वे विरोधः काल-भेदे च तत्परिहारः। नागानां=

हिन्दी—की डोरी) से खींचने में वरुण था, शत्रुओं को लपेट में लेने में यम का फन्दा था, टेढ़े दन्त-प्रहारों में काल था, तीक्ष्ण-कर (सूंड) द्वारा ग्रहण (पकड़) रूपी तीक्ष्णकर सूर्य के ग्रहणों में राहु था, टेढ़ी चालों में मङ्गल ग्रह था, मण्डलाकार भ्रमण के ज्ञानरूपी मण्डलाकार भ्रमात्मक ज्ञान में जलता हुआ काष्ठ-दण्ड था, पराक्रम का मनोरथों को पूरा कर देने वाला चिन्तामणि पर्वत था, जो मौक्तिक-पर्वत के खम्भों के समान दाँतों के आश्रय-स्थान के रूप में हाथी-दाँतों और मोती के खम्भों का (बना) अभिमान का रहने का महल था, जो घण्टों, चामरों और भूषणों से सुन्दर (सजा) इच्छानुसार सञ्चरण करने के लिए मनस्विता का विमान था, जो क्रोध का मद-धारा-रूपी दुर्दिन

क्रोधमोक्षेषु, गरुडं नागोद्धृतिषु, नारदं कलहकुतूहलेषु, शुष्कमशनिपातमास्कन्देषु, मकरं वाहिनीक्षोभेषु, आशीविषं दशनकर्मसु, वरुणं हस्तपाशाकृष्टिषु, यमवागुरामरातिसंवेष्टनेषु, कालं परिणतिषु, राहुं तीक्ष्णकरग्रहणेषु, लोहिताङ्गं वक्रचारेषु, अलातचक्रं मण्डलभ्रान्तिविज्ञानेषु, मनोरथसम्पादकं चिन्तामणिपर्वतं विक्रमस्य, दन्तमुक्ताशैलस्तम्भ-निवासप्रासादमभिमानस्य, घण्टाचामरमण्डनमनोहरमिच्छासञ्चरणविमानं मनस्वितायाः, मदधारादुर्दिनान्धकारं

टीका—सर्पाणाम् उद्धृतिषु = उत्थापनेषु गृहीत्वा उपरि-नयनेष्वित्यर्थः, गरुडं = तार्क्ष्यम्, कलहानां = परस्पर-विवादानां कुतूहलेषु = कौतुकेषु नारदम् = एतन्नामकं देवर्षिम् 'नारदो हि कलहव्यसनी आसीत्' इति प्रसिद्धम्। हस्तिपक्षे नागानां = हस्तिनाम् उद्धृतिषु = निपातनेषु गरुड-सदृशम्, कलहानां = युद्धानां कुतूहलेषु = व्यापारेष्वित्यर्थः नारं = जलं ददातीति तथोक्तस्तम्, मदजल-प्रवाहकमित्यर्थः। आस्कन्देषु = शत्रूणामुपरि आक्रमणेषु शुष्कं = जलरहितम् अशनि-पातं = वज्रपातम्, वाहिनीनां = नदीनां क्षोभेषु = उद्वेलनेषु मकरं = मत्स्यविशेषम्, हस्ति-पक्षे शत्रुषु वज्रपातमिवा-क्रमणं करोति स्म, तेषां वाहिनीषु = सेनासु च क्षोभं = भयमिति यावत् जनयति स्म। दशन-कर्मसु = दशन-व्यापारेषु आशीविषम् = आश्यां = दंष्ट्रायां विषं यस्य सः सर्पः तम्, अर्थात् दशन-क्रियायां सर्पम्, हस्तिपक्षे दशनयोः = दन्तयोः कर्मसु = व्यापारेषु। हस्ते = करे पाशः बन्धनम् इति हस्त-पाशः तेन आकृष्टिषु = आकर्षणेषु वरुणम् = जलाधिष्ठातृ-देवम्। हस्तिपक्षे, प्रशस्तः हस्तः = शुण्डः इति हस्त-पाशः, समासान्ते प्रयुक्तः पाश-शब्दः प्रशस्तवाचको भवति यथा केशपाशः, कर्णपाशः इत्यादयः तेन आकृष्टिषु, अर्थात् यथा वरुणः स्वहस्तस्थित-पाशेन आकर्षति तथैव दर्पशातोऽपि स्व-सुन्दर-हस्तेन [शुण्डेन] पदार्थान् आकर्षति स्म। अरातीनां = शत्रूणां संवेष्टनेषु = पर्यावरणेषु यमस्य = कालस्य वागुराम् = पाश-बन्धम्। परिणतिषु = परिणामेषु, परिपक्वावस्थासु वार्धक्येष्वित्यर्थः कालं = समयम्, समयो हि जीवं वार्धक्यं नयति, हस्तपक्षे परिणतिषु = तिर्यग्दन्तप्रहारेषु कालं = मृत्युम्। तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः" इत्यनुसारेण परिणतो भूतः दर्पशातः यदा दन्तैः प्रहरति स्म तथा सर्वमेव कालवत् विनाशं नयति स्म। दृश्यतां कालि-दासः—"वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श" (मेघ०)। तीक्ष्णाः = प्रखराः रश्मयः = किरणाः यस्य तथाभूतः सूर्यः तस्य ग्रहणेषु = ग्रसनेषु सूर्य-ग्रहणेष्वित्यर्थः राहुम्, हस्तिपक्षे तीक्ष्णानि = बलवन्ति यानि करेण = शुण्डा-दण्डेन ग्रहणानि तेषु। वक्राः = कुटिलाः ये चाराः = संचरणानि गतयः इत्यर्थः तेषु लोहिताङ्गम् = रक्ताङ्गं मङ्गलग्रहमिति यावत्। मङ्गलस्य वक्रगतिः ज्योतिषे प्रसिद्धा, हस्तिपक्षे कुटिल-चालेषु। मण्डलस्य = मण्डलाकार-वह्नेरित्यर्थः यानि भ्रान्ति-विज्ञानानि = भ्रमात्मक-ज्ञानानि तेषु अलातचक्रं = ज्वलत्काष्ठम्, ज्वलत्काष्ठं वेगेन भ्राम्यमाणं मण्डलाकारवह्नेः भ्रमं जनय-तीति दृश्यते, हस्तिपक्षे मण्डलेन = मण्डलाकारेण या भ्रान्तिः = भ्रमणं तस्य विज्ञानेषु अर्थात् कथं मण्डलाकारेण भ्रमणीयमिति दर्पशातः सम्यग् जानाति स्म। विक्रमस्य = शौर्यस्य मनोरथानां = मनोऽभिलषितानां सम्पादकं = निष्पादकं चिन्तामणेः = मणिविशेषस्य पर्वतम् अर्थात् दर्पशातः पर्वतवदुन्नतः शूरश्चासीत्, अतः तमधिरूढः श्रीहर्षदेवः यदिच्छति स्म तत् सिद्धयति स्म। चिन्तामणिः हि सर्वमेवाभिलषितं पूरयति। उपरि दर्पशातस्य विषय-भेदेन विविधोल्लेखात् सर्वत्र उल्लेखालङ्कारः, स च यथायथं रूपकश्लेषानुप्राणितः। अभिमानस्य गर्वस्य दन्तौ मुक्ताशैलस्य = मौक्तिक-पर्वतस्य स्तम्भौ = स्थूणे इवेत्युपमिततत्पु० तयोः निवास-प्रासादः = निवास-स्थानं तम् एव, दन्तानां = गजदन्तानामित्यर्थः मुक्ता-शैलानां च यस्मिन् तथाभूतं निवास-प्रासादं = निवास-हर्म्यम्। दर्पशातस्य श्वेतवर्णौ दन्तौ मौक्तिक-शिलावत् प्रतीयेते स्मेति भावः। घण्टाश्च, चामराणि च मण्डनानि भूषणानि च = तैः मनोहरं = सुन्दरम्, इच्छया = स्वेच्छानुसारं यत् सञ्च-रणं = भ्रमणं तदर्थं विमानं = देवयानम्। दर्पशातः विमानञ्चोभयमेव घण्टादिभिः भूषितं भवति। मनस्वितायाः = उच्चमनस्कतायाः। मद-धारा एव दुर्दिनं = मेघच्छन्न-दिवसः तस्य अन्धकारः यस्मिन् तथाभूतम् (मेघच्छन्नेऽह्नि

हिन्दी—के अन्धकार को लिए हुए सुगन्धित जल वाला धारायन्त्र-गृह था, जो अहंकार का प्रतिमा अर्थात् दांतों के मध्यवर्ती मस्तक-भाग पर के सुवर्णाभरण के रूप में सोने की प्रतिमा (मूर्ति) से युक्त महामन्दिर था, जो अभिमान का पर्वतों जैसे गण्डस्थलों और चूते हुए मद के रूप में पहाड़ों के बड़े-बड़े शिला-खण्डों और झरनों वाला क्रीड़ा-पर्वत था, जो दांत और गर्दन के रूप में हाथी-दांतों सहित बहिर्द्वार वाला वज्र का बना दर्प का मन्दिर था, जो अटारियों के समान ऊँचे कुम्भ स्थलों की अस्थियों के रूप में ऊँचे मिट्टी के कूटों (टीलों) और अट्टालकों (रण-गृहों) से भीषण बना हुआ राज्य का चलता-फिरता पहाड़ी किला था, जो (शरीर पर) किये गये बाणों के (प्रहारों के) हजारों छिद्रों के रूप में बाण मारने के लिए किये हुए हजारों छिद्रों वाली पृथिवी की लोहे की दीवार था, जो भू-नन्दन (भू-पति हर्षदेव) के रूप

गन्धोदकधारागृहं क्रोधस्य, सकाञ्चनप्रतिमं महानिकेतनमहङ्कारस्य, सगण्डशैलप्रस्रवणं क्रीडापर्वतमवलेपस्य, सदन्ततोरणं वज्रमन्दिरं दर्पस्य, उच्चकुम्भकूटाट्टालकविकटं सञ्चारि गिरिदुर्गं राज्यस्य, कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोहप्राकारं पृथिव्याः, शिलीमुखशतझाङ्कारितं पारिजातपादपं भूनन्दनस्य, तथा च सङ्गीतगृहं कर्णतालताण्डवानाम्, आपानमण्डपं मधुपमण्डलानाम्, अन्तःपुरं शृङ्गाराभरणानाम्, मदनोत्सवं मदलीलालास्यानाम् अक्षुण्ण-

---

टीका—दुर्दिनम्, इत्यमरः) गन्धमिश्रितम् उदकं=गन्धोदकम् (मध्यमपदलोपी) तस्य धारा-गृहम्=धारावर्षक-जलयन्त्रसमन्वितं स्नानागारम् क्रोधस्य=कोपस्य। धारागृहं प्रायः अन्धकारावृतं भवति जलञ्च सुवासितं भवति। मदस्तत्र अन्धकारः तद्गन्धश्च सुवासना। सकाञ्चना=काञ्चनेन=सुवर्णेन सहिता प्रतिमा=हस्तिनः दन्तयोर्मध्यवर्ती शिरोभागः अथ च मूर्तिः यस्मिन् तम्, मन्दिरं काञ्चन-देव-प्रतिमा-युक्तं-भवति, हस्तिनः प्रतिमा चापि काञ्चन-भूषण-सज्जिता भवति, महानिकेतनं=महामन्दिरम्, अहङ्कारस्य=अहंभावस्य। गण्डौ=गण्डस्थले शैलौ=पर्वतौ इवेत्युपमिततत्पु० गण्डशैलौ च प्रस्रवणं=दानवारिप्रवाहश्च तैः सहितम् वा क्रीडापर्वत-पक्षे, गण्डशैलाः=पर्वतस्य स्थूलोपलाः ["गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपला गिरेः" इत्यमरः] च प्रस्रवणानि=निर्झराश्च तैः सहितं क्रीडापर्वतकम् अवलेपस्य=गर्वस्य। दन्तौ च तोरणं=कन्धरा च तैः सह सदन्ततोरणम्, अन्यत्र सदन्तः=हस्ति-दन्त-सहितः तोरणः=बहिर्द्वारं यस्य तत् ['तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्" इत्यमरः] वज्रमन्दिरं=वज्र-निर्मित-मन्दिरम्। दर्पशातः वज्र इव कठोर आसीत् दर्पस्य। उच्चौ=उन्नतौ कुम्भ-कूटौ=कुम्भस्थलास्थिनी अट्टालकौ=अट्टौ इवेत्युपमिततत्पु० ताभ्यां विकटं=भीषणं दर्पशातम्, अन्यत्र कुम्भः=घटः स च मृदः उपलक्षकः तस्य कूटाः=दुर्गात् अवतरणार्थं मृत्कूटाः ("दुर्गद्वारावतरणार्थः क्रमनिम्नो हस्ति-नखाभो मृत्कूट" इति क्षीरस्वामी] च अट्टालकाः=प्राकाराग्रे रणगृहाः [अट्टालकः प्राकाराग्रे रणगृहमिति कौटिल्यः] ताभ्यां विकटं सञ्चारि=सञ्चरण-शीलं न तु स्थिरम् गिरौ=पर्वते दुर्गम् इति गिरि-दुर्ग-राज्यस्य। कृतानि अनेकबाणैः विवराणां=छिद्राणां सहस्राणि यस्मिन् तम्। दर्पशातः युद्धे अनेकबाण-प्रहारैः विद्ध आसीत्, अन्यत्र कृतानि अनेकानि बाणार्थं बाणप्रक्षेपणार्थमिति यावत् विवराणां सहस्राणि यस्मिन् तथाभूतम्। प्राकारो हि सच्छिद्रो भवति येन बहिः शत्रुषु बाण-प्रहारः कर्तुं शक्यते। लोहस्य प्राकारं=वरणं पृथिव्याः। राज्यमहीं शत्रुभ्यः रक्षणार्थं दर्पशातः लोह-भित्तिरिवासीत् इति भावः। लोहवत् सोऽपि कृष्णवर्णः कठिनश्च आसीत्। शिली-मुखानां=भ्रमराणां शतैः=शतशः भ्रमरैरित्यर्थः झाङ्कारितं=झाङ्कारः सञ्जातः अस्येति तथोक्तम् एकत्र मदकारणात् अन्यत्र सौरभ-कारणात् इत्यर्थः, भूः=पृथिवी तस्याः नन्दनः=प्रियः तस्य भूपतेः हर्षवर्धनस्येति यावत्, पारिजातपक्षे भूः एव नन्दनं स्वर्गीयं वनं तस्य, पारिजातो हि स्वर्गीयवृक्षः। उपरि सर्वत्र श्लिष्टपरस्परितरूपकं तच्च मालारूपम्। तथा च=अपि च कर्णयोः=श्रोत्रयोः तालाः=फटफटत्काराः एव ताण्डवाः=नृत्यानि तेषां सङ्गीत-गृहं=सङ्गीतशाला। मधुप-मण्डलानां=भ्रमर-समूहानाम् आपान-मण्डपं=मधुशाला। शृङ्गारं=सिन्दूरेण प्रसाधनम् ['शृङ्गारं-चूर्ण-सिन्दूर-लवङ्ग-कुसुमेषु च, इति विश्वः] आभरणानि=आभूषणानि च तेषाम् अन्तःपुरम्=अवरोधः, अन्तःपुरे स्त्रियः सिन्दूराभरणादिभिः शरीर-प्रसाधनं कुर्वन्ति। दर्पशातोऽपि मस्तके शुण्डे च सिन्दूराङ्कितः, भूषण-भूपितश्चासीत्। मदेन=दान-वरिणा लीलालास्यानां=सलील-नृत्यानाम्, अन्यत्र मदः=सुरापान-जन्य-मत्तता अथवा यौवनस्य मत्तता तस्य लीला-लास्यानां मदनोत्सव=वसन्ते जायमानं कामोत्सवम्, मदनोत्सवे हि कामिन्यः सुरामत्ताः यौवन-मत्ताः वा सविलासं नृत्यन्ति। नक्षत्र-माला=सप्तविंशति-मौक्तिक-रचित-माला, अन्यत्र सप्तविंशति-नक्षत्र-राजिः तस्याः मण्डलानां=मण्डलाकाराणाम् अक्षुण्णः=अनाहतः मेघास्थगितः स्पष्ट इत्यर्थः प्रदोषः=रजनी-मुखम् [प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः] तम्, मदः=दानवारि एव महानद्याः पूराः=ओघाः तेषाम् अकाले=असमये प्रावृट्-कालं=वर्षर्तु-समयम्, सप्तच्छदस्य=वृक्षविशेषस्य वनानां परिमलानां=सौरभाणाम् अलीकं=मिथ्या शरत्समयं=शरत्कालम्, सप्तच्छदो हि शरदतो एव विकसति, पर दर्पशात-

हिन्दी—में भू रूपी नन्दन वन का भ्रमरों से गुंजायमान पारिजात का वृक्ष था। अपि च जो कानों की फड़-फड़ाहट-रूपी ताण्डवनृत्यों का संगीतगृह था, मधुप-समूह की मधुशाला था, सिन्दूर-प्रसाधन और आभरणों का अन्तःपुर था, मद-जल से झूमने के रूप में (स्त्रियों का) मद-मस्ती के सविलास-नृत्यों का मदनोत्सव था, मोतियों की नक्षत्र-माला के रूप में (अश्विनी आदि) नक्षत्र-माला के मण्डलों का स्पष्ट प्रदोष-समय था, मद-जल-रूपी महानदी-प्रवाहों का असामयिक वर्षाकाल था, सप्तच्छद-वृक्षों के वन के सौरभ का झूठा शरत्-समय था, (सूंड) के जल-कण-रूपी अवश्यायों का अपूर्व-

प्रदोषं नक्षत्रमालामण्डलानाम्, अकालप्रावृट्कालं मदमहानदीपूराणाम्, अकालशारदमिव सप्तच्छदवनपरिमलानाम्, अपूर्वहिमागमं शीकरनीहाराणाम्, मिथ्याजलधरं गर्जिताडम्बराणाम्, दर्पशातमपश्यत् ।

आसीच्चास्य चेतसि—'नूनमस्य निर्माणे गिरयो ग्राहिताः परमाणुताम् । कुतोऽन्यथा गौरवमिदम् । आश्चर्यमेतत् । विन्ध्यस्य दन्तावादिवराहस्य करः' इति विस्मयमानमेव तं दौवारिकोऽब्रवीत्—'पश्य ।

मिथ्यैवालिखतां मनोरथशतैर्निःशेषनष्टां श्रियं
चिन्तासाधनकल्पनाकुलधियां भूयो वने विद्विषाम् ।
आयातः कथमप्ययं स्मृतिपथं शून्यीभवच्चेतसां
नागेन्द्रः सहते न मानसगतानाशागजेन्द्रानपि ॥

टीका—मद-परिमलः सप्तच्छदवत् सुरभिः भवन् शरदभावेऽपि व्याप्नोति स्मेति भावः । कालिदासोऽप्याह" प्रसवैः सप्तपर्णानां मद-गन्धिभिराहताः । असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः"[रघु०—४।२३]शीकराः=दर्पशातस्य शुण्डात् निःसरन्तो जल-कणाः एव निहाराः=अवश्यायाः तेषाम् अपूर्वं=पूर्वं न भूतं, नूतनमित्यर्थः हिमागमम्=हेमन्तर्तुम् । गर्जितं=मेघध्वनिः तद्वत् आडम्बराणाम्=गर्जनानाम् ["आडम्बरस्तूर्यरवे गजेन्द्राणां च गर्जिते" इत्यमरः] मिथ्या=अलीकं जलधरं=मेघम् । उपरि सर्वत्र रूपकं तच्च यथायथं श्लिष्टं परम्परितञ्च । आसीत्=अभवत् च अस्य=बाणस्य चेतसि=मनसि । नूनम्=अवश्यम्, अस्य=दर्पशातस्य निर्माणे=रचने, गिरयः=पर्वताः परमाणुतां=परमाणुत्वं ग्राहिताः=प्रापिताः । अन्यथा=इतरथा, कुतः कथम् इदं-गौरवम्=विशाल-कायत्वं दर्पशातस्य । दर्शनानुसारेण परमाणुभिः सृष्टिः जाता, ते च परमाः=अत्यन्ताः अणवः=अणुपरिमाणवन्तः अतिसूक्ष्माः इति यावत् सन्ति । अतिसूक्ष्मपरमाणुभिः दर्पशातस्य इदं विशालं शरीरं कथं निर्मीयेत अतः तन्निर्माणे गिरयः परमाणुभूताः इति भावः । विन्ध्यस्य=विन्ध्याचलस्य दन्तौ=दशनौ अर्थात् दर्पशातः विन्ध्य-पर्वतः तस्मिन् दन्तौ लग्नौ, अथवा अयम् आदि-वराहः =वराहावतारधारी विष्णुरित्यर्थः तस्मिन् करः=शुण्डः, दर्पशातः सदन्तः विन्ध्यः सकरो वा आदि-वराहः इति प्रतीयते स्मेति भावः । इति विस्मयमानम्=आश्चर्ये पतन्तम् एव तं=बाणं दौवारिकः=द्वारपालः अब्रवीत्=अकथयत् । **मिथ्यैवा०**—अत्र 'विद्विषां कथमपि स्मृति-पथम् आयातः नागेन्द्रः ··· मान ···नपि न सहते' इत्यस्ति वाक्यस्य मुख्यांशः । शिष्टपदानि 'विद्विषाम् इत्यस्य विशेषणानि । निः=न शेषः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा इति निःशेषं पूर्णतयेत्यर्थः नष्टां=नाशं गतां पराजये हारितामित्यर्थः श्रियं=राजलक्ष्मीं मनोरथानाम्=अभिलाषाणां शतैः शतशः मनोरथैरित्यर्थः मिथ्यैव=मुधैव आलिखतां=चित्रयतां हारितं राज्यं पुनः प्राप्तुमिच्छतामित्यर्थः, भूयः=अत्यन्तं चिन्ताभिः=साधनानां पुनाराज्यप्राप्त्युपायानां कल्पनाभिः=विचारैश्च आकुला=विह्वला धीः=बुद्धिः मनः इत्यर्थः येषां तथाभूतानाम् अथवा चिन्तायाः साधनैः=कारणीभूताभिः कल्पनाभिः आकुला धीः येषां तेषाम् शून्यीभवत्=उदासीभवत् चेतः=चित्तं येषां तेषां वने अरण्ये निवसतामित्यर्थः विद्विषां=शत्रूणां कथमपि=केनापि प्रकारेण स्मृतिपथं=स्मरणविषयताम् आयातः=आगतः अयं नागेन्द्रः=दर्पशातः मानसे=मानस-सरोवरे अन्यत्र मनसि गतान्=स्थितान् आशानां=दिशां गजेन्द्रान्=दिग्गजानित्यर्थः अन्यत्र आशाः=पुनः स्व-राज्य-प्राप्तेः वाञ्छाः गजेन्द्रा इवेत्युपमिततत्पु० गजवत् महतीः आशाः इत्यर्थः न सहते=न मर्षयति । अत्र प्रस्तुत-दर्पशातेन प्रस्तुतः हर्षदेवो

टिप्पणी—यह दर्पशात का वर्णन है, साथ ही श्री हर्षदेव के व्यक्तित्व का चित्रण भी है । श्लोक का शब्द-विन्यास दोनों ओर लग जाता है । मानस और आशा शब्दों का श्लेष इस बात को स्पष्ट कर देता है । 'प्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यङ्ग्यता में कुवलयानन्दकार के मतानुसार यहां प्रस्तुताङ्कुर अलंकार बनता है । छन्द शार्दूलविक्रीडित है—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूल-विक्रीडितम् ।

हिन्दी—हिमकाल था और मेघ-गर्जना-जैसी चिंघाड़ों का झूठा मेघ था । और इस (बाण) के मन में (विचार) हुआ—निश्चय ही इसके निर्माण में पहाड़ों को परमाणु बनाया होगा, नहीं तो यह विशालता कैसे ! यह आश्चर्य है ! विन्ध्याचल के दांत लग गए हैं, वराहावतार सूंड वाला बन गया है । इस तरह आश्चर्य में पड़े हुए ही उस (बाण) को द्वारपाल बोला—

'निःशेष नष्ट राजलक्ष्मी को फिर से हथियाने के, शत-शत अभिलाषाओं से व्यर्थ चित्र खींचते रहते, कल्पनाजनित चिन्ताओं से मन में भारी अकुलाये, शत्रु-वर्ग-भय से वन में इधर-उधर भटकते रहते

तदेहि । पुनरप्येनं द्रक्ष्यसि । पश्य तावद्देवम्' इत्यभिधीयमानश्च तेन मदजलपङ्किलकपोलपट्टपतितां मत्तामिव मदपरिमलेन मुकुलितां कथमपि तस्माद् दृष्टिमाकृष्य तेनैव दौवारिकेणोपदिश्यमानवर्त्मा समतिक्रम्य भूपाल-सहस्रसङ्कुलानि त्रीणि कक्ष्यान्तराणि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम्, दूरादूर्ध्वंस्थितेन प्रांशुना कर्णिकारगौरेण व्यायामव्यायतवपुषा शस्त्रिणा मौलेन शरीरपरिचारकलोकेन पङ्क्तिस्थितेन कार्तस्वरस्तम्भमण्डलेनेव परिवृतम्, आसन्नोपविष्टविशिष्टेष्टलोकम्, हरिचन्दनरसप्रक्षालिते तुषारशीकरशीतलतले दन्तपाण्डुरपादे शशिमय इव मुक्ताशैल-

---

टीका—व्यज्यते । तत् = तस्मात्कारणात्, एहि = आगच्छ । एनं = दर्पशातम् । देवम् = श्रीहर्षदेवम् । अभिधीयमानः = कथ्यमानः, मद-जलेन = दान-वारिणा पङ्किलः = पङ्कः + अस्ति अस्येति पङ्क इलच् (मतुबर्थीयः) इति पङ्किलः = कर्दम-युक्तः यः कपोलः पट्टः = फलकमिवेत्युपमिततत्पु० तस्मिन् पतितां = गतां मत्तां = समुपजातमत्तताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मदस्य परिमलेन = सौरभेण मुकुलितां = मुकुलावस्थां प्राप्ताम् अर्धनिमीलितामित्यर्थः दृष्टि = नयनं कथमपि = केनापि प्रकारेण तस्मात् = दर्पशातात् आकृष्य = अवकृष्य दौवारिकेण = द्वारपालेन उपदिश्यमानं = निर्दिश्यमानं वर्त्म = मार्गः यस्मै तथाभूतः । सुरा-पानेन मत्तः पुरुषोऽपि पङ्किल-प्रदेशे पतति, मुकुलित-चक्षुर्भवति, पतन-स्थानात् आकृष्यते मार्गश्च निर्दिश्यते । समतिक्रम्य = अतीत्य भूपालानां = राज्ञां सहस्रैः सङ्कुलानि = समाकीर्णानि कक्ष्याणां = प्रासादस्य वेष्टनावच्छिन्नप्रदेशानाम् अन्तराणि = मध्यानि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य = भुक्ते = भोजने भोजनान्तरमवस्थानस्येत्यर्थः आस्थानमण्डपस्य = सभा-मण्डपस्य पुरस्तात् = अग्रे अजिरे = प्राङ्गणे स्थितम्, एतत् इतः परमन्यानि च 'चक्रवर्तिनं हर्षम्' इत्यस्य विशेषणानि । दूरात्० ऊर्ध्वम् = अनतम् उद्ग्रीवं यथा स्यात्तथेत्यर्थः, अन्यत्र उच्चैः स्थितेन, प्रांशुना = उन्नतकायेन अन्यत्र प्रकृष्टाः अंशवः = किरणाः यस्य तेन कर्णिकारपुष्पवत् गौरेण = गौरवर्णेन व्यायामेन = अङ्ग-सञ्चालनादि-शारीरिक-श्रमेण व्यायतं = दृढं वपुः = शरीरं यस्य तेन, स्तम्भ-मण्डल-पक्षे व्यायामः = व्यामः करसहितयोः तिर्यक् ततयोर्भुजयोः परिमाणमित्यर्थः ['व्यामो बाह्वोः सकरयोः ततयोस्तिर्यगन्तरम्' इत्यमरः] तत्पर्यन्तं व्यायतं = लम्बं वपुः = आकारः यस्य तेन शस्त्रिणा = शस्त्रधारिणा अन्यत्र बद्धशस्त्रेण आलम्बितशस्त्रेण वा, मौलेन = मूलात् आगतेन, कुल-क्रमागतेनेत्यर्थः अन्यत्र मूले भवेन = मूलस्थितेन, मूलं = स्तम्भस्य पादः आधारः इत्यर्थः शरीरस्य परिचारकः = सेवकश्चासौ लोकः = जनः तेन, पङ्क्तौ = श्रेण्यां स्थितेन कार्तस्वरस्य = हेम्नः स्तम्भानां = स्थूणानां मण्डलेन = समूहेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, परिवृतं = परिवेष्टितम् । आसन्ने = समीपे उपविष्टाः = स्थिताः विशिष्टाः = सामान्येतरे, इष्टाः = प्रियाः लोकाः = जनाश्च यस्य तथाभूतम् । हरिचन्दन० हरिचन्दनस्य = उत्कृष्टसौगन्ध्यदायकस्य चन्दन-विशेषस्य रसेन = जलेन प्रक्षालिते = धौते, तुषारस्य = हिमस्य शीकरवत् = जलकणवत् शीतलं तलं = तलभागो यस्य तस्मिन्, दन्तेन = हस्ति-दन्तेन पाण्डुराः = श्वेताः पादाः यस्य तस्मिन्, शयनस्य पादाः हस्ति-दन्त-निर्मिताः आसन्, शशिपक्षे दन्तवत् पाण्डुराः पादाः किरणाः यस्य तस्मिन्, शशिः = चन्द्रः एव शशिमयः (स्वरूपार्थे मयट्) तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मुक्ताशलस्य = मौक्तिकपर्वतस्य यः शिला-पट्टः = शिला-फलकम् एव शयनं = शय्या तस्मिन् समुपविष्टं = स्थितम् । शयनीयस्य = शयनस्य [शय्यते अत्र इति अधिकरणार्थे अनीयर्] पर्यन्ते = प्रान्त-भागे विन्यस्ते स्थापिते भुजे बाहौ समर्पितः = दत्तः निहितः इत्यर्थः सकलस्य विग्रहस्य = शरीरस्य भारः येन तम् । विङ्मुख०

हिन्दी—पर याद जब किसी तरह इसकी उनको है आ जाती, भूल-भाल सब सपने मन में खाली-खाली रह जाते,
नागेन्द्र नहीं सह सकता आशा गज-राजों को भी, जो अतिशय बड़े-बड़े हैं मानस में रहते होते ॥

तो आओ, इसे फिर भी देख लोगे । पहले महाराज के दर्शन कीजिए । इस प्रकार उस (द्वारपाल) के द्वारा कहा जाता हुआ, मद-जल से मैले बने हुए (दर्पशात) के कपोल फलक पर पड़ी हुई मद-मत्त-जैसी मद के सौरभ से अधमीची दृष्टि को किसी तरह उस (दर्पशात) से खींच कर उसी द्वारपाल द्वारा मार्ग दिखाया जाता हुआ (बाण) हजारों राजाओं से खचाखच भरे पड़े महल के तीन कोठों को पार करके चौथे में भोजनोपरान्त बैठने के हॉल-कमरे के सामने वाले आंगन में बैठे हुए चक्रवर्ती हर्ष को देख बैठा—जो (कुछ) दूरी पर ऊँचे, तेज-किरणों वाले, कर्णिकार के समान स्वच्छ, टेढ़े तने हुए दो हाथों की लम्बाई के (अर्थात् छः फीट लम्बे) शस्त्रों से सनाथ, अपने आधारों पर टिके पङ्क्तिबद्ध सोने के खम्भों-जैसे लग रहे सीधे खड़े हुए, ऊँचे कद के कर्णिकार जैसे गौर वर्ण के व्यायाम से दृढ़ देह वाले शस्त्र धारण किये, कुल-परम्परा से चले आ रहे श्रेणी-बद्ध अङ्ग सेवक लोगों से घिरा हुआ था, जिसके आस-पास बड़े-बड़े लोग बैठे हुए थे, जो हरिचन्दन के जल से धुले हुए हिम-

शिलापट्टशयने समुपविष्टम्, शयनीय[illegible]भुजे दिङ्मुखविसर्पिणि, देहप्रभाविताने विततमणिमयूखे घर्मसमयसुभगे सरसीव मृदुमृणालजालजटिलजले सराजकं रममाणम्, तेजसः परमाणुभिरिव केवलं निर्मितम्, अनिच्छन्तमपि[1] बलादारोपयितुमिव सिंहासनं सर्वावयवेषु सर्वलक्षणैर्गृहीतम्, गृहीतब्रह्मचर्यमालिङ्गितं राजलक्ष्म्या, प्रतिपन्नासिधाराधारणव्रतमविसंवादिनं राजर्षिम्, विषमराजमार्गविनिहितपदस्खलनभियेव सुलग्नं धर्मे,

---

टीका—दिङ्-मुखेषु=दिशानां भागेषु विसर्पिणि=प्रसरणशीले व्यापिनीत्यर्थः वितताः=प्रसृताः मणीनां=रत्नानां मयूखाः=किरणाः यस्मिन् तस्मिन् देहस्य प्रभायाः=कान्त्याः विताने=विस्तारे अथवा उल्लोचे, घर्म-समये=ग्रीष्म-समये सुभगे=रमणीये, मृदूनि=कोमलानि यानि मृणालानां=विसानां जालानि=तन्तु-जालानि तैः जटिलानि=सङ्कुलानि जलानि यस्मिन् तथाभूते सरसि=सरोवरे इव सराजकम्=राज्ञां समूहः इति राज+वुञ् [पा० ४।२।३९] तेन सह वर्तमानं यथा स्यात्तथा रममाणं=क्रीडन्तम्। केवलैः=एकमात्रैः तेजसः=तेजस्तत्त्वस्य परमाणुभिः इव निर्मितं=घटितम्। **अनिच्छ०** अनिच्छन्तम्=अकामयमानम् अपि बलात्=हठात्, सिंहासनं=राजसिंहासनम् आरोपयितुम्=आरोढुं प्रेरयितुम् इव सर्वावयवेषु=सर्वाङ्गेषु सर्व-लक्षणैः=सर्वराज-चिह्नैः गृहीतं=कलितम् अथवा स्वीकृतम् हर्षे सर्व-चक्रवर्ति-चिह्नानि आसन्, अतः राज्यमनिच्छन् अपि स राज-चिह्नैः बलात् राज्ये आरोपयितुम् कलितः इव। अन्यत्रापि कश्चित् अनिच्छन्नपि लोकैः बलात् गृहीत्वा क्वचित् आरोप्यते इति पश्यामः। गृहीतं ब्रह्मचर्यम्=अदारग्रहणव्रतं येन तथाभूतम्, राजलक्ष्म्या च आलिङ्गितम्=आश्लिष्टम्, अत्र ब्रह्मचर्यं लक्ष्म्यालिङ्गनञ्चेति विरोधः, तत्परिहारस्तु गृहीता ब्रह्मणः=वेदस्य चर्या=शीलनं येन तम् अथ च राज-लक्ष्म्या=राजधन-सम्पत्त्या आलिङ्गितं=युक्तम्। **प्रतिपन्ना०** प्रतिपन्नं=स्वीकृतम् असि-धारायाः=खड्गधारायाः धारणस्य व्रतं=नियमः येन तम्—अर्थात् तेन नित्यं हस्ते खड्गधारण-नियमः कृतः, तथापि अविसंवादिनम्=विसंवादः=असङ्गतिः विरोधः इति यावत् अस्यास्तीति विसंवादी न विसंवादी इत्यविसंवादी=अविरुद्धः तम्, राजा चासौ ऋषिः तम्, अत्र यः खड्ग-धाराधारणव्रती स ऋषिः इति विरोधः ऋषीणां खड्गेन प्रयोजनाभावात् तत्परिहारस्तु प्रतिपन्नेषु=रक्षार्थं शरणमागतेषु=रक्षार्थं प्रार्थयमानानां विषये इत्यर्थः असिधाराव्रतिनम्, अथ च राजा ऋषिः इवेति राजर्षिः तम् 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' खड्गधारणे ऋषितुल्यजीवने च न कोऽपि विरोधः। **विषम०**—विषमः=असमः, कठिनश्च यः राजमार्गः=घण्टा-पथः अथ च राज-कर्तव्यम् तस्मिन् विनिहितं=स्थापितं पदं=चरणः, अथ च स्थानम् तस्य स्खलनं=पतनम् अथ च च्युतिः तस्य भिया=भयेन इवेत्युत्प्रेक्षा सा चोपमानुप्राणिता धर्मे=धर्मानुष्ठाने सुलग्नं=सम्यग्व्यापृतम्। यथा कश्चित्

टिप्पणी—**दिङ्-मुख०** कवि का आशय यह है कि उसके शरीर का तेज चारों ओर फैल रहा था और साथ ही उसमें रत्नाभरणों की छटा भी मिली हुई थी। इससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह स्वाधीन राजाओं सहित मृणाल-सूत्रों से भरे सरोवर में जल-विहार कर रहा हो। गर्मियों में सरोवर में नहाना अच्छा लगता है। राजा का तेज बना पानी और मणिमयूख बने मृणाल-सूत्र। **अनिच्छन्तम्०**—कॉवल और थामस के विचारानुसार यहां इस तथ्य की ओर संकेत है कि किसी बोधिसत्त्व के परामर्श पर हर्षवर्धन राज-सिंहासन पर नहीं बैठना चाहते थे जैसे कि ह्यूं-सांग के विवरणों से भी सिद्ध होता है परन्तु हमारा विचार ऐसा नहीं है, क्योंकि यहां तो कवि केवल उत्प्रेक्षा ही में कहा जा रहा है, तथ्य नहीं रख रहा है।

हिन्दी—जल-कणों की तरह शीतल तल वाले, (हाथी) दांत के बने पावों वाले, दांत-जैसे श्वेत किरणों से युक्त, चन्द्र स्वरूप जैसे मौक्तिक-पर्वत के शिला-पट्ट के पर्यंक पर लेटा हुआ था, पर्यंक के किनारे पर धरी हुई भुजा पर सारे शरीर का भार दिये हुए था, जो मणियों की विस्तृत-किरणों से युक्त देह के दिशा-भागों में फैलने वाले तेज समूह के मध्य ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गर्मियों में अच्छे लगने वाले, कोमल मृणाल-तन्तु-समूह से भरे जल वाले सरोवर में राजाओं सहित (जल-)विहार कर रहा हो, जिसे (राज्य) न चाहते हुए भी मानो सभी अङ्गों में (विद्यमान) सभी (राज) चिह्नों ने बलात् सिंहासन पर बिठाने के लिए पकड़ रखा था, जिसे ब्रह्मचर्य रखे हुए (भी) राजलक्ष्मी ने आलिङ्गन कर रखा था, जिसमें खड्ग-धारा धारण करने का व्रत रखे हुए (भी) राजर्षि बने रहने में (कोई) विसंगति नहीं थी, जो ऊबड़-खाबड़ जन-पथ पर धरे पैर के फिसल जाने के भय से जैसे दुरूह राजनीतिक

---

१. अनिच्छन्तं बला०।

सकलभूपालपरित्यक्तेन भीतेनेव लब्धवाचा सर्वात्मना सत्येन सेव्यमानम्, आसन्नवारविलासिनीप्रतिमाभिश्चरण-नखपातिनीभिर्दिग्भिरिव दशभिः प्रणम्यमानम्, दीर्घदिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृतमिव प्रत्यवेक्ष-माणम्, मणिपादपीठपृष्ठप्रतिष्ठितकरेणोपरिगमनाभ्यनुज्ञां मृग्यमाणमिव दिवसकरेण, भूषणप्रभासमुत्सारणबद्धपर्यन्त-मण्डलेन प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव दिवसेन, अप्रणमद्भिर्गिरिभिरपि[1] दूयमानं शौर्योष्मणा, फेनायमानमिव[2] चन्दन-धवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तम्, एकराज्यौर्जित्येन[3] निजप्रतिबिम्बान्यपि नृपचक्रचूडामणिधृतान्यसहमानमिव वपुः-

---

टीका—विषम-मार्गे गच्छन् पतन-भीत्या दण्डमवलम्बते तथैव हर्षोऽपि राज-नीतौ कर्तव्य-भ्रंशमाशङ्कमानः धर्ममालम्बते स्मेति भावः, इदमेव तस्य राजर्षित्वम् । सकल०—सकलैः=सर्वैः भूपालैः=राजभिः परित्यक्तेन=वर्जितेन भीतेन=त्रस्तेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लब्धा=प्राप्ता वाक्=रक्षणरूप-वचनं येन तेन सर्वात्मना=पूर्णतया सत्येन सत्यगुणेन सेव्य-मानम्=आश्रियमाणम्, अर्थात् सत्यं सर्वराजभिः परित्यक्तमासीत् अतः अयमपि मां न परित्यजेत् भयात् तस्मात् स्व-रक्षा-वचनं प्राप्य तमेवाश्रितवान् । हर्षः अतिसत्यवादी आसीदिति भावः । आसन्न०—आसन्नाः=संनिहिताः परि-चर्यार्थमिति शेषः याः वारविलासिन्यः=वाराङ्गनाः तासां प्रतियातनाभिः=प्रतिच्छायाभिः ('प्रतियातना प्रतिच्छाया' इत्यमरः) चरणयोः=श्रीहर्षस्य पादयोः ये नखाः=दशाङ्गुली-नखाः तेषु पतन्तीति पातिन्यः ताभिः दशभिः दिग्भिः=दिशाभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रणम्यमानं वन्द्यमानम् । दीर्घैः० दीर्घैः=आयतैः दिगन्तेषु=दिशाप्रान्तेषु पतन्तीति पातिनः तैः दृष्टि-पातैः=अवलोकनैः लोकपालानाम्=इन्द्रादिदिक्पालानां कृतञ्च अकृतञ्च तयोः समाहारः इति कृता-कृतम् प्रत्यवेक्ष्यमाणं=परीक्ष्यमाणम् । मणिपाद०—मणिमयं यत् पादपीठं=चरणासनं तस्य पृष्ठे=उपरीत्यर्थः । प्रति-ष्ठिताः=प्रतिबिम्ब-रूपेण स्थिताः कराः=किरणाः एव कराः=हस्ताः यस्य तेन दिवसकरेण=सूर्येण उपरि=आकाशे गमनस्य अभ्यनुज्ञाम्=अनुमतिं मृग्यमाणं=प्रार्थ्यमानम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । अन्योऽपि आज्ञां प्रार्थयमानः चरणयोः कर--स्पर्शं करोति । भूषण०—भूषणानाम्=आभरणानां या प्रभा=कान्तिः तया समुत्सारणेन=निस्सारणेन बद्धं कृतं पर्यन्ते=प्रान्तभागे मण्डलं=वृत्तं येन तथाभूतेन दिवसेन=दिनेन प्रदक्षिणी-क्रियमाणं=परिक्रम्यमाणमिवेत्यु-त्प्रेक्षायाम् । अयं भावः—तीव्रा खल्वाभरण-च्छटा दिवस-प्रकाशं भूपालतः किमपि दूरमपसारयति स्म, दूरतः भूपालं परितः मण्डलाकारेण वेष्टयन् च दिवसः तं प्रदक्षिणीकुर्वन् इव प्रतीयते स्म । अप्रणम०—शौर्यं=विक्रमः एव ऊष्मा=उष्णता तेन अप्रणमद्भिः=तं प्रति न नमद्भिः गिरिभिः=पर्वतैः अपि दूयमानं=खिद्यमानम् अर्थात् तस्य महद् दुःखं भवति स्म यन्नराः भूभृत इव कुतो न सर्वतः ममाग्रे नमन्ति । फेनाय०—फेनम् उद्वमतीति फेन+क्यङ्+शानच् [फेनाच्चेति वक्तव्यम्] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, चन्दनेन=चन्दनलेपेन धवलं=श्वेतं लावण्यं=सौन्दर्यम् एव जलधिः=समुद्रः तम् उद्वहन्तं=धारयन्तम् । अयमाशयः—यत् लावण्यपूर्णदेहः ग्रीष्म-तापोपशमनाय धृतचन्दनः स सलवण-फेनिल-समुद्रः इव प्रतीयते स्म । अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा । एकराज्यौ०—एकराज्यम्=ऐकाधिपत्यम् एक-मात्रशासकत्वमिति यावत् तस्य और्जित्येन=ऊर्जितस्य=महतः भावः इति और्जित्यं=महिमा तेन, नृपाणाम् अधीनी-भूतानां राज्ञां यत् चक्रं=मण्डलं तस्य चूडामणिषु शिरोभूषणेषु धृतानि=भृतानि निजानि=स्वकीयानि प्रतिबिम्बानि=

हिन्दी—कार्यों में प्रवेश की स्थिति में (अपने) कर्तव्य-भ्रंश से मानो भय खा कर धर्म में अच्छी तरह लगा हुआ था, जिसकी सभी भूपालों द्वारा परित्यक्त किये गए (अत एव) भयभीत-जैसे (श्री-हर्ष से रक्षा का) वचन प्राप्त किये हुए सत्य द्वारा पूरी तरह सेवा की जा रही थी, जो पैरों के (दस) नखों में पड़ी हुई आस-पास की वाराङ्गनाओं की परछाइयों से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दस दिशाएं उसे प्रणाम कर रही हों, जो दूर दिगन्तों तक जाने वाले दृष्टि-पातों से लोक-पालों द्वारा किये और न किये गए कार्यों की मानो जांच-पड़ताल कर रहा था, जिससे मणि के चरण पीठ पर पड़ी कर (किरण) रूपी करों (हाथों) से सूर्य मानो ऊपर जाने की अनुमति मांग रहा था, जिस की भूषण-कान्ति द्वारा पीछे हटाए जाने के कारण चारों ओर गोल चक्र बनाए हुए दिवस मानो परिक्रमा कर रहा था, जो शौर्य के ताप से नीचे न झुकते हुए भूभृतों (पर्वतों) से भी उद्विग्न हो रहा था, जो फेन-जैसे छोड़ते हुए चन्दन से धवल बने लावण्य-रूपी समुद्र को धारण कर रहा था, जो एक-छत्र शासक होने के गौरव

---

१. गिरिभिरपि भूभृद्भिः   २. कल्पचन्दन० ।
३. राज्यौर्जितेन ।

खासिकया चामरानिलनिभेन बहुधेव श्वसन्तीं राजलक्ष्मीं दधानम्, सकलमिव चतुःसमुद्रलावण्यमादायोत्थितया श्रिया समुपश्लिष्टम्, आभरणप्रभाजालजायमानानीन्द्रधनुःसहस्राणीन्द्रप्राभृतप्रहितानि विलभमानमिव राज्ञाम्, सम्भाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतमप्यमृतमुद्वमन्तम्, विस्रम्भभाषितेष्वनाकृष्टमपि हृदयं दर्शयन्तम्, प्रसादेषु निश्चलामपि श्रियं स्थाने स्थाने स्थापयन्तम्, वीरगोष्ठीषु पुलकितेन कपोलस्थलेनानुरागसन्देशमिवोपांशु रणश्रियः शृण्व-

---

टीका—प्रतिच्छायाः अपि असहमानं=न क्षममाणम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अर्थात् प्रणत-राज-मुकुट-मणिषु पतितं स्वप्रतिबिम्बमपि स नासहत किमुत राजभिः शिरसि धृतम् अन्यं भूपतिम्। दर्पदुःखा०—दर्पकृता, दर्पभङ्गकृतेत्यर्थः या दुःखासिका=दुःखं यथा स्यात्तया आसते अस्यामिति अथवा दुःखम् असिः एव असिका इवेत्युपमिततत्पु० तया चामराणाम् अनिलस्य=मारुतस्य निभेन=व्याजेन, बहुधा इव=बहुवारमिव श्वसन्तीं=दीर्घनिश्वासमुत्सृजन्तीं राजलक्ष्मीं=राजश्रियम् अन्यभूपानामित्यर्थः दधानं=बिभ्राणम्। अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षा। सकलमिव—सकलं=समग्रम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चत्वारश्च ते समुद्राः=सागराः तेषां लावण्यं=लवणत्वमेव लावण्यं=सौन्दर्यम् आदाय=गृहीत्वा उत्थितया=उद्गतया श्रिया=लक्ष्म्या समुपश्लिष्टम्=आलिङ्गितम्। आभरण०—आभरणानां=भूषणानां प्रभा-जालेन=कान्तिसमूहेन जायमानानि=उत्पद्यमानानि इन्द्रधनुषाम्=इन्द्रचापानां सहस्राणि, इन्द्रेण=शक्रेण प्राभृते=उपहारे प्रहितानि=प्रेषितानि राज्ञाम्=अधीनीकृतनृपाणां मध्ये विलभमानं=विभज्यमानम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, इन्द्रोऽपि हर्षाय प्राभृतानि प्रेषयति स्मेति व्यज्यते, प्राभृतम्=प्रकर्षेण आराधनार्थम् आभ्रियते=ढौक्यते स्मेति क्षीरस्वामी। सम्भाषणेषु=वार्तालापेषु परित्यक्तम्=उज्झितम् अपि मधु=मद्यं वर्षन्तं=प्रवाहयन्तम्, यः खलु त्यक्तमधुः स कथं मधु वर्षतीति विरोधः तत्परिहारश्च मधु=मधुररसः माधुर्यमिति यावत् मधुरभाषिणमित्यर्थः काव्यकथासु=काव्य-विषयकालोचनेषु अपीतम्=अपानविषयीकृतम् अपि अमृतं=सुधारसम् उद्वमन्तम्=उद्गिरन्तम्, अमृतं देवा एव पिबन्ति न तु मानवाः अतः तदुद्वमनं कथमिति विरोधः तत्परिहारश्च अमृतम्=अमृततुल्यमधुरकाव्यमिति, विस्रम्भः=विश्वासः तस्य भाषितेषु=विश्वस्तवार्तालापेषु इत्यर्थः अनाकृष्टं=शरीराद् बहिर्न समाकृष्टम् अपि हृदयं दर्शयन्तं=प्रकटयन्तम्, अत्र शब्दस्य हृदयगताशयार्थत्वे विरोध-परिहारः। अर्थात् स निष्कपटः आसीत्। निश्चलां=स्थिरां लक्ष्मीम्=राज्यश्रियम् अपि, अन्येषु राजसु इव हर्षे राज्यश्रीः अस्थिरा नासीत् इत्याशयः, प्रसादेषु=अनुग्रहेषु स्थाने-स्थाने स्थापयन्तम्=विन्यस्यन्तम् अस्थिरीकुर्वन्तमित्यर्थः, अत्र लक्ष्मीं=सम्पदम्, स्थाने-स्थाने=पात्रे-पात्रे अनुग्रहं कृत्वा ददानमित्यर्थे विरोध-परिहारः। वीराणां गोष्ठीषु सभासु पुलकितेन=रोमाञ्चितेन कपोलस्थलेन=गण्डस्थलेन अनुरागस्य=प्रणयस्य संदेशं=वाचिकम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपांशु=एकान्ते रणस्य=युद्धस्य श्रियं=विजय-श्रियं शृण्वन्तम्=आकर्णयन्तम्, अयमाशयः युद्धे स्ववीरभटानां विजयमुपलभ्य हर्षः हर्षेण रोमाञ्चितोऽभूत्। विजयवृत्तान्ते विजयश्रियः प्रणय-संदेशत्वं कविरुत्प्रेक्षते, प्रणय-संदेशे रोमाञ्चः स्वाभाविकः। अतिक्रान्त०—अतिक्रान्ताः=अतीताः ये

टिप्पणी—सकलमिव—समुद्र-मन्थन में एक ही समुद्र से लक्ष्मी निकली जो विष्णु ने ले ली थी, किन्तु हर्ष चारों समुद्रों की लक्ष्मी (लावण्य) लिये हुए था। इससे हर्ष का विष्णु से भी उत्कर्ष सिद्ध होता है। यहां व्यतिरेकालङ्कार है।

हिन्दी—से मानो नृप-मण्डली की चूड़ामणियों द्वारा धारण किये हुए अपने प्रतिबिम्बों को भी सहन नहीं कर रहा था, जो चाँवरों की पवन के बहाने मानो दर्प के कारण हुई तीव्र वेदना से बहुधा सांसे छोड़ती हुई राज-लक्ष्मी को धारण कर रहा था, जो चारों समुद्रों का सारा-का सारा-जैसा लावण्य लेकर निकली हुई लक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित था, जो इन्द्र द्वारा उपहार में भेजे हुए-जैसे आभरणों के छटा-समूह से उत्पन्न हो रहे इन्द्र-धनुषों को राजाओं में बांट रहा था, जो न पिये हुए अमृत [१. सुधा २. अमृत तुल्य कविता] को भी काव्य की आलोचनाओं में उगल रहा था, जो स्थिर हुई लक्ष्मी [१. राज्यश्री २. धन-सम्पदा] को भी पात्र-पात्र में अनुग्रह के समय स्थानान्तरित करता रहता था, जो वीर-पुरुषों की गोष्ठियों में रोमाञ्चित हुए कपोल-स्थल से युद्ध की विजयश्री का प्रणय संदेश-जैसा सुना करता था, जो वीरों के बीते हुए युद्धों की बातचीत में तेल-वृष्टि-जैसे प्रेम-दृष्टि को कृपाण पर डाल रहा था, जो परिहासों में हुई मुस्कराहटों में दन्त-किरणों द्वारा विपुल प्रताप से भयभीत राज-समूह को शुद्ध-हृदय का भाव कह रहा था, मानो वह स्वच्छ जलाशय हो, जो सारे लोगों के हृदयों में रहता हुआ भी न्याय पर टिका रहता था, जो गुणों

न्तम्, अतिक्रान्तसुभटकलहालापेषु स्नेहवृष्टिमिव दृष्टिमिष्टे कृपाणे पातयन्तम्, परिहासस्मितेषु गुरुप्रतापभीतस्य राजकस्य स्वच्छमाशयमिव दशनांशुभिः कथयन्तम्, सकललोकहृदयस्थितमपि न्याये तिष्ठन्तम्, अगोचरे गुणानामभूमौ सौभाग्यानामविषये वरप्रदानानामशक्य आशिषाममार्गे मनोरथानामतिदूरे दैवस्यादिक्ष्युपमानानामसाध्ये धर्मस्यादृष्टपूर्वे लक्ष्म्या महत्त्वे स्थितम्, अरुणपादपल्लवेन सुगतमन्थरोरुणा वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन वृषस्कन्धेन भास्वद्बिम्बाधरेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन कृष्णकेशेन वपुषा सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तम्, अपि च मांसलमयूखमा-

---

सुभटानां=वीराणां कलहाः=सङ्ग्रामाः तेषां सम्बन्धे आलापेषु=संलापेषु स्नेहस्य=प्रेम्णः अथ च तैलस्य वृष्टि=वर्षम् इवेत्युत्प्रेक्षायां दृष्टिम् इष्टे=प्रिये कृपाणे=खड्गे पातयन्तम्=कुर्वन्तमित्यर्थः। परिहासेषु=नर्मसु यानि स्मितानि=मन्द-हासाः तेषु, गुरुः=प्रकृष्टः यः प्रतापः=तेजः तस्मात् भीतस्य=त्रस्तस्य राजकस्य=राजसमूहस्य स्वच्छं=निर्मलम् आशयं=मनोभावम् अन्यत्र जलाशयमिवेत्युत्प्रेक्षायाम् दशनानां=दन्तानाम् अंशुभिः=किरणैः कथयन्तं=प्रतिपादयन्तम्, सकलाः=सर्वे च लोकाः=जनाः तेषां हृदये=मनसि स्थितम् अपि न्याये=नये तिष्ठन्तम्, हृदये स्थितः कथं न्याये तिष्ठेत् इति विरोधः तत्परिहारस्तु न्याये स्थितं=दृढतया न्याय-मार्गमनुसरन्तमिति। **अगोचरे०**—अगोचरे, अभूमौ, अविषये अमार्गे, अतिदूरे, अदिशि=एते शब्दाः समानार्थकाः एव एकैकशश्च, स्थितम् इत्यनेन सम्बद्धाः, अगोचरे=अविषये, गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनां स्थितम् अर्थात् सर्वगुणसम्पन्ने तस्मिन् कस्यापि गुणस्याभावः नासीत्, तस्मात् को नाम गुणः तमुपगम्य सर्वगुणपूर्णं कुर्यात्? एवं सौभाग्येष्वपि योज्यम्। अविषये वरप्रदानानाम् अर्थात् कोऽपि वरः तम् अधिकसम्पन्नं कर्तुं न क्षमः तस्य स्वतः सम्पन्नतमत्वात्, अदिशि उपमानानाम्, तस्य अनुपमत्वात्, असाध्ये धर्मस्य अर्थात् किमपि वस्तु तादृशं नासीत् यत् धर्मः तस्मिन् आपादयेत्। लक्ष्म्याः=कान्तेः अथवा सम्पत्तेः अदृष्टपूर्वे=न पूर्वं दृष्टे, अभूतपूर्वे इत्यर्थः महत्त्वे=विशालत्वे स्थितम्। **अरुण०**—इत्यारभ्य कृष्णकेशेन इत्यन्तं श्लेषः, एकोऽर्थः हर्ष-वपुषि अपरश्च देवतायां लगति हर्षे सर्वदेवतावतारत्वमुत्प्रेक्ष्यते तद्यथा—अरुणाः=रक्तवर्णाः पादपल्लवाः यस्य, अन्यत्र अरुणः=सूर्य-सारथिः पाद-पल्लवे यस्य तेन सुगतौ=शोभनगतियुक्तौ मन्थरौ=मन्दगामिनौ च ऊरू=सक्थिनी यस्य अन्यत्र सुगतः=बुद्धः मन्थरयोः=ऊर्वोः यस्य तेन, वज्रम्=अशनिः यत् आयुधम्=अस्त्रं तद्वत् निष्ठुरं=कठोरं प्रकोष्ठस्य=भुजाग्रस्य पृष्ठं=तलं यस्य, अन्यत्र वज्रम् आयुधं यस्य सः इन्द्रः निष्ठुरे प्रकोष्ठ-पृष्ठे यस्य तेन, वृषस्य=बलीवर्दस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य, अन्यत्र वृषः=धर्मः यथोक्तं मनुना—'वृषो हि भगवान् धर्मः'; भास्वान्=दीप्तिमान् बिम्बवत्=बिम्बफलवत् अधरः=अधरोष्ठः यस्य, अन्यत्र भास्वान्=सूर्यः तस्य बिम्बं=मण्डलम् अधरे यस्य तेन प्रसन्नं=प्रसाद-पूर्णम् अवलोकितम्=अवलोकनं यस्य, अन्यत्र प्रसन्नः=अनुकूलः अवलोकितः=अवलोकितेश्वरः कश्चिद् बोधिसत्त्व-विशेषः यस्य तेन, कृष्णाः केशाः यस्य, अन्यत्र कृष्णः=कृष्णभगवान् केशेषु यस्य तेन, चन्द्रवत् मुखं यस्य यत्र वा, अन्यत्र चन्द्रः मुखे यस्य तेन वपुषा=देहेन सर्वाश्च ता देवताः तासाम् अवतारम्=अवतरणम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, एकत्र=एकस्यां व्यक्तौ आत्मनीत्यर्थः, दर्शयन्तं=प्रकटयन्तम्, **मांसल०**—मांसलाः=सान्द्राः याः मयूखानां=किरणानां मालाः=पङ्क्तयः ताभिः मलिनितं=मलिनीकृतं महीतलं=भूतलं येन तस्मिन् महार्हे

टिप्पणी—स्नेहवृष्टिमिव०—उसकी दृष्टि विजय दिलाने वाली कृपाण पर पड़ जाया करती थी। दृष्टि पर स्नेह वृष्टि की उत्प्रेक्षा की गई है। स्नेह शब्द श्लिष्ट है जो प्रेम और तेल अर्थों का अभिधान करता है। युद्ध में खून-सनी कृपाण पर स्नेह-वृष्टि=तेल-सिञ्चन करते हैं जिससे वह साफ हो जाए, जंक न लगे। **परिहास०**—स्मित में उसकी दन्त-किरण भयभीत राजाओं को उसकी सदाशयता प्रकट कर देती है, प्रकृष्ट-ताप से डरे हुए को भी जलाशय दिखाने से शान्ति मिलती है।

हिन्दी—से परे, सौभाग्यों से दूर, वरदानों से अप्राप्तव्य, आशिषों के बाहर, मनोरथों के मार्ग से परे, भाग्य की पहुंच से बहुत दूर, उपमानों की दिशा से बाहर, धर्म द्वारा असाध्य पहले कभी न देखे हुए लक्ष्मी के प्रकर्ष में स्थित था, जो अरुण (लाल) पाद-पल्लवों में अरुण (सूर्य-सारथि) को सुगत (अच्छी गति वाले) और मंथर जांघों में सुगत (बुद्ध) को, वज्रायुध की तरह कठोर भुजाग्र के पिछले हिस्से में वज्रायुध (इन्द्र) को, वृष (सांड) के जैसे कन्धों में वृष (धर्म) को, भास्वान् (चमकीले) बिम्बाधर में भास्वान् (सूर्य) को, प्रसन्न अवलोकित (दृष्टि) में अवलोकित (अवलोकितेश्वर) को, चन्द्रमा-जैसे मुख में चन्द्रमा को और कृष्ण (काले) बालों में कृष्ण (भगवान्) को रखे हुए, शरीर से मानो एक ही में सभी देवताओं का अवतार दिखा रहा था, अपि च जो घने किरण-समूह से भूतल

लामलिनितमहीतले महति महार्हे माणिक्यमालामण्डितमेखले महानीलमये पादपीठे कलिकालशिरसीव सलीलं विन्यस्तवामचरणमाक्रान्तकालियफणाचक्रवालं बालमिव पुण्डरीकाक्षम्, क्षौमपाण्डुरेण चरणनखदीधितिप्रतानेन प्रसरता महीं महादेवीपट्टबन्धेनेव महिमानमारोपयन्तम्, अप्रणतलोकपालकोपेनेवातिलोहितौ सकलनृपतिमौलिमालास्वतिपीतं पद्मरागरत्नातपमिव वमन्तौ सर्वतेजस्विमण्डलास्तमयसंध्यामिव धारयन्तावशेषराजकशेखरकुसुममधुरसस्रोतांसीव स्रवन्तौ समस्तसामन्तसीमन्तोत्तंसस्रक्सौरभभ्रान्तैर्भ्रमरमण्डलैरमित्रोत्तमाङ्गैरिव मुहूर्तमप्यविरहितौ संवाहनतत्पराया:

टीका——=बहुमूल्ये माणिक्यानां=पद्मरागाणां मालया मण्डिता=भूषिता मेखला=केन्द्र-भागा: इत्यर्थ: यस्य तस्मिन् महानीलमये=महानीलमणिरूपे पाद-पीठे=चरणासने, कलि:=कलि-युगं तस्य काल:=समय: तस्य शिरसि=शीर्षे इवेत्युत्प्रेक्षायां सलीलं=लीलया सहितं यथा स्यात्तथा विन्यस्त:=स्थापित: वामचरण:=वामपाद: येन तम्, आक्रान्तम्=अधिष्ठितं कालियस्य=एतदाख्य-नागस्य फणानां=फटानां चक्रवालं=समूह: येन तं बालं=बालक-रूपं पुण्डरीकाक्षं=कृष्णम् इवेत्युपमायाम् । पुण्डरीकवत् अक्षिणी यस्य तमिति विशेषणं हर्षेऽपि योज्यम्, क्षौमवत्=शाण-वस्त्रवत् पाण्डुरेण=श्वेत-पीतेन [प्रतान-पक्षे] क्षौमेण पाण्डुर: तेन [पट्टबन्ध-पक्षे] चरणयो:=पादयो: नखानां=नखराणां या दीधितय:=किरणा: तासां प्रतानेन=विस्तारेण महीं=पृथिवीम्, महादेव्या:=पट्टराज्या: पट्ट-बन्धेन=मुकुटेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् महिमानं=गौरवम् आरोपयन्तं प्रतिष्ठापयन्तं, मह्यां पतत् तन्नख-किरण-जालं राज्ञा तस्या: शिरसि बद्धं महाराज्ञी-पदसूचकचिह्नं क्षौम-मुकुटमिव लगति स्मेत्यर्थ: । **अप्रणत०**—इत आरभ्य चिह्नौ इति यावत् चरणौ इत्यस्य विशेषणानि, अप्रणता:=हर्षाय अकृत-प्रणामा: ये लोकपाला:=इन्द्रादयोऽष्टदिक्पाला: तेषु य: कोप: =क्रोध: तेनेवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अतिलोहितौ=अतिरक्तौ, चरणयो: स्वत: लोहितत्वेऽपि कोपजनितलोहितत्वमुत्प्रेक्षितम् । **सकल०**—सकलाश्च ते नृपतय:=राजान: तेषां मौलि-मालासु=मुकुटपङ्क्तिषु अतिशयेन अत्यन्तं पीतम्=पीतवर्णं पद्मरागाणां=शोण-रत्नानाम् आतपं=द्योतम् इवेत्युत्प्रेक्षायां वमन्तौ=उद्गिरन्तौ । **सर्व०** सर्वे च ते तेजस्विन: =प्रतापिन: वीरा: इति यावत् अथ च सूर्यादि-ज्योतिष्पिण्डा: तेषां मण्डलस्य=समूहस्य अथ च बिम्बस्य य: अस्तमय:=अवसानम् अथ च अस्तङ्गमनं तस्य सन्ध्यां=सन्ध्याकालम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् धारयन्तौ=दधानौ, **अशेष०**—अशेषं=समस्तं यद् राजकं=राज्ञां समूह: तस्य शेखरेषु शिरोमालासु यानि कुसुमानि=पुष्पाणि तेषु ये मधु-रसा:=मकरन्दा: तेषां स्रोतांसि=प्रवाहान् इवेत्युत्प्रेक्षायां स्रवन्तौ=प्रवाहयन्तौ स्वत: लोहितौ चरणौ प्रणत-भूपशेखर-कुसुम-पतित-मधु-रसं प्रवाहयन्तौ इव प्रतीयेते स्म इति भाव: । **समस्त०**—समस्ता:=समग्रा: ये सामन्ता: =अधीन-भूपाला: तेषां सीमन्तेषु=केश-विन्यासेषु उत्तंसा:=शेखरा: ["पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरेऽपि शेखर:" इत्यमर:] या: स्रज:=पुष्पमाला: तासां सौरभे=परिमले भ्रान्तै:=कृत-भ्रमणै: भ्रमर-मण्डलै: मधुकर-समूहै: अमित्राणां=शत्रूणाम् उत्तमाङ्गै:=शिरोभि: इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मुहूर्तमपि=क्षणमपि अविरहितौ=अपरित्यक्तौ मुकुट-रहितानि विशीर्ण-केशानि शत्रु-शिरांसीव भ्रमर-पङ्क्तय: प्रतीयन्ते स्मेति भाव: । **संवाहन०**—संवाहने=पाद-

टिप्पणी—**कलिकाल०**—नीलमणिमय चरण-पीठ पर कलियुग की उत्प्रेक्षा की गई है, क्योंकि कलियुग भी पाप-प्रधान होने से काला ही माना जाता है । सिर पर बायाँ पैर रखकर हर्ष ने कलियुग का बड़ा अपमान किया, अर्थात् उसने अपने राज्य में कोई भी पाप कर्म नहीं होने दिया ।

सर्वतेजस्वि०—यहाँ कवि श्लेष द्वारा यह बता रहा है कि जिस तरह सूर्यादि तेज-पिण्ड सन्ध्याकाल में अस्त हो जाया करते हैं, उसी तरह हर्ष के पाद-पल्लवों की अरुणिमा सभी तेजस्वियों—वीर-पुरुषों—की समाप्ति के लिए सन्ध्या का काम दे रही थी । उसके पैरों ने सभी का तेज छीन लिया ।

हिन्दी—को मैला बनाए हुए बड़े भारी, बहुमूल्य, मध्य-भाग में माणिक्यों की माला से सुशोभित महानील मणि के चरणपीठ पर कलियुग के सिर पर जैसे विलास-पूर्वक बायाँ पैर रखे कालिय नाग के सिर पर पैर रखे हुए बाल-कृष्ण के समान बना हुआ था, जो शन के वस्त्र की तरह श्वेत-पीत वर्ण के चरण-नखों के फैलते हुए किरण-समूह से ऐसा लग रहा था मानो पृथिवी को (सिर पर) शन के वस्त्र से श्वेत-पीत बना मुकुट बांध कर पटरानी का गौरव प्रदान कर रहा हो, जो ऐसे चरण धारण कर रहा था, जो मानो न झुकने वाले लोक-पालों पर क्रोध के कारण बहुत लाल हो बैठे थे, जो मानो सभी राजाओं की शिर की पुष्प-मालाओं पर पद्म-राग मणियों का-जैसा प्रकाश डाल रहे थे, जो

श्रियो विकचरक्तपङ्कजवनवासभवनानीव कल्पयन्तौ जलजशङ्खमीनमकरसनाथतलतया कलितचतुरम्भोधिभोग-

चिह्नाविव चरणौ दधानम्, दिङ्नागदन्तमुसलाभ्यामिव विकटमकरमुखप्रतिबन्धबन्धुराभ्यामुद्वेललावण्यपयोनिधिप्रवाहाभ्यामिव फेनाहितशोभाभ्यां चन्दनद्रुमाभ्यामिव भोगिमण्डलशिरोरत्नरश्मिरज्यमानमूलाभ्यां हृदयारोपितभूमारधारणमाणिक्यस्तम्भाभ्यामूरुदण्डाभ्यां विराजमानम्, अमृतफेनपिण्डपाण्डुना मेखलामणिमयूखखचितेन नितम्बबिम्बव्यास-

---

टीका—मर्दने तत्परायाः=व्यापृतायाः श्रियः=लक्ष्म्याः विकचानि=विकसितानि यानि रक्त-पङ्कजानां=रक्त-कमलानां वनानि=काननानि एव वासस्य भवनानि=गृहाणि इवेत्युत्प्रेक्षायां कल्पयन्तौ=रचयन्तौ, तस्य चरणौ रक्त-पङ्कजतुल्यौ लक्ष्म्याः (सौन्दर्येण) युक्तौ चास्ताम्। अतः तत्र संवाहन-परायाः लक्ष्म्याः (देव्याः) निवास-गृहत्वमुत्प्रेक्षितम् सा हि पद्मालया। जलज०—जलजं=कमलं, शङ्खः=कम्बुः मीनः=मत्स्यः, मकरः=ग्राहः तैः सनाथं=युक्तं तलं=तल-भागो ययोः तयोः भावः तत्ता तया कलितं=प्रकटीकृतं चतुर्णाम् अम्भोधीनां भोगस्य=शासनस्येत्यर्थः चिह्नं=लक्षणं याभ्यां ताभ्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायां चरणौ दधानम्=बिभ्राणम् चरण-तले कमलादिचतुश्चिह्नानि तस्य चतुरुदधि-शासकत्वं द्योतयन्ति स्मेति भावः। दिङ्-नाग०—इत आरभ्य तृतीयान्तानि ऊरुदण्डाभ्याम् इत्यस्य विशेषणानि। दिङ्नागः=दिग्गजः तस्य दन्तौ=दशनौ मुसलौ इवेत्युपमिततत्पु० ताभ्याम् इवेत्युपमायाम्, विकटम् =उत्कटं यत् मकरमुखं=(शङ्करानुसारेण) "जानुनोरुपरिभागः, मांसलभागः इत्यर्थः तदेव प्रतिबन्धः= प्रतिरोधः तेन बन्धुराभ्याम्=उन्नतानताभ्याम्, अन्यत्र मकरमुखम्=मकर-मुखाकार-भूषण-विशेषः तस्य प्रतिबन्धः =बन्धनं तेन बन्धुराभ्याम्=रम्याभ्याम्। उद्वेल०—उद्वेलौ=वेलामलङ्घयन्तौ, उच्छलन्तौ इत्यर्थः लावण्य-पयोनिधेः =सौन्दर्य-सागरस्य अथ च लवण-समुद्रस्य प्रवाहौ=स्रोतसी ताभ्याम् इव, फेनेन=श्वेत-चूर्णविशेषेण अथ च हिण्डीरेण आहिता=आपादिता शोभा=सौन्दर्यं ययोः ताभ्याम्। अत्रोपमोत्प्रेक्षयोः सङ्करः। चन्दन०—चन्दनस्य द्रुमाभ्यां=वृक्षाभ्याम् इवेत्युपमायाम् भोगिनां=नृपाणाम् अन्यत्र सर्पाणाम् ['भोगी भुजङ्गमेऽपि स्यान्नाममात्रे नृपे पुमान्' इति मेदिनी] यत् मण्डलं=समूहः तस्य शिरस्सु यानि रत्नानि तेषां रश्मिभिः रज्यमानं=लोहितीक्रियमाणं मूलं=मूलप्रदेशः ययोः ताभ्याम्, यथा सर्पमणि-रश्मिभिः चन्दनवृक्षमूलं रज्यते तथैव प्रणतनृपशिरोरत्नप्रभया हर्षस्य चरणमूलमपि रज्यते स्मेति भावः। हृदय०—हृदये=वक्षसि अथ च मनसि आरोपितः स्थापितः यः भूभारः=पत्नीरूपपृथिव्याः अथ च राज्यपालनस्य भारः तस्य धारणे=वाहने माणिक्य-स्तम्भौ=रत्न-स्तम्भौ ताभ्यां रूपकम्, राज्यपालन-चिन्ता तस्य हृदये आसीदित्यर्थः। एवंभूताभ्याम् ऊरुदण्डाभ्यां=दण्डसदृश-जङ्घाभ्यां विराजमानं=शोभमानम्। अमृत०—तृतीयान्त-पदानि श्लेषेण 'अधर-वाससा' अथ च 'निर्मोकेन' सम्बध्यन्ते। अमृतफेनपिण्डवत् अन्यत्र अमृतफेन-पिण्डेन पाण्डुरेण श्वेतेन मन्थने अमृतस्य निर्गमात् मेखलायां=काञ्च्याम् अन्यत्र कटिभागे ये मणयः=रत्नानि तेषां मयूखैः=किरणैः खचितेन=युक्तेन, नितम्बयोः=श्रोण्योः, बिम्बे=मण्डले अन्यत्र नितम्बानां=कटकानां बिम्बेषु =मण्डलेषु व्यासङ्गिना=संसक्तेन, विमलं=स्वच्छं यत् पयः=जलम् अन्यत्र दुग्धं तेन धौतेन=क्षालितेन, मन्थनं

हिन्दी—मानो सभी तेजस्वी मण्डलों के अस्त होने के लिए संध्या काल देख रहे थे, जो मानो समस्त भूपालों की शिर-मालाओं के पुष्पों के मकरन्द-स्रोत बहा रहे थे, जिन्हें निखिल सामन्तों के केश-पाशों में (बंधी) शिर-मालाओं की सुगन्ध के कारण मंडराते और क्षण भर भी न छोड़े हुए भ्रमर-समूह ऐसे लग रहे थे मानो वे शत्रुओं के सिर हों, जो पैर दबाने में लगी हुई लक्ष्मी के रक्त कमलों के वनों के लिए निवास-गृह-जैसे बना रहे थे, और जो तल-भाग में पद्म, शंख, मत्स्य तथा मकर से युक्त होने के कारण चारों समुद्रों के उपभोग के चिह्नों को-जैसे बनाये हुए थे. जो दण्डों-जैसी दो ऐसी जङ्घाओं से शोभा पा रहा था, जो विकट मकरमुख [मगरमच्छ के मुख के आकार का भूषण] बंधा होने से बन्धुर (सुन्दर) बने हुए दिग्गज के मुसल-जैसे दो दांतों के समान मकरमुख (ऊपर उठे हुए मांसल भाग की) रुकावट से बन्धुर (उन्नतावनत) थीं, जो फेन (१. श्वेत-चूर्ण विशेष, २ झाग) से शोभित हुई तीर लांघकर उछलते हुए सौन्दर्य-सागर की दो धाराएं जैसी दिखाई पड़ती थीं, जो सर्प-समूह के शिरों की मणियों की किरणों से रंगी हुई जड़ों वाले दो चन्दन वृक्षों की तरह निचले भाग में राजाओं के शिरों के रत्नों की किरणों से रंगी जा रही थीं और जो हृदय (१. वक्ष २. मन) में रखे हुए भू का भार धारण करने के दो पद्म-राग के खम्भे थे, जो अमृत के फेन की तरह श्वेत, मेखला (तागड़ी) की मणियों की किरणों से आच्छादित, नितम्ब (श्रोणि) मंडल को घेरे हुए, स्वच्छ जल से धुली

ङ्गिनः विमलपयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा वासुकिनिर्मोकेणेव मन्दरं द्योतमानम्, अघनेन सतारागणेनो-परिकृतेन द्वितीयाम्बरेण भुवनाभोगमिव भासमानम्, इभपतिदशनमुसलसहस्रोल्लेखकठिनमसृणेनापर्याप्ताम्बरप्रथिम्ना विविधवाहिनीसंक्षोभकलकलसंमर्दसहिष्णुना कैलासमिव महता स्फटिकतटेनोरुणोरःकवाटेन राजमानम्, श्रीसरस्वत्योरुरोवदनोपभोगविभागसूत्रेणेव पातितेन शेषेणेव च तद्भुजस्तम्भविन्यस्तसमस्तभूभारलब्धविश्रान्तिसुखप्रसुप्तेन

टीका—क्षीरसागरस्याभूदिति ध्येयम् **नेत्र०**—नेत्रस्य=अंशुकस्य सूत्राणि=तन्तवः तेषां निवेशेन=विन्यासेन=रचनयेत्यर्थः, अन्यत्र नेत्रस्य=मन्थन-रज्ज्वाः [नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रभेदे मूले द्रुमस्य च, इति मेदिनी] सूत्रेषु निवेशः=स्थितिः तेन शोभिना=शोभमानेन अधर-वाससा=अधोवस्त्रेण शाटिकयेत्यर्थः, वासुकिः=शेषनागः तस्य निर्मोकेण=कञ्चुकेन इवेति श्लिष्टोपमायां मन्दरं=मन्दराचलं द्योतमानं=भासमानम्। अघनेन=अगाढेन सूक्ष्मेणेत्यर्थः अन्यत्र न घनाः=मेघाः यस्मिन् तेन, तारागणेन=नक्षत्रसमूह-चिह्नैरित्यर्थः अन्यत्र नक्षत्रसमूहेन सहितेन उपरिकृतेन=उपरिधृतेन। द्वितीयेन अम्बरेण=वस्त्रेण उत्तरीयेणेत्यर्थः अन्यत्र द्वितीयेन=सहचारिणा आकाशेन भुवनस्य=संसारस्य पृथिव्या इत्यर्थः आभोगः=आयामः विस्तारः इत्यर्थः तम् इवेति श्लिष्टोपमायाम् भासमानं=रोचमानम्। **इभपति०**—राजा कैलासेन तस्योरश्च तत्स्फटिकतटेनोपमीयेते। इभानां=गजानां पतयः=इन्द्राः तेषां दशनाः=दन्ताः एव मुसलाः=दण्डाः तेषां सहस्राणि तैः उल्लेखाः=(युद्धेषु) आघाताः अन्यत्र (भ्रमणेषु) घर्षणानि तैः कठिनम् (अपि) मसृणं=कोमलम् अन्यत्र चिक्कणं तेन, अपर्याप्तः अम्बरस्य=उत्तरीयस्य अन्यत्र गगनस्य प्रथिमा=विस्तारः यस्य तेन, विविधाः=नानावाहिन्यः=सेनाः अन्यत्र नद्यः तासां संक्षोभे=संघट्टे अन्यत्र उद्वेगे यः कलकलः=कोलाहलः तेन संमर्दः=संक्लेशः तं सहते इति सहिष्णुः तेन; कैलासम् इवेति श्लिष्टोपमा। महता। स्फटिकतटेन=स्फटिक-कटकेन उरुणा=विशालेन उरः=वक्षः कवाटं=कपाटमिवेत्युपमितत्पु० तेन राजमानं=दीप्यमानम्; **श्रीसरस्व०**—श्रीः=लक्ष्मीः सरस्वती=वाग्देवी तयोः उरः=वक्षश्च वदनं=मुखञ्च तयोः उपभोगः=आनन्दानुभवः तस्य विभाग-सूत्रेण=विभाजक-तन्तुना विभाजक-रेखयेत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायां पातितेन=स्थापितेन अर्थात् श्रियः राज्यसीमा वक्षःस्थलं तत्र हि सा विश्राम्यति, सरस्वत्याः राज्यसीमा मुखम्, मुखे एव सरस्वत्या वासात्, तस्य=हर्षस्य भुजौ=बाहू एव स्तम्भौ तयोः विन्यस्तः स्थापितः यः समस्तः=सम्पूर्णः भुवः=पृथिव्याः भारः तेन लब्धं विश्रान्तेः=विश्रमस्य सुखं तेन सुप्तेन=शयितेन शेषेण=शेषनागेन इवेत्युत्प्रेक्षायां हार-दण्डेन=हारः दण्ड इव तेन अर्थात् मौक्तिक-स्रजा परिवेष्टिता=परिगता कन्धरा=गलो यस्य तम्, **जीविता०**—जीवितम्=जीवनम् अवधिः=सीमा

हिन्दी— नेत्र-सूत्र (रेशमी सूत) से बनी होने के कारण सुन्दर धोती से इस तरह चमक रहा था जैसे कि अमृत के फेन के टुकड़ों से सफेद मेखला (कटिभागों) की मणियों की किरणों से युक्त, नितम्ब-बिम्बों (गोल ढलानों) पर पड़ी हुई, निर्मल दूध से धुली, नेत्र-सूत्र (मन्थन-रज्जु) पर पड़ जाने से सुन्दर बनी केंचुली से वासुकि नाग (चमका था), जो अघन (सूक्ष्म) सित्मे-सितारे-जड़े, ऊपर पहने दूसरे अम्बर (वस्त्र) से इस प्रकार दीप्त हो रहा था जैसे अघन (मेघ-रहित) तारा-समूह से युक्त, ऊपर रखे द्वितीय (अपने साथी) अम्बर (गगन) से पृथिवी का विस्तार दीप्त हुआ करता है, जो गज-पतियों के दन्त-रूपी मुसलों के हजारों प्रहारों से कठिन (कठोर) बने हुए (भी) मसृण (कोमल) विस्तार में अम्बर [उत्तरीयक] से बाहर रहे हुए अनेक वाहिनियों (सेनाओं) के क्षोभ के कोलाहल के क्लेश को सहन कर जाने वाले, किवाड़ जैसे विशाल वक्षःस्थल से ऐसे भासित हो रहा था जैसे कि गज-पतियों के दन्तों द्वारा हजारों वार खुरचे जाने से कठिन (खुरदरी) बनी हुई (भी) मसृण (चिकनी), विस्तार में अम्बर (आकाश की सीमा) से बाहर गई हुई, अनेक वाहिनियों (नदियों) की टक्कर के कल-कल शब्द का क्लेश सहन कर जाने वाली विशाल स्फटिक की ढलान से कैलास (भासित होता है), जिसके गले में डाली हुई छड़ी-जैसी मोतियों की लड़ ऐसी लग रही थी, मानो लक्ष्मी और सरस्वती के लिए मुख और वक्षःस्थल के उपभोगार्थ डाला हुआ (सीमा) विभाग-सूत्र हो और उसके भुजा-रूपी खम्भों पर समस्त भू-भार रखे जाने के कारण प्राप्त हुए विश्राम के सुख में सोया हुआ मानो शेष-नाग हो, जिसका वक्षःस्थल जीवन-पर्यन्त अपने सर्वस्व का महादान (करने) के दीक्षा-व्रत का वल्कल वस्त्र जैसे प्रतीत हो रहे हार के मोतियों के किरण-समूह से आच्छादित हो रहा था, जो विष्णु को जीतने की इच्छा से निकल रहे (दो) और नये हाथ-जैसे भुजा-रूपी तकिया पर सोने वाली लक्ष्मी के कान के कमल से बह रहे मकरन्द की

हारखण्डेन परिवेष्टितकन्धरम्, जीवितावधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षाचीरेणेव हारमुक्ताफलानां किरणनिकरेण प्रावृत-

वक्षःस्थलम्, अजजिगीषया बालभुजैरिवापरैः प्ररोहद्भिर्बाहूपधानशायिन्याः श्रियः कर्णोत्पलमधुरसधारासन्तानैरिव गलद्भिर्भुजजन्मनः प्रतापस्य निर्गमनमार्गैरिवाविर्भवद्भिररुणैः केयूररत्नकिरणदण्डैरुभयतः प्रसारितमणिमयपक्षवितानमिव माणिक्यमहीधरम्, सकललोकालोकमार्गार्गलेन चतुरुदधिपरिक्षेपखातशिलाप्राकारेण सर्वराजहंसबन्धवज्र-पञ्जरेण भुवनलक्ष्मीप्रवेशमङ्गलमहामणितोरणेनातिदीर्घदोर्दण्डयुगलेन दिशां दिक्पालानां च युगपदायतिमपहरन्तम्,

---

टीका—यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा जीवनपर्यन्तमित्यर्थः, गृहीतं=स्वीकृतं यत् सर्वस्वस्य=सर्वधनस्य महादानं =प्रजाभ्यो महावितरणं तस्मिन् या दीक्षा=व्रत-धारणं तस्याः चीरं=वल्कल-वसनं तेन, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, हारस्य= मौक्तिकस्रजः यानि मुक्ताफलानि=मौक्तिकानि तेषां किरणानां=मयूखानां निकरेण=समूहेन प्रावृतम्=प्राच्छादितं वक्षःस्थलम्=उरः यस्य तम्। अजजि०—अत्र तृतीयान्तानि 'अरुणैः' इत्यादीनि पदानि 'किरण-दण्डैः' इत्यनेन सम्बध्यन्ते, अजः=विष्णुः ['अजा विष्णु-हर-च्छागाः' इत्यमरः] तस्य जिगीषया=जेतुमिच्छया बालैः=अभिनवैः भुजैः=बाहुभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। अपरैः=अन्यैः प्ररोहद्भिः=उत्पद्यमानैः, बाहुः=भुजः एव उपधानम्=उपबर्हः तत्र शेते इति शायिनी तस्याः श्रियः=लक्ष्म्याः[लक्ष्मीः हि राज्ञः भुजे विश्राम्यतीति कवि-ख्यातिः] कर्णे अलङ्करण-रूपेण धृतं यत् उत्पलं =कमलं तस्य मधु-रसस्य=मकरन्दस्य याः धाराः=प्रवाहाः तासां सन्तानैः=समूहैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, गलद्भिः= स्रवद्भिः; भुजात् जन्म यस्य तस्य स्वबाहुबलोत्पन्नस्येत्यर्थः प्रतापस्य=तेजसः निर्गमनस्य=निस्सरणस्य मार्गैः =पथिभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आविर्भवद्भिः=प्रकटीभवद्भिः अरुणैः=लोहितवर्णैः केयूराणाम्=अङ्गदानां रत्नानां =माणिक्यानां किरणैः=रश्मिभिः दण्डैरिवेत्युपमिततत्पु०, उभयतः=द्वयोः पार्श्वयोः प्रसारितः=विस्तारितः मणिमय-पक्षयोः=मणिरूप-च्छदयोः, पुरा पर्वतानां पक्षाः आसन्निति ध्येयम्, वितानः=विस्तारः पदानि येन तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, माणिक्य-महीधरं=मणिपर्वतम्। सकल०—अत्र तृतीयान्तानि दण्ड-युगलेनेत्यस्य विशेषणानि, सकलश्चासौ लोकालोकः=पृथिव्याः चरम-सीमास्थितः पर्वतविशेषः तस्य ये मार्गाः तेषाम् अर्गलेन=रोधक-मुसलेन अथवा सकलाश्च ते लोकाः=जनाः तेषाम् आलोकः=दृष्टिः तस्य मार्गस्य अर्गलेन रोधकेनेत्यर्थः, अर्थात् स स्वशौर्यकारणात् सर्वेषामेव दृष्टिं रुणद्धि स्म आत्मनि आकृषति स्मेति भावः, चत्वारश्च ते उदधयः=समुद्राः तेषां परिक्षेपः=पृथिव्याः परिवेष्टनमित्यर्थः एव खातं=परिखा तस्य शिला-प्राकारेण=शिलानिर्मित-प्राचीरेण, सर्वे च ते राजहंसाः=राजसु हंसा इव श्रेष्ठराजाः इत्यर्थः, ते एव राजहंसाः=उच्चजातीय-हंसविशेषाः तेषां बन्धः=बन्धनं रोध इत्यर्थः; तस्य वज्र-पञ्जरेण=वज्रनिर्मित-पञ्जरेण, भुवनस्य=जगतः या लक्ष्मीः=श्रीः तस्याः प्रवेशः=आगमनं तस्य मङ्गलं=माङ्गलिकं यत् मणितोरणं=मणिमयबहिर्द्वारं तेन भुजयोः मणि-भूषितत्वात्, स्वबाहुबलेन सकल-जगद्राज्यं तेन जितमिति भावः, सर्वत्र रूपकम्, अतिदीर्घेण=अतिविशालेन दोर्दण्डयोः=दण्डतुल्यभुजयोः युगलेन =द्वयेन दिशां दिक्पालानां=लोकपालानां च युगपद्=सममेव आयतिम्=आयामम् दिक्पालपक्षे प्रभावम् ['स्यात्प्रभावेऽपि चायतिः' इत्यमरः] अपहरन्तम्=प्राच्छिन्दन्तम्; सोदर्य०—सोदर्या=सहोदरा या लक्ष्मीः=श्रीः

टिप्पणी—महादान-दीक्षा—यहाँ हर्ष की दानशीलता का स्पष्ट संकेत है। वह हर पाँचवें वर्ष अपना सब कुछ लोगों को दान में दे दिया करता था। विश्वजित् यज्ञ में अपना सर्वस्व दे डालने का शास्त्र-विधान है। कालिदास भी इसका उल्लेख करता है—'स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्', रघु० ४।८६। ह्वेन-सांग ने भी अपनी यात्रा के विवरणों में श्रीहर्ष के इस महादान की चर्चा कर रखी है। राजा के पास पहनने को चीर-चीवर ही रह जाते थे। लोकालोक—पुराणानुसार पृथ्वी के अन्तिम पुष्कर द्वीप में लोकालोक पर्वत है जिससे परे कुछ नहीं, अन्धकार ही अन्धकार है। देखिये विष्णुपु०—लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः। ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम्॥ २।४।८५। कवि का आशय यह है कि समस्त पृथिवी पर वह अपने भुज-बल से शासन करता था।

हिन्दी—धाराओं के समूह-जैसे, भुजाओं से उत्पन्न हुए प्रताप के निकलने के मार्ग-जैसे, बाजू-बन्दों के लाल-लाल लम्बे किरणों से दोनों ओर फैलाये मणिमय पंखों के विस्तार वाला मणि-पर्वत-सा प्रतीत हो रहा था, जो सकल लोकालोक पर्वत के मार्गों के आगल-रूप, चार समुद्रों के घेरे की परिखा (खाई) पर पत्थरों के प्राकार (दीवार) रूप, सभी राजहंस (श्रेष्ठ राजा) रूपी राजहंसों (उच्च जातीय हंसों) को बंद करने के लिए वज्र के बने पिंजरे रूप, भुवन की लक्ष्मी के प्रवेश में मङ्गलमय महान् मणिमय तोरण-रूप दो विशाल भुज-दण्डों से दिशाओं

सोदर्यलक्ष्मीचुम्बनलोभेन कौस्तुभमणिरिव मुखावयवतां [illegible] पारिजातपल्लवरसेनेव सिञ्चन्तं दिङ्मुखानि, अन्तरान्तरा सुहृत्परिहासस्मितैः प्रकीर्यमाणविमलदशनशिखाप्रतानैः प्रकृतिमूढाया राजश्रियः प्रज्ञालोकमिव दर्शयन्तम्, मुखजनितेन्दुसन्देहागतानि कुमुदिनीवनानीव प्रेषयन्तम्, स्फुटस्फटिकधवलदशनपङ्क्तिकृतकुमुदवनशङ्काप्रविष्टां शरज्ज्योत्स्नामिव विसर्जयन्तम्, मदिरामृतपारिजातगन्धगर्भेण भरितसकलककुभा मुखामोदेनामृतमथनदिवसमिव सृजन्तम्, विकचमुखकमलकर्णिकाकोशेनानवरतमापीयमानश्वाससौरभमिवाधोमुखेन नासावंशेन, चक्षुषः क्षीरस्निग्धस्य धवलिम्ना दिङ्मुखान्यपूर्ववदनचन्द्रोदयोद्वेलक्षीरोदप्लावितानीव कुर्वाणम्, विमलकपोलफलकप्रतिबि-

---

टीका—मुखगतसौन्दर्यच्छटेत्यर्थः तस्याः चुम्बनस्य लोभेन=अभिलाषेणेत्यर्थः, समुद्रमन्थने द्वयोः सहोत्पन्नत्वात् सहोदरत्वम्, कौस्तुभ-मणेः=विष्णोः वक्षसि धृतस्य मणिविशेषस्य, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मुखस्य हर्षस्येति यावत् अवयवताम्=अङ्गतां गतस्य=प्राप्तस्य अधरस्य=अधरोष्ठस्य रागेण=प्रसरता लौहित्येन, पारिजातस्य=स्वर्गीय-वृक्षविशेषस्य पल्लवानां=किसलयानां रसेन=द्रवेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दिङ्मुखानि=दिशाविभागान् सिञ्चन्तम्=सिक्तीकुर्वन्तम्। अन्तरा०—अन्तरान्तरा=मध्ये मध्ये, प्रकीर्यमाणः=प्रसरन्नित्यर्थः विमलानां=स्वच्छानां, दशन-शिखानां=दन्त-द्युति-किरणानां प्रतानः=विस्तारः येषु तैः सुहृद्भिः सह ये परिहासाः=नर्माणि विनोदोक्तय इत्यर्थः तेषुयानि स्मितानि=मन्दहासाः तैः, प्रकृत्या=स्वभावतः मूढायाः=मूर्खायाः राजश्रियाः=राजलक्ष्म्याः प्रज्ञायाः=ज्ञानस्य आलोकं प्रकाशम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दर्शयन्तं=प्रकटयन्तम्, मुखेन=आननेन हर्षस्येति शेषः जनितः=कृतः यः इन्दोः=चन्द्रस्य सन्देहः=संशयः तेन आगतानि कुमुदिनीनां=कैरवाणां वनानि=काननानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रेषयन्तम्=निवर्तयन्तम्, दशनकिरणवत् कुमुदान्यपि श्वेतानि भवन्ति, स्फुटाः=उज्ज्वलाः स्फटिकवत्=स्फटिकोपलवत् धवलाः=श्वेताः ये दशनाः=दन्ताः तेषां या पङ्क्तिः तया कृता कुमुदवनानां शङ्का=भ्रान्तिः तया प्रविष्टाम्=अन्तर्गताम् शरदः=शरत्कालस्य ज्योत्स्नां=चन्द्रिकाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विसर्जयन्तम्=त्यजन्तम्, उभयत्र भ्रान्तिमानलङ्कारः। मदिरा०—मदिरा=मद्यम्, अमृतं=सुधा च, पारिजातः=वृक्षविशेषश्च यानि समुद्रमन्थनोद्भूतानि आसन् तेषां गन्धः=सौरभं गर्भे=मध्ये यस्य तेन, भरिताः=पूरिताः सकलाः ककुभः=दिशः येन तथाभूतेन मुखस्य=कृतताम्बूलभक्षणस्य वक्त्रस्य आमोदेन=परिमलेन, अमृतमन्थनस्य=सुधामन्थनस्य दिवसम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सृजन्तं=जनयन्तम्। विकच०—विकचं=विकसितं यत् मुखमेव कमलम् तस्य कर्णिका-कोशः=बीजगुप्तिः तेन अधोमुखेन=नतमुखेन नासावंशेन=नासा=नासिका वंशः=वेणुदण्ड इवेत्युपमिततत्पु०, अनवरतं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा आपीयमानं=समन्तात् पानविषयीक्रियमाणं श्वासस्य=मुखनिर्गतनिश्वासस्य सौरभं=सौगन्ध्यं यस्य तम्। चक्षुषः—क्षीरवत्=दुग्धवत् स्निग्धस्य चक्षुषः=नेत्रस्य धवलिम्ना=श्वैत्येन अपूर्वस्य=अभूतपूर्वस्य वदनस्य=मुखस्यैव चन्द्रस्य टीका—उदयेन उद्वेलः=वेलामतिक्रान्तः यः क्षीरोदः=क्षीरसमुद्रः तेन प्लावितानि=आपूरितानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम्,

टिप्पणी—मुखजनित०—उसका मुख चन्द्रमा के समान था, कुमुद रात को खिलते हैं और वे उसके स्मित की तरह थे, कवि कल्पना करता है कि स्मित के रूप में कुमुद उसके मुख को गलती से चन्द्रमा समझ कर पास आ गये थे। किन्तु दन्त-रश्मियों के रूप में उसने उन्हें वापस भेज दिया कि यह मुख है, चन्द्रमा नहीं। यही भाव शरज्ज्योत्स्ना में भी है।

हिन्दी—की आयति (विस्तार) और दिशापालों की आयति (प्रभाव) भी एक साथ छीन रहा था, जो सहोदर बहिन लक्ष्मी के चुंबन की इच्छा से मुख का अङ्ग बने हुए कौस्तुभ मणि-जैसे अधरोष्ठ की फैलती हुई लालिमा से पारिजात के पल्लवों के बहते हुए रस से जैसे दिग्विभागों को सींच रहा था, जो बीच-बीच में मित्रों के साथ हो रहे परिहासों में बिखरती हुई धवल-दांतों की किरणों की नोकों वाली मुस्कराहटों से मानो मुख से जनित चन्द्रमा के सन्देह से आये हुए कुमुदिनी-वनों को वापस कर रहा था, (अथवा) मानो उज्ज्वल स्फटिक मणि के समान धवल दन्त-पङ्क्तियों से उत्पन्न हुई कुमुद-वन की भ्रान्ति से भीतर प्रविष्ट हुई शरत्काल की चाँदनी को वापस भेज रहा था, जो मदिरा, अमृत और पारिजात की गन्ध अपने भीतर रखे हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए मुख के सौरभ से मानो अमृत-मन्थन का दिन बना रहा था, जिसके (मुख की) निश्वास सुगन्ध विकसित मुखकमल के कंवलगट्टे-रूपी नीचे मुंह किये नासिका-दण्ड द्वारा पी जा रही थी, जो दूध की तरह स्निग्ध नयन की धवल-छटा से मानो अद्भुत मुख-रूपी चन्द्रमा के उदय के कारण तीर से बाहर उमड़े हुए क्षीर-सागर द्वारा दिग्विभागों को आप्लावित कर

म्बितां चामरग्राहिणीं विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनीं सरस्वतीं दधानम्, अरुणेन चूडामणिशोचिषा सरस्वतीर्ष्याकुपित-लक्ष्मीप्रसादनलग्नेन चरणालक्तकेनेव लोहितायितललाटतटम्, आपाटलांशुतन्त्रीसन्तानवलयिनीं कुण्डलमणिकुटिल-कोटिबालवीणामनवरतचलितचरणानां वादयतामुपवीणयतामिव स्वरव्याकरणविवेकविशारदं श्रवणावतंसमधुकर-कुलानां कलक्वणितमाकर्णयन्तम्, उत्फुल्लमालतीमयेन राजलक्ष्म्याः कचग्रहलीलालग्नेन नखज्योत्स्नावलयेनेव मुखशशिपरिवेषमण्डलेन मुण्डमालागुणेन परिकलितकेशान्तम्, शिखण्डाभरणभुवा मुक्ताफलालोकेन मरकतमणिकि-

---

टीका—दिङ्मुखानि दिग्विभागान् कुर्वाणं=कुर्वन्तम्। विमल०—विमलं=निर्मलं यत् कपोलयोः=गण्डयोः फलकं=पट्टं राज्ञ इति शेषः तत्र प्रतिबिम्बितां=प्रतिफलितां चामरग्राहिणीं=चामरसञ्चालिनीं विग्रहः=शरीरम् अस्या अस्तीति विग्रहिणी तां सशरीरां मुखे निवसतीति ०निवासिनी तां सरस्वतीं दधानं=बिभ्राणम्, अरुणेन—अरुणेन=लोहितेन चूडामणेः=शिरोरत्नस्य शोचिषा=दीप्त्या सरस्वत्यां या ईर्ष्या=द्वेषः तेन कुपिता या लक्ष्मीः तस्याः प्रसादने=अनुनये लग्नेन=संसक्तेन चरणयोः=पादयोः अलक्तकेन=लाक्षारसेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लोहितायितं =लोहितं भवतीति लोहितायते ततो निष्ठायां कर्तरि क्तः ['लोहितादि-डाज्भ्यः क्यष्' पा० ३।१।१३] लोहितीभूतम् इत्यर्थः, ललाटस्य=भालस्य तटं प्रदेशो यस्य तथाभूतम्। आपाटलां०—अत्र मुख्यप्रतिपाद्यं 'मधुकरकुलानां क्वणितमा-कर्णयन्तम्' इत्यस्ति। तच्च कविः रूपकमुखेन वर्णयति—आ=ईषत् पाटलाः=लोहिताः अंशवः=रश्मय एव तन्त्र्यः =वीणा-गुणाः तासां सन्तानः=समूहः तस्य वलयं=मण्डलम् मण्डलाकारेण स्थितिरित्यर्थः अस्याः अस्तीति वलयिनी ताम्, अंशुरूपतन्त्रीसंयुतामिति भावः, कुण्डलयोः=कर्णाभरणविशेषयोः ये मणयः=माणिक्यानि तेषां कुटिलाः=वक्राः कोटयः=प्रान्ताः एव बाला=लघ्वी वीणा=विपञ्ची ताम् अनवरतं=सततं चलिताः=गतिमन्तः चरणाः येषां तेषां वादयतां=वादनविषयीकुर्वताम् उपवीणयतां=वीणया उपगायताम् ['सत्याप-पाश-रूप-वीणा०' पा० ३।१।२५ णिच्] इवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्वराः=षड्जर्षभगान्धारादयः सप्त, तेषां व्याकरणं=विश्लेषणं तस्मिन् यः विवेकः=विवेचनं तत्र विशारदं=दक्षम्, इदं विशेषणं राजपक्षेऽपि योज्यम्, श्रवणयोः=कर्णयोः अवतंसाः=अलङ्करणभूताः ये मधुकराः =भ्रमराः तेषां कुलानां=समूहानां कलम्=अव्यक्तमधुरं क्वणितं=शब्दम् आकर्णयन्तं=शृण्वन्तम्। उत्फुल्ल०—उत्फुल्ला=विकचा या मालती सा एवेति तन्मयः तेन मुण्ड-माला=शिरसि धृता पुष्पस्रक् तस्याः गुणेन=सूत्रेण, सूत्र-ग्रथित-स्रजेत्यर्थः, राजलक्ष्म्याः=राजश्रियः, कर्तरि षष्ठी, कचानां केशानां ग्रहः=ग्रहणं तस्य लीला=क्रीडा तस्यां लग्नेन=संसक्तेन नखानां=कररुहाणां लक्ष्म्याः इति शेषः ज्योत्स्ना=चन्द्रिका, चन्द्रिकावत् धवलांशव इत्यर्थः तस्याः वलयेन=मण्डलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मुखम् एव शशिः=चन्द्रः तस्य परिवेषस्य=परिधिरूपेण स्थितस्य तेजसः इत्यर्थः मण्डलं=चक्रं तेन, अत्र रूपकम्, परिकलितः=परिगृहीतः केशानाम् अन्तः=प्रान्तः यस्य तथाभूतम्; शिखण्डा०—शिखण्डः=चूडा तस्य आभरणम्=आभूषणं तस्मात् भूः=उत्पत्तिः यस्य तेन, मुक्ताफलानां=मौक्तिकानाम् आलोकेन=प्रकाशेन, मरकत-मणीनां=नीलमणीनां किरण-कलापेन=रश्मि-समूहेन च अन्योऽन्यं=

टिप्पणी—अरुणेन—शिर धर कर पैरों पर पड़ने से उनका महावर लग जाना स्वाभाविक है, हर्ष सरस्वती—विद्या—को लक्ष्मी धन-सम्पत्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता था और यही लक्ष्मी के रूठने का कारण बना। आपाटलांशु०—सौरभ के कारण कानों के पास मंडराते और गुनगुनाते हुए भ्रमरों पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वे वीणा वादन द्वारा हर्ष का गुण-गान कर रहे हों। वीणा बनी कुण्डलमणि-कोटि, ताम्बे के लाल तार बने मणिकिरणपङ्क्तियां, वादक बने भ्रमर-समूह और बजाने वाली अंगुलियां बनीं भ्रमरों के 'चलित चरण'। यहां साङ्ग रूपक और उत्प्रेक्षा का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है।

हिन्दी—रहा था, जो मुख में निवास करने वाली शरीरधारिणी सरस्वती-जैसी प्रतीत हो रही स्वच्छ कपोल-स्थल में प्रतिबिम्बित चामरग्राहिणी को धारण कर रहा था, जिसका चूड़ामणि की लाल कान्ति से लाल बना हुआ भाल-स्थल ऐसा लग रहा था मानो सरस्वती के प्रति ईर्ष्या के कारण रूठी हुई लक्ष्मी को मनाने में चरणों का अलक्तक लगा हुआ हो, जो कुछ-कुछ लाल रंग की किरण रूपी तारों (तंत्रियों) के समूह से चारों ओर जड़ी, कुण्डल-मणियों की टेढ़ी नोक-रूपी छोटी-सी वीणा को निरन्तर (इधर-उधर) पैर चलाए बजाते हुए मानो वीणा द्वारा (गुण) गान करते हुए कर्णाभरण-रूप भ्रमर-समूह की स्वरों के विश्लेषण के विवेक की दक्षता से पूर्ण अव्यक्त मधुर ध्वनि सुन रहा था, जिसके केशों का प्रान्त-भाग मुख-रूपी चन्द्रमा के परिवेष-मण्डल रूप विकसित चमेली की ऐसी

रणकलापेन चामीकरसंवलनवृजिनेन [illegible] श्रमजलविलीनबहल-कृष्णागुरुपङ्कतिलककलङ्ककल्पितेन कालिम्ना प्रार्थनाचाटुचतुरचरणपतनशतश्यामिकाकिणेनेव नीलायमान-ललाटेन्दुलेखाभिः क्षुभितमानसोद्गतैरुत्कलिकाकलापैरिव हारैरुल्लसद्भिरवष्टभ्यमानाभिर्विलासवल्गनचटुलैर्भ्रूलता-कल्पैरीर्ष्यया श्रियमिव तर्जयन्तीभिरायामिभिः श्वसितैरविरलपरिमलैर्मलयमारुतमयैः पाशैरिवाकर्षन्तीभिर्विकट-बकुलावलीवराटकवेष्टितमुखैर्बृहद्भिः स्तनकलशैः स्वदारसन्तोषरसमिवाशेषमुद्धरन्तीभिः कुचोत्कम्पिकाविकार-

टीका—परस्परं यत् संवलनं=सम्मेलनं तेन वृजिनेन=कलुषेण मलिनेनेति यावत्, प्रयागः=गङ्गायमुनयोः सङ्गमः तस्य प्रवाहस्य या वेणिका=वेणी-रूपेण प्रवाह इत्यर्थः तस्य वारिणा=जलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आगत्य स्वयम् अभि-षिच्यमानं=क्रियमाण-राज्याभिषेकम्; **श्रमजल०**—अत्र मुख्यभागः 'वारविलासिनीभिर्लुप्यमानसौभाग्यमिव सर्वतः' इत्यस्ति, तृतीयान्तानि पदानि 'वारविलासिनीभिः' इत्यस्य विशेषणानि, श्रमः=चामरसञ्चालनादिपरिश्रमः तेन यत् जलं=स्वेदः इत्यर्थः, तेन विलीनं=द्रुतं बहलं=घनं कृष्णागुरोः=कृष्णवर्ण-सुगन्धित-द्रव्यविशेषस्य पङ्केन=कर्दमेन यत् तिलकम् एव कलङ्कः=चिह्नं ['कलङ्काङ्कौ लाञ्छनञ्च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः] तेन कल्पितेन=कृतेन कालिम्ना=कालिकया, प्रार्थनायां=प्रणययाच्ञायाम्, अत्र प्रार्थनादिकं श्रीहर्षविषयकमेव बोध्यम्, चाटुभिः=प्रियमधुरवचनैः चतुराणि दक्षता-पूर्णानि रम्याणीत्यर्थः यानि चरणपतनानां=राज्ञः पादयोः पातानां शतानि=शतशः पाद-पतनानीत्यर्थः तैः या श्यामिका=कालिमा तस्याः किणेन=अङ्केन क्षतचिह्नेनेत्यर्थः मूर्ध्नः मुहुर्मुहुः पादयोः घर्षणेन तत्र कृष्णवर्णः चिह्नविशेषो जायते एव, नीलायमानाः=श्यामायमानाः ललाटानि=भालानि इन्दुलेखाः=चन्द्रलेखाः इवेत्युपमिततत्पु०, अर्धचन्द्राकारललाटानीत्यर्थः यासां ताभिः। **क्षुभित०**—क्षुभितं =क्षोभं प्राप्तं मानसं=मनः एव मानसं=मानस-सरोवरं तस्मात् उद्गताः=उत्थिताः याः उत्कलिकाः=उत्कण्ठाः एव उत्कलिकाः=वीचयः तासां कलापैः=समूहैः इव, हारैः=मौक्तिक-मालाभिः उल्लसद्भिः विभासमानैः अवष्ट-भ्यमानाभिः=आश्रियमाणाभिः। अत्र रूपकमुत्प्रेक्षा च। **विलास०**—विलासेन=लीलया यत् वल्गनं=चलनं चेष्टे-त्यर्थः तत्र चटुलैः=चपलैः भ्रूलताकल्पैः=भ्रूः एव लता तस्याः आकल्पैः=प्रसाधनैः ['आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः] प्रसाधितभ्रूभङ्गैरित्यर्थः। अत्र 'लता-सदृश-भ्रूभिः' इत्यर्थश्चिन्त्यः, ईर्ष्यया=द्वेषेण श्रियं= लक्ष्मीम् इवेत्युत्प्रेक्षायां तर्जयन्तीभिः=भर्त्सयन्तीभिः सपत्नी०भावनयेत्याशयः; **आयामि०**=आयामो दैर्घ्यं तद्वद्भिः दीर्घ-दीर्घैरित्यर्थः अविरलः=घनः परिमलः=सौरभं येषां तैः श्वसितैः=निःश्वासैः, मलयस्य=मलयाचलस्य मारुतः पवनः एव मारुतमयाः मलयमारुतनिर्मिताः इत्यर्थः तैः पाशैः=बन्धनैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आकर्षन्तीभिः=स्वसमीपे आनयन्तीभिरित्यर्थः, प्रियं हर्षमितिशेषः। **विकट०**—विकटः=आयतः बकुलावली:=बकुलपुष्पमाला एव वराटकः= रज्जुः ['वराटकः पद्मबीजकोशे रज्जौ कपर्दके' इति मेदिनी] तेन वेष्टितं=परिवृतं मुखं येषां तैः बृहद्भिः=पृथुलैः स्तनाः=कुचा एव कलशाः=घटाः तैः स्वस्य हर्षस्येत्यर्थः ये दाराः=पत्नी तेषु यः सन्तोषः=तृप्तिरूपः रसः= भावः वृत्तिरिति यावत् स एव रसः=जलम् तम् अशेषं=सम्पूर्णम् उद्धरन्तीभिः=उत्कर्षन्तीभिः, यथा रज्जुबद्धघटैः कूपाज्जलमुद्ध्रियते तथैव ताः अपि बकुलमालावेष्टितस्वस्तनैः उद्दीपनैः स्वपत्नीतः राज्ञः सन्तोषवृत्तिम् अपहरन्त्यः इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः, रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा। **कुचोत्क०**—कुचानां=स्तनानां या उत्कम्पिका=उत्कम्पः एव विकारः =विकृतिः सात्त्विक-भावविशेषः तेन प्रेङ्खितानाम्=इतस्ततः चलितानां हाराणां=कण्ठमालानां तरलाः=भास्वराः

हिन्दी—शिरोमाला से घिरा हुआ था जो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो राजलक्ष्मी द्वारा (राजा के) केश-ग्रहण की खिलवाड़ में फँसी रह गई हो, लक्ष्मी की नख-चन्द्रिका की मण्डलाकार रेखा हो, जो परस्पर मिल जाने से मलिन बनी चूड़ा-मणि से निकली मोतियों की छटा और मरकत मणियों की किरणावली से ऐसा लग रहा था मानो गङ्गा-यमुना के सङ्गम के प्रवाह की वेणी का जल स्वयं आकर उसका राज्याभिषेक कर रहा हो, जिसकी सुभगता-सुन्दरता चारों ओर से ऐसी वार-विलासिनियों द्वारा विलुप्त सी की जा रही थी जिनके चन्द्र-लेखा-जैसे ललाट पसीने से घुले हुए काले अगर के लेप के तिलक-चिह्न की कालिमा से काले बने हुए ऐसे लग रहे थे मानो (प्रणय) याचना में प्रिय-मधुर वचनों की चतुरता से पूर्ण सैकड़ों बार (राजा के) चरणपातों से (पड़ा हुआ) काला-काला रगड़ का चिह्न हो, जो क्षुब्ध (१ उद्विग्न २ आन्दोलित) मानस (मन) रूपी मानस (मानससरो-वर) से उठी हुई उत्कलिका-(उत्कण्ठा)-रूपी उत्कलिकाओं (वीचियों) की पंक्तियां जैसी लग रही मोतियों की उज्ज्वल-

प्रेङ्खितानां हारतरलमणीनां रश्मिभिराकृष्य हृदयमिव हठात्प्रवेशयन्तीभिः प्रभामुचामाभरणमणीनां मयूखैः

प्रसारितैर्बहुभिरिव बाहुभिरालिङ्गन्तीभिर्जृम्भानुबन्धबन्धुरवदनारविन्दावरणीकृतैरुत्तानैः करकिसलयैः सरभस-प्रधावितानि मानसानीव निरुन्धतीभिर्मदनान्धमधुकरकुलकीर्यमाणकर्णकुसुमरजःकणकूणितकोणानि कुसुमशरशर-निकरप्रहारमूर्च्छामुकुलितानीव लोचनानि चतुरं सञ्चारयन्तीभिरन्योन्यमत्सरादाविर्भवद्भङ्गुरभ्रुकुटिविभ्रमक्षिप्तैः कटाक्षैः कर्णेन्दीवराणीव ताडयन्तीभिरनिमेषदर्शनसुखरसराशि मन्थरितपक्ष्मणा चक्षुषा पीतमिव कोमलकपो-

---

टीका—ये मणयः तेषाम् अथवा हाराणां ये तरलमणयः=मध्यमणयः तेषाम् ['तरलं चञ्चले पिङ्गे भास्वरेऽपि त्रिलिङ्गकम् । हारमध्यमणौ पुंसि' इति मेदिनी] रश्मिभिः=किरणैः आकृष्य=उद्धृत्य हृदयम् आत्मन इति शेषः हठात् बलात् प्रवेशयन्तीभिः=प्रविष्टीकुर्वतीभिः राजानमित्यर्थः; **प्रभा०**—प्रभां=कान्तिं मुञ्चन्तीति प्रभामुचः (कर्तरि क्विप्) तेषाम् आभरण-मणीनां भूषणरत्नानां मयूखैः=रश्मिभिः प्रसारितैः=विस्तारितैः बहुभिः=अनेकैः बाहुभिः=भुजैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आलिङ्गन्तीभिः=आश्लिष्यन्तीभिः **जृम्भा०**—जृम्भाणां=जृम्भिकाणां मुखविकासानामित्यर्थः यः अनुबन्धः=क्रमः तेन बन्धुरं=सुन्दरं वदनं=मुखम् एव अरविन्दं=कमलं तस्य आवरणीकृतैः=आव्रियतेऽनेनेत्यावरणमिति तृतीयार्थे ल्युट् बोध्यः अर्थात् आवरणसाधनीकृतैः, उत्तानैः=उद्गतः तानः=विस्तारो यस्मात् तैः उद्ध्वींकृततलैरित्यर्थः कराः=हस्ताः किसलयाः=पल्लवाः इवेत्युपमिततत्पु० तैः रभसेन=वेगेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रधावितानि=प्रचालितानि हर्षं प्रतीत्यर्थः मानसानि=मनांसि इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निरुन्धतीभिः=निरुद्धानि कुर्वतीभिः अर्थात् तासां प्रणयिहृदयानि जृम्भायां विवृतेभ्यः मुखेभ्यः बहिरागत्य हर्षं प्रति धावन्ति स्म, करान् मुखेषु निधाय च ताः तानि रुन्धन्ति स्मेव; **मदन०**—मदनेन=कामेन अन्धं यत् मधुकराणां=भ्रमराणां कुलं समूहः तेन कीर्यमाणाः=प्रक्षिप्यमाणाः ये कर्ण-कुसुमस्य=कर्णाभरणीकृतपुष्पस्य रजःकणाः=पराग-लवाः तैः कूणितः=सङ्कोचितः कोणः=प्रान्तः येषां तानि, कुसुमशरस्य=मदनस्य शराणां=बाणानां निकरेण समूहेन यः प्रहारः=आघातः तेन या मूर्च्छा=मोहः तया मुकुलितानि=मुकुलावस्थां प्राप्तानि निमीलितानीत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, चतुरं=निपुणं यथा स्यात्तथा सञ्चारयन्तीभिः=व्यापारयन्तीभिः राज्ञि इति शेषः । **अन्योन्य०** अन्योऽन्यं=परस्परं मत्सरात् =ईर्ष्या-कारणात्, कर्णेन्दीवरं नीलं, नयनपुत्तलिकाऽपि नीला इति साम्याद् द्वयोः परस्परं मत्सरः, आविर्भवन्तः=प्रकटीभवन्तः भङ्गुराः=वक्राः ये भ्रुकुटीनां=भ्रूभङ्गानां विभ्रमाः=विलासाः तैः क्षिप्ताः=प्रेरिताः तैः कटाक्षैः=कटं=गण्डम् अक्षन्ति=व्याप्नुवन्ति इति कट+√अक्ष+अण् (कर्मणि) कटाक्षाः अपाङ्ग-दर्शनानि तैः कर्णयोः=श्रोत्रयोः इन्दीवराणि=नीलाम्बुजानि इवेत्युत्प्रेक्षायां, ताडयन्तीभिः=प्रहरन्तीभिः, **अनिमेष०**—अनिमेषं=निर्निमेषं यत् दर्शनम्=अवलोकनं तस्य सुख-रसः=आनन्दरसः तस्य राशि=समूहं हर्षमिति यावत् मन्थरितं=मन्थरीभूतं निश्चलमिति यावत् पक्ष्म=अक्षिलोम यस्य तेन चक्षुषा=अक्ष्णा पीतं=पानविषयीकृतम् इवेत्युत्प्रेक्षायां,

हिन्दी—मालायें पहने हुई थीं, जो विलास-चेष्टाओं से चपल बनी भ्रूलताओं के अलंकरणों से मानो ईर्ष्या के कारण लक्ष्मी की तर्जना कर रही थीं, जो मलय-वायु के बने हुए-फन्दे-जैसे घनी सुगन्ध वाले निश्वासों से (राजा को) खींच रही थीं, जो लम्बी-लम्बी बकुलपुष्पमाला रूपी रस्सी से घिरे हुए मुंह वाले कुच-रूपी विशाल घड़ों से मानो पत्नी पर सन्तोष के रस (वृत्ति)-रूपी समूचे रस (जल) को खींच रही थीं, जो कुचों की कँपकँपी के विकार के कारण इधर-उधर हिलते हुए हार की उज्ज्वल मणियों की किरणों से खींचकर मानो (राजा) को बलात् (अपने) हृदयों में प्रविष्ट कर रही थीं, जो आभा छोड़ने वाली आभूषण-मणियों की किरणों से मानो पसारी हुई बहुत सी भुजाओं से राजा का आलिंगन कर रही थीं; जो जमुहाइयों के सिलसिले से सुन्दर (बने हुए) मुख-कमलों को ढक देने वाले ऊपर उठाए किसलय-जैसे हाथों से मानो द्रुतगति से (बाहर) भागते हुए हृदयों को रोक रही थीं, जो कामान्ध भ्रमर-समूहों द्वारा बिखरे जाते हुए कर्णकुसुमों के पराग-कणों के कारण कुछ मूंदे हुए नयन (राजा पर) चला रही थीं, मानो वे कामदेव के बाण समूह के प्रहार से हुई मूर्च्छा के कारण बन्द हुए पड़े हों, जो परस्पर ईर्ष्या के कारण प्रकट हुए कुटिल भ्रूभंगों के विलासों के साथ मारे हुए कटाक्षों से मानो कानों के इन्दीवरों पर प्रहार कर रही थीं, जो कोमल कपोल-तल में प्रतिबिम्बित, निर्निमेष दर्शन सुख के रस पुंज (श्रीहर्ष) को धारण करती हुई ऐसी लग रही थीं मानो उन्होंने उसे बरौनियां निश्चल किये आंख से पी

लपालीप्रतिबिम्बितं वहन्तीभि[illegible]न्तीभिरङ्गभङ्गवल-नान्योन्यघटितोत्तानकरवेणिकाभिः स्फुटनमुखराङ्गुलीकाण्डकुण्डलीक्रियमाणनखदीधितिनिवहनिभेनाकिञ्चित्कर-कामकार्मुकाणीव रुषा भञ्जतीभिर्वारविलासिनीभिर्विलुप्यमानसौभाग्यमिव सर्वतः, स्पर्शस्विन्नवेपमानकरकिसलयगलित-चरणारविन्दां चरणग्राहिणीं विहस्य कोणेन लीलालसं शिरसि ताडयन्तम्, अनवरतकरकलितकोणतया चात्मनः प्रियां वीणामिव श्रियमपि शिक्षयन्तम्, निःस्नेह इति धनैरनाश्रयणीय इति दोषैर्निग्रहरुचिरितीन्द्रियैर्दुरुपसर्प इति

टीका—कोमला=सुकुमारा या कपोलयोः=गण्डयोः पाली तटं तत्र प्रतिबिम्बितं=प्रतिफलितं वहन्तीभिः=धार-यन्तीभिः **अभिलाष०**—अभिलाषस्य=हर्षप्राप्तिविषयक-तृष्णाया लीलया=विलासेन निर्निमित्तानि=निर्हेतुकानि यानि स्मितानि=मन्दहासाः तैः मदनस्य=कामस्य सहायकाय=सहायस्य भावः सहाय+वुन् साहायकं=सहायता तस्मै चन्द्रोदयान्=शशिनः उद्गमान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सम्पादयन्तीभिः जनयन्तीभिः, चन्द्रोदयो हि कामोद्दीपकः इति भावः, **अङ्ग-भङ्ग०**—अङ्गानाम्=अवयवानां नृत्यसमये भङ्गवलने=नमनव्यापारे अन्योन्यं घटिताः=परस्परं संयुक्ताः उत्तानाः=ऊर्ध्वीकृताः याः करयोः=हस्तयोः वेणिकाः=वेणिकाकार-सन्निवेशाः वेणीवद्ग्रन्थनानीत्यर्थः ताभिः स्फुटनेन =मोटनेन मुखराणि=शब्दायमानानि यानि अङ्गुलीनां=करशाखानां काण्डानि=पर्वाणि तेषु कुण्डलीक्रियमाणः =कुण्डलाकारं प्राप्यमाणः यः नखानां=कररुहाणां दीधितीनां=रश्मीनां निवहः=समूहः तस्य निभेन=व्याजेन अकिञ्चित्कराणि न किञ्चित् (कार्यं) कुर्वन्तीति व्यर्थानीत्यर्थः यानि कामस्य=मदनस्य कार्मुकाणि=धनूंषि इवे-त्युत्प्रेक्षा, सा च सापह्नवा, रुषा=क्रोधेन भञ्जतीभिः त्रोटयन्तीभिः वारविलासिनीभिः, वाराङ्गनाभिः सर्वतः=परितः विलुप्यमानं लोपं प्राप्यमाणम् अधःक्रियमाणमित्यर्थः सौभाग्यं=सुन्दरता यस्य तम् अर्थात् तासां हर्षादप्यधिकं सौन्दर्य-मासीत्;**स्पर्शस्विन्न०**—स्पर्शेन=चरणसंवाहनसमये जातेन सम्पर्केणेत्यर्थः स्विन्नं=स्वेदं प्राप्तं वेपमानं=कम्पमानं च यत् करकिसलयं=हस्त-पल्लवं तस्मात् गलितं चरणः=पादः हर्षस्येति शेषः अरविन्दम् इवेत्युपमिततत्पु० यस्याः ताम् स्वेद-कम्पौ सात्त्विकभावभेदौ इति ध्येयम्, चरणग्राहिणी=चरणसेविकां दासीम् विहस्य=हसित्वा कोणेन= वीणावादन-दण्डेन['कोणो वीणादिवादनम्' इत्यमरः] लीलया=विलासेन अलसं=मन्दं यथा स्यात्तथा शिरसि ताडयन्तम्=प्रहरन्तम्; **अनवरत०**—अनवरतं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा करे=हस्ते कलितः=गृहीतः कोणः= वीणावादनदण्डः येन स तस्य भावः तत्ता तया आत्मनः प्रियाम्=इष्टाम् वीणाम् इवेत्युपमायां श्रियं=लक्ष्मीम् अपि शिक्षयन्तम्=शिक्षया योजयन्तम्; इतः परं 'निस्नेहः' इत्यारभ्य अनेकधा गृह्यमाणमित्यन्तम् एकं विशेषणम्। धनैः=सम्पद्भिः निःस्नेहः=स्नेहरहितः इति गृह्यमाणं=ज्ञायमानम्, राज्ञः हर्षस्य धनेषु तृष्णाऽभावात्, दोषैः= अवगुणैः अनाश्रयणीयः=आश्रयायोग्य इति गृह्यमाणमिति सर्वत्र सम्बध्यते राज्ञि दोषाः स्थातुं न शक्नुवन्ति स्मेति भावः, इन्द्रियैः=चक्षुरादिभिः निग्रहे=दमने रुचिः=अभिलाषः यस्य सः दमनकारीत्यर्थः (इति) कलिना=कलि-युगेन दुरुपसर्पः=दुःखेन उपसर्पितुं योग्यः इति, कलिकृतपापैः तं स्प्रष्टुमशक्यत्वात्, व्यसनैः=मृगयासुरापानादि-

टिप्पणी—**अकिञ्चित्कर०**—भाव यह है कि जब वे अंगुलियाँ चटकाती थीं तो उज्ज्वल नख-किरणें कुण्डलाकार बन जाती थीं। उनकी कुण्डलाकृति झुके हुए धनुष की तरह थी। कवि कल्पना करता है कि वारविलासिनियाँ अंगु-लियाँ नहीं चटकाती थीं प्रत्युत मानो उस बहाने हर्ष के प्रति अपना काम विफल पड़ जाने से वे कामदेव के धनुष को व्यर्थ समझ कर क्रोध में तोड़ देती थीं।

हिन्दी—रखा हो, जो अभिलाष के विलास में बिना हेतु के मन्द हासों से मदन की सहायता के लिए मानो चन्द्रोदयों का सृजन कर रही थीं, जो (नृत्य के समय) अंग-भंग की क्रिया में परस्पर मिले और ऊपर ताने हुए हाथों की वेणियों से चटकती हुई अंगुलियों के पर्वों में कुण्डलाकार बनाई जा रही नख किरणावली के बहाने मानो क्रोध में आकर कामदेव के बेकार (पड़े हुए) धनुषों को तोड़ रही थीं, जो (श्रीहर्ष) स्पर्श से पसीजे और कांपते हुए (अपने) कर-पल्लव से (राजा का) चरणारविन्द नीचे गिराये हुए चरण दबाने वाली दासी को हँसकर वीणावादन दण्ड से विलास के साथ सिर पर हल्की-हल्की चोट मार रहा था, जो वीणा-दण्ड को बराबर हाथ में पकड़े रहने के कारण अपनी प्रिय वाणी की तरह प्रिय लक्ष्मी को भी सीख दे रहा था, जो धनों द्वारा स्नेह-शून्य, दोषों द्वारा आश्रय के अयोग्य, इन्द्रियों द्वारा निग्रह-रत, कलियुग द्वारा पास फटकने अयोग्य, व्यसनों द्वारा नीरस, अकीर्ति द्वारा

कलिना नीरस इति व्यसनैर्भीरुरित्ययशसा [illegible] सरस्वत्या षण्ढ इति परकलत्रैः काष्ठामुनिरिति यतिभिर्धूर्त इति वेश्याभिर्नेय इति सुहृद्भिः कर्मकर इति विप्रैः सुसहाय इति शत्रुयोधैरेकमप्यनेकधा गृह्यमाणम्, शन्तनोर्महावाहिनीपतिम्, भीष्माज्जितकाशिनम्, द्रोणाच्चापलालसम्, गुरुपुत्रादमोघमार्गणम्, कर्णान्मित्र-

---

टीका—दुर्व्यसनैः नीरसः शुष्कः इत्यर्थः इति तस्मिन् दुर्व्यसनानि नासन्नित्यर्थः, अयशसा=अपकीर्त्या, भीरुः इति अपयशसः बिभेति स्मेत्यर्थः; चित्तभुवः=चित्तात्=मनसः भूः=उत्पत्तिः यस्य तेन मनसिजेन दुर्ग्रहा=दुःखेन ग्रहीतुं योग्या चित्तवृत्तिः=मनोव्यापारः यस्य सः इति अर्थात् कामः तं वशीकर्तुं नाशक्नोत्, सरस्वती-रूपायाः स्त्रियः स परमभक्तः विद्याव्यसनीति यावत् आसीत्, परकलत्रैः=परस्त्रीभिः=षण्ढः=नपुंसकः इति जितेन्द्रियत्वात् तासु तन्मनो-ऽगमनात् यतिभिः=योगिभिः काष्ठामुनिः=शङ्करानुसारेण काष्ठा=पारावारा [=चरमसीमा] तत्प्रधानो मुनिः काष्ठामुनिः अतिशयवांस्तपस्वी इति। वस्तुतः अस्मिन्नुपवाक्ये कविना राज्ञि आपाततः दोषाः प्रदर्शिताः, तस्मात् काष्ठामुनित्वेनापि आपाततः दोषेण भाव्यं न तु गुणेन यथा शङ्करः प्राह, अतः काष्ठाशब्देनात्र कलायाः त्रिंशत्तमो भागो ग्राह्यः। अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः, इत्यमरः] काष्ठा=क्षणमित्यर्थः तस्या मुनिः क्षणमात्रस्य मुनिरित्यर्थः, वेश्याभिः=वाराङ्गनाभिः धूर्तः=प्रतारकः इति, सुहृद्भिः=मित्रैः नेयः=पर-प्रत्यय-नेय-बुद्धिरित्यर्थः, मित्राणामभिलाषानुसारेण कार्यं करोति स्मेतिभावः विप्रैः=ब्राह्मणैः कर्मकरः=भृत्यः अर्थात् ब्राह्मणवचनानुसारेण यज्ञादिकर्मणां कर्ता, शत्रुयोधैः=शत्रुभूतैः भटैः सुसहायः=सु=शोभनाः सहायाः=सहायकाः यस्य सः अर्थात् तस्मिन् स्वगतगुणो नास्ति, शोभनसहायकैः सहैव कार्यं करोतीति आपाततः दोषः प्रतीयमानोऽपि स स्वमित्रभूतैः सहायकैः राजभिः सत्परामर्शदातृभिः मन्त्र्यादिभिश्च सह कार्यं करोतीति वस्तुतः गुण एव, इति एकं सन्तमपि हर्षम् अनेकधा =अनेकप्रकारैः गृह्यमाणम्=अवबुध्यमानम्। अत्र एकस्य विभिन्नदृष्टिकोणैः ग्रहीतृभिः अनेकधा उल्लिखितत्वात् उल्लेखालङ्कारः। शन्तनोः—अतः परं कविः हर्षं श्लेषमुखेन शन्तन्वादिभ्यो विशिनष्टि—शन्तनोः=भीष्मपितुः गङ्गापतेरिति यावत्। अत्र 'पञ्चमी विभक्ते' पा० २।३।४२ इत्यनुसारेण पञ्चमी, [तदुक्तं सिद्धान्तकौमुद्याम्—'विभागो विभक्तम्, निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्'] अथवा शन्तनुमपेक्ष्येति ल्यब्लोपे पञ्चमी, महावाहिनीपतिम्, शन्तनुः वाहिन्याः=गङ्गायाः पतिः आसीत्, हर्षस्तु तदपेक्षया महतीनां वाहिनीनां=सेनानां पतिः अस्ति, भीष्मात्=भीष्मपितामहात् जितकाशिनम्=जितेन=जयेन [भावे क्तः] काशते=शोभते इति जितकाशी तम्, भीष्मापेक्षया अधिकजयशालिनम् अथवा जितकाशी=जितेन्द्रियः तम् द्रोणात्=गुरुद्रोणाचार्यात् चापलालसम्, द्रोण-पक्षे चापे=धनुषि लालसम्=अनुरक्तम्, हर्ष-पक्षे चपलस्य भावः चापलम्=चाञ्चल्यं तत्र अलसम्=मन्दम्। स चापलं न करोतीत्यर्थः। अथवा चेति समुच्चये अपगता लालसा=लोभः यस्य तम् इति निर्लोभमित्यर्थः, गुरुपुत्रः=अश्वत्थामा तस्मात्; अमोघाः=न कदापि व्यर्थगामिनः मार्गणाः=बाणाः यस्येति गुरुपुत्रपक्षे, अन्यत्र अमोघाः मार्गणाः याचकाः यस्य तम्, याचकानां नियमेन इच्छा-पूरकमित्यर्थः, कर्णात्=राधेयात् मित्रस्य=सूर्यस्य प्रियं तस्य सूर्यपुत्रत्वात्, अन्यत्र मित्राणां सुहृदां प्रियम्; युधिष्ठिरात् बह्वी क्षमा=(राज्यं) पृथिवी यस्य तम्, भीमात्

टिप्पणी—**भीष्मात्**—भीष्म ने परशुराम और काशीराज को भी जीता जिसकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम की तीन कन्याओं को हर कर वह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए ले आया था। किन्तु हर्ष ने तो उससे कितने अधिकों को जीता; भीष्म ने अपने भाई सत्यवती के पुत्रों का राज्याधिकार सुरक्षित रखने के लिए विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके विवशता में जितेन्द्रियता अपनाई थी। किन्तु हर्ष स्वभावतः ही जितेन्द्रिय था।

हिन्दी—भीरु, मदन द्वारा दुर्ग्रह चित्तवृत्ति वाला, सरस्वती द्वारा स्त्रीलंपट, परकीय स्त्रियों द्वारा नपुंसक, यतियों द्वारा क्षणभर का मुनि, वेश्याओं द्वारा धूर्त, मित्रों द्वारा दूसरों के कहे पर चलने वाला, ब्राह्मणों द्वारा भृत्य, योद्धाओं द्वारा अच्छे सहायकों वाला—इस तरह एक होता हुआ भी अनेक तरह समझा जा रहा था, जो एकवाहिनी (गंगा) के पति शन्तनु की अपेक्षा बड़ी-बड़ी वाहिनियों (सेनाओं) का पति था, भीष्म की अपेक्षा (कितना ही अधिक) जितेन्द्रिय था, चापलालस (धनुष प्रेमी) द्रोणाचार्य की अपेक्षा (कितना ही अधिक) चापलालस (चपलता का आलसी) था, अव्यर्थ मार्गणों (बाणों) वाले अश्वत्थामा से भी अधिक अव्यर्थ मार्गणों (याचकों) वाला था, मित्र-प्रिय (सूर्य-प्रिय) कर्ण से अधिक मित्र-प्रिय (मित्रों का प्रिय) था, बड़ी क्षमा [क्षान्तिगुण] वाले युधिष्ठिर से अधिक क्षमा (पृथिवी) वाला था, नागों (सर्पों) के अनेक अयुतों का बल [शक्ति] रखने वाले भीम से कितना

प्रियम्, युधिष्ठिरादधिक[illegible] [illegible] कारणमिव कृतयुगस्य, बीजमिव विबुधसर्गस्य, उत्पत्तिद्वीपमिव दर्पस्य, एकागारमिव करुणायाः प्रातिवेशिकमिव पुरुषोत्तमस्य, खनिपर्वतमिव पराक्रमस्य, सर्वविद्यासङ्गीतकगृहमिव सरस्वत्याः, द्वितीयामृतमथनदिवसमिव लक्ष्मीसमुत्थानस्य, बलदर्शनमिव वैदग्ध्यस्य, एकस्थानमिव स्थितीनाम्, सर्वस्वकथनमिव कान्तेः, अपवर्गमिव रूपपरमाणुसर्गस्य, सकलदुश्चरितप्रायश्चित्तमिव राज्यस्य, सर्वबलसन्दोहावस्कन्दमिव कन्दर्पस्य, उपायमिव पुरन्दरदर्शनस्य, आवर्तनमिव धर्मस्य, कन्यान्तः-

---

टीका—=भीमसेनात् अनेकानि यानि नागानाम् अयुतानि=दशसहस्राणि तेषां बलं यस्य तम् अन्यत्र नागानाम् =हस्तिनाम् अयुतानां बलं=सेना, धनञ्जयात्=अर्जुनात् महाभारत-रणः=महाभारताख्यं युद्धं तस्य योग्यम्, अर्जुनो हि महाभारतयुद्धस्य वीरतमः योद्धा आसीत्, अन्यत्र महान्=विपुलः यः भारः पृथिवीपालनरूपः तस्य तरणस्य =पारगमनस्य निर्वाहणस्येत्यर्थः योग्यम्, अत्र शन्तन्वादीनामपेक्षया हर्षे आधिक्य-प्रतिपादनाद् व्यतिरेकालङ्कारः स च श्लेषमूलकः; कृतयुगस्य कारणम्=हेतुः इव तस्य राज्ये धर्मस्य स्थापनात्, विबुधानां=देवानाम् अथवा विदुषां सर्गस्य=सृष्टयाः बीजम्=निदानम्, स विदुषः प्रोत्साहयतिस्मेति भावः, दर्पस्य=अभिमानस्य उत्पत्तिद्वीपम्=उत्पत्तिस्थानमित्यर्थः, करुणायाः=दयायाः एकागारम्=एकमात्र-भवनम्, पुरुषोत्तमस्य-विष्णोः प्रातिवेशिकम्=प्रतिवेशिनम्, तत्तुल्यमित्यर्थः अथवा पुरुषाणां मध्ये उत्तमस्य=श्रेष्ठस्य, पराक्रमस्य=शौर्यस्य खनिपर्वतम्=आकरगिरिम्, सरस्वत्याः=वाग्देव्याः सर्वाः=सकलाश्च ताः विद्याः तासां सङ्गीतगृहम्=सङ्गीतशालाम्, यथा संगीतगृहं प्राप्य सर्वे प्रहृष्यन्ति तथैव सरस्वत्यपि सकलविद्यास्थानं हर्षं प्राप्य प्रहृष्यति स्मेति भावः, लक्ष्म्याः=देव्याः समुत्थानस्य= समुद्रात् उपरि आगमनस्य, अन्यत्र लक्ष्म्याः=राजलक्ष्म्याः समुत्थानस्य=उदयस्य द्वितीयम् अमृतमन्थनस्य=समुद्र-मन्थनस्येत्यर्थः दिवसं=दिनम्। वैदग्ध्यस्य=नैपुण्यस्य बलस्य=शक्त्याः दर्शनं=प्रदर्शनम् अर्थान्नैपुण्यं तस्मिन् सर्वाधिकशक्त्या आत्मानं प्रकटीचकार, स्थितीनां=मर्यादानाम् एकस्थानम् सर्वाः मर्यादाः तस्मिन्नेकस्मिन् समवेता इत्यर्थः, कान्तेः=सुन्दरतायाः सर्वस्व-कथनं=सर्वस्वप्रख्यापनम्, सुन्दरता तत्सम्बन्धे एष मम सर्वस्वम् इति घोषयति स्मेति-भावः, रूपस्य=सौन्दर्यस्य ये परमाणवः तेषां सर्गस्य=सृष्टेः अपवर्गं=समाप्तिं पूर्णतामित्यर्थः ['स्यादपवर्गस्त्यागे मोक्षे कार्यावसानसाफल्ये' इति मेदिनी] राज्यस्य सकलानि=सर्वाणि यानि दुश्चरितानि दुष्कर्माणि तेषां प्रायश्चित्तं=प्रायशः=पापस्य चित्तं=विशोधनं यस्मात् तादृशः कर्मविशेषः। तदुक्तं स्मृतौ—'प्रायः पापं समुद्दिष्टं चित्तं तस्य विशोधनम्', कन्दर्पस्य=मदनस्य सर्वाणि=समग्राणि च तानि बलानि=सेनाः तेषां यः सन्दोहः=समूहः तेन सह अवस्कन्दः=आक्रमणं तम्, कामिनीनां मोहकत्वाद् इति भावः, पुरन्दरस्य=इन्द्रस्य दर्शनस्य=साक्षात्कारस्य उपायः=साधनम्, अर्थात् तस्मिन् इन्द्रदर्शनं भवति स्म, धर्मस्य=सत्कर्मणामित्यर्थः आवर्तनम्=अभ्यासः पुनः पुनरनुष्ठानमित्यर्थः, स निरन्तरं धर्मम् अभ्यस्यति स्मेति भावः, कलानां=सङ्गीतादीनां कन्यान्तःपुरं=कन्यावरोधम् यथा कन्याः अन्तःपुरे स्वच्छन्दमितस्ततः परिभ्रमन्ति, तथैव सर्वाः कलाः सम्पूर्णतया तस्मिन् विलसन्ति स्मेत्यर्थः।

टिप्पणी—अनेकनागायुत० भीम को विष देकर दुर्योधन ने जल में डुबो दिया था जहां से वह पाताल चला गया और वासुकि नाग की कृपा से अयुतों नागों का बल प्राप्त करके वापस भूतल पर आ गया [महाभा० आदि० प० १२८-२९]। काले का कहना है कि हर्ष में इतने गुण थे कि वे अपनी प्रजा के किये हुए पापों को धो डालते थे, परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि उसकी प्रजा पाप ही नहीं करती थी। इसका उचित अर्थ यही दीखता है कि वह इतना पवित्र और धर्मात्मा था कि उसके पूर्ववर्ती राजाओं ने राज्य हथियाने में जो-जो पाप किये थे उनका प्रायश्चित्त हर्ष ने अपनी साधुता से कर दिया।

हिन्दी—ही अधिक नागों (हाथियों के अनेक अयुतों का बल [सेना] रखने वाला था, महाभारत-रण (युद्ध) के योग्य अर्जुन से और अधिक महाभारतरण [महान् भार=राज्यभार के तरण=पार करने, निभाने] के योग्य था, जो सत्ययुग का कारण, विद्वानों के सृजन का बीज-जैसा, अभिमान का उत्पत्ति-द्वीप जैसा, करुणा का एक-मात्र घर-जैसा, पुरुषोत्तम (विष्णु) का पड़ोसी-जैसा, शौर्य की खान का पर्वत-जैसा, सरस्वती का सभी विद्याओं का संगीत-गृह-जैसा, लक्ष्मी के अभ्युत्थान का दूसरा अमृत-मन्थन का दिन-जैसा, निपुणता का बल-प्रदर्शन-जैसा, मर्यादाओं का एक स्थान-जैसा, कामदेव का सारे सैन्य समूह के साथ आक्रमण-जैसा, इन्द्र का साक्षात्कार करने का उपाय-जैसा, धर्म का बार-बार अनुष्ठान-जैसा, कलाओं का कन्यान्तःपुर-जैसा, सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण-जैसा, सभी प्रजापतियों

पुरमिव कलानाम्, परमप्रमाणमिव सौभाग्यस्य, राज्ञां सर्गसमाप्त्यवभृथस्नानदिवसमिव सर्वप्रजापतीनाम्, गम्भीरं च प्रसन्नं च त्रासजननं च रमणीयं च कौतुकजननं च पुण्यं च चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीत् ।

दृष्ट्वा चानुगृहीत इव निगृहीत इव साभिलाष इव तृप्त इव रोमाञ्चमुचा मुखेन मुञ्चन्नानन्दबाष्पवारिबिन्दून्दूरादेव विस्मयस्मेरः समचिन्तयत्—'सोऽयं सुजन्मा सुगृहीतनामा तेजसां राशिः चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य सकलादिराजचरितजयज्येष्ठमल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः । एतेन च खलु राजन्वती पृथ्वी, नास्य हरेरिव

टीका—सौभाग्यस्य=सौन्दर्यस्य परमं=सर्वोत्कृष्टं प्रमाणं दृष्टान्तस्थानीयमिति यावत्, सर्वेषां=समग्राणां प्रजापतीनां=स्रष्टॄणां, राज्ञां=भूपानां सर्गस्य=सृष्टेः समाप्तौ=अवसाने अवभृथ-स्नानस्य=यज्ञान्त-स्नानस्य दिवसं=दिनम्, इवेति सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः; इतः परं त्रिषु शब्द-युगलेषु विरोधाभासः, गम्भीरं=गहनं सतमिन्नमिति यावत् प्रसन्न=निर्मलञ्च यत्खलु गम्भीरं तत् प्रसन्नं पारदर्शकमिति यावत् न भवतीति विरोधः, तत्परिहारस्तु गम्भीरं=प्रशान्तं प्रसन्नं=सानुकम्पम्; त्रासजननं=भयकारकम् अथ च रमणीयं=रम्यम् इति विरोधः, शत्रूणां भयकारकत्वे तत्परिहारः, एतद्विरोधसमन्वये कालिदासोऽपि दृश्यताम् 'भीम-कान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् । अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः' रघु० १।१६; कौतुकस्य=कुतूहलस्य जननं=जनकं पुण्यं=पवित्रं च, शङ्करानुसारेण 'कौतुकजननम् अपुण्यत्वादपि संभाव्यते', तत्र पुण्यत्वमिति विरोधः, कौतुकम्=आह्लादः तस्य जननमिति तत्परिहारः, चक्रवर्तिनं=सार्वभौमम् हर्षम् अद्राक्षीत्=अपश्यत् बाण इति शेषः । दृष्ट्वा=अवलोक्य (हर्षम्) अनुगृहीतः=अनुकम्पितः, राज्ञः दर्शनेनेत्यर्थः, निगृहीतः=रुद्धः राज्ञः तेजसा इत्यर्थः, साभिलाषः=अभिलाषेण=मुहुर्मुहुर्दर्शनस्य इच्छया सहितः, तृप्तः=सन्तुष्टः अलभ्यदर्शनलाभात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अनुगृहीत-निगृहीतयोः, साभिलाष-तृप्तयोश्च विरोधाभासश्चापि व्यङ्ग्यः; रोमाञ्चं=रोम-हर्षं मुञ्चति=प्रकटयतीत्यर्थः ०मुच् तेन (कर्तरि क्विप्) मुखेन मुञ्चन्=त्यजन् प्रवाहयन्नित्यर्थः । आनन्दस्य=हर्षस्य बाष्पवारिणः=अश्रुजलस्य बिन्दून्=कणान् दूरात् एव विस्मयेन=आश्चर्येण स्मेरः=स्मययुक्तः बाणः समचिन्तयत्=विचारमकरोत्—सः अयं सुजन्मा सु=शोभनं जन्म यस्य सः सुकुलोत्पन्नः इत्यर्थः । सुगृहीतं=सुसमादृतं नाम यस्य सः स्वनामधन्यः इति यावत्, तेजसां=प्रतापानां राशिः=समूहः । चतु०=चत्वारश्च ते उदधयः=समुद्राः एव केदारं=क्षेत्रं तेन कुटुम्बी=कुटुम्बवान् अर्थात् यः सकलमपि विश्वम् एकं कुटुम्बमिव पश्यति स्म, यथोक्तम् 'उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' । ब्रह्मस्तम्भः ब्रह्माण्डं तस्य फलस्य भोक्ता=आस्वादयिता, संसारे यत्किमपि सर्वोत्तमं तत्तेन भुक्तमित्यर्थः । सकलानां=समस्तानाम् आदिराजानां आदियुगीन-नृपाणां मन्वादीनां चरितं=चरित्रं कर्मजातमित्यर्थः तस्य जये=पराजये ज्येष्ठः प्रधानः मल्लः=वीरः इत्यर्थः, स पूर्ववर्तिसमस्तादिम-राजातिशायीत्यर्थः परमेश्वरः=महाराजाधिराजः । एतेन=हर्षेण खलु=निश्चयेन पृथिवी=धरा राजन्वती=सुष्ठु राजा अस्याः अस्तीति ['सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः] 'राजन्वान् सौराज्ये' पा० ८।२।१४ । अस्य हर्षस्य हरेः=विष्णोः इव बाल-चरितानि=बाल्यावस्थाकर्माणि । वृषस्य=धर्मस्य ['सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः] । हरिपक्षे—वृषस्य=वृषभस्य वृषभासुरस्येत्यर्थः । हर्षेण बाल्यावस्थायामपि किमपि वृष-(धर्म) विरुद्धं नाचरितम्, कृष्णेन तु वृषः (वृषभासुरः) मारितः इति भावः, न पशुपतेः=शिवस्य इव

टिप्पणी—अवभृथ-स्नान—यज्ञ-समाप्ति पर किये जाने वाले स्नान को अवभृथ-स्नान कहते हैं । प्रजापतियों को सृष्टि-निर्माण-कार्य सौंपा गया । उन्होंने राजाओं का भी सृजन किया जिनमें उनकी चूड़ान्तरचना श्रीहर्ष है । सृष्टि-यज्ञ समाप्त हो गया । अतः हर्ष प्रजापतियों का मानो यज्ञान्त-स्नान दिन है ।

हिन्दी—का राजाओं की निर्माण-समाप्ति पर अवभृथ-स्नान का दिन-जैसा प्रतीत हो रहा था, जो गम्भीर [१-गहर २-प्रशान्त] और प्रसन्न [१-निर्मल २-दयालु] था, भयकारक और रमणीय था, एवं जो कौतुक [१-कुतूहल २-आह्लाद] उत्पन्न करने वाला और पवित्र था ।

देखकर अनुगृहीत हुआ-जैसा, रोका हुआ-जैसा, इच्छुक हुआ-जैसा, तृप्त हुआ-जैसा [बाण] रोमाञ्च भरे मुख से आनन्द के अश्रु बिन्दुओं को छोड़ता हुआ दूर से ही आश्चर्य में मुस्काता सोचने लगा—यह है यह उच्चकुलीन, स्वनामधन्य, तेजों का ढेर, चार-समुद्ररूपी खेत का स्वामी, संसार के फलों का भोक्ता, आदिकाल के सभी राजाओं के चरितों को जीतने वाला प्रधान वीर महाराजाधिराज हर्ष । और इससे (ही) पृथिवी अच्छे राजाओं

वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षोद्वेगकारीण्यैश्वर्यविलसितानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुनाः प्रवादाः, न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, न वरुणस्येव निस्त्रिंशग्राहसहस्ररक्षिता रत्नालयाः, न धनदस्येव निष्फलाः सन्निधिलाभाः, न जिनस्येवार्थवादशून्यानि दर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुलदोषोपहताः श्रियः। चित्रमिदमत्यमरं राजत्वम्। अपि चास्य त्यागस्यार्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि,

---

टीका—दक्षाणां=निपुणानाम्, पक्षे दक्षस्य=दक्षप्रजापतेः स्वश्वसुरस्येति यावत् उद्वेगं भयं कुर्वन्तीति ०कारीणि, ऐश्वर्यस्य=राजत्वस्य, पक्षे ईश्वरस्य=ईशस्य महाशक्तिसम्पन्नस्येत्यर्थः विलसितानि=कार्याणि। शिवेन स्वमहाशक्त्या वीरभद्रादीन् सृष्ट्वा दक्षप्रजापतेः ध्वंसः कृतः इति पुराणेषु द्रष्टव्यम्। न शतक्रतोः=इन्द्रस्य इव गोत्रस्य=कुलस्य अन्यत्र गां=पृथिवीं त्रायन्ते=रक्षन्तीति गोत्राः=पर्वताः तस्य तेषां च यः विनाशः=ध्वंसः तस्य पिशुनाः=सूचकाः [पिशुनौ खल-सूचकौ इत्यमरः] प्रवादाः=जनरवाः अन्यत्र उल्लेखाः। पुरा पर्वतानां पक्षाः भवन्ति स्म, इन्द्रेण तु ते छिन्नाः अतएव स गोत्रभिद् इत्युच्यते पुराणेषु; न यमस्य=कृतान्तस्य इव अतिवल्लभानि=अत्यन्तप्रियाणि दण्डस्य=शासन-यष्टिकायाः अन्यत्र दण्डानाम्=अपराधिभ्यः दमनार्थं गृह्यमाणानां धनानां ग्रहणानि=धारणानि आदानानि; न वरुणस्य=जलाधिष्ठातृदेवस्य इव निस्त्रिंशान् खड्गान् गृह्णन्ति=धारयन्तीति निस्त्रिंशग्राहाः खड्गधारिणः पुरुषाः अन्यत्र निस्त्रिंशाः=क्रूराः ये ग्राहाः=मकरमत्स्याः तेषां सहस्रैः सहस्रसंख्याभिः रक्षिताः=कृतरक्षाः रत्नालयाः =भाण्डागाराणि अन्यत्र समुद्राः; न धनदस्य=कुबेरस्य इव निष्फलाः=व्यर्थाः, सन्निधेः=सान्निध्यस्य पार्श्वे आगमनस्येत्यर्थः, लाभाः=प्राप्तयः अर्थात् हर्षस्य सान्निध्यप्राप्तिः सफला भवति न पुनः यथा कुबेरस्य सताम्=उत्तमानां निधीनां=नवविधमहापद्मादीनां लाभाः विफला जायन्ते, कुबेरः निधिपतिः, परन्तु कस्मैचित् न किमपि ददातीति भावः; न जिनस्य=बुद्धस्य इव अर्थः=धनम्, वादः=तद्विषयक-चर्चा ताभ्यां शून्यानि=रहितानि दर्शनानि हर्ष-साक्षात्काराः। अर्थात् ये हर्षस्य दर्शनं कुर्वन्ति तेभ्यो धनं दीयते, दत्तधनविषये च लोके चर्चा भवति, किन्तु बुद्धस्य दर्शनानि जगद्विषयकचिन्तनसिद्धान्ताः अर्थानां=बाह्यपदार्थानां वादः=स्वीकरणं तेन शून्यानि भवन्ति। बौद्धा हि क्षणिकविज्ञानवादिनः, अतः विज्ञानातिरिक्तबाह्यवस्तूनाम् अस्तित्वं ते न मन्यन्ते, जगतो विज्ञानमयत्वात्, न चन्द्रमसः= चन्द्रस्य इव बहुलैः=बहुभिः दोषैः=रागद्वेषादिभिः उपहता आक्रान्ताः दूषिताः इति यावत् अन्यत्र बहुलस्य =कृष्णपक्षस्य दोषाः=रात्रयः तासु उपहताः न्यूनीकृताः श्रियः=लक्ष्म्यः समृद्धयः इत्यर्थः अन्यत्र शोभाः। उपरि सर्वत्र हर्यादिभ्यो हर्षे आधिक्यप्रतिपादनाद् व्यतिरेकः। चित्रम्=आश्चर्यकरम् इदम् अस्य=हर्षस्य अत्यमरम्= अमरान्=देवान् अतिक्रान्तम् राजत्वं=नृपत्वम्। अपि च अस्य=हर्षस्य त्यागस्य=दानस्य अर्थिनः न पर्याप्तः= परिपूर्णः विषयः=गोचरः स्थानमित्यर्थः इति सर्वत्र योजनीयम्, अर्थात् तस्य दानितायाः उपयोगार्थं पर्याप्ताः अर्थिनः न लभ्यन्ते, तस्य प्रज्ञायाः=शेमुष्याः शास्त्राणि न पर्याप्तः विषयः, कवित्वस्य=कविकर्मणः वाचः =गिरः न पर्याप्तः विषयः अर्थात् तत्कवित्वगुण-प्रकाशनाय वाणी विफलीभवति; सत्त्वस्य=बलस्य साहसस्थानानि

हिन्दी—वाली है। विष्णु के वृष-(वृषभासुर) विरोधी बाल-चरितों की तरह इसके बाल-चरित वृष-(धर्म) विरोधी नहीं हैं; शिव के दक्ष [दक्ष प्रजापति] को उद्विग्न कर देने वाले ऐश्वर्य (अपार-शक्ति) के कार्यों की तरह इसके ऐश्वर्य [राजत्व] के कार्य उद्विग्न करने वाले नहीं हैं; इन्द्र के गोत्रों [पर्वतों] के विनाश-सूचक प्रवादों [उल्लेखों] की तरह इसके प्रवाद (चर्चा) गोत्र (कुल) के विनाश-सूचक नहीं हैं, यमराज को अति प्रिय लगने वाले दण्ड-ग्रहण [यष्टि-धारण] की तरह इसे दण्डग्रहण [जुर्माना लेना] अतिप्रिय नहीं लगता है; वरुण के निस्त्रिंश-ग्राहों [क्रूर मगरमच्छों] की सहस्रों संख्या द्वारा रक्षित रत्नालयों [समुद्रों] की तरह इसके रत्नालय [खजाने] सहस्रों निस्त्रिंश-ग्राहों [खड्ग-धारियों] द्वारा रक्षित नहीं होते हैं, कुबेर को मिली व्यर्थ पड़ी सन्निधियों [अच्छी निधियों] की तरह इसकी सन्निधि-[सान्निध्य] प्राप्तियाँ व्यर्थ नहीं जाती हैं; इसके दर्शन [साक्षात्कार] अर्थवादशून्य [धन और तद्विषयक चर्चा से रहित] नहीं होते हैं जैसे कि बुद्ध के दर्शन [फिलासफी] अर्थवादशून्य [बाह्य-वस्तुओं के अस्तित्व सिद्धान्त से शून्य] हुआ करते हैं; इसकी लक्ष्मियाँ (समृद्धियाँ) बहुत से दोषों, रागद्वेषादि से आक्रान्त नहीं रहती हैं, जैसे कि चन्द्रमा की लक्ष्मियाँ (शोभा) बहुल [कृष्ण-पक्ष] की दोषाओं (रात्रियों) से आक्रान्त रहा करती हैं। आश्चर्य की बात है कि इसका राजत्व देवताओं को (भी) अतिक्रमण कर बैठा है। अपि च याचक इसके दान के लिए पर्याप्त विषय नहीं हैं, शास्त्र

उत्साहस्य व्यापाराः, कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला, न पर्याप्तो विषयः। अस्मिश्च राजनि यतीनां योगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां पादच्छेदाः, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः इति। समुपसृत्य चोपवीती स्वस्तिशब्दमकरोत्।

अथोत्तरेण नातिदूरे राजधिष्ण्यस्य गजपरिचारको मधुरमपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

टीका—न पर्याप्तः विषयः अर्थात् तस्मिन्नेतावदधिकं बलमस्ति यत्प्रदर्शनाय स्थानानि न मिलन्ति। उत्साहस्य=उत्साहशक्तेः, राज्ञि तिस्रः शक्तयो भवन्ति—प्रभुशक्तिः, उत्साहशक्तिः, मन्त्र-शक्तिश्च, व्यापाराः=कार्याणि न पर्याप्तः विषयः। कीर्तेः=यशसः दिङ्मुखानि=दिग्विभागाः न पर्याप्तः विषयः अर्थात् तस्य यशः एतावदधिकमस्ति यत् तदवस्थानाय दश दिशाः अपर्याप्ताः, अनुरागस्य=प्रीतेः लोकानां=जनानां हृदयानि=मनांसि न पर्याप्तः विषयः। गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनां गणः=समूहः तस्य संख्या न पर्याप्तः विषयः अर्थात् तदुगतगुण-राशिः संख्यामत्येति, कौशलस्य=नैपुण्यस्य कलाः=चतुःषष्टिसङ्ख्यकाः शिल्पाद्याः न पर्याप्तः विषयः। उपरि सर्वत्र आश्रयापेक्षया आश्रयिणामाधिक्याद् अधिकालङ्कारः। अस्मिन् राजनि=हर्षे अस्य राजत्वे इति यावत् यतीनां=योगिनां योगपट्टकाः=योगसाधनार्थं वस्त्रविशेषाः न पुनः राज्ये योगः=कूटकर्म तद्युक्ताः पट्टाः=आज्ञापत्राणि; इतः परिसंख्या चलति; पुस्तकर्मणां=पुत्तलिकानिर्माण-कार्याणां ('पुस्तं लेप्यादिकर्मणि' इत्यमरः) पार्थिवाः=पृथिवीसम्बन्धिनः मृत्तिकारचिता इत्यर्थः, विग्रहाः=शरीराणि मृदा पुत्तलिकाः निर्मीयन्ते इत्यर्थः, न पुनः पार्थिवानां=महीपानां विग्रहाः=युद्धानि सर्वेषामधीनीकृतत्वात्, षट्पदानां=मधुकराणां दानं=करिणां मद-जलं तस्य ग्रहणे=आदाने कलहाः संघर्षाः न पुनः याचकानां दानस्य=दीयमानद्रव्यस्य ग्रहणे कलहाः, सर्वेषां शान्त्या दानग्रहणात् वृत्तानां=छन्दसां गुरुलघुनियमात्मकानां पादानां=भागानां छेदाः=विरामाः, न पुनः राज्ये अपराधे चरणकर्तनानि, अष्टापदानां=शारिफलकानां चतुरङ्ग-कल्पना चतुर्णां हस्त्यश्वादीनाम् अवयवानां रचना न पुनः चतुर्णामङ्गानां=हस्तपादस्य कल्पना=कल्पनं छेदनम् ['कल्पनं छेदनम्' इति त्रिकाण्डशेषः] जनानां तादृशमहापापाकरणात्; पन्नगानां=सर्पाणां द्विजानां=पक्षिणां यः गुरुः=श्रेष्ठः गरुडः इत्यर्थः तस्मिन् द्वेषाः=घृणा तस्य सर्पमारकत्वात्, न पुनः द्विजेषु=ब्राह्मणेषु गुरुषु=आचार्येषु च जनानां द्वेषः, जनानां सदा द्विजगुरुभक्तत्वात्, वाक्यानि=वेदवाक्यानि विदन्ति=विचारयन्ति इति वाक्यविदो मीमांसकाः तेषाम् अधिकरणानां='विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। निर्णयश्चेति सिद्धान्तः शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्' इत्युक्तलक्षणानां विचाराः=समालोचनानि न पुनः अधिकरणानां=न्यायाधिकरणानां विचाराः=कस्यापि अपराद्धत्वानपराद्धत्वपरीक्षणानि, जनेषु विवादाभावात्, इति [चिन्तयित्वा] बाणः उपसृत्य=राजानमुपगम्य उपवीती=उत्थापित-दक्षिण-हस्तः ['प्रोद्धिते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः' इति क्षीरस्वामी] स्वस्ति=कल्याणम् अस्त्विति शेषः, शब्दम् अकरोत्=उदचारयदित्यर्थः। अथ=एतदनन्तरम् उत्तरेण=उत्तरभागतः राज-धिष्ण्यस्य=राजसदनस्य ('धिष्ण्यं स्थाने गृहे' इत्यमरः) नातिदूरे=किञ्चिद्दूरे गज-परिचारकः=हस्तिपक इत्यर्थः, मधुरम् अपरवक्त्रं=छन्दोविशेषम् उच्चैः=तारस्वरेण अगायत्

हिन्दी—इसकी प्रज्ञा के लिए, वाणी इसके कवि कर्म के लिए, साहस के स्थान इसके बल के लिए, काम इसके उत्साह के लिए, दिशा-विभाग इसके यश के लिए, लोगों के हृदय इसके अनुराग के लिए, संख्या इसके गुण-गण के लिए और कला इसके कौशल के लिए पर्याप्त-विषय नहीं हैं, इसके राजा रहते-रहते योगियों के योग-पट्टक [योगसाधनार्थ वस्त्र] होते हैं, राज्य में योगपट्टक=छल से बनाए हुए दान-पत्र नहीं होते; मूर्तियों के निर्माण-कार्यों में पार्थिव विग्रह(मिट्टी की देह) होते हैं, राज्य में पार्थिव विग्रह—राजाओं में युद्ध नहीं होते; भ्रमरों में दान-[मदजल]-ग्रहण के समय संघर्ष होता है, राज्य में दान (दक्षिणा) ग्रहण करने में कोई झगड़े नहीं होते; छन्दों के पादच्छेद (चरण-विराम) होते हैं, राज्य में लोगों का पाद-च्छेद (पैरों का काटना) नहीं होता; शतरंज के मोहरों की चतुरङ्ग कल्पना [हाथी-घोड़े आदि की स्थापना] होती है, राज्य में चतुरंगों [हाथ-पैरों] की कल्पना (कटाई) नहीं होती; साँपों का द्विज-गुरु[गरुड़]से द्वेष रहता है, राज्य में द्विज-गुरुओं [ब्राह्मणों और शिक्षकों] से नहीं; मीमांसकों के अधिकरणों में विचार होते हैं; राज्य के न्यायाधिकरणों में नहीं। इस तरह आगे बढ़ कर दायाँ हाथ उठाए [बाण] ने 'स्वस्ति' शब्द कहा।

इसके बाद उत्तर दिशा में राजगृह से कुछ ही दूर महावत ने ऊँचे स्वर में (यह) मधुर अपरवक्त्र गाया।

करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः ।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः ॥ ५ ॥

राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च तं गिरिगुहागतसिंहबृंहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—'एष स बाणः, इति । 'यथाज्ञापयति देवः । सोऽयम्' इति विज्ञापितो दौवारिकेण । 'न तावदेनमकृतप्रसादः पश्यामि' इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकशारां तिरस्करिणीमिव भ्रमयन्नपाङ्गनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराजसूनोरकथयत्—'महानयं भुजङ्गः' इति । तूष्णीम्भावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—'देव अविज्ञाततत्त्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव,

टीका—=गीतवान् । करिकलभ—हे करिकलभ=हस्तिशिशो ! लोलतां=चापल्यं विमुञ्च=परित्यज, आनतं =नम्रीभूतम् आननं=शिरो यस्य तथाभूतस्त्वं विनयस्य=अनुशासनस्य नम्रताया इति यावत् व्रतं=नियमं चर=कुरु। औद्धत्यं विहाय नम्रतामङ्गीकुरु इत्यर्थः, यद्येवं न करिष्यसि तर्हि मृगपतेः=सिंहस्य यः नखः=नखरः तस्य या कोटिः= अग्रं तद्वद्भङ्गुरः=कुटिलः गुरुः=महान् अङ्कुशः=सृणिः ते=तव उपरि न क्षमते=सहते क्षमां न करिष्यतीत्यर्थः।

अत्र व्यञ्जनया प्रस्तुतकरिकलभेन प्रस्तुतः बाणोऽपि बोध्यते इति प्रस्तुतात् प्रस्तुतस्य व्यञ्जनया अप्पयदीक्षित-सम्मतः प्रस्तुताङ्कुरोऽलङ्कारः ॥५॥

टिप्पणी—करिकलभ—यह अपरवक्त्र एक अन्योक्ति है। काले ने इसे हर्षपरक बताया है । किन्तु यह उचित नहीं । हर्ष पर गुरु के अनुशासन का प्रश्न ही नहीं उठता जबकि वह स्वयं ही स्वभावतः अनुशासित और चपलताओं से परे है, अतः करिकलभ यहां बाण को लक्ष्य करता है, जो अपनी तरुणाई की चपलताओं से कुख्यात हो गया था। गुरु से यहां हर्ष की ओर संकेत है जो सभी का अनुशासक है। इसलिए गज-परिचारक एक ओर जहां राजा को बाण की उपस्थिति की याद दिलाता है, वहां दूसरी ओर, बाण को भी समझा देता है ।

टीका—राजा तत्=गानं श्रुत्वा=आकर्ण्य दृष्ट्वा=अवलोक्य च तं=बाणम्। गिरि०—गिरेः=पर्वतस्य गुहायां= गह्वरे गतः=स्थितः यः सिंहः तस्य बृंहितवत्=गर्जनवत् 'बृंहितं करिगर्जितम्' इत्यमरानुसारेण करिपरको बृंहित-शब्दः सिंहपरकोऽपि गृह्यते । गम्भीरेण=गभीरेण स्वरेण=ध्वनिना नभोभागं=गगनभागं पूरयन्=भरन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अपृच्छत्='एषः पुरःस्थितः स बाणः' इति विज्ञापितः=बोधितः दौवारिकेण=द्वारपालेन न तावत् एनं=बाणं न कृतः=अनुष्ठितः प्रसादः=कृपा बाणे इति शेषः येन सोऽहं पश्यामि अवलोकयामि, अर्थात् एष नास्ति मे कृपाभाजनम् अतो न पश्यामि । अथवा न कृतः प्रसादः=प्रसन्नता ममेत्यर्थः येन सः अर्थात् अप्रसन्नोऽहं न पश्यामि; तिर्यक्=वक्रं यथा स्यात्तथा नील०—नीलैः नीलवर्णैः धवलैः=श्वेतैः अंशुकैः=किरणैः अन्यत्र वस्त्रैः शाराम्=शबलाम्, तिरस्क-रणीम्=जवनिकाम् इवेत्युपमायाम्, भ्रामयन् घूर्णयन्, अपाङ्ग०— अपाङ्गे=नेत्रप्रान्ते नीयमाना=प्राप्यमाणा तरला =चञ्चला । तारका=कनीनिका यस्य तस्य आयामिनीम्=आयतां दीर्घामित्यर्थः चक्षुषः=नयनस्य प्रभां=कान्तिम्, परिवृत्य=विमुखीभूयेत्यर्थः प्रेष्ठस्य=(प्रिय+इष्ठन्) अतिशयेन प्रियस्य, पृष्ठतः=पृष्ठभागे निषण्णस्य=स्थितस्य मालवराजस्य=मालवाधिपतेः सूनोः=पुत्रस्य, सम्बन्ध-विवक्षायां षष्ठी, अकथयत् अयं=बाणः महान् भुजङ्गः= पिङ्गः लम्पटः इति यावत् ('भुजङ्गः सर्प-पिङ्गयोः' इति हेमचन्द्रः) तूष्णीम्भावेन=मौनेन तु न गभितम् अविज्ञातं नरेन्द्रवचः=राज्ञः कथनम् येन तस्मिन्, राज-लोके=राज्ञां समूहे मूके=तूष्णीं स्थिते मुहूर्तमिव=क्षणपर्यन्तम्। इवात्र वाक्यालङ्कारे, तूष्णीं स्थित्वा=मौनम् आकलय्य बाणः व्यजिज्ञपत्=निवेदयामास । अविज्ञा०—न विज्ञातं= बुद्धं तत्त्वं=याथार्थ्यं येन सः इव अश्रद्दधानः=अविश्वसन् इव नेयः=परबुद्धिपरवशः, न विदितः=ज्ञातः

हिन्दी—'ओ करि-शिशु ! छोड़ दे चपलताओं को अपनी तू, नत-शिर हो करके अपनाले विनय-व्रत अब तू ।
मृगपति-नख-कोटि-कुटिल अंकुश गुरु है ऊपर यह। क्षमा नहीं कर सकता और अधिक तुझको अब यह ॥'

राजा ने यह सुनकर और उसको देख कर पहाड़ की गुफा में बैठे हुए सिंह की गर्जना के समान गम्भीर स्वर से आकाश के भाग को भरते हुए-जैसे पूछा—'यह वह बाण है ?' 'जैसी आप आज्ञा करें महाराज, यह वह है'। इस तरह द्वारपाल के निवेदन करने पर [राजा] 'अप्रसन्न हुआ मैं इसे अभी नहीं देखता' [यह कहकर] नीले और सफेद कपड़ों से बहुरंगी बने पर्दे की तरह [अपनी] नील-श्वेत किरणों से चितकबरी [एवं] कनखियों तक पहुंचाई

प्रविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि । स्वैरिण्यो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च । महाद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम् । नार्हसि मामन्यथा सम्भावयितुमविशिष्टमिव । ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम् । यथाकालमुपनयनादयः कृताः संस्काराः । सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः । श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि । दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि । का मे भुजङ्गता । लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवमशून्यमासीत् । अत्रानपलापोऽस्मि । अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम् । इदानीं तु सुगत इव शान्तमनसि मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां

टीका—लोकवृत्तान्तः=लोकचरितं येन सः, इव कस्मात्=कथम् एवम् आज्ञापयसि=कथयसीत्यर्थः । स्वैरिणः=स्वतन्त्राः विचित्राः अद्भुताः लोकस्य=जनानां स्वभावाः=प्रकृतयः प्रवादाः=किंवदन्त्यः । महद्भिः =महापुरुषैः भवत्सदृशैरित्यर्थः, यथार्थं = सत्यं पश्यन्तीति तैः भवितव्यम् = भाव्यम्, अविशिष्टम्= साधारणम् इव माम् अन्यथा=मिथ्याप्रकारेण सम्भावयितुम्=अवबोद्धुम् न अर्हसि=न योग्योऽसि । अहं, सोमं पिबन्तीति सोमपायिनः तेषां=सोमयाग-सम्पादकानामित्यर्थः वात्स्यायनानाम् = वत्समुनेः अपत्यानां वंशे=कुले जातः=उत्पन्नः, कालम् अनतिक्रम्य इति यथाकालम्, उचित-समये इत्यर्थः, उपनयनम् आदिः येषां तथाभूताः संस्काराः=श्रौत-स्मार्त्त-विषयः कृताः=अनुष्ठिताः, अङ्गैः=शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्दोज्योतिषैः सहितः इति साङ्गः वेदः=वेदशास्त्रं सम्यक्=साधु पठितः=अधीतः । यथाशक्ति=शक्त्यनुसारं शास्त्राणि =न्याय-वेदान्तालङ्कारादीनि श्रुतानि=आकर्णितानि, दाराणां=परिग्रहः=विवाहः इत्यर्थः तस्मात् कारणात् अभ्यागारिकः=कुटुम्ब-व्यापृतः गृहस्थः इति यावत् [कुटुम्बव्यापृतस्तु यः । स्यादभ्यागारिकः इत्यमरः 'अभितोऽगारे भवः अभ्यागारिकः' इति क्षीरस्वामी) । का मे भुजङ्गता=लम्पटता ? लोकयोः=इहलोक-परलोकयोः द्वयं=द्वैतं तस्य अविरोधिभिः=अविरुद्धैः तु चापलैः=चपलताभिः शैशवं=शिशुत्वम् अशून्यं=न शून्यम् अरहितम् । अत्र=

टीका—अस्मिन् विषये अनपलापः=न अपलापः=अपह्नवः गोपनमितियावत् यस्य सः । अनेन=कर्मणा एव गृहीतः=कलितः विप्रतीसारः=पश्चात्तापः येन तत् ('पश्चात्तापोऽनुतापश्च विप्रतीसार इत्यपि' इत्यमरः) इव मे हृदयं =मनः । इदानीं=सम्प्रति सुगते=बुद्धे इव शान्तं=शमोपेतं मनः=चित्तं यस्य तस्मिन्, मनौ=आदिराजे अथवा धर्मशास्त्रकारे वर्णाः=ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः, आश्रमाः=ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थसंन्यासाः तेषां व्यवस्थानां =नियमानां कर्तरि=अनुष्ठातरि, समवर्तिनि=यमे इव ('धर्मराजः पितृपतिः समवर्ती परेतराट्' इत्यमरः) साक्षात् =प्रत्यक्षं दण्डं=दमनं बिभर्ति=धरतीति दण्डभृत् तस्मिन् देवे=महाराजे शासति=पालयति । सप्ताम्बु० सप्त च ते

टिप्पणी—का मे भुजङ्गता ? इस वाक्य के तीन अर्थ किये जा सकते हैं (१) का मे भुजङ्गता=लम्पटता अर्थात् मेरी चञ्चलता क्या है ? (२) कामे भुजङ्गता=चञ्चलता तो काम—मदन—में हुआ करती है। (३) का मे भुजंगता=कौन मेरी भुजा में आई अर्थात् मैंने किस स्त्री का आलिंगन किया ? यों ही मुझे लांछित किया जा रहा है।

मधु पिबन्ति—मधु शब्द में कवि ने श्लेष का चमत्कार भर रखा है। मधु सुरा को भी कहते हैं। हर्ष के राज्य में सुरा-पान पूर्णतः निषिद्ध था। मनुष्यों की बात छोड़िये, भ्रमर भी इस भय से कि राजा हमें दण्ड न दे बैठे, डर-डर कर मधु (पुष्परस) पान करते थे।

हिन्दी—हुई चंचल कनीनिका वाली चितवन-छटा को घुमाता हुआ, मुड़ कर पीठ पीछे बैठे हुए [अपने] बड़े प्रिय मालव-राजकुमार से बोला—'यह बड़ा लम्पट [लोफर] है'। किन्तु चुप्पी साधे हुए उसको राजा की बात समझ में न आने पर एवं राज-समूह के मौन रहने पर कुछ क्षण चुप बैठकर बाण निवेदन कर बैठा—'महाराज सचाई न जाने हुए-जैसे, विश्वास न करते हुए-जैसे, दूसरों के कहने पर चलते हुए-जैसे, और संसार का समाचार न विदित किए हुए-जैसे (आप) क्यों ऐसा कह रहे हैं ? लोगों की प्रकृतियाँ और किंवदन्तियाँ तो मनमानी तथा विचित्र हुआ करती हैं। बड़ों को यथार्थदर्शी होना चाहिए। आप साधारण पुरुष की तरह मेरे सम्बन्ध में अन्यथा कल्पना न कीजिए। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायनों के कुल में उत्पन्न हुआ ब्राह्मण हूँ। उचित समय में मेरे उपनयन आदि संस्कार हो रखे हैं। मैं अङ्गों सहित वेद पढ़ा हुआ हूँ। शक्ति के अनुसार मैंने शास्त्रों का श्रवण कर रखा है। विवाह हो जाने के कारण मैं पक्का गृहस्थी हूँ। मुझ में क्या चञ्चलता है। इहलोक और परलोक—दोनों के विरुद्ध न पड़ने वाली चञ्चलताओं से अवश्य मेरा बचपन खाली नहीं रहा। इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं छिपाता। इसी कारण मेरा

समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे शासति [illegible] सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं कल्पयिष्यति । आसतां तावन्मानुष्यकोपेताः । त्वत्प्रभावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति, रथाङ्गनामानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम्, कपयोपि चकिता इव चपलायन्ते, शरारवोऽपि सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुञ्जते । सर्वथा कालेन मां ज्ञास्यति स्वामी स्वयमेव । अनपाचीनचित्तवृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत् ।

भूपतिरपि 'एवमस्माभिः श्रुतम्' इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत् । सम्भाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत् । केवलममृतवृष्टिभिः स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणान्तर्गतां प्रीतिमकथयत् । अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने

टीका—अम्बुराशयः=समुद्राः एव रशना=मेखला यस्याः ताम्, अशेषाः=समग्रा द्वीपा एव माला अस्याः अस्तीति ताम्, महीं=पृथिवीम्, अविशङ्कः निःशङ्कः, सर्वाणि च तानि व्यसनानि=विपत्तयः तेषां बन्धोः मित्रस्य आपातयितुः इत्यर्थः । अविनयस्य=धार्ष्ट्यस्य मनसा=हृदयेन अपि अभिनयम्=अभिनयक्रियां नटनमित्यर्थः कल्पयिष्यति=करिष्यति । आसताम्=(√आस् लोट् प्रथ० बहु०) तिष्ठन्तु तावत् । मनुष्यस्य भावः मानुष्यं (भावे अण्) मानुष्यम् एव मानुष्यकं (स्वार्थे कः) मनुष्यत्वमित्यर्थः तेन उपेताः=युक्ताः । त्वत्प्रभावात्=तव तेजसः कारणात् अलयः=भ्रमराः अपि भीताः=त्रस्ताः इव मधु=पुष्परसं पिबन्ति=पानविषयीकुर्वन्ति, रथस्य अङ्गं=चक्रं नाम येषां ते चक्रवाकपक्षिणः इत्यर्थः लज्जन्ते=अपत्रपन्ते इव प्रियाणाम्=चक्रवाकीणामित्यर्थः अभ्यनुवृत्तिः अभ्यनुगमनम् पश्चात् लगनमित्यर्थः एव व्यसनं तैः लज्जन्ते=अपत्रपन्ते । कपयः=वानराः अपि चकिताः=भीताः इव चपलायन्ते=चपलत्वमाचरन्ति । शरारवः=हिंस्राः श्वापदगणाः=जन्तुसमूहाः, अनुक्रोशः=दया तेन सहिताः सदयाः इव पिशितानि=क्रव्याणि मांसानीत्यर्थः भुञ्जते=अदन्ति, सर्वथा=पूर्णतया कालेन=समयेन ज्ञास्यति=वेत्स्यति=स्वामी=भवान् इत्यर्थः । स्वयमेव=आत्मना एव । प्रज्ञा=बुद्धिः अस्ति एषां तेषां प्रकृतयः=स्वभावाः अनपा०—अनपाचीनाः=न अपाचीना (अपाच्यां=दक्षिणस्यां दिशि भवा इति (अपाच्+ख=ईन) विपर्यस्ता विपरीता इत्यर्थः, अनपाचीना =अविपरीता या चित्तवृत्तिः=मनोवृत्तिः तां ग्रहीतुं शीलं यासां तथोक्ता भवन्ति=जायन्ते । इति अभिधाय=कथयित्वा तूष्णीम् अभूत् मौनम् आकलयामास ।

भूपतिः=राजा हर्षः इत्यर्थः एवम् अस्माभिः श्रुतम्=आकर्णितम् । सम्भाषणं=वार्तालापः आसनदानं=स्थानदानम् आदिर्यस्य तेन प्रसादेन=प्रीत्या एनं=बाणं न अन्वग्रहीत्=अनुगृहीतवान् । केवलं यथा स्यात्तथा अमृतवृष्टिभिः=सुधावर्षणैः स्नपयन्=स्नानं कारयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, स्नेहः=प्रेम गर्भे=अन्तः यस्य तेन दृष्टेः=अवलोकनस्य पातं=प्रेरणम् एवेति दृष्टिपातमात्रं तेन अन्तः=हृदये गतां=स्थितां हार्दिकीमित्यर्थः । प्रीतिं=प्रसन्नताम् अकथयत्=कथयामास । अस्तम्=अस्ताचलम् अदर्शनं वा अभिलषति=इच्छतीति तथोक्ते लम्बमाने=दक्षिणे क्षितिजे लुठतीत्यर्थः, सवितरि=सूर्ये विसर्जितः=आपृष्टः राज-लोकः=राजसमूहः येन सः अभ्यन्तरम्=अन्तर्गृहम् प्राविशत्

हिन्दी—हृदय पश्चात्ताप-सा किये हुए है । इस समय तो बुद्ध की तरह शान्त-चित्त वाले, मनु की तरह वर्णाश्रमों की व्यवस्था करने वाले और यम की तरह प्रत्यक्ष दण्ड-धारी आपके सातसमुद्र-रूपी मेखला वाली अशेष द्वीपों से घिरी हुई पृथिवी पर शासन करते हुए कौन निर्भय होकर सभी विपत्तियाँ लाने वाले अविनय का मन से भी अभिनय करेगा? मनुष्यों की तो बात छोड़िए, आपके प्रभाव के कारण भ्रमर भी डरे-डरे-से मधु-[१ पुष्परस २ सुरा] पान करते हैं । चकवे भी (अपनी) प्रियाओं के पीछे-पीछे लगने के व्यसनों से लजाते-से हैं । बन्दर भी डरे हुए-जैसे चपलतायें कर रहे हैं । हिंसक जन्तु-समूह दया-युक्त हुए-जैसे मांस-भक्षण करते हैं । समय आने पर महाराज स्वयं ही मुझे अच्छी तरह जान लेंगे । बुद्धिमानों के स्वभाव ही ऐसे होते हैं कि वे विरुद्ध मनोवृत्ति नहीं अपनाया करते" इस तरह कहकर [बाण] चुप हो गया ।

राजा भी 'ऐसा ही हमने सुना है' यह कहकर चुप हो बैठा, किन्तु सम्भाषण और आसनदान आदि प्रसाद से उसे अनुगृहीत नहीं किया । अमृत वर्षाओं से नहलाता हुआ-जैसा केवल स्नेह-भरे दृष्टिपात-मात्र से हृदय का प्रेम प्रकट कर बैठा । सूर्य के अस्त हुआ चाहने और [दक्षिण क्षितिज की ओर] लटक जाने पर राज-समूह को बिदा किए हुए (हर्ष)घर के भीतर चला गया । बाण भी निकलकर, पालिश किए पीतल की-सी कोमल धूप की कान्ति वाले दिन के

सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तरं प्राविशत् । बाणोऽपि निर्गत्य धौतारकूटकोमलातपत्विषि निर्वाति वासरे, प्रस्ताचलकूटकिरीटे निचुलमञ्जरीभासि तेजांसि मुञ्चति वियन्मुचि मरीचिमति, रोमन्थमन्थरकुरङ्गकुटुम्बकाध्यास्यमानम्रदिष्टगोष्ठीनपृष्ठास्वरण्यस्थलीषु, शोकाकुलकोककामिनीकूजितकरुणासु तरङ्गिणीतटीषु, वासविटपोपविष्टवाचाटचटकचक्रवालेष्वालवालावर्जितसेकजलकुटेषु निष्कुटेषु, दिवसविहृतिप्रत्यागतं प्रस्तुतस्तनं स्तनन्धये धयति धेनुवर्गमुद्गतक्षीरं क्षुधिततर्णकव्राते, क्रमेण चास्तधराधरधातुधुनीपूरप्लावित इव लोहितायमानमहसि मज्जति संध्यासिन्धुपान-

---

टीका—=प्रविष्टवान् । 'बाणोऽपि निर्गत्य'''निवास-स्थानमगात्' इत्यस्ति वाक्यम् । धौतार०--धौतः=निर्मृष्टः यः भारकूटः=पित्तलं तस्य इव कोमला=मृदुः आतपत्विट्=घर्म-कान्तिः यस्मिन् तस्मिन् वासरे=दिवसे निर्वाति=निर्वाणं प्राप्नुवति समाप्ति गच्छतीत्यर्थः, वासरे=दिवसे । अस्ताचलस्य अस्तगिरेः यत् कूटं=शृङ्गं ('कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्' इत्यमरः) तस्य किरीटे=मुकुट-भूते, रूपकम्, निचुलानां=हिज्जलानां पुष्पवृक्षविशेषाणामित्यर्थः ('निचुलो हिज्जलोऽम्बुजः' इत्यमरः) याः मञ्जर्यः=वल्लर्यः तासां भाः इव भाः येषां तानि तेजांसि=प्रकाशान् किरणानित्यर्थः, मुञ्चति=त्यजति वियत्=आकाशं मुञ्चतीति ०मुक् तस्मिन् (कर्तरि क्विप्) मरीचयः=किरणाः अस्य सन्तीति तथोक्ते सूर्ये इत्यर्थः, रोमन्थ०—रोमन्थः=भुक्तम् उद्गीर्य चर्वणं तेन मन्थराणि=अलसानि यानि कुरङ्गाणां=मृगाणां कुटुम्बकानि=परिवाराः तैः अध्यास्यमानम्=अधिष्ठीयमानं म्रदिष्ठम्=अतिशयेन मृदु गौष्ठीनस्य=भूतपूर्व-गोष्ठस्य गोष्ठ+खञ्=ईन ('गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे' पा० ५।१।१८ 'गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गौष्ठीनं भूतपूर्वकम्' इत्यमरः) पृष्ठं=तलं यासु तासु अरण्यानां=वनानां स्थलीषु=अकृत्रिम-भूमिषु, शोका०—शोकेन=दुःखेन आकुलाः=विह्वलाः या कोकानां=चक्रवाकानां कामिन्यः=चक्रवाक्यः इत्यर्थः, तासां कूजितैः=क्रन्दनैः करुणासु=कारुण्यजनिकासु तरङ्गिणीनां=नदीनां तटीषु=तीरेषु । रात्रौ हि चक्रवाकानां वियोगो भवतीति चक्रवाकीनां शोक-कारणम्, वास० —वासस्य=निवासस्थानस्य नीडानामित्यर्थः ये विटपाः=शाखाः तेषु उपविष्टानि वाचाटानि=मुखराणि कूजन्तीत्यर्थः चटकानां=पक्षिविशेषाणां चक्रवालानि=समूहाः येषु तेषु आलवा०–आलवालेषु=तरुमूलेषु गोलाकार-जलाधारेष्वित्यर्थः ('स्यादालवालमावापः' इत्यमरः) । आवर्जिताः जलसेकानन्तरं निम्नमुखीकृत्य स्थापिताः इत्यर्थः सेकार्थं=सिञ्चनार्थं जल-कूटाः=जलघटाः येषु तेषु ('घटः कुटनिपावस्त्री' इत्यमरः) निष्कुटेषु =कुटात्=गृहात् निष्क्रान्ताः इति निष्कुटाः गृहारामाः ('गृहारामास्तु निष्कुटाः' इत्यमरः) दिवस०—दिवसं=दिनं या विहृतिः=विहरणम् इतस्ततः परिभ्रमणमित्यर्थः ततः प्रत्यागतं=प्रत्यावृत्तं प्रस्नुताः=क्षरन्तः स्तनाः=पयोधरा यस्य तम् उद्गतम्=उच्छलितं क्षीरं=दुग्धं यस्मात् तं धेनु-वर्गं=गोसमूहं स्तनंधये=स्तनं धयति=पिबतीति तथोक्तः स्तनपायी तस्मिन् क्षुधिताः=बुभुक्षिताः तर्णकाः=वत्साः ('सद्योजातस्तु तर्णकः' इत्यमरः) तेषां व्रातः=समूहः तस्मिन् धयति=पिबति सति, चास्तधरा०—च अस्तधराधरे=अस्ताचले यो धातुः=गैरिकम्) 'धातुर्मनःशिलाद्यद्रेर्गैरिकं तु विशेषतः' इत्यमरः) तत्सम्बद्धा या धुनी=नदी तस्याः पूरे=प्रवाहे प्लाविते=प्रवाहिते इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, लोहितायमानं=शोणितायमानं महः=तेजः यस्य तस्मिन् सन्ध्या=सायंकालः एव सिन्धुः=सागरः तस्य यान-पात्रे नौकारूपे पतङ्गस्य=सूर्यस्य इदं पातङ्गम् (अण्) तस्मिन् सूर्यसम्बन्धिनीत्यर्थः मण्डले=बिम्बे मज्जति=

हिन्दी—ढल जाने पर, अस्ताचल के सिर [शृंग] के मुकुट, निचुल वृक्षों की मञ्जरियों की-सी कान्ति वाले तेज को छोड़ते हुए सूर्य के आकाश छोड़ जाने पर, वन-भूमियों के उन अति मृदु स्थानों में, जहाँ पहले गौशाला हुआ करती थी, जुगाली में अलसाए हुए मृग-परिवारों के बैठ जाने पर, शोक में विह्वल हुई चकवाकियों के क्रन्दन से नदी तटों में करुणा [का वातावरण] छा जाने पर, गृह-वाटिकाओं में घोसलों वाली शाखाओं में बैठी हुई चिड़ियाओं के चहचहाने और वृक्ष के थावलों पर जल सींचने के घड़ों के औंधे धर दिये जाने पर, दिन भर (बाहर) भ्रमण से लौटी, झरते हुए थनों से दूध चुआती गायों के रेवड़ का दूध भूखे स्तनपायी छोटे नये बछड़ों द्वारा पीने लग जाने पर, अस्ताचल पर गेरू (के धरातल) से होकर बहती हुई नदी की बाढ़ में प्रवाहित हुए-जैसे लाल-लाल तेज वाले सन्ध्यारूपी समुद्र की नौका-रूपी सूर्य-मण्डल के धीरे-धीरे डूब जाने पर, कमण्डलु के जल से हाथ-पैर शुद्ध किए हुए पाराशरी भिक्षुओं के चैत्यों में वन्दना-व्यस्त हो जाने पर, यज्ञ-पात्रों से पवित्र हुए हाथों वाले कट्टर याज्ञिक लोगों द्वारा कुशाओं से परिवेष्टित, लपटें छोड़ती हुई अग्नि में 'वषट्' ध्वनि-के साथ आहुतियाँ देने लग जाने पर, उद्यान-

पात्रे पातङ्गे मण्डले, कमण्डलुजलशुचिशयचरणेषु, चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु, यज्ञपात्रपवित्रपाणौ प्रकीर्णबर्हिष्युत्तेजसि जातवेदसि हवींषि वषट्कुर्वति यायजूकजने, निद्राविद्राणद्रोणकुलकलिलकुलायेषु कापेयविकलकपिकुलेष्वारामतरुषु, निर्जिगमिषति जरत्तरुकोटरकुटीकुटुम्बिनि कौशिककुले, मुनिकरसहस्रप्रकीर्णसंध्यावन्दनोदबिन्दुनिकर इव दन्तुरयति तारापथस्थलीं स्थवीयसि तारकानिकुरम्बे, अम्बराश्रयिणि शर्वरीशबरीशिखण्डे, खण्डपरशुकण्ठकाले कवलयति

टीका—मग्ने सति। **कमण्डलु॰**—कमण्डलुः यतीनां पात्रविशेषः तस्य जलेन=वारिणा शुचयः=पवित्राः शयाः=हस्ताः चरणाः=पादाश्च येषां तेषु ('पञ्चशाखः शयः पाणिः' इत्यमरः) पाराशरिषु=पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षु-सूत्रम् अधीयते पाराशरिणो भिक्षवः तेषु (पा०४।३।११०) चैत्यं=पवित्रस्थानं मठादि ('चैत्यमायतनं तुल्ये' इत्यमरः। अत्र 'चित्यायामिदं चैत्यं देवकुलमहावृक्षाद्युपाश्रयः' इति क्षीरस्वामी) तत्र प्रणतिः=वन्दनं परं=प्रधानं येषां तेषु तथा सत्सु, **यज्ञपात्र॰**—यज्ञपात्रैः=स्रुवादिभिः पवित्राः=शुचयः पाणयः=हस्ताः यस्य तस्मिन् प्रकीर्णाः=आस्तीर्णाः बर्हिषः=कुशाः यस्य तस्मिन् जातवेदसीत्यस्य विशेषणम्, उत्तेजसि=उद्गतम्=उत्थितं तेजः=ज्वालाः यस्य तस्मिन् जातवेदसि=अग्नौ यायजूकः=पुनः पुनः अतिशयेन वा यष्टुं शीलं यस्य स इति√यज्+यङ्+ऊक (यज-जप-दशां यङ्' पा० ३।२।१६६) यायजूकश्चासौ जनः तस्मिन्, जनशब्दोऽत्र समूहार्थकः अर्थात् यायजूक-लोके हवींषि=हव्यानि वषट्कुर्वति=वषट् इत्युच्चार्य प्रक्षिपति सति [यथा—इन्द्राय वषट्]। **निद्रा॰**—निद्रया=सुप्त्या विद्राणानि=[शङ्करानुसारेण] अलसानि यानि द्रोणानां=वायसानां कुलानि=समूहाः तैः कलिलाः=पूर्णाः कुलायाः=नीडाः येषु तेषु। कापेयेन=कपेः भावः कर्म वा इति कापेयं=चापलादिकं ('कापेयं चापलादिकम्' इति क्षीरस्वामी) तेन विकलानि=रहितानि कपीनां=वानराणां कुलानि=समूहाः येषु तेषु आरामतरुषु उद्यानवृक्षेषु सत्सु, **निर्जिग॰**—जरन्तः=जीर्णाः ये तरवः=वृक्षाः तेषां कोटराणि=गह्वराणि विवराणीत्यर्थः एव कुटयः कुटीराणि तेषु कुटुम्बिनि=परिवारवति अर्थात् तत्र स्थिते कौशिकानाम्=उलूकानां कुले=समूहे निर्जिगमिषति=निर्गन्तुम् इच्छति सति (निर्+√गम्+सन्+शतृ+सप्तमी)। **मुनिकर॰**—मुनीनां कराणां=हस्तानां सहस्रैः=सहस्रशः हस्तैरित्यर्थः, विप्रकीर्णाः=प्रक्षिप्ताः ये सन्ध्यायां=सायंकाले वन्दनेषु=देवतानां नमस्कारेषु उदबिन्दवः=जल-बिन्दवः तेषां निकरे=समूहे इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, स्थवीयसि=स्थूलतरे(स्थूल+इयसुन्)तारकाणां=नक्षत्राणां निकुरम्बे=निकरे ('निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः) ताराणां=ग्रह-नक्षत्राणां पन्थाः=मार्गः गगनमित्यर्थः एव स्थली=स्थलं ताम् दन्तुरयति=दन्ताः उच्चाः सन्ति अस्य इति दन्तुरः (दन्त+उरच्) दन्तुरं करोतीति दन्तुरयति (दन्तुर+णिच्) ततः शतृप्रत्यये सति सप्तमी उन्नतां कुर्वतीत्यर्थः। ताराणां समूहाः गगन-रूपिण्या नायिकायाः दन्ता इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः; **अम्बरा॰**—शर्वरी=रात्रिः एव शबरी=भिल्लस्त्री, उभयोः श्यामत्वात् रूपकम्, तस्याः शिखण्डे=जूटके केशपाशे इत्यर्थः अम्बरम्=आकाशम् आश्रयतीति आश्रयी तस्मिन्, आकाशगतान्धकारः रात्रेः केशपाशः इव प्रतीयते स्मेति भावः। **खण्ड॰**—खण्डपरशुः=शिवः ('भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः' इत्यमरः) तस्य कण्ठवत्=गलवत् काले=श्यामवर्णे विषपानात् शिवस्य नीलकण्ठत्वात्, बाले=सद्यः उत्पन्ने अन्धकारस्य=तमसः अवतारे=अवतरणे (आगमने) सान्ध्यम्=सन्ध्यायाः अयं सान्ध्यः (अण्) सन्ध्याकालीनः यः ज्योतिषः=प्रकाशस्य शेषः=अवशिष्टभागः तम् कवलयति=कवलं=ग्रासं करोतीति कवलयति (कवल+णिच्) ततः शतृप्रत्यये सप्तमी, भक्षयति सतीत्यर्थः।

टिप्पणी—**दहनप्रविष्ट॰**—जलती हुई दीप-शिखाओं पर कवि कल्पना करता है कि मानो वे सूर्य की अंगुलियाँ हों जिनसे वह तिमिर को फटकार रहा है। अँगूठे के बाद की अँगुली को इसी लिए तर्जनी कहते हैं कि वह तर्जना करती है। शास्त्रों में लिखा है कि सूर्य जब छिपता है तो अपने को अग्नि में प्रविष्ट कर देता है। कालिदास ने भी ऐसा उल्लेख कर रखा है—"स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ। दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः॥" रघु० ४।१। [मूल के लिये दे० पृ० १४५]

हिन्दी—वृक्षों पर नींद से अलसाए हुए कौओं के झुण्डों द्वारा घोंसले भर जाने पर, वानर समूह द्वारा चंचलता छोड़ देने पर, पुराने वृक्षों के खोंखलों के कुटीरों में कुटुम्ब के साथ रहने वाले उल्लुओं के दल के बाहर निकलना चाहने लगने पर, मुनियों द्वारा हजारों हाथों से बिखरे संध्यावन्दन जल के बिन्दुओं का समूह-जैसे लग रहे मोटे-मोटे तारा-समूह के गगनस्थली को दाँतेदार बना देने पर, रात्रि-रूपी भिल्लनी के केशपाश के आकाश का आश्रय ले

ग्रासे ज्योतिःशेषं सान्ध्यमन्धकारावतारे तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव स्फुरन्तीषु दीपलेखासु, अररसम्पुटसंक्रीडनकथितावृत्तिष्विव गोपुरेषु, शयनोपजोषजुषि जरतीकथितकथे शिशयिषमाणे शिशुजने, जरन्महिषमषीमलीमसतमसि जनितपुण्यजनप्रजागरे विजृम्भमाणे भीषणतमे तमीमुखे, मुखरितविततज्यधनुषि वर्षति शरनिकरमनवरतमशेषसंसारशेमुषीमुषि मकरध्वजे, रताकल्पारम्भशोभिनि शम्भलीभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्याजने, सैरन्ध्रीबध्यमानरशनाजालजल्पाकजघनासु जनीषु, वशिकविशिखाविहारिणीष्वनन्यजानुप्लवासु प्रचलितास्वभिसारि-

---

टीका—तिमिर०—तिमिरस्य = अन्धकारस्य तर्जनाय = भर्त्सनाय निर्गतासु = निःसृतासु, दहनम् = अग्निम् प्रविष्टः = कृतप्रवेशः यः दिनकरः = सूर्यः तस्य कर-शाखासु = अङ्गुलिषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दीपानां = दीपकानां लेखासु = ज्वालासु इत्यर्थः। स्फुरन्तीषु = प्रज्वलन्तीषु, अररसम्पुट०—अरराणां = कपाटानां ('कपाटमररं तुल्यम्' इत्यमरः, सम्पुटाः = युगलानि तेषां यत् संक्रीडनं = शब्दः तेन कथिता = सूचितेत्यर्थः आवृत्तिः = आवरणं स्थगनमित्यर्थः येषां तेष्विवेति उत्प्रेक्षायाम्। गोपुरेषु = पुर-द्वारेषु ('पुर-द्वार तु गोपुरम्' इत्यमरः], शयनो०—शयने = शय्यायां यः उपजोषः = सुखं तं जुष्टे = सेवते इति० जुट् (कर्तरि क्विप्) तस्मिन्, जरतीभिः = वृद्धाभिः कथिताः = गदिताः श्राविताः = इत्यर्थः कथाः यस्मै तस्मिन् शिशयिषमाणे = शयितुमिच्छतीति (√शी + सन् + शानच् + ङि) शिशयिषमाणः तस्मिन् = सुषुप्सति सति शिशुजने = शिशुगणे, जरन्म०—जरन् = वृद्धः महिषः = लुलायश्च मषी = काली लेखनद्रव्यमिति यावत् च तद्वत् मलीमसं = श्यामं तमः = तिमिरं यस्य तस्मिन्, जनितः = कृतः पुण्यजनानां = भूत-पिशाच-राक्षसादीनां प्रजागरः = जागरणं येन तस्मिन् भीषणतमे = अतिशयेन भयङ्करे तम्याः = रात्र्याः मुखं तस्मिन् ('रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः) विजृम्भमाणे = जृम्भणं कुर्वति, प्रादुर्भवतीत्यर्थः, मुखरित०—मुखरितं = शब्दायमानं टङ्कारध्वनिं कुर्वदित्यर्थः यत् विततज्यं = वितता = विस्तारिता ज्या = प्रत्यञ्चा यस्य तत् धनुः = चापः यस्य तस्मिन्, अशेषः = निखिलः यः संसारः = जगत् तस्य शेमुषीं = बुद्धिं मुष्णाति = हरतीति ० मुट् (कर्तरि क्विप्) तस्मिन् मकर-ध्वजे = मदने शराणां = बाणानां निकरं = समूहम् अनवरतं = निरन्तरं यथा स्यात्तथा वर्षति = प्रक्षिपति सतीत्यर्थः। रताकल्प० = रतस्य = सम्भोगस्य यः आकल्पः = वेशः तस्य आरम्भेण = प्रक्रमेण शोभते इति शोभी तस्मिन्, शम्भलीनां = कुट्टनीनां ('कुट्टनी शम्भली समे' इत्यमरः) भाषितं = कथनं भजन्तीति ०भाक् (क्विप्) तस्मिन् भुजिष्या-जने = गणिकासमूहे (भुजिष्यस्तु......स्त्रियां दासी-गणिकयोः' इति मेदिनी)—भूषाम् = अलङ्कारान् अथवा प्रसाधनं भजति = आश्रयति सति; सैरन्ध्री०—सैरन्ध्रीभिः = प्रसाधन-शिल्पकारिकाभिः ['सैरन्ध्री परवेश्मस्था स्ववशा शिल्पकारिका' इत्यमरः] बध्यमानं = परिधाप्यमानमित्यर्थः यत् रशना-जालं काञ्ची-समूहः तेन जल्पाकं = वाचालं झणझणायमानमित्यर्थः ('स्याज्जल्पाकस्तु वाचालः' इत्यमरः) जघनं = जङ्घा यासां तासु जनीषु = वधूषु ('समाः स्नुषाजनीवध्वः' इत्यमरः) वशिक०—वशिकासु = रिक्तासु ('वशिकं तुच्छ-रिक्तके' इत्यमरः) विशिखासु = रथ्यासु मार्गेष्वित्यर्थः ('रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः) विहरन्ति = भ्रमन्तीति० हारिण्यः तासु अनन्यजः = न अन्यस्मात् जायते इति (न + अन्य + √जन् + ड) आत्मभूः कामः इत्यर्थः एव अनुप्लवः = सहायः यासां तासु ('अनुप्लवः सहायश्च' इत्यमरः) अभिसारिकासु = प्रियतमम् अभिसरन्तीषु नायिकासु ('कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिका' इत्यमरः) प्रचलितासु =

हिन्दी—चुकने पर, शिव के गले की तरह काले-काले अन्धकार के बाल अवतार द्वारा बचा-खुचा सन्ध्याकालीन प्रकाश निगल जाने पर, अन्धकार को डाँटने के लिए निकली, अग्नि में प्रविष्ट हुई सूर्य की अंगुलियों-जैसी दीपशिखाओं के प्रज्वलित हो उठने पर, नगर के बाहरी दरवाजों द्वारा दोनों किवाड़ों के शब्द से बन्द होने की सूचना-जैसी दी जाने पर, शय्या का सुख लेते हुए (और) बूढ़ियों द्वारा कही कथायें सुनते हुए बच्चों के सोना चाहने लगने पर, बूढ़े भैंसे और स्याही की तरह काले अन्धकार वाले, भूत-प्रेतादि को जगा देने वाले बड़े भयङ्कर रात्रि के मुँह के जँभाई लेने लगने पर, टंकार-सहित धनुष को डोरी पर चढ़ाए हुए सकल संसार की बुद्धि हर लेने वाले कामदेव के लगातार बाण-समूह बरसाने लगने पर, सम्भोग-वेश के आरम्भ से शोभा पा रही, कुट्टिनियों के कहने पर चलने वाली वारवनिताओं के शृंगार करने लगने पर, शिल्पकारिकाओं द्वारा बाँधी जा रही करधनियों से वधुओं के जघनस्थलों के झनझनाने लगने पर, सुनसान मार्गों पर विचरण करने वाली, काम को सहायक बनाए हुए अभिसारिका नायिकाओं के चल पड़ने पर, पल्वलों में रहने वाली हंसियों के मधुर शब्द के नूपुरों की झनझनाहट की तरह मन्द

कासु, विरलीभवति वरटानां वेशन्तशायिनीनां मञ्जुनि [illegible] द्राघीयसि द्रावयतीव च विरहिहृदयानि सारसरसिते, माविवासरबीजाङ्कुरनिकर इव च विकीर्यमाणे जगति प्रदीपप्रकरे निवासस्थानमगात्। प्रकरोच्च चेतसि—'प्रतिदक्षिणः खलु देवो हर्षो यदेवमनेकबालचरितचापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यद्यहमक्षिगतः स्याम्, न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः। अपि च धिङ्मां स्वदोषान्धमानसमनादरपीडितमेवमतिगुणवति राजन्यन्यथा चान्यथा च चिन्तयन्तम्। सर्वथा करोमि तथा, यथा यथावस्थितं जानाति मामयं कालेन' इत्येवमवधार्य चापरेद्युर्निष्क्रम्य कटकात्सुहृदां बान्धवानां च भवनेषु तावदतिष्ठत्, यावदस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः

टीका—सङ्केतस्थलं गतासु सतीषुः। विरली०—वेशन्ते=पल्वले ('वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः) शेरते=स्वपन्ति इति० शायिन्यः तासां वरटानां=हंसयोषिताम् ('हंसस्य योषिद् वरटा' इत्यमरः) मञ्जुनि=मधुरे मञ्जीराणां=नूपुराणां यत् शिञ्जितं=झणत्कारः तद्वत् जड=मन्दे जल्पिते=शब्दे विरलीभवति=क्रमशः समाप्तप्राये सतीत्यर्थः, निद्रा०-निद्रया=सुप्त्या विद्राणे=अलसे द्राघीयसि=दीर्घतरे (दीर्घ+ईयसुन्) च सारसानां=पक्षिविशेषाणां रसिते=रुते विरहिणाम्=विरहिणश्च विरहिण्यश्चेति विरहिणः तेषां (एकशेषद्वन्द्व) हृदयानि=मनांसि द्रावयति=द्रुतानि कुर्वंति (√द्रु+णिच्+शतृ+ङि) इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, रात्रेः निःशब्दतायां 'विद्राणम्' अपि रसितं श्रवणे द्राघीयः प्रतीतमभवदिति भावः; भावि०— भावी=आगामी यः वासरः=दिवसः तस्य बीजानाम् अङ्कुराणां=प्ररोहाणां निकरे=समूहे इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विकीर्यमाणे=इतस्ततः न्यस्यमाने जाज्वल्यमाने इत्यर्थः जगति=लोके प्रदीपानां=दीपकानां प्रकरे=समूहे निवासस्थानम् अगात्=अगच्छत्। चेतसि अकरोत् च=अचिन्तयच्च। प्रतिदक्षिणः= अतिशयेन उदारः; अनेक०—अनेकानि वहूनि यानि बाल-चरितानि बाल-रूपेण अनुष्ठितानि चापलानि =चाञ्चल्यानि तेषाम् उचितं योग्यं यत् कौलीनं कुलीनस्य भावः कर्म वा इति कुलीन+अण् (पा० ५।१।१३०) लोकापवादः ('कौलीनं पशुभिर्युद्धे कुलीनत्वापवादयोः' इति धरणिः) तेन कोपितः=कोपं प्रापितः अपि मयि स्निह्यति=स्नेहं करोति एव। यदि अहम् अक्षिगतः द्वेष्यः ('द्वेष्ये त्वक्षिगतः' इत्यमरः) स्याम्=भवेयम्, प्रसादं=कृपाम् न कुर्यात् न अनुगृह्णीयादित्यर्थः। गुणवन्तम्=गुण-युक्तम्। स्वामिनः=प्रभवः। अनुरूपा=योग्या या प्रतिपत्तिः=सम्मानः तस्याः उपपादनेन=करणेन दानेनेत्यर्थः। वाचा=वाण्या विनाऽपि मुखेन न किमपि कथयित्वाऽपीत्यर्थः। भर्तव्यानाम्=आश्रये वर्तमानानां प्रतिपाल्यानामिति यावत् विनयं=विशिष्टतां सदाचारमित्यर्थः उपदिशन्ति =शिक्षयन्ति। धिक् माम् (धिगर्थे द्वितीया)=मे धिक्कारः, स्वदोषेण=निजावगुणेन अन्धं=विवेकशून्यं मानसं= मनः यस्य तम् अनादरेण=अपमानेन पीडितं=दुःखितम्, अतिगुणवति=अतिशयेन गुणयुक्ते राजनि=हर्षे इत्यर्थः अन्यथा च=अन्यान्यप्रकारैः चिन्तयन्तं=मनसि कुर्वन्तम्। यथावस्थितं=यथार्थम्, इति अवधार्य=निश्चित्य अपरेद्युः=अन्येद्युः द्वितीयदिने इत्यर्थः निष्क्रम्य=निर्गत्य कटकात्=शिविरात्, इदं तु ध्येयं यद् राजा अजिरवतीनदी-समीपे कृत-सन्निवेश आसीत्, सुहृदां=मित्राणां भवनेषु=गृहेषु अतिष्ठत्=अवतस्थे। अस्य=बाणस्य गृहीतः =ज्ञातः स्वभावः=प्रकृतिर्येन सः पृथिवीपतिः=राजा हर्षः प्रसादः अस्यास्तीति प्रसादवान्=प्रसन्नः कृपालुरित्यर्थः। प्रविशत्=प्रविष्टवान् नरपतेः राज्ञः हर्षस्य भवनम्। स्वल्पैः=अनधिकैः च अहोभिः=दिनैः परमप्रीतेन परम-

हिन्दी—पड़ जाने पर, सारसों के नींद से अलसाये (एवं) बड़े तेज (सुनाई दे रहे) शब्द से विरहियों के हृदय द्रवित-जैसा करने लग जाने पर, आने वाले दिन के बीजांकुरों का समूह-जैसा प्रतीत हो रहे दीप-समूह के लोक में बिखरे जाने लगने पर, निवास-स्थान में चला गया। और उसने मन में सोचा—'सचमुच महाराज हर्ष बड़े उदार हैं कि इस तरह बचपन में की हुई चपलताओं के कारण (हुई) उचित लोकनिन्दा से अप्रसन्न होते हुए भी मन से मुझसे स्नेह ही करते हैं। यदि मैं आंखों में चढ़ा हुआ होता, तो दर्शन से अनुगृहीत नहीं करते किन्तु (वे) मुझे गुणवान् (बना हुआ) चाहते हैं, क्योंकि स्वामी लोग उचित सम्मान-शिष्टाचार बरत कर बिना (मुंह से) कहे भी आश्रितों को विनय की शिक्षा दिया करते हैं और अपने ही दोषों के कारण मन के अन्धे बने हुए (एवं) अनादर से पीड़ित हुए मुझे धिक्कार है कि अति गुणवान् राजा के विषय में और ही और तरह से सोच रहा हूँ। मैं सब तरह से (अब) ऐसा करता हूँ कि जिससे समय पाकर ये (महाराज) मुझे सही-सही जान लें'—यह निश्चय करके दूसरे दिन खेमे से

पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत् । प्रविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम् । स्वल्पैरेवाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति ।

इति श्रीबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम द्वितीय उच्छ्वासः ।

टीका—प्रसन्नेन नरेन्द्रेण=राज्ञा हर्षेण प्रसादः=प्रसन्नता तस्मात् जन्म यस्य तस्य मानस्य=संमानस्य, प्रेम्णः=स्नेहस्य, विस्रम्भस्य=विश्वासस्य, द्रविणस्य=धनस्य, नर्मणः परिहासस्य, प्रभावस्य=महिम्नः परां कोटिं=पराकाष्ठाम् अनीयत=प्रापितः ।

इति श्रीमोहनदेवपन्तविरचितायां हर्षचरितच्छात्रतोषिण्यां द्वितीय उच्छ्वासः ।

हिन्दी—बाहर निकलकर तब तक मित्रों और बान्धवों के घरों में ही टिका रहा जब तक कि स्वयं ही उसका स्वभाव विदित किये हुए भूपति उस पर प्रसन्न नहीं हो गए । (बाण) फिर राज-सदन में प्रविष्ट हुआ और थोड़े ही दिनों में अतिप्रसन्न राजा ने उसे प्रसन्नता-जनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा में पहुंचा दिया ।

श्रीबाणभट्टविरचित हर्षचरित का राजदर्शन नामक द्वितीय उच्छ्वास समाप्त ।

तृतीय उच्छ्वासः ।

निजवर्षाहितस्नेहा बहुभक्तजनान्विताः ।
सुकाला इव जायन्ते प्रजापुण्येन भूभुजः ॥ १ ॥
साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् ।
न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् ॥ २ ॥

अथ कदाचिद्विरलितबलाहके, चातकातङ्ककारिणि, क्वणत्कादम्बे, दर्दुरद्विषि, मयूरमदमुषि, हंसपथिकसार्थसर्वातिथौ, धौतासिनिभनभसि, भास्वरभास्वति, शुचिशशिनि, तरुणतारागणे, गलत्सुनासीरशरासने, सीदत्सौदामनीदाम्नि,

---

टीका—निज०—निजेन=स्वकीयेन वर्षेण=वृष्ट्या आहितः=जनितः स्नेहः=रसः आर्द्रतेत्यर्थः यैः ते, बहूनां=प्रभूतानाम् भक्तानाम्=ओदनानाम् अन्नानामिति यावत् जनेन=समूहेन अन्विताः=युक्ताः ['भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री' इत्यमरः] सुकालाः=सुसमयाः सुभिक्षाणीत्यर्थः इव निजे वर्षे=देशे लोके वा आहितः=निहितः स्नेहः=प्रेम यैस्ते बहुभिः भक्तजनैः=अनुरक्त-लोकैः अन्विताः भूभुजः=राजानः प्रजानां पुण्येन=सुकृतेन जायन्ते=प्रादुर्भवन्ति । अत्र भूभुजां सुकालैः साम्य-प्रतिपादनात् उपमा । सा च श्लेषानुप्राणिता । अत्र अनुष्टुभ् वृत्तम् ।

साधूना०—साधूनां=सत्पुरुषाणाम्=उपकर्तुम् =उपकारं कर्तुम् । अत्र सम्बन्ध-विवक्षया कर्मणि षष्ठी, लक्ष्मीं=देवीं द्रष्टुं=साक्षात्कर्तुम् अथ च लक्ष्मीं=सम्पत्तिं द्रष्टुं=प्राप्तुमित्यर्थः विहायसा=आकाश-मार्गेण गन्तुम्, अथ च महतीम् उन्नतिं कर्तुं, महात्मनां=महापुरुषाणां चरितम्=आचरणम् कर्माणीत्यर्थः श्रोतुम्=आकर्णयितुं कस्य=पुरुषस्य मनः कुतूहलि=कौतुकपूर्णमुत्सुकमित्यर्थः, न स्यादिति शेषः अपि तु सर्वस्यापीति काकुवक्रोक्तिरलङ्कारः । एककारकैरनेकक्रियाणां प्रतिपादनात् दीपकालङ्कारश्चापि । अत्र आर्यावृत्तम् ।

'अथ.........शरत्समयारम्भे बाणः बन्धून् द्रष्टुं पुनरपि तं ब्राह्मणाधिवासमगात्' इत्यस्ति वाक्यम्, सप्तम्यन्तपदानि शरत्समयारम्भे इत्यस्य विशेषणानि । विरलिताः=विरलीकृताः [विरल+णिच्+क्तः] बलाहकाः=मेघाः येन तस्मिन्, चातकानां=पक्षिविशेषाणाम् आतङ्कं=तापं करोतीति तथोक्ते ['रुक्-ताप-शङ्कास्वातङ्कः' इत्यमरः] मेघागमे चातकाः जलकणमपि न लभन्ते इति तत्तापकारणम्; क्वणन्तः=शब्दायमानाः कादम्बाः=कलहंसाः यस्मिन् तस्मिन्, दर्दुरान्=मण्डूकान् द्वेष्टि=तेभ्यो द्रुह्यतीति, ०द्विट् तस्मिन् [कर्तरि क्विप्] मयूराणां=नीलकण्ठानां मदम्=अभिमानं मुष्णाति=हरतीति ०मुट् [क्विप्] तस्मिन् प्रावृषि एव तेषां मत्तत्वात्, हंस० हंसाः एव पथिक-सार्थः=पान्थसमूहः सर्वः अतिथिः=प्राघुणिको यस्य तस्मिन्, शरदि मानसतः भूमौ प्रत्यावर्तन्ते, शरच्च तेभ्यः अतिथिभ्यः निर्मल-जलं ददातीति भावः; धौत०—धौतः=मृष्टः शाणारोपणेन निर्मलीकृतः इत्यर्थः यः असिः=खड्गः तन्निभं=तत्समं नभः गगनं यस्मिन् तस्मिन्, भास्वरः=दीप्तिमान् भास्वान्=सूर्यः यस्मिन् तस्मिन् प्रावृषि मेघावृतत्वेन भास्वरत्वाभावात् शुचिः=निर्मलः शशी=चन्द्रः यस्मिन् तस्मिन्, मेघागमे

टिप्पणी—निज०—हम पीछे उल्लेख कर आए हैं कि आख्यायिका में आए हुए श्लोक 'भाव्यर्थशंसि' हुआ करते हैं अर्थात् वे भविष्य की घटनाओं पर हलका-सा प्रकाश डाल दिया करते हैं । इस श्लोक में हर्ष-परिवार के संस्थापक राजा पुष्पभूति, उसके प्रजा के प्रति व्यवहार और उसके राज्य की समृद्धता की ओर कवि ने संकेत किया है ।

साधूनाम्—इस श्लोक में भी तीसरे उच्छ्वास में आने वाली चार मुख्य बातों—पुष्पभूति द्वारा भैरवाचार्य का उपकार, राजा द्वारा लक्ष्मी देवी का प्रत्यक्ष दर्शन, भैरवाचार्य का अर्ध-देवरूप अपनाकर आकाश में चला जाना और बाण के भाइयों का हर्षचरित सुनने की उत्सुकता दिखाने की ओर संकेत है ।

हिन्दी—अपनी वृष्टि द्वारा [भूमि में] आर्द्रता बनाए रखने वाले (और) बहुत से अन्न-समूह से युक्त सुसमयों की तरह अपने देश पर प्रेम रखने वाले (एवं) बहुत से भक्त-जनों से युक्त राजा प्रजा के पुण्य से हुआ करते हैं ॥१॥

साधुओं का उपकार करने के लिए, लक्ष्मी का दर्शन करने के लिए, आकाश में जाने के लिए और महात्माओं का चरित सुनने के लिए किसके मन में कौतूहल नहीं होता ? ॥२॥

इसके अनन्तर शरत्काल के आरम्भ में जिसमें मेघ विरले-विरले हो जाते हैं, जो चातकों को ताप पैदा कर देता है, जिसमें हंस बोलने लगते हैं, जो मेढकों का शत्रु (एवं) मोरों का अभिमान चूर कर देने वाला होता है, जिसमें हंस-रूपी पथिक-दल (ही) सारे अतिथि हुआ करते हैं, आकाश मंजी हुई तलवार की तरह (निर्मल) हो जाता है, सूर्य चमकने लगता है, चन्द्रमा निर्मल हो जाता है, तारा-गण उज्ज्वल हो उठता है, इन्द्र-धनुष गायब हो जाता है, (एवं) बिजली की कौंध

दामोदरनिद्राद्रुहि, द्रुतवैदूर्यवर्णार्णसि, घूर्णमानमिहिकालघुमेघमोघमघवति, निमीलन्नीपे, निष्कुसुमकुटजे, निर्मुकुलकन्दले, कोमलकमले, मधुस्यन्दीन्दीवरे, कह्लाराह्लादिनि, शेफालिकाशीतलीकृतनिशि, यूथिकामोदिनि, मोदमानकुमुदावदातदशदिशि, सप्तच्छदधूलिधूसरसमीरे, स्तबकितबन्धुरबन्धूकाबध्यमानाकाण्डसन्ध्ये, नीराजितवाजिनि, उद्दामदन्तिनि, दर्पक्षीबौक्षके, क्षीयमाणपङ्कचक्रवाले, बालपुलिनपल्लवितसिन्धुरोधसि, परिणामश्यानश्यामाके,

---

टीका०—सोऽपि आव्रियते; तरुणः=युवा उज्ज्वल इति यावत् तारागणः=नक्षत्र-समूहः यस्मिन् तस्मिन्, गलत्० गलत्=लुप्यत् सुनासीरस्य=इन्द्रस्य शरासनं=धनुः यस्मिन् तस्मिन्, मेघेष्वेव इन्द्रधनुर्दर्शनात्, **सीदत्०**—सीदत् =नश्यत् सौदामिन्याः=विद्युतः दाम=लेखा काञ्ची यस्मिन् तस्मिन्, **दामो०**—दामोदरस्य=विष्णोः या निद्रा= सुप्तिः तस्यै द्रुह्यतीति तस्मिन् [क्विप्]; द्रुत०—द्रुतम्=प्रवहदित्यर्थः वैदूर्यवर्णं=वैदूर्यस्य वर्णः इव वर्णः यस्य तथाभूतम् अर्णः=जलं यस्मिन् तस्मिन् ['अम्भोर्णस्तोयपानीय०' इत्यमरः]; घूर्ण०—घूर्णमानाः=भ्रमन्तः मिहिका =नीहारः —कुज्झटिकेत्यर्थः तद्वत् लघवः=तुच्छाः जल-रहितत्वात् निर्भाराः ये मेघाः=पयोदाः तैः मोघः =विफलः मघवा=इन्द्रः यस्मिन् तथाभूते, वृष्टेरभावात् इन्द्रस्य मोघत्वात्, इन्द्रादेशेनैव मेघा वर्षन्तीति प्रसिद्धम्; निमीलन्तः=सङ्कुचन्तः नीपाः=कदम्बाः तत्कुसुमानीति यावत् यस्मिन् प्रावृषि एव तद्विकासात्, निष्कुसुमाः=निर्गतानि कुसुमानि येभ्यः कुसुमरहिताः इत्यर्थः कुटुजाः=पुष्पवृक्षविशेषाः यस्मिन् तस्मिन्, वर्षास्वेव कुटुजविकसनात् निर्मुकुलाः=कलिकारहिताः कन्दलाः=पुष्पवृक्षविशेषाः यस्मिन् तस्मिन्, कोमलानि कमलानि=पद्मानि यस्मिन् तस्मिन्, मधु=मकरन्दं स्यन्दन्ति=स्रवन्तीति ०स्यन्दीनि इन्दीवराणि=नीलकमलानि यस्मिन् तस्मिन्, कह्लाराणि=श्वेतकमलानि आह्लादयतीति तथोक्ते; **शेफा०**—शेफालिकया=पुष्पविशेषेण शीतलीकृता=शैत्यं प्रापिता निट्=रात्रिः यस्मिन् तस्मिन्; यूथिकाभिः=मल्लिकाभिः आमोदिनि=परिमलयुक्ते, **मोद०**—मोदमानैः=विकसद्भिरित्यर्थः कुमुदैः=कैरवैः अवदाताः=श्वेताः दश दिशः यस्मिन् तस्मिन्;**सप्त०**— सप्तच्छदानां=सप्तपर्णाख्यवृक्षविशेषाणां धूलिभिः=परागैः धूसरः=मलिनः समीरः=वायुः यस्मिन् तस्मिन्; **स्तबकि०** स्तबकिताः=सञ्जातस्तवका [स्तवक्+इतच्] बन्धुराः=सुन्दराश्च ये बन्धूकाः=बन्धुजीवाख्याः पुष्पवृक्षविशेषाः तैः आबध्यमाना जन्यमाना अकाण्डे=असमये सन्ध्या=सायंकालो यस्मिन् तस्मिन्' बन्धुपुष्पाणि रक्तवर्णानि भवन्तीति ध्येयम्, नीराजिताः=कृतनीराजनाः वाजिनः=अश्वाः यस्मिन् तस्मिन्, शरदि वाजिनां नीराजनं क्रियते। उद्दामाः=दाम्नः उद्गताः, उच्छृंखलाः मदोद्धताः इति यावत् दन्तिनः=हस्तिनः यस्मिन् तस्मिन्, दर्पेण=गर्वेण औद्धत्येनेत्यर्थः क्षीबं=मत्तम् औक्षकम्=उक्ष्णां वृषाणामिति यावत् समूहः इति [उक्षन्+वुञ् समूहार्थे पा० ४।२।३९] ['उक्ष्णां संहतिरौक्षकम्' इत्यमरः] तस्मिन्, **क्षीय०**—क्षीयमाणं=क्षयं गच्छत् पङ्कस्य=कर्दमस्य चक्रवालं=समूहः यस्मिन् तस्मिन्; **बाल०**—बालानि=लघूनि यानि पुलिनानि=द्वीपानि तैः पल्लवितानि=सञ्जातपल्लवानीव सिन्धूनां=नदीनां रोधांसि=तटानि यस्मिन् तस्मिन्, शरदि जलस्य नीचैर्गमनात् नदी-तीरेषु लघुद्वीपानि जायन्ते इति पश्यामो वयम्, **परि०**—परिणामेन=परिपाकेन श्यानाः=

टिप्पणी०—दामोदर०— दामोदर विष्णु का नाम इस कारण पड़ा कि 'दाम=रज्जुः उदरे यस्य' अर्थात् जिसे यशोदा माता ने रज्जु से बाँध रखा था। कृष्ण विष्णु ही हैं। शरत् विष्णु की निद्रा द्वेषिणी यों हुई कि शरत् में उन्हें जग जाना होता है। चार महीनों तक समुद्र में सोते रहने का उनका समय वर्षा-काल ही है। बाण ने कादम्बरी में भी इस तरह का उल्लेख कर रखा है—'जलधरसमयमिव वनगहनमध्यसुखसुप्तहरिम्'।

हिन्दी—समाप्त हो जाती है, जो विष्णु की निद्रा का द्रोही है, जिसमें बहता हुआ जल वैदूर्य मणि के वर्ण का-सा बन जाता है, इन्द्र घूमते हुए कुहरे के समान हल्के मेघों से बेकार पड़ जाता है, कदम्ब बन्द होने लग जाता है, कुटुज पुष्प रहित हो जाता है, कन्दलों में कलियाँ समाप्त हो जाती हैं, कमल कोमल हो उठते हैं, इन्दीवर मकरन्द बहाने लगते हैं, कह्लार खिलने लग जाते हैं, शेफालिका रात को ठंडा बनाने लग जाती है, जूही सौरभ बिखेरने लगती है, विकसित कुमुदों से दश दिशायें श्वेत हो उठती हैं, सप्तवर्ण की धूलि से हवा धूसरवर्ण की हो जाती है, गुच्छेदार गुड़हल समय का सन्ध्याकाल बनाने लग जाता है, घोड़ों का नीराजन हो चुकता है, हाथी मस्त हो उठते हैं, साँड़ों का समूह मद से पागल हो जाता है, कीचड़ का ढेर सूखने लग जाता है। नदियों के किनारे छोटे-छोटे द्वीपों से भर जाते हैं, साँक के चावल पककर कुछ सूखने लग जाते हैं, 'प्रियङ्गु

जनितप्रियङ्गुमञ्जरीरजसि, कठोरत्रपुसत्वचि, कुसुमस्मेरशरे, [illegible] बन्धून्द्रष्टुं पुनरपि तं ब्राह्मणाधिवासमगात् ।

समुपलब्धभूपालसंमानातिशयपरितुष्टास्तस्य ज्ञातयः श्लाघमाना निर्ययुः । क्रमेण च कांश्चिदभिवादयमानः, कैश्चिदभिवाद्यमानः, कैश्चिच्छिरसि चुम्ब्यमानः, कांश्चिन्मूर्ध्नि समाजिघ्रन्, कैश्चिदालिङ्ग्यमानः, कांश्चिदालिङ्गन्, अन्यैराशिषानुगृह्यमाणः, पराननुगृह्णन्, बहुबन्धुमध्यवर्ती परं मुमुदे । संभ्रान्तपरिजनोपनीतं चासनमासीनेषु गुरुषु भेजे । भजमानश्चार्चाविसत्कारं नितरां ननन्द । प्रीयमाणेन च मनसा सर्वांस्तान्पर्यपृच्छत्—'कच्चिदेतावतो दिवसान्सुखिनो यूयम् । अप्रत्यूहा वा सम्यक्करणपरितोषितद्विजचक्रा क्रातवी क्रियते क्रिया ? यथावदविकलमन्त्रभाञ्जि

टीका—अंशतः शुष्काः श्यामाकाः=मुनिधान्यविशेषाः यस्मिन् तस्मिन् जनितं=समुत्पादितं प्रियङ्गोः=पुष्पलता-विशेषस्य [यो खलु स्त्रीणां स्पर्शेन विकसति] मञ्जरीषु=वल्लरीषु रजः=परागः येन तस्मिन्; कठोर०—कठोरा=कठिना त्रपुसस्य=कर्कट्याः त्वक्=वल्कल यस्मिन् तस्मिन्, कुसुमैः=पुष्पैः स्मेराः=स्मयगताः विकसिताः इत्यर्थः शराः तृण-विशेषाः यस्मिन् तस्मिन्; बन्धून्=बान्धवान् । ब्राह्मणाधिवासम्=एतन्नामकं स्वग्रामम् अगात्=अगच्छत् ।

समुप०—समुपलब्धः=प्राप्तः भूपालात्=राज्ञः हर्षादित्यर्थः संमानस्य=आदरस्य यः अतिशयः=आधिक्यं तेन परितुष्टाः=प्रसन्नाः ज्ञातयः=सजातीयाः बन्धु-बान्धवाः इति यावत् श्लाघमानाः=बाणं प्रशंसन्तः निर्ययुः=निर्गताः । कान् चित् अभिवादयमानः=प्रणमन्, कैः चित् अभिवाद्यमानः प्रणम्यमानः, मूर्ध्नि=शिरसि समाजिघ्रन्=समाघ्राणविषयीकुर्वन् आशिषा=आशीर्वादेन अनुगृह्यमाणः अनुग्रहं प्राप्यमाणः, परान्=अन्यान् अनुगृह्णन्=अनुकम्पमानः बहूनां बन्धूनां=बान्धवानां मध्ये वर्तते इति ०वर्ती परम्=अत्यन्तम्, मुमुदे=हर्षमवाप । गुरुषु गुरु-जने आसीनेषु=कृतासनपरिग्रहेषु सम्भ्रान्तेन=त्वरा-पूर्णेन परिजनेन=भृत्यवर्गेण उपनीतम्=समीपे आनीतम् आसनं भेजे=सिषिवे उपविष्टवानित्यर्थः प्रीयमाणेन=प्रसन्नेन मनसा सर्वान् तान्=बन्धु-बान्धवान् पर्यपृच्छत्=परितः अपृच्छत् । कच्चित्=प्रश्न-वाचकोऽप्येषोऽव्ययः 'अहम् आशासे' इत्यस्मिन्नर्थे प्रयुज्यते ['कच्चित् काम-प्रवेदने' इत्यमरः] एतावतः दिवसान् ['कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' पा० २।३।५ इत्यनेन द्वितीया]; सुखिनः=सुखपूर्णाः; न विद्यन्ते प्रत्यूहाः=विघ्नाः यस्यां सा इति, निर्विघ्नेत्यर्थः सम्यक्करणेन=सम्यगनुष्ठानेन परितोषितं=प्रसन्नीकृतं द्विजानां=ब्राह्मणानां चक्रं=समूहः यस्यां सा, क्रतोः=यज्ञस्य इयमिति क्रातवी यज्ञसम्बन्धिनीत्यर्थः क्रियाः=विधिः । यथावत्=विध्यनुसारम्, अविकलाः=अखण्डाः स्वर-वर्णतः अहीनाः इत्यर्थः । अक्षर-मात्राभ्रंशदोषे—'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्' ॥ [शिक्षा] ये मन्त्राः तान् भजन्ते इति० भाञ्जि [क्विप्] भुञ्जते=भक्ष-

हिन्दी—की मञ्जरियों में पराग उत्पन्न हो उठती है, ककड़ी का छिल्का कठोर होने लगता है और सरकण्डे फूलों से हंसने लग जाते हैं—राजा के पास से बाण बन्धुओं को देखने फिर ब्राह्मणाधिवास को चल पड़ा ।

राजा (हर्ष) से प्राप्त बड़े भारी सम्मान के कारण प्रसन्न हुए बन्धु-बान्धव प्रशंसा करते हुए निकल पड़े । बारी-बारी से किन्हीं को अभिवादन करता हुआ और किन्ही का अभिवादन लेता हुआ, किन्ही द्वारा गले लगाया जाता हुआ और किन्हीं को गले लगाता हुआ, अन्यों द्वारा आशीष से अनुगृहीत किया जाता हुआ और दूसरों पर [आशीष से] अनुग्रह करता हुआ (बाण) अपने बन्धुओं के मध्य बड़ा प्रसन्न हुआ । गुरुओं के बैठ जाने पर जल्दी-जल्दी नौकरों द्वारा लाए हुए आसन पर बैठ गया और पूजा आदि सत्कार को प्राप्त करता हुआ बड़ा प्रसन्न हुआ । और प्रसन्न होते हुए उसने उन सब को पूछा—क्या इतने दिनों तक तुम सुख-पूर्वक रहे ? अथवा अच्छी तरह सम्पादित होती रहने से ब्राह्मण-मण्डली को सन्तुष्ट रखे हुए यज्ञ-क्रिया निर्विघ्न चल रही है ? अथवा क्या अविकल मन्त्रों से युक्त हवियों को अग्नियाँ यथावत् ग्रहण कर रही हैं ? अथवा क्या बच्चे ठीक समय पर पढ़ा करते हैं ? अथवा

भुञ्जते वा हवींषि हुतभुजः ? यथाकालमधीयते वा बटवः ? अविच्छिन्नो वा वेदाभ्यासः ? कच्चित्स एव चिरन्तनो यज्ञविद्याकर्मण्यभियोगः? तान्येव व्याकरणे परस्परस्पर्धानुबन्धावन्ध्यदिवसर्दाशतादराणि व्याख्यानमण्डलानि? सैव वा पुरातनी परित्यक्तान्यकर्तव्या प्रमाणगोष्ठी, स एव वा मन्दीकृतेतरशास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः ? कच्चित्त एव वाभिनवसुभाषितसुधावर्षिणः काव्यालापाः ?' इति ।

अथ ते तमूचुः='तात, सन्तोषजुषां सततसन्निहितविद्याविनोदानां वैतानवह्निमात्रसहायानां कियन्मात्रं नः कृत्यं सुखितया सकलभुजि भुजङ्गराजदेहदीर्घे रक्षति क्षितिं क्षितिभुजो भुजे । सर्वथा[२] सुखिन एव वयम्, विशेषेण तु त्वयि विमुक्तकौसीद्ये परमेश्वरपार्श्ववर्तिनि वेत्रासनमधितिष्ठति । सर्वे च यथाशक्ति यथाविभवं यथाकालं च विप्रजनोचिताः क्रियाकलापाः' इति । एवमादिभिरालापैः स्कन्धावारवार्ताभिश्च शैशवातिक्रान्तक्रीडानुस्मरणैः पूर्वजकथाभिश्च विनोदितमनास्तैः सह सुचिरमतिष्ठत् । भुक्तवन्तं च तं सर्वे ज्ञातयः पर्यवारयन् ।

टीका—यन्ति हवींषि=हव्यानि घृतादीनि, हुतम्=हवनविषयीकृतं भुञ्जते इति हुतभुजः वह्नयः । यथाकालं=कालम् अनतिक्रम्य वटवः=छात्राः अधीयते=पठन्ति ? दिने दिने इति प्रतिदिनं अविच्छिन्नः विच्छेद-रहितः सततः इत्यर्थः वेदानाम् अभ्यासः । चिरन्तनः=चिरं भवः इति चिरकालात् आगतः इत्यर्थः, यज्ञस्य=यागानुष्ठानस्येत्यर्थः विद्या=ज्ञानम् अथ च कर्म=कार्यं तस्मिन् अभियोगः=आभिमुख्येन उद्यम इति क्षीर-स्वामी—**परस्पर०**—परस्परम् अन्योन्यं या स्पर्धा=संघर्षः पराभवेच्छेति यावत् तस्या अनुबन्धः=क्रमः तेन अबन्ध्यः=अविफलः सफलः इति यावत् यः दिवसः=दिनम् तेन दर्शितः=प्रकटितः आदरः येषु तानि व्याख्यानानां=प्रवचनानां मण्डलानि=चक्राणि गोष्ठ्यः इति यावत् प्राक्तनी=प्राग्भवा, परित्यक्तं=मुक्तम् अन्यत् कर्तव्यं यस्मात् सा, प्रमाणानां=प्रत्यक्षानुमानादीनां न्यायशास्त्रस्येत्यर्थः गोष्ठी=सभेत्यर्थः । मन्दीकृतः=अधरीकृतः इत्यर्थः । इतरेषु=अन्येषु शास्त्रेषु=ज्योतिषादिषु रसः=रुचिः येन सः मीमांसायाम् उत्तरमीमांसायां=चेत्यर्थः, अतिशयितः=अत्यधिकः रसः इत्यतिरसः, एतेनानुमीयते बाणस्य ज्ञातयः पद-वाक्य-प्रमाणज्ञाः आसन्, पदं=व्याकरणशास्त्रम्, वाक्यं=मीमांसाशास्त्रम्, प्रमाणं=न्यायशास्त्रम् **अभिनव**—=अभिनवं नवीनं सुभाषितं=सूक्तिः एव सुधा=अमृतम् तां वर्षन्तीति तथोक्ताः काव्यविषयक-वार्तालापाः।

अथ=ऊचुः=कथयामासुः सन्तोषं=परितोषं जुषते इति ०जुषः तेषाम् **सतत०**—सततं=निरन्तरम् यथा स्यात्तथा सन्निहितः=सन्निकटः विद्यया=शास्त्रज्ञानेन विनोदः मनोरञ्जनं येषां तेषाम्, **वैतान०**—वितानः=यज्ञः तस्य अयम् इति वैतानः (अण्) यः वह्निः=अग्निः स एव वह्निमात्र सहायः=सहायकः येषां तेषाम् नः=अस्माकं सुखितया=सुखित्वेन कियत् एव कियन्मात्रम् अत्यल्पमित्यर्थः कृत्यं=प्रयोजनम्, सकलानि=सर्वाणि भुवनानि=लोकान् भुनक्ति=पालयतीति तथोक्ते (क्विप्) भुजङ्गानां=सर्पाणां राजा=अधिपः शेषः इति यावत् तस्य देहवत्=शरीरवत् दीर्घे=प्रलम्बे, क्षितिं=पृथिवीं रक्षति=पालयति [सति सप्तमी] क्षितिभुजः=महीपस्य हर्षस्येत्यर्थः भुजे=बाहौ । विमुक्तं=त्यक्तं कौसीद्यम्=आलस्यं निष्प्रयत्नतेत्यर्थः येन तस्मिन्, परमेश्वरस्य=महाराजाधिराजस्य पार्श्वे=निकटे वर्तते इति ०वर्ती तस्मिन्, वेत्रासनं=वेत्रनिर्मितम् आसनम् अधितिष्ठति=उपविशति सति सप्तमीयम् । शक्तिम् अनतिक्रम्य=शक्त्यनुसारेण, विभवं=धनम् अनतिक्रम्य अर्थात् यावद् धनमस्माकं पार्श्वे तदनुसारेण, कालम् अनतिक्रम्य समयानुसारेणेत्यर्थः सम्पाद्यन्ते=क्रियन्ते विप्रजनानां=ब्राह्मणजनानाम् उचिताः=योग्याः क्रियाणां=धर्माणां कलापाः=समूहाः । एवम् आदि येषां तैः आलापैः=वार्तालापैः स्कन्धावारस्य=राज्ञः शिविरस्य वार्ताभिः=समाचारैः शैशवस्य=बाल्यस्य अतिक्रान्ताः=अतीताः याः क्रीडाः=खेलाः तासाम् अनुस्मरणैः=अनुचिन्तनैः पूर्वजानां=पूर्वपुरुषाणां कथाभिश्च विनोदितं=रञ्जितं मनः=चित्तं येन स तैः=बान्धवैः सह सुचिरं=दीर्घकालपर्यन्तम् अतिष्ठत्=स्थितिं चकार । मध्यन्दिने=मध्याह्ने यथाक्रियमाणाः अनतिक्रम्य अर्थात् यथानित्यं क्रियन्तेस्म स्थितीः=आचारकर्माणीत्यर्थः अकरोत्=कृतवान् । भुक्तवन्तं=कृतभोजनं च तं सर्वे ज्ञातयः=बन्धुबान्धवाः पर्यवारयन्=परितः स्थितवन्तः इत्यर्थः ।

हिन्दी—क्या वेदाभ्यास प्रतिदिन निरन्तर चल रहा है ? क्या यज्ञों के ज्ञान और अनुष्ठान में वही पहले जैसा लगाव है ? क्या व्याकरण विषय पर वही गोष्ठियाँ होती हैं, जिन्हें परस्पर स्पर्धा-क्रम के साथ दिन को सफल बनाते हुए आदर-भाव दिखाया जाता था ? अथवा क्या अन्य काम-धन्धों को छोड़ न्याय शास्त्र की वही प्रमाण गोष्ठी होती रहती है ?

अत्रान्तरे दुकूलपट्टप्रभवे शिखण्डिपृष्ठापाङ्गपाण्डुनी पौण्ड्रे वाससी वसानः, स्नानावसानसमये वन्दितया तीर्थमृदा गोरोचनया च रचिततिलकः, तैलामलकमसृणितमौलिः, अनुच्चचूडाचुम्बिना निबिडेन कुसुमापीडकेन समुद्भासमानः, सकृदुपयुक्तताम्बूलविमलाधरकान्तिः, एकशलाकाञ्जनजनितलोचनरुचिः, अचिरभुक्तः, विनीतमार्यं च वेषं दधानः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिराजगाम। नातिदूरवर्तिन्यां चासन्द्यां निषसाद। स्थित्वा च मुहूर्तमिव तत्कालापनीतसूत्रवेष्टनमपि

टीका—अत्रान्तरे = एतन्मध्ये, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः आजगामेत्यन्वयः; तस्य विशेषणानि; दुकूल-पट्टात् = चीनांशुकपट्टिकातः प्रभवः = उत्पत्तिः ययोः ते। शिखण्डि०—शिखण्डिनः = मयूरस्य अपाङ्गः = नेत्रप्रान्तः तद्वत् पाण्डुनी = श्वेतवर्णे पौण्ड्रे = पुण्ड्रदेशोद्भवे वाससी = वस्त्रद्वयं वसानः = परिदधानः, स्नानस्य अवसानं = समाप्तिः तस्य समये, वन्दिनः = स्तुतिपाठकस्य भावतया ['वन्दिनः स्तुतिपाठकाः' इत्यमरः] तीर्थस्य = पवित्रस्थानस्य मृदा = मृत्तिकया, गोरोचनया = गोमस्तिष्कस्थित-पीतवर्ण-पवित्र-द्रव्यविशेषेण रचितं = कृतं तिलकं ललाटे चिह्नविशेषः येन सः, तैला०—तैलं च आमलकं च = फलविशेषश्च ताभ्यां मसृणिताः = चिक्कणीकृताः मौलयः = केशाः यस्य सः; अनुच्च०—अनुच्चाः = अदीर्घा या चूडा = शिखा ['शिखा चूडा केशपाशी' इत्यमरः] तां चुम्बति = स्पृशतीति तथोक्तेन निबिडेन = पुष्पैः घनेन कुसुमानां = पुष्पाणाम् आपीडकेन = शेखरेण शिरोमालयेत्यर्थः ['शिखास्वापीड-शेखरौ' इत्यमरः] समुद्भासमानः = भ्राजमानः; सकृदु०—सकृत् = एकवारम् उपयुक्तेन = भक्षितेनेत्यर्थः ताम्बूलेन = पुन्नाग-वल्लीपत्रेण विमला = निर्मला रम्येत्यर्थः, अधरस्य = ओष्ठस्य कान्तिः = शोभा यस्य सः, यदि तु असकृत् ताम्बूलभक्षणं कृतं स्यात् तर्हि अधरकान्तिः कृष्णवर्णा स्यात्; एक०—एकया शलाकया = 'सलाई' इति भाषायां प्रसिद्धया अञ्जनेन = कृष्णवर्ण-नेत्ररञ्जक-द्रव्यविशेषेण जनिता = समुत्पादिता लोचनयोः = नेत्रयोः कान्तिः = शोभा यस्य सः, अचिरं = सद्यः इत्यर्थः, यथा स्यात्तथा भुक्तः = भुक्तम् भोजनं (भावे क्तः) अस्यास्तीति भुक्तः (अच् मतुबर्थे) अधुनैव कृतभोजनः

टिप्पणी—**कौसीद्यम्**—यह शब्द कुसीद = कुत्सितं सीदति अस्मिन् इति, इसका ष्यञ् लगने से बना हुआ भाववाचक रूप है। कुसीद साहूकार को कहते हैं जो निठल्ला बैठा हुआ सूद खाया करता है, इसलिए वह आलसी हुआ करता है। मृद्-गोरोचना—सभी वर्णों के लिए तीर्थ की मिट्टी एवं गोरोचन से तिलक का विधान है—

> तीर्थमृद् यज्ञकाष्ठं स्याद् बिल्वो मलयसम्भवम्। जाह्नवीमृन्महानिम्ब-तुलसीकाष्ठमेव च॥
> गोरोचना गन्धकुष्टं जलं चागुरुगोमयम्। स्नानान्ते सर्ववर्णानामाश्रमाणां तथैव च॥
> एतानि तिलकान्याहुः सन्ध्यादिसर्वकर्मसु।

हिन्दी—क्या अन्य शास्त्रों का रस फीका किये हुए मीमांसा का प्रचुर रस वैसा ही है? क्या नए-नए सुभाषित रूपी अमृत बरसाने वाले काव्य-विषयक वार्तालाप वही हैं?"

इसके बाद वे उससे बोले—"तात, सकल भुवनों का पालन करने वाली, शेषनाग की देह की तरह लम्बी महाराज (हर्ष) की भुजा के पृथिवी पर शासन करते रहते सन्तोषी वृत्ति वाले, अपने पास की विद्या द्वारा निरन्तर मनोरंजन में लगे हुए, यज्ञीय अग्नि मात्र को (अपना) सहायक बनाए हुए हम (लोगों) को सुखी रहने से कितना प्रयोजन [हो सकता] है? हम सभी तरह से सुखी हैं, विशेषतः आलस्य त्यागे हुए, महाराजाधिराज के समीप रहने वाले तुम्हारे वेत्रासन पर बैठे रहते। शक्ति, धन और समय के अनुसार ब्राह्मण लोगों के योग्य सभी क्रिया-समूह किए जाते हैं। इत्यादि आलापों और [राजा के] शिविर की बातों तथा बचपन की बीती हुई क्रीड़ाओं की स्मृतियों एवं पूर्वजों की कथाओं से मन बहलाते हुए उनके साथ देर तक बैठा रहा। और उठकर मध्याह्न में नित्य के किये जाने वाले आचार-कर्म किए। खाना खा चुके हुए उन सब भाई-बन्धुओं ने उसे घेर लिया।

इस बीच सुदृष्टि नाम का पुस्तकवाचक आ बैठा—जो रेशम के थान से [फाड़कर] बनाये हुए पुण्ड्र देश (आधुनिक बंगाल-बिहार) के, मोर के नेत्र-प्रान्त की तरह श्वेत वर्ण के दो वस्त्र पहने हुए था, जो स्तुतिपाठक होने के कारण स्नान-समाप्ति के समय तीर्थ की मिट्टी एवं गोरोचना से तिलक लगाए हुए था, जो तेल और आंवले से शिर के बाल चिकने किये हुए था, जो छोटी-सी शिखा को छू रही घनी पुष्पशिरोमाला से चमक रहा था, जिसकी एक बार ही चबाए हुए पान के कारण अधर-शोभा विमल हो रही थी, जो अंजन की एक ही सलाई से आँखों की शोभा बनाये हुए था, जो अभी अभी खाना खाये हुए था और विनीत एवं श्रेष्ठजनोचित वेश धारण किए हुए था।

नखकिरणैर्मृदुमृणालसूत्रैरिव वेष्टितं पुस्तकं पुरोनिहितशरशलाकायन्त्रके निधाय, पृष्ठतः सनीडसन्निविष्टाभ्यां मधुकर-पारावताभ्यां दत्ते स्थानके, प्राभातिकप्रपाठकच्छेदचिह्नीकृतमन्तरपत्रमुत्क्षिप्य, गृहीत्वा च कतिपयपत्रलघ्वीं कपाटिकाम्, क्षालयन्निव मषीमलिनान्यक्षराणि दन्तकान्तिभिः, अर्चयन्निव सितकुसुममुक्तिभिर्ग्रन्थम्, मुखसन्निहित-सरस्वतीनूपुररवैरिव गमकैर्मधुरैराक्षिपन्मनांसि श्रोतॄणां गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ ।

तस्मिंश्च तया श्रुतिसुभगगीतिगर्भं पठति सुदृष्टौ नातिदूरवर्ती वन्दी सूचीबाणस्तारमधुरेण गीतिध्वनिमनुवर्तमानः स्वरेणेदमार्यायुगलमपठत्—

टीका—इत्यर्थः । विनीतं नम्रं साधारणमिति यावत् न तूज्ज्वलम् आर्यं=श्रेष्ठम् आदरणीयमित्यर्थः, वेषं=वेश-भूषां दधानः=धारयन् । न अति दूरे वर्तते इति तथोक्तायाम् आसन्द्यां=वेत्रासने निषसाद=स्थितवान् । मुहूर्तमिव =क्षणमिव, तत्काल०—तत्कालं=स कालः=समयः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, अपनीतम्=अपसारितम् उन्मोचितमित्यर्थः । सूत्रेण वेष्टनं=पर्यावरणं यस्य तत् अपि नखकिरणैः=कररुह-रश्मिभिः मृदूनि=कोमलानि यानि मृणालस्य=बिसस्य सूत्राणि=तन्तवः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायां वेष्टितं पुस्तकं पुरः=अग्रे निहितस्य=स्थापितस्य शरस्य= नलस्य शलाकानां=यष्टिकानां यन्त्रे एव यन्त्रके=पुस्तकस्थापनसाधनविशेषे निधाय=स्थापयित्वा, पृष्ठतः=पश्चा-द्भागे सनीडे=समीपे सन्निविष्टाभ्यां=स्थिताभ्यां मधुकरपारावताभ्याम्=एतन्नामक-वंशीवादकाभ्यां स्थानम् एव स्थानकम् तस्मिन् दत्ते सति, प्राभातिक०—प्रभाते=प्रातःकाले भवः प्राभातिकः (ठक्) प्रातःकालीनः इत्यर्थः, यः प्रपाठकः=प्रपठनम् अध्यायः इति यावत् अथवा प्रपाठकः=वाचकः तत्र तस्य वा यः छेदः=समाप्तिः तस्य चिह्नीकृतं =संकेतीकृतम् अन्तरपत्रम्=अन्तःस्थापितं बाह्यपत्रम् उत्क्षिप्य=उद्धृत्य कतिपयैः=अल्पैरित्यर्थः पत्रैः लघ्वीं= भाररहिताम् कपाटिकां=स्वल्पः कपाटः कपाटिका ताम् पट्टिकामित्यर्थः, क्षालयन्=धावयन्निवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मष्या= कालिकया मलिनानि=श्यामीभूतानि अक्षराणि=वर्णान् दन्तानां=दशनानां कान्तिभिः=छटाभिः, सितानि=श्वे-तानि यानि कुसुमानि=पुष्पाणि तेषां मुक्तिभिः=मोचनैः ग्रन्थम्=पुस्तकम् अर्चयन्=पूजयन्निवेत्युत्प्रेक्षायाम्; मुख०—मुखे=वक्त्रे सन्निहिता=प्रत्यासन्ना या सरस्वती=वाग्देवी तस्याः नूपुराणां=मञ्जीराणां रवैः=शिञ्जितैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, मधुरैः=माधुर्य-पूर्णैः स्वरकम्पविशेषैः श्रोतॄणां=श्रावकाणां मनांसि=हृदयानि आक्षिपन्=आकर्षन् गीत्या=गीतिरूपेण पवमानेन=वायुना प्रोक्तं पुराणं वायुपुराणमिति यावत्, पपाठ=पठितवान् ।

तस्मिन् च सुदृष्टौ श्रुतिभिः='सरिगमपधनि' इत्यात्मक-सप्तस्वराणाम् आधारभूतैर्नादैः सुभगा=रमणीया गीतिः=गानं गर्भे यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा पठति=पाठं कुर्वति नातिदूरवर्ती=ईषद्दूरस्थितः वन्दी=स्तुतिपाठकः सूचीबाणः गीतिध्वनिं=गीतस्वरम् अनुवर्तमानः=अनुसरन् तारेण=उच्चेन मधुरेण=

टिप्पणी—गमकैः—यह संगीतशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है । संगीत-रत्नाकर की—'स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः' इस उक्ति के अनुसार गाते समय स्वर-कम्प को 'गमक' कहते हैं, किन्तु शंकर का कथन ऐसा है:—'गमयन्ति रागस्वरूपमिति गमकाः असाधारणानि स्वराणां निमीलनानि यानि लक्ष्येष्वान्तरमार्गं इति प्रसिद्धाः तैर्गमकैः स्वर-यति-विशेषैः' । अविवादि—भरतनाट्य के अनुसार 'सरिगमपधनि' ये सात स्वर चार वर्गों में विभक्त किए जाते हैं—'वादी चैवाथ संवादी ह्यनुवादी विवाद्यपि । विवादिनस्तु ये तेषां स्याद् विंशतिकमन्तरम् ॥' तद्यथा ऋषभगान्धारौ धैवत-निषादौ [अध्या० २८,२३]

हिन्दी—वह कुछ ही दूर रखे हुए वेत्रासन पर बैठ गया । और थोड़ी देर बैठकर तत्काल डोरी का वेष्टन हटाये जाने पर भी मृदु मृणाल-तन्तुओं से-जैसे नखकिरणों से (फिर) वेष्टित हुई पुस्तक आगे रखे सरकण्डों की छड़ियों से बनी पीढ़ी पर धरकर, पीछे पास में ही बैठे हुए मधुकर और पारावत को स्थान दिये जाने पर प्रातःकाल के पाठ की समाप्ति चिह्न-रूप भीतर रखे हुए पत्र को हटाकर, थोड़े ही पन्ने (शेष) रहने के कारण हल्की बनी दफ्ती को लेकर, दन्त-छटाओं से स्याही के काले अक्षरों को धोता हुआ जैसा, श्वेत पुष्पों को फेंक कर पुस्तक को पूजता हुआ-जैसा, मुख में बैठी हुई सरस्वती की पायजेबों की ध्वनियों-जैसे मीठे गमकों से गीति द्वारा श्रोताओं का मन आकृष्ट करता हुआ वायुप्रोक्त पुराण पढ़ बैठा ।

उस सुदृष्टि के उस तरह श्रुतियों से सुन्दर गीत को मध्य में रखकर पढ़ने पर कुछ दूर बैठे हुए सूचीबाण नामक बन्दी ने गीत की ध्वनि का अनुसरण करते हुए मधुर स्वर से ये दो आर्या छन्द पढ़े ।

'तदपि मुनिगीतमतिपृथु तदपि जगद्व्यापि पावनं तदपि ।
हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि मे पुराणमिदम् ॥३॥
वंशानुगमाविवादि स्फुटकरणं भरतमार्गभजनगुरु ।
श्रीकण्ठविनिर्यातं गीतमिदं हर्षराज्यमिव ॥४॥'

तच्छ्रुत्वा बाणस्य चत्वारः पितामहमुखपद्मा इव वेदाभ्यासपवित्रितमूर्तयः, उपाया इव सामप्रयोगललितमुखाः,

---

टीका—माधुर्यपूर्णेन च स्वरेण इदम् आर्ययोः=आर्याछन्दसोः युगलं=द्वयम् अपठत् । तदपि०—इदं गीयमानं पुराणम् हर्षचरितात्=राज्ञः श्रीहर्षस्य चरित्रात् अभिन्नं=न भिन्नं सदृशमिति यावत्, मे=मम प्रतिभाति=प्रतीयते यतः यथा एतत् मुनिना=व्यासेन गीतम् तथा तदपि=हर्षचरितमपि मुनिभिः=मननशीलैः विद्वद्भिः गीतम्, इदम् अतिपृथु=महापरिमाणम्, वायुपुराणे हि सहस्रशः श्लोकाः सन्ति अतः महाभारि वर्तते, हर्षचरितम् अपि पृथुम् एतन्नामानम् आदिमहाराजम् अतिक्रान्तम्, एतद्वत् तदपि जगद्व्यापि उभयं पावनं=पवित्रं च, अथवा एतत् पावनं=पवननिर्मितम्, तदपि पावनं=पवित्रम् हर्षस्य पुण्यश्लोकत्वात् ॥३॥

वंशानु०—वंशं=वंशी वेणुमित्यर्थः, अनुगच्छति=अनुसरतीति तथोक्तम् अर्थात् वेणुस्वरानुसारि, अविवादि=न विवादिनौ=विवादिस्वरौ=ऋषभ-गान्धारौ एवं धैवत-निषादौ यस्मिन् तत्, स्फुटानि=स्पष्टानि करणानि=तालव्यवस्थार्थं क्रियमाणानि करताडनादीनि यस्मिन् तत्, तदुक्तं राजकन्दर्पेण—"नृत्य-वादित्र-गीतानां प्रयोगवशभेदिनाम् । संस्थानं ताडनं रोधः करणानि प्रचक्षते ।" भरतस्य=एतन्नामकस्य नाट्यकला-प्रवर्तकस्य मुनिविशेषस्य यः मार्गः पद्धतिः=सिद्धान्तः इति यावत् तस्य भजनं=सेवनम् अनुसरणमित्यर्थः, तेन गुरु=महत्त्वं प्राप्तम्. श्रीः=सौन्दर्यं माधुर्यमिति यावत् तया युक्तः कण्ठः इति श्रीकण्ठः [मध्यमपदलोपी स०] तस्मात् विनिर्यातं=निःसृतम् इदं गीतं गीयमान-वायुपुराणमित्यर्थः वंशं=कुलम् अनुगच्छतीति तथोक्तम् कुलपरम्परागतमित्यर्थः, अविवादि=न विवादिनः=विरोधिनः यस्मिन् तत् हर्षस्य सुराज्यत्वात् स्फुटानि करणानि=भूमिविक्रयादि-सम्बन्धीनि लेखपत्राणि यस्मिन् तत्, राज्यपत्रेषु कुत्रापि सन्देहस्थानाभावात्, भरतः=एतन्नामकः दुष्यन्त-शकुन्तलाभ्यां जातः भूपतिविशेषः, यन्नामानुसारेण देशस्यास्माकं 'भारतवर्षः' इति नाम जातम्, तस्य यः मार्गः=नीतिरित्यर्थः तस्य भजनेन=आश्रयणेन गुरु=महत्वपूर्णम् श्रीकण्ठः=हर्ष-पूर्वज-शासित-देशविशेषः तस्मात् निर्यातं=विनिर्गतम् हर्षस्य=हर्षवर्धनस्य राज्यं=शासनम् इवेत्युपमायाम् अस्तीति शेषः, अत्र गीतस्य हर्षराज्येन साम्य-प्रतिपादनात् उपमा सा च श्लेषेण संकीर्यते ।

तत् आर्यायुगलं श्रुत्वा=आकर्ण्य पितामहः=ब्रह्मा तस्य मुखानि=आननानि एव पद्माः=कमलानि ['वा पुंसि पद्मं नलिनम्' इत्यमरः] इवेत्युपमायाम्, वेदानाम्=ऋग्-यजुः-सामाथर्वणाम् यः अभ्यासः=पुनः पुनः पठनं तेन पवित्रिता=पवित्रीकृता मूर्तिः=तनुः येषां ते, इदं विशेषणम् उभयत्र सङ्गच्छते, उपायाः राजनीति-साधनविशेषाः साम्नां=सामवेदमन्त्राणां प्रयोगेण=अभ्यासेन ललितानि=सुन्दराणि मुखानि=वक्त्राणि येषां ते, अन्यत्र साम्नः=एतन्नामकोपायविशेषस्य प्रयोगेण=व्यवहारेण ललितं=सुन्दरं मुखम्=आरम्भः येषां ते, राज-

हिन्दी—यह पुराण (जो तुम गाते हो) मुझको हर्षचरित से भिन्न नहीं लगता है, [यह मुनि-गीत है] वह भी मुनिगीत है, [यह यदि अतिपृथु] बड़ा भारी है, वह भी अति पृथु है [पृथु राजा को मात करने वाला है]। [यह जगव्यापी है], वह भी जगव्यापी है [यदि यह पावन (वायु-रचित) है], वह भी पावन [पवित्र] है।

यह पुराण का गीत तुम्हारा, हर्षराज्य के है सर्वथा समान,
अनुसरण वंश [वेणु-रव] का यह करता उसमें भी वंश (कुल) अनुगमन प्रमान ।
इसमें कोई नहीं विवादी [स्वर-विशेष] वहाँ भी कहाँ विवादी [विरोधी] का नाम
स्पष्टकरण [ताल-लयादि] हैं इसमें सारे वहाँ भी स्पष्टकरण (लेखपत्र) का सारा काम,
भरत [मुनिविशेष] मार्ग पर चलकर यह महान् वह भी भरत (राजाविशेष) मार्ग पर चल पा गया नाम
श्रीकण्ठ [मधुर गले] से-जैसे यह निकला, निकलने का उसका भी श्रीकण्ठ [देशविशेष] धाम ।

यह सुनकर ब्रह्मा के मुख-कमलों के समान वेदाभ्यास से पवित्र हुई मूर्ति वाले, साम [सान्त्वन, शान्ति] के प्रयोग से सुन्दर मुख (प्रारम्भ) वाले, राजनीति के उपायों की तरह सामों [सामवेद के मन्त्रों] के प्रयोग से

गणपतिरधिपतिस्तारापतिः श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातरः, प्रसन्नवृत्तयो गृहीतवाक्याः कृतगुरुपदन्यासा न्यायवेदिनः सुकृतसंग्रहाभ्यासगुरवो लब्धसाधुशब्दा लोक इव व्याकरणेऽपि, सकलपुराणराजर्षिचरिताभिज्ञाः, महाभारतभावितात्मानः, विदितसकलेतिहासाः, महाविद्वांसः, महाकवयः, महापुरुषवृत्तान्तकुतूहलिनः, सुभाषितश्रवणरसरसायनावितृष्णाः, वयसि वचसि यशसि तपसि महसि वपुषि यजुषि च प्रथमाः, पूर्वमेव कृतसङ्कराः, विवक्षवः स्मितसुधाधवलितकपोलोदराः, परस्परस्य मुखानि व्यलोकयन् ।

टीका—नीतौ हि राज्ञा चत्वार उपायाः—साम, दानं, दण्डः, भेदः—इत्येते प्रयोक्तव्याः भवन्ति, प्रथमोपायः साम, सान्त्वनमित्यर्थः । अत्र श्लिष्टोपमा । गणपत्यादयः चत्वारः पितृव्यपुत्राः भ्रातरः, लोके=संसारे इव व्याकरणे=शब्दशास्त्रे । अत्रोपमा सा च श्लिष्टा, प्रसन्ना=उदारा सौम्येति यावत्, वृत्तिः=वर्तनं व्यवहार इति यावत्, अन्यत्र प्रसन्ना=स्पष्टा वृत्तिः=विवरणं व्याख्येत्यर्थः [पाणिनिसूत्राणाम्] येषां ते, गृहीतं श्रुतमित्यर्थः, वाक्यं गुरूणां=स्वश्रेष्ठपुरुषाणाम् आप्तानामिति यावत्, वाक्यम् अन्यत्र गृहीतानि=ज्ञातानि गुरुवाक्यानि कात्यायनमुनेः वार्त्तिकानि अथवा गृहीतं वाक्यं भर्तृहरेः वाक्यपदीयं यैस्तथाभूताः, कृत०—कृतः गुरूणाम्=आचार्याणां पदे=पदचिह्ने न्यासः=स्वपदस्थापना यैः अर्थात् गुरुपदचिह्नेषु चलन्तः अथवा कृतः गुरुपदे=उच्चस्थाने=प्रतिष्ठा-पदे न्यासः यैस्ते, अन्यत्र कृतः=अभ्यस्तः गुरुपदेषु=पाणिनिसूत्राणां कठिनशब्देषु न्यासः=पाणिनिसूत्रव्याख्याविशेषः येस्ते, न्यायम्=उचितम् अन्यत्र न्यायान्=व्याकरणस्य प्रसिद्धनियमवाक्यानि कूपखानकन्याय-कुम्भीधान्यन्यायादीनि अथवा सूत्रव्याख्यानियमान् (छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति—असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इत्यादीन् विदन्तीति तथोक्ताः, सुकृत०—सुकृतं=पुण्यं तस्य यः संग्रहः=सञ्चयः तस्य अभ्यासे=पुनः पुनः करणे गुरवः=महान्तः अन्यत्र सुकृतः=सुष्ठुकृतः संग्रहस्य व्याडिकृतस्य व्याकरण-ग्रन्थविशेषस्य यः अभ्यासः=अनुशीलनं तेन गुरवः=आचार्याः, अर्थात् 'संग्रहस्य' सम्यगभ्यासात् ते व्याकरणाध्यापकाः आसन्; बाणकाले व्याडिकृतव्याकरणग्रन्थः उपलब्धः आसीदिति संदिग्धमेव । लब्ध०—लब्धः=समाजे प्राप्तः 'साधुः' इति शब्दः यैस्ते, ते साधुपुरुषाः कथ्यन्ते स्मेति भावः । अन्यत्र लब्धाः=प्राप्ताः प्रयुक्ताः इत्यर्थः साधुशब्दाः=व्याकरणदृष्ट्या शुद्ध-शब्दाः यैस्ते । सकल०—सकलेषु=सर्वेषु पुराणेषु यानि राजर्षीणाम्=ऋषितुल्यराजानाम् चरितानि=चरित्राणि तेषु अभिज्ञाः=ज्ञानवन्तः, महा०—महाभारतेन=व्यासरचित-ग्रन्थविशेषेण भाविताः=परिष्कृताः शुद्धीकृताः इत्यर्थः, आत्मानः येषां ते, विदिताः=ज्ञाताः इतिहासाः=इतिहास-ग्रन्थाः यैस्ते, महान्तश्च ते विद्वांसः । महापुरुष०—महापुरुषाणाम्=आदर्शपुरुषाणामित्यर्थः वृत्तान्ते=वृत्ते कुतूहलम्=औत्सुक्यम् एषामस्तीति तथोक्ताः । सुभाषित०—सुभाषितानां=सूक्तीनां श्रवणे=आकर्णने रसः=राग एव रसायनं=पौष्टिकमौषधम् तस्मिन् । अवितृष्णाः=विगता तृष्णा येषाम् इति वितृष्णाः, न वितृष्णा इत्यवितृष्णाः=तृष्णायुक्ताः इत्यर्थः, वयसि=अवस्थायाम् वचसि=वाण्यां वक्तृतायामित्यर्थः, यशसि=ख्यातौ, तपसि=तपस्यायाम्, महसि=तेजसि, वपुषि=शरीरे यजुषि=यजुर्वेदाध्ययने इत्यर्थः, प्रथमाः=अग्रगण्याः, पूर्वम्=प्राक् एव कृतः=अनुष्ठितः सङ्करः=संविद् 'वयं हर्षचरितं श्रावयितुं बाणे अनुरोधं करिष्यामः' इति परस्पर-निश्चयः इत्यर्थः । ['प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु सङ्करः' इत्यमरः] यैस्ते; वक्तुम् इच्छवः इति [वच्+सन्+उ] विवक्षवः, स्मित०—स्मितं=मन्दहास्यम् एव सुधा=अमृतं तया धवलितं=श्वेतीकृतं कपोलयोः=गण्डयोः उदरम्=अभ्यन्तरं येषां ते, परस्परस्य=परस्य परस्येति परस्परस्य=अन्योन्यस्य मुखानि=आननानि व्यलोकयन्=अपश्यन् ।

हिन्दी—सुन्दर मुख [वक्त्र] वाले गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ये चचेरे भाई, जिनकी जगत् में प्रसन्नवृत्ति [सौम्य व्यवहार] की तरह व्याकरण में भी प्रसन्नवृत्ति [स्पष्ट व्याख्या] थी, जो जगत् में [आप्तों के] वाक्यों का ग्रहण जिस तरह [स्वीकार] किये हुए थे जो जगत् में जिस तरह गुरुपदन्यास किये हुए [गुरुओं के पद-चिह्नों पर पैर रखे हुए] थे वैसे ही व्याकरण में भी गुरु-पदों [सूत्रों के कठिन शब्दों] पर न्यास [व्याख्या-विशेष] का अभ्यास किये हुए थे, जो जगत् में न्याय [उचितानुचित बात] की तरह व्याकरण के न्यायों [नियम-वाक्यों] को जानते थे, जो जगत् में अर्जित साधु पद की तरह व्याकरण में भी साधु-शब्दों [शुद्ध शब्दों] को प्रयुक्त किया करते थे, जो पुराणों के सभी राजर्षियों के चरितों से अभिज्ञ थे, जिन्होंने महाभारत [के अध्ययन] से आत्मा पवित्र कर रखी थी, जो सारा इतिहास जानते थे, बड़े विद्वान् और बड़े कवि थे, महापुरुषों का वृत्तान्त [सुनने] के लिए उत्सुक रहा

अथ तेषां कनीयान् कमलदलदीर्घलोचनः श्यामलो नाम बाणस्य प्रेयान् प्राणानामपि वशयिता दत्तसंज्ञस्तैः सप्रणयं दशनज्योत्स्नास्नपितककुभा मुखेन्दुना बभाषे—'तात बाण, द्विजानां राजा गुरुदारग्रहणमकार्षीत्। पुरूरवा ब्राह्मण-धनतृष्णया दयितेनायुषा व्ययुज्यत। नहुषः परकलत्राभिलाषी महाभुजङ्गः आसीत्। ययातिराहितब्राह्मणीपाणि-

---

टीका—अथ तेषां कनीयान् =द्वयोः अतिशयेन अल्पः इति [अल्प+ईयसुन् कनादेशश्च अत्र इष्ठन्-प्रत्यये कनिष्ठेनेति वक्तव्यमासीत् तस्य बटुषु अल्पत्वात्], कमल०—कमलस्य=पद्मस्य यत् दलं=पत्रं तद्वत् दीर्घे=आयते लोचने= नयने यस्य सः; प्रेयान्=अतिशयेन प्रियः प्राणानाम्=असूनाम् बाणस्येति शेषः, वशयिता=वशं करोतीति [वश्+ णिच्+तृच्] तैः अन्यभ्रातृभिः दत्ता संज्ञा=संकेतः यस्मै सः, प्रणयेन=विनयेन सहितं यथा स्यात्तथा, दशन०— दशनानां=दन्तानां ज्योत्स्नया=चन्द्रिकया स्नापिताः=स्नानं कारिताः ककुभः=दिशः येन तेन, मुखम्=आननमेव इन्दुः=चन्द्रः तेन, अत्र रूपकम्, बभासे=जगाद। अथ बाणः श्यामलमुखेन पूर्ववर्तिषु राजसु दोषमुद्भाव्य हर्षगौरवम् आख्यापयति, दोषास्तु क्वचित् शाब्दाः क्वचिच्चार्थाः, द्विजानां=नक्षत्राणां राजा=अधिपः चन्द्रः, गुरोः=बृहस्पतेः दाराणां=स्त्रियः तारायाः ग्रहणं=हरणमित्यर्थः अकार्षीत्=अकरोत्, अत्र द्विजानां=ब्राह्मणानाम् गुरोः= आचार्यस्य इत्यर्थो व्यज्यते, गुरु-दार-ग्रहणं महापातकेषु गण्यते, पुरूरवा एतन्नामको राजविशेषः ब्राह्मणस्य= विप्रस्य धने या तृष्णा=लोभः तया दयितेन=प्रियेण आयुषा=एतन्नामक-स्वपुत्रेण व्ययुज्यत=वियुक्तोऽभवत्, अत्र आयुषा इत्यनेन 'जीवनेन' इत्यप्यर्थो गृह्यते। नहुषः=आयुषः पुत्रः राजविशेषः परस्य=अन्यस्य कलत्रं=स्त्रियम् अभिलषति=इच्छतीति तथोक्तः महाभुजङ्गः=महासर्पः आसीत्, अत्र 'महाभुजङ्ग' इत्यस्य 'महालम्पटः' इत्यप्यर्थो गृह्यते। ययातिः=नहुषस्य द्वितीयः पुत्रः, आहित०—आहितं=कृतं ब्राह्मण्याः=देवयान्याः पाणेः=हस्तस्य ग्रहणं कूपादुद्धरण-समये इति यावत्, अथ च पाणिग्रहणं=विवाहः पपात=यौवनात् वार्धक्यमवाप, अथ च व्यवस्थातो

टिप्पणी—गुरुदार०—चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति की भार्या तारा का हरण पुराणों की प्रसिद्ध कथा है। चन्द्रमा को पूर्ण उदित देखकर तारा का मन मचल गया। चन्द्रमा उसे ले भागा। बृहस्पति देवराज इन्द्र के पास सहायतार्थ जा पहुंचा। दूसरी ओर चन्द्र ने असुरगुरु शुक्र की शरण ली। घोर देवासुर संग्राम छिड़ गया जो सहस्रों दिव्य वर्षों तक चलता रहा। अन्त में यह समझौता हुआ कि तारा बृहस्पति को दे दी जाय और उनसे उत्पन्न पुत्र बुध चन्द्रमा को। पुरूरवा का कथानक शंकर ने यों उद्धृत कर रखा है—'पुरूरवाः पूर्वां दिशं जेतुं गच्छन् केनाप्याहित-प्रभूतधनेन विप्रेण यज्ञे निमन्त्रितो लोभाक्षिप्तस्तद्धनं जिहीर्षुस्तच्छापान्नष्टः। तस्मिन् मृते स विप्रो नृपं विना प्रजा न वर्तते इति ज्ञात्वा तदायुषा राजर्षिमायुर्नामानमजीजनदिति'। नहुष० पुराण के अनुसार, नहुष आयु का ज्येष्ठ पुत्र था। वृत्र को मार कर इन्द्र पर ब्रह्म-हत्या का पाप लगा तो वह डर कर भाग निकला। नहुष ने बहुत-से यज्ञ कर रखे थे, अतः देवताओं ने उसे इन्द्र के स्थान पर बिठा दिया। इन्द्र बनते ही नहुष की ललचाई दृष्टि इन्द्राणी—शची—पर पड़ी। वह पतिव्रता थी। बृहस्पति से सलाह करके उसने इस शर्त पर नये इन्द्र—नहुष —के पास आना स्वीकार कर लिया कि उसकी पालकी ऋषि लोग ले जाएं। इन्द्र ने ऋषियों को आज्ञा दे दी। बेचारे बूढ़े ऋषि मन्द-मन्द ही चल रहे थे। नहुष को काम की बेचैनी थी। उसने अगस्त्य के सिर पर लात मारते हुए जल्दी-जल्दी चलने के लिए 'सर्प, सर्प' कहा। आग-बबूले ऋषि ने तत्काल उसे शाप दे दिया—'सर्पो भव'। ययाति—

हिन्दी—करते थे, सुभाषितों के सुनने के आनन्द-रूपी रसायन के इच्छुक थे एवं वय, वाणी, तप, तेज, शरीर और यजुर्वेद में प्रथम थे, पहले से ही निश्चय किये बोलना चाहते हुए, मन्द हास्य रूपी अमृत से कपोलों के मध्यभाग को श्वेत बनाते हुए एक दूसरे का मुंह देख रहे थे।

इसके बाद कमल की पंखुड़ियों की तरह दीर्घ आँखों वाला श्यामल नाम का सबसे छोटा (भाई), जो बाण का बड़ा प्रिय था और उसके प्राणों को भी वश में कर लिया करता था, उन [अन्य भाइयों] से संकेत प्राप्त करके पर दाँतों की चाँदनी से दिशाओं को सफेद बना देने वाले मुख-रूपी चाँद से विनय-पूर्वक बोला—तात बाण! द्विजराज [ताराओं का राजा, ब्राह्मणों का राजा] गुरुदार [बृहस्पति, आचार्य की पत्नी] को ग्रहण कर बैठा। पुरूरवा ब्राह्मण के धन के लोभ से प्रिय आयु [पुत्र-जीवन] से हाथ धो बैठा। दूसरे की स्त्री को चाहने वाला नहुष महाभुजग [अजगर, महास्त्रीलंपट] था। ययाति कः ब्राह्मणी का पाणिग्रहण [हाथ पकड़ना, विवाह] करके पतन [नाश अर्थात् प्रसव

प्रहरणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जन्तुवधनिर्घृणता। मान्धाता मार्गणव्यसनेन सपुत्रपौत्रो रसातलमगात्। पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यकायामकरोत्। कुवलयाश्वो भुजङ्गलोकपरिग्रहादश्वतरकन्यामपि न परिजहार। पृथुः प्रथमपुरुषकः परिभूतवान्पृथिवीम्। नृगस्य कृकलासभावे वर्णसङ्कर:

टीका—भ्रष्टः। सुद्युम्नः=राजविशेषः स्त्रीमयः=महिलाकृतिः अतिस्त्रीलम्पटश्च। सोमकस्य=एतन्नामक-नृपतिविशेषस्य जन्तोः=निजैकमात्रपुत्रस्य अथ च जन्तूनां=प्राणिनां वधे=हिंसायां निर्गता घृणा=दया यस्मात् इति निर्घृणः तस्य भावः तत्ता=निर्दयता। मान्धाता=युवनाश्वस्य पुत्रः राजविशेषः मार्गणानां=बाणानां व्यसनेन=अत्यासक्त्या युद्धानुरागकारणादित्यर्थः, अथ च मार्गणस्य=याचनस्य व्यसनेन=दुर्गुणेन पुत्रैः पौत्रैश्च सह वर्तमानः इति सपुत्र० [बहुव्री०], रसातलं=पातालम् अथ च विनाशम् अगात्=प्राप्तवान्। पुरुकुत्सः=राजविशेषः, तपस्यन्=तपः कुर्वन् अपि मेकलकन्यकायां=नर्मदायाम् अथ च मेकलस्य कन्यायाम् कुत्सितं=निन्दितम् अनैतिकमित्यर्थः, कर्म=कार्यम् अकरोत्=कृतवान्। कुवलयाश्वः=राज-विशेषः भुजङ्गः=भुजङ्गलोकस्य=नागलोकस्य अथ च स्त्रीलम्पटसमूहस्य परिग्रहात्=आश्रयणात् अश्वतरस्य=एतन्नामकनागस्य कन्याम् अथ च अश्वतरीम् न परिजहार=त्यक्तवान् तामपि परिणीतवानित्यर्थः; पृथुः=एतन्नामा आदिराजः प्रथम आद्यश्चासौ मुख्यपुरुषः एव पुरुषकः,

टिप्पणी—नहुष का दूसरा पुत्र था। एक दिन असुरराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और उसके गुरु शुक्र की पुत्री देवयानी के बीच बात ही बात में झगड़ा हो गया। राजकुमारी ने दासियों द्वारा गुरुपुत्री को कुएँ में गिरवा दिया। संयोगवश आखेट करने जाता हुआ ययाति उधर आ पहुँचा और उसने चिल्लाती हुई देवयानी को हाथ से पकड़ कर कुएं से बाहर निकाल दिया। वृषपर्वा यह सोचकर कि मेरी पुत्री की दुष्टता से कहीं गुरुजी शाप न दे डालें देवयानी को मनाने लगे। उसने यह शर्त रख दी कि शर्मिष्ठा को हमेशा के लिए मेरी दासी बना रहना होगा। असुरराज को मानना पड़ा। उधर देवयानी ब्राह्मणपुत्री होते हुए भी ययाति के पाणिग्रहण पर स्थिर रही। इधर ययाति ने गुप्त रूप से पत्नी की दासी शर्मिष्ठा के साथ भी विवाह कर लिया। देवयानी को पता चला तो उसने पिता से कहा। शुक्र ने तत्काल ययाति को शाप दे दिया—'जा, बूढ़ा हो जा' युवावस्था में ही ययाति का बूढ़ा हो जाना पतन था। **सुद्युम्न**—भागवत के अनुसार राजा सुद्युम्न वन में आखेट करते-करते पार्वती के स्वविहारार्थ सुरक्षित एकान्त वन में जा घुसा जहाँ महादेव ने पार्वती को वचन दे रखा था—जो भी पुरुष वहाँ घुसेगा, स्त्री बन जाएगा। सुद्युम्न भी स्त्री बन गया। **सोमक**—महाभारत में सोमक राजा की कथा आती है। उसकी सौ रानियाँ थीं, किन्तु वृद्धावस्था में उसका जन्तु नामक एक ही पुत्र हुआ। एक दिन राजपुत्र को कोई चींटी काट गई तो सारा परिवार बड़ा दुःखी हो गया। स्वयं राजा भी सोचने लगा—'धिगस्त्विहैकपुत्रत्वमपुत्रत्वं वरं भवेत्'। उसने सौ पुत्र चाहे तो पुरोहित बोला—'सौ पुत्र चाहते हो तो अपने इस पुत्र को काट कर इसकी चर्बी से होम करो। जितनी रानियाँ धूम सूंघेंगी उतने ही पुत्र हो जाएंगे।' राजा ने वैसा ही किया। **मान्धाता**—यह प्रख्यात राजा है। इसने समग्र पृथिवी जीत लेने के बाद इन्द्र को जीतना चाहा। इन्द्र ने इस शर्त पर उसे अपना राज्य देना स्वीकार कर लिया कि वह पहले लवणासुर को परास्त कर ले। लवणासुर के पास शिव का दिया हुआ एक त्रिशूल था। मान्धाता के आते ही उसने त्रिशूल से पुत्र-पौत्रों समेत मान्धाता का काम तमाम कर दिया। **पुरुकुत्स**—इसके सम्बन्ध में कवि शंकर लिखता है—'पुरुकुत्सः पुरा तपश्चरन् नर्मदायां स्नानं कुर्वन् कामप्यङ्गनामालोक्य कामाविष्टो नीतिमुत्ससर्ज'। **कुवलयाश्व**—यह राजा गालव ऋषि के यज्ञ में विघ्न करने वाले एक असुर का पीछा करते करते पाताल तक चला गया। वहाँ उसने अश्वतर नामक नाग की कन्या के साथ विवाह कर लिया। **पृथु**—प्रसिद्ध आदिराजा हुआ है। राज्य में अवर्षण के कारण दुर्भिक्ष पड़ने पर उसने हाथ में धनुष उठा लिया। डर के मारे बेचारी पृथिवी गौ का

हिन्दी—वार्धक्य, धर्मभ्रंश] हुआ। सुद्युम्न स्त्रीरूप ही हो बैठा। सोमक की जंतु-[अपना पुत्र, जीव] वध में निर्दयता प्रख्यात है। **मान्धाता** मार्गण-व्यसन [युद्ध, मांगने की आदत] से पुत्र-पौत्रों सहित रसातल [पाताल, विनाश] को प्राप्त हुआ। पुरुकुत्स तप करता हुआ भी मेकल-कन्या [नर्मदा, मेकला की लड़की] में कुकर्म कर बैठा। कुवलयाश्व ने भुजगलोक [पाताल, लम्पट लोगों] के आश्रय से अश्वतर की कन्या [नागकन्या, खच्चरी] तक भी नहीं छोड़ी। पृथु पहला पुरुष [नीच पुरुष] है जो पृथिवी का पराभव कर बैठा था। नृग (गिरगिट) की योनि में

समदृश्यत । सौदासेन नरक्षिता पर्याकुलीकृता क्षितिः । नलमवशाक्षहृदयं कलिरभिभूतवान् । संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात् । दशरथ इष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप । कार्तवीर्यो गोब्राह्मणातिपीडनेन निधनमयासीत् । मरुत्त

टीका—अथ च कुत्सितः पुरुषः इति पुरुषकः ['कुत्सिते' पा० ५।३।७४ इत्यनेन कः] पृथिवीं=भूमि परिभूतवान्=अपमानितवान् अथ च धर्षितवान् । नृगस्य=कस्यचित् राजविशेषस्य कृकलासस्य=सरटस्य ['सरटः कृकलासः स्यात्' इत्यमरः] भावे=स्वरूपे कृकलासत्वे इत्यर्थः, वर्णसङ्करः=वर्णानां नील-पीतादि-रूपाणां सङ्करः=सम्मिश्रणम् अथ च वर्णानां ब्राह्मणादि-वर्णानां सङ्करः=अन्तर्जातीय-विवाहेन जातिसम्मिश्रणम् समदृश्यत=दृष्टः । वर्णसङ्कर-सम्बन्धे भगवताऽपि गीतायां लिखितम्—'सङ्करो नरकायैव' । सौदासेन=राजविशेषेण नरक्षिता=नरान् क्षिणोति हिंसतीति नरक्षित् [क्विप्] तेन पृथिवी न रक्षिता=पालिता किन्तु पर्याकुलीकृता=व्याकुलीकृता । अवशं=न वशं स्ववशे स्थितमित्यर्थः, अक्षाणां=पाशानां हृदयं=रहस्यमित्यर्थः यस्य तम् अक्षक्रीडायाम् अकुशलमिति भावः, अथ च न वशानि=आत्मायत्तानि अक्षाणि=इन्द्रियाणि हृदयं मनश्च यस्य तम् नलम्=प्रसिद्धम् एतन्नामानं राजानम् कलिः =कलियुगम् अभिभूतवान्=पराबभूव । संवरणः=राजविशेषः मित्रस्य=सूर्यस्य अथ च सुहृदः दुहितरि=कन्यायां विक्लवतां=कामाकुलताम् अगात्=प्राप्नोत् । दशरथः=रामपिता इष्टः=प्रियः रामः=ज्येष्ठः पुत्रः तस्य उन्मादेन=अतिगाढप्रेम्णा इत्यर्थः, अथ च इष्टा=सुन्दरी रामा=स्त्री तस्याः उन्मादेन=उन्मादपूर्ण-प्रेम्णा मृत्युमवाप । दशरथः कैकयी-दत्तवरानुसारेण स्वपितुः आज्ञां पालयितुं रामे वनं गते मृतः, परन्त्वत्र अपरार्थो दोषरूपः । कार्तवीर्यः=सहस्रार्जुनः । गोः=कामधेनुपुत्र्याः अथ च ब्राह्मणस्य ब्राह्मणजातीयजमदग्नेः अथ च गवां ब्राह्मणानां च अतिपीडनेन=

टिप्पणी—रूप धारण करके भाग गई राजा ने उसका पीछा किया और अन्त में जो कुछ चाहा पृथिवी से प्राप्त कर लिया । नृग—इसने एक बार भूल से किसी ब्राह्मण की गाय किसी दूसरे ब्राह्मण को दान दे दी । गाय के स्वामी ने अपनी गाय पहचान ली । दोनों में झगड़ा हो गया । दोनों राजा नृग के पास आए । वहाँ देखा तो वह अपने भोग में मस्त था । पर्याप्त दिनों तक राजा के यहाँ रहे, परन्तु इन्हें राजा मिला ही नहीं, तो दोनों ने शाप दे दिया —'अर्थिनां कार्यसिद्ध्यर्थं यस्मात्त्वं नैषि दर्शनम् । अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि ।" बेचारा गिरगिट बन गया और रंग ही बदलता रहा । सौदास—इस राजा का दूसरा नाम कल्माषपाद भी है । एक दिन वह आखेट से थका हुआ आ रहा था, मार्ग में वसिष्ठ का ज्येष्ठ पुत्र शक्ति खड़ा था । राजा ने रास्ता मांगा । वह नहीं हटा तो राजा ने उस पर कोड़े से प्रहार किया । क्रुद्ध ऋषिपुत्र ने उसे शाप दे दिया—'जा, नर-मांस पर जीवन बिताने वाला राक्षस बन जा ।' तब वह नर-क्षित् [नरान् क्षिणोति] बन गया [महाभा० आ० प० अ० १७६] । नल की कथा प्रसिद्ध ही है । इन्द्रिय और मन वश में न होने से और कलि के प्रभाव से वह सब कुछ खो बैठा । दमयन्ती ने इन्द्रादि देवताओं और स्वयं कलि का भी तिरस्कार करके उसे वरा तो कलि क्रुद्ध हो बैठा । उसने नल को जुए की तरफ लगाया जिसमें वह दक्ष नहीं था, जुए में दक्ष अपने भाई के हाथ वह अपना सब कुछ खो बैठा । ऋतुपर्ण से 'अक्षहृदय' समझकर नल ने पीछे अपना राज्य और पत्नी आदि सभी कुछ पुनः प्राप्त कर लिया था, [देखिए महाभा० वनप०] संवरण—सूर्यभक्त (कोई) राजा था । वह मित्र—सूर्य की पुत्री तपती पर आसक्त हो बैठा था । कार्तवीर्य—यह माहिष्मती का राजा था । वह जमदग्नि के यहाँ से कामधेनु की पुत्री को हर ले गया । जमदग्नि-पुत्र परशुराम को पता चला तो उसने कार्तवीर्य का वध कर दिया । बदले में कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि का वध कर दिया । इससे क्रुद्ध परशुराम ने सकल क्षत्रिय जाति का ही वध करने की प्रतिज्ञा कर दी । मरुत्त—यह भी एक राजा था । उसने इन्द्र की बराबरी करने के लिए बृहस्पति से प्रार्थना की । विकट उसके यज्ञ में पुरोहित बनें ।

हिन्दी—वर्णसंकर [रंगों का सम्मिश्रण, ब्राह्मणादि व्यवस्था भंग] देखने को मिला । [नरभक्षी] सौदास ने पृथिवी की रक्षा न करके उसे परेशान किया । अक्ष-हृदय [पाशे का रहस्य, इन्द्रियाँ एवं मन को वश में न रखने वाले नल को कलियुग दबा बैठा । संवरण मित्र [सूर्य, सुहृद्] की पुत्री पर विह्वल हो उठा । दशरथ इष्ट-प्रिय-राम के प्रति उन्माद भरे प्रेम के कारण [इष्ट=प्रियतमा रामा=स्त्री] के प्रति उन्मत्त हो जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ । कार्तवीर्य गौ-ब्राह्मणों [गो-नन्दिनी, और ब्राह्मण जमदग्नि, गौओं और ब्राह्मणों] के अति-पीडन से मृत्यु को प्राप्त

इष्टबहुसुवर्णकोऽपि देवद्विजबहुमतो न बभूव। शन्तनुरतिव्यसनादेकाकी वियुक्तो वाहिन्या विपिने विललाप। पाण्डुर्वनमध्यगतो मत्स्य इव मदनरसाविष्टः प्राणान्मुमोच। युधिष्ठिरो गुरुभयविषण्णहृदयः समरशिरसि सत्यमुत्सृष्टवान्। इत्थं नास्ति राजत्वमपकलङ्कमृते देवदेवादमुतः सर्वद्वीपभुजो हर्षात्। अस्य हि बहून्याश्चर्याणि श्रूयन्ते। तथा हि—

टीका—अतिसन्तापनेन निधनं=मृत्युम् अवाप=प्राप्तवान्। मरुत्तः=एतन्नामा राजविशेषः इष्टम्=अभिमतं बहु=बहुलं सुवर्णम्=हेम यस्य सः, अथ च इष्टः=यजनविषयीकृतः [√यज्+क्त] बहुसुवर्णकः=एतन्नामक-यज्ञविशेषः [तस्मिन् सर्वमेव सुवर्णमेव भवति अर्थात् पात्रादीनि सुवर्णस्य भवन्ति सुवर्णमेव च दीयते] येन सः देवानां द्विजः=बृहस्पतिः तस्य बहुमतः=अभीष्टः, अथ च देवानां द्विजानां=ब्राह्मणानाञ्च बहुमतः, तस्यायं दोषः यत्स देवद्विजबहुमतः नासीत् हर्षस्तु देवद्विजबहुमतोऽस्ति। शन्तनुः=भीष्मस्य पिता अतिशयितेन व्यसनेन=आसक्त्या वाहिन्या=नद्या गङ्गया इत्यर्थः, अथ च सेनया वियुक्तः=विरहितः एकाकी=एकलः सन् विपिने विललाप=विलापं चकार। गङ्गया वियुक्तः शन्तनुः बहुदुःखितोऽभवत्; किन्तु दोषपक्षोऽयमस्ति सेनया वियुक्तो राजा एकलः सन् विलपति, हर्षस्तु न तथा। पाण्डुः=पाण्डवानां पिता वनस्य मध्ये गतः=स्थितः मत्स्यः=मीनः इवेत्युपमायाम्. मदनरसः=काम-वासना तेन आविष्टः=आक्रान्तः, मत्स्यपक्षे वनस्य=जलस्य मध्ये ['जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः] मदनः फलवृक्षविशेषः तस्य रसेन=फलरसेन आविष्टः प्राणान्=असून् मुमोच=तत्याज। युधिष्ठिरः=ज्येष्ठपाण्डवः गुरोः=द्रोणाचार्यात् यद् भयम् कथमहं गुरोः अग्रे असत्यं भाषिष्ये इति भीतिः तेन विषण्णं=विषादं प्राप्तं हृदयं यस्य सः, अथ च गुरु=महत् यत् भयम् तेन विषण्णं हृदयं यस्य सः, समरस्य=युद्धस्य शिरसि=अग्रे सत्यम् उत्सृष्टवान्=त्यक्तवान्। इत्थम्=एवं नास्ति राजत्वं=राज्ञो भावः, अपकलङ्कम्=अपगतः कलङ्कः लाञ्छनं यस्मात् तत् ऋते=विना देवदेवात्=महाराजाधिराजात् अमुतः=अस्मात् सर्वान् द्वीपान्=सप्तद्वीपान् भुनक्ति=पालयतीति भुक् तस्मात् हर्षात्। उपरि सर्वत्र अन्यराजेषु कलङ्को दर्शितः, हर्षराजस्तु निष्कलङ्कः=इति तस्मिन् आधिक्य-प्रदर्शनात् व्यतिरेकालङ्कारः, स च श्लेषानुप्राणितः। अस्य=हर्षस्य बहूनि आश्चर्याणि आश्चर्यकारक-

टिप्पणी—उसने उसे मनुष्य समझकर अस्वीकार कर दिया। तब राजा ने बृहस्पति के भाई संवर्त से यज्ञ करवाया। बृहस्पति मरुत्त की समृद्धिशालिता से बड़ा अप्रसन्न था [देखिए महाभा० आश्वमेधिक पर्व अध्याय ६—१०]। **शंतनु**—गंगा ने शन्तनु के साथ इस शर्त पर विवाह किया था कि वह जो कुछ भी करेगी शन्तनु उस पर कोई भी आपत्ति नहीं करेगा। आपत्ति करते ही वह उसे छोड़ देगी। शन्तनु स्वीकार कर बैठा। गंगा एक-एक करके सात पुत्रों को होते ही जल में डुबोती गई। आठवाँ पुत्र भीष्म हुआ। जब उसे भी डुबोने जा रही थी तो शन्तनु ने आपत्ति उठाई। बस, गंगा पति को छोड़कर चली गई। पत्नी के चले जाने पर वन में राजा ने बड़ा विलाप किया। कामासक्ति के कारण ही उसे फिर सत्यवती से विवाह करना पड़ा। **पाण्डु**—पाण्डु की कुन्ती माद्री दो रानियाँ थीं। एक दिन आखेट करते हुए राजा ने संभोगरत मृगयुगल को बाण-विद्ध कर दिया। वास्तव में मृगरूप में वे किन्दम मुनि और उसकी पत्नी थे। किन्दम ने तत्काल पाण्डु को शाप दे दिया—'तू भी जब कभी अपनी पत्नी से संगम करेगा तो तत्काल मर जायेगा।' शाप-व्यथित राजा घर-बार छोड़कर पत्नियों सहित वन चला गया। वन में एक दिन एकान्त पाकर वह माद्री पर कामासक्त हो बैठा और संभोग करते ही मर गया। **युधिष्ठिर**—सत्यवादी था। महाभारत युद्ध में सेनापति द्रोणाचार्य पाण्डवों के महाविनाश पर उतारू हो गये तो कृष्ण सहित सारे पाण्डव आतंकित हो बैठे। भगवान् कृष्ण को एक उपाय सूझा। उन्होंने अश्वत्थामा नाम का एक हाथी मरवा कर युधिष्ठिर से कहा—'तुम बोल दो कि अश्वत्थामा मारा गया।' अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का पुत्र भी था, जो चिरजीवी था। भगवान् के प्रबल अनुरोध पर युधिष्ठिर—'अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्' इतना बोलकर जब 'नरो वा कुञ्जरोऽथवा' बोलने लगे, भगवान् ने शंखध्वनि कर दी। द्रोणाचार्य न सुन सका। पुत्र-वध से दुःखित हो उसने शस्त्र

हिन्दी—हुआ। मरुत्त नामक राजा बहुसुवर्ण नामक यज्ञ करने पर भी अथवा यथेष्ट पर्याप्त सुवर्णयुक्त होता हुआ भी बृहस्पति को प्रिय नहीं हुआ। शन्तनु अतिशय आसक्ति के कारण वाहिनी [गंगा, सेना] से बिछुड़ा हुआ वन में अकेला रोता रहा। पाण्डु वन [जंगल, जल] के मध्यस्थित मत्स्य की तरह मदनरस [कामवासना, मदन वृक्ष के फल के रस] से आक्रान्त हुआ प्राणों को छोड़ बैठा। युधिष्ठिर गुरुभय [द्रोणाचार्य का भय, महान् भय] से हृदय में दुःखी हुआ रण की अग्रभूमि में सत्य को छोड़ बैठा। इस तरह सभी द्वीपों पर शासन करने वाले महाराजाधिराज श्रीहर्ष को छोड़कर [किसी भी राजा

अत्र बलजिता निश्चलीकृताश्चलन्तः कृतपक्षाः क्षितिभृतः। अत्र प्रजापतिना शेषभोगिमण्डलस्योपरि क्षमा कृता। अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता। अत्र बलिना मोचितभूभृद्वेष्टनो मुक्तो महानागः। अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः। अत्र स्वामिनैकप्रहारपातितारातिना प्रख्यापिता शक्तिः। अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशसितारातिना

टीका—कर्माणि श्रूयन्ते = आकर्ण्यन्ते। इतः परं कविः श्लेषेण देवानां प्राचीनवीराणाञ्च कर्माणि अनुकुर्वन्तं हर्षं वर्णयति। तत्र बलम् एतदाख्यम् असुरविशेषं जयतीति ०जित् इन्द्रः तेन कृताः = धृताः इत्यर्थः, पक्षाः = पतत्राणि यैस्ते, अत एव चलन्तः इतस्ततः गच्छन्तः लोकांश्च पीडयन्तः क्षितिभृतः = पर्वताः निश्चलीकृताः वज्रप्रहारेण पक्षान् छित्वा स्थिरीकृताः। अत्र हर्षेणापि बलजिता = शत्रुसैन्य-विजयिना कृत-पक्षाः कृतस्वसहायकाः चलन्तः = चञ्चलाः चञ्चलमनसः इत्यर्थः। क्षितिभृतः = राजानो निश्चलीकृताः = पराजयात् स्ववशमानीताः इत्यर्थः; तत्र प्रजापतिना = ब्रह्मणा शेषस्य भोगिनः = शेषनागस्य मण्डलस्य = फणामण्डलस्येत्यर्थः, उपरि क्षमा = पृथिवी कृता = निहितेत्यर्थः, अत्र प्रजानां पत्या हर्षेणापि शेषाः = अवशिष्टाः ये भोगिनः = राजानः [भुञ्जन्ति = पालयन्ति पृथिवीमिति] तेषां मण्डलस्य = समूहस्य उपरि क्षमा = क्षान्तिः कृता। तेभ्यः क्षमादानं कृतमित्यर्थः, तत्र पुरुषोत्तमेन विष्णुना सिन्धूनां = सागराणां राजानं क्षीरसमुद्रमित्यर्थः, प्रमथ्य = मन्थनविषयीकृत्य लक्ष्मीः = देवी आत्मीकृता = आत्मीया कृता आत्म-पत्नी कृतेत्यर्थः, अत्र पुरुषाणां = नराणां मध्ये उत्तमेन = श्रेष्ठेन हर्षेण सिन्धुराजं = सिन्धुदेशस्य राजानं प्रमथ्य = विजित्य लक्ष्मीः तद्राज्यश्रीः आत्मीकृता। तत्र बलिना = एतदाख्येन असुरराजेन मोचितं = त्याजितं, भूभृतः = मन्दराचलस्य वेष्टनं = पर्यावरणं येन सः, महानागः = वासुकिः मुक्तः, देवासुरकृतसमुद्रमन्थनव्यापारे समाप्ते त्यक्तमन्दरवेष्टनः वासुकिः बलिना मुक्तः। अत्र बलिना = बलवता हर्षेण मोचितं भूभृतः = राज्ञः श्रीकुमाराभिधेयस्य वेष्टनं येन सः, महानागः = महागजः दर्पशातः इत्यर्थः, अत्र शङ्करानुसारेण 'श्रीकुमारो नाम राजा किल दर्पशातेनोपजातमदेन हस्तिना वेष्टितः, ततः श्रीहर्षेणाकृष्य खड्गं तस्मान्मोचितोऽसौ दन्ती च रोषाद् वने परित्यक्तः इति वार्ता'। तत्र देवेन = जातौ एकवचनं देवैरित्यर्थः, कुमारः = कार्त्तिकेयः, अभिषिक्तः = सेनापतिपदे प्रतिष्ठापितः इत्यर्थः, अत्राऽपि देवेन = महाराजेन हर्षेण कुमारः = स्वपुत्रः अभिषिक्तः = यौवराज्यपदे प्रतिष्ठापितः, तत्र स्वामिना = कार्त्तिकेयेन एकेन प्रहारेण = आघातेन पातितः = मारितः तारः = तारकासुर-रूपः अरातिः = शत्रुः येन सः, शक्तिः = आयुधविशेषः प्रख्यापिता = ख्यातिं नीता, अत्र स्वामिना = प्रभुणा हर्षेण एकेन प्रहारेण पातिताः अरातयः = शत्रवः येन सः, शक्तिः = बलं प्रख्यापिता। तत्र नरसिंहेन = नर-

टिप्पणी—त्याग कर दिया। इतने में अवसर देखकर धृष्टद्युम्न ने झट उसका सिर काट दिया। कुमार—इससे यह सिद्ध हो रहा है कि हर्ष ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्र को अभिषिक्त कर दिया था। लेकिन हमारे विचार से यहाँ उल्लिखित कुमार कोई दूसरा ही होगा। अपने बचपन के साथी मालव के दो राजकुमारों में से बड़ा कुमारगुप्त ही यहाँ सम्भवतः विवक्षित हो अथवा सातवें उच्छ्वास में उल्लिखित प्राग्ज्योतिष का महाराज कुमार पद से अभिप्रेत हो। निश्चय नहीं है।

हिन्दी—का] राजत्व बिना कलंक के नहीं है। इसके सम्बन्ध में बहुत-सी आश्चर्य की बातें सुनी जाती हैं। [वहाँ] बलजित् [इन्द्र] ने पक्षों-पंखों के रखने वाले चलते-उड़ते क्षितिभृत् (पर्वत) (पंख काटकर) स्थिर कर दिए थे, यहाँ बलजित् [शत्रु सेना विजयी] हर्ष ने पक्षों—सहायकों को रखे हुए चपल क्षितिभृत् [राजाओं] को (पराजित करके) पंगु बना दिया है। (वहाँ) प्रजापति [ब्रह्मा] ने शेषभोगी [शेषनाग] के (फण) मण्डल के ऊपर क्षमा (पृथिवी) रख दी थी, यहाँ प्रजापति [प्रजापालक] हर्ष ने शेष (बचे हुए) भोगियों (राजाओं) के ऊपर क्षमा कर दी है। (वहाँ) पुरुषोत्तम [विष्णु] ने सिन्धुराज (क्षीरसागर) का मन्थन करके लक्ष्मी अपनाई थी, यहाँ पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष) हर्ष ने सिन्धुराज [सिन्धु देश के राजा] को परास्त करके (उसकी) राज्यलक्ष्मी अपनाई है। (वहाँ) बली (राक्षसराज) ने भूभृत् [मन्दराचल] के वेष्टन से मुक्त कराया हुआ महानाग (वासुकि) छोड़ दिया था, यहाँ बली (बलवान्) हर्ष ने भूभृत् (राजा) के [हाथों द्वारा] वेष्टन से मुक्त कराया हुआ महानाग [महागज दर्पशात] (वन में) छोड़ दिया है। [वहाँ] देव [देवताओं] ने कुमार [कार्त्तिकेय] का अभिषेक किया था, यहाँ देव [महाराज हर्ष] ने भी कुमार [राजकुमार] का अभिषेक किया है। (वहाँ) स्वामी कार्त्तिकेय ने एक ही प्रहार से शत्रु [तारकासुर] को गिराते हुए (अपनी) शक्ति [आयुध-विशेष] को ख्याति प्रदान की थी, यहाँ

प्रकटीकृतो विक्रमः। अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीतः करः। अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः सकलभुवनकोशश्चाग्रजन्मनां विभक्त इति। एवमादयः प्रथमकृतयुगस्येव दृश्यन्ते महासमारम्भाः। अतोऽस्य सुगृहीतनाम्नः पुण्यराशेः पूर्वपुरुषवंशानुक्रमेणादितः प्रभृति चरितमिच्छामः श्रोतुम्। सुमहान्कालो नः शुश्रूषमाणानाम्। अयस्कान्तमणय इव लोहानि नीरसनिष्ठुराणि क्षुल्लकानामप्याकर्षन्ति मनांसि महतां गुणाः, किमुत

टीका—सिंहावतार-धारिणा विष्णुनेत्यर्थः, स्वेन हस्तेन=करेण एव न तु शस्त्रेण विशसितः=हतः अरातिः=शत्रुः हिरण्यकशिपुरिति यावत् येन तेन, विक्रमः=पराक्रमः प्रकटीकृतः=प्रदर्शितः। अत्र नरेषु सिंहेन=सिंहसमेन हर्षेण स्वहस्तेन=स्वयमित्यर्थः, न तु सैन्यसाहाय्येन। अन्यत् पूर्ववत्। तत्र परमेश्वरेण=शिवेन तुषारशैलात्=हिमालयात् भूः=उत्पत्तिः यस्याः तस्याः दुर्गायाः=पार्वत्याः करः=पाणिः गृहीतः=धृतः तया सह पाणिग्रहणं कृतम्। अत्र परमेश्वरेण =महाराजाधिराजेन श्रीहर्षेण दुर्गायाः=दुःखेन गन्तुं योग्यायाः तुषारशैलस्य=हिमालयस्य भुवः=देशात् नेपालादितः इत्यर्थः, करः=राजदेयद्रव्यं गृहीतः=प्राप्तः। लोकनाथेन=ब्रह्मणा '[हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः' इत्यमरः] दिशां=दिशानां मुखेषु=भागेषु लोकपालाः=इन्द्रादिदिक्पालाः परिकल्पिताः=नियुक्ताः। सकलभुवनं= सर्वसंसार एव कोशः=मण्डलम् च अग्रजन्मनां=आदिनृपाणां मनु-पृथ्वादीनां विभक्तः=तेषु विभज्य प्रदत्त इत्यर्थः, अत्र लोकनाथेन=जगत्पतिना हर्षेण लोकपालाः=जनरक्षकाः (उच्चाधिकारिणः) परिकल्पिताः=नियुक्तीकृताः सकलभुवनस्य=समग्रसंसारस्य कोशः=कर-रूपेण गृहीतं धनं च अग्रजन्मनां=ब्राह्मणानां मध्ये विभक्तः, यथास्माभिः पूर्वं निर्दिष्टं श्रीहर्षः प्रतिपञ्चमवर्षे सर्वस्व-दक्षिणे यागे सर्वं धनं प्रजाभ्यो विभज्य ददाति स्म। उपरि सर्वत्र प्रजापत्यादेः हर्षस्य च भेदेऽपि अभेदप्रतिपादनात् भेदेऽभेदातिशयोक्तिः अलङ्कारः स च श्लेषगर्भितः। एवमादयः=इत्यादयः प्रथमस्य=आदिमस्य कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य इवेत्युपमायाम्, महान्तः=विपुलाः समारम्भाः=प्रारम्भाः अन्यत्र व्यापाराः=कार्याणीत्यर्थः। सुगृहीत-नामधेयस्य=स्वनामधन्यस्य पुण्यानां=सुकृतानां राशेः=समुदायस्य अस्य हर्षस्य पूर्वपुरुषाणां=वंशधराणां वंशस्य=कुलस्य अनुक्रमेण=परम्परया आदितः=प्रारम्भात् प्रभृति=आरभ्य चरितं=चरित्रं श्रोतुम्=आकर्णयितुम् इच्छामः। शुश्रूषमाणानां=श्रोतुमिच्छतां नः=अस्माकं सुमहान्=अतिदीर्घः कालः=समयः यातः इति शेषः। अयस्कान्त-मणयः=चुम्बक-प्रस्तराः नीरसानि=शुष्काणि अथ च निष्ठुराणि=कठिनानि लोहानि= आयसानि इवेत्युपमायाम् महतां=महापुरुषाणां गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः क्षुल्लकानां=क्षुद्राणाम् अपि नीरसानि= अभावुकानि निष्ठुराणि=कठोराणि हृदयानि आकर्षन्ति=गृह्णन्ति, किमुत=किमु वक्तव्यम् इतरेषां=क्षुद्रेतर-

टिप्पणी—प्रथमकृतयुग—प्रथम कहने का आशय यह है कि पुराणों के अनुसार इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। चौदह मनु हुआ करते हैं, वर्तमान वैवस्वत मनु सातवां है। चौदह मनुओं से ब्रह्मा का एक दिन बनता है जिसे कल्प कहते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में एक हजार महायुग होते हैं। एक महायुग में सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों की एक चौकड़ी हुआ करती है। प्रथम सत्ययुग में तो सृष्टि के बड़े-बड़े कार्यों के प्रारम्भ होते हैं। जैसे—पृथिवी को स्थिर करना, पर्वतों का पक्षच्छेद आदि, बाद को तो 'यथापूर्वमकल्पयत्' ही चलता है।

हिन्दी—स्वामी [प्रजास्वामी हर्ष] ने एक ही प्रहार से शत्रुओं को गिराते हुए (अपनी) शक्ति (बल) को ख्याति प्रदान की है। (वहाँ) नर सिंह [नृसिंहावतारधारी विष्णु] ने अपने हाथ से ही शत्रु [हिरण्यकशिपु] का काम तमाम करके पराक्रम दिखाया था, यहाँ नरसिंह [नरों में सिंह के समान] हर्ष ने अपने हाथ से ही, [स्वयं विना सेना-सहायता के] शत्रुओं का संहार करके धीरता दिखाई। (वहाँ) लोकनाथ [ब्रह्मा] ने दिग्विभागों में लोकपाल [इन्द्रादि दिक्पाल] नियुक्त किये और सकल जगत्-मण्डल को आदिम राजाओं [मनु आदि] में विभक्त कर दिया था, यहाँ लोकनाथ [प्रजारक्षक] हर्ष ने दिग्विभागों में लोकपाल [नररक्षक अधिकारी] नियुक्त किये और सकल भुवन का कोश (धन) अग्रजों [ब्राह्मणों] को बांट दिया इत्यादि। प्रथम सत्ययुग के जैसे इनके बड़े-बड़े काम दिखाई देते हैं। इसलिये स्वनामधन्य, पुण्यों के समूह-रूप इन (हर्ष) के चरित को पूर्वजों के वंशक्रमानुसार आदि से सुनना चाहते हैं। सुनने की इच्छा रखते हुए हमें लम्बा समय हो गया है। जिस तरह चुम्बक पत्थर शुष्क और कठिन लोहे की वस्तुओं को खींच लिया करते हैं, वैसे ही बड़े लोगों के गुण क्षुद्र मनुष्यों के भी नीरस और कठोर हृदयों को खींच लेते हैं। अन्यों के स्वभावतः

स्वभावसरसमृदूनीतरेषाम् । कस्य न द्वितीयमहाभारते अस्मिन् चरिते कुतूहलम् । आचष्टां भवान् । भवतु भार्गवोऽयं वंशः शुचिनानेन राजर्षिचरितश्रवणेन सुतरां शुचितरः' इत्येवमभिधाय तूष्णीमभूत् ।

बाणस्तु विहस्याब्रवीत्—'आर्य, न युक्त्यनुरूपमभिहितम् । अघटमानमनोरथमिव भवतां कुतूहलमवकल्पयामि । शक्याशक्यपरिसंख्यानशून्याः प्रायेण स्वार्थतृषः । परगुणानुरागिणी प्रियजनकथाश्रवणरसरभसमोहिता च मन्ये महतामपि मतिरपहरति प्रविवेकम् । पश्यत्वार्यः क्व परमाणुपरिमाणं बटुहृदयम्, क्व समस्तब्रह्मस्तम्भव्यापि देवस्य चरितम्, क्व परिमितवर्णवृत्तयः कतिपये शब्दाः, क्व संख्यातिगास्तद्गुणाः । सर्वज्ञस्याप्ययमविषयः, वाचस्पतेरप्य-

---

टीका—पुरुषाणां सज्जनानां गुणग्राहिणामिति यावत् । स्वभावतः=निसर्गतः सरसानि अथ च मृदूनि=कोमलानि हृदयानीति शेषः । अत्र कैमुतिकन्यायेन अर्थापत्तिः अलङ्कारः । द्वितीय-महाभारते=द्वितीयमहाभारतसमाने अस्य=हर्षस्य चरिते=वृत्तान्ते कुतूहलम्=औत्सुक्यम् । आचष्टां=कथयतु । अयं भार्गव-वंशः=भृगूत्पन्नकुलम्, बाणस्य वंशधरो वत्सः भृगुवंशीय आसीत् इति ध्येयम्, शुचिना=पवित्रेण अनेन राजा चासौ ऋषिः राजर्षिः=श्रीहर्षः तस्य चरितस्य श्रवणेन=आकर्णनेन सुतरां=सम्यक्तया शुचितरः=अतिशयेन शुचिः भवेत्=जायताम् इति एवम् अभिधाय=कथयित्वा तूष्णीम् अभूत्=मौनम् आकलयाञ्चकार ।

बाणस्तु विहस्य=हसित्वा अब्रवीत्=अकथयत् । युक्तेः=औचित्यस्य अनुरूपम्=अनुकूलं युक्तियुक्तमित्यर्थः, अभिहितम्=कथितम् । भवतां कुतूहलं=श्रवणौत्सुक्यम् न घटमानः=सम्पद्यमानः मनोरथः=अभीप्सितं यस्मिन् तत् अवकल्पयामि=अवगच्छामि । शक्या०—शक्यं=सम्भवम्, अशक्यम्=असम्भवम् तयोः परिसंख्यानं=सम्यग् ज्ञानं तेन शून्याः रहिताः प्रायेण बहुलं स्वार्थस्य=स्वकार्यस्य तृषः=तृष्णाः, स्वार्थसाधनेच्छवः शक्याशक्यविवेकं न कुर्वन्तीत्यर्थः । पर०—परेषाम्=अन्येषां गुणेषु अनुरागः=प्रेम अस्याम् अस्तीति ०रागिणी, प्रियस्य जनस्य कथायाः चरितस्येत्यर्थः, श्रवणे=आकर्णने यः रसः=अभिरुचिः तस्य रभसः=वेगः त्वरेति यावत् तेन मोहिता=मोहं प्रापिता महतां=महापुरुषाणाम् अपि मतिः=बुद्धिः प्रविवेकं=प्रकृष्टविवेकम् अपहरति=अपनयति किं पुनरन्येषां साधारणजनानामिति कैमुतिकन्यायेन अर्थापत्तिरलंकारः । पश्यतु आर्यः=भवानित्यर्थः, क्व परमाणोः इव परिमाणं यस्य तत् बटोः=बालकस्य मम बाणस्येत्यर्थः हृदयम्, क्व समस्तः=सकलः यः ब्रह्मस्तम्भः=जगत् तं व्याप्नोति=परिगच्छतीति ०व्यापि देवस्य=महाराजस्य श्रीहर्षस्य चरितम्; क्व परिमितेषु=परिच्छिन्नेषु वर्णेषु=अक्षरेषु वृत्तिः=वर्तनं जीवनं वा येषां ते कतिपये=केचित् शब्दाः क्व संख्यां=गणनाम् अतिगच्छन्ति=अतियन्ति इति ०अतिगाः तस्य=हर्षस्य गुणाः । उपरि 'क्व-क्व' इति विरुद्धवस्तुद्वयसंघटनात् विषमालङ्कारः । सर्वं जानाति=वेत्तीति सर्वज्ञः=सर्ववेत्ता तस्य अपि अविषयः=अगोचरः, वाचस्पतेः=बृहस्पतेः अपि अगोचरः=अविषयः अप्रतिपाद्य इत्यर्थः, सरस्वत्या=वाग्देव्या अपि अतिभारः=अतिशयितः भारः अर्थात् सरस्वत्यपि हर्षचरित-वर्णनं स्वसामर्थ्याधिकं भारं मन्यते किमुत=किमु वक्तव्यम् अस्मद्-विषयस्य=मत्तुल्यजनस्येत्यर्थः । अत्रार्थापत्तिरलङ्कारः । कः खलु पुरुषस्य=मनुष्यस्य आयुषः=जीवन-कालस्य ['शतायुर्वै पुरुषः' इत्यनुसारेण शतवर्षाणि खलु पुरुषायुः] शतेन=शतसंख्यया अपि अविकलं=समस्तम् अस्य=हर्षस्य चरितं वर्णयितुं=कथयितुं शक्नुयात्=प्रभवेत् न कोऽपीति काकुः । एकदेशे=एकभागे यदि श्रोतुं कुतूहलम् वः=युष्माकम् तर्हि वयम्=अहमित्यर्थः, सज्जाः=उद्यताः। इयम् अधिगताः=प्राप्ताः कतिपयेषाम्=

हिन्दी—सरस और कोमल हृदयों की तो बात ही क्या ! इस (श्रीहर्ष) के दूसरे महाभारतरूपी चरित के सम्बन्ध में किसको उत्सुकता नहीं होगी । आप कहिए । राजर्षि (हर्ष) के इस पवित्र चरित को सुनने से यह भार्गव वंश अच्छी तरह और भी पवित्र हो जाय" इस तरह कहकर चुप हो गया ।

किन्तु बाण हँस कर बोला—"आर्य, युक्तियुक्त नहीं कहा है । मैं समझता हूँ कि आप लोगों का यह औत्सुक्य अपने मनोरथ को पूरा नहीं कर पायेगा । स्वार्थ की तृष्णायें प्रायः सम्भव और असंभव के सही-सही ज्ञान से शून्य हुआ करती है । लगता है कि दूसरों के गुणों में अनुराग रखने वाली एवं प्रियजन का चरित सुनने के आनन्द की उतावली से मोहित हुई बुद्धि बड़े लोगों का भी विवेक हर लिया करती है । आर्य ! देखिए, कहाँ तो परमाणु का-सा परिमाण रखने वाला (मुझ) बालक का हृदय और कहाँ सकल विश्व में व्याप्त श्रीहर्षदेव का चरित । कहाँ तो इने-गिने अक्षरों पर टिके हुए (मेरे पास) थोड़े से शब्द और कहाँ उनके असंख्य गुण । कोई सर्वज्ञ ही क्यों न हो, उसके भी वर्णन का वह विषय नहीं हो सकता है । वह बृहस्पति की वाणी से भी परे है; सरस्वती के लिए भी (उसका

गोचरः, सरस्वत्या अप्यतिभारः, किमुतास्मद्विधस्य। कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः, सज्जा वयम्। इयमधिगतकतिपयाक्षरलवलघीयसी जिह्वा क्वोपयोगं गमिष्यति। भवन्तः श्रोतारः। वर्ण्यते हर्षचरितम्। किमन्यत्। अद्य तु परिणतप्रायो दिवसः। पश्चाल्लम्बमानकपिलकिरणजटाभारभास्वरो भगवान्मार्गवो राम इव समन्तपञ्चकरुधिरमहाह्रदे निमज्जति संध्यारागपटले पूषा। श्वो निवेदयितास्मि' इति। सर्वे च ते 'तथा' इति प्रत्यपद्यन्त। नातिचिरादुत्थाय संध्यामुपासितुं शोणमयासीत्।

अथ मधुमदपल्लवितमालवीकपोलकोमलातपे मुकुलितेऽह्नि, कमलिनीमीलनादिव लोहिततमे तमोलिहि रवौ

टीका—केषाञ्चित् अक्षराणां=वर्णानां ये लवाः=कणाः तैः लघीयसी=अतिशयेन लघ्वी, जिह्वा=रसना वागित्यर्थः, क्व उपयोगं=साफल्यमित्यर्थः गमिष्यति=यास्यति। बाल्यावस्थायां मे जिह्वा सर्वथा जडाऽऽसीत् इदानीं तु कतिपयाक्षरप्राप्त्या जडत्वं विहाय लघ्वी जाता। लघुपदार्थश्च यत्र कुत्रापि गन्तुं क्षमो भवति जडस्तु स्थिरो भवतीति भावः। किम् अन्यत् अभिलषितुं शक्यते इति शेषः। परिणतप्रायः=समाप्तप्रायः, पश्चात्०—पश्चिमदिग्भागे लम्बमानाः=पतन्तः कपिलाः=कपिलवर्णाः लोहिताः इत्यर्थः, किरणाः=रश्मयः जटाभारः=केश-समूहः (तापसस्य) इवेत्युपमितसतत्पु०, तेन भास्वरः=भ्राजमानः अन्यत्र पश्चात्=पृष्ठभागे लम्बमानः=प्रेङ्खन् कपिलकिरणवत् यः जटाभारः तेन भास्वरः भगवान्=पूज्यः भार्गवः= भृगोः अपत्यं रामः=परशुरामः इति यावत्। इवेत्युपमायाम्, समस्तपञ्चके=कुरुक्षेत्रे यो महान् रुधिरस्य=रक्तस्य ह्रदः=सरोवरः तस्मिन् सन्ध्यायाः=सायंकालस्य ये रागाः=लालिमानः तेषां पटले=समूहे निमज्जति=निमग्नो भवति अथ च स्नानं करोति, श्वः=आगामिनि दिवसे निवेदयितास्मि=विज्ञापयितास्मि [लुट्]। 'तथा'=एवमस्तु इति प्रत्यपद्यन्त=स्वीकृतवन्तः। सन्ध्याम्=सन्ध्या-वन्दनादि-कर्म उपासितुं=कर्तुं शोणम्=शोणनदम् अयासीत्=अगच्छत्।

टिप्पणी—समन्तपञ्चक—कुरुक्षेत्र को समन्तपञ्चक इसलिये कहते हैं कि 'समन्तात्=परितः पञ्चकं=ह्रदपञ्चक यत्र' इति। परशुराम ने क्षत्रियों से अपने पिता के खून का बदला लेने के लिए इक्कीस बार क्षत्रियों को काटकर, उनके रुधिर से पाँच सरोवर बना दिये थे। उनमें नहा कर, पितृतर्पण करके तब जाकर कहीं शान्त हुए। देखिए महाभा०—'त्रिसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः। समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्॥ स तेषु तर्पयामास भृगून् भृगुकुलोद्वहः [वनपर्व ११७।९-१०]।

'अथ'''प्रदोषारम्भे'''तथैव गोष्ठ्या तस्थौ (बाणः)' इत्यस्ति प्रथमवाक्यम्, मधु०—मधुनः=मदिरायाः मदेन=मत्ततया पल्लविताः=सञ्जात-पल्लवाः पल्लववत् रक्तवर्णीभूताः इत्यर्थः मालवीनां=मालवदेशीय-कामिनीनां ये कपोलाः=गण्डाः तद्वत् कोमलः=मृदुः आतपः=घर्मः यस्य तस्मिन्, अह्नि=दिवसे मुकुलिते=सञ्जात-मुकुले, मुकुलत्वं प्राप्ते समाप्ते इत्यर्थः, कमलिनी०—कमलिनीनां=पद्मिनीनां मीलनात्=सङ्कोचात् इवेत्युत्प्रेक्षायां लोहिततमे=अतिशयेन

हिन्दी—वर्णन) बड़ा भारी भार है। वस्तुतः पुरुष के सौ जीवन-कालों में भी कौन इनके समस्त चरित का वर्णन कर सके? किंतु यदि एक अंश (सुनने में) तुम लोगों का कुतूहल हो तो हम तय्यार हैं। प्राप्त किये हुए कुछ अक्षर-खण्डों से हल्की बनी हुई (मेरी) यह जिह्वा भला कहाँ और जगह काम में आएगी। आपलोग श्रोता हैं। हर्ष का चरित-वर्णन किया जाता है। (मेरा) और क्या [अभीष्ट हो सकता] है? किंतु आज दिन प्रायः समाप्त हो गया है। पीछे लटके हुए किरणों-जैसे (लाल-पीले) जटा-भार से विभासित भगवान् परशुराम-जैसे कुरुक्षेत्र के विशाल रुधिर-सरोवर में नहाये थे वैसे ही पश्चिम की ओर लटकते हुए जटा-भार जैसी (लाल-पीली) किरणों से प्रकाशमान भगवान् सूर्य संध्याकालीन लालिमाओं के समूह में डूब रहे हैं। (अतः) कल निवेदन करूंगा'। उन सब ने स्वीकार कर लिया कि ऐसा ही सही। थोड़ी देर बाद उठकर (बाण) सन्ध्या करने के लिए शोण नद पर चला गया।

इसके बाद मदिरा के नशे में लाल बने मालव की कामिनियों के कपोलों की तरह कोमल आतप वाले दिन के ढल जाने पर, कमलिनियों के बन्द हो जाने से मानो बड़े लाल-पीले बने सूर्य के अन्धकार को चूमते हुए लटक जाने पर; सूर्य के घोड़ों के मार्ग के पीछे-पीछे यमराज के भैंसे-जैसे अन्धकार के गगन में दौड़ आने पर, गृहस्थी तपस्वियों

लम्बमाने, रविरथतुरगमार्गानुसारेण यममहिष इव धावति नभसि तमसि, गृहतापसकुटीरकपटलावलम्बिषु रक्तातपच्छेदैः सह संहृतेषु वल्कलेषु, कलिकल्मषमुषि पुष्णाति गगनमग्निहोत्रधामधूमे, सनियमे यजमानजने मौनव्रतिनि, विहारवेलाविलोले पर्यटति पत्नीजने, विकीर्यमाणहरितश्यामाकशालिपूलिकासु दुग्धासु होमकपिलासु, हूयमाने वैतानतनूनपाति, पूतविष्टरोपविष्टे कृष्णाजिनजटिले जटिनि, जपति बटुजने, ब्रह्मासनाध्यासिनि ध्यायति योगिगणे, तालध्वनिधावमानानन्तान्तेवासिनि अलसवृद्धश्रोत्रियानुमतेन गलद्ग्रन्थदण्डकोद्गारिणि संध्यां समवधारयति

टीका—रक्तवर्णं तमः=अन्धकारं लेढि=आस्वादयतीति [लिह्+क्विप्] तस्मिन् रवौ=सूर्ये लम्बमाने=पश्चिमस्यां दिशि पततीत्यर्थः, रवि०—रवेः रथस्य ये तुरगाः=अश्वाः तेषां मार्गस्य अनुसारेण तन्मार्गमनुसृत्येत्यर्थः, अर्थात् पूर्वदिशातः यमस्य=कालस्य महिषे=वाहे इवेत्युत्प्रेक्षायां नभसि=आकाशे तमसि=अन्धकारे धावति=द्रुतमागच्छतीत्यर्थः, (सति सप्त०) गृहता०—गृहतापसानां=गृहस्थ-तपस्विनां ये कुटीरकाः=उटजाः तेषां पटलेभ्यः=छदिभ्यः अवलम्बन्ते=इति० अवलम्बिनः, तेषु वल्कलेषु=वृक्षत्वग्वसनेषु रक्तातपस्य=लोहितघर्मस्य छेदैः=खण्डैः सह संहृतेषु=अपसारितेषु, रक्तवर्णमुनिवल्कलाः रक्ताभातपखण्डसदृशाः आसन्, ते च सहैव गताः इति भावः=अत एवात्र सहोक्तिरलङ्कारः। कलि०—कलेः=कलियुगस्य कल्मषं=पापं मुष्णाति=चोरयतीति ०मुट् तस्मिन् [क्विप्] अग्निहोत्रस्य=यज्ञविशेषस्य यानि धामानि=गृहाणि तेभ्यः यः धूमः तस्मिन् गगनम्=आकाशं पुष्णाति=[√पुष् क्र्यादि०+शतृ+ङि] पुष्टं कुर्वति पूरयतीत्यर्थः, नियमेन सह वर्तमानः सनियमः तस्मिन्=नियमयुक्ते यजमानजने=याज्ञिकलोके मौनं व्रतम् अस्यास्तीति तथोक्ते; विहार०=विहारः=इतस्ततः भ्रमणं तस्य वेला=समयः तस्यां विलोले=व्यापृते इत्यर्थः पत्नीजने=महिला-वर्गे पर्यटति=इतस्ततः भ्रमति सति, महिलानां कृते सूर्यास्तमनकाल एवेतस्ततः भ्रमणस्य कालो भवति। विकीर्य०—विकीर्यमाणाः=प्रक्षिप्यमाणाः हरिताः=हरिद्वर्णाः श्यामाकशालीनां=मुनिधान्यानां पूलिकाः=पूलाः याभ्यः तासु होम-कपिलासु=होम-धेनुषु दुग्धासु=कृतदोहनासु सतीषु, वितानस्य=यज्ञस्य अयम् इति वैतानः (अण्) यज्ञीयः इत्यर्थः ['क्रतु-विस्तारयोरस्त्री वितानम्' इत्यमरः] यः तनूनपात्=तनूं=देहं न पातयतीति तथोक्तः अग्निरित्यर्थः ['अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्जातवेदास्तनूनपात्' इत्यमरः] तस्मिन् हूयमाने=हव्यं प्राप्यमाणे, पूत० कृष्णाजिनेन=कृष्णमृगचर्मणा जटिले=लोमशे रोमयुक्ते इव दृश्यमान इत्यर्थः जटिनि=जटाधारिणि योगिनि पूते=पवित्रे विष्टरे=आसने उपविष्टे=स्थिते सति, बटुजने=बालकवृन्दे जपति मन्त्रजपं कुर्वति सति, ब्रह्मासनं=ब्रह्मणः सम्बन्धि आसनं ब्रह्मासनं ध्यानयोगासनम् [ध्यानयोगासने ब्रह्मासनम्—इत्यमरः] अध्यास्ते=अधितिष्ठतीति तथोक्ते योगिगणे=योगि-समूहे ध्यायति=ब्रह्मध्यानं कुर्वति सति ताल०—तालस्य=करताल-वादनस्य ध्वनिभिः=शब्दैः। अत्र सहार्थे तृतीया अथवा अध्यापककृतकरतालशब्दैः धावमानाः=द्रुतगत्या इति करणे तृ० आगच्छन्तः अन्तेवासिनः=शिष्याः यस्मिन् तस्मिन् [०'सनाजे' इत्यस्य विशेषणम्] अलसा=आलस्यपूर्णाः अथ च वृद्धाः=जरठाः ये श्रोत्रियाः=वेदाध्यापकाः इत्यर्थः तेषाम् अनुमतेन=अनुमत्या अनुज्ञयेत्यर्थः [अत्र भावे क्तः] गलन्तः=स्खलन्तः विस्मर्यमाणाः इत्यर्थः ग्रन्थस्य=पुस्तकस्य ये दण्डकाः=पङ्क्तयः शङ्करानुसारेण दण्डकः=ऋग्गणः तान् उद्गिरति=उच्चारयतीति तथोक्ते अथवा गलन्तः ग्रन्थ-दण्डकाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा उद्गिरतीति तस्मिन् वठराः=मूर्खाः मन्दाः इति त्रिकाण्डशेषः

टिप्पणी—कमलिनी—कमलिनियाँ बन्द हो रही थीं, सूर्य नीचे ढलता हुआ लाल लाल हो रहा था और अन्धकार को चूम रहा था। कवि कल्पना कर रहा है कि सूर्य कमलिनियों से प्रणय कर रहा था, किन्तु वे बन्द हो गईं। उनसे प्रणय विनिमय न पाकर मानो क्रोध में लाल-पीला बना हुआ सूर्य प्रतिक्रिया-स्वरूप उनके स्थान में तम को चूमने लगा।

हिन्दी—की कुटियों की छतों पर से लटके हुए वल्कल-वस्त्रों के रक्त आतप-खण्डों के साथ-साथ क्रमशः हटा दिए जाने पर, कलियुग के पाप को मिटा देने वाले अग्निहोत्र के गृहों में से (निकल रहे) धूम से आकाश के भर जाने पर, मौन-व्रत धारण किये हुए याज्ञिक लोगों के (अपने) नियम पर लग जाने पर, परिभ्रमण के समय में व्यस्त हुई (उनकी) पत्नियों के इधर-उधर घूमने लग जाने पर, होम धेनुओं के—जिनके लिए साँक की हरी फलियाँ डाली जा रही हैं—दुह लिये जाने पर, यज्ञीय अग्नि में हवन कर लिये जाने पर, काले मृग-चर्म से रोम वाले (जैसे) बने

वठरविटबटुसमाजे, समुन्मज्जति च ज्योतिषि तारकाख्ये खे, प्राप्ते प्रदोषारम्भे भवनमागत्योपविष्टः स्निग्धैर्बन्धुभिश्च सार्धं तयैव गोष्ठ्या तस्थौ । नीतप्रथमयामश्च गणपतेर्भवने परिकल्पितं शयनीयमसेवत । इतरेषां तु सर्वेषां निमीलितदृशामप्यनुपजातनिद्राणां कमलवनानामिव सूर्योदयं प्रतिपालयतां कुतूहलेन कथमपि सा क्षपा क्षयमगच्छत् ।

अथ यामिन्यास्तुर्ये यामे प्रतिबुद्धः स एव बन्दी श्लोकद्वयमगायत्—

'पश्चादङ्घ्रिं प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटां धूलिधूम्रां विधूय ।

टीका—विटाः=लम्पटप्रायाः दुर्वृत्ताः इत्यर्थः ये वटवः=द्विजबालकाः तेषां समाजे=समूहे सन्ध्यां=सन्ध्यावन्दनं समवधारयति=निश्चिन्वति ध्यानपूर्वकं सन्ध्या-मन्त्रान् शृण्वति सतीत्यर्थः तारका आख्या नामधेयं यस्य तस्मिन् ज्योतिषि==ज्योतिष्पिण्डे [जातौ एकवचनम्] खे=आकाशे समुन्मज्जति=प्रादुर्भवति सतीत्यर्थः, प्रदोषः=रजनी-मुखम् ['प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः] तस्य आरम्भे=उपक्रमे सति, भवनं=गृहम् आगत्य=आगम्य उपविष्टः स्थितः स्निग्धैः=स्नेहिभिः=बन्धुभिः=बान्धवैश्च सार्धं=सह तया एव गोष्ठ्या=सभया यथापूर्वसमागमेनेत्यर्थः तस्थौ=स्थितः । नीतः=यापितः प्रथमः यामः=प्रहरः रात्र्या इति शेष. येन सः गणपतेः=एतन्नामक भ्रातुः भवने=गृहे परिकल्पितं=रचितं शयनीयं=शय्याम् [शेरते अत्रेत्यधिकरणे अनीयर्] असेवत=अभजत् । इतरेषाम्=अन्येषां सर्वेषां तु निमीलिता=निमीलनविषयीकृता दृग्=चक्षुः यैः तेषाम् अपि न उपजाता=सञ्जाता निद्रा=स्वापः येषां तेषां सूर्यस्य=रवेः उदयम्=आगमनं प्रतिपालयताम्=प्रतीक्षमाणानां कमलानाम् इव कुतूहलेन=श्रीहर्षस्य चरितश्रवणौत्सुक्येन कथमपि=केनापि प्रकारेण सा क्षपा=रात्रिः क्षयं=समाप्तिम् अगात्=अगच्छत् ।

अथ यामिन्याः=रात्रेः तुर्ये=चतुर्थे यामे=प्रहरे प्रतिबुद्धः=जागरितः स एव बन्दी=स्तुतिपाठकः श्लोकयोः द्वयं=युगलम् अगायत् पश्चादिति—अत्र 'तुरङ्गः क्ष्मां खुरेण विलिखति' इत्यस्ति मुख्य-वाक्यम् । शयनात् उत्थितः सुप्तोत्थितः तुरङ्गः=अश्वः अङ्घ्रिं=पादं पाद-द्वयमिति यावत् पश्चात्=पश्चाद्भागे प्रसार्य=वितन्य त्रिकस्य—पृष्ठवंशाधरस्य ['पृष्ठवंशाधरे त्रिकम्' इत्यमरः, पृष्ठस्यान्तोऽथ ऊर्वोः सन्धौ त्रिसङ्कुट्टस्त्रिकम्' इति क्षीरस्वामी] नत्या=नमनेन विततं=प्रसारितम् अङ्गम्=शरीरम् उच्चैः यथा स्यात्तथा द्राघयित्वा=दीर्घीकृत्य [दीर्घस्य द्राघादेशः पा० ६।४।१५७], आभुग्नः=आनमितः कण्ठः=गलो यस्य तथाभूतः सन्, मुखम्=आननम् उरसि=वक्षसि आसज्य=संयोज्य कृत्वेत्यर्थः धूलिभिः=रजोभिः धूम्रां=धूसरितां सटां=केसरान् विधूय=कम्पयित्वा, घासस्य=तृणस्य यः ग्रासः=कवलः तस्य अभिलाषात्=इच्छायाः कारणात् अनवरतं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा

हिन्दी—जटाधारियों के पवित्र आसनों पर बैठ चुकने पर, बटु-जनों के (मन्त्र) जपने लग जाने पर, ब्रह्मासन लगाये योगी लोगों के [ब्रह्म का] ध्यान करने लगने पर, तालियों के साथ दौड़े आए असंख्य शिष्यों सहित मूर्ख लम्पट बटुसमाज के आलसी बूढ़े वेदाध्यापकों की अनुमति (=उपेक्षाभाव) से (सन्ध्या) पुस्तक की पंक्तियों को छोड़ उच्चारण करते हुए संध्या (मन्त्र) सही-सही जान लेने पर, आकाश में तारे नाम के ज्योतिःपिण्डों के निकल आने पर और प्रदोष आरम्भ हो जाने पर घर आकर बैठा—प्रिय भाई-बन्धुओं के साथ उसी समाज में बैठा रहा । एक प्रहर बिताए [वह] गणपति के घर में लगाए हुए बिस्तर पर जा लेटा । किन्तु आंखें मीचे हुए भी निद्रा-लाभ न करते हुए अन्य सभी की रात सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए कमल वनों की तरह उत्सुकता में बड़ी कठिनाई के साथ कटी ।

इसके बाद रात्रि के चौथे प्रहर में जागा हुआ वही स्तुतिपाठक दो श्लोक गा बैठा—

पीछे पसार पैर रीढ़ नीचे से मोड़ तनी काया ऊंची लम्बी करके
गर्दन टेढ़ी किये मुंह छाती पर लाकर धूलिधूसर अयाल हिला करके ।
तृण का कवल चाहता नथुनों को फुरफुराते मुंहवाला तुरंग
धीमा हिनहिनाता सो करके उठा हुआ खुर से कुरेदता भू का अंग ॥५॥
सीपी-जैसे कानों को सिर-अयाल से ढांपे तुरंग
टेढी पीठ, मुख-निकट कमर, गर्दन को तिरछी करता ।

[illegible]
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण ॥५॥

कुर्वन्नाभुग्नपृष्ठो मुखनिकटकटिः कन्धरामातिरश्चीं
लोलेनाहन्यमानं तुहिनकणमुचा चञ्चता केसरेण।
निद्राकण्डूकषायं कषति निबिडितश्रोत्रशुक्तिस्तुरङ्ग-
स्त्वङ्गत्पक्ष्माग्रलग्नप्रतनुबुसकणं कोणमक्ष्णः खुरेण ॥६॥

बाणस्तु तच्छ्रुत्वा समुत्सृज्य निद्रामुत्थाय प्रक्षाल्य वदनमुपास्य भगवतीं संध्यामुदिते भगवति सवितरि गृहीतताम्बूलस्तत्रैवातिष्ठत्। अत्रान्तरे सर्वेऽस्य ज्ञातयः समाजग्मुः परिवार्य चासाञ्चक्रुः। असावपि पूर्वोद्घातेन विदिताभिप्रायस्तेषां पुरो हर्षचरितं कथयितुमारेभे—

टीका—चलत्=प्रस्फुरत् प्रोथं=घोणा ['घोणा तु प्रोथमस्त्रियाम्' इत्यमरः] यस्य तथाभूतं तुण्डं=मुखं यस्य सः ['वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः] मन्दं शनैः यथा स्यात्तथा शब्दायमानः=शब्दं करोतीति [शब्द+क्यङ्+शानच् 'शब्दवैर''''''करणे' पा० ३।१।१७] ह्रेषारवं कुर्वाणः खुरेण=शफेन क्ष्मां=पृथिवीं विलिखति=खनति। अश्वस्य यथार्थ-स्वरूपवर्णनात् काव्यप्रकाशकारेण श्लोकोऽयं स्वभावोक्त्यलङ्कारस्योदाहरणे दत्तः। अत्र स्रग्धरा-वृत्तम्, तल्लक्षणञ्च—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता [म, र, भ, न, य, य, य, (७, ७, ७) स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

कुर्वन्निति०—अन्वयः—तुरङ्गः निबिडितश्रोत्र-शुक्तिः आभुग्नपृष्ठः मुख-निकटकटिः (च) सन् कन्धराम् आतिरश्चीम् कुर्वन् लोलेन तुहिन-कण-मुचा चञ्चता केसरेण आहन्यमानम् निद्राकण्डूकषायम् त्वङ्गत्''कणम् अक्ष्णः कोणम् खुरेण कषति।

तुरङ्गः=अश्वः निविडिता=निविडीकृता शीर्षस्यकेसरेण पिहितेत्यर्थः श्रोत्रं=कर्णः शुक्तिः=मुक्तास्फोटः इवेत्युपमित तत्पु० येन सः आभुग्नम्=आनमितं पृष्ठं=पृष्ठभागो यस्य सः, मुखस्य=आननस्य निकटे कटि=श्रोणी यस्य तथाभूतः सन् कन्धराम्=ग्रीवाम् आतिरश्चीम्=ईषद्वक्रां कुर्वन्=विदधत् लोलेन=चञ्चलेन तुहिनस्य=तुषारस्य कणान्=लवान् मुञ्चतीति तथोक्तेन चञ्चता=प्रचलता केसरेण=सटया। अत्र शीर्षस्यकेसरं ग्राह्यम्। आहन्यमानम्=प्रताड्यमानम् निद्रया=स्वापेन कण्ड्वा=खर्ज्वा च कषायम्=ईषत्पिङ्गलम् त्वङ्गन्ति=चञ्चन्ति चञ्चलीभवन्तीत्यर्थः [त्वगि गतौ कम्पने च भ्वा० प०] यानि पक्ष्मणां=नेत्ररोम्णाम् अग्राणि=अग्रभागाः तेषु लग्नाः=संसक्ताः प्रतनवः=प्रकर्षेण सूक्ष्माः बुसस्य=तुषस्य कणाः=लवाः यस्मिन् तम् अक्ष्णः=नेत्रस्य कोणम् प्रान्तम् कषति=घर्षति। अत्राऽपि पूर्ववत् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। वृत्तं स्रग्धरा।

तत्=श्लोकद्वयं श्रुत्वा=आकर्ण्य समुत्सृत्य=त्यक्त्वा निद्रां=स्वापम् उत्थाय=उत्थितो भूत्वा वदनं=मुखं प्रक्षाल्य=प्रक्षालितं कृत्वा भगवतीं सन्ध्यां=संध्याकर्मेत्यर्थः उपास्य=कृत्वा गृहीतं=मुखे धृतमित्यर्थः ताम्बूलं=ताम्बूलपत्रं येन सः तत्रैव=गणपतेर्भवने इत्यर्थः अतिष्ठत्। अत्रान्तरे=एतन्मध्ये ज्ञातयः=बान्धवाः समाजग्मुः=समागतवन्तः परिवार्य=वेष्टयित्वा आसाञ्चक्रुः=उपविष्टवन्तः। असौ=बाणः अपि पूर्वः=पूर्वप्रसक्तः च उद्घातः=कथाप्रस्तावः तेन विदितः=ज्ञातः अभिप्रायः=आशयः येन सः तेषां पुरः=अग्रे कथयितुम्=वक्तुम् आरेभे=प्रचक्रमे।

हिन्दी—

ओस कण चुआते हिलते-डुलते चंचल सिर-अयाल से
आहत नयन-कोण को अपने खुराग्र से है खुजलाता।
जो नींद और खुजली से लाल-लाल-सा है बना हुआ
और तरल बरौनी में जिसको लघु तुष-कण है चुभता॥

श्रूयताम्—अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधामवतीर्णः, सततमसङ्कीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थः, स्थलकमलबहुलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालैरुद्गीतमेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकोलाहलैर्हलैरुल्लिख्यमानक्षेत्रः, क्षीरोदपयःपायिपयोदसिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसन्ततिभिर्निरन्तरः, प्रतिदिशमपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधामभिर्विभज्यमानैः सस्यकूटैः सङ्कटसीमान्तः, समन्तादुद्घातघटीसिच्यमानैर्जीरकजूटैर्जटिलितभूमिः, उर्वरावरीयोभिः शालेयैर-

---

टीका—श्रूयताम्=आकर्ण्यताम् । अस्ति श्रीकण्ठो नाम जनपदः इत्यस्ति वाक्यम् । पुण्यं कुर्वन्तीति पुण्यकृतः तेषां =पुण्यात्मनामित्यर्थः अधिवासः=निवासस्थानम्, वसुधां=पृथिवीम् अवतीर्णम्=आगतम् वासवस्य=इन्द्रस्य आवासः=निवासस्थानं स्वर्गलोकः इति यावत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सतत०—सततं=निरन्तरं यथा स्यात्तथा असङ्कीर्णे —न सङ्कीर्णे=अस्तव्यस्ते भग्ने इत्यर्थः वर्णानां=ब्राह्मणादि-जातीनां व्यवहारः=कार्यम् स्थितिः=मर्यादा च यस्मिन् सः कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य व्यवस्था इव व्यवस्था यस्मिन् तथाभूतः, स्थल०—स्थलकमलानि=स्थलपद्मानि बहुलानि=अधिकानि यस्मिन् सः तस्य भावः तत्ता तया पोत्रैः=हलाग्रभागैः ['मुखाग्रं क्रोडहलयोः पोत्रम्' इत्यमरः] उन्मूल्यमानानि=उत्पाट्यमानानि [उन्मूलयते कर्मणि शानच्] मृणालानि=विसानि येषां तैः उद्गीताः=उच्चैः गानविषयीकृताः मेदिन्याः=पृथिव्याः साराः=उत्तमाः गुणाः=उर्वरत्वादयः यैः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, कृतः=अनुष्ठितः मधुकरैः=भ्रमरैः कोलाहलः=शब्दः येषु तैः हलैः=लाङ्गलैः उल्लिख्यमानानि=खन्यमानानि क्षेत्राणि =केदाराः यस्मिन् सः; क्षीरोद०—क्षीरोदस्य=क्षीरसमुद्रस्य पयः=क्षीरं पिबन्ति=पानविषयीकुर्वन्तीति ०पायिनः ये पयोदाः=मेघाः तैः सिक्ताभिः=कृतसेचनाभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पुण्ड्रेक्षूणां=पुण्ड्रनामकोत्कृष्टजातीयानाम् इक्षूणां=रसालानां ये वाटाः=वाटिकाः क्षेत्राणीति यावत् तेषां ततिभिः=पङ्क्तिभिः निरन्तरः=निर्गतम् अन्तरम् =अवकाशः यस्मात् स निरवकाशः निविड इत्यर्थः; प्रतिदिश०—दिशि दिशि इति प्रतिदिशं परितः इत्यर्थः अपूर्वाः= विचित्राः पर्वताः एव पर्वतकाः लघुपर्वतकाः [अल्पार्थे कः] तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् खलधानानां धान्यनिस्तुषीकरणभूतलानां धामभिः=स्थानैः विभज्यमानैः=विभक्तीक्रियमाणैः सस्यानां=धान्यानां कूटैः=समूहैः सङ्कटाः=सङ्कुलाः आकीर्णाः पूर्णाः इति यावत् सीमान्ताः सीमाप्रान्तभागाः यस्य सः, समन्तात्०—समन्तात्=परितः उद्घातस्य=घटीयन्त्रस्य ['उद्घाटनं घटीयन्त्रम्' इत्यमरः] घटीभिः=लघुघटैः सिच्यमानैः=सेचनं प्राप्यमाणैः जीरकस्य=जरणस्य 'जीरा' इति भाषायां प्रसिद्धस्य=गन्धद्रव्यविशेषस्य जूटैः=समूहैः जटिलिताः जटिलीकृता घनम् आवृतेत्यर्थः भूमिः= धरा यस्य सः, उर्वर०—उर्वरा=सर्वसस्याढ्या भूः ['उर्वरा सर्वसस्याढ्या' इत्यमरः] तया वरीयोभिः=वरतरैः (वर+ईयसुन्) उत्कृष्टैरित्यर्थः शालेयैः=शालीनां भवनं क्षेत्रम् इति शालि+ढक् ['व्रीहि-शाल्योर्ढक्' पा०

टिप्पणी—क्षीरोद० पूंडा जाति का गन्ना बहुत ही मीठा होता है। इसलिए कवि कल्पना करता है कि वह क्षीरसमुद्र का पय पीने वाले पयोदों से ही सींचे जाते होंगे, क्षार समुद्र का पय पीने वाले पयोदों से नहीं। न्याय शास्त्र का नियम है कि कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते' अर्थात् कारण के गुणों से ही कार्य में गुण हुआ करते हैं। सींचने वाले पयोदों के पय में मिठास है। तभी पूंडे में अतिशय मिठास हो सकती है, अन्यथा नहीं।

हिन्दी—तब बाण वह सुनकर नींद त्याग कर उठकर मुंह धो कर भगवती सन्ध्या की उपासना करके भगवान् सूर्य के उदय हो जाने पर पान ग्रहण किये वहीं बैठ गया। इस बीच इसके सभी भाई-बन्धु आ पहुँचे और उसे घेर कर बैठ गए। वह भी पूर्व छिड़े हुए प्रसंग से उनका अभिप्राय समझ कर उनके आगे हर्षचरित कहने लगा—

सुनिए—श्रीकण्ठ नाम का एक देश था जो पुण्यात्माओं का आवास-स्थान होने से पृथिवी पर उतरा हुआ स्वर्ग-जैसा लगता था जहाँ [ब्राह्मणादि] वर्णों का आचार-व्यवहार और मर्यादा निरन्तर संकर दोष से मुक्त और सत्ययुग की-सी व्यवस्था थी, जहाँ स्थल-कमल अधिक होने के कारण खेतों को खदते हुए हल (अपनी) नोकों से मृणाल उखाड़ते (समय) भ्रमरों से गुंजायमान हुए ऐसे लगते थे मानो पृथिवी के उत्कृष्ट गुणों को गान कर रहे हों, जो क्षीरसागर का पय पीने वाले पयोदों द्वारा सींचे हुए-जैसे पुण्ड्र जाति के गन्ने के खेतों की पंक्तियों से खचाखच भरा रहता था, जिसके सीमाप्रान्त चारों दिशाओं में विचित्र पर्वतों जैसे लग रहे खलियानों के स्थानों द्वारा विभक्त किये जा रहे धानों के ढेरों से पूर्ण रहा करते थे, जहाँ भूमि चारों ओर रहट की घटिकाओं से सींचे जा रहे जीरे के समूहों से खूब भरी रहती थी; जो उपजाऊ भूमि के कारण उत्तम धान के खेतों से शोभित रहता था, जो

सङ्कृतः, पाकविशारवराजमाषनिकरकिर्मीरितैः स्फुटितमुद्गफलकोशीकपिशितैर्गोधूमधामभिः स्थलीपृष्ठैरधिष्ठितः, महिषपृष्ठप्रतिष्ठितगायद्गोपालपालितैश्च कीटपटललम्पटचटकानुसृतैरवटुघटितघण्टाघटीरटितरमणीयैरटद्भिरटवीं हरवृषभपीतमामयाशङ्कया बहुधा विभक्तं क्षीरोदमिव क्षीरं क्षरद्भिर्बाष्पच्छेद्यतृणतृप्तैर्गोधनैर्धवलितविपिनः, विविधमखहोमधूमान्धशतमन्युमुक्तैर्लोचनैरिव सहस्रसंख्यैः कृष्णशारैः शारीकृतोद्देशः, धवलधूलीमुचां केतकीवनानां रजोभिः पाण्डुरीकृतैः प्रमथनाथोद्धूलनभस्मधूसरैः शिवपुरस्येव प्रवेशैः प्रवेशैरुपशोभितः, शाककन्दलश्यामलितप्रामोपकण्ठकाश्यपी-

---

टीका—५।२।२] शालिक्षेत्रैः [क्षेत्रं व्रैहेयशालेयं व्रीहिशाल्युद्भवोचितम्' इत्यमरः] अलङ्कृतः=भूषितः शोभितः इत्यर्थः; पाक०—पाकेन=परिपक्वतया विशरारवः=स्फुटन्तः ये राजमाषाः=दालविशेषबीजानि तेषां निकरैः=समूहैः किर्मीरितैः=चित्रवर्णैः स्फुटिताः=विदलिताः मुद्गफलस्य=मुद्गबीजस्य याः कोश्यः=शिम्बिकाः बीजधान्यः इत्यर्थः ताभिः कपिशितैः=कपिशवर्णैः गोधूमस्य धामभिः=धामभूतैः स्थलीनाम्=अकृत्रिमभूमीनां पृष्ठैः=तलैः अधिष्ठितः=कृताधिष्ठानः युक्तः इत्यर्थः; महिष०—महिषाणां=वाहानां पृष्ठे=उपरीत्यर्थः प्रतिष्ठिताः=आरूढाः गायन्तः=गानं कुर्वन्तश्च ये गोपालाः=गोपालकाः तैः पालितैः=रक्षितैः ['गोधनैः' इत्यस्य विशे०] कीटानां=लघुजीवानां गोस्थितानामिति यावत् 'यानि पटलानि=समूहाः तेषु लम्पटाः=लोलुपाः ये चटकाः=पक्षिविशेषाः तैः अनुसृतैः=अनुगतैः, अवटुः=कृकाटिका गलस्य निम्नप्रदेशः इत्यर्थः ['अवटुर्घाटा कृकाटिका' इत्यमरः] तस्यां घटिताः=बद्धाः इत्यर्थः, घण्टाः=क्षुद्रघण्टिकाः घटयः=क्षुद्रघटाः इवेत्युपमिततत्पु०, तासां रटितेन=रणितेन रमणीयैः=मनोहरैः, अटवीं=वनम् अटद्भिः=भ्रमद्भिः, हरस्य=शिवस्य यः वृषभः=वृषः तेन पीतम् आमयस्य=रोगस्य अजीर्णस्येत्यर्थः आशङ्कया=भयेन बहुधा=बहुस्थानेषु गोष्वित्यर्थः विभक्तं=विभज्य दत्तं क्षीरोदं=क्षीरसमुद्रम् इवेत्युत्प्रेक्षायां क्षीर=स्तनेभ्यो दुग्धं क्षरद्भिः=स्रावयद्भिः, वाष्पेण=अश्रुणा छेद्यं=छेदनीयं 'वाष्पच्छेद्येति सौकुमार्यकथनपरकम्' अर्थात् अतिसुकुमारं यत् तृणं=घासः तेन तृप्तैः=सन्तुष्टैः गोधनैः=गोसमूहैः ['गोधनं स्याद् गवां व्रजे' इत्यमरः] धवलितानि=श्वेतीकृतानि विपिनानि=वनानि यस्य सः, विविध०—विविधाः=नाना ये मखाः=यज्ञाः तेषु ये होमाः=अग्निषु प्रक्षिप्यमाणाः आहुतयः तेषां धूमैः अन्धः=दर्शनशक्तिरहितः यः शतमन्युः=शतं=शतसंख्याकाः मन्यवः=क्रतवः यस्य सः इन्द्रः इत्यर्थः, तेन मुक्तैः=त्यक्तैः सहस्रसंख्यैः=सहस्रं संख्या येषां तैः, कृष्णशारैः=कृष्णैः=श्यामैः शारैः=चित्रैश्च लोचनैः=नयनैः, इन्द्रो हि सहस्राक्षो भवति, अक्षि चापि कनीनिकायां कृष्ण प्रान्तयोः रक्तम् अन्यभागेषु च श्वेतं भवति, अत उक्तं कृष्णशारैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्' सहस्राणि संख्या येषां तैः सहस्रशः, कृष्णशारैः=बिन्दुलाञ्छितमृगैः शारीकृताः=चित्रवर्णीकृताः उद्देशाः=प्रदेशाः यस्य सः, धवल०—धवलां=श्वेतां धूलीं=रजः मुञ्चन्ति=त्यजन्तीति तथोक्तानां केतकी=पुष्पवृक्षविशेषः तस्याः वनानां=कुञ्जानामित्यर्थः रजोभिः=परागैः पाण्डुरीकृतैः=श्वेतीकृतैः प्रमथानां=शिवानुचरविशेषाणां नाथः=स्वामी शिवः इत्यर्थः तस्य उद्धूलनं=उत्+ऊर्ध्वं धूलिर्यस्य इत्युद्धूलि, उद्धूलि करोतीति उद्धूलयति ततः भावे ल्युट् धूलियुक्तीकरणमित्यर्थः, तत्सम्बन्धि यत् भस्म विभूतिः तेन धूसरैः=धूसरीभूतैः शिवपुरस्य=शिवपुर्याः प्रवेशैः=प्रविश्यते अनेनेति प्रवेशः [करणे घञ्]=मार्गैः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, प्रदेशैः=स्थानैः उपशोभितः=समलङ्कृतः, शाक०—शाकानां कन्दलैः=प्ररोहैः श्यामलितानि काश्यप्याः=पृथिव्याः ['क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिः' इत्यमरः]

हिन्दी—पक जाने के कारण फूटकर निकलते हुए राजमाषों के ढेरों से रंग बिरंगे फूटती हुई मूंग की दाल की फलियों से पीले बने (और) गेहूं उपजाने वाले भूतलों से युक्त था, जिसके बन ऐसी गायों के समूहों से श्वेत बने हुए रहते थे, जिनकी देखभाल भैंसों की पीठ पर बैठे (और) गाते हुए ग्वाले करते थे, जिनका पीछा ढेरों कीड़ों की लोभी चिड़ियाँ करती थीं; जो गले के नीचे बधी क्षुद्रघंटिकायें-जैसी घण्टियों के बजते रहने से देखने में सुन्दर लगती थीं; जो वनों में घूमती-फिरती रहती थीं; जो (थनों से) दूध चुआती हुई ऐसी प्रतीत होती थीं मानो महादेव के वृषभ द्वारा पिये क्षीरसागर से (अजीर्ण) रोग की आशंका से बहुतों (उन सभी गायों) में बांटा हुआ क्षीरसागर बहा रही हों (और) जो कोमल घास से तृप्त हो जाया करती थीं, जिसके प्रदेश तरह-तरह के यज्ञों के होमधूमों से अन्धे बने हुए इन्द्र द्वारा फेंके गये एक हजार काली-लाल श्वेत आंखों जैसे लग रहे हजारों चितकबरे मृगों से रंग-बिरंगे हुए रहते थे, जो शिव के ऊपर डाले गए भस्म से श्वेत बने हुए शिवपुरी के मार्ग-जैसे प्रतीत हो रहे सफेद धूल छोड़ने वाली केतकी [केवड़ा] के कुंजो की पराग से बनाये हुए प्रदेशों से शोभित था, जहाँ गांवों के आसपास के भूतल

पृष्ठः, पदे पदे करभपालीभिः पीलुपल्लवप्रस्फोटितैः करपुटपीडितमातुलुङ्गीदलरसोपलिप्तैः स्वेच्छाविचितकुङ्कुमकेसरकृतपुष्पप्रकरैः प्रत्यग्रफलरसपानसुखसुप्तपथिकैर्वनदेवतादीयमानामृतरसप्रपागृहैरिव द्राक्षामण्डपैः स्फुटत्फलानां च बीजलग्नशुकचञ्चुरागाणामिव समारूढकपिकुलकपोलसन्दिह्यमानकुसुमानां दाडिमीनां वनैर्विलोभनीयोपनिर्गमः, वनपालपीयमाननारिकेलरसासवैश्च पथिकलोकचुम्ब्यमानपिण्डखर्जूरैर्गोलाङ्गूललिह्यमानमधुरामोदपिण्डीरसैश्चकोर-

टीका—परशुरामेण क्षत्रिय-संहारं कृत्वा पश्चात् पृथिवी उपहाररूपेण कश्यपाय दत्ता, अतएव सा कश्यपस्येयम् इति काश्यपीत्युच्यते, तस्याः पृष्ठानि=तलानि यस्मिन् सः। पदे०—पदे पदे=स्थाने स्थाने करभाणां=उष्ट्रशिशूनां पालिभिः=पङ्क्तिभिः उपलक्षितः इत्यर्थः। अत्र उपलक्षणे तृतीया [‘इत्थंभूतलक्षणे’ पा० २।३।२१] पीलु०—पीलुः=वृक्षविशेषः तस्य पल्लवैः=पत्रैः प्रस्फोटितं=प्रस्फोटनं [भावे क्तः] धूलीप्रोञ्छनं येषु तैः एतदारभ्य ‘पथिकैः’ इत्यन्तं ‘द्राक्षामण्डपैः’ इत्यस्य विशेषणानि, कर०—करयोः=हस्तयोः पुटैः=संपुटैः पीडितानि=मर्दितानि मातुलुङ्ग्याः=बीजपूरस्य [‘फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलुङ्गक’ इत्यमरः] दलानि=पत्राणि तेषां रसेन=द्रवेण उपलिप्तैः=कृतलेपैः, स्वेच्छा०—स्वेच्छया=स्वच्छन्दतः विचिताः=एकत्रिताः ये कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य केसराः=किंजल्काः तैः कृतः पुष्पाणां=कुसुमानां प्रकरः=समूहः येषु तैः, प्रत्यग्र०—प्रत्यग्राणाम्=अभिनवानां फलानां यः रसः=द्रवः तस्य पानेन यत् सुखम्=सानन्दं यथा स्यात्तथा, सुप्ताः=शयिताः पथिकाः=पान्थाः येषु तैः, वनदेव०—वनदेवताभिः=वनदेवीभिः दीयमानः=पथिकेभ्यः वितीर्यमाणः यः अमृतरसः=सुधारसः तस्य प्रपागृहैः=पानीयशालिका-भवनैः [‘प्रपा पानीयशालिका’ इत्यमरः] इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, द्राक्षाणां=गोस्तनीनां मण्डपैः=निकुञ्जैः ‘विलोभनीयोपनिर्गमः’ इत्यनेनान्वयः, स्फुटत्०—स्फुटन्ति=विदीर्यमाणानि फलानि यासां तासाम्, बीजेषु लग्नः=संसक्तः शुकानां=कीराणां चञ्चूनां=त्रोटीनां रागः=लालिमा यासां तासाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, समा०—समारूढम्=उपरिस्थितं यत् कपीनां=वानराणां कुलं=समूहः तस्य कपोलैः=गण्डैः सन्दिह्यमानानि=सन्देहं प्राप्यमाणानि कुसुमानि=पुष्पाणि यासां तासां दाडिमीनां=करकाणां वनैः=अरण्यैः विलोभनीयाः=मोहकाः चित्ताकर्षकाः इति यावत् उपनिर्गमाः=निर्गमनमार्गा उद्यानानीति केचित् यस्य सः; वनपाल०—वनपालैः=वनरक्षकैः पीयमानः=पानविषयीक्रियमाणः नारिकेलानां=कौशिकफलानां रसस्य आसवः=मदिरा येषु तैः उपवनैरित्यस्य विशे०; पथिक०—पथिक-लोकेन=पान्यजनेन

टिप्पणी—प्रस्फोटित—इस शब्द को बाण ने हर्षचरित में अन्यत्र भी और कादम्बरी में भी प्रयुक्त कर रखा है जिसका अर्थ मिट्टी झाड़ना प्रतीत होता है। यहाँ ‘भावे क्तः’ है अर्थात् जिन प्रपागृहों में पथिक लोग पीलु के पत्तों से अपने पैरों की मिट्टी झाड़ते थे, देखिए कादम्बरी—‘विश्रान्त-कार्पटिक-प्रस्फोटित-चरणधूलि-धूसर-किसलय०’’। हर्षचरित सप्तम उच्छ्वास—‘पथिकपादप्रस्फोटनधूलिधूसरैर्नवपल्लवैः’। इसे हम प्रपा की ओर भी लगा सकते हैं अर्थात् जिन प्रपाओं में जमीन की धूलि पीलु के पत्तों से साफ की जाती थी। झाड़-बुहार कर ही पथिक लेटते थे। परन्तु शंकर ने ‘प्रस्फोटितैर्नीराजनीकृतैः’ अर्थ किया है अर्थात् पीलु के पत्तों द्वारा जिन प्रपाओं का नीराजन किया जाता था। प्रपागृहों के तीन विशेषणों से ये तीन विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं कि वे झाड़ी-बुहारी जाती थीं; बिजौरे के पत्तों के रस की तरह हरे गोबर से वे लीपी जाती थीं और उनके फर्श पर फूल बिखेरे जाते थे।

हिन्दी—शाक-सब्जी के अंकुरों से काले बनाए हुए रहा करते थे, जहाँ स्थान-स्थान में ऊँटों के बच्चों की कतार लगी रहती थी, जो वनदेवियों द्वारा [पथिकों को] दिये जा रहे अमृतरस के प्याऊ घर-जैसे प्रतीत होने वाले ऐसे अंगूर के झाड़ों से—जहाँ पीलु वृक्ष के पत्तों से मिट्टी झाड़ी हुई रहती थी, दोनों हाथों से निचोड़े गये बिजौरे के पत्तों के रस से लेपन किया हुआ रहता था, स्वेच्छानुसार चुने हुए कुंकुम के केसरों के रूप में फूलों का ढेर विखेरा रहता था (एवं) ताजे ताजे फलों (अंगूरों) का रस पीने से पथिक आनन्द से सोये रहते थे—और ऐसे दाड़िमों के वनों से रमणीय मार्गों वाला बना हुआ रहता था, जहाँ फल फटते रहते थे, बीजों में लगी हुई तोतों की चोंचों से मानो लाली छाई हुई थी एवं (पेड़ों पर) चढ़े हुए वानरों के (लाल) कपोल फूलों का-सा सन्देह पैदा कर देते थे; जो ऐसे उद्यानों से सुन्दर बना रहता था, जहाँ वन-रक्षक नारियल के रस की शराब पीते रहते थे, पथिक लोग पिंड खजूरों को चट करते रहते थे, लंगूर मधुर सुगन्धिवाली ताड़ी को चाटते रहते थे और चकोर चोंचों से फाड़ू को कुतरते रहते थे; जहाँ जंगल की घाटियाँ ऊँचे-ऊँचे अर्जुन वृक्षों की कतारों से घिरे, गायों के

चञ्चुजर्जरितारुकैरुपवनैरभिरामः तुङ्गार्जुनपालीपरिवृतैश्च गोकुलावतारकलुषितकीलालैरध्वगशतशरण्यैररण्य-घराबन्धैरवन्ध्यवनरन्ध्रः, करभीयकुमारकपाल्यमानैरौष्ट्रकैरौरभ्रकैश्च कृतसम्बाधः, दिशि दिशि रविरथतुरगविलो-भनायेव विलोठनमृदितकुङ्कुमस्थलीरससमालब्धानामुत्प्रोथपुटैरुन्मुखैरुदरशायिकिशोरकजवजननाय प्रभञ्जनमिव चापिबन्तीनां वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीनां वडवानां वृन्दैर्विचरद्भिराचितः, अनवरतक्रतुधूमान्धकारप्रवृत्त-

टीका—लुप्यमानाः=भक्षयित्वा समाप्यमानाः पिण्डखर्जूराः=फलविशेषाः येषु तैः, गोलाङ्गूल०—गोलाङ्गूलैः=कृष्णमुखैः गोपुच्छसदृशपुच्छैः वानरविशेषैः लिह्यमानः=आस्वाद्यमानः मधुरामोदः=मधुरः आमोदः=परिमलः यस्य तथाभूतः पिण्डीनां=खर्जूर-विशेषाणां रसः=द्रवः येषु तैः, चकोर०—चकोराणां=पक्षिविशेषाणां चञ्चुभिः=मुखैः जर्जरिताः=स्फोटिताः खण्डिताः इत्यर्थः, आरुकाः=फलविशेषाः येषु तैः उपवनैः=उद्यानैः अभिरामः=रमणीयः; तुङ्गा०—तुङ्गाः=उच्चाः ये अर्जुनाः=ककुभवृक्षाः तेषां पालीभिः=पङ्क्तिभिः परिवृतैः=वेष्टितैः, गोकुला०—गवां कुलस्य=समूहस्य अवतारेण=अवतरणेन कलुषितं=मलिनितं कीलालं=जलं ['पयः कीलालम-मृतम्' इत्यमरः] येषां तैः, अध्वग०—अध्वगानाम्=अध्वनि=मार्गे गच्छन्तीति तथोक्तानां पथिकानामित्यर्थः शतानि तेषां शरण्यैः=शरणे साधुः इति [शरण+य 'तत्र साधुः' पा० ४।४।९८] आश्रयभूतैरित्यर्थः, अरण्यानां=वनानां घराबन्धैः=जलाशयैः अवन्ध्यानि=अव्यर्थानि अशून्यानीत्यर्थः वनानां रन्ध्राणि=विवराणि दर्यः, मध्य-वर्तिभूभागाः इत्यर्थः यस्मिन् सः करभीय०—करभेभ्यः=उष्ट्रशावकेभ्यः हिता इति [करभ+यत् 'तस्मै हितम्' पा० ५।१।५] करभीयाः कुमारकाः=बालकाः तैः पाल्यमानैः=रक्ष्यमाणैः औष्ट्रकैः=उष्ट्राणां समूहाः इति उष्ट्र+वुञ् 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र...मनुष्याजाद् वुञ् (पा० ४।२।३२) तैः उरभ्राणां=मेढ्राणां समूहाः तैः ['मेढ्रोरभ्रोरणोर्णायु-' इत्यमरः] कृतः सम्बाधः=संमर्दः यस्मिन् सः, तैः आकीर्णः=आवृतः इत्यर्थः, दिशि—दिशि-दिशि=सर्वत्र रवेः=सूर्यस्य ये रथस्य=स्यन्दनस्य तुरगाः=अश्वाः तेषां विलोभनाय=आकर्षणाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विलोठनेन=विलुठनेन भूमौ गात्रपरिचालनेनेत्यर्थः, मृदिता=निष्पिष्टा दलितेत्यर्थः या कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य स्थली=अकृत्रिमा भूमिः तस्याः रसेन=द्रवेण समालब्धानाम्=अनुलिप्तानाम् वडवानामित्यस्य विशे०, उत्=ऊर्ध्वं कृतैः प्रोथ-पुटैः=घोणापुटैः, उत्=ऊर्ध्वं कृतैः मुखैः=आननैः उदर०—उदरे=गर्भे इत्यर्थः शेरते इति० शयिनः ये लघवः किशोरा इति किशोरकाः (अल्पार्थे कः) तेषु जवस्य=वेगस्य जननाय=उत्पादनाय प्रभञ्जनम्=वायुम् इवेत्युत्प्रेक्षा-याम् आपिबन्तीनाम्=आपानविषयीकुर्वतीनाम्, वात०—वातहरिणीनाम्=वेगे वातमप्यतिशयानानां मृगी-विशेषाणाम् इवेत्युपमायाम् स्वच्छन्दम्=स्वेच्छया यथा स्यात्तथा चरन्तीति तथोक्तानां वडवानां=तुरगीणां विचरद्भिः=इतस्ततः भ्रमद्भिः वृन्दैः=समूहैः आचितः [आ+√चि+क्त]=आकीर्णः, अनवरत०—अनवरताः=

टिप्पणी—रवि-रथ-तुरगविलोभनाय—कवि का आशय यह है कि घोड़ियाँ गात्रों पर कुंकुम लेप किये इधर उधर घूमती हुई अभिसारिकाओं की तरह मानो सूर्य के घोड़ों को लुभा रही थीं। अनवरत०—त्रिकाण्ड शेष ने बाण का अर्थ अग्नि भी किया हुआ है। यज्ञीय धूम के अन्धकार में मिलती हुई अग्नि-ज्वालायें अन्धकार से निकलते हुए हंसों की तरह थीं। हंस भी अन्धकार में घूमा करते हैं। किन्तु कॉवेल ने 'बाणैः' का अर्थ 'सरकण्डे' किया है। इसका पाठान्तर 'गुणैः' है जिससे यह अर्थ होगा कि यज्ञ करने से उत्पन्न गुण—पुण्य अथवा यश—से भुवन श्वेत बन गया था। गुण या यश का श्वेत रूप में वर्णन होता है।

हिन्दी—उतर आने से किनारे के मैले बने जलवाले और सैकड़ों बटोहियों को आश्रय देने वाले जलाशयों से खाली नहीं रहा करती थीं; जो चारों दिशाओं में सूर्य के रथ के घोड़ों को लुभाने के लिए मानो लोटने से कुचली हुई केसर की भूमि के द्रव से लिप्त हुई, ऊपर किये हुए नथुनों और मुँह से उदर (गर्भ) में स्थित बच्चों में वेग पैदा करने के लिए मानो वायु का पान करती हुई, वात-हरिणियों की तरह स्वच्छन्द विचरती हुई घोड़ियों के घूमते-फिरते समूहों से भरा हुआ रहता था; जो निरन्तर चल रहे यज्ञों के धुएँ के अन्धकार से निकली हंससमूह-समान अग्नियों से भुवन को श्वेत बनाये रहता था; जो संगीत में बज रहे मृदंग की ध्वनि से मदमत्त हुए मोरों-

हंसयूथैरिव बाणैर्धवलितभुवनः, सङ्गीतगतमुरजरवमत्तमयूरैरिव विभवैर्मुखरितजीवलोकः, शशिकरावदातवृत्तैर्मुक्ताफलैरिव गुणिभिः प्रसाधितः, पथिकशतविलुप्यमानस्फीतफलैर्महातरुभिरिव सर्वातिथिभिरभिगमनीयः, मृगमदपरिमलवाहिमृगरोमाच्छादितैर्हिमवत्पादैरिव महत्तरैः स्थिरीकृतः, प्रोद्दण्डसहस्रपत्रोपविष्टद्विजोत्तमैर्नारायणनाभिमण्डलैरिव तोयाशयैर्मण्डितः, मथितपयःप्रवाहप्रक्षालितक्षितिभिः क्षीरोदमथनारम्भैरिव महाघोषैः पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः ।

टीका—निरन्तराः ये क्रतवः=यज्ञाः तेषां यः धूमः तेन अन्धकारः तस्मिन् प्रवृत्तैः=जातैः ज्वलितैः इत्यर्थः, अन्यत्र पलायितैः हंसानां कुलैः=समूहैः इवेत्युपमायां बाणैः=अग्निभिः धवलितानि=श्वैत्यं नीतानि भुवनानि येन सः; सङ्गीत०—सङ्गीते=नृत्यवाद्यसहिते गाने ['गीतं वाद्यं नर्तनञ्च त्रयं संगीतमुच्यते'] मुरजानां=मृदङ्गानां यः रवः=शब्दः तेन मत्तैः हर्षोन्मत्तैः मुरजरवे मेघगर्जनभ्रान्तेः कारणात्, मयूरैः=नीलकण्ठैः इवेत्युपमायां विभवैः=धनसम्पत्तिभिः. मुखरितः=मुखरीकृतः निनादितः इत्यर्थः जीवलोकः=मर्त्यलोकः येन सः; शशि०—शशिनः=चन्द्रमसः ये कराः=किरणाः तद्वत् अवदातैः=शुद्धैः वृत्तैः=गोलाकारैश्च गुणिभिः=गुणः=ग्रथन-सूत्रम् एषामस्तीति तथोक्तैः मुक्ताफलैः=मौक्तिकैः इवेत्युपमायाम्, शशिकरवत् अवदातम्=निर्दोषं वृत्तम्=आचारो येषां तैः गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः तद्वद्भिः पुरुषैरिति शेषः, प्रसाधितः=अलङ्कृतः; पथिक०—पथिकानां=पान्थानां शतैः शतशः पान्थैरित्यर्थः विलुप्यमानानि=भक्षयित्वा समाप्यमानानि स्फीतानि=प्रचुराणि फलानि येषां तैः महद्भिः=विशालैः तरुभिः=वृक्षैः इवेत्युपमायाम् पथिकशतविलुप्यमानं फलम्=ऐश्वर्यं धनमित्यर्थः येषां तैः अतिथिभिः अभिगमनीयः=अभिगन्तुं योग्यः आश्रयणीयः इत्यर्थः, अर्थात् अतिथयः तस्माद् देशात् बहुधनमादाय अन्येभ्यः पथिकेभ्यः वितरन्ति स्म; मृगमद०—मृगमदस्य=कस्तूरिकायाः यः परिमलः=सौरभम् तं वहन्ति=धारयन्तीति० वाहीनि यानि मृगाणां=कस्तूरीमृगाणां रोमाणि=लोमानि तैः आच्छादितैः=आवृतैः, महत्तरैः=विशालतरैः हिमवतः=हिमाचलस्य पादैः=प्रत्यन्तपर्वतैः ['पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः] इवेत्युपमायाम्, मृगमदपरिमलवाहिभिः मृगरोमभिः=मृगचर्मभिः आच्छादितैः=आवृतैः .मृगचर्मवसनं परिदधानैरित्यर्थः महत्तरैः ग्राममुख्यपुरुषैः स्थिरीकृतः=स्थिरतां नीतः रक्षित इत्यर्थः; प्रोद्दण्ड०—प्रकर्षेण उत्=ऊर्ध्वं दण्डः नालदण्डो येषां तथाभूतानि यानि सहस्रपत्राणि=कमलानि ['सहस्रपत्रं कमलम्' इत्यमरः] तेषु उपविष्टाः=स्थिताः द्विजानां=ब्राह्मणानाम् ये उत्तमाः श्रेष्ठाः ब्राह्मणाः इत्यर्थः येषु तैः नारायणस्य=विष्णोः नाभिमण्डलैः इवेत्युपमायाम् अन्यत्र प्रोद्दण्डेषु सहस्रेषु उपविष्टाः द्विजोत्तमाः=श्रेष्ठपक्षिणः येषां तैः तोयाशयैः=जलाशयैः मण्डितः=अलङ्कृतः; मथित०—मथितं=मथनविषयीकृतं यत् पयः=क्षीरं तस्य प्रवाहेण=ओघेन प्रक्षालिता=धौता क्षितिः=पृथिवी येषु तथाभूतैः क्षीरोदस्य=क्षीरसागरस्य मथनारम्भैः=मन्थन-प्रयत्नैः इवेत्युपमायाम् महाघोषैः=महानिनादद्वारा पूरिताः=भरिताः आशाः=दिशः यत्र, अन्यत्र मथितं=तक्रं ['तक्रं ह्युदस्विन्मथितम्' इत्यमरः] पयः=दुग्धं च तयोः प्रवाहेण=धारया प्रक्षालिता=धौता आर्द्रीकृतेत्यर्थः क्षितिः=भूतलमित्यर्थः येषु तैः महाघोषैः=महद्भिः गोपालग्रामैः पूरिता=पूर्णीकृता सन्तोषितेत्यर्थः, आशा=लोकानाम् इच्छा येन तथाभूतः, उपरि सर्वत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः। श्रीकण्ठो नाम जनपदः=देशः ।

हिन्दी—जैसे धन-वैभवों से जीवलोक को मुखरित किये हुए रहता था, जो चन्द्रकिरणों के समान स्वच्छ, गोल (और) सूत्रग्रथित मोतियों की तरह चन्द्रकिरण-से निर्मल आचरण वाले गुणी लोगों से सुशोभित रहता था, जो पथिकों द्वारा खाकर समाप्त किए गए प्रचुर फलों वाले वृक्षों की तरह पथिकों द्वारा लिए गए विपुल धन वाले अतिथियों द्वारा सेवित था, जो कस्तूरी की सुगन्धि रखे हुए मृगों के बालों से ढकी हुई हिमालय की बड़ी-बड़ी तलहटियों की तरह कस्तूरी की सुगन्धिवाले मृगचर्म का वसन पहने हुए ग्राम के मुखियाओं द्वारा सुरक्षित था, जो ऊपर उठे नाल-दंडों वाले कमलो पर बैठे ब्रह्माओं वाले विष्णु भगवान् के नाभि-मण्डलों-जैसे ऊपर उठे नाल-दंडों वाले कमलों पर बैठे उत्तम पक्षियों वाले जलाशयों से मण्डित था; जो मथित किए पय के प्रवाह से पृथिवी को प्रक्षालित कर देने वाले [देवासुरों द्वारा] क्षीर-समुद्र के मंथन के प्रयत्नों से उठे महान् घोष [शब्द] द्वारा आशाओं [दिशाओं] को भरते हुए जैसे तक्र और दूध की धार से भूतल को आर्द्र कर देने वाले महान् घोषों (ग्वालों के गाँवों) से (लोगों की) आशाओं (इच्छाओं) को पूरा किए हुए रहता था ।

यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुपातजलक्षालिता इवाक्षीयन्त कुदृष्टयः । पच्यमानचयनेष्टकादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरितानि । छिद्यमानयूपदारुपरशुपाटित इव व्यदीर्यताधर्मः । मखशिखिधूमजलधरधाराधौत इव ननाश वर्णसङ्करः । दीयमानानेकगोसहस्रशृङ्गखण्ड्यमान इवापलायत कलिः । सुरालयशिलाघट्टनटङ्कनिकरनिकृत्ता इव व्यदीर्यन्त विपदः । महादानविधानकलकलाभिद्रुता इव प्राद्रवन्नुपद्रवाः । दीप्यमानसत्त्रमहानससहस्रसन्तापिता इव व्यलीयन्त व्याधयः । वृषविवाहप्रहतपुण्यपटहपटुरवत्रासिता इव नोपासर्पन्नपमृत्यवः । सन्ततब्रह्मघोषबधिरीकृता इवापजग्मुरीतयः । धर्मा-

टीका—त्रेता०—त्रेता=दक्षिणाग्निः गार्हपत्यः आहवनीयश्चेति त्रयोऽग्नयः ['दक्षिणाग्निर्गार्हपत्याहवनीयौ त्रयोऽग्नयः । अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरः] तद्रूपो योऽग्निः=वह्निः तस्य धूमेन यः अश्रुपातः स एव जलं तेन क्षालिता=धौता इवेत्युत्प्रेक्षायां कुदृष्टयः=कुत्सित-दृष्टिकोणाः वेदविरुद्ध-सिद्धान्ता इति यावत् एव कुदृष्टयः=दूषितानि, रोगग्रस्तानि चक्षूंषि [क्तिन् करणार्थकः] दूषितचक्षूंषि हि औषधप्रयोगे अश्रूणि पातयित्वा रोगमुक्तानि क्रियन्ते इति भावः, अत्र रूपकम् । पच्यमान०—पच्यमानाः पाकविषयीक्रियमाणाः चयनाय=यज्ञवेदीनिर्माणाय या इष्टकाः निर्माणार्थदग्धमृत्तिकाखण्डाः इत्यर्थः, दहनेन=अग्निना दग्धानि=प्लुषितानि इवेत्युत्प्रेक्षायां दुरितानि=पापानि न अदृश्यन्त=न दृष्टिपथमगच्छन्, धर्मात्मानो लोका निष्पापा आसन्; कविः कल्पयति तेषां पापानि दग्धानीव, छिद्यमान०—छिद्यमानं=कृत्यमानं यूपाय=यज्ञस्तम्भाय दारुः=काष्ठं येन तथाभूतः यः परशुः=कुठारः तेन पाटितः=छिन्न इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अधर्मः=पापं व्यदीर्यत=विदीर्णमभवत् । मख०—मखानां=यज्ञानां ये शिखिनः=वह्नयः ['शिखिनौ वह्निबर्हिणौ' इत्यमर] तेषां धूमैः तदुत्पन्नैरित्यर्थः ये जलधराः=मेघाः तेषां धाराभिः=वृष्टिभिरित्यर्थः धौतः=प्रक्षालितः इवेत्युत्प्रेक्षायां वर्णानां=ब्राह्मणादि-जातीनां सङ्करः=प्रतिलोमविवाहजनित-संततिः एव वर्णानां=नीलपीतादीनां सङ्करः=सम्मिश्रणम् ननाश=अनश्यत्, वृष्टिजलैः वर्णमिश्रणं प्रक्षाल्यते, अत्र श्लिष्टरूपकम्, दीयमान०—दीयमानानि=दानविषयीक्रियमाणानि अनेकानि=बहूनि यानि गवां=धेनूनां सहस्राणि तेषां शृङ्गैः=विषाणैः खण्ड्यमानः=छिद्यमानः इवेत्युत्प्रेक्षायां कलिः=कलियुगम् अपलायत=पलायाञ्चक्रे । सुरालय०—सुरालयानां=देव-मन्दिराणां याः शिलाः=प्रस्तराः तासां घट्टनाय=तक्षणाय आकारप्रदानायेत्यर्थः टङ्कानां=पाषाण-दारणानां ["टङ्कः पाषाणदारणः" इत्यमरः] निकरेण=समूहेन निकृत्ताः=तष्टाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विपदः=आपत्तयः व्यदीर्यन्त=विदीर्णा अभवन् । महादान०—महादानानां=तुलापुरुषदानादीनां विधाने=करणे यः कलकलः=कोलाहलः तेन अभिद्रुताः=आक्रान्ताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपद्रवाः=संकटाः दुष्टग्रहादिकृताः इत्यर्थः प्राद्रवन्=अपलायन्त, दीप्यमान०—दीप्यमानानि=ज्वलन्ति सत्रेषु=यज्ञेषु यानि महानसानां=पाकशालानां सहस्राणि तैः सन्तापिताः=तापं प्रापिताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् व्याधयः=रोगाः व्यलीयन्त=विलीनाः शान्ताः अभवन् । वृषविवाह०—वृषाणां=वृषभाणां विवाहेषु=परिणयेषु प्रहताः=वादिताः इत्यर्थः ये पुण्याः=पावनाः पटहाः=दुन्दुभयः तेषां पटुना=तीव्रेण रवेण=शब्देन त्रासिताः=भयं प्रापिताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अपमृत्यवः=

टिप्पणी—वृषविवाह—मृत व्यक्ति के ग्यारहवें दिन गौ सहित वृष छोड़ देने का विधान है। इसे वृषोत्सर्ग या वृषविवाह कहते हैं—'एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः । प्रेतलोकं परित्यज्य स्वर्गलोकं स गच्छति ॥' 'ईति' संकट को कहते हैं, वे छः होती हैं—"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाः शलभाः शुकाः । प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः" ॥

हिन्दी—जहाँ त्रेताग्नियों के धूम से गिरते हुए अश्रुजल से धुली हुई-जैसी कुदृष्टियाँ [नास्तिकता भरी बुद्धियाँ] रूपी कुदृष्टियाँ [रुग्ण आँखें] दूर हो जाया करती थीं, यज्ञ-वेदी-निर्माणार्थ पक रही ईंटों की अग्नि से जले हुए-जैसे पाप दिखाई नहीं पड़ते थे, यज्ञ-स्तम्भ के लिए लकड़ी को काटने वाले कुल्हाड़े से काटा हुआ-जैसा अधर्म विदीर्ण हो गया था, यज्ञीय अग्नियों के धूमों से बने हुए मेघों की जलधाराओं से धुला हुआ-जैसा वर्ण-संकर—[ब्राह्मणादि जातियों में प्रतिलोमविवाहजनित संतति]-रूपी वर्णसंकर (मिश्रित रंग) मिटा रहता था, दान में दी जा रही हजारों गायों के सींगों से फाड़ा जाता हुआ-जैसा कलियुग भाग जाता था। देव-मन्दिर की शिलाओं को गढ़ने की छेनियों के समूह से काटी हुई-जैसी विपत्तियाँ विदीर्ण हो गई थीं, महादानों की विधि के कोलाहल से आक्रान्त हुए-जैसे उपद्रव भाग निकले थे, जलती हुई यज्ञों की हजारों पाकशालाओं से तपी हुई-जैसी व्याधियाँ लीन हो गयी थीं, वृषोत्सर्ग में बजाए हुए पावन पटहों के तीव्र शब्दों से डराई हुई-जैसी अकाल मृत्युएँ पास नहीं

विकारपरिभूतमिव न प्राभवद्दुर्दैवम्।

तत्र चैवंविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुङ्कुममलनपिञ्जरितबहुमहिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव धर्मस्य, मरुदुद्धूयमानचमरीबालव्यजनशतधवलितप्रान्त एकदेश इव सुरराज्यस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्तः शिबिरसन्निवेश इव कृतयुगस्य, पद्मासनस्थितब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकला-

---

टीका—आकस्मिक-मृत्यवः अथवा अकालमृत्यवः न उपासर्पन्=उपागच्छन् । सन्तत०—सन्ततः=अनवरतः ब्रह्मणः=वेदस्य ['वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म' इत्यमरः) यः घोषः=ध्वनिः तेन बधिरीकृताः=बधिरत्वं प्रापिता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ईतयः=घोरविपत्तयः उपजग्मुः=अपसृताः धर्मा०—धर्मस्य=सुकृतस्य यः अधिकारः=शासनमित्यर्थः दुर्दैवम्=दुर्भाग्यं न प्राभवत्=तस्मिन् देशे स्वप्रभुत्वं न स्थापयामासेत्यर्थः।

तत्र—'तत्र च एवंविधे ··· ··· स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेषः' इत्यस्ति मुख्यवाक्यम् । एवंविधे=पूर्वोक्ते श्रीकण्ठजनपदे इत्यर्थः। नाना०—नाना=विविधाः ये आरामाः=उद्यानानि तेषाम् अभिरामः=रमणीयः यः कुसुमानां =पुष्पाणां गन्धस्य परिमलः=सौरभं तेन सुभगः=सुन्दरः [स्थाण्वीश्वरजनपदः] अथ च नाना या रामाः= रमण्यः ये च कुसुमगन्ध-परिमलाः तैः सुभगः=यौवनारम्भः इव भुवनस्य=जगतः; कुङ्कुम०—कुङ्कुमस्य काश्मीरजस्य मलनेन=दलनेन कुङ्कुमभूमिमर्दनेनेत्यर्थः। पिञ्जरिताः=पीतीभूताः याः बह्व्यः महिष्यः=महिषस्त्रियः तासां सहस्रैः शोभितः [देशः] धर्मस्य कुङ्कुमस्य मलनेन=अङ्गेषु मर्दनेन पिञ्जरितानां बह्वीनां महिषीणां कृताभिषेकाणां नृपस्त्रीणां सहस्रैः शोभितः अन्तःपुरस्य निवेशः=स्थानम् इव, यथा नृपोऽन्तःपुरे स्वच्छन्दं विहरति तथैव धर्मोऽपि तस्मिन् देशे स्वच्छन्दं विहरति स्म, धर्मस्तस्मिन् देशे स्वपराकाष्ठायामासीदिति भावः; मरुदु०—मरुता=वायुना उद्धूयमानानि=सञ्चाल्यमानानि यानि चमरीणां=मृगविशेषाणां बालव्यजनानि=चामराणि एव व्यजनानि तेषां शतैः धवलिताः=श्वेतीभूताः प्रान्ताः=प्रान्तभागाः यस्य सः [देशः] सुरराज्यस्य=स्वर्गस्य मरुत्सु=देवेषु, उद्धूयमान······प्रान्तः एकदेशः=एकभागः; देशे इतस्ततः चरन्तीनां चमरीणां पुच्छानि वायुना उद्धूयन्ते स्म, स्वर्गे च देवानामग्रे चामराणि उद्धूयन्ते इति भावः; ज्वलन्०—ज्वलन्तः=दीप्यमानाः ये मखशिखिनः=यज्ञाग्नयः तेषां सहस्रैः दीप्यमानाः=प्रकाश्यमानाः दशदिगन्ताः=दिशाप्रान्ताः यस्मिन् सः [देशः] कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य शिबिरसन्निवेशः=निवेशनस्थानम् इव सत्ययुगवत् तस्मिन् देशे धर्म-कर्माणि यज्ञादीनि भवन्ति स्मेति भावः, शिबिरेऽपि रात्रौ अग्निर्ज्वलति, पद्मासन०—पद्मासनम्=आसनभेदः ['वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा, दक्षस्योपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् । अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेद्, एतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ।' हठयोगप्रदीपिका] तस्मिन् स्थिताः ये ब्रह्मर्षयः ब्राह्मणा ऋषयः उत्तमद्विजाः इत्यर्थः, तेषां ध्यानेन=चिन्तनेन आधीयमानः=जन्यमानः सकलस्य=समग्रस्य अकुशलस्य=अमङ्गलस्य प्रशमः=शान्तिः निराकरणमित्यर्थः यस्मिन् सः [देशः], ब्रह्मलोकस्य स्रष्टुः=जगतः पद्मं=कमलम् एव आसनं तस्मिन् स्थितः=उपविष्टः ब्रह्मा चासौ ऋषिश्चेति ब्रह्मर्षिः तस्य ध्यानेन आधीयमानः सकलाकुशलप्रशमो

हिन्दी—फटकती थीं, निरन्तर उठ रही वेद-ध्वनि से बहरी बना दी गईं-जैसी ईतियाँ (आपत्तियाँ) भाग गई थीं, और जहाँ धर्म के शासन से हार खाया हुआ जैसा दुर्दैव कुछ नहीं कर सकता था।

इस प्रकार से उस (श्रीकण्ठ देश) में थानेसर (स्थाण्वीश्वर) नाम का एक देश-विशेष था, जो अनेक उद्यानों के सुन्दर पुष्पों की गन्ध के सौरभ से रमणीय बना हुआ ऐसा प्रतीत होता था मानो जगत् की अनेक रमणियों और सुन्दर पुष्पों की गन्ध की सौरभों से रमणीय यौवनारम्भ हो, जो कुंकुम (-भूमि) के मर्दन से पीली बनी हुई हजारों महिषियों (भैंसों) से शोभित हुआ ऐसा लगता था मानो धर्म [रूपी राजा] की कुंकुम लेप से पीली बनी हजारों महिषियों [पटरानियों] से शोभित अन्तःपुर का स्थान हो; जो मरुत् [वायु] से हिलाये जा रहे चमरी गायों के सैकड़ों [पूँछों के] बालों के व्यजनों से श्वेत बने प्रान्तभागों—सैकड़ों चामरों से श्वेत बना प्रान्तवाला स्वर्ग का एक भाग हो, जो जल रही हजारों यज्ञाग्नियों से चमक रहे दश दिगन्तों वाला ऐसा प्रतीत होता था मानो सत्ययुग के पड़ाव का स्थान हो, जो पद्मासन बाँधे बैठे हुए ब्रह्मर्षियों के ध्यान से नाश किये जा रहे सकल अमंगलों वाला ऐसा लगता था मानो पद्म (विष्णु-नाभि-कमल)—रूपी आसन पर बैठे ब्रह्मा-रूपी ऋषि के ध्यान से नाश किये जा रहे सकल अमंगलों वाला ब्रह्मलोक का अवतार हो, जो कलकल शब्द करती

कुशलप्रशमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, कलकलमुखरमहावाहिनीशतसङ्कुलो विपक्ष इवोत्तरकुरूणाम्, ईश्वर-मार्गणसन्तापानभिज्ञसकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमत्तमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामाभिहार इव कुबेरनगरस्य, स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेषः ।

यस्तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः, सङ्गीतशालेति लासकैः; यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्ता-

---

टीका—यस्मिन् सः प्रथमः=आदिमः अवतारः=अवतरणम् इव देशे उत्तमद्विजाः मन्त्रजपानुष्ठानैः अमङ्गलम् अपाकुर्वन्ति स्म, ब्रह्मापि जगदमङ्गलं निवारयतीत्यस्माभिः पठितमेव प्रथमोच्छ्वासे—'त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीड-धारिणेव दक्षिणेन इति; कलकल०—कलकलेन=कोलाहलेन मुखराणि=शब्दायमानानि यानि महावाहिनीनां=महासेनानां शतानि तैः सङ्कुलः=आकीर्णः ['सङ्कीर्णे सङ्कुलाकीर्णे' इत्यमरः] (देशः) उत्तर-कुरूणां=उत्तर-कुरुदेशस्य कलकलमुखराणां महावाहिनीनां शतैः सङ्कुलः विपक्षः=शत्रुः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, ईश्वर०—ईश्वरस्य=राज्ञः मार्गणम्=याचनं कराणामिति शेषः, राजकर्तृकनानाकरादानमित्यर्थः, तेन यः सन्तापः=दुःखं तस्य अनभिज्ञाः=अनुभवशून्याः सकलाः जनाः यस्मिन् सः (देशः) अत एव त्रिपुरस्य=त्रयाणां पुराणां समाहारः त्रिपुरं मयराक्षस-निर्मितं पुरत्रयं तस्य विजिगीषुः=विजेतुमिच्छुः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् त्रिपुरं हि ईश्वरस्य=शिवस्य मार्गणैः=बाणैः सन्तापस्य अनभिज्ञाः सकलजनाः यस्मिन् तथाभूतं नासीत् अपितु सन्तापाभिज्ञाः एव जनाः तत्र आसन् अत एव देशे तद्विजिगीषुत्वमुत्प्रेक्ष्यते । अथवा शङ्करानुसारेण विजिगीषु-शब्दस्यात्र विजेता इत्यर्थः त्रिपुरविजेता=शिवः स ईश्वरः ......जनः अर्थात् ईश्वरस्य=स्वस्येत्यर्थः मार्गणैः=बाणैः सन्तापस्य अनभिज्ञाः जनाः=भक्तजनाः यस्य तथा-भूतः । स हि स्वजनेषु न मार्गणतापमापातयतीत्याशयः प्रतीयते; सुधा०—सुधारसेन=लेप-द्रवेण ['सुधालेपेऽमृतं स्नुही' इत्यमरः] अन्यत्र अमृतरसेन सिक्तानि=लिप्तानि अथ च अभ्युक्षितानि यानि धवलानि=श्वेतानि गृहाणि तेषां पङ्क्तिभिः=श्रेणीभिः पाण्डुरः=श्वेतः, चन्द्रलोकस्य प्रतिनिधिः=प्रतिकृतिः स्थानापन्नः इत्यर्थः, मधु०—मधु=मदिरा तेन मत्ताः=मदोद्धताः याः मत्तकाशिन्यः=वरवर्णिन्यः गुणैः उत्कृष्टाः स्त्रियः इत्यर्थः ['वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी' इत्यमरः] अन्यत्र यक्षिण्यः तासां भूषण-रवेण=आभरण-झणत्कारेण भरितं=पूरित भुवनं=लोकः यस्मिन् सः कुबेरनगरस्य=अलकापुर्याः नामाभिहारः=नाम अभिहरति=अपनयतीति [नामन् $+\sqrt{}$हृ$+$अण्] नामापहारी पर्यायः नामान्तरम् इति यावत्, स्थाण्वीश्वरः आख्या=नाम यस्य सः जनपदविशेषः श्रीकण्ठदेशस्य प्रदेश-विशेषः ।

'यः स्थाण्वीश्वरो देशः अगृह्यत' इत्यस्ति वाक्यम्; मुनिभिः=सिद्धपुरुषैः तपसः=तपस्यायाः वनम् अगृह्यतेति क्रिया सर्वत्र योज्या, प्रदेशस्य निर्विघ्न-तपःसाधनत्वात्; वेश्याभिः=वाराङ्गनाभिः कामस्य=मदनस्य मदनोपभोगस्ये-त्यर्थः, आयतनम्=गृहम् इति अगृह्यत, लासकैः=नटैः सङ्गीत-शालेति लोकानां सङ्गीतप्रियत्वात्; शत्रुभिः=अरिभिः यमनगरं=यमपुरम् इति अर्थात् स देशस्तथा सुरक्षित आसीत् यत् तत्राक्रमणे शत्रूणां मृत्युः निश्चितः

टिप्पणी—उत्तरकुरूणाम्—उत्तरकुरु मेरु के पास एक द्वीप है, जिसमें बहुत सी नदियाँ हैं; देखिए महाभा—'दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे । उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः [भीष्म प० ७।२]

हिन्दी—हुई सैकड़ों बड़ी-बड़ी वाहिनियों (सेनाओं) से भरा हुआ ऐसा लगता था मानो कलकल निनाद करती हुई बड़ी बड़ी वाहिनियों-नदियों-से पूर्ण उत्तर कुरुदेश का शत्रु हो, जो ईश्वर [राजा] के कर सम्बन्धी मार्गणों (मांगों) के सन्ताप से अनभिज्ञ (प्रजा) जनों वाला ऐसा लगता था मानो ईश्वर [शिव] के मार्गणों [बाणों] के संताप से अनभिज्ञ (भक्त) जनों वाला त्रिपुर विजेता [शिव] हो, जो सुधारस (चूने) से लिपे धवल गृह-पंक्तियों से श्वेत बना हुआ ऐसा लगता था मानो सुधारस (अमृत) से सींचे धवल गृहपंक्तियों से श्वेत बना चन्द्रलोक का स्थानापन्न हो, जो मदिरा से मत्त हुई सुन्दरियों के आभूषणों की झनझनाहट से सकल भुवन को भरे हुए ऐसा लगता था मानो मदिरा से मत्त हुई यक्षिणियों के आभूषणों की झनझनाहट से भरा हुआ कुबेर नगर का पर्यायवाची हो ।

जो मुनियों द्वारा तपोवन, वेश्याओं द्वारा कामोपभोग-गृह, नर्तकों द्वारा संगीतशाला, शत्रुओं द्वारा यम का नगर, भिक्षुओं द्वारा चिंतामणियों की स्थली, शस्त्र से आजीविका कमाने वालों द्वारा वीर-भूमि, विद्यार्थियों द्वारा

मणिभूमिरित्यर्थिभिः, वीरक्षेत्रमिति शस्त्रोपजीविभिः, गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः, गन्धर्वनगरमिति गायनैः, विश्व-कर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः, लाभभूमिरिति वैदेहकैः, द्यूतस्थानमिति बन्दिभिः साधुसमागमः इति सद्भिः, वज्र-पञ्जरमिति शरणागतैः, विटगोष्ठीति विदग्धैः, सुकृतपरिणाम इति पथिकैः, असुरविवरमिति वातिकैः, शाक्याश्रम इति शमिभिः, अप्सरःपुरमिति कामिभिः महोत्सवसमाज इति चारणैः, वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत ।

यत्र च मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरागिण्यश्च, धवलद्विजशुचिवदना मदिरा-

---

टीका—अर्थिभिः=याचकैः चिन्तामणीनां=मणिविशेषाणां भूमिः=धरा इति यथा चिन्तामणिः सर्वमनोरथान् पूरयति तथैवासौ देशो याचकानां मनोरथपूरक आसीत् इत्यर्थः, शस्त्रैः=आयुधैः उपजीवन्ति=जीविकां कुर्वन्तीति तथोक्तैः युद्धोपजीविभिः वीराणां=शूराणां क्षेत्रम्=भूमिरिति । स हि देशो वीरभूमिरासीदित्यर्थः, विद्यार्थिभिः=छात्रैः गुरुकुलम्=शिक्षा-संस्थानम् इति; गायनैः=गायकैः गन्धर्वाणां=किन्नराणां नगरम् इति, देशस्य गानविद्या-केन्द्रत्वात्; विज्ञानिभिः=शिल्पिभिः चतुःषष्टिकला-विद्भिरित्यर्थः ['मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्प-शास्त्रयोः' इत्यमरः] विश्वकर्मा=देवतानां शिल्पी तस्य मन्दिरम्=गृहम् वैदेहकैः=वणिग्भिः ['वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वणिजो वणिक्' इत्यमरः] लाभस्य=धनप्राप्तेः भूमिः=स्थानम् इति देशस्य सम्पन्नत्वात्; बन्दिभिः=स्तुतिपाठकैः द्यूतस्य=दुरोदरस्य स्थानं=गृहम् द्यूतशालेत्यर्थः, द्यूतशालायां हि बहुधनं लभ्यते नाश्यते वा, धनलाभे बन्दिनः प्रचुर-पारितोषिकं लभन्ते स्मेत्यर्थः; सद्भिः=सज्जनैः साधूनां=सत्पुरुषाणां समागमः=सङ्गमः सम्मेलनमित्यर्थः, शरणम्=आश्रयम् आगतैः वज्रपञ्जरम्=वज्रनिर्मितपञ्जरम् शत्रुभ्यस्तत्र भीतेरभावात्, विदग्धैः=तीव्रबुद्धिभिः वाग्विलासिभिरित्यर्थः विटानां=विषयीणां कामासक्तानामित्यर्थः, गोष्ठी=सभा; पथिकैः=अध्वगैः सुकृतानां=पूर्वजन्मकृतपुण्यानां परिणामः=फलम्, यात्रिणो हि यथाभिलषितं तत्र प्राप्नुवन्ति स्म यथाभिलषितप्राप्तिश्च पुण्यैरेव जायते, वातिकैः=शङ्करानुसारेण 'विवरव्यसनिभिराचार्यैः' अथवा वातात् आगतः इति [वात्+ठञ्] वातिकः, वातविकारजनितोन्मादी उन्मत्तः धनोन्मादी धनगृध्नुरित्यर्थः, तैः असुरविवरम्=असुरकृतच्छिद्रम् शमिभिः=शमवद्भिः शान्तीच्छुकैरित्यर्थः शाक्याश्रमः=बौद्धमठः, कामिभिः=विषयिभिः अप्सरसां पुरम्=नगरम् अप्सरस्समानानां सुन्दरीणां तत्र सद्भावात्, चारणैः=देशान्तरभ्रमणात् जीवन्ति इति चारणाः=कुशीलवाः भ्रमणशीला नटाः=नर्तका इत्यर्थः तैः महोत्सवे=महापर्वणि समाजः=एकत्रीभूतो जनसमूहः, विप्रैः=ब्राह्मणैः वसुनः=धनस्य धारा=प्रवाहः ब्राह्मणेभ्यस्तत्र बहुधनदानात् । अत्र एकस्यैव वस्तुनः ग्रहीतृभेदेन विविधोल्लेखात् उल्लेखालङ्कारः ।

'यत्र च·········प्रमदाः' इत्यस्ति वाक्यम्, प्रत्येकं 'प्रमदा' इत्यस्य विशेषणम्, अपि च विशेषण-युगले विरोधा-भासः । यत्र स्थाण्वीश्वरे, मातङ्गान्=चण्डालान् ['चण्डाल-प्लव-मातङ्ग-दिवाकीर्ति-जनङ्गमाः' इत्यमरः] गच्छन्ति=अभिगच्छन्ति तैः सह संभोगं कुर्वन्तीति तथोक्ताः, अथ च शीलवत्यः=सद्वृत्ताः मतङ्गगामित्वं शीलत्वेन विरुध्यते, मातङ्गः=गजः तद्वत् गच्छन्तीति गजगामिन्यः इत्यर्थः इति विरोधपरिहारः, गौर्यः=पार्वत्यः विगतः भवः=महादेवः यस्मात् तस्मिन् रताः=आसक्ताः अथवा विगतं भावे रतं यासां ताः, पार्वत्यः महादेवाभावे च रताः इति विरोधः गौर्यः=गौरवर्णाः अथ च सम्पद्भोगरताः इति तत्परिहारः, श्यामाः=श्यामवर्णाः अथ च पद्मवत् रागः=लालिमा आसामस्तीति, श्यामाः कथं रक्तवर्णाः इति विरोधः अथवा श्यामाः=राज्यः अथ च

हिन्दी—गुरुकुल, गायकों द्वारा गन्धर्व नगर, शिल्पियों द्वारा विश्वकर्मा का घर, बनियों द्वारा लाभ का स्थान, स्तुति-पाठकों द्वारा द्यूत-स्थान, सज्जनों द्वारा साधुसमागम, शरणागतों द्वारा वज्र का पिञ्जरा, वाग्विलासियों द्वारा कामियों की गोष्ठी, यात्रियों द्वारा पुण्यों का फल, धन-लोभियों द्वारा असुर-विवर, शान्ति चाहने वालों द्वारा बौद्धमठ, कामियों द्वारा अप्सराओं का नगर, घुमक्कड़ भीड़ मण्डलों द्वारा त्योहार पर एकत्रित जनसमाज, और ब्राह्मणों द्वारा धन की सरिता समझा जाता था। जहाँ की प्रमदायें मातङ्गगामिनी (मातङ्गों=चण्डालों के साथ गमन करने वाली होती हुई) (भी) सच्चरित्र थीं—नहीं, नहीं मातङ्गगामिनी (मातङ्ग-गज-की-सी चाल चलने वाली) और सच्चरित्र थीं, गौरी (पार्वती) होती हुई (भी) विभव-रत (भव=महादेव के स्मरण करने वाली) नहीं थीं—नहीं, नहीं, गौरी (गौरवर्ण की) और विभव (ऐश्वर्य) में रत (आनन्द लेने वाली) थीं, श्यामा (काली) होती हुई (भी) पद्मराग (पद्मों-कमलों की लाली) लिए हुए थीं, नहीं, नहीं, श्यामा (सुन्दरी) और पद्मरागों पद्मरागों (पद्मरागमणियों को

मोदिश्वसनाश्च, चन्द्रकान्तवपुषः शिरीषकोमलाङ्ग्यश्च अभुजङ्गगम्याः कञ्चुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्र-मध्यकलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोज्ज्वलरागाश्च, अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः ।

टीका—पद्मेषु=कमलेषु रागिण्य इति विरोधः, रात्रौ पद्मविकासाभावात्, श्यामाः=सुन्दर्यः । तदुक्तं—'शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।' अथ च पद्मरागाः=शोणरत्नानि आसां सन्तीति पद्मरागमणिभूषिता इति तत्परिहारः; धवलाः=शुद्धाः ये द्विजाः=ब्राह्मणाः तेषां शुचि=शुद्धं यद् वदनं=मुखं तद्वद् वदनं यासां ताः ब्राह्मणमुखवत् शुद्धमुखा इत्यर्थः, अथ च मदिरायाः=सुरायाः आमोदः=गन्धः अस्य अस्तीति ० मोदि श्वसनं=श्वासः निःश्वासः इत्यर्थः यासां ताः ब्राह्मणमुखवत् तन्मुख-शुचित्वं मदिरा-गन्धी निश्वासश्चेति विरोधः । मदिरायाः निषिद्धत्वात् विशेषतः ब्राह्मणानां कृते धवलाः=श्वेताः ये द्विजाः=दन्ताः तैः शुचि =श्वेतं वदनं मुखं यासां ताः । अथ च मदिरावत् आमोदि श्वसनं यासां ताः इत्यर्थः, विरोध-परिहारः, चन्द्रकान्तः =मणिविशेषः तद्वत् (कठोरं) वपुः=शरीरं यासां ताः । अथ च शिरीषम्=कोमलपुष्पविशेषः तद्वत् (कोमलं) अङ्गं शरीरं यासां ताः । अत्र शरीरस्य कठोरत्वकोमलत्वयोः विरोधः । चन्द्रवत्=शशिवत् कान्तं=सुन्दरं वपुः यासां ताः इत्यर्थे तत्परिहारः, न भुजङ्गैः=सर्पैः गम्याः=गन्तुमर्हाः । अथ च कञ्चुकिन्यः सर्पिण्यः, सर्पैः अगम्याः इति विरोधः । भुजङ्गाः=कामिनः लम्पटाः इत्यर्थः, तैः न गम्याः=अनुपसर्पणीयाः। अथ च कञ्चुकः=चोली स्तनांशुकमित्यर्थः, आसाम् अस्तीति कञ्चुकिन्यः इति तत्परिहारः; पृथुः=एतन्नामको राजविशेषः तस्य कलत्रं=स्त्री महिषीति यावत् तस्य श्रीः=लक्ष्मीः सम्पदित्यर्थः । इव श्रीः यासां ताः । अथ च दरिद्राणां=निर्धनानां मध्ये कलिताः =गणिताः याः खलु पृथुराजपत्नीवत् सम्पच्छालिन्यः ताः कथं दरिद्रमध्यगणिताः इति विरोधः । पृथुः=विशाल कलत्रं श्रोणिः नितम्बभाग इत्यर्थः [कलत्रं श्रोणि-भार्ययोः इत्यमरः] तस्य श्रीः=शोभा यासां ताः । अथ च दरिद्रं =क्षीणं कृशमित्यर्थः मध्यम्=उदरं, कटिभागः तेन कलिताः=शोभिताः इति तत्परिहारः; लावण्यं=लवणरस-वत्त्वम् आसामस्तीति तथोक्ताः, अथ च मधुरा=मिष्टा भाषा=वचनम् आसामस्तीति । अत्र लवणमधुररसयोः विरोधः, लावण्यं=सौन्दर्यं माधुर्यं=प्रियत्वमिति तत्परिहारः ['स्वादुप्रियौ तु मधुरौ' इत्यमरः] अप्रमत्ताः=अक्षीवाः मत्ततारहिताः इत्यर्थः, अथ च प्रसन्ना=मदिरा ['गन्धोत्तमा प्रसन्नेरा-कादम्बर्यः परिस्रुता । मदिरा कश्यमद्ये च' इत्यमरः] तया मदिरापानेनेत्यर्थः उज्ज्वलः=भासमानः रागः—मुखे लालिमा यासां ताः, अत्र अप्रमत्ताः मदिरापायिन्यश्चेति विरोधः, अप्रमत्ताः=कर्तव्येषु न प्रमादकारिण्यः न असमीक्ष्यकारिण्यः इत्यर्थः, अथ च प्रसन्नः= स्वच्छः उज्ज्वलः=दीप्यमानः रागः=वर्णः यासां ताः इति तत्परिहारः, न कौतुकं=विवाह-कङ्कणं यासां ताः, अथ च प्रौढाः=प्रौढवयोऽवस्थां प्राप्ताः, अकृतविवाहत्वे कथं प्रौढत्वमिति विरोधः; न कौतुकं=बालोचितकौतूहलम् अथवा प्रियसमागमविषयकम् औत्सुक्यं यासां ता इति तत्परिहारः ।

हिन्दी—धारण किए रहती थीं; धवल [शुद्ध] द्विजों [ब्राह्मणों] के मुख की तरह शुचि (शुद्ध) मुखवाली होती हुई (भी) मदिरा की गन्ध साँसों से छोड़ती थीं—नहीं, नहीं, धवल (श्वेत) द्विजों (दाँतों) से शुचि (श्वेत) मुखों वाली और मदिरा की सी गन्ध साँसों में रखे हुए थीं; चन्द्रकान्त (मणि-प्रस्तर) की तरह (कठोर) शरीर वाली होती हुई (भी) शिरीष पुष्प के समान कोमलाङ्गी थीं, नहीं, नहीं, चन्द्रकान्त [चन्द्रमा के सदृश सुन्दर] शरीर वाली और शिरीषपुष्प के समान कोमलाङ्गी थीं, अभुजंगगम्या भुजंगों—(सर्पों) की पहुँच से परे होती हुई (भी) कञ्चुकिनी (सर्पिणियाँ) थीं, नहीं, नहीं, अभुजंगगम्या (भुजङ्गों—लुच्चे-लफङ्गों) की पहुँच से परे और कञ्चुकिनी [चोली पहने रहती] थीं, पृथु (राजा) की कलत्र (पत्नी) की-सी श्री (धनसम्पत्ति) वाली होती हुई (भी) दरिद्रों (कंगालों) के मध्य कलित (गिनी जाने वाली) थीं—नहीं, नहीं, पृथु (विशाल) कलत्र (नितम्ब) की शोभा रखने वाली और दरिद्र (पतली) मध्य (कमर) से कलित (शोभित) थीं, लावण्यवती (नमकीन) होती हुई भी मधुर (मीठा) बोलती थीं—नहीं, नहीं, लावण्यवती (सुन्दरी) और मधुर (प्रिय) बोलने वाली थीं; अप्रमत्त (नशे से रहित) होती हुई (भी) प्रसन्ना (मदिरा) से चमकती हुई लाली (मुख पर) रखे हुई थीं—नहीं नहीं, अप्रमत्त (कार्यों में प्रमाद न करने वाली) और प्रसन्न (स्वच्छ) एवं देदीप्यमान वर्णवाली थीं और कौतुक (विवाहकंकण) से रहित होती हुई (भी) प्रौढ़ थीं—नहीं, नहीं, कौतुक (बालोचित औत्सुक्य) से रहित एवं प्रौढ़ थीं ।

यत्र च प्रमदानां चक्षुरेव सहजं मुण्डमालामण्डनं भारः कुवलयदलदामानि । अलकप्रतिबिम्बान्येव कपोलतलगतान्यक्लिष्टाः श्रवणावतंसाः पुनरुक्तानि तमालकिसलयानि । प्रियकथा एव सुभगाः कर्णालङ्कारा आडम्बरः कुण्डलानि । कपोला एव सततमालोककारका विभवो निशासु मणिप्रदीपाः । निःश्वासाकृष्टमधुकरकुलान्येव रमणीयं मुखावरणं कुलस्त्रीजनाचारो जालिका । वाण्येव मधुरा वीणा बाह्यविज्ञानं तन्त्रीताडनम् । हासा एवातिशयसुरभयः पटवासा निरर्थकाः कर्पूरपांसवः । अधरकान्तिविसर एवोज्ज्वलतरोऽङ्गरागो निर्गुणो लावण्यकलङ्कः कुङ्कुमपङ्कः । बाहव एव कोमलतमाः परिहासप्रहारवेत्रलता निष्प्रयोजनानि मृणालानि । यौवनोष्मस्वेदबिन्दव एव विदग्धाः

टीका—यत्र=स्थाण्वीश्वरे च प्रमदानां=कामिनीनां चक्षुः=नयनम् एव सहजं=स्वाभाविकम् मुण्डमाला=शिरोमाला तद्रूपं मण्डनम्=अलङ्करणं, कुवलयानाम्=नीलोत्पलानां यानि दलानि=पत्राणि तेषां दामानि=माला: भारः =भार-रूपः तासां चक्षूंषि कुवलयेभ्योऽपि नीलतराणि आसन्, अतः कुवलय-दल-मालानां नासीदावश्यकता । अलकानां=चूर्णकुन्तलानां प्रतिबिम्बानि=प्रतिच्छायाः एव कपोलतलेषु=गण्डस्थलेषु गतानि=पतितानि अक्लिष्टाः =हस्तादिना अपरामृष्टाः अक्षता इत्यर्थः, श्रवणयोः=कर्णयोः अवतंसाः=आभरणानि तमालस्य=वृक्षविशेषस्य किसलयानि=पल्लवानि पुनरुक्तानि=अपेक्षातिरिक्तानि व्यर्थानीत्यर्थः । प्रियाणां=स्वप्रियतमानां कथाः तत्सम्बन्धिनो वार्तालापाः इत्यर्थः । कर्णयोः=श्रोत्रयोः अलङ्काराः=आभूषणानि कुण्डलानि=कर्णवेष्टनानि आडम्बरः=प्रदर्शनमात्रम् व्यर्थानीत्यर्थः । कपोलाः (दीप्यमानानि) गण्डस्थलानि आलोकस्य=प्रकाशस्य कारकाः= जनकाः निशासु=रात्रिषु मणि-प्रदीपाः=मणिखचितदीपाः विभवः=ऐश्वर्यम् ऐश्वर्यप्रदर्शनमात्रमित्यर्थः । निःश्वासेन=निःश्वसितेन आकृष्टाः=समीपे आवर्जिताः इत्यर्थः ये मधुकराः=भ्रमराः तेषां कुलानि=समूहाः एव मुखस्य प्रावरणम्=अवगुण्ठनम् जालिका=अवगुण्ठन-सूक्ष्मवसनविशेषः कुलस्य=उच्चकुलस्य स्त्रीजनस्य= महिलासमाजस्य आचारः=प्रथानिर्वाहमात्रमित्यर्थः । वाणी=वाग् एव मधुरा वीणा=वादन-यन्त्रविशेषः तन्त्रीणां =वीणा-गुणानां ताडनम्=अङ्गुलीभिः आहननं वादनमित्यर्थः बाह्यं=बहिर्भवं विज्ञानं=कलाज्ञानम् । हासाः= हसितानि एव अतिशयेन=अत्यन्तं सुरभयः=सुगन्धयः पटवासाः=पटा वास्यन्ते एभिरिति [पट+√वास्+घञ् करणे] पिष्टाताः सुगन्धचूर्णविशेषा इत्यर्थः, कर्पूरस्य=घनसारस्य पांसवः=धूलयः निरर्थकाः=निष्प्रयोजनकाः । अधरस्य=अधरोष्ठस्य या कान्तिः=शोभा तस्याः विसरः=विस्तारः एव उज्ज्वलतरः=अतिशयेन उज्ज्वलः अङ्गरागः=शरीरे सुगन्धितलेपः निर्गुणः=निष्फलः कुङ्कुमस्य कश्मीरजस्य पङ्कः=द्रवः लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य कलङ्कः=लाञ्छनम् अर्थात्तासामधरकान्तिः कुङ्कुममतिशेते स्म । कोमलतमाः=अतिशयेन कोमलाः=बाहवः= भुजाः एव परिहासे=क्रीडायां यः प्रहारः=ताडनं तस्मै वेत्रलता=वेत्रयष्टिः मृणालानि=बिसानि निष्प्रयोजनानि =निरर्थकानि । यौवनस्य=तारुण्यस्य य उष्मा=तापः तेन स्वेद-बिन्दवः=घर्मजलकणाः एव विदग्धाः= नैपुण्यपूर्णाः सुन्दरा इत्यर्थः कुचयोः=स्तनयोः अलङ्कृतयः अलङ्करणानि हाराः=मौक्तिकस्रजः तु भाराः= भाररूपा एव । यत् विशालं=विस्तृतं स्फाटिकं स्फटिकसम्बन्धि यत् शिलातलं=शिला-पट्टं तद्वत् चतुरस्राः=चतस्रः अस्रयः कोणा आसाम् इति [चतुर्+अस्रि+अच् प्रत्ययेन निपातनात् 'सुप्रात०' पा० ५।४।१२०] श्रोण्यः=नितम्बाः

हिन्दी—और जहां प्रमदाओं की आँख ही स्वाभाविक शिरमाला का मंडन थी, कुवलय की पंखुड़ियों की माला तो भार थी; कपोलतल पर प्रतिबिम्बित बालों की लटें ही अछूते कर्णावतंस थीं, तमाल के किसलय तो पुनरुक्ति थे। प्रियतम-सम्बन्धी बातचीत ही सुन्दर कर्णालंकार थी, कुण्डल तो दिखावा थे, (देदीप्यमान) कपोल ही निरन्तर प्रकाश करने वाले थे, मणिजड़ित दीप तो ऐश्वर्य मात्र थे; साँसों से आकृष्ट भ्रमर-समूह ही सुन्दर मुखाच्छादन था, जाली तो कुलस्त्रियों की प्रथा थी, वाणी ही मधुर वीणा थी, तारों का बजाना तो बाहरी कला थी; हंसियाँ ही अतिशय सुगन्धित पटवासक (पाउडर) थीं, कपूर-रज तो बेकार थी; ओठों की फैली हुई छटा अत्युज्ज्वल अंगराग था, व्यर्थ का कुंकुमलेप सौन्दर्य का कलंक था; अतिकोमल भुजायें ही खिलवाड़ में मारने के लिए बेंत की छड़ियाँ थीं, मृणाल बेकार थे; यौवन की गर्मी से निकली पसीने की बूंदें ही सुन्दर कुचाभरण थीं, मोतियों की

कुचालङ्कृतयो हारास्तु भाराः । श्रोण्य एव विशाल[illegible] विश्रमकारणमनिमित्तं भवनमणिवेदिकाः । कमललोभनिलीनान्यलिकुलान्येव मुखराणि पदाभरणकानि निष्फलानीन्द्रनीलनूपुराणि । नूपुर-रवाहूता भवनकलहंसा एव समुचिताः सञ्चरणसहाया ऐश्वर्यप्रपञ्चाः परिजनाः ।

तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधानः, मेरुमय इव कल्याणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, वेदमय इवाकृत्रिमालापत्वे,

---

टीका—रागिणां=प्रेमिणां विश्रमस्य=विश्रान्तेः कारणम् भवनेषु=गृहेषु मणिवेदिकाः=मणिखचिताः [मध्यमपदलो०] वेदिका=वेद्यः अनिमित्तम्=अकारणम् । कमलस्य लोभः=प्राप्तीच्छा, कमलतुल्यं पादं कमल-मिति भ्रान्त्याऽवबुद्धय तद्विषयकलोभो भ्रमरेषु जातः इत्याशयः तेन निलीनानि=स्थितानि अलिकुलानि एव मुख-राणि=शब्दायमानानि पदाभरणकानि=चरणभूषणानि इन्द्रनीलानाम् इन्द्रनीलमणीनां नपुराणि=मञ्जीराणि निष्फलानि=व्यर्थानि । नूपुराणां रवेण=झणत्कारेण आहूताः=आकारिताः आकृष्टाः इत्यर्थः भवनानां=गृहाणां कलहंसाः=कादम्बाः एव सञ्चरणे=भ्रमणे सहायाः=सहचराः परिजनाः=भृत्यवर्गःऐश्वर्यस्य=वैभवस्य प्रपञ्चाः =विस्ताराः । उपरि सर्वत्र प्रसिद्धानाम् उपमानानां निष्फलत्वाभिधानात् प्रतीपालङ्कारः ।

'तत्र च······राजा पुष्पभूतिरिति नाम्ना बभूव' इत्यस्ति वाक्यम् । साक्षात्=प्रत्यक्षं सहस्रम् अक्षीणि यस्य सः इन्द्रः इत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । सर्वे च वर्णाः=हरितपीतादयः तान् धरतीति । अथ च सर्वे च ते वर्णाः=ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः तान् धरति पालयतीति तथोक्तः धनुः=चापं दधानः=बिभ्राणः, मेरुः=सुमेरुपर्वतः स एवेति तन्मयः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कल्याणी=शुभा प्रजानां कृते मङ्गलकरीत्यर्थः प्रकृतिः स्वभावः यस्य अन्यत्र कल्याणं= सुवर्णं ['कल्याणं हेम्नि मङ्गले' इति मेदिनी] प्रकृतिः=योनिः मूलमित्यर्थः यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मिन्, मेरुर्हि सुवर्णमयो भवति ['मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रिः रत्नसानुः सुरालयः' इत्यमरः] मन्दरः मन्दराचलः एव मन्दरमय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लक्ष्म्याः=लक्ष्मीदेव्याः समाकर्षणे समुद्राद् बहिः निस्सारणे इत्यर्थः अथ च लक्ष्म्याः=धनसम्पत्त्याः समाकर्षणे=शत्रुभ्यः आत्मानं प्रति आनयने, जलनिधिः=समुद्रः तन्मयः इव मर्यादायाम्=तटसीमायाम् । अथ च न्याय्यमार्गस्थितौ, आकाशमय इव) शब्दस्य=गुणविशेषस्य प्रादुर्भावे=उत्पत्तौ, शब्दो हि आकाशगुणः समवायेन आकाशे उत्पद्यते । तदुक्तं न्यायशास्त्रे 'शब्दगुणकमाकाशम्' इति । अथ च शब्दस्य=नाम्न यशसः इत्यर्थः, प्रादुर्भावे =प्रसरणे विस्तारे इत्यर्थः शशिमयः=चन्द्रमयः इव कलानां षोडशांशानाम् अथ च चतुःषष्ठि-गीतवाद्यादि= शिल्पानाम् सङ्ग्रहणे=एकत्रीकरणे वेदः एव वेदमयः इव अकृत्रिमाः=अकृतकाः न केनापि निर्मिताः नित्याः इत्यर्थः आलापाः शब्दाः अथ च अकृत्रिमः=न मिथ्या सत्यः इत्यर्थः आलापः=वचनं यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मिन्, धरणिः

हिन्दी—लड़ें तो भार थीं, स्फटिक शिला-तल की तरह चौकोर नितम्ब ही प्रेमियों के लिए विश्राम के साधन थे, घर की मणि-जड़ित वेदियाँ तो निष्कारण थीं । कमल के लोभ में बैठे भ्रमर-समूह ही झुनझुनाते पादाभरण थे, इन्द्रनील मणियों के नूपुर तो निष्फल थे, नूपुरों की ध्वनि से बुलाये हुए घरेलू कलहंस ही घूमने में उचित सहायक थे, भृत्यवर्ग तो ऐश्वर्य का विस्तार मात्र था ।

वहाँ पुष्पभूति नाम का राजा हुआ जो सभी [ब्राह्मणादि] वर्णों की रक्षा करने वाले धनुष को धारण करता हुआ ऐसा लगता था मानो सभी वर्णों [रंगों] को रखे हुए धनुष को धारण करता हुआ साक्षात् इन्द्र हो, जो (जन) कल्याण का स्वभाव रखने के कारण ऐसा लगता था मानो कल्याण (सुवर्ण) से उत्पन्न होने के कारण सुमेरुपर्वतमय हो, जो (शत्रु राजाओं) की लक्ष्मी (धनसंपत्ति) को खींचने में ऐसा लगता था मानो (समुद्र से) लक्ष्मी (देवी) को बाहर निकालने में मन्दराचल हो, जो मर्यादा [परंपरा पालन] में ऐसा प्रतीत होता था मानो मर्यादा (तीर-सीमा-पालन) में समुद्रमय हो, जो शब्द (नाम=यश) के प्रादुर्भाव (प्रसार) में ऐसा लगता था मानों शब्द (गुणविशेष) के प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) में आकाशमय हो, जो कलाओं (गीतवाद्यादि) का संग्रह करने में ऐसा लगता था मानो कलाओं (सोलह अंशों) का संग्रह करने में चन्द्रमय हो, जो अकृत्रिम (सत्य) वचन बोलने के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो अकृत्रिम (नित्य) वचन

धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव सर्वपार्थिवरजोविकारहरणे, गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुयात्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूरः शूरसेनाक्रमणे, दक्षः प्रजाकर्मणि, सर्वादिराजतेजःपुञ्जनिर्मित इव राजा पुष्पभूतिरिति नाम्ना बभूव।

पृथुना गौरियं कृतेति यः स्पर्धमान इव महीं महिषीं चकार। निसर्गस्वैरिणी स्वरुच्यनुरोधिनी च भवति हि महतां

टीका—पृथिवी तन्मयः इवालोकानां=जनानां (स्वतलोपरि) या धृतिः=धारणं तस्याः करणे अथ च लोकानां =प्रजानां या धृतिः=धारणं पालनमित्यर्थः तत्करणे, पवनः=वायुः तन्मयः इव सर्वं च तत् पार्थिवं=पृथिव्याः इदं पृथिवीसम्बन्धीत्यर्थः यत् रजः=धूलिः तस्य विकाराणां=विकृतीनां हरणे=अपनयने। अथ च सर्वे च ते पार्थिवाः =राजानः ['राजा राट् पार्थिव क्ष्माभृत्' इत्यमरः] तेषां ये रजसः रजोगुणस्य विकाराः=कार्याणि तेषां हरणे= अपाकरणे, पुष्पभूतिर्हि सर्वानिव राज्ञः तेषां काम-क्रोधादीन् रजोविकारान् नियमयति स्मेत्यर्थः, उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, सा च श्लिष्टा। वचसि=वाण्यां गुरुः महान्। अथ च बृहस्पतिः। गुरुतः आरभ्य दक्षपर्यन्तं सर्वे शब्दाः विशेषणानि विशेष्याण्यपि च सन्तीति ध्येयम्, उरसि=वक्षसि पृथुः=विशालः अथ च राजविशेषः, मनसि=मानसे विशालः= विस्तीर्णः विस्तृतबुद्धिरित्यर्थः अथ च विशालः=एतन्नामा बोधिसत्त्वविशेषः, तपसि=तपस्यायां जनकः=जनयिता तपोऽनुष्ठातेत्यर्थः। अथ च मिथिलेशः यः स्वब्रह्मज्ञाने तपसि च परम-प्रसिद्धः आसीत्, तेजसि वर्चसि सुयात्रः= सु=सुष्ठु यात्राः=अभियानानि यस्य सः, अथ च एतन्नामा कश्चिद् राजा। रहसि=रहस्ये सु शोभनः मन्त्रः= कर्तव्यावधारणं यस्य सः सुनीतिमान् इत्यर्थः। अथ च सुमन्त्रः=दशरथस्य सारथिः, सदसि सभायां बुधः=विज्ञः विद्वानित्यर्थः। अथ च चन्द्रपुत्रः, यशसि=कीर्तौ अर्जुनः=धवलः यशसो धवलत्वेन वर्णनात् अथ च पाण्डवविशेषः, धनुषि =चापे भीष्मः=भयङ्करः अथ च भीष्मपितामहः वपुषि=शरीरे निषधः=कठिनः। अथ च नलनृपस्य पिता अथवा पर्वतविशेषः समरे=युद्धे शत्रुघ्नः=शत्रून् हन्तीति [शत्रु+√हन्+कः] शत्रुमर्द्दनः इत्यर्थः। अथ रामचन्द्रस्य भ्रातृविशेषः, शूराणां=वीराणां सेनासु आक्रमणे शूरः=शौर्यपूर्णः, अथ च यदुवंशस्य राजविशेषः, प्रजानां= लोकानां कर्मणि=कार्ये प्रजाः प्रति स्वकर्तव्यानुष्ठाने इत्यर्थः दक्षः=निपुणः अथ च दक्षः=प्रजापतिविशेषः सर्व- विधानां प्रजानां जीवानामिति यावत् सृष्टिकार्यं प्रजापतिषु निहितमासीत्। अत्रैकस्य विषयभेदेन विविधोल्लेखात् उल्लेखः। सर्वे च ते आदि-राजाः आदिकालीनाः भूपतयः पृथ्वादयः तेषां तेजःपुञ्जेन=वर्चस्वसमूहेन इव निर्मितः पुष्पभूतिः इति नाम्ना=अभिधानेन राजा बभूव=अभवत्। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

पृथुना=एतन्नामकेन आदिराजेन इयं पृथिवी गौः=गौरूपधरेत्यर्थः कृता इति। यः पुष्पभूतिः स्पर्धमानः= पृथुना सह स्पर्धां कुर्वाणः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् महीं पृथिवीं महिषीं कृताभिषेकां पत्नीम् अथ च महिषस्त्रीम् चकार= कृतवान्। निसर्गेण=प्रकृत्या स्वैरिणी=स्वच्छन्दगामिनी स्वां=स्वकीयां रुचिम् इच्छाम् अनुरुणद्धि=अनुसर-

हिन्दी—(शब्द) होने के कारण वेदमय हो, जो लोगों का धारण (पालन) करने में ऐसा प्रतीत होता था मानो लोगों को (अपने ऊपर) धारण करने में धरणीमय हो, जो सभी पार्थिवों [राजाओं] रजोविकारों (काम- क्रोधादि) को हटाने अर्थात् कुचल डालने में ऐसा लगता था मानो सभी पार्थिव रज (मिट्टी की धूलि) उड़ा देने में पवनमय हो, जो वाणी में गुरु (भारी और बृहस्पति) था, वक्षस्थल में पृथु (विशाल और पृथु राजा) था, मन में विशाल [उदार और विशाल नामक राजा] था, तपस्या में जनक (तप करने वाला और जनक राजा) था, तेज में सुयात्र [खूब आक्रमण करने वाला और सुयात्र राजा] था, रहस्य की बातों में सुमन्त्र [अच्छी मंत्रणा करने वाला और दशरथ का सारथि] था, सभा में बुध [विद्वान् और चन्द्रमा का पुत्र] था, यश में अर्जुन [श्वेत और पाण्डव विशेष] था, धनुष में भीष्म [भयंकर और भीष्म पितामह] था, शरीर में निषध [कठिन और नल का पिता] था, युद्ध में शत्रुघ्न (शत्रुओं को मार देने वाला और राम-भ्राता) था, शूरों की सेनाओं पर आक्रमण करने में शूर (वीर और शूरसेन राजा) था, प्रजा के कार्य में दक्ष (निपुण और दक्ष प्रजापति) था और जो ऐसा लगता था मानो सभी आदिकालीन राजाओं के तेज-पुंज से निर्मित हो।

पृथु ने पृथिवी को गो बनाया था—इससे खार खाकर मानो जिस (पुष्पभूति) ने पृथिवी को महिषी (भैंस, पटरानी) बना दिया। बड़े लोगों की मति स्वभावतः स्वच्छन्दचारी और अपनी रुचि के अनुसार काम करने वाली होती है।

मतिः। यतस्तस्य [illegible] भगवति भक्तिसुलभे भुवनभृति भूतभावने भवच्छिदि भवे भूयसी भक्तिरभूत्। अकृतवृषभध्वजपूजाविधिर्न स्वप्नेऽप्याहारमकरोत्। अजम्, अजरम्, अमरगुरुम्, असुरपुररिपुम्, अपरिमितगणपतिम्, अचलदुहितृपतिम्, अखिलभुवनकृतचरणनतिम्, पशुपतिं प्रपन्नोऽन्यदेवताशून्यममन्यत त्रैलोक्यम्। भर्तृचित्तानुवर्तिन्यश्चानुजीविनां प्रकृतयः। तथा हि। गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशुः। ववुरस्य होमालवालविलीयमानबहलगुग्गुलुगन्धगर्भाः स्नपनक्षीरशीकरक्षोदक्षारिणो बिल्वपल्लवदामदलोद्वाहिनः पुण्यविषयेषु वायवः। शिवसपर्यासमुचितैरुपायनैः प्राभृतैश्च पौराः पादोपजीविनः सचिवा भुजबलनिर्जिताश्च करदीकृता महा-

---

टीका—तीति तथोक्ता महतां=महापुरुषाणाम् मतिः बुद्धिः। अनुपदिष्टा=अशिक्षिता सहजा=सहजाता स्वाभाविकीत्यर्थः। शैशवात्=बाल्यात् आरभ्य=प्रभृति अन्याश्च ताः देवताः=देवाः तासां विमुखी=पराङ्मुखी भक्त्यासुलभे=सुप्रापे भुवनानि=जगन्ति बिभर्ति=धारयतीति तथोक्ते भूतानि=जीवान् भावयति=उत्पादयतीति तथोक्ते भवं=जन्म पुनः पुनः जन्ममरणचक्रमित्यर्थः छिनत्ति=नाशयतीति तस्मिन् भवे=शिवे ['जन्म-हरौ भवौ' इत्यमरः] भूयसी=अतिशयेन बह्वी इति (बहु+ईयसुन्, ईलोपे भ्वादेशः] भक्तिः=आसक्तिः अभूत्=अभवत्। अकृत०—न कृतः=अनुष्ठितः वृषभध्वजस्य=शिवस्य पूजायाः=उपासनायाः विधिः=कर्तव्यं येन सः स्वप्ने अपि आहारम्=भोजनम् न अकरोत्=कृतवान्। अजम्=नित्यम्, अजरम्=जरारहितम् अमराणां=देवतानां गुरुम्=पूज्यमित्यर्थः असुरपुरस्य=त्रिपुरस्य रिपुम्=अरिम् अपरिमितानाम्=असंख्यानां गणानां=नन्दिप्रमुखानां पतिं=स्वामिनम्, अचलस्य=हिमालयस्य दुहिता=पुत्री पार्वतीत्यर्थः तस्याः पतिं=नाथम्, अखिलैः=सकलैः भुवनैः=लोकैः कृता अनुष्ठिता चरणयोः=पादयोः नतिः=नमनं यस्य तम्, पशूनां पतिं=शिवमित्यर्थः प्रपन्नः=प्राप्तः आश्रितः इत्यर्थः त्रैलोक्यम्=त्रीन् लोकान् स्वर्ग-मर्त्य-पातालान् अन्याभिः देवताभिः शून्यं=रहितम् अमन्यत=अवागच्छत्। भर्तुः=स्वामिनः पुष्पभूतेरित्यर्थः चित्तं=मनः अनुवर्तन्ते=अनुसरन्तीति तथोक्ताः अनुजीविनाम्=आश्रितानाम् प्रकृतयः=स्वभावाः। तथा चोक्तम्—यथा राजा तथा प्रजाः। खण्डपरशुः=खण्डयति शत्रून् इति खण्डः [अच्] तादृशः परशुः=कुठारः यस्य सः शिवः इत्यर्थः। ववुः=अवहन्। अस्य होमा०—होमस्य=हवनस्य आलवाले=आवापे अग्निकुण्डे इत्यर्थः विलीयमानः=द्रवन् यः बहुलः=प्रचुरः गन्धः=सौरभं स गर्भे=मध्ये येषां ते, स्नपन० स्नपनं=स्नानोपकरणं यत् क्षीरं=दुग्धं तस्य ये सीकराः=लघुबिन्दवः तेषां क्षोदान्=चूर्णसदृशकणान् क्षरन्ति=स्रावयन्तीति तथोक्ताः, बिल्वस्य=वृक्षविशेषस्य पल्लवानां=किसलयानां यानि दामानि=मालाः तासां दलानि=पत्राणि उद्वहन्ति=अपनयन्तीति तथोक्ताः पुण्याः=पवित्राश्च ते विषयाः देशाः स्थानानीत्यर्थः ['विषयो गोचरे देशे तथा जनपदेऽपि च' इति मेदिनी]

वायवः=पवनाः। शिव०—शिवस्य या सपर्या=पूजा तस्याः उचितैः=योग्यैः उपायनैः=उपहारैः प्राभृतैः=प्रकर्षेण आराधनार्थं प्रभोः आभ्रियते=ढौक्यते इति प्राभृतं प्रभुप्रसादनाय परप्रेषितं वस्त्विति यावत् तैः, पौराः=पुरवासिनो जनाः पादौ उपजीवन्तीति तथोक्ताः भृत्याः कर्मचारिणः इत्यर्थः सचिवाः=मन्त्रिणः भुजयोः=बाह्वोः बलेन=शक्त्या निर्जिताः=पराजिताः करं=राजस्वं ददतीति करदाः तथाभूताः कृताः महान्तः सामन्ताः अधीनीकृतभूपालाः सिषेविरे=सेवितवन्तः, तथाहि=उदाहरणार्थं यथा—कैलास०—कैलासस्य कूटवत्=

हिन्दी—क्योंकि बचपन से लेकर अन्य देवताओं से मुंह फेरे हुए उसकी भक्ति से सुलभ, भुवनों को धारण करने वाले प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, जन्म (का चक्र) मिटा देने वाले शिव पर बिना किसी के सिखाये भी बड़ी भारी स्वाभाविक भक्ति हो गई। शिवकी-पूजा-विधि किये विना स्वप्न में भी भोजन नहीं करता था। अनादि, अजर, देवों के भी देव, त्रिपुरारि, असंख्य गणों के स्वामी हिमालय की पुत्री के पति, अखिल भुवनों द्वारा वन्दित-चरण पशुपति की शरण गया हुआ वह तीनों लोकों को अन्य देवताओं से शून्य ही मानता था। अनुजीवी लोगों की प्रकृति स्वामी के चित्त के पीछे ही चला करती है। फिर तो घर-घर में भगवान् शंकर की पूजा चल पड़ी। इसके अग्नि कुण्ड में पिघलते हुए प्रचुर गुग्गल की गन्ध अपने भीतर रखे, (शिव को) स्नान कराने को दुग्ध के कणों की फुहारें बहाते, और बेल के पल्लवों की मालाओं की पंखुड़ियाँ उड़ाते हुए पवन पवित्र स्थानों में बह चले। शिव-पूजन के योग्य भेंटों और उपहारों से पुरवासी, कर्मचारी, मन्त्री और भुजबल से जीते एवं कर देने वाले बनाये हुए बड़े-बड़े सामन्त उस (पुष्पभूति) की सेवा में उपस्थित हुए। उदाहरणार्थ जैसे वे कैलास की चोटी की तरह श्वेत सोने के

सामन्तास्तं सिषेविरे । तथा हि कलासकूटधवलैः कनकपत्रलतालङ्कृतविषाणकोटिभिर्महाप्रमाणैः संध्याबलिवृषैः सौवर्णैश्च स्नपनकलशैरर्घभाजनैश्च धूपपात्रैश्च पुष्पपट्टैश्च मणियष्टिप्रदीपैश्च ब्रह्मसूत्रैश्च महार्हमाणिक्यखण्डखचितैश्च मुखकोषैः परितोषमस्य मनसि चक्रुः । अन्तःपुराण्यपि स्वयमारब्धबालेयतण्डुलकण्डनानि देवगृहोपलेपनलोहिततरकर-किसलयानि कुसुमग्रथनव्यग्रसमस्तपरिजनानि तस्याभिलषितमन्ववर्तन्त । तथा च परममाहेश्वरः स भूपालो लोकतः शुश्राव भुवि भगवन्तमपरमिव साक्षाद्दक्षमखमथनं दाक्षिणात्यं बहुविधविद्याप्रभावप्रख्यातैर्गुणैः शिष्यैरिवानेकसहस्र-संख्यैर्व्याप्तमर्त्यलोकं भैरवाचार्यनामानं महाशैवम् । उपनयन्ति हि हृदयमदृष्टमपि जनं शीलसंवादाः । यतः स राजा

टीका—शिखरवत् धवलैः=श्वेतैः कनकस्य=सुवर्णस्य पत्र-लताभिः=पत्रलताकारचिह्नैः पत्रभङ्गैरित्यर्थः अलङ्कृताः=भूषिताः विषाणयोः=शृङ्गयोः कोटिः=अग्रं येषां तैः महत्=विशालं प्रमाणं=परिमाणम् आकारः इत्यर्थः येषां तैः सन्ध्यायां=सायंकाले यः बलिः=पूजा ['सपर्या तपर्णं बलिः' इत्यमरः] तदर्थं वृषैः=वृषभैः सन्ध्याकालीनपूजावसरे हि वृषभाः शिवनिमित्तमुत्सृज्यन्ते, सुवर्णस्य इमाः इति (सुवर्ण+अण्) सौवर्णाः तैः स्नप-नार्थं=शिवं स्नपयितुं कलशाः तैः सौवर्णैः अर्घपात्रैः=शिवाय अर्घदानपात्रैः, सौवर्णैः धूपपात्रैः, पुष्प-पट्टैः 'यत्र वस्त्रेषु पुष्पाणि सूत्रैः क्रियन्ते स पुष्पपट्टः' इति शङ्करः तैः, मणियष्टिषु=मणिखचितदण्डेषु प्रदीपैः=दीपकैः, ब्रह्मसूत्रैः परिधापयितुं यज्ञोपवीतैः, महान् अर्हः=मूल्यं येषां तानि माणिक्यानि=मणयः तेषां खण्डैः=शकलैः, खचितैः=अन्तर्ग्रथितैः मुखकोषाः=मुखयुक्ताः कोषाः [मध्यमपदलो०] मुखस्थानीयच्छिद्रान्वितानि शिवलिङ्ग-च्छादनवस्त्राणीत्यर्थः तैः तेषामुपहार-रूपेण प्रदानैरित्यर्थः अस्य=राज्ञः पुष्पभूतेः मनसि सन्तोषं=प्रसन्नतां चक्रुः=कृतवन्तः । अन्तःपुरा०—स्वयम् आरब्धं=प्रक्रान्तं बालेयाः=बलये हिताः इति [बलि+ढञ् 'छदिरुपधि-बलेर्ढञ्' पा० ५।१।१३] शिवार्थ-बलिदानोपयोगिनः इत्यर्थः ये तण्डुलाः तेषां कण्डनं=शूर्पद्वारा शोधनं यैः तानि देवगृहस्य=शिवालयस्य यत् उपलेपनं=गोमयेन लेपनं तेन अतिशयेन लोहिताः लोहितकाः कराः=हस्ता किसलयाः=पल्लवाः इवेत्युपमिततत्पु० येषां तानि, कुसुमानां ग्रथने=माला-ग्रन्थने इत्यर्थः व्यग्रः=व्यापृतः समस्तः=निखिलः परिजनः=भृत्यवर्गः येषां तानि अन्तःपुराणि=महिष्यः इत्यर्थः तस्य राज्ञा अभिलषितम्= इच्छाम् अन्ववर्तन्त अन्वगच्छन् । महेश्वरस्य=शिवस्य अयम् इति माहेश्वरः (अण्) शिवोपासकः महांश्चासौ माहेश्वरः=भूपालः=पुष्पभूतिः लोकतः=लोकेभ्यः शुश्राव=श्रुतवान् भुवि=लोके भगवन्तम् अपर=द्वितीय-मिवेत्युत्प्रेक्षायाम् । साक्षात्=प्रत्यक्षं दक्षस्य=दक्षप्रजापतेः मखं=यज्ञं मथ्नाति=विध्वंसयतीति तथोक्तः (ल्युट् कर्तरि) शिवमित्यर्थः दक्षिणस्यां दिशि भवः इति [दक्षिणा+त्यक्] दाक्षिणात्यम्, बह्व्यः=विधाः=प्रकाराः यासां ताः विद्याः=विज्ञानानि तासां प्रभावैः=बलैः प्रख्यातैः=प्रसिद्धैः अनेकसहस्राणि संख्या येषां तैः शिष्यैः=छात्रैः इवेत्युपमायाम् गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः व्याप्तः=आचितः मर्त्यलोकः=मनुष्यलोकः येन तम् भैरवाचार्य इति नाम यस्य तथाभूतम् महाशैवम्=महाशिवोपासकम् । शीलस्य=चरित्रस्य संवादाः=सादृश्यानि अदृष्टम्=अदृष्टिपथं नीतम् अपि जनं=व्यक्तिम् हृदयम् उपनयन्ति=प्रवेशयन्तीत्यर्थः [नीधातुः द्विकर्मकः] । श्रवणस्य

हिन्दी—पत्तों और बेलों से मढ़े सींगों के नोकों वाले, बड़ी-बड़ी आकृति के सायंकालीन (शिव-) पूजा में छोड़ दिये जाने वाले बैलों, सोने के (शिव को) नहलाने के कलशों, अर्घपात्रों, धूपदानों, फूल-काढ़े वस्त्रों, और खुले मुंह के शिवलिंगाच्छादन-वस्त्रों से उस (पुष्पभूति) का मन संतुष्ट कर बैठे । स्वयं पूजा के तण्डुलों को छाज से फटकते हुए, (गोबर से) शिवालय को लिपने से हाथों को लाल-लाल किए और सभी भृत्य-वर्ग को फूल गूंथने में लगाए हुए रानियाँ भी उसकी इच्छा के पीछे-पीछे चल पड़ीं और महान् महेश्वर-भक्त वह राजा लोगों से दक्षिण देश के भैरवाचार्य नामक महाशिवभक्त के सम्बन्ध में सुन बैठा जो मानो पृथिवी के साक्षात् दूसरे भगवान् शंकर थे, जो नाना विद्याओं के प्रभाव से विख्यात हजारों शिष्यों जैसे गुणों से मर्त्यलोक को व्याप्त किये हुए थे । चरित्र की समानतायें न देखे हुए व्यक्ति को भी हृदय में बिठा देती हैं । तभी तो राजा सुनते ही भैरवाचार्य के दूर रहते हुए भी उन पर दूसरे भगवान् शंकर पर जैसे बड़ी भारी भक्ति जमा बैठा और सर्वथा मनोरथों द्वारा भी उनके दर्शन चाहने लगा ।

श्रवणसमकालमेव दूरगतेऽपि गरीयसीं बबन्ध भक्तिम् । आचकाङ्क्ष च मनोरथैरप्यस्य सर्वथा दर्शनम् ।

अथ कदाचित्पर्यस्तेऽस्ताचलचुम्बिनि वासरेऽन्तःपुरवर्तिनं राजानमुपसृत्य प्रतीहारी विज्ञापितवती—'देव, द्वारि परिव्राडास्ते, कथयति च भैरवाचार्यवचनाद्देवमनुप्राप्तोऽस्मि' इति । राजा तु तच्छ्रुत्वा सादरम्—'क्वासौ आनयात्रैव । प्रवेशयैनम्' इति चाब्रवीत् । तथा चाकरोत्प्रतीहारी । न चिराच्च प्रविशन्तं प्रांशुमाजानुभुजम्, भैक्षक्षाममपि स्थूलास्थिभिरवयवैः पीवरमिवोपलक्ष्यमाणम्, पृथूत्तमाङ्गमुत्तुङ्गवलिभङ्गस्थपुटललाटम्, निर्मांसगण्डकूपकम्, मधुबिन्दुपिङ्गलपरिमण्डलाक्षम्, ईषदावक्रघोणम्, अतिप्रलम्बैककर्णपाशम्, अलाबुबीजविकटोन्नतदन्तपङ्क्तिम्, तुरगानूकश्लथा-

---

टीका—समः कालो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, श्रवण-क्षणे एवेत्यर्थः, द्वितीये=अपरे इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कपर्दः=जटाजूटः अस्यास्तीति तथोक्ते शिवे इत्यर्थः दूरगते=दूरस्थिते अपि गरीयसीम्=अतिशयेन गुर्वी भक्तिम्=पवित्रासक्तिम् बबन्ध=बद्धवान् कृतवानित्यर्थः । आचकाङ्क्ष=अभ्यलषत् च मनोरथैः=अभिलषितैः अपि किम्पुनः चक्षुर्भ्यामित्यर्थापत्तिः, अत्र मनोरथशब्दः साभिप्रायः । यदा कश्चित् कमपि द्रष्टुमिच्छति तदासौ रथं प्रयुङ्क्ते राज्ञा तं द्रष्टुं मनोरथो प्रयुक्तः । विशेष्यस्य साभिप्रायत्वादत्र परिकराङ्कुरोऽलङ्कारः ।

पर्यस्ते=परितः पतिते, परिणते इत्यर्थः अस्ताचलं चुम्बति=स्पृशतीति तथोक्ते वासरे=दिवसे अर्थात् सूर्ये अस्तं गच्छति सति, अन्तःपुरे अवरोधे वर्तते इति तथोक्तं राजानम् उपसृत्य=उपगम्य प्रतीहारी=द्वारपालिका विज्ञापितवती=निवेदितवती—द्वारि=द्वारे परिव्राट्=संन्यासी आस्ते=उपविष्टोऽस्तीत्यर्थः भैरवाचार्यस्य वचनात्=कथनात् आदेशादित्यर्थः देवं=महाराजं भवन्तमित्यर्थः अनुप्राप्तः=उपागतः । आनय अत्र एव प्रवेशय=प्रविष्टं कुरु इति अब्रवीत्=अवदत् । न चिरात्=शीघ्रमेव प्रविशन्तम्=प्रवेशं कुर्वन्तम् प्रांशुम्=दीर्घकायम् आजानु=जानुपर्यन्तं भुजौ यस्य तम्, भिक्षाणां समूहः भैक्षम् [अण्] तेन क्षामं=कृशम् अपि स्थूलानि=स्फीतानि अस्थीनि=कीकसानि येषां तैः अवयवैः=अङ्गैः पीवरं=स्थूलम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । उपलक्ष्यमाणम्=दृश्यमानम्, पृथु=विशालम् उत्तमाङ्गं=शिरो यस्य तम्, उत्तुङ्ग०—उत्तुङ्गेन=प्रलम्बेन बलिभङ्गेन=चर्मरेखाभिरित्यर्थः स्थपुटं=नतोन्नतं ['स्थपुटं तु नतोन्नतम्' इति क्षीरस्वामी] ललाटं=भालं यस्य तम्, निर्मांसः०—निर्मांसः मांसरहितः गण्डकूपः एव गण्डकूपकः अक्ष्णोरधोदेशः इति शङ्करः, अथवा गण्डस्य=कपोलस्य कूपः=गर्तो यस्य तम्, मधु=माक्षिकं तस्य बिन्दुवत् पिङ्गले=पीते परिमण्डले=गोलाकारे अक्षिणी=नयने यस्य तम्, ईषत्=किमपि यथा स्यात्तथा आवक्रा=भुग्ना घोणा=नासिका यस्य तम् ('घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः] अति०—अतिशयेन प्रलम्बः=लम्बाकारः कर्णपाशः=प्रशस्तः कर्णः यस्य तम् ['पाशः केशादिपूर्वः स्यात् तत्सङ्गे कर्णपूरकः सुकर्णः' च, इति मेदिनी], अलाबु०—अलाबुः=तुम्बी ['तुम्ब्यलाबुरुभे समे' इत्यमरः] तस्याः बीजवत् विकटाः कराला उन्नता=उच्चा च दन्तानां=दशनानां पङ्क्तिः यस्य तम्, तुरगा०—तुरगस्य=अश्वस्य यः अनूकः='अधस्तात् ओष्ठः' इति शङ्करः तद्वत् श्लथा=शिथिला अधरस्य=ओष्ठस्य लेखा यस्य तम् लम्ब०—लम्बेन

हिन्दी—इसके बाद एक बार अस्ताचल को चूमने वाले दिवस के ढल जाने पर रानियों के मध्य बैठे हुए महाराज के पास आकर प्रतिहारी ने निवेदन किया—'महाराज ! ड्योढ़ी पर एक संन्यासी खड़ा है और बोल रहा है कि मैं भैरवाचार्य के कहने पर महाराज के पास आया हूं' । यह सुनकर आदरपूर्वक राजा बोले—'कहाँ है वह । उसे यहीं लाओ; यहीं प्रविष्ट करो' । प्रतिहारी ने वैसा ही किया । थोड़ी देर में (राजा ने) प्रवेश करते हुए संन्यासी को देखा—जिसका कद ऊँचा था, भुजाएं घुटनों तक पहुँची हुई थीं, जो भीख (माँग कर निर्वाह करने) से दुबला-पतला होता हुआ भी मोटी-मोटी हड्डियों वाले अंगों से स्थूल-जैसा दिखलाई पड़ रहा था, जिसका सिर बड़ा था, भाल लंबी रेखाओं के कारण ऊंचा नीचा हो रखा था, गाल मांस न होने से पिचक गए थे, आँखें शहद की बिन्दु की तरह पीली और गोल थीं, नाक कुछ टेढ़ी-सी थी, एक कान अधिक लंबा था, तुमड़ी के बीजों की तरह दन्त पंक्तियाँ डरावनी और ऊँची थीं, अधर रेखा घोड़े के निचले ओठ की तरह लटकी हुई थी (एवं)

धरलेखम्, लम्बचिबुकायततरलपनम्, अंसावलम्बिना काषायेण योगपट्टकेन विरचितवैकक्षकम्, हृदयमध्यनिबद्धग्रन्थिना च रागेणेव खण्डशः कृतेन धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासङ्गम्, पुनरुक्तबालप्रग्रहवेष्टननिश्चलचूलेन बद्धमृत्परिशोधनवंशत्वक्तितउना कौपीनसनाथशिखरेण खर्जूरपुटसमुद्गकगर्भीकृतभिक्षाकपालकेन दारवफलकत्रयत्रिकोणत्रियष्टिनिविष्टकमण्डलुना बहिरुपपादितपादुकावस्थानेन स्थूलदशासूत्रनियन्त्रितपुस्तिकापूलिकेन वामकरधृतेन योगभारकेणाध्यासितस्कन्धम्, इतरकरगृहीतवेत्रासनं मस्करिणमद्राक्षीत् । क्षितिपतिरभ्युपगतमुचितेन चैनमादरेणान्वग्रहीत् ।

टीका—चिबुकेन अधरस्याऽधोभागेन आयततरम्=अतिशयेन आयतं दीर्घमित्यर्थः लपनं=मुखं ('आननम् लपनं मुखम्' इत्यमरः] यस्य तम्, अंसात्=स्कन्धात् अवलम्बते इति ०लम्बी तेन काषायेण=काषाय-वर्णेन योगपट्टकेन =योगसाधनार्थवस्त्रविशेषेण ['पृष्ठ-जान्वोः समायोगे वस्त्रं वलयवद् दृढम् । परिवेष्ट्य यदूर्ध्वंशुस्तिष्ठेत् तद् योगपट्टकम्'] विरचितं=कृतं वैकक्षकम्=विकक्षायां भवं वैकक्षकम् यज्ञोपवीतवत् तिर्यक् उरसि क्षिप्तं माल्यादि ['वैकक्षकं तु तत् । यत् तिर्यक् । क्षिप्तमुरसि' इत्यमरः] येन तम् । हृदय० हृदयस्य मध्ये निबद्धः=नद्धः ग्रन्थिः=ग्रन्थिका यस्य तेन, धातुः=गैरिक तस्य रसेन=द्रवेण अरुणेन=लोहितेन कर्पटेन=जीर्णवस्त्रखण्डेन खण्डशः कृतेन=खण्डं खण्डं नीतेन रागेण=रागाख्यमनोविकारेण दोषविशेषेणेत्यर्थः कृतः उत्तरासङ्गः= उत्तरे=ऊर्ध्वाङ्गे आसज्यते इति उत्तरीयं प्रावारक इति यावत् येन तम्, पुनरुक्त०—पुनरुक्तं=पुनः पुनः कृतम् बालानां=पशुकेशानां प्रग्रहेण=रज्ज्वा यत् वेष्टनम्=व्यावर्तनं तेन निश्चलं=दृढं मूलं=मूलभागो यस्य तेन, एतत् अन्यानि च तृतीयान्तानि (योगभारकेण' इत्यस्य विशेषणानि, बद्ध०—बद्धः=नद्धः मृदः=मृत्तिकायाः परिशोधनाय=परिमार्जनाय छिद्रेभ्यो निष्कर्षणायेत्यर्थः, पार्थिवशिवलिङ्गनिर्माणार्थं मृत्तिकाशोधनमावश्यक भवति, वंश-त्वचः=वंशत्वङ्निर्मितः इत्यर्थः तितउः=चालिनी यस्मिन् तेन ['चालिनी तितउः पुमान्' इत्यमरः] कौपीन०—कौपीनेन=गुह्याङ्गाच्छादनवस्त्रेण सनाथं=युक्तं शिखरम्=अग्रं यस्य तेन, खर्जूर०—खर्जूरस्य= वृक्षविशेषस्य पुटानां परस्पर-संश्लिष्टानां पत्राणामित्यर्थः गर्भीकृतम्=अन्तर्निहितं मध्ये स्थापितमित्यर्थः भिक्षायै कपालकं=भिक्षापात्रं यस्य तेन दारव०—दारुणः=काष्ठस्य इदमिति दारवत् [अण्] यत् फलकानां त्रयम्=त्रयः पट्टाः तस्य ये त्रयः कोणाः तेषु याः तिस्रः यष्टयः=दण्डाः तेषु निविष्टः=स्थापितः कमण्डलुः=जलपात्रं यस्य तेन। अयं भावः काष्ठस्य त्रीणि फलकानि परस्परं संयोज्य तैः त्रिकोणात्मक आधारः निर्मित आसीत् तस्य त्रिकोणेषु यष्टित्रयं निवेशितं तत्र च कमण्डलुः स्थापितः, बहि०—बहिः=बाह्येन च उपपादितं=कृतं पादुकयोः= काष्ठोपानहोः अवस्थानं=स्थापनमित्यर्थः यस्मिन् तेन; स्थूल०—स्थूलेन=पीवरेण दशायाः=वस्त्राञ्चलस्य वस्त्रप्रान्तस्येति यावत् सूत्रैः तन्तुभिः नियन्त्रिता=बद्धा पुस्तिकानाम्=अभिलेखानां पूलिका=समूहः यस्मिन् तेन; वामे करे=हस्ते धृतेन=धारितेन योगभारकेण=योगसम्बन्धी भारः एव योगभारकः अर्थात् योगसाधनद्रव्याधारवस्त्रकोषः 'झोला' इति भाषायां प्रसिद्धः तेन शङ्करानुसारेण मायाख्यभारिकया अध्यासितः=अधिष्ठितः सनाथः इति यावत् स्कन्धो यस्य तम्, इतरेण दक्षिणेनेत्यर्थः । करेण गृहीतं वेत्रासनं स्थाने स्थाने विश्रमाय वेत्रनिर्मितकटः येन तं मस्करिणं =संन्यासिनम् ['भिक्षु परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी' इत्यमरः] क्षितिपतिः=पुष्पभूतिः उपगतम्=समीपे आयातम् च एनम् उचितेन=योग्येन आदरेण=मानेन अन्वग्रहीत् अनुगृहीतवान् । आसीनम्=उपविष्टम् पप्रच्छ=

हिन्दी—ठोड़ी लंबी होने से मुंह लम्बा था, जिसने कन्धे से लटके गेरुआ रंग के योगपट्ट से वैकक्षक बना रखा था [अर्थात् यज्ञोपवीत के समान योगपट्ट को एक कन्धे के ऊपर से दूसरे कन्धे के नीचे तक बाँध रखा था], जिसने हृदय (वक्ष) पर लगी गाँठ वाले गेरुए रंग से लाल बने, फटे-पुराने कपड़े को चादर बना रखा था जो ऐसा लग रहा था मानो टुकड़ा-टुकड़ा किया हुआ हृदय (मन) से बंधी गाँठ वाला भाग [बाहर निकाल दिया] हो, कन्धे पर बायें हाथ से पकड़ा हुआ ऐसा योगभार (झोला) रखे हुए था, जिसका निचला भाग बालों की रस्सी से बार-बार लपेटे रहने से मजबूत बना हुआ था, जिस पर मिट्टी छानने के लिए बाँस की छाल की (बनी) छलनी बँधी थी, जिसके आगे के सिरे पर लंगोट रखा हुआ था, जिसमें खजूर के पत्तों को जोड़कर बनाये पिटक के भीतर भिक्षापात्र धरा हुआ था, जिसमें लकड़ी की तीन पट्टियों के तीनों कोनों में लगी तीन छड़ियों पर कमण्डलु रखा हुआ था, जिसके बाहर खड़ाऊ रखे हुए थे और जिस पर कपड़े की मोटी किनारी के सूतों से अभिलेखों के गट्ठ बँधे हुए थे, तथा जो दायें हाथ में बेंत की बनी चटाई पकड़े हुए था। राजा ने समीप में आए उसको समुचित आदर सम्मान से अनुगृहीत किया और बैठ जाने पर पूछा—'भैरवाचार्य कहाँ हैं ?" आदर भरे

आसीनं च पप्रच्छ—'क्व भैरवाचार्यः' इति । सादरनरपतिवचनमुदितमनास्तु परिव्राट् तमुपनगरं सरस्वतीतटवनावलम्बिनि शून्यायतने स्थितमाचचक्षे । भूयश्चाबभाषे—'अर्चयति हि महाभागं भगवानाशीर्वचसा' इत्युक्त्वा चोपनिन्ये योगभारकादाकृष्य भैरवाचार्यप्रहितानि रत्नवन्ति बहलालोकलिप्तान्तःपुराणि पञ्च राजतानि पुण्डरीकाणि ।

नरपतिस्तु प्रियजनप्रणयभङ्गकातरो दाक्षिण्यमनुरुध्यमानो प्रहणलाघवं च लङ्घयितुमसमर्थो दोलायमानेन मनसा स्थित्वा कथं कथमप्यतिसौजन्यनिघ्नस्तानि जग्राह । जगाद च—'सर्वफलप्रसवहेतु शिवभक्तिरियं नो मनोरथदुर्लभानि फलति फलानि । येनैवमस्मासु प्रीयते तत्रभगवान्भुवनगुरुर्भैरवाचार्यः । श्वो द्रष्टास्मि भगवन्तम्' इत्युक्त्वा च मस्करिणं व्यसर्जयत् । अनया च वार्तया परां मुदमवाप । अपरेद्युश्च प्रातरेवोत्थाय वाजिनमधिरुह्य समुच्छ्रितश्वेतातपत्रः

टीका—पृष्टवान् । सादर०—सादर=आदर-सहितं यत् नरपतेः=राज्ञः वचनं=कथनं तेन मुदितं=प्रसन्नं मनः यस्य सः, परिव्राट्=संन्यासी तम्=भैरवाचार्यम् उपनगरं=नगरस्य समीपे (अव्ययीभावः) सरस्वत्याः=एतन्नामकनद्याः तटे यद् वनम्=अरण्यं तद् अवलम्बते=आश्रयतीति तथोक्ते तत्र स्थिते इत्यर्थः, शून्ये=जनरहिते, आयतने=गृहे देवालये स्थितम्=आसीनम् आचचक्षे=आख्यातवान् । भूयश्च=पुनश्च आबभाषे=जगाद भगवान्=पूज्यः भैरवाचार्यः इत्यर्थः । आशीर्वचसा=आशीर्वादेन महाभागं=महाभाग्यवन्तं भवन्तमिति यावत् अर्चयति=पूजयति भवते आशीर्वादं ददातीत्यर्थः इति उक्त्वा=कथयित्वा योगभारकात्='झोलातः' भैरवाचार्येण प्रहितानि=प्रेषितानि रत्नवन्ति=रत्नयुक्तानि बहलेन=बहुना आलोकेन=प्रकाशेन लिप्तम्=कृतलेपम् अन्तःपुरं यैः तानि पञ्च राजतानि=रजतस्य रौप्यस्य इमानि (अण्) पुण्डरीकाणि=कमलानि आकृष्य=निस्सार्य उपनिन्ये=राज्ञे उपाहरत् ।

नरपतिः=पुष्पभूतिः प्रियजनस्य=प्रीतिपात्रस्य भैरवाचार्यस्येत्यर्थः, यः प्रणयः=स्नेहः प्रार्थना वा तस्य भङ्गः=विच्छेदः उल्लंघनमित्यर्थः, तस्मात् कातरः=भीतः, दाक्षिण्यं=शिष्टताम् अनुरुध्यमानः=अनुवर्तमानः ग्रहणे स्वीकारे यत् लाघवं=स्वलघुता तत् लङ्घयितुम्=अतिवर्तितुम् असमर्थः अर्थात् विना मूल्येन ग्रहणे राज्ञो हृदये या लघुता उदेति स्म ततः स आत्मानमुन्मोक्तुं न प्राभवत्; दोलायमानेन=अनिश्चयात्मकेन सङ्कुचतेत्यर्थः मनसा कथं कथमपि=केनापि प्रकारेण सज्जनस्य भावः सौजन्यं=सज्जनता अतिशयितं सौजन्यं तस्य निघ्नः=अधीनः['अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः] तानि=पुण्डरीकाणि जग्राह=गृहीतवान् । जगाद=अकथयत् । सर्वाणि च तानि फलानि तेषां प्रसवः=उत्पत्तिः तस्य हेतुः=कारणं यः=अस्माकम् इयं शिवे भक्तिः मनोरथैः अभिलषितैः अपि दुर्लभानि=दुष्प्रापाणि फलानि फलति=ददातीत्यर्थः । प्रीयते=प्रसीदति भुवनस्य=संसारस्य गुरुः । भगवन्त=भैरवाचार्यं श्वः=आगामिदिवसे द्रष्टास्मि=द्रक्ष्यामि इति उक्त्वा=कथयित्वा व्यसर्जयत् विसर्जितवान् । अनया वार्तया=भैरवाचार्यस्यात्मनि प्रसन्नतायाः समाचारेण पराम्=अतिशयिताम् मुदम्=हर्षम् अवाप=प्राप्नोत् राजेति शेषः । अपरेद्युः=अपरस्मिन् दिवसे वाजिनम्=अश्वम् अधिरुह्य=आरूढो भूत्वा समुच्छ्रितम्=उपरि स्थापितं धृतमित्यर्थः श्वेतम् आतपत्रं=छत्रं यस्य सः समुद्धूयमानं=सञ्चाल्यमानं वीज्यमानमित्यर्थः, धवलं=श्वेतं चामरयोः

हिन्दी—राजा के वचन से प्रसन्नचित्त हुआ परिव्राजक बोला—'वे सरस्वती नदी के किनारे के वन में स्थित सुनसान देवालय में हैं' और फिर बोला—'भगवान् (भैरवाचार्य) पुण्यशाली आपको आशीर्वाद द्वारा सम्मानित करते हैं' यह कहकर उसने थैली से निकाल कर भैरवाचार्य द्वारा भेजे हुए रत्नजड़ित विपुल छटा से अन्तःपुर को लिप्त करते हुए पाँच चाँदी के कमल राजा को भेंट कर दिए । प्रियजन की प्रार्थना भंग करने से भयभीत किन्तु शिष्टता का पालन करते हुए, लेने में (अपनी) लघुता का उल्लंघन करने में असमर्थ बने (कुछ देर) मन की द्विविधा में स्थित राजा ने सौजन्यपरवश होकर उन्हें ले लिया और कहा—'सभी फलों की उत्पत्ति का कारणभुत हमारी शिवभक्ति ने ही ये फल दिये हैं जिससे आदरणीय जगद्-गुरु भगवान् भैरवाचार्य हमपर इस तरह प्रसन्न हो रहे हैं ।' 'मैं कल भगवान् के दर्शन करूँगा'—यह कहकर परिव्राजक को विदा किया । और (भैरवाचार्य की प्रसन्नता के) इस समाचार से (राजा) बड़ा ही प्रसन्न हुआ । दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठकर घोड़े पर सवार हो,

समुद्धूयमानधवलचामरयुगलः कतिपयैरेव राजपुत्रैः परिवृतो भैरवाचार्यं सवितारमिव शशी द्रष्टुं प्रतस्थे। गत्वा च किञ्चिदन्तरं तदीयमेवाभिमुखमापतन्तमन्यतमं शिष्यमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च—'क्व भगवानास्ते' इति। सोऽकथयत्—'अस्य जीर्णमातृगृहस्योत्तरेण बिल्ववाटिकामध्यास्ते' इति। गत्वा च तं प्रदेशमवततार तुरगात्। प्रविवेश च बिल्ववाटिकाम्।

अथ महतः कार्पटिकवृन्दस्य मध्ये प्रातरेव स्नातम्, दत्ताष्टपुष्पिकम्, अनुष्ठिताग्निकार्यम्, कृतभस्मरेखापरिहारपरिकरे हरितगोमयोपलिप्तक्षितितलवितते व्याघ्रचर्मण्युपविष्टम्, कृष्णकम्बलप्रावरणनिभेनासुरविवरप्रवेशाशङ्कया पातालान्धकारावासमिवाभ्यस्यन्तम्, उन्मिषता विद्युत्कपिलेनात्मतेजसा महामांसविक्रयक्रीतेन मनःशिलापङ्केनेव शिष्यलोकं

टीका—युगलं=द्वयं यस्य सः कतिपयैः=कैश्चिद् एव राजपुत्रैः परिवृतः शशी=चन्द्रः सवितारम्=सूर्यम् इवेत्युपमायाम्। भैरवाचार्यं द्रष्टुं=साक्षात्कर्तुं प्रतस्थे=प्रस्थितवान्। किञ्चित् अन्तरं=दूरं गत्वा तस्य=भैरवाचार्यस्य इमम् इति तदीयम् अभिमुखम्=मुखम् अभि इति (अव्ययीभावः) सम्मुखम् आपतन्तम्=आगच्छन्तम् अन्यतमम्=अपरं शिष्यम् अद्राक्षीत्=अपश्यत् राजेति शेषः, अप्राक्षीत्=अपृच्छत् च। भगवान्=भैरवाचार्यः आस्ते=तिष्ठति जीर्णं=भग्नं मातृणाम्=अष्टदेवीनाम् [ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा, कौमारी चर्ममुण्डा च कालसङ्कर्षणीति च] गृहस्य=मन्दिरस्य उत्तरेण=उत्तरदिशि बिल्वस्य वाटिकाम्=वाटीम् अध्यास्ते=अधितिष्ठति। तुरगात्=अश्वात्, अवततार=अवरुरोह। प्रविवेश=प्रविष्टवान्।

'अथ......भगवन्तं......भैरवाचार्यं ददर्श' इत्यस्ति वाक्यम्। महतः=विशालस्य कार्पटिकानां=कर्पटेन (जीर्णवस्त्रेण) चरन्तीति (कर्पट+ठक्) कार्पटिकाः=जीर्णवस्त्रधारिणः तीर्थसेविनः यात्रिणः इत्यर्थः, व्रतिनः इति शङ्करः, तेषां वृन्दस्य=समूहस्य मध्ये स्थितमिति शेषः, प्रातः एव स्नातं=कृतस्नानं दत्ता=समर्पिता अष्टमूर्तिशिवायेति शेषः, अष्टानां पुष्पाणां=पद्मादीनां समाहारः इत्यष्टपुष्पी, अष्टपुष्पी एव अष्टपुष्पिका येन तम्, अनुष्ठितं=सम्पादितं अग्निकार्यं=होमः येन तम्। कृत०—कृतः=विहितः भस्मनः=विभूत्याः रेखया=पङ्क्त्या परिहारस्य=परिवर्जनस्य मर्यादायाः इति शङ्करः, परिकरः परितः क्रियते इति परिकरः परिधिरित्यर्थः यस्य तेन। हरित०—हरितेन=हरिद्वर्णेन गोमयेन उपलिप्तं=कृतलेपं यद् क्षितेः पृथिव्याः तलं=पृष्ठं तस्मिन् वितते प्रसारिते व्याघ्रस्य चर्मणि=त्वचि उपविष्टम्=स्थितम्। कृष्ण०—कृष्णः=श्यामवर्णः कम्बलः ऊर्णावस्त्रविशेषः एव प्रावरणम् उत्तरीयं देहाच्छादनमित्यर्थः निभेन=व्याजेन असुर-विवरे=असुरकृतच्छिद्रे यः प्रवेशः गमनम् तस्य आशङ्कया=सम्भावनयेत्यर्थः, पाताले=रसातले यः अन्धकारः तस्मिन् आवासः=निवासः तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अभ्यस्यन्तं=शीलयन्तं शिक्षमाणमित्यर्थः; उन्मिष०—उन्मिषता=प्रकाशमानेन विद्युत्=तडित् तद्वत् कपिलेन=पीतवर्णेन आत्मनः तेजसा=कान्त्या महामांसस्य=

टिप्पणी—महामांस—मैनसिल एक कीमती पत्थर हुआ करता है। उसे खरीदने के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता रहती है। भैरवाचार्य महामांसन रमांस बेचकर धन जुटाता था। अभिप्राय यह है कि भैरवाचार्य शाक्त था और शक्ति को महामांस चढ़ाता था। शाक्तों का कहना है—'अष्टम्यां रुधिरैर्मांसैर्महामांसैः सुगन्धिभिः। पूजयेद् बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनैः शिवाम्॥' शिवाराधन से उन्हें अतिमानुष शक्ति प्राप्त हुई थी, इसीलिए—जैसे आगे कहा जा रहा है—भैरवाचार्य सिद्धों को भी नीचे खींच लिया करते थे।

हिन्दी—ऊपर श्वेत छत्र धारण किये, डुलाये जा रहे दो श्वेत चामरों के साथ, कुछ ही राजकुमारों से घिरा हुआ राजा भैरवाचार्य के पास इस तरह चल पड़ा जैसे चन्द्रमा सूर्य के पास जाया करता है। और कुछ दूर जाकर सामने से आते हुए उन्हीं के (किसी) दूसरे शिष्य को देखा और उससे पूछा—'भगवान् कहाँ हैं?' वह बोला—'इस टूटे-फूटे मातृमन्दिर के उत्तर की ओर बेल के वृक्षों की वाटिका में बैठे हैं'। उस स्थान पर जाकर राजा घोड़े से उतर गया और बेल के वृक्षों की वाटिका में प्रविष्ट हो गया।

तदनन्तर राजा ने व्रतियों के बड़े भारी समूह के मध्य में (स्थित) भगवान् भैरवाचार्य को देखा—जो प्रातः ही स्नान किये बैठे थे, (शिव पर) अष्टपुष्पिका चढ़ा चुके थे, अग्निहोम कर चुके थे, राख की रेखा से (बनाई) सीमा की परिधि के भीतर हरे गोबर से लिपे भूतल पर बिछी बाघ की खाल पर बैठे हुए थे, जो काले कम्बल की ओढ़नी के बहाने असुर-विवर में प्रवेश की आशंका से पाताल के अन्धकार में रहने का अभ्यास जैसा कर रहे थे, जो

लिम्पन्तम्, जटी[illegible] बध्नन्तमिव विद्यावलेपदुर्विदग्धानुपरि सञ्चरतः सिद्धान्, धवलकतिपयशिरोरुहेण वयसा पञ्चपञ्चाशतं वर्षाण्यतिक्रामन्तम्, खालित्यक्षीयमाणशङ्खलोमलेखम्, लोमशकर्णशष्कुलीप्रदेशम्, पृथुललाटतटम्, तिरश्च्या भस्मललाटिकया बहुशः शिरोध्वंधृतदग्धगुग्गुलुसन्तापस्फुटितकपालास्थिपाण्डुरराजिशङ्कामिव जनयन्तम्, सहजललाटवलिभङ्गसङ्कोचितकूर्चभागां बभ्रुभा भ्रूसङ्गत्या निरन्तरामायामिनीमेकामिव भ्रूलेखां बिभ्राणम्, ईषत्काचकाचरकनीनिकेन रक्तापाङ्गनिर्गतांशुप्रतानेन मध्यधवलभासेन्द्रायुधेनेवातिदीर्घेण लोचनयुगलेन परितो महामण्डलामिवानेकवर्णरागमालिखन्तं सितपीतलोहितपताकावली-

---

टीका—नरमांसस्य विक्रयेण=विक्रयद्वारा लब्धधनेनेत्यर्थः, क्रीतेन=व्ययेन प्राप्तेन मनःशिला=उपधातु-विशेषः तस्य पङ्केन=द्रवेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम् शिष्यलोकं=छात्र-समूहं लिम्पन्तम्=लिप्तं कुर्वन्तम्। जटी०—जटा अस्मिन्नस्तीति जटी, अजटी जटी सम्पद्यमानः कृतः इति जटीकृतः=जटायुक्तीकृत, यः एकदेशः=एकभागः शिरसः इति शेषः, तस्मात् लम्बमानाः=नमन्त्यः रुद्राक्षाणां=रुद्राक्षवृक्षबीजानां शङ्खानां=कम्बूनां च गुटिकाः=गुटयः यस्मिन् तेन, ऊर्ध्वं यथा स्यात्तथा बद्धेन शिखापाशेन=प्रशस्ता शिखा इति शिखापाशः तेन, विद्यायाः=ज्ञानस्य अवलेपः=अभिमानः तेन, दुर्विदग्धान्=दुश्चतुरान् दुर्विनीतानित्यर्थः, उपरि=आकाशे बध्नन्तम्। धवल०—धवलाः=श्वेतवर्णाः कतिपये=केचित् शिरोरुहाः=केशाः यस्मिन् तेन वयसा जीवनसमयेन पञ्चपञ्चाशतम् वर्षाणि=वत्सरान् अतिक्रामन्तम् यापयन्तम्। खालित्य०—खलते=खल्वाटस्य भावः खालत्यं [अत्र खालित्यं चिन्त्यम्] तेन क्षीयमाणा=लुप्यन्ती शङ्खे=ललाटास्थ्नि ['शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि' इत्यमरः] लोम्नां-केशानां लेखा=राजिः यस्य तम्। लोमश०—लोमशः=रोमयुक्तः [लोम+शः मत्वर्थीयः] कर्णस्य=श्रोत्रस्य शष्कुली=कुहरं तस्य प्रदेशः=एकभागः यस्य तम् पृथुः=विस्तृतः ललाटस्य=भालस्य तटं=देशो यस्य तम्, तिरश्च्या=तिर्यक् स्थितया भस्मनः=विभूत्या ललाटिकया=ललाटगतरेखया बहुशः=बहुवारम्। शिरो०—शिरस्य=शिरसः [अत्र शिर-शब्दोऽदन्तः, यथा —'पिण्डं दद्याद् गयाशिरे' वायुपुराणम्] ऊर्ध्वम्=ऊर्ध्वभागः तत्र दग्धः=दाहविषयीकृतः यः गुग्गुलुः=सुगन्धिद्रव्यविशेषः तस्य, सन्तापेन=ऊष्मणा स्फुटितं=भग्नं यत् कपालस्य मस्तकस्य अस्थि=कीकसं तस्य, पाण्डुरा=श्वेता या राजिः=पङ्क्तिः रेखेत्यर्थः, तस्याः शङ्कां=सन्देहम् इवेत्युप्रेक्षायाम्, जनयन्तम्=उत्पादयन्तम्, सहज०—सहजाः=स्वाभाविकाः ललाटे=भाले ये वलिभङ्गाः=चर्मरेखाः तैः सङ्कोचितः=सङ्कोचं प्रापितः कूर्चस्य=भ्रूमध्यस्य ('कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्यम्' इत्यमरः) भागः=प्रदेशः यस्याः ताम्, बभ्रुः=बभ्रुवर्णा पिङ्गलेत्यर्थः, भाः=कान्तिः यस्याः ताम्, भ्रुवोः=भ्रूद्वयस्य सङ्गत्या=परस्पर-सम्मेलनेन निरन्तरां=निरवकाशाम् आयामिनीं=दीर्घाम् एकाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भ्रूलेखां=भ्रू-पङ्क्तिम् बिभ्राणं=दधानम्। ईषत्०—ईषत्=किमपि काचवत्काचरा=हरितपीतवर्णा कनीनिका=तारा यस्य तेन मध्ये धवला श्वेतवर्णा भाः=कान्तिर्यस्य तेन इन्द्रायुधेन=इन्द्रधनुषा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अतिदीर्घेण=अत्यायतेन लोचनयोः=नेत्रयोः युगलेन=द्वयेन परितः=सर्वतः अनेकैः वर्णैः=हरित-रक्तादिभिः रागः=रञ्जनं यत्र तथाभूतं महामण्डलं=देवता पूजनार्थं निर्मीयमाणसर्वतोभद्रादिचक्रम् आलिखन्तम्=रचयन्तम् सिताः=श्वेताः पीताः=पिङ्गलाः लोहिताः=रक्ताः याः पताकाः=

हिन्दी—चमकती हुई बिजली के समान अपने पीले तेज से नरमांस बेचकर खरीदे मैनसिल के द्रव-से जैसे शिष्य लोगों पर लेप कर रहे थे, जो (सिर के) जटावाले एक भाग में लटकते हुए रुद्राक्षों और शंखों सहित ऊपर को बंधी प्रशस्त शिखा द्वारा मानो विद्या के अभिमान में दुर्विनीत बने हुए सिद्धों को नीचे खींच रहे थे, जो श्वेत बने कुछ बालों वाली आयु से पचपन वर्ष पार कर रहे थे, जिनके ललाट की रोमराजि गंजापन का कारण घट रही थी, भाल प्रदेश विस्तृत था जो ललाट की टेढ़ी भस्मरेखा से बार-बार शिर के ऊपर जलाए हुए गुग्गुल के ताप से फटी हुई कपाल की हड्डी की श्वेत पंक्ति जैसी शंका उत्पन्न कर रहे थे, जो ललाट पर स्वाभाविक झुरियों से मध्यभाग के सिकुड़ जाने और दोनों भौंहों के परस्पर मिल जाने के कारण निरन्तर चल रही लंबी पीली कान्ति की एक ही भ्रूलेखा को-जैसे धारण कर रहे थे, जो काँच की तरह कुछ पीली पुतली वाली, प्रान्त-भाग से निकली लाल किरणों को फैलाती हुए एवं मध्य-भाग में श्वेत कान्ति रखे, इन्द्र-धनुष-जैसी लग रही दोनों विशाल आँखों से चारों तरफ अनेक वर्णों से रँगा हुआ महान् चक्र-जैसा बना रहे थे (अथवा) शिव के लिए

शबलं शिवबलिमिव दिक्षु विक्षिपन्तम्, तार्क्ष्यतुण्डकोटिकुब्जाग्रघोणम्, दूरविदीर्णसृक्किसंक्षिप्तकपोलम्, किञ्चिद्दन्तुरतया सदाहृदयसन्निहितहरमौलिचन्द्रातपेनेव निर्गच्छता दन्तालोकेन धवलयन्तं दिशां जालकम्, जिह्वाग्रस्थितसर्वशैवसंहितातिभारेणेव मनाक्प्रलम्बितोष्ठम्, प्रलम्बश्रवणपालीप्रेङ्खिताभ्यां स्फाटिककुण्डलाभ्यां शुक्रबृहस्पतिभ्यामिव सुरासुरविजयविद्यासिद्धिश्रद्धयानुबध्यमानम्, बद्धविविधौषधिमन्त्रसूत्रपङ्क्तिना सलोहवलयेनैकप्रकोष्ठेन शङ्खखण्डं पूष्णो दन्तमिव भगवता भवेन भग्नं भक्त्या भूषणीकृतं कलयन्तम्, अखिलरसकूपोदञ्चनघटीयन्त्रमालामिव रुद्राक्ष-

---

टीका—ध्वजाः तासाम् आवलीभिः=पङ्क्तिभिः शबलं=विविधवर्णं शिवाय बलिम्=उपहारम् इवेत्युत्प्रेक्षायां, दिक्षु=दिशासु विक्षिपन्तं=ददतम्, । तार्क्ष्य०—तार्क्ष्यस्य=काश्यपस्य अपत्यं पुमान् इति (यञ्)=गरुडस्य ['गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यः' इत्यमरः] यत् तुण्डं=मुखम् तस्य कोटिवत्=अग्रभागवत् कुब्जा=वक्रा अग्रघोणाः=घोणायाः अग्रम् इति अग्रघोणा=नासाग्रम् अथवा अग्रा चासौ घोणा यस्य तम् । दूर०—दूरं यथा स्यात्तथा विदीर्णे=विपाटिते विस्तृते इत्यर्थः, ये सृक्किणी=ओष्ठस्य प्रान्तौ ताभ्यां संक्षिप्तौ=लघूभूतौ कपोलौ=गण्डौ यस्य तम्. किञ्चित्०—किञ्चित् =ईषत् दन्तुरतया=उच्चदन्ततया सदा हृदये सन्निहितः=प्रत्यासन्नः यः हरः=शिवः तस्य मौलौ=शिरसि यः चन्द्रः तस्य आतपेन=आलोकेन, इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निर्गच्छता=निस्सरता दन्तानाम् आलोकेन=छटया दिशां=दिशानां जालकं=समूहं धवलयन्तं=धवलीकुर्वन्तम् । जिह्वा०—जिह्वायाः=रसनायाः अग्रे=कोटौ स्थिता याः सर्वाः= निखिलाः शैव-संहिताः=शिवचरितसम्बन्धिनो ग्रन्थाः तासाम् अतिशयितो भारः अतिभारः तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मनाक्=ईषत् प्रलम्बितः=प्रलम्बीभूतः ओष्ठो यस्य तम्. प्रलम्ब०—प्रलम्बे=प्रकर्षेण लम्बे लम्बमाने इत्यर्थः, ये श्रवणयोः=कर्णयोः पाल्यौ=कोटी निम्नभागौ इत्यर्थः['कोणास्तु स्त्रियः पाल्यश्रिकोटयः' इत्यमरः] ताभ्यां प्रेङ्खिताभ्यां =दोलायमानाभ्यां स्फाटिकाभ्यां=स्फटिकनिर्मिताभ्यां कुण्डलाभ्यां=गोलाकार-कर्णाभरणाभ्यां शुक्रश्च बृहस्पतिश्चेति ताभ्याम्=ग्रहविशेषाभ्यां क्रमशः असुर सुर-गुरुभ्यामित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । सुराः=देवाश्च असुराः= राक्षसाश्च तेषु यः विजयः तस्य विद्या मन्त्रादि-रूपा तस्याः या सिद्धिः=साधनं प्राप्तिरिति यावत् तया या श्रद्धा= आदरभावः तया अनुबध्यमानम्=अनुस्रियमाणम् । बद्ध०—बद्धा विविधैः=नानाप्रकारैः ओषधिभिः=औषधैः मन्त्रैश्च युक्ता [मध्यमपदलोपी] सूत्राणां=तन्तूनां पङ्क्तिः यस्मिन् तेन, लोहस्य=अयसः, वलयेन=कङ्कणेन सह वर्तमानः इति तथोक्तेन एकेन प्रकोष्ठेन=मणिबन्धेन शङ्खस्य खण्डं=शकलं पूष्णः= एतन्नामक-देवताविशेषस्य दन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भगवता भवेन=शिवेन वीरभद्ररूपधारिणेत्यर्थः भग्नं=त्रोटितं भक्त्या भूषणीकृतम् आभूषणं सम्पद्यमानं कृतम् [च्वि] कलयन्तम्=धारयन्तम् । अखिल०—अखिलस्य=समग्रस्य रसस्य= जलस्य कूपात् यत् उदञ्चनम्=उपरिगमनम् तदर्थं घटीयन्त्रमालां=लघुघटमालायन्त्रविशेषम् इव रुद्राक्षाणां

टिप्पणी - लोचन ..... विक्षिपन्तम्—भैरवाचार्य चारों ओर दृष्टिपात कर रहे थे । चक्षु-कनीनिकायें काली प्रान्त भाग में लाल और शेष भाग में श्वेत थीं, इसलिए नाना वर्णों वाले इन्द्रधनुष-जैसी लग रही थीं । चारों ओर पड़ने से नाना रंगों का गोल सर्वतोभद्रादि चक्र-जैसा बना रही थीं । शिव की पूजा से रंग-विरंगी झाड़ियां-जैसी लग रही थीं । बाण ने श्रीहर्ष के स्कन्धावार के प्रति प्रस्थान काल में शिवपूजन में ध्वज भी रखा था— 'सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपबहुलां विधाय पूजाम्' [प्र० उ०] ।

हिन्दी—श्वेत, पीत और रक्त वर्णों की झाड़ियों की पंक्ति से युक्त बलि को जैसे दिशाओं में डाल रहे थे, जिसकी नाक का अग्र भाग गरुड़ की चोंच की नोक की तरह टेढ़ा था, जिसके गाल ओठों के किनारे के दूर तक फटे रहने के कारण छोटे हो रहे थे, जो दाँतों के कुछ ऊँचे होने के कारण हृदय में सदा से स्थित महादेव के सिर के चन्द्रमा के प्रकाश से-जैसे बाहर निकलती हुई दन्त-छटा से दिङ्मण्डल को श्वेत बना रहे थे, जिनका ओठ जिह्वा की नोक पर स्थित सभी शैवसंहिताओं के अतिशय भार के कारण मानो कुछ लटका हुआ था, जिनके कर्णों की पालियों में झूलते हुए स्फटिक के कुण्डल ऐसे लग रहे थे मानो सुरों और असुरों को विजय दिलाने वाली (मंत्र) विद्या की सिद्धि की श्रद्धा से वृहस्पति और शुक्र उनके पीछे जा रहे हों; जो लोहे के कड़े सहित नाना जड़ी-बूटी और मन्त्रों से युक्त डोरों से बंधे हुए प्रकोष्ठ (कलाई) (एक) शंख का टुकड़ा धारण कर रहे थे जो ऐसा लग रहा था मानो महादेव के द्वारा तोड़ा हुआ पूषा का दाँत हो जिसे उन्होंने भक्ति के कारण भूषण बना

मालां दक्षिणेन पाणिना भ्रमयन्तम्, उरसि दोलायमानेनापिङ्गलाग्रेण कूर्चकलापेन समार्जयन्तमिवान्तर्गतं निज-रजोनिकरम्, प्रतिनिबिडनीललोममण्डलनिचितं च ध्यानलब्धेन ज्योतिषा दग्धमिव हृदयदेशं दधानम्, ईषत्प्रशिथिल-वलिवलयबध्यमानतुन्दम्, उपचीयमानस्फिङ्मांसपिण्डकम्, पाण्डुरपवित्रक्षौमावृतकौपीनम्, सावष्टम्भपर्यङ्कबन्ध-मण्डलितेनामृतफेनश्वेतरुचा योगपट्टकेन वासुकिनेवाप्रतिहतानेकमन्त्रप्रभावाविर्भूतेन प्रदक्षिणीक्रियमाणम्, अरुण-

---

टीका— मालां जपमालां दक्षिणेन पाणिना=वामेतरकरेण भ्रमयन्तम्=आवर्तयन्तम्, रुद्राक्षमाला अपि अखिल-रसं=सांसारिकं सुखं रागं कूपस्थानीयाद् भैरवाचार्यस्य हृदयात् बहिः निःसारयति यतस्तद् हृदयं सदोलायमानेन=दोलावद् इतस्ततः चलता आपिङ्गलानि=ईषत् पिङ्गलानि पीतवर्णानीत्यर्थः, अग्राणि=अग्रभागाः यस्य तेन, कूर्चस्य श्मश्रुणः मुखरोम्णामित्यर्थः, कलापेन=समूहेन संमार्जयन्तम्=शोधयन्तम् अपनयन्तमित्यर्थः इव अन्तर्गतं=हृदयस्थं निजं स्वीयं रजः=रजोगुणः एव रजः=रेणुः तस्य निकरं=समूहम्, कामक्रोधादि-विकाराः 'रजोगुण-समुद्भवाः' जायन्ते', कूर्चं रूपशोधिन्या स तान् संमार्जयतीत्युत्प्रेक्ष्यते। प्रति०—प्रतिनिबिडेन=अतिसान्द्रेण नील-लोम्नां श्यामवर्णकेशानां मण्डलेन=समूहेन निचितं=व्याप्तं ध्यानेन=चिन्तनेन निदिध्यासमानेनेत्यर्थः, लब्धेन=प्राप्तेन ज्योतिषा=ज्ञानज्योतिषा दग्धं=प्लुष्टम् इव हृदय-देशं=हृदयभागं दधानम्=बिभ्राणम् ज्ञानज्योतिषा दग्धे हृदये श्यामिका जातेवेति भावः। ईषत्०—ईषत्=किमपि प्रशिथिलेन=शैथिल्यं प्राप्तेन वलीनां=चर्मरेखाणां वलयेन=मण्डलेन बध्यमानम्=पूर्यमाणम् तुन्दम्=उदरं यस्य तम्। उपचीय०—उपचीयमानः=वर्धमानः स्फिचोः=कटिभागयोः, ['स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथौ' इत्यमरः] नितम्बयोरित्यर्थः, मांसस्य पिण्ड एव पिण्डकः यस्य तम्, पाण्डुर०—पाण्डुरेण=श्वेतेन अथ च पवित्रेण=शुद्धेन क्षौमेण=शणवस्त्रेण आवृतम्=आच्छादितं कौपीनं=गुह्याङ्गं येन तम् ['आकार्यगुह्ये कौपीनम्' इत्यमरः, 'कूपपतनमर्हति कौपीनं=पापं तत्साधनत्वात् तद्वद् गोप्यत्वात् पुरुषलिङ्गमपि। तत्सम्बन्धात् तदाच्छादनमपि' इति सि० कौ०]। सावष्टम्भ०—सावष्टम्भः=अवष्टम्भेन=गौरवेण सहितः दृढः इति यावत् यः पर्यङ्कबन्धः=पर्यङ्कवद् बन्धः वस्त्रादिना पृष्ठजानुजङ्घाबन्धनम् आसनविशेषः इत्यर्थः, तस्मिन् मण्डलीकृतेन=वलयीकृतेन मण्डलाकारे बद्धेनेत्यर्थः, अमृतस्य फेनवत् श्वेता रुक्=कान्तिः यस्य तेन योगपट्टकेन=योगार्थवस्त्रविशेषेण वासुकिना=सर्पराजेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अप्रतिहतः निर्निरोधः यः अनेकयन्त्राणां प्रभावः=बलमित्यर्थः तेन आविर्भूतः=प्रकटीभूतः तेन वासुकिना=सर्पराजेन प्रदक्षिणी-क्रियमाणम्-परिक्रम्यमाणम। अरुण०—अरुणं=रक्तवर्णं यत् तामरसं=कमलं तद्वत् सुकुमारं=सुकोमलं तलं

टिप्पणी—पूष्णो दन्तम्—दक्षप्रजापति के यज्ञ में सती दाह से क्रुद्ध हुए शिव की जटा के एक बाल से उत्पन्न हुए वीरभद्र ने दक्ष का सारा यज्ञ नष्ट-ध्वस्त-कर दिया था। वहाँ जो देवता आए हुए थे, उनकी भी उसने बुरी गति की, भग देवता की आँख फोड़ दी और पूषा के दांत तोड़ दिये। भागवत में यह कथा आई हुई है—'पूष्णश्चापातयद् दन्तान् कालाङ्गस्य यथा बलः। शप्यमाने गरिमणि योऽहसद् दर्शयन् दतः'। वीरभद्र के हस्त-स्पर्श से दांत का पवित्र होना और धारण करना शैवों के लिए उचित ही है।

हिन्दी—रखा था, जो कुएं से सारा रस (जल) निकालने के लिये बने रहट की घड़ियों की माला-जैसी [हृदय-रूपी कूप से सारा रस–राग–निकालने के लिए बनी] रुद्राक्षमाला को दाहिने हाथ से घुमा रहे थे, जो छाती पर झूलती हुई, कुछ पीले नोकों वाली दाढ़ी (के बालों) के गुच्छे से मानो अपने हृदय स्थित रज [रजोगुण] रूपी रज (धूलि) के समूह को बुहार रहे थे, जो बहुत घने काले बालों के समूह से खचाखच भरे हृदय-स्थल को धारण करते हुए ऐसे लग रहे थे मानो ध्यान द्वारा प्राप्त ज्योति से उसका वह स्थल जला हुआ हो; जिनका उदर कुछ ढीली पड़ी वलियों के समूह से भरा हुआ था, जिनके नितम्ब का मांस-पिण्ड बढ़ता जा रहा था, जिन्होंने गुप्तांग को सफेद पवित्र सन के कपड़े से ढक रखा था; जो दृढ़ता के साथ पर्यंक-बन्ध में मण्डलाकार बांधे हुए अमृत फेन की तरह सफेद चमक वाले योगपट्ट से ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो (उनके) दुर्निवार मन्त्रों के प्रभाव से प्रकट हुआ वासुकी नाग उनकी परिक्रमा कर रहा हो; जो लाल कमल के समान कोमल तलवों वाले दो

तामरससुकुमारतलस्य पादयुगलस्य निर्मलैर्नखमयूखजालकैर्जर्जरयन्तमिव महानिधानोद्धरणरसेन रसातलम्, तोयक्षालितशुचिना धौतपादुकायुगलेन हंसमिथुनेनेव भागीरथीतीर्थयात्रापरिचयागतेनामुच्यमानचरणान्तिकम्, शिखरनिखातकुब्जकालायसकण्टकेन वैणवेन विशाखिकादण्डेन सर्वविद्यासिद्धिविघ्नविनायकापनयनाङ्कुशेनेव सततपार्श्ववर्तिना विराजमानम्, अबहुभाषिणम्, मन्दहासिनम्, सर्वोपकारिणम्, कुमारब्रह्मचारिणम्, अतितपस्विनम्, महामनस्विनम्, कृशक्रोधम्, अकृशानुरोधम्, महानगरमिवादीनप्रकृतिशोभितम्, मेरुमिव कल्पतरुपल्लवराशिसुकुमारच्छायम्, कैलास-

---

टीका——=तलभागो यस्य तस्य, पादयो =चरणयोः युगलस्य=द्वयस्य निर्मलैः=स्वच्छैः नखमयूखानां=नखकिरणानां जालकैः=समूहैः जर्जरयन्तम्=खण्डशः कुर्वन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायां महत्=विपुलं यत् निधानं=निधिः कोषः इत्यर्थः। तस्य उद्धरणम्=उद्ग्रहणं निस्सारणमित्यर्थः तस्मिन् यः रसः=अनुरागः उत्कटेच्छेति यावत् तेन रसायाः=पृथिव्याः तलम्, तोय०—तोयेन=जलेन क्षालितं=धौतम् अत एव शुचि=पवित्रं तेन [पादुकायुगलेन हंसमिथुनेनेत्युभयेन सम्बध्यते] धौतयोः पादुकयोः=काष्ठोपानहोः युगलेन=द्वयेन हंसयोः मिथुनेन=युगलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, भागीरथ्याः=गङ्गायाः यानि तीर्थानि=तीर्थस्थानानि तेषां यात्रया यः परिचयः=संस्तवः आगतेन=आयातेन न मुच्यमानं=त्यज्यमानम् अन्तिकं सान्निध्यं यस्य तम्, हंसाः गङ्गा-जले निवसन्ति तेषां गङ्गा-तीर्थेषु यात्राया आगतेन भैरवाचार्येण परिचये जाते सति पादुकाद्वयं हंसमिथुनमिव प्रतीयते स्मेति भावः। शिखर० शिखरे=अग्रभागे निखातः=उत्कीर्णः निवेशितः इत्यर्थः, कुब्जः=कुटिलः कालायसस्य=श्यामवर्णलोहस्य कण्टकः यस्य तेन वैणवेन=वेणोः=वंशस्य अयम् इति [अण्] तेन विशाखिकादण्डेन सर्वाश्च ताः विद्याः=ज्ञानानि तासां सिद्धौ=साफल्ये विघ्नः=विघ्नभूतः यः विनायकः=गणेशः तस्य अपनयने=अपसारणे अङ्कुशेन =सृण्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सततं=निरन्तरं पार्श्वे=समीपे वर्तते इति तथोक्तेन विराजमानं शोभमानम्, न बहु भाषते इति तथोक्तम्, मन्दं हसितुं शीलमस्य तम्, सर्वेषाम् उपकारिणम्-उपकारकम् कुमार-ब्रह्मचारिणम्=बालब्रह्मचारिणम् कुमार-बालादि-शब्दाः भावपरकाः ज्ञेयाः अर्थात् कौमार्यात्=बाल्यात् एव ब्रह्मचारिणम् अतिशयेन तपस्वी=तापसः तम्, महान् चासौ मनस्वी तम्=महामनसम्, कृशः=क्षीणः क्रोधः यस्य तम्, अकृशः=न कृशः अर्थात् महान् अनुरोधः=अनुवर्तनम् परप्रार्थनानुवर्तनमित्यर्थः यस्य तम् अत्युदारमिति यावत् ['अनुरोधोऽनुवर्तनम्' इत्यमरः] महा०—महानगरम्=महापुरम् इव, अदीना=न दीना=दैन्यपूर्णा प्रकृतिः=स्वभावः यस्य तम् उदारस्वभावमित्यर्थः, अथ च अदीनाः=दैन्यरहिताः सम्पन्नाः इति यावत् प्रकृतयः=राज्याङ्गानि प्रजाः वा यस्य तम् ['स्वाम्यमात्य-सुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च' इत्यमरः] मेरु०—मेरुम्=समेरुपर्वतम् इव कल्पतरो =कल्पवृक्षस्य पल्लवानां=किसलयानां राशिवत्=समूहवत् सुकुमारा=सुकोमला छाया कान्तिर्यस्य तम् अथ च कल्पतरुपल्लवराशिभिः सुकुमारा छाया=अनातपः यस्य तम् (सुमेरुपक्षे)। कैलास०—कैलासम्=

टिप्पणी—विशाखिका - इस शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा है। लोग इसके विभिन्न अर्थ करते हैं, जैसे—विशाखिका=भूमिशुद्ध्यर्थमाद्रियमाणा लोहयष्टिरूपा शिक्यभेदो वा' विशाखिका=रुद्राङ्कुशः' 'विशाखिका=विशाखा सा तरोरवयवान्तरम्' 'विशिखादण्डेन=खनित्रलगुडेन' इत्यादि, किन्तु हमारे विचार से इसका अर्थ वही क्यों न लें जो इसके बिगड़े हुए हिन्दी शब्द 'बैसाखी' का है। ऊपर से यह द्विधा विभक्त रहती है। हाथों के आश्रयार्थ साधुलोग इसका प्रयोग किया करते हैं। यहाँ इसे 'आयस-कण्टक' से एक ही तरफ मुड़ा हुआ कहना उसका अंकुश से साम्य करना है; क्योंकि गणेश गजानन हैं और गज को नियन्त्रण में रखने का काम अंकुश से ही लिया जाता है। विघ्नविनायक—गणेश जी

हिन्दी—पाँवों की निर्मल नखकिरणावली द्वारा मानो महानिधि निकालने के चाव से भूतल को खण्ड खण्ड कर रहे थे, जो जल से क्षालित, पवित्र खड़ाउओं के जोड़े से ऐसे लग रहे थे मानो स्वच्छ हंसों का जोड़ा उनके चरणों का सामीप्य छोड़ रहा हो, जो अग्र-भाग पर गड़ी लोहे की टेढ़ी कील वाली, निरन्तर पास में रखी हुई बाँस की बैसाखी से ऐसे शोभायमान थे मानों सकल विद्याओं की सिद्धि में विघ्न-रूप गजानन को हटाने के लिए उन्होंने अंकुश धर रखा हो, जो मितभाषी, मन्द हँसने वाले, सब के उपकारक, बालब्रह्मचारी, महातपस्वी, महामना बहुत कम क्रोधी और बड़े उदार थे, जो उसी तरह दैन्यरहित प्रकृति [स्वभाव] से शोभित थे—जैसे दैन्यरहित प्रकृति [प्रजा] से महानगर शोभित हुआ करता है, जिनकी छाया [कान्ति] उसी तरह मृदु थी जैसी छाया (छाँह) कल्पवृक्ष

मिव पशुपतिचरणरजःपवित्रितशिरसम्, शिवलोकमिव माहेश्वरगणानुयातम्, जलनिधिमिव नदसहस्रप्रक्षालितशरीरम्, जाह्नवीप्रवाहमिव बहुपुण्यतीर्थस्थानशुचिम्, धाम धर्मस्य, तीर्थं तथ्यस्य, कोशं कुशलस्य, पत्तनं पूततायाः, शाला शीलस्य, क्षेत्रं क्षमायाः, शालेयं शालीनतायाः, स्थानं स्थितेः, आधारं धृतेः, आकरं करुणायाः, निकेतनं कौतुकस्य, आरामं रामणीयकस्य, प्रासादं प्रसादस्य, आगारं गौरवस्य, समाजं सौजन्यस्य, सम्भवं सद्भावस्य, कालं कलेः, भगवन्तं साक्षादिव विरूपाक्षं भैरवाचार्यं ददर्श । भैरवाचार्यस्तु दूरादेव राजानं दृष्ट्वा शशिनमिव

टीका—कैलासपर्वतम् इव पशुपतेः=शिवस्य चरणयोः रजसा=धूल्या पवित्रितं=पवित्रीकृतं शिरः=मूर्धा येन तम्, शिवप्रतिभायाः चरणयोः भैरवाचार्येण प्रणामः कृत आसीत्, अन्यत्र पशु'''तम् शिरः=शृङ्गं यस्य तम् शिवो हि कैलासे वसति । शिव०—शिवलोकम् इव माहेश्वराणाम्=महेश्वरः देवता येषामिति माहेश्वराः=शिवभक्ताः तेषां गणेन=समूहेन अनुयातम्=अनुगतम् अन्यत्र महेश्वरस्य इमे माहेश्वराः गणाः=प्रमथाः यत्र ['सङ्घाते प्रमथे गणः' इत्यमरः] । जलनिधि०—जलनिधिः=समुद्रः तम् इव अनेके ये नदाः महानद्यः नद्यश्च तासां सहस्रे प्रक्षालितम्=धौत शरीरं येन, अन्यत्र सहस्रेण क्षालितं शरीरं यस्य तम् । जाह्नवी०—जाह्नव्याः=भागीरथ्याः प्रवाहम् इव बहूनि यानि पुण्यानि=पावनानि तीर्थानि=पवित्रस्थानानि तेषु स्थानम्=अवस्थानं निवासः इत्यर्थः, तेन शुचिम्=पवित्रम्, अन्यत्र बहुपुण्यतीर्थस्थानैः शुचिम् उपरि, सर्वत्र श्लिष्टोपमा धर्मस्य धाम=गृहम् तथ्यस्य=सत्यस्य तीर्थं=पवित्रस्थानम्, कुशलस्य=क्षेमस्य समृद्धेरित्यर्थः, कोशम्=निधानम्, पूततायाः=पवित्रतायाः पत्तनं=नगरम्, शीलस्य=सद्वृत्तस्य शालाम्=कक्षम्, क्षमायाः=क्षान्तेः, क्षेत्रम्=भूमिः, शालीनतायाः=लज्जाशीलतायाः इति यावत् शालेयम्=शालीनां भवनं क्षेत्रम् इति [शालि+ढक्] शालिक्षेत्रम् ['क्षेत्रं व्रैहेय-शालेयं व्रीहिशाल्युद्भवोचितम्' इत्यमरः] स्थितेः=मर्यादायाः शिष्टाचारस्येत्यर्थः स्थानम्, धृतेः=धीरतायाः कारुण्यस्य आधारम्=आश्रयम्, करुणायाः=कारुण्यस्य आकरम्=खनिम् कौतुकस्य निकेतनं=गृहम् अर्थात् तस्य दर्शनस्य सर्वेषामेव कुतूहलं जायते स्म, रामणीयकस्य=रमणीयताया आरामम्=उद्यानम्, प्रसादस्य=प्रसन्नतायाः सद्भावनायाः इति यावत् प्रासादं=हर्म्यं, गौरवस्य=प्रतिष्ठायाः आगारम्=गृहम्, सौजन्यस्य=सज्जनतायाः समाजम्=सम्मेलनम्, सद्भावस्य=सदाशयतायाः सम्भवम्=उद्गमस्थानम्, कलेः=कलियुगस्य कालं=मृत्युम्, उपरि सर्वत्र रूपकम् तच्च मालारूपम् । साक्षात्=प्रत्यक्षम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विरूपाक्षम्=

टिप्पणी—जहाँ विघ्नविनाशक हैं वहाँ विघ्नकारक भी होते हैं इसीलिए उन्हें विघ्नराज और विघ्नेश्वर' पुकार कर प्रार्थना की जाती है—'अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा' । गणेश विद्या के अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं। भैरवाचार्य को देखो तो वे सर्वविद्यासिद्धि' चाहते हैं, अतः गणेश का विघ्न करना स्वाभाविक है अथवा 'विघ्नानां विशिष्टः नायकः विनायकः महद्विघ्नः इत्यर्थः' ऐसा भी अर्थ हो सकता है । जह्नु—सुहोत्र पुत्र राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे । उधर राजा भगीरथ अपनी साधना के बल से गंगा को स्वर्ग से उतारकर भूतल से पाताल ले जा रहे थे तो रास्ते में गंगा जह्नु के यज्ञ-स्थल डुबाए जा रही थी, जह्नु कुपित हुए और सारी गंगा को पी गए । ऋषियों, विशेषतः भगीरथ के अनुनय विनय पर उन्होंने अपने कान से गंगा को बाहर निकाल दिया, इसीलिए गंगा तब से जाह्नवी जह्नुसुता पुकारी जाने लगी ।

हिन्दी—के पल्लव समूह से हुआ करती है, जिनका शिर (माथा) उसी तरह शंकर [की मूर्ति] की चरण रज से माहेश्वरों जैसे पवित्र हुआ रहता था जैसे कैलास पर्वत का शिर (शिखर) शंकर के चरण-रज से पवित्र होता है, जिनके पीछे पीछे (शिवभक्तों) का गण उसी तरह चलता रहता था जैसे कि शिवलोक में माहेश्वर शिवसम्बन्धी गण (प्रमथादि) चलते रहते हैं, जिन्होंने (अपना) शरीर इस तरह अनेक नद नदियों के सहस्र में प्रक्षालित (स्नान) कर रखा है जैसे कि समुद्र का शरीर अनेक नद-नदियों के सहस्र से प्रक्षालित (धौत) हुआ रहता है, जो बहुत से पुण्य तीर्थों में निवास करने से ऐसे पवित्र हो गये थे जैसे भागीरथी का प्रवाह बहुत से पुण्य तीर्थस्थानों से पवित्र हुआ रहता है, जो धर्म के धाम, सत्य के तीर्थ, कल्याण के निधि, पवित्रता के नगर, सद्वृत्त की शाला, क्षमा के क्षेत्र, नम्रता के धान्य-क्षेत्र, मर्यादा के स्थान, धैर्य के आधार, करुणा की खान, कुतूहल के घर, रमणीयता के उद्यान, प्रसन्नता के प्रासाद, गौरव के भवन, संज्जनता के समाज तथा सद्भावना के उत्पत्तिस्थान थे और ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो साक्षात् भगवान् शंकर हो । भैरवाचार्य दूर से ही राजा को देखकर इस तरह चंचल हो उठे जैसे चन्द्रमा को देखकर

जलनिधिश्चचाल। प्रथमतरोत्थितशिष्यलोकश्चोत्थाय प्रत्युज्जगाम समर्पितश्रीफलोपायनश्च जह्नुकर्णसमुद्गीर्यमाण-गङ्गाप्रवाहह्रादगम्भीरया गिरा स्वस्तिशब्दमकरोत्।

नरपतिरपि प्रीतिविस्तार्यमाणधवलिम्ना चक्षुषा प्रत्यर्पयन्निव बहुतराणि पुण्डरीकवनानि ललाटपट्टपर्यस्तेन चोदंशुना शिखामणिना महेश्वरप्रसादमिव तृतीयनयनोद्गमेन प्रकाशयन्नावर्जितकर्णपल्लवपलायमानमधुकरः शिवसेवा-समुन्मूलिताशेषपापलवमुच्यमान इव दूरावनतः प्रणाममभिनवं चकार। आचार्योऽपि—'आगच्छ। अत्रोपविश' इति शार्दूलचर्मात्मीयमदर्शयत्। उपदर्शितप्रश्रयस्तु राजा मत्तहंसकलगद्गदस्वरसुभगां मधुरसमयीं महानदीमिव प्रवर्तयन्

टीका—शिवम् भैरवाचार्यं ददर्श=दृष्टवान्[पुष्पभूतिः], शशिनम्=चन्द्रम् इवेत्युपमायाम् जलनिधिः=समुद्रः चचाल =चाञ्चल्य प्राप, स्वाभाविकधीरतामपहाय किमपि चलितहृदयो बभूवेति भावः। स्वभावधीरः समुद्रोऽपि चन्द्रागमेन उच्छलति। प्रथमतरम्=भैरवाचार्यापेक्षया पूर्वम् उत्थितः शिष्यलोकः=छात्रगणः यस्य सः उत्थाय=उत्थितो भूत्वा प्रत्युज्जगाम=राज्ञः स्वागतार्थमग्रे आगतः इत्यर्थः, समर्पितं=दत्त श्रीफलोपायनं=श्रीफलोपहारः येन सः, श्रीफलं बिल्वमुच्यते शिवस्य प्रियत्वात् ['बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषो मालूर-श्रीफलावपि' इत्यमरः] जह्नोः एतत्संज्ञक-राजविशेषस्य कर्णात्=श्रोत्रात् समुद्गीर्यमाणः=निस्सार्यमाणः इत्यर्थः, यः गङ्गायाः प्रवाहः तस्य ह्रादवत्=निनाद-वत् गम्भीरया=धीरया गिरा=वाचा स्वस्ति शब्दम्='स्वस्ति' इति शब्दम् अकरोत्=कृतवान्।

नरपतिः=पुष्पभूतिः अपि प्रीत्या=प्रसन्नतया विस्तार्यमाणः=वितन्यमानः धवलिमा=श्वेतिमा यस्य तेन चक्षुषा नेत्रेण प्रत्यर्पयन्=प्रतियच्छन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, बहुतराणि=भैरवाचार्यापेक्षया अधिकतराणि पुण्डरीक-वनानि=श्वेतकमलराशीनित्यर्थः, राज्ञा तं प्रति श्वेतचक्षुः प्रसारितम् कविरुत्प्रेक्षते। भैरवाचार्येण पञ्चैव राजत-पुण्डरीकाणि राज्ञे उपायनीकृतान्यासन् तत्स्थाने राजा तु श्वेतदृष्टि-रूपाणि बहुतराणि पुण्डरीकाणि प्रत्युपायनी-करोतीव। ललाटपट्टे=भालफलके पर्यस्तेन=भैरवाचार्यस्य प्रणामावसरे=पतितेन लम्बमानेनेत्यर्थः, उत्=उद्गता अंशवः=किरणाः यस्य तेन, शिखा-मणिना=चूडामणिना महेश्वरस्य=भगवतः शङ्करस्य प्रसादम्=अनुग्रहम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, तृतीयस्य नयनस्य उद्गमेन=उत्पत्त्या प्रकाशयन्=प्रकटयन्, शिवभक्तत्वात् चूडामणिः शिवकृपयोप-लब्धं तृतीयं चक्षुरिव प्रतीयते स्मेति भावः। आवर्जितः=प्रणामसमये नीचैः कृतः यः कर्ण-पल्लवः=श्रोत्रकिसलयः तस्मात् पलायमानाः अपसरन्तः मधुकराः=भ्रमराः यस्मात् सः, शिवस्य सेवया समुन्मूलिताः=समुत्पाटिताः अशेषाणां=समग्राणां पापानां ये लवाः=लेशाः तैः मुच्यमानः=त्यज्यमानः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दूरम्=अतिनीचैः इत्यर्थः, अवनतः निम्नीभूतः अभिनवं=नूतनम् असाधारणं वा प्रणामं चकार=कृतवान् प्रणामस्यैतदेव अभिनवत्वं यत् तेन सह पूर्वोक्तविचित्र परिणामाः आसन्। आत्मनः इदम् आत्मीयं शार्दूलस्य=व्याघ्रस्य चर्म=त्वक् अदर्श-यत् उपवेशनार्थमिति शेषः। उपदर्शितः=प्रकटितः प्रश्रयः=विनयः येन स मत्तः=मुदितः यः हंसः तस्य कलः अस्पष्टमधुरः गद्गदः=स्खलदक्षरः यः स्वरः=कण्ठध्वनिः अन्यत्र तद्वत् तेन सुभगां=रम्यां मधुरसमयीं=माधुर्य-पूर्णाम् (वाचम्) अथ च मधुः=मधुरः रसः=जलं तन्मयीम् महानदीम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रवर्तयन्=प्रेरयन्, अन्यत्र

हिन्दी—जलनिधि चंचल होता है। शिष्य लोगों के पहले ही उठ चुकने पर उन्होंने उठकर (राजा की) अगवानी की। श्रीफल भेंट करते हुए जह्नु राजा के कान से निकल रहे गंगा-प्रवाह के शब्द की तरह गम्भीर वाणी से 'स्वस्ति' शब्द कहा। राजा ने प्रसन्नता में (अपनी) श्वेतिमा फैलाती हुई आँख से बदले में ढेरों पुण्डरीकों को अर्पण करते हुए—जैसे भालस्थल पर पड़े, ऊपर किरणें फैलाते हुए चूड़ामणि के रूप में तीसरी आँख निकल आने से शंकर भगवान् का अनुग्रह जैसे दिखाते हुए, नीचे झुके हुए कर्ण-पल्लव से भाग जाते हुए भ्रमरों से शिव-सेवा द्वारा जड़ मूल से विनष्ट सभी पाप-लवों से जैसे उन्मुक्त होते हुए, खूब नीचे झुके हुए असाधारण प्रणाम किया। भैरवाचार्य ने भी—'आओ, यहाँ बैठो' इस तरह [कहकर] अपना व्याघ्र-चर्म दिखाया। किन्तु विनय भाव दर्शाते हुए राजा हर्षोन्मत्त हंस की अस्पष्ट-मधुर, (हर्ष) गद्गद ध्वनि से रमणीय, मधुरस (मधुर जल) वाली महानदी जैसी हर्षोन्मत्त हंस की अस्पष्ट-मधुर गद्गद ध्वनि के समान रमणीय एवं मधुररस (माधुर्य)-पूर्ण वाणी को प्रवाहित करता हुआ बोला—'भगवन्,

वाचं व्याजहार—'भगवन् नार्हसि मामन्यनृपस्खलितैः खलीकर्तुम्। अशेषराजकोपेक्षिताया हतलक्ष्म्याः खल्वयं शीलापराधो द्रविणदौरात्म्यं वा यदेवमाचरति मयि गुरुः। अभूमिरयमुपचाराणाम्। अलमतियन्त्रणया। दूरस्थितोऽपि मनोरथशिष्योऽयं जनो भवताम्। माननीयं च गुरुवन्नोल्लङ्घनमर्हति गुरोरासनम्। आसतां च भवन्त एवात्र' इति व्याहृत्य परिजनोपनीते वाससि निषसाद। भैरवाचार्योऽपि प्रीत्यानतिक्रमणीयं नृपवचनमनुवर्तमानः पूर्ववत्तदेव व्याघ्राजिनमभजत।

आसीने च सराजके परिजने शिष्यजने च समुचितमर्घ्यादिकं चक्रे। क्रमेण च नृपमाधुर्यहृतान्तःकरणः शशिकरनिकरविमला दशनदीधितीः स्फुरन्तीः शिवभक्तीरिव साक्षाद्दर्शयन्नुवाच—'तात, अतिनम्रतैव ते कथयति

टीका—प्रवाहयन् वाचं=वाणी व्याजहार=जगाद। न अर्हसि=योग्योसि माम् अन्येषां नृपाणां स्खलितैः=अपकर्मभिः=दोषैरित्यर्थः खलीकर्तुम्=अखलम्=अदुष्टं खल=दुष्ट सम्पद्यमानं कर्तुम् इति खलीकर्तुम् [अभूततद्भावे च्विः] अर्थात् अन्यराजानां दोषाणां कारणात् मां दोषिण कर्तुं भवतां नोचितम्; अशेष=निखिलं यद् राजकम्=राज्ञां समूहः तेन उपेक्षितायाः=परित्यक्तायाः अत्र परित्याग-कारण लक्ष्म्याः दुःशीलत्वं बोध्यम्, अथवा उपेक्षितायाः हतलक्ष्म्याः=पापिन्याः राजश्रियः शीलस्य=चरित्रस्य अपराधः=दोषः द्रविणस्य=धनस्य वा दौरात्म्य=दुःस्वभावत्व यत् येन गुरुः भगवान् मयि मां प्रति एवम् आचरति=व्यवहरति; अयम्=एष जनः अहमिति यावत् उपचाराणां=शिष्टाचाराणां यथाविधि वर्तनानाम् अत्यादराणामिति यावत् अभूमिः=अपात्रम् अतिशयितया नियन्त्रणया=क्लेशेन उपचारेणेत्यर्थः अलम् अर्थात् प्रत्युद्गमनादि शिष्टाचारः न कर्तव्यः. अयं जनः=अहमित्यर्थः मनोरथेन शिष्यः, दूरस्थितत्वात् प्रत्यक्षशिष्यो न भूत्वाऽपि मनोरथेन आत्मानं भवच्छिष्यं कृतवानस्मि, भवतां शिष्यो भवितुमिच्छमिति भावः. गुरुवत्=गुरुसमान माननीयं=मानार्हगुरोः आसन=व्याघ्रचर्मेत्यर्थः न उल्लङ्घनम्=पादाभ्याम् आक्रमणम् अर्हति अर्थात् गुरोः आसने उपवेष्टुं मम नोचितम् शिष्यत्वात्। आसताम्=उपविशन्तु व्याहृत्य=कथयित्वा परिजनेन=भृत्यजनेन उपनीतं समीपं आनीते वाससि=वस्त्रे निषसाद=निषण्णवान् स्थितः इत्यर्थः। प्रीत्या=प्रेम्णा अनतिक्रमणीयम्=अनुल्लङ्घनीय नृपस्य=पुष्पभूतेः वचन=कथनम् अनुवर्तमानः=स्वीकुर्वन्नित्यर्थः व्याघ्राजिनं=व्याघ्र-चर्म अभजत=सेवितवान् तत्रोपविष्टः इत्यर्थः।

आसीने=उपविष्टे राजकेन=राजसमूहेन सहिते परिजने=भृत्यवर्गे शिष्यजने=शिष्यवर्गे च समुचितम् अर्घ्यादिकम्=अर्घ्यम् आदि यस्मिन् तथाभूत पूजाविधानं राज्ञः चक्रे=कृतवान् भैरवाचार्यः इति शेषः। नृपस्य माधुर्येण=माधुर्यपूर्णव्यवहारेण हृतम्=आकृष्टम् अन्तःकरण हृदयं यस्य सः, शशिनः=चन्द्रस्य यः कराणां=रश्मीनां निकरः=समूहः तद्वद् विमलाः=स्वच्छाः दशनानां=दन्तानां दीधितीः=किरणान् स्फुरन्तीः=

टिप्पणी—खली-कृ—भावार्थ यह है कि अन्य राजाओं ने अपराध किये होंगे, आप जैसे यतियों के प्रति आदरभाव नहीं दिखाया होगा और आपके साथ एक ही आसन पर बैठ गए होंगे। किन्तु मैं आपके आसन पर नहीं बैठ सकता, क्योंकि आप मेरे मानार्ह हैं। राजकोपेक्षितायाः—आप जो मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हैं यह उस मुई लक्ष्मी के स्वभाव का दोष है जिसके लिए सभी राजा तरसते हैं और मरते हैं और लक्ष्मी-प्राप्ति से खल बन जाते हैं, पूज्यों का आदर नहीं करते हैं पर मैं उन राजाओं में नहीं हूँ जो आपके साथ एक आसन पर बैठने की 'खलता' कर बैठूं। यहाँ 'उपेक्षित' शब्द का 'अपेक्षित' अर्थ लेना ही ठीक लगता है 'परित्यक्त' अर्थ बिलकुल अप्रसक्त है जो आम हुआ करता है। प्राचीन संस्कृत में उप+ईक्ष् का अर्थ 'अच्छी तरह देखना' भी होता है जैसे 'तदेतेनोपेक्षितव्यम्'।

हिन्दी—अन्य राजाओं के दोषों से आपको मुझे दोषी नहीं बनाना चाहिए। यह तो सभी राजाओं द्वारा चाही जाने वाली मुई राजलक्ष्मी का चरित्र-दोष है अथवा धन का दुराचार है जो आप मेरे साथ ऐसा आचरण कर रहे हैं। मैं औपचारिकताओं का पात्र नहीं हूँ। अतिकष्ट न कीजिए। दूर रहता हुआ भी यह जन मनोरथ द्वारा आपका शिष्य (बना हुआ) है। गुरु की तरह गुरु का आसन (भी) मान्य और लंघन-अयोग्य होता है। आप ही इस पर विराजिए" यह कहकर भृत्यों द्वारा लाये हुए वस्त्र पर बैठ गया। भैरवाचार्य भी अनुल्लंघनीय राजा के वचन प्रेम के कारण स्वीकार करते हुए पूर्ववत् उसी व्याघ्र-चर्म पर बैठ गए। राजाओं सहित भृत्यजन और शिष्यजन के बैठ जाने पर (भैरवाचार्य ने) राजा का यथोचित अर्घ्यादि [द्वारा संमान] किया और क्रम से हृदय में राजा के माधुर्य से आकृष्ट हुए चन्द्रमा की किरणावली की तरह निर्मल, चमकती हुई दन्तच्छटाओं को

गुणानां गौरवम्। सकलसम्पत्पात्रमसि। विभवानुरूपास्तु प्रतिपत्तयः। जन्मनः प्रभृत्यदत्तादृष्टिरस्मि स्वापतेयेषु। यतः सकलदोषकलापानलेन्धनैर्धनैरविक्रीतं क्वचिच्छरीरकमस्ति। भैक्षरक्षिताः सन्ति प्राणाः। दुर्गृहीतानि कतिचिद्वि-द्यन्ते विद्याक्षराणि। भगवच्छिवभट्टारकपादसेवया समुपार्जिता कियत्यपि सन्निहिता पुण्यकणिका। स्वीक्रियतां यदत्रोपयोगार्हम्। प्रतनुगुणग्राह्याणि कुसुमानीव हि भवन्ति सतां मनांसि। अपि च विद्वत्संमताः श्रूयमाणा अपि सुखयन्ति साधवः शब्दा इव, सुधीरेऽपि हि मनसि यशांसि कुर्वन्ति विवरं, विशतः कुतूहलस्य फेनधवलैः स्रोतोभिरिवापह्रियमाणो गुणगणैरानीतोऽस्मि कल्याणिना' इति।

टीका—भासमानाः शिवभक्तीः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् साक्षात्=प्रत्यक्षं दर्शयन्=प्रकटयन् उवाच=उक्तवान्=आतनम्रता =अतिशयितो विनयः ते=तव गुणानां=दाक्षिण्यादीनां गौरवम् महत्ताम् भारवत्त्वञ्च। सकलानां=समग्राणां सम्पदाम्=सम्पत्तीनां पात्रं भाजनम् असि। विभवस्य=अनुरूपाः=योग्याः प्रतिपत्तयः=कार्याणि व्यवहाराः इति यावत्। लोकाः तनीयस्या अपि धनसम्पत्त्या दृप्ता जायन्ते, त्वं तु अनन्तवैभववानपि सन् एवं विनीतः इति ते गुणानां माहात्म्यम् इति भावः। जन्मनः प्रभृति=आरभ्य अहं स्वापतेयेषु=धनेषु ['द्रव्यं वित्तं स्वापतेयम्' इत्यमरः स्वं=धनम् तस्य पतिः धनीत्यर्थः तस्मिन् साधुः इति स्वपति+ढञ् ['पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' पा० ४।४।१४४] न दत्ता दृष्टिः ध्यानमित्यर्थः येन सः। सकला ये दोषाः अवगुणाः तेषां कलापः=समूहः एव अनलः= वह्निः तस्य इन्धनैः=काष्ठैः, अत्र परम्परितरूपकम्, धनैः=द्रव्यैः अविक्रीतं=न विक्रीतं क्वचित्=कुत्रापि शरीरकं=तुच्छं शरीरम् [तुच्छार्थे कः] अस्ति न क्वापीति काकुः अर्थात् सर्वे जनाः धनसङ्ग्रहणाय स्वशरीरं विक्रीणते धनञ्च विविधदोषाननुवर्तते। भिक्षा एव भैक्षम् [स्वार्थे अण्] तेन रक्षिताः=पालिताः प्राणाः =जीवनमित्यर्थः। दुर्गृहीतानि=दुःखेन गृहीतानि कतिचित्=कतिपयानि विद्यायाः=ज्ञानस्य अक्षराणि=वर्णाः। एतेन भैरवाचार्यस्य विनम्रता द्योत्यते। भगवान् शिवः एव भट्टारकः=पूज्यः मम स्वामीत्यर्थः तस्य पादयोः= चरणयोः सेवया=सेवनेन समुपार्जिता=लब्धेत्यर्थः कियती अपि=लघ्वी इत्यर्थः पुण्यस्य कणिका=क्षुद्रकणः। अत्र उपर्युक्त-वस्तुषु अर्थात् प्राणाः विद्या, पुण्यकणिका इत्येतेषु यत् भवतः उपयोगस्य अर्हं=योग्यं तत् स्वीक्रियतां =गृह्यतामित्यर्थः। प्रतनवः=अतिलघवः ये गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः तैः ग्राह्याणि=आकर्षणीयानि हरणीयानीति यावत् अथ च प्रतनवः=अतिसूक्ष्माः ये गुणाः=तन्तवः तैः ग्राह्याणि=बद्धव्यानि=ग्रथनीयानीति यावत् कुसुमानि =पुष्पाणि इवेत्युपमायाम् सतां=सज्जनानां मनांसि हृदयानि। एतदौपम्येन सिध्यति यत् साधूनां हृदयानि 'मृदूनि कुसुमादपि' भवन्ति विद्वद्भिः=सुधीभिः संमताः=मान्याः अन्यत्र स्वीकृताः [शब्दाः] श्रूयमाणाः=श्रुति-पथं नीयमानाः ननु प्रत्यक्षीक्रियमाणाः साधवः=व्याकरणदृष्ट्या शुद्धाः शब्दाः इवेत्युपमायाम् साधवः=सज्जनाः सुखयन्ति=सुखिनः कुर्वन्ति जनान् ['सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते' सि० कौ०] यशांसि=कीर्तयः साधूनामिति शेषः। सुधीरे=अतिदृढे अपि मनसि=हृदये विवरं=छिद्रं गृहं कुर्वन्ति अर्थात् स्वप्रभावं स्थापयन्ति, विशतः=मम हृदयं प्रविशतः कुतूहलस्य=भवद्विषयककौतुकस्य फेनेन=हिण्डीरेण धवलैः=श्वेतैः स्रोतोभिः=धाराभिः

टिप्पणी—विशतः—भाव यह है कि जब तक मैंने आपको देखा नहीं था मेरा हृदय आपको देखने की उत्सुकता में बहा सा जा रहा था। किन्तु अब मैंने आपको देख लिया है, इसलिए अब आप मेरी उत्सुकता ही नहीं प्रत्युत हृदय पर भी अधिकार कर रहे हैं। बहता हुआ कोई भी व्यक्ति रस्सियों (गुणगण) से ही अपने पास लाया जा सकता है। यहाँ उत्सुकता की नदी से समता बताई गई है।

हिन्दी—साक्षात् शिव-भक्तियों को मानो दिखाते हुए बोले—'तात, तुम्हारी अति नम्रता ही तुम्हारे गुणों का उत्कर्ष कह रही है। सभी सम्पत्तियों के पात्र हो। सम्पत्ति के अनुरूप ही तुम्हारे आचरण हैं। मेरी तो जन्म से लेकर धन-सम्पत्ति पर दृष्टि ही नहीं गई है क्योंकि सकल दोष-समूह-रूपी अग्नि के इन्धन बने हुए धन से न खरीदा हुआ कहीं कोई तुच्छ शरीर है? भिक्षा से [मैंने] प्राणों की रक्षा कर रखी है। बड़ी कठिनाई से प्राप्त [मेरे पास] कुछ विद्या के अक्षर हैं। शंकर भगवान् प्रभु की सेवा द्वारा अर्जित छोटी सी पुण्य की कणी मेरे पास है। इनमें से जो भी आपके काम आने योग्य हो स्वीकार कर लें। प्रतनु [बड़े पतले] गुण (धागे) से बाँधे जाने योग्य फूलों की तरह सज्जनों के मन प्रतनु (थोड़े से) गुण (दया दाक्षिण्यादि) से बन्धन में आ जाया करते हैं। अपि च, विद्वानों द्वारा सम्मत (स्वीकृत) सुने जाते हुए साधु (व्याकरण-शुद्ध) शब्दों की तरह विद्वानों द्वारा सम्मत (मान्य) सुनने में आते

राजा तु तं प्रत्यवादीत्—'भगवन्, अनुरक्तेष्वपि शरीरादिषु साधूनां स्वामिन एव प्रणयिनः । [illegible]जितमेव चापरिमितं कुशलजातम् । अनेनैवागमनेन स्पृहणीयं पदमारोपितोऽस्मि गुरुणा ।' इति विविधाभिश्च कथाभिश्चिरं स्थित्वा गृहमगात् ।

अन्यस्मिन्दिवसे भैरवाचार्योऽपि राजानं द्रष्टुं ययौ । तस्मै च राजा सान्तःपुरं सपरिजनं सकोषमात्मानं निवेदितवान् । स च विहस्योवाच—'तात, क्व विभवः, क्व च वयं वनवर्धिताः । धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता खद्योतानामिवास्माकमियमपरोपतापिनी राजते तेजस्विता । भवादृशा एव भाजनं भूतेः' इति स्थित्वा च किञ्चित्कालं जगाम ।

टीका—इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अपह्रियमाणः=प्रवाह्यमानः गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनाम् एव गुणानां रज्जूनां गणैः =समूहैः आनीतः=आहूतः कल्याणिना=कल्याणवता भवतेत्यर्थः । अत्र श्लिष्ट-रूपकम् ।

प्रत्यवादीत्=प्रत्युवाच—साधूनां=सज्जनानाम् अनुरक्तेषु=प्रियेषु अनुरक्तं शरीरादिकं न भवति अपितु साधवः तत्र अनुरक्ताः भवन्ति अतः एवानुरक्त-शब्दोऽत्र प्रियपर्यायः, प्रणयिनः=मित्राणि अर्थात् अहं भवत्सेवां न अपितु भवन्तमेवेच्छामि । युष्माकं दर्शनात्=साक्षात्कारात् अपरिमितं प्रभूत कुशलजातम्=कल्याणसमूहः उपार्जितम् एव=प्राप्तमेवेत्यर्थः । अनेन एव मम अत्र आगमनेन गुरुणा=भवतेत्यर्थः अहं स्पृहणीयं=स्पृहा-योग्य पदं स्थानम् आरोपितः प्रापितः इत्यर्थः अस्मि । अर्थात् अहमत्रागतः भवता च मया सह यादृशः भद्रव्यवहारः कृतः तेनाहम् परमोच्चपदमारोपितोऽस्मि विविधाभिः=विभिन्नप्रकाराभिः कथाभिः=वार्तालापैः गृहम् अगात्=अगच्छत् ।

अन्यस्मिन्दिवसे=अपर-दिने राजानं द्रष्टुं=साक्षात्कर्तुं ययौ=जगाम । अन्तःपुरेण=अवरोधेन सहितं परिजनेन भृत्यवर्गेण सहितं कोषेण=निधिना सहितम् आत्मानं निवेदितवान्=समर्पितवानित्यर्थः । नवधा भक्तौ आत्मनिवेदनम् अन्तिमा भक्तिः । यथोक्तम् 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्' । सः=भैरवाचार्यः विहस्य=हसित्वा उवाच=कथितवान्—तात क्व विभवः=वैभवम् धनसम्पत्तिरित्यर्थः क्व च वने=अरण्ये वर्धिताः=वृद्धिं प्राप्ताः । अत्र विरूपयोः संघटनाद् 'विषमालङ्कारः' धनस्य उष्मणा=तापेन लता इव मनस्वित=उच्चमनस्कता अलम्=अतिशयेन म्लायति=म्लाना भवति । खद्योतानां=खे=आकाशे द्योतन्ते=भ्राजन्ते इति खद्योताः=ज्योतिरिङ्गणाः तेषाम् इवेत्युपमायाम् । अपरो०=न परान् तापयितुं शीलं यस्याः तथाभूता तेजस्विता=तेजोवत्ता राजते=दीप्यते । भूतेः=विभवस्य धनसम्पत्तेरित्यर्थः भवादृशाः=भवन्तः इव ये जनैरिति [भवत्+√दृश्+अच्) युष्मत्सदृशाः जना एव=निश्चयेन भाजनं=पात्रम्, कञ्चित् कालम् [कालस्यात्यन्तसंयोगे द्वि०] जगाम=अगच्छत् ।

हिन्दी—हुये साधु (सज्जन) लोग (सबको) सुखी कर देते है, (साधुओं के) यश दृढ़तर चित्त में भी छेद (घर) कर देते हैं, (हृदय में) प्रवेश करते हुए कुतूहल (उत्सुकता) के फेन-श्वेत प्रवाहों द्वारा ले जाते हुए मुझे आप भगवान् (अपने) गुणों (दया दाक्षिण्यादि) रूपी गुणों (रस्सियों) के समूह से (अपने पास खींच) लाये हों'।

राजा ने उत्तर में कहा—"भगवन् ! प्रिय होते हुए भी सज्जनों के शरीरादि के स्वामी निश्चय से प्रणयी जन हुआ करते हैं । आपके दर्शन से मैंने ढेरों में बहुत से कल्याण अर्जित कर लिए हैं। (यहाँ मेरे) इस आगमन से आपने (मुझे) स्पृहणीय पद पर बिठा दिया है।" इस प्रकार विविध वार्तालापों से देर तक ठहर कर (राजा) घर चला गया ।

इसके बाद दूसरे दिन भैरवाचार्य भी राजा को देखने आए । राजा ने अन्तःपुर, भृत्यवर्ग और कोश सहित अपने आपको उन्हें अर्पण कर दिया । वे बोले—'प्रिय ! कहाँ धन-सम्पत्ति और कहाँ वन में पले पुसे हम ! मनस्विता लता की तरह धन की गर्मी से बुरी तरह मुरझा जाती है । हमारी तेजस्विता जुगनुओं की सी चमक रखती है, दूसरों को ताप नहीं पहुँचाती । धन-सम्पत्ति के पात्र आप-जैसे ही हुआ करते हैं'—और कुछ समय वे ठहरकर चल दिए ।

परिव्राजक उसी क्रम से पाँच-पाँच चाँदी के कमल भेंट करता रहा । किन्तु एक बार वह श्वेतवस्त्र में लिपटा हुआ कुछ (पदार्थ) लेकर प्रविष्ट हुआ । बैठकर और पहले की तरह कुछ समय ठहर कर

परिव्राट् तेनैव क्रमेण पञ्च पञ्च राजतानि पुण्डरीकाण्युपायनीचकार । एकदा तु श्वेतकर्पटावृतं किमप्यादाय प्राविशत् । उपविश्य च पूर्ववत्स्थित्वा मुहूर्तमब्रवीत्—'महाभाग, भवन्तमाह भगवान्ययास्मच्छिष्यः पातालस्वामिनामा ब्राह्मणः । तेन ब्रह्मराक्षसहस्तादपहृतो महासिरट्टहासनामा । सोऽयं भवद्भुजयोग्यो गृह्यताम्' । इत्यभिधायापहृत-कर्पटावच्छादनात्परिवाराटाचकर्ष शरद्गगनमिव पिण्डतां नीतम्, कालिन्दीप्रवाहमिव स्तम्भितजलम्, नन्दकजिगीषया कृष्णकोपितं कालियमिव कृपाणतां गतम्, लोकविनाशाय प्रकाशितधारासारं प्रलयकालमेघखण्डमिव नभस्तलात्पतितम्,

---

टीका—परिव्राट्=भैरवाचार्येण पूर्वं-प्रेषितः सन्यासी तेन एव क्रमेण=पूर्ववदित्यर्थः राजतानि=रौप्यमयानि उपायनीचकार= [अभूततद्भावे च्विः] उपहार-रूपेण समर्पितवानित्यर्थः । एकदा श्वेतेन=धवलेन कर्पटेन =वस्त्रेण आवृतं=वेष्ठितं किमपि आदाय=गृहीत्वा प्राविशत=प्रविष्टवान् । मुहूर्तं=किञ्चित्कालम् अब्रवीत्=अवदत्—भगवान्=पूज्यः भैरवाचार्यः अस्माकं शिष्यः पातालस्वामी नाम यस्य सः । तेन ब्रह्म-राक्षसस्य हस्तात्=करात् अपहृतः=आच्छिन्नः महान् चासौ असिः=खड्गः अट्टहासः नाम यस्य तथाभूतः, भवतः भुजयोः=बाह्वोः योग्यः=उचितः गृह्यताम्=स्वीक्रियताम् इति अभिधाय=कथयित्वा अपहृतं=दूरीकृतं कर्पटस्य=वस्त्रस्य अवच्छादनं=परिवेष्टनं यस्य तस्मात् परिवारात्=कोषात् आचकर्ष =आकृष्टवान् कृपाणमित्यनेनान्वयः तस्यैव विशेषणानि—शरदः=शरत्कालस्य गगनम्=आकाशम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पिण्डतां=लोहत्वम् ['लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी' इत्यमरः] कृपाणः शरदाकाशवत् निर्मल नीलश्चासीदिति भावः । स्तम्भित=रुद्धं जडीकृतमित्यर्थः जल यस्य तम् । कालिन्द्याः कालिन्दपर्वतनिर्गतायाः यमुनायाः प्रवाहम्=जलधारामिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, नन्दकस्य=विष्णोः खड्गस्य जिगीषया=जेतुमिच्छया कृष्णेन=विष्णोरवतारेण कोपितं=कोपं प्रापितं कालियम् एतन्नामक-नागविशेषम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्=कृपाणतां=खड्गत्वं गतं=प्राप्तम्, लोकस्य=जगतः विनाशाय=विध्वंसाय प्रकाशितः धाराणां=जलधाराणाम् आसारः=धारासम्पातः ['धारासम्पात आसारः' इत्यमरः] अन्यत्र प्रकाशितः धारायाः=अग्रस्य सारः=बलं येन तम्, प्रलय-कालस्य=कल्पान्तसमयस्य मेघस्य=पुष्करस्य आवर्तकस्य वा खण्डं=शकलम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पुराणानुसारं प्रलयकाले एकोनपञ्चाशत् पवनाः द्वादशादित्याः पुष्करावर्तकमेघौ चोद्यन्ति, कादम्बर्यामपि वाणेनोल्लिखितम्—महाप्रलयेषु प्रलयपयोदाः प्रलयदुर्दिनान्धकारितदशदिशः प्लावयन्ति भुवनान्तराणि, नभस्तलात्=आकाशप्रदेशात् पतितम्=नीचैः आगतम्, दृश्यमानं=वीक्ष्यमाणं विकटं=करालं मण्डलं=दशन-पङ्क्तिः यस्मिन् तम् । हिंसायाः=

टिप्पणी—ब्रह्मराक्षस—जो दुष्ट ब्राह्मण अपने जीवन में पाप, पर-स्त्रियों का अपहरण एवं ब्राह्मणों की सम्पत्ति लेना आदि जघन्य काम करता रहे, मरने पर उसकी आत्मा ब्रह्मराक्षस अथवा ब्रह्म-पिशाच बनती है, देखिए याज्ञ०—'परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च । अरण्ये निर्जले देशे भवति ब्रह्मराक्षसः' ३।२१२।

कालिय—इस नाम का एक नाग यमुना के जल में रहकर सारी यमुना को विषाक्त किये हुए रहता था। कदम्ब के सिवाय अन्य कोई भी वृक्ष किनारे जम नहीं सकता था । कृष्ण भगवान् ने खेल ही खेल में जल में कूद कर उसके फणों को कुचल डाला था जिससे वह भगवान् पर बहुत कुपित हो गया था ।

हिन्दी—बोला—"महाभाग, भगवान् (भैरवाचार्य) ने आपको कहा है कि पातालस्वामी नाम का ब्राह्मण हमारा शिष्य है । उसने ब्रह्मराक्षस के हाथ से अट्टहास नाम का एक बड़ा भारी खड्ग छीना है । वह आपकी भुजा के योग्य है, ग्रहण कीजिय" यह कहकर उसने कपड़े का आवरण हटाए हुए म्यान से खड्ग को खींच लिया—जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो शरत्काल का गगन पिण्डरूप में लाया गया हो, मानो रुके हुए जल वाला यमुना का प्रवाह हो, मानो नन्दक को जीतने की इच्छा से कृष्ण भगवान् द्वारा कुपित किया हुआ कालिय नाग (हो) कृपाण का रूप धारण किए हुए हो, मानो चमकती हुई तेज धार के रूप में मुसलाधार पानी बरसाते प्रलयकाल के मेघ का एक टुकड़ा आकाश से गिर पड़ा हो, दिखाई दे रही दन्त-राजियों वाला मानो हिंसा का हास हो, जो दृढ़ मुष्टि (मूठ) लिए हुए ऐसा दीख रहा था—जैसे दृढ़ता से मुष्टि (मुष्टिकासुर) को पकड़े हुए भगवान् विष्णु (बलराम) का बाहुदण्ड हो, सकल भुवन के प्राण लेने की क्षमता रखने

दृश्यमानविकटदन्तमण्डलं हासमिव हिंसायाः, हरिबाहुदण्डमिव कृतदृढमुष्टिग्रहम्, सकलभुवनजीवितापहरणक्षमेण कालकूटेनेव निर्मितम्, कृतान्तकोपानलतप्तेनेवायसा घटितम्, अतितीक्ष्णतया पवनस्पर्शेनापि रुषेव क्वणन्तम्, मणि-समाकुट्टिमपतत्प्रतिबिम्बच्छद्मनात्मानमपि द्विधेव पाटयन्तम्, अरिशिरश्छेदलग्नैः कचैरिव किरणैः करालितधारम्, मुहुर्मुहुस्तडिदुन्मेषतरलैः प्रभाचक्रच्छुरितैर्जर्जरितातपम्, खण्डशश्छिन्दन्तमिव दिवसम्, कटाक्षमिव कालरात्रेः, कर्णो-त्पलमिव कालस्य, ओङ्कारमिव क्रौर्यस्य, अलङ्कारमहङ्कारस्य, कुलमित्रं कोपस्य, देहं दर्पस्य, सुसहायं साहसस्य, अपत्यं मृत्योः, आगमनमार्गं लक्ष्म्याः, निर्गमनमार्गं कीर्तेः, कृपाणम् ।

टीका—प्राणिवधस्य हासम्=हसितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्. हिंसा यदि मूर्तिमती स्यात् तर्हि तस्याः दृश्यमानदन्त-मण्डलः हासः महाभयङ्करः स्यात् तद्वत्कृपाणोऽपीति भावः, हरेः=विष्णोः बाहुः=भुजः दण्ड इवेत्युपमिततत्पु० तम् इव । कृतः दृढः=सबलः मुष्टिग्रहः=मुष्टिका ग्रहणं अथवा मुष्टेः=एतन्नामकस्य मुष्टिकापरपर्यायस्य राक्षसस्य ग्रहणं येन, बलरामो हि विष्णोरवतारः येन मुष्टिकासुरः गृहीत्वा मारितः, अन्यत्र (कृपाणे) कृतः दृढमुष्टेः=त्सरोः ग्रहः बन्धः यस्य तम्, सकलस्य भुवनस्य=जगतः जीवितानां प्राणानाम् अपहरणे=निस्सारणे क्षमेण=समर्थेन कालकूटेन==भयङ्करविषविशेषेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निर्मितम्=रचितम्, कृतान्तः=यमः तस्य कोपः=क्रोधः एव अनलः=वह्निः तत्र तप्तेन=भीषणतापद्वारा गलितेनेत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अयसा=लोहेन घटितं=निर्मितम्, अतितीक्ष्ण-तया=अतिशयेन निशिततया पवनस्य स्पर्शेन अपि रुषा=क्रोधेन इव क्वणन्तम्=झङ्कुर्वन्तम्, अन्योऽपि कश्चिद् प्रतितीक्ष्णः शरीरस्पर्शमात्रेणाऽपि क्रुद्धो भूत्वा परुषशब्दं करोति । मणिमयः मणिखचितः इति यावत् यः सभायाः=सभाभवनस्य कुट्टिमः=तलम् बद्धा भूमिरित्यर्थः तत्र पतत् यत् प्रतिबिम्बं=प्रतिच्छाया तस्य छद्मना==व्याजेन आत्मानम् अपि द्विधा=द्विभागयोः इव पाटयन्तम्=छिन्दन्तम्, अत्र व्याजापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षा, अरीणां शत्रूणां शिरसा छेदैः=पाटनैः लग्नैः=संसक्तैः कचैः=केशैरिवेत्युत्प्रेक्षायाम् किरणैः=रश्मिभिः करालिता=दन्तु-रिता ['करालो दन्तुरे तुङ्गे' इत्यमरः] धारा=अग्रं यस्य तम्, मुहुर्मुहुः=पुनः पुनः तडितः=विद्युतः ये उन्मेषाः=स्फुरणानि तद्वत् तरलैः=चञ्चलैः प्रभायाः=दीप्त्याः चक्रस्य=मण्डलस्य छुरितैः=व्यापनैः जर्जरितः=खण्डशः कृतः आतपः=घर्मः यस्य (दिवसस्य) तम् खण्डशः=खण्डे-खण्डे दिवसं=दिनं छिन्दन्तम्=कृन्तन्तम् इवेत्यु-त्प्रेक्षायाम् । काल-रात्रेः=श्याम-निशायाः कटाक्षम्=अपाङ्गदर्शनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उभयोः कृष्णवर्णत्वात्, कालस्य=यमस्य कर्णोत्पलं=कर्णनीलकमलम् इव क्रौर्यस्य=क्रूरतायाः ओङ्कारम्='ओम्' इत्यक्षरम्, यथा वेद-मन्त्राः ओङ्कारेण प्रारभन्ते तथा क्रूरकर्मापि एतेन कृपाणेन आरभते इति भावः, ओङ्कारोऽत्र प्रारम्भवाचकः, अहङ्कारस्य=गर्वस्य अलङ्कारम्=भूषणम् एतत्कृपाणं गृहीत्वा सर्वेषु अभिमानो जागर्तीति भावः, कोपस्य=क्रोधस्य कुलमित्रम्=कुलपरम्पराप्राप्तमित्रम्, दर्पस्य=अभिमानस्य देहम्=शरीरम्, साहसस्य=शौर्यस्य सुसहायम्=शोभन-सहायकम्, मृत्योः=कालस्य अपत्यम्=सन्तानम्, लक्ष्म्याः=श्रियः आगमनस्य मार्गम्=पन्थानम्, कृपाणद्वारा धनस्य राज्यस्य वा आगमात्, कीर्तेः=यशसः निर्गमनस्य=अपगमनस्य मार्गम्, कृपाणद्वारा वीरो-चितकर्मकरणेन तस्मात् कीर्तिः निस्सरति दिशासु व्याप्नोति चेति भावः, सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

हिन्दी—वाला जो ऐसा लगता था जैसे काल-कूट विष से बना हुआ हो, यम की कोधाग्नि से तपे (गले) हुए लोहे से जैसे ढाला हुआ हो, जो अति तीक्ष्ण (तेज धार) होने के कारण पवन के स्पर्श से भी क्रोध के कारण मानो झनझना रहा था, जो सभा-भवन के मणिमय फर्श पर पड़ते हुए प्रतिबिम्ब के बहाने अपने आपके भी जैसे दो टुकड़े कर रहा था, जिसकी धार शत्रुओं के शिरों को काट डालने से लगे हुए केश-जैसी प्रतीत हो रहे किरणों से कराल बनी हुई थी, जो बिजली की कौंध की तरह चंचल अपने छटा-मण्डल के प्रसार से बार-बार खण्ड-खण्ड किये गए आतप वाले दिवस को भी मानो खण्ड-खण्ड काट रहा था, जो ऐसा लग रहा था मानो काल-रात्रि का कटाक्ष हो, काल का कर्णोत्पल हो, क्रूरता का ओंकार हो, अहंकार का आभूषण हो, क्रोध का कुल-परम्परा से चला आ रहा मित्र हो, दर्प का शरीर हो, साहस का अच्छा सहायक हो, मौत की सन्तान हो, लक्ष्मी के आने का मार्ग हो, और यश निकलने का पथ हो ।

राजा ने उसे हाथ में लेकर शस्त्रों के प्रति प्रेम होने के कारण अपनी परिछाईं के बहाने गले लगाते हुए—जैसे देर

अवनिपतिस्तु तं गृहीत्वा करेणायुधप्रीत्या प्रतिमानिभेनालिङ्गन्निव सुचिरं ददर्श। सन्दिदेश च—'वक्तव्यो भगवान् परद्रव्यग्रहणावज्ञादुर्विदग्धमपि हि मे मनो युष्मद्विषये न शक्नोति वचनव्यतिक्रमव्यभिचारमाचरितुम्' इति। परिव्राट् तु गृहीते तस्मिन्परितुष्टः 'स्वस्ति भवते, साधयामः' इत्युक्त्वा निरयासीत्। नृपश्च प्रकृत्या वीररसानुरागी तेन कृपाणेनामन्यत करतलवर्तिनीं मेदिनीम्।

अथ व्रजत्सु दिवसेष्वेकदा भैरवाचार्यो राजानमुपह्वरे सोपग्रहमवादीत्—'तात, स्वार्थालसाः परोपकारदक्षाश्च प्रकृतयो भवन्ति भव्यानाम्। भवादृशां चार्थिदर्शनं महोत्सवः प्रणयनमाराधनमर्थग्रहणमुपकारः। भूमिरसि सर्वलोकमनोरथानां येनाभिधीयसे। श्रूयताम्। भगवतो महाकालहृदयनाम्नो महामन्त्रस्य कृष्णस्रगम्बरानुलेपेनाकल्पेन कल्प-

---

टीका—अवनिपतिः=राजा पुष्पभूतिरित्यर्थः आयुधेषु=शस्त्रेषु प्रीत्या=अनुरागेण प्रतिमायाः=प्रतिबिम्बस्य कृपाणस्य निर्मलत्वेन राज्ञो देहस्य तत्र प्रतिविम्बितत्वात्, निभेन=व्याजेन आलिङ्गन्=आश्लिष्यन् इवेति सापह्नवोत्प्रेक्षा, सुचिरं=दीर्घकालपर्यन्तं ददर्श=दृष्टवान्। सन्दिदेश=गुरवे सन्देशं ददौ—वक्तव्यः=कथनीयः भगवान्=भैरवाचार्यः परेषाम्=अन्येषां द्रव्याणां=पदार्थानां ग्रहणे=स्वीकरणे या अवज्ञा=अनादरः तेन दुर्विदग्धं=दुर्विनीतं=दुश्शीलमिति यावत् मे मनः युष्माकं=भवतां विषये=सम्बन्धे वचनस्य=भवदाज्ञायाः इत्यर्थः यः व्यतिक्रमः=उल्लङ्घनम् एव व्यभिचारः=अपराधः तम् आचरितुं=कर्तुं शक्नोति=प्रभवति। परिव्राट्=संन्यासी गृहीते=स्वीकृते तस्मिन्=कृपाणे इत्यर्थः परितुष्टः=प्रसन्नः 'स्वस्ति=कल्याणं भवते=युष्मभ्यं' ['स्वस्ति' योगे चतुर्थी] साधयामः गच्छामः इति उक्त्वा निरयासीत् निरगच्छत्। प्रकृत्या=स्वभावतः वीर-रसे=वीराणां भावे वीरत्वे इत्यर्थः अनुरागः=प्रेम अस्यास्तीति तथोक्तः मेदिनीम्,=पृथिवीम्, करयोः तले वर्तते इति तथोक्तम् अमन्यत, अर्थात् कृपाणेन सकलं जगत् स्वहस्तगतमपश्यत्। व्रजत्सु=गच्छत्सु दिवसेषु=दिनेषु एकदा=एकस्मिन् समये उपह्वरे=रहसि एकान्ते इत्यर्थः ['रहोऽन्तिकमुपह्वरे' इत्यमरः] उपग्रहः=अभ्यर्थनेति शङ्करः अनुकूलमिति मेदिनी [उपग्रहः पुमान् वन्द्याम् उपयोगऽनुकूलने] तेन सहितं यथा स्यात्तथा अवादीत्=अवदत्—तात=प्रिय स्वार्थे=स्वहितसाधने इत्यर्थः अलसाः=आलस्ययुक्ताः स्वार्थविमुखाः इति यावत् परेषाम् उपकारे=हिते दक्षाः=निपुणाः प्रकृतयः=स्वभावाः भवन्ति=जायन्ते भव्यानाम् साधूनामित्यर्थः। भवादृशां=युष्मादृशाम्। सज्जनानाम् अर्थिनः याचकस्य दर्शनं महान् उत्सवः=आनन्दः, प्रणयनं=प्रार्थनं याचकैः कृतमिति शेषः आराधनम्=प्रसादनम्, अर्थस्य=उपायनीकृतस्य दत्तस्य वा वस्तुनः ग्रहणं=स्वीकरणम् [याचक-कर्तृकम्] उपकारः=उपकृतिः। अयं भावः याचकस्यागमनं साधूनां कृते महानानन्दः तस्य साधून् प्रति प्रार्थना तेषामाराधनायाः साधनम् साधुभिर्दत्तानां वस्तूनां याचककर्तृग्रहणेन ते आत्मानम् उपकृतं मन्यन्ते। भैरवाचार्यः स्वकीये एकस्मिन् भीषणकर्मणि राज्ञः साहाय्यं प्राप्तुमिच्छुः मधुरया वाण्या भूमिकां बध्नाति। सर्वेषां लोकानां=जनानां मनोरथानाम्=आशानाम् भूमिः=स्थानम् असि=वर्तसे येन अभिधीयसे=कथ्यसे भगवतः शङ्करस्य महाकालहृदयं नाम यस्य तथाभूतस्य महामन्त्रस्य=महामन्त्रविशेषस्य कृष्णाः=श्यामवर्णाः स्रक्=माला च अम्बरम्=वस्त्रञ्च अनुलेपः=गन्धद्रव्यचन्दनाद्यनुलेपनम् इत्यनुलेपाः यस्मिन् तेन आकल्पेन=प्रसाधनेन वेशेनेत्यर्थः ['आकल्प-वेशौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः] कल्पे=शास्त्रे शैवागमे इति यावत् कथितेन=प्रतिपादितेन

हिन्दी—तक देखा और सन्देश दिया—भगवान् (भैरवाचार्य) से कहना कि दूसरों की वस्तु ग्रहण करने की अवज्ञा से दुर्विनीत हुआ भी मेरा मन आपके विषय में आज्ञा उल्लंघन करने का अपराध नहीं कर सकता। (राजा द्वारा) उसके स्वीकार कर लेने पर बड़ा प्रसन्न हुआ परिव्राजक—'आपका कल्याण हो, हम चलते हैं' यह कहकर चला गया। स्वभावतः वीर-रस से अनुराग रखने वाले राजा ने उस खड्ग द्वारा पृथिवी अपने हाथ में आई मान ली। इसके बाद दिन बीतते जा रहे थे, तो एक बार भैरवाचार्य एकान्त में प्रार्थना पूर्वक राजा से बोला—प्रिय, साधु लोगों का स्वभाव अपने स्वार्थ की ओर ढीलाढाला और दूसरों को उपकार करने में निपुण हुआ करता है। आप-जैसों के लिए याचकों का दर्शन महोत्सव, (उनके द्वारा) याचना प्रसन्न करने (का साधन) और (दत्त) वस्तु का (याचकों द्वारा) ग्रहण उपकार होता है। सब लोगों की आशाओं के तुम स्थान हो जिससे तुम्हें कहा जा रहा है। सुनो—'शैव शास्त्र में प्रतिपादित काली पुष्पमाला, काले वस्त्र और काले अनुलेपन के वेश से मैं महाकाल हृदय नामक मन्त्र के एक कोटि जप द्वारा भगवान् शंकर की सेवा पहले कर चुका हूँ। उस (मंत्र) की सिद्धि के लिए अन्त में वेताल का साधन करना होता है और वह निःसहायों द्वारा

कथितेन महाश्मशाने जपकोट्या कृतपूर्वसेवोऽस्मि । तस्य वेतालसाधनावसाना सिद्धिरसहायैर्दुरवापा । त्वं चालमस्मै कर्मणे । त्वयि च गृहीतभरे भविष्यन्त्यपरे सहायास्त्रयः । एकः स एवास्माकं टीटिभनामा बाल्यमित्रं मस्करी यो भवन्तमुपतिष्ठते । द्वितीयः स पातालस्वामी । अपरो मच्छिष्य एव कर्णतालनामा द्राविडः । यदि साधु मन्यसे ततो नीयतामयं दिङ्नागहस्तदीर्घो गृहीताट्टहासो निशामेकामेकदिङ्मुखार्गलतां बाहुः' इति । कृतवचसि च तस्मिन्नंधकारं प्रविष्ट इव दृष्टप्रकाशः प्राप्तोपकारावकाशः प्रमुदितेनान्तरात्मना नरेन्द्रः समभाषत—'भगवन्, परमनुगृहीतोऽस्म्यनेन शिष्यजनसामान्येन निदेशेन कृतपरिग्रहमिवात्मानमवैमि' । ननन्द च तेन नरेन्द्रव्याहृतेन भैरवाचार्यः । चकार च सङ्केतम्—'अस्यामेवागामिन्यामसितपक्षचतुर्दशीक्षपायामियत्यां वेलायाममुष्मिन्महाश्मशानसमीपभाजि शून्यायतने शस्त्रद्वितीयेनायुष्मता द्रष्टव्या वयम्' इति ।

टीका—['कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये' इति मेदिनी, 'इतिकर्तव्यकलापोपदेशको ग्रन्थः' इति शङ्करः] महाश्मशाने=महाशवदाहस्थाने जपानां कोट्या=कोटिसंख्यया एककोटिसंख्यकजपेनेत्यर्थः पूर्वं कृता इति कृतपूर्वा कृतपूर्वा सेवा येन तथाभूतोऽहम् अस्मि । तस्य=मन्त्रस्य वेतालस्य=भूताधिष्ठितशवस्य अथवा शिवगणाधिपविशेषस्य साधनं=वशीकरणम् अवसाने=अन्ते यस्य तस्य सिद्धिः=साधनम् । न सन्ति सहायकाः येषां तथाभूतैः सा=सिद्धिः दुरवापा=दुःखेन अवाप्तुं योग्या । त्वं च अस्मै कर्मणे=कार्याय अलम्=समर्थः ['अलमितिपर्याप्त्यर्थग्रहणम्, तत्र चतुर्थी] गृहीतः=स्वीकृतः भरः=भारः येन तथाभूते त्वयि अपरे त्रयः=सहायकाः । टीटिभः नाम यस्य स बाल-मित्रं=बाल्यकालात् मित्रं मस्करी=परिव्राट् भवन्तम् उपतिष्ठते=सेवते भवत्पार्श्वे उपस्थितो भवति राजतपुण्डरीकाणि च समर्पितवान् मम शिष्यः कर्णतालः नाम य द्राविडः=द्रविडदेशीयः [कृष्णा-कावेरीनद्योः मध्यवर्ती देशः द्रविड-देशः काञ्ची च तस्य राजधानी] । दिशो नागस्य=गजस्य दिग्गजस्येति यावत् यः हस्तः=शुण्डादण्डः तद्वत् दीर्घः प्रलम्बः, गृहीतः=धृतः अट्टहासः=एतन्नामकः=भैरवाचार्यप्रदत्तः खड्गः येन सः एकां निशाम्=रात्रिम् [कालात्यन्तसयोगे द्वि०] एकस्य दिङ्मुखस्य=दिशाभागस्य अर्गलताम्=विष्कम्भताम्='विष्कम्भोऽर्गलं न ना' इत्यमरः] द्वारकपाटरोधकदण्डतामित्यर्थः नीयतां=प्राप्यताम्, एकदिग् रक्षको भवतु इत्याशयः, अपरदिक्त्रयरक्षकाः उपर्युक्ताः टीटिभ्यादयो भविष्यन्ति । कृतं=समापितमित्यर्थः वचः=वचनं येन तस्मिन्=भैरवाचार्ये अन्धकारं=तमः प्रविष्टः=गतः पुरुषः इव दृष्टः=अवलोकितः प्रकाशः=दीपादीनाम् आलोकः येन सः, प्राप्तः उपकारस्य गुरोरिति शेषः अवकाशः=अवसरः येन सः । भैरवाचार्येण राज्ञे अट्टहासः राजतपुण्डरीकाणि च दत्तान्यासन् अतो राज्ञा प्रत्युपकारस्यावसरो लब्धः, प्रमुदितेन=प्रसन्नेन अन्तःकरणेन=मनसा नरेन्द्रः=राजा समभाषत=अवदत्—परम्=अत्यन्तम् अनुगृहीतः=कृतानुग्रहः शिष्यजनस्य सामान्येन शिष्यजनसाधारणेन निदेशेन=आदेशेन कृतः परिग्रहः=स्वीकारः आत्मीयीकरणमित्यर्थः यस्य तम् आत्मानम् अवैमि=अवगच्छामि । नरेन्द्रस्य=राज्ञः व्याहृतेन कथितेन [भावे क्तः] ननन्द=आनन्दमवाप । चकार=अकरोत् संकेतम् मिलनस्थान-समयनिर्धारणमित्यर्थः—असितपक्षस्य=कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्याः क्षपायां=निशायाम् इयत्यां वेलायाम्=एतावति समये अमुष्मिन् महाश्मशानस्य समीपं भजतीति तथोक्ते स्थिते इत्यर्थः शून्ये आयतने=निर्जने मन्दिरे शस्त्रं=खड्ग इत्यर्थः द्वितीयः=सहचरः इत्यर्थः यस्य तेन । अर्थात् केवलं खड्गम् आत्मना सह आदाय न तु परिजनम्, आयुष्मता=भवता वयं द्रष्टव्याः=दर्शनीयाः इति ।

हिन्दी—प्राप्त नहीं हो सकती और तुम इस काम के लिए समर्थ हो। तुम्हारे कार्यभार संभालने पर अन्य सहायक तीन और हो जाएंगे । एक तो वही हमारा बचपन का मित्र टीटिभ नाम का परिव्राजक है जो आपकी सेवा में आता रहता है । दूसरा वह पातालस्वामी है । अन्य मेरा ही शिष्य कर्णताल नाम का द्राविड़ है। यदि तुम ठीक समझते हो, तो अट्टहास ग्रहण किये हुए, दिग्गज की सूंड-जैसी लंबी (अपनी) भुजा को एक सारी रात भर के लिए एक दिशा-भाग की आगल बना दो । उसके कह चुकने पर अन्धकार में प्रविष्ट हुए व्यक्ति की तरह प्रकाश देखे (और) प्रत्युपकार का अवसर प्राप्त किये हुए राजा प्रसन्न मन से बोला—"भगवन्, शिष्यजन को दी जाने वाली आज्ञाओं के समान (आपकी) इस आज्ञा से मैं बड़ा अनुगृहीत हूं और अपने आपको आप द्वारा अपनाया हुआ जैसा समझता हूं ।" राजा के इस कथन से भैरवाचार्य बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने सङ्केत किया—"आने वाली इसी चतुर्दशी की रात्रि को इतने बजे उस महाश्मशान के निकटवर्ती निर्जन देवायतन में तुम हमें मिलो ।"

अथातिक्रान्तेष्वहःसु प्राप्तायां च तस्यामेव कृष्णचतुर्दश्यां शैवेन विधिना दीक्षितः क्षितिपो नियमवानभूत्। कृताधिवासं च सम्पादितगन्धधूपमाल्यादिपूजं खड्गमट्टहासमकरोत्। ततः परिणते दिवसे केनापि कर्मसाधनाय कृतरुधिरबलिविधानास्विव लोहितायमानासु दिक्षु, रुधिरबलिलम्पटासु च वेतालजिह्वास्विव लम्बमानासु च रविदीधितिषु, नरेन्द्रानुरागेण गृहीतापरदिशि स्वयमिव दिक्पालतां चिकीर्षति सवितरि, यातुधानीष्विव वर्धमानासु तरुच्छायासु, पातालतलवासिषु विघ्नाय दानवेष्विवोत्तिष्ठत्सु तमोमण्डलेषु, नभसि पुञ्जीभवति रौद्रं कर्म दिदृक्षमाण इव नक्षत्रगण, विगाढायां शर्वर्याम्, सुप्तजने निःशब्दस्तिमिते निशीथे राजा सान्तःपुरं परिजनं वञ्चयित्वा वामकरस्फुरत्त्सरु-

---

टीका—अथ अतिक्रान्तेषु=गच्छन्सु अहःसु=दिनेषु प्राप्तायाम्=आगतायामित्यर्थः शैवेन विधिना=शैवशास्त्रप्रतिपादितविधानेन दीक्षितः=दीक्षां प्राप्तः कृतसंस्कारः इत्यर्थः क्षितिपः=राजा नियमवान्=उपवासादियुक्तः व्रतीत्यर्थः अभूत्=अभवत्। कृतः=अनुष्ठितः अधिवासः यस्य, यद्यपि 'संस्कारो गन्धमाल्याद्यैर्यः स्यात्तदधिवासनम्' इत्यमरानुसारेण अधिवासशब्दस्य गन्धमाल्याद्यैः सुगन्धीकरणमर्थोऽस्ति, किन्तु बाणेन सुगन्धीकरणार्थं सम्पादितगन्ध इत्युक्तमस्ति। अतोऽत्र अधिवासः जलमन्त्रादिना शुद्धीकरणमस्ति। यथोक्त शङ्करेण 'अधिवासो नियमदिवसाद् प्राग्येऽह्नि यथाशास्त्रे विधिना मन्त्रन्यासादिः' इति, सम्पादिता=कृता गन्धश्च धूपश्च माल्यम् आदिर्येषां तानि माल्यादीनि तैः पूजा यस्य तम् अट्टहासम् अकरोत्। ततः परिणते=अवसिते दिवसे दिन-समाप्तौ इत्यर्थः, एकाकी नगरान्निरगाद् (राजा) इत्यन्वयः, केनाऽपि पुरुषेण कर्मणः निजकार्यस्य साधनाय=सिद्ध्यर्थं कृतम्=अनुष्ठितं रुधिरस्य=रक्तस्य बलेः=उपहारस्य विधानं यासु तासु लोहितायमानासु=रक्तवर्णीभवन्तीषु दिक्षु=दिशासु, रुधिरस्य बलिषु लम्पटासु=लुब्धासु वेतालानां=पिशाचानां जिह्वासु=रसनासु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लम्बमानासु=नीचैः पतन्तीषु रवेः=सूर्यस्य दीधितिषु=रश्मिषु नरेन्द्रे=राज्ञि अनुरागेण=प्रेम्णा गृहीता=अधिष्ठिता अपरदिक्=पश्चिमदिशा येन तस्मिन् स्वयम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। दिक्पालस्य भावः दिक्पालता दिक्पालत्वम् चिकीर्षति=कर्तुमिच्छति [सन्नन्तः] यातुधानीषु राक्षसीषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वर्धमानासु=वृद्धिं गच्छन्तीषु तरूणां=वृक्षाणां, छायासु, पाताले=रसातले वसन्तीति तथोक्तेषु विघ्नाय=विघ्नकरणाय इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्तिष्ठत्सु=उद्गच्छत्सु तमोमण्डलेषु=अन्धकार-निचयेषु नभसि=आकाशे, पुञ्जीभवति=पुञ्ज-पुञ्जरूपेण एकत्र तिष्ठति रौद्रं=भयानकं कर्म भैरवाचार्येण करिष्यमाणं कार्यं दिदृक्षमाणे=द्रष्टुमिच्छति [दृशेः सन्नन्तरूपम्, दर्शका अपि इतस्ततः पुञ्जीभवन्ति, नक्षत्रगणे=तारा-समूहे, विगाढायाम्=घनायां शर्वर्यां=निशायां सत्यां सुप्ता निद्रिताः जना यस्मिन् तस्मिन् निःशब्दे=निर्गतः शब्दः यस्मात् तस्मिन् नीरवे, अथ च स्तिमिते=स्तब्धे निशीथे अर्धरात्रे ('अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' इत्यमरः] अन्तःपुरेण=अवरोधेन अन्तःपुरवर्तिस्त्रीजनेनेति यावत् सहितं परिजनं=भृत्यवर्गं वञ्चयित्वा=प्रतार्य तेषामक्षिषु धूलिं प्रक्षिप्येत्यर्थः वाम-करे=सव्यहस्ते स्फुरन्=भ्राजमानः त्सरुः=मुष्टिः ['त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्' इत्यमरः] यस्य सः, दक्षिणेन करेण=हस्तेन उत्खातम्=कोषाद् बहिः निस्सारितम्

टिप्पणी—**दिक्पालताम्**—सूर्य स्वभावतः पश्चिम दिशा में गया परन्तु कवि की कल्पना यह है कि जब उसने अपने मित्र राजा को दिक्पाल बनते देखा तो उसने स्वयं दिक्पाल बनना चाहा, अतः वह पश्चिम को चला गया।

वामकरस्फुरत्त्सरुः—त्सरु खड्ग की मूठ को कहते हैं, 'बायें हाथ में अट्टहास की मूठ पकड़े और दायें हाथ में म्यान से अट्टहास को खींचकर धारण किये हुए" यह बात संगत नहीं लग रही है। जब अट्टहास दायें हाथ में थी तो उसकी मूठ भी दायें हाथ में ही हो सकती है। बायें में नहीं। इस विसंगति की ओर इ० बी० कॉवेल

हिन्दी—इसके बाद दिन बीतते-बीतते उस कृष्णपक्ष की रात्रि के आ जाने पर राजा शैव विधि से दीक्षित होकर नियम में रहा। उसने अट्टहास खड्ग को मन्त्रादि से शुद्ध किया और गन्ध, धूप एवं माल्यादि से पूजा। तदनन्तर दिन ढलते दिशाओं के लाल हो जाने पर मानो किसी ने कार्य-सिद्धि के लिए उनमें रुधिर का बलि विधान किया हो, रुधिरबलि की लोभी वेतालों की जिह्वायें-जैसी लग रही सूर्य की रश्मियों के नीचे लटक जाने पर, राजा के प्रति प्रेम होने के कारण पश्चिम दिशा ग्रहण किये हुए सूर्य के स्वयं मानो दिक्पाल का काम करना चाहने लगने पर, राक्षसियों-जैसी वृक्षों की छायाओं के बड़ी हो जाने पर, पाताल-तल में रहने वाले दानवों जैसे अन्धकार-मंडलों के विघ्न करने के लिए उठने लगने पर, भीषण कर्म देखना चाहते हुए-जैसे नक्षत्र गण के गगन के मध्य झुंड-झुंड में एकत्रित होने लगने पर रात घनी हो जाने पर आधी रात को जब लोग सो गए (सर्वत्र) सन्नाटा एवं निश्चलता

दक्षिणकरेणोत्खातं [illegible]अट्टहासमादाय विसर्पता च खड्गप्रभापटलेन नीलांशुकपटेनेव [illegible]अवगुण्ठितनिखिल-गात्रयष्टिरनादिष्टयाऽप्यनुगम्यमानो राजलक्ष्म्या पृष्ठतः परिमललग्नमधुकरवेणिव्याजेन केशेष्विव कर्मसिद्धिमाकर्षन्ने-काकी नगरान्नि·गात्। अगाच्च तमुद्देशम्।

अथ प्रत्युज्जग्मुस्ते त्रयो द्रौणिकृपकृतवर्माण इव सौप्तिके सन्नद्धाः, स्नाताः स्रग्विणो गृहीतविकटवेशाः, कुसुम-शेखरसञ्चारिभिः क्रियमाणमन्त्रशिखाबन्धा इव गुञ्जद्भिः षट्चरणैः, उष्णीषपट्टकोल्ललाटमध्यघटितविकटस्वस्तिका-

---

टीका--अट्टहासं खड्गम् आदाय=गृहीत्वा विसर्पता=प्रसरता खड्गस्य अट्टहासस्य प्रभायाः=आभायाः पटलेन समूहेन नीलेन=श्यामेन अंशुक-पटेन=कौशेयवस्त्रेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दर्शनस्य=साक्षात्कारस्य भयेन अवगुण्ठिता=आच्छादिता गात्रं शरीरं यष्टिरिवेत्युपमिततत्पु० गात्रयष्टिः येन सः अनादिष्टया=अनाज्ञप्तया अपि राजलक्ष्म्या अनु-गम्यमानः=अनुस्रियमाणः, पृष्ठतः=शरीरस्य पश्चाद्भागे परिमले=सौरभे लग्ना=संसक्ता या मधुकराणां=भ्रमराणां वेणिः=पङ्क्तिः तस्याः व्याजेन=छद्मना केशेषु=कचेषु इवेत्युत्प्रेक्षा। सा च व्याजापह्नुत्युत्थापिता कर्मसिद्धिम्=कार्य-सफलताम् आकर्षन् आनयन्नित्यर्थः। एकाकी=एकलः नगरात् निरगात्=निर्गतवान्। अगात्=अगच्छत् च तम्=सङ्केतितपूर्वम् उद्देशं=स्थानम्।

अथ ते प्रत्युज्जग्मुः=राज्ञः प्रत्युद्गमनं स्वागतमिति यावत् चक्रुः त्रयः पूर्वोक्ताः टीटिभादयः द्रौणिः=द्रोणस्य अपत्यं पुमान् अश्वत्थामेत्यर्थः कृपः=कृपाचार्यः कृतवर्मा च इवेत्युपमायाम्, सौप्तिके=सुप्तेषु भवमिति [सुप्त +ठञ्] तस्मिन् पर्वणीति शेषः, महाभारतीय-सौप्तिकपर्वणीति यावत्, सन्नद्धाः=धृतकवचाः ['सन्नद्धो वर्मितः सज्जो दंशितो व्यूढकङ्कटः' इत्यमरः] स्नाताः=कृतस्नानाः, स्रग्=पुष्पमाला एषामस्तीति तथोक्ताः गृहीतः=धृतः विकटः करालः वेशः=आकल्पः यैस्ते, कुसुम०—कुसुमशेखरेषु=पुष्पशिरोमालासु सञ्चारिभिः सञ्चरद्भिः गुञ्जद्भिः =झङ्कुर्वद्भिः=षट्चरणैः=भ्रमरैः क्रियमाणः मन्त्रैः=मन्त्रोच्चारणपूर्वकमित्यर्थः शिखायाः बन्धः=बन्धनं येषां ते, भ्रमराः शिखा तेषां झङ्कारश्च मन्त्रोच्चारणमिव प्रतीयते स्मेति भावः, उष्णीषश्च—मूर्धभिः=शिरोभिः ललाटस्य=भालस्य मध्ये घटितः=रचितः विकटः करालः स्वस्तिकाग्रन्थिः=स्वस्तिकाकारबन्धनं येषु तान् उष्णीष-

टिप्पणी—का ध्यान गया है और वे लिख बैठे 'A dagger gleaming in his left hand' किन्तु यह समाधान ठीक नहीं। राजा को 'शस्त्रद्वितीयेन' अर्थात् केवल अट्टहास लेकर ही आने को कहा गया था। दूसरे जब अट्टहास ही से सब कुछ किया जा सकता था तो खंजर (dagger) को लाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अतः इसके दो ही समाधान हो सकते हैं या तो राजा ने बायाँ हाथ दायें हाथ के नीचे लगा रखा था जिस पर दायें हाथ में स्थित त्सरु की चमक पड़ रही थी, या लक्षणा से त्सरु का अर्थ म्यान कर लें जो बायें हाथ में चमक रही थी। खड्ग खींचकर उसे दायें हाथ में और म्यान बायें में लोग रखते ही हैं।

सौप्तिके सन्नद्धाः—महाभारत में एक सौप्तिक पर्व आता है जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा महाभारत युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे जिसका एक विशेष कारण था। कौरवों के मारे जाने के बाद इनका क्रोध भड़का और इन्होंने पाण्डवों से बदला लेना चाहा। तीनों ने रात में सोते हुए पाण्डवों के शिविर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा को तो खेमे के द्वार पर खड़ा कर दिया कि जो भी बाहर आए, उन्हें समाप्त कर दें और स्वयं खेमे में घुस गया। उसने सोते हुए सभी को मार दिया और जो भागकर बाहर निकलने का प्रयत्न करते थे उन्हें कृप और कृतवर्मा समाप्त कर देते थे।

हिन्दी—छा गई। राजा-रानियों सहित भृत्यवर्ग को चकमा देकर बायें हाथ में चमचमाती मूठ (१ म्यान) रखे और दायें हाथ से (म्यान से) निकाले अट्टहास खड्ग को लेकर दिखाई पड़ने के भय के कारण नीले रेशमी आच्छादन पट-जैसे खड्ग के फैलते हुए प्रभा समूह से (अपनी) सारी देह ढके हुए, आज्ञा न देने पर भी पीछे-पीछे आ रही राज्यलक्ष्मी को लिए, पीछे सौरभ के कारण लगी हुई मधुकर श्रेणी के बहाने कार्य सिद्धि को केशों से जैसे खींचता हुआ अकेला नगर से निकल पड़ा और उस स्थान में चला गया।

इसके बाद (महाभारत के) सौप्तिक पर्व में कवच-बद्ध अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा की तरह उन तीनों टीटिभ, कर्णताल और पातालस्वामी ने राजा की अगवानी की और अपने आपको पेश किया—वे जो स्नान किये, माला पहने, और विकट वेश धारण किये हुए थे, जो फूलों की सिर-माला पर मंडराते और गुनगुनाते भ्रमरों से ऐसे लग रहे थे

ग्रन्थीन्महामुद्राबन्धानिव धारयन्तो मूर्धभिः, एकश्रवणविवरविततविमलदन्तपत्रप्रभालोकलेपधवलितकपोलैर्मुखैरापिबन्त इव निशाचरापचयचिकीर्षया शार्वरमन्धकारम्, इतरकर्णावलम्बिनां रत्नकुण्डलानामच्छाच्छया रुचा गोरोचनयेव मन्त्रपरिजप्तया समालब्धाः, स्वप्रतिबिम्बगर्भान्कर्मसिद्धये दत्तपुरुषोपहारानिवोल्लासयन्तो निशितान्निस्त्रिंशान्, निस्त्रिंशांशुसन्तानसीमन्तिततिमिरामात्मीयात्मीयदिग्विभागसंरक्षणाय त्रिधेव त्रियामां पाटयन्तः, सार्धचन्द्रैः कलधौतबुद्बुदावलितरलतारागणैर्निशाया इव परुषासिधारानिकृत्तैः खण्डैर्गृहीतैश्चर्मफलकैरकाण्डशर्वरीमपरां घटयन्तः, काञ्चन-

टीका—पट्टकान्=शिरोवेष्टन-कौशेयपट्टान् महामुद्रायाः बन्धान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, उष्णीषस्य स्वस्तिकाकारग्रन्थिः ललाटे गुह्यमुद्राचिह्नमिव प्रतीयते स्मेति भावः, महामुद्राशब्दस्य अत्रापरोऽप्यर्थः सम्भवति, अङ्गुष्ठाङ्गुलीनां परस्परबन्धन-विशेषः महामुद्रा। यथा चोक्तम्—'अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितपराङ्गुली। महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः' इति धारयन्तः=बिभ्राणाः; एकश्रवण०—एकस्य श्रवणस्य=कर्णस्य विवरे=छिद्रे विततं=प्रसृतं यत् विमलं=स्वच्छं दन्तपत्रम्=हस्तिदन्तपत्रम्=हस्तिदन्तनिर्मितः पत्राकारः कर्णाभरणविशेषः तस्य प्रभायाः=कान्त्याः आलोकस्य=प्रकाशस्य लेपेन धवलितः=श्वेतीभूतः कपोलः=गण्डस्थलं येषां तैः, मुखैः=वक्त्रैः आपिबन्तः=पानविषयीकुर्वन्तः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निशाचराणां=राक्षसानाम् अपचयः=ह्रासः तस्य चिकीर्षया=कर्तुमिच्छया, निशाचराणां संख्यां न्यूनीकर्तुमित्यर्थः शार्वरम्=शर्वर्याः=रात्र्याः इदमिति [शर्वरी+अण्] रात्रिसम्बन्धि अन्धकारम्, इतर०—इतरस्मिन्=अन्यस्मिन् कर्णे अवलम्बन्ते इति ०लम्बीनि यानि रत्नानां कुण्डलानि=कर्णवेष्टनानि तेषाम् अच्छाच्छया=अतिशयेन निर्मलया [अतिशयार्थे द्वित्वम्] रुचा कान्त्या मन्त्रैः पारजप्तया=कृतजपया गोरोचनया=एतदाख्येन गोमस्तकस्थित-पित्तरचित-द्रव्यविशेषेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम् समालब्धाः अनुलिप्ताः, स्वप्रति०—स्वस्य=आत्मनः=प्रतिबिम्ब गर्भे=अन्तः येषां तान् कर्मणः=कार्यस्य सिद्धये=साफल्याय दत्तः पुरुषाणाम् उपहारः नरबलिः यैः तान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निशितान्=तीक्ष्णान् निस्त्रिंशान्—निर्गतः त्रिंशद्भ्यः अङ्गुलिभ्यः इति निस्त्रिंशः तान्=खड्गान् उल्लासयन्तः भासयन्तः, निस्त्रिंशांशु०—निस्त्रिंशस्य=खड्गस्य ये अंशवः=किरणाः तेषां सन्तानेन=प्रसरेण=सीमन्तित=सीमाबद्धीकृत तिमिरम्=अन्धकारः यस्याः तां त्रियामाम्=त्रयो यामाः=प्रहराः यस्याः ताम् रात्रिमित्यर्थः ('त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः) आत्मीयः+आत्मीयः=स्वकीयः स्वकीयः यः दिग्विभागः=दिङ्मुखम् तस्य संरक्षणाय रक्षार्थं त्रिधा त्रिभागेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पाटयन्तः=कृन्तन्तः अर्थात् स्व-स्व खड्गकिरणैः तैः रात्र्यन्धकारः त्रिभागेषु खण्डितः येन स्व-स्व-दिग्विभागरक्षायां सौकर्यं स्यात्; सार्ध०—अर्धचन्द्रैः=अर्धचन्द्राकारचिह्नैः सहितैः कलधौतं=सुवर्णम् अथवा रौप्यम् ('कलधौत रूप्यहेम्नोः' इत्यमरः] तस्य या बुद्बुदावलिः=बिन्दुपङ्क्तिः सा एव तरलः चंचलः तारागणः=तारासमूहः येषां तैः निशायाः=रात्रेः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् परुषा=तीक्ष्णा याः असीनां=खड्गानां धाराः=अग्राणि ताभिः निकृत्तैः=पाटितैः खण्डैः=शकलैः गृहीतैः हस्तधृतैः चर्मफलकैः=स्फटकैः 'ढाल' इति भाषायां प्रसिद्धैः अकाण्डे असमये शर्वरीं=रात्रिम् अपरां=द्वितीयां घटयन्तः=रचयन्तः, काञ्चन०—काञ्चनस्य=सुवर्णस्य शृङ्खलाकलापेन=दाम्ना नियमितं=बद्धं निबिडं घनं निष्प्रवाणि=निर्गता

टिप्पणी—अकाण्डशर्वरीमपराम्—एक रात्रि जब थी ही तो दूसरी रात्रि का प्रश्न ही नहीं था। रात में तारे चमकते हैं। ढाल पर अर्ध-चन्द्राकार चिह्न और चाँदी के बिन्दु लगे हुए चमक रहे थे। ढाल काली थी। वे ढाल लेकर अपनी २ दिशा में जा रहे थे, इसीलिए कवि कल्पना कर बैठा मानो रात में ही दूसरी बिना समय की रात बना रहे थे।

हिन्दी—मानो मन्त्रोच्चारण पूर्वक (उनकी) शिखा बाँधी जा रही हो, जो भाल के मध्य बनी विकट स्वस्तिक के आकार की गाँठ वाली रेशमी पगड़ी की पट्टी सिर पर बांधे ऐसे लग रहे थे मानो महामुद्राबन्धों को धारण कर रहे हों, जो एक कान के छेद से लटके दन्तपत्र की प्रभा का आलोक फैलने से श्वेत हुए कपोल वाले मुखों से मानो निशाचरों (की संख्या) को कम करने की इच्छा से रात्रि का अन्धकार पी रहे थे, जो दूसरे कान में लटके हुए रत्न-कुंडलों की अति निर्मल कान्ति से ऐसे लग रहे थे मानो अनुमंत्रित गोरोचन से अनुलिप्त हों, जो भीतर अपना प्रतिबिम्ब रखे हुए तेज तलवारों को चमकाते हुए ऐसे लग रहे थे मानों कार्य-सिद्धि के लिए उनसे नर-बलि दिए हुए हो, जो तलवारों की किरणों के फैलने से सीमाबद्ध किए अन्धकार वाली रात्रि को अपने-अपने दिग्विभाग की रक्षा के लिए मानों तीन भागों में काट रहे थे, जो तेज तलवार की धार से काटे हुए रात्रि के खण्डों जैसे लग रहे

शृङ्खलाकलापनियमितनिबिडनिष्प्रवाणय:, बद्धासिधेनव: टीटिमकर्पतालपात्र[illegible]मानम्। अवनिपतिस्तु—'कोऽत्र कः' इति ताननपृच्छत्। आचचक्षिरे च स्वं स्वं नाम त्रयोऽपि ते। तैरेव चानुगम्यमानो जगाम तां बलिदीपालोकजर्जरितगुग्गुलुधूपधूमगृह्यमाणदिग्भागतया विक्षिप्यमाणरक्षासर्षपार्धदग्धान्धकारपलायमाननिशामिव समुपकल्पितसर्वोपकरणां निःशब्दां च गम्भीरां च भीषणां च साधनभूमिम्।

तस्यां च कुमुदधूलिधवलेन भस्मना लिखितस्य महतो मण्डलस्य मध्ये स्थितं दीप्ततरतेजःप्रसरम् पृथुपरिवेशपरिक्षिप्तमिव शरत्सवितारम्, मथ्यमानक्षीरोदावर्तवर्तिनमिव मन्दरम्, रक्तचन्दनानुलेपिनो रक्तस्रगम्बराभरणस्योत्तान-

---

टीका—प्रवाणी=प्रकर्षेण ऊयते अनया इति [प्र+$\sqrt{}$वेञ्+ल्युट् करणे+ङीप्] तन्तुवाय-शलाका अस्य इति समाप्तवानं नवम् अनाहतं वस्त्रमित्यर्थः [अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकञ्च नवाम्बरम् इत्यमरः। छेदः क्षालनं भोगश्च आहननं तद्रहितम् अनाहतम् इति क्षीरस्वामी] येषां ते। बद्धा=नद्धा असिधेनुः=छुरिका यैः ते 'स्याच्छस्त्री चासिपुत्री च छुरिका चासिधेनुका' इत्यमरः] आत्मानं निवेदितवन्तः=विज्ञापितवन्तः। आचक्षिरे=कथयामासुः। तैः अनुगम्यमानः=अनुस्रियमाणः जगाम=अगच्छत् ताम् साधनभूमिम् इत्यनेनान्वयः, बलिदीपा०—बलिदीपानां=पूजादीपकानाम् आलोकेन=प्रकाशेन जर्जरिताः=भग्नाः आक्रान्ताः पराभूता इति यावत् ये गुग्गुलुधूपयोः धूमाः तैः गृह्यमाणाः आश्रियमाणाः दिग्विभागाः=दिङ्मुखानि यस्याः तस्याः भावः तत्ता तया विक्षिप्यमाणाः=दिक्षु प्रक्षिप्यमाणाः ये रक्षासर्षपाः=रक्षार्थं विघ्नविघातार्थं सर्षपाः=गौरसिद्धार्थाः तैः अर्धदग्धः अन्धकारः यस्याः सः, अत एव पलायमाना=द्रवन्ती या निशा=रात्रिः यस्यां तथाभूताम्, समुपकल्पितानि=आयोजितानि सज्जीकृतानीत्यर्थः सर्वाणि उपकरणानि=उपेक्षितवस्तूनि सामग्रीति यावत् यस्यां ताम्, निःशब्दाम्=नीरवाम् गम्भीरां=गहनाम् भीषणां=भयप्रदाम् साधनस्य=कार्यानुष्ठानस्य भूमिं=स्थानं महाश्मशानमित्यर्थः।

तस्यां च भैरवाचार्यमपश्यत् इत्यस्ति वाक्यम्। कुमुद०—कुमुदानां=कैरवाणां धूलिः=रजः पराग इति यावत् तद्वत् धवलेन=श्वेतेन भस्मना=विभूत्या लिखितस्य चिह्नितस्येत्यर्थः महतः विशालस्य मण्डलस्य=वृत्तस्य मध्ये स्थितं, दीप्ततरः अतिशयेन दीप्तः देदीप्यमानः तेजसः द्युतेः प्रसरः=विस्तारो यस्य तम्, पृथुः=विशालः यः परिवेशः =परिधिः उपसूर्यकम्, कुण्डलाकारतेजोविशेषः इति यावत् ['परिवेशस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः] तेन परिक्षिप्तं=परिगतम् इवेत्युपमायां शरत्सवितारम्=शरत्कालीनसूर्यम्, मथ्यमा० मथ्यमानस्य=आलोड्यमानस्य क्षीरोदस्य=क्षीरसमुद्रस्य यः आवर्त्तः=भ्रमिः तस्मिन्=तन्मध्ये इत्यर्थः वर्तते इति ०वर्ती तम् मन्दरम्= मन्दराचलम् इवेत्युपमायाम्, रक्त० रक्तचन्दनस्य=रक्तवर्णस्य चन्दनस्य अनुलेपनम् अस्मिन्नस्तीति तथोक्तस्य रक्तानि=रक्तवर्णानि स्रक्=पुष्पमाला च अम्बरं=वस्त्रं च आभरणानि=आभूषणानि च यस्य तम्, उत्तानं मुखमुपरि कृत्वेत्यर्थः यथा स्यात्तथा शेते इति (उत्तान+$\sqrt{}$शी+अच् कर्तरि] उत्तानशयः तस्य शवस्य=मृतदेहस्य उरसि=

टिप्पणी—विक्षिप्य...निशामिव—भूतापसरण के लिए सफेद सरसों चारों ओर फेंके जा रहे थे और दीप के आलोक में गुग्गल और धूप का धुआँ भी दिशाओं में फैल रहा था। कवि कल्पना करता है कि उड़ता हुआ धुआँ मानो भागी जा रही रात है जिसका अन्धकार-रूप आधा देह सफेद सरसों द्वारा दग्ध हो गया था। अधजले अंगों वाले सभी इधर-उधर भाग जाया करते हैं।

हिन्दी—(हाथ में) ग्रहण की हुई अर्धचन्द्रचिह्न सहित चाँदी की बिन्दुओं के रूप में टिमटिमाते तारागणों वाली काली ढालों से एक दूसरी ही असमय की रात बना रहे थे, जिन्होंने सोने के कमरबन्द से गाढे नये वस्त्र कस रखे थे और एक कटार भी बाँध रखी थी। राजा ने तीनों को पूछा—यहाँ (तुम) कौन कौन हो? उन तीनों ने अपना-अपना नाम कह दिया। तीनों को ही अपने पीछे लिए राजा (कार्य) साधन भूमि में चल पड़ा—जहाँ पूजा दीपकों की प्रभा द्वारा जर्जरित हुए गुग्गल और धूप के धुंएँ के दिग्विभागों में फैल जाने के कारण रक्षार्थ फेंके जा रहे श्वेत सरसों से अध-जले अन्धकार वाली निशा मानो भागी जा रही थी, जहाँ सारी सामग्री तय्यार कर रखी थी और जो सुनसान, गम्भीर और भीषण थी।

उस (भूमि) में राजा ने भैरवाचार्य को देखा—जो कुमुदों की पराग-जैसी श्वेत भस्म से बनाए विशाल गोल घेरे के मध्य में स्थित, (अपना) अतिशय देदीप्यमान तेज फैलाए विशाल प्रभा-कुण्डल से घिरे हुए शरत्कालीन सूर्य के समान (अथवा) मथे जा रहे क्षीर-समुद्र के आवर्त के मध्यवर्ती मन्दराचल के समान बने हुए थे, जो रक्तचन्दन से

शयस्य शवस्योरस्युपविश्य जातजातवेदसि मुखकुहरे प्रारब्धाग्निकार्यम्, कृष्णाङ्गरागम्, कृष्णप्रतिसरम्, कृष्ण-वाससम्, कृष्णतिलाहुतिनिभेन विद्याधरत्वतृष्णया मानुषनिर्माणकारणकालुष्यपरमाणूनिव क्षयमुपनयन्तम्, आहुति-दानपर्यस्ताभिः प्रेतमुखस्पर्शदूषितं प्रक्षालयन्तमिवाशुशुक्षणिं करनखदीधितिभिः, धूमालोहितेन चक्षुषा क्षतजाहुतिमिव हुतभुजि पातयन्तम्, ईषद्विवृताधरपुटप्रकटितसितदशनशिखरेण दृश्यमानमूर्तमन्त्राक्षरपङ्क्तिनेव मुखेन किमपि जपन्तम्, होमश्रमस्वेदसलिलप्रतिबिम्बिताभिरासन्नदीपिकाभिर्दहन्तमिव सिद्धये सर्वावयवान् अंसावलम्बिना बहुगुणेन विद्याराजेनेव ब्रह्मसूत्रेण परिगृहीतं भैरवाचार्यमपश्यत् । उपसृत्य चाकरोन्नमस्कारम् । अभिनन्दितश्च तेन स्वव्यापारमन्वतिष्ठत् ।

टीका—वक्षसि उपविश्य=स्थित्वा जातः=उत्पन्नः मन्त्रबलादिति शेषः जातवेदाः=अग्निः यस्मिन् तस्मिन् ['अग्निर्वैश्वानरो वह्निः......जातवेदास्तनूनपात्' इत्यमरः] मुखस्य=वक्त्रस्य कुहरे=विवरे प्रारब्धम्=प्रक्रान्तम् अग्निकार्यं=हवनं येन तम्, कृष्णः=श्यामवर्णः अङ्गरागः=विलेपनद्रव्यं यस्य तम्, कृष्णः प्रतिसरः=करसूत्रं यस्य तम्, ['भवेत् प्रतिसरो मन्त्रभेदे माल्ये च कङ्कणे । ...आरक्षे करसूत्रे च' इति मेदिनी], कृष्णानि वासांसि=वस्त्राणि यस्य तम् कृष्णाः ये तिलाः तेषाम् आहुत्या=हवनस्य निभेन=व्याजेन विद्याधरः=देवयोनिविशेषः तस्य भावः तत्त्वम् तस्मिन् तृष्णया=उत्कटेच्छया विद्याधरो भवितुमिच्छुरित्यर्थः, मानुषस्य=मनुष्यदेहस्येत्यर्थः, यन्निर्माणम्=उत्पत्तिः तस्य कारणानि=कारणीभूताः ये कालुष्यस्य=मालिन्यस्य परमाणवः कलुषिताः=कृष्णवर्णाः परमाणव इत्यर्थः तिलानां कृष्णत्वात् परमाणूनामपि कालुष्य-कथनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, विद्याधरदेहप्राप्तये तन्निर्मातृ-श्वेत-परमाणवः अपेक्ष्यन्ते इति भावः, क्षय=विनाशम् उपनयन्तम्=प्रापयन्तम् आहुति० आहुतीनां दाने=अग्नौ प्रक्षेपे पर्यस्ताभिः=प्रसृताभिः इतस्ततः विकीर्णाभिरिति यावत् प्रेतस्य=शवस्य मुखस्य स्पर्शेन=सम्पर्केण दूषितम्=अपवित्रीभूतं प्रक्षालयन्तं=धावन्तं पवित्रीकुर्वन्तमित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आशुशुक्षणिम्=अग्निम् ['अग्निर्वैश्वानरो वह्निः शिखावानाशुशुक्षणिः,' इत्यमरः] करस्य=हस्तस्य नखानां=कररुहाणां दीधितिभिः किरणैः, क्षालनं जलेन भवति । तच्च श्वेत भवति, श्वेतनखकिरण-रूपजलेन दूषितमग्निं भैरवाचार्यः प्रक्षालयतीत्युत्प्रेक्ष्यते; धूमा०—धूमेन आलोहितेन=ईषद्रक्तीभूतेन चक्षुषा=नेत्रेण क्षतजस्य=रुधिरस्य आहुतिम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् हुतं भुङ्क्ते इति हुतभुक्=अग्निः तस्मिन् पातयन्तम्=प्रक्षिपन्तम्, ईषद्०—ईषत्=किमपि विवृतम्=अपावृतम् उद्घाटितमित्यर्थः यत् अधर-पुटम्=ओष्ठपुटम् तेन प्रकटितानि=व्यक्तानि दृश्यमानानीत्यर्थः सितानि=श्वेतानि दशनशिखराणि=दन्ताग्राणि यस्मिन् तेन दृश्यमाना=प्रत्यक्षीक्रियमाणा मूर्तानां=साकाराणां मन्त्राक्षराणां=मन्त्रवर्णानां पङ्क्तिः=श्रेणिः यस्मिन् तथाभूतेन मुखेन किमपि जपन्तम्=अव्यक्तमुच्चारयन्तम् । होम०—होमेन=हवनेन यः श्रमः=क्लमः तेन यत् स्वेदसलिलं=स्वेदजलं तस्मिन् प्रतिबिम्बिताभिः=प्रतिफलिताभिः आसन्नाभिः=समीपवर्तिनीभिः दीपिकाभिः=दीपैः दहन्तम्=भस्मीकुर्वन्तम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सिद्धये=कार्यसाफल्याय सर्वान् अवयवान्=अङ्गानि, अंसा०—अंसे=स्कन्धे अवलम्बिना=स्थितेनेत्यर्थः बहुगुणेन=बहवः गुणाः=तन्तवः यस्मिन् तेन ब्रह्मसूत्रेण=यज्ञोपवीतेन बहुगुणेन=बहुः=महान् गुणः=प्रभावः यस्य तेन विद्याराजेन=मन्त्रविशेषेण इवेति श्लिष्टोपमायाम् । परिगृहीतम्=आश्रितम्, उपसृत्य=समीपे गत्वा नमस्कारं=प्रणतिम् अकरोत्=कृतवान् तेन=भैरवाचार्येण अभिनन्दितः=कृताभिनन्दनः स्वव्यापारं=स्वपूर्वनिर्धारितकर्म अन्वतिष्ठत्=अकरोत् ।

हिन्दी—अनुलिप्त रक्त-पुष्पमाला, रक्त-वस्त्र और रक्त-आभरणों से युक्त, चित पड़े हुए मुर्दे की छाती पर बैठ कर (उसके) मुख-छिद्र में उत्पन्न अग्नि में हवन आरम्भ किये हुए थे, जिनका अंगराग काला था, हाथ का डोरा काला था और वस्त्र भी काले थे, काले तिलों के हवन के बहाने विद्याधरत्व (प्राप्त करने) की उत्कट अभिलाषा से मानो मनुष्य (देह) के कारण-भूत काले परमाणुओं को विनष्ट कर रहे थे, जो आहुति डालने में बिखरी हुई अपने हाथ के नखों की (श्वेत) किरणों से मानो मुर्दे के मुखस्पर्श से अपवित्र बनी अग्नि को धो रहे थे, जो धुएं से कुछ लाल बनी आँख से मानो अग्नि में रुधिर की आहुति डाल रहे थे, जो मूर्तरूप में दिखाई दे रहे मंत्राक्षरों की पंक्ति-जैसे कुछ उघड़े ओष्ठ-पुट से प्रकट हुए दांतों के अग्रभागों वाले मुख से कुछ जप रहे थे, जो होम की कान के कारण (बहते हुए) पसीने में प्रतिबिम्बित हुए पास के दीपकों से ऐसे लग रहे थे मानो सिद्धि के निमित्त (ग ने) अवयवों का दाह कर रहे हों और जो बहुगुण (बड़े प्रभाव वाले) विद्याराज मंत्र विशेष की तरह बहुगुण (बहुत तन्तुओं वाला) कन्धे पर पड़ा हुआ यज्ञोपवीत रखे हुए थे । पास में जाकर (राजा ने) नमस्कार किया और

अत्रान्तरे पातालस्वामी शातक्रतवीमाशामङ्गीचकार । कर्णतालः कौबेरीम् । परिव्राट् प्राचेतसीम् । राजा तु त्रैशङ्कवेन ज्योतिषाङ्कितां ककुभमलङ्कृतवान् ।

एवं चावस्थितेषु दिक्पालेषु दिक्पालभुजपञ्जरप्रविष्टे विस्रब्धं कर्म साधयति भैरवं भैरवाचार्येऽतिचिरं कृतकोलाहलेषु निष्फलप्रयत्नेषु प्रत्यूहकारिषु शान्तेषु कौणपेषु गलत्यर्धरात्रसमये मण्डलस्य नातिदवीयस्युत्तरेणाकस्मात्प्रलयमहावराहदंष्ट्राविवरमिव दर्शयन्ती क्षितिरदीर्यत । सहसैव च तस्माद्विवरादाशावारणोत्क्षिप्त इवालानलोहस्तम्भः, महावराहपीवरस्कन्धपीठो नरकासुर इव भुवो गर्भादुद्भूतः, बलिदानव इव भित्त्वोत्थितः पातालम्,

---

टीका—अत्रान्तरे=एतन्मध्ये पातालस्वामी शतक्रतोः=इन्द्रस्य इमाम् इति शातक्रतवीम् (शतक्रतु+अण्+ङीप्) आशां=दिशम् पूर्वदिशमिति यावत् अङ्गीचकार=रक्षार्थं स्वीकृतवान्, कर्णतालः कुबेरस्य इमाम् इति कौबेरीं दिशम् उत्तरां दिशमिति यावत्, परिव्राट्=टीटिभः प्रचेतसः इमाम् इति प्राचेतसीम् दिशम् पश्चिमदिशमित्यर्थः राजा पुष्पभूतिः त्रिशङ्कोः=एतदाख्यराजविशेषस्येदमिति त्रैशङ्कवेन ज्योतिषा=ज्योतिष्पिण्डेन अङ्कितां चिह्नितां ककुभम् =दिशं दक्षिणदिशमित्यर्थः, अलङ्कृतवान्=भूषितवान् ।

एवं दिक्पालेषु=दिग्रक्षकेषु=तत्तत्पातालस्वाम्यादिषु अवस्थितेषु=स्व-स्वदिशमधिष्ठितेषु दिक्पालानां भुजाः एव पञ्जरं=तस्मिन् प्रविष्टे=स्थिते भैरवाचार्ये विस्रब्धं=निःशङ्कं यथा स्यात्तथा भैरवं=भीषणं कर्म साधयति =अनुतिष्ठति सति अतिचिर०=बहुकालपर्यन्तं कृतः कोलाहलः=कलकलः यैस्तथाभूतेषु निष्फलाः=व्यर्थतां गताः प्रयत्नाः =विघ्नव्यापाराः येषां तेषु प्रत्यूहान्=विघ्नान् कुर्वन्तीति तथोक्तेषु कौणपेषु=राक्षसेषु ['राक्षसः कौणपः क्रव्याद्' इत्यमरः] शान्तेषु=तूष्णीम्भूतेषु निवृत्तेष्वित्यर्थः, अर्धरात्रस्य=निशीथस्य गलति=अतिक्रामति सति, मण्डलस्य= भस्मरचितवृत्तस्य नातिदवीयसि न अतिशयेन दूरे [दूर+ईयसुन्] उत्तरेण=उत्तरदिशि अकस्मात्=सहसा प्रलयं प्रलयकाले महावराहस्य=वराहावतारधारिणः विष्णोरित्यर्थः दंष्ट्रायाः दन्तस्य विवरं=छिद्र दंष्ट्राकृतविवरमित्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायां दर्शयन्ती=प्रकटयन्ती क्षितिः=पृथिवी अदीर्यत=दीर्णा बभूव । सहसा एव कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगाम इत्यस्ति वाक्यम्, आशायाः=दिशायाः यः वारणः=गजः दिग्गज इति यावत् तेन उत्क्षिप्तः=उत्पाटितः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आलान-लोहस्तम्भः=गजबन्धनलोहनिर्मितस्थूणा ['आलानं बन्धस्तम्भे' इत्यमरः] महा०—महावराहस्य इव पीवरं=स्थूलस्कन्ध-पीठ=स्कन्धः पीठमिव यस्य सः, नरकासुरः=एतन्नामक-राक्षसविशेषः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । भुवः पृथिव्याः गर्भात्=अन्तरालात् उद्भूतः=विस्मृतः, बलिदानवः=बलिनामकराक्षसविशेषः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पातालं=रसातलं भित्त्वा=स्फोटयित्वा उत्थितः=उद्गतः, इन्द्र०—उपरि ज्वलितः=प्रदीप्तः रत्नस्य प्रदीप यस्य

टिप्पणी—त्रैशङ्कवेन—हरिश्चन्द्र के पिता राजा त्रिशंकु ने यज्ञ द्वारा सशरीर स्वर्ग जाना चाहा । यज्ञ कराने के लिए वह कुल-गुरु वसिष्ठ के पास गया तो उन्होंने असमर्थता प्रकट कर दी । वसिष्ठ के पुत्रों ने भी उसका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया । अन्त में वह विश्वामित्र के पास गया तो उन्होंने स्वीकार कर लिया । यज्ञ सम्पन्न होने के बाद त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने लगा तो ऊपर से इन्द्र गरजा—'खबरदार यदि ऊपर आया तो' और उसे नीचे धकेल दिया । इधर विश्वामित्र गरजे—'खबरदार नीचे आया तो' । बेचारा बीच में ही लटका रहा । वह दक्षिण दिशा में ज्योतिष्पिण्ड के रूप में अब भी मौजूद है ।

हिन्दी—उनके द्वारा अभिनन्दन प्राप्त किए हुए उसने अपना काम किया ।

इस बीच पातालस्वामी ने पूर्व दिशा अपनायी, कर्णताल ने उत्तरदिशा और परिव्राजक ने पश्चिम दिशा ग्रहण की, किन्तु राजा ने त्रिशंकु द्वारा चिह्नित (दक्षिण) दिशा को सुशोभित किया।

इस प्रकार दिक्पालों के स्थित हो जाने पर दिक्पालों की भुजाओं के पिंजरे में प्रविष्ट भैरवाचार्य के निःशङ्क भीषण कार्य करने लगने पर, अति चिरकाल तक कोलाहल मचाए हुए, विघ्नकारी राक्षसों के (अपने) प्रयत्नों में विफल हो जाने के कारण चुप हो जाने पर, आधी रात के बीतते भस्ममण्डल से कुछ ही दूर उत्तर की ओर अकस्मात् प्रलय-काल में महावराह द्वारा दाँत से बने हुए विवर-जैसी दिखाई हुई पृथिवी फट पड़ी और सहसा उस विवर में से कुवलय के से काले रंग का एक पुरुष ऊपर निकला—जो दिग्गज द्वारा उखाड़ा हुआ बाँधने का लोह

इन्द्रनीलप्रासाद इवोपरिज्वलितरत्नप्रदीपः, स्निग्धनीलघननिबिडकुटिलकुन्तलकान्तमौलिरुन्मीलन्मालतीमुण्डमालः, गद्‌गदतया स्वरस्य स्वभावपाटलतया च चक्षुषः क्षीब इव यौवनमदेन, वलद्‌गलदामकः, करसम्पुटमृदितया मृदा दिङ्नागकुम्भाभांसकूटौ पुनः पुनः परिपङ्कयन्, सान्द्रचन्दनकर्दमदत्तैरव्यवस्थास्थासकैरतिसितजलधरशकलशारित इव शारदाकाशैकदेशः, केतकीगर्भपत्रपाण्डुरस्य चण्डातकस्योपरि क्षामतरीकृतकुक्षिः कक्ष्याबन्धं विधाय विलासविक्षिप्तेन धवलव्यायामफालीपटान्तेन धरणितलगेन धार्यमाण इव पृष्ठतः शेषेण, स्थिरस्थूलोरुदण्डः, भूमिमङ्गभयेनेव मन्थराणि

टीका—सः इन्द्रनीलस्य=एतदाख्यनीलवर्णमणिविशेषस्य प्रासादः=हर्म्यम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् स्निग्धाः=मसृणाः नीलाः=नीलवर्णाः घनाः=सान्द्राः निबिडाः कुटिलाः=प्रतिभङ्गुराः ये कुन्तलाः केशाः तैः कान्तः=कमनीयः मौलिः=शिरः यस्य सः, उन्मीलन्ती=स्फुरन्ती मालत्याः=पुष्पविशेषस्य मुण्ड-माला=शिरोमाला यस्य सः, गद्‌गदतया०—स्वरस्य=कण्ठध्वनेःगद्‌गदतया=स्खलदक्षरतया चक्षुषः=नेत्रस्य च स्वभावेन=निसर्गेण पाटलतया=रक्तवर्णतया यौवनस्य मदेन=मत्ततया क्षीबः=मत्तः, ['मत्ते शौण्डोत्कटक्षीबाः' इत्यमरः] वलत्=लम्बमानं गलदाम=कण्ठस्य दाम=मालाग्रैवेयकमित्यर्थः यस्य सः, कर०—करयोः हस्तयोः सम्पुटेन=परस्परसंयोजनेन परस्परसंयुक्त-करद्वयेनेत्यर्थः। मृदितया=निष्पिष्टतया मृदा=मृत्तिकया दिङ्नागस्य=दिग्गजस्य कुम्भयोः=गण्डस्थलयोः आभा कान्तिः इव आभा ययोः तौ अंसयोः=स्कन्धयोः कूटौ=उपरितन-भागौ पुनः पुनः परिपङ्कयन्=परितः पङ्कवन्तौ करोतीति [परि+पङ्क+णिच्+शतृ 'सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते' सि० कौ०] सान्द्र०—सान्द्रः घनः चन्दनस्य यः पङ्कः=कर्दमः आर्द्रचन्दनमित्यर्थः तेन दत्तैः=कृतैरित्यर्थः अविद्यमाना व्यवस्था=नियमः येषु तथाभूतैः स्थासकैः=चर्चाभिः लेपैरित्यर्थः ['चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकः' इत्यमरः] अथवा शङ्करानुसारेण चन्द्रकैः=चन्द्राकारचिह्नैः अतिशयेन शितैः=श्वेतैः जलधराणां=मेघानां शकलैः=खण्डैः शारितः=चित्रवर्णीकृतः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् शरदः इदम् इति [शरद्+अण्) शारदम् यद् आकाशं तस्य एकदेशः=एकभागः, केतकी०—केतक्याः=पुष्पविशेषस्य यत् गर्भस्य=अन्तर्भागस्य पत्रं तद्वत् पाण्डुरस्य=श्वेतस्य चण्डातकस्य=अधोवस्त्रविशेषस्य [अर्धोरुकं वरस्त्रीणां स्याच्चण्डातकमस्त्रियाम् इत्यमरः] उपरि क्षामतरीकृतः=अतिशयेन क्षामीकृतः कृशीकृतः इति यावद् कुक्षिः=पार्श्वभागः यस्य सः कक्ष्यया—कटिबन्धनेन बन्धं विधाय=कक्ष्यया कक्षि बद्ध्वा इत्यर्थः विलासेन=लीलया विक्षिप्तेन=त्यक्तेनेत्यर्थः धवलः=श्वेतः व्यायामः=विशिष्टः आयामः—दैर्घ्यं यस्य सः दीर्घं इत्यर्थः तेन अथवा व्यायामाय=अङ्गसञ्चालनादि-श्रमाय फाल्याः=कक्ष्याबन्धस्य (शङ्करः) पटस्य=वस्त्रस्य अन्तेन=पर्यन्तभागेन धरण्याः=पृथिव्याः तले गच्छतीति तेन धार्यमाणः=ध्रियमाणः इवेत्युत्प्रेक्षायां पृष्ठतः शेषेण=शेषभागेन, स्थिरो

टिप्पणी—शारदाकाश०—उस पुरुष ने विना क्रम के अपने देह पर चन्दन के थापे लगाए हुए थे जिससे वह शरद्‌गगन का एक भाग-सा दिखाई दे रहा था। वह शरीर से काला था, शरद्-गगन भी काला रहता है। शरद्‌गगन में कहीं-कहीं बिना क्रम के श्वेत मेघों के धब्बे लगे रहते हैं। उनके शरीर पर भी सफेद चन्दन के थापे लगे हुए थे।

धार्यमाण इव शेषेण—उसने कपड़े की फाल से अपना चण्डातक-कच्छा कस रखा था। और फाल का लम्बा किनारा विलास के रूप में पीछे जमीन पर झटकता हुआ छोड़ दिया था जैसे पगड़ी पहनने वाले भी छोड़ दिया करते हैं। वह लीर सफेद थी, इसीलिए कवि उस पर शेष नाग की कल्पना कर बैठता है। शेष भी सफेद ही हुआ करता है। वह धरणितलगत होकर मानो पृष्ठ से उसे धारण कर रहा हो।

हिन्दी—स्तम्भ-जैसा था। महावराह के-से स्थूल कन्धों वाला भू-गर्भ से निकला हुआ नरकासुर-जैसा था, पाताल फोड़कर ऊपर उठा हुआ बलि दानव जैसा था, जो चिकने काले घने खूब घुंघराले बालों से कमनीय सिर एवं चमकती हुई चमेली की सिर-माला रखे हुए ऐसा लग रहा था मानो इन्द्रनील मणि का महल हो; जिसके ऊपर दीप जल रहे हों; जो स्वर गद्‌गद और आँख स्वभावतः लाल होने के कारण तरुणाई के नशे में चूर हुआ-जैसा लग रहा था, जिसकी कंठ-माला झूल रही थी, जो पहलवानों की तरह दोनों हाथ मिलाकर रगड़ी हुई मिट्टी से दिग्गज के कुम्भ-स्थल-जैसे कन्धों के ऊपरी भागों को बार-बार मैला बना रहा था, जो घने चन्दन द्रव से (शरीर पर) दिये हुए क्रमरहित थापों से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो शरत्कालीन गगन का एक ऐसा प्रदेश हो जो अति-श्वेत मेघ-खण्डों से चित्रित रहता है, जो केवड़े के भीतरी पत्ते की तरह सफेद कच्छे के ऊपर कमर पतली किए हुए. कमरबन्द कसकर विलास में पीछे ऊपर कमर छोड़े और भूतल पर लटके हुए सफेद लम्बे कमरबन्दवस्त्र

स्थापयन्पदानि, निर्भरगर्वगुरु कथमपि शैलमिव गात्रमुद्वहन्दर्पेण, मुहुर्मुहुरुरसि द्विगुणिते दोष्णि वामे तिर्यगुत्क्षिप्ते च दक्षिणे जङ्घाकाण्डे कुण्डलिते चण्डस्फोटनटाङ्कारैः कर्मविघ्ननिर्घातानिव पातयन्नेकेन्द्रियविकलमिव जीवलोकं कुर्वन्कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगाम । जगाद च विहस्य नरसिंहनादनिर्घोषघोरया भारत्या—'भो विद्याधरी-श्रद्धाकामुक किमयं विद्यालवावलेपः सहायमदो वा यदस्मै जनायाविधाय बलिं बालिश इव सिद्धिमभिलषसि । का ते दुर्बुद्धिरियम् । एतावता कालेन क्षेत्राधिपतिरस्य मन्नाम्नैव लब्धव्यपदेशस्य देशस्य नागतस्ते श्रोत्रोपकण्ठं श्रीकण्ठनामा नागोऽहम् । अनिच्छति मयि का शक्तिर्ग्रहगणस्यापि गन्तुं गगने । भूनाथोऽप्ययमनाथस्तपस्वी यस्त्वादृशैः शैवाप-

---

टीका—=दृढौ स्थूलौ—पीवरौ ऊरुदण्डौ दण्डसदृशोरू यस्य सः, भूमेः=पृथिव्याः भङ्गः=विदरणं तस्माद् भयेन=भीत्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मन्थराणि=मन्दानि पदानि=पादक्षेपान् स्थापयन् निर्भरः=अतिशयितः यः गर्वः=अभिमानः तेन गुरु=भारि कथमपि=केनापि प्रकारेण शैलम्=पर्वतम् इवेत्युपमायाम् गात्रं=देहम् उद्वहन्=धारयन् दर्पेण=अवलेपेन, मुहुर्मुहुः=पुनः पुनः उरसि=वक्षसि द्विगुणिते=द्वाभ्यां गुणिते वामे=सव्ये दोष्णि=भुजे ['भुजबाहू प्रवेष्टो दोः स्यात्' इत्यमरः] तिर्यक्=तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा उत्क्षिप्ते=उत्थापिते कुण्डलिते=वक्रीकृते जङ्घाकाण्डे=ऊरु-दण्डे चण्डम्=विकटं यत् स्फोटनम्=[अत्र आस्फोटनमिति साधीयः] भुजाभ्याम् वक्षसि आघातः तस्य टाङ्कारैः=फटफटत्कारैः कर्मणि=भैरवाचार्य-प्रारब्धे कार्ये विघ्नाः—विघ्नरूपा निर्घाताः—पवनानां परस्पर-संघट्टाज्जायमाना महानिर्घोषाः इत्यर्थः तदुक्तम्—"वायुना निहितो वायुर्गगनाच्च पतत्यधः । प्रचण्डघोरनिर्घोषो निर्घात इति कथ्यते" । इवेत्युत्प्रेक्षायाम् पातयन्=भूमौ प्रक्षिपन् एकेन इन्द्रियेण=श्रोत्रेणेत्यर्थः विकलम्=रहितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् जीवलोकं=प्राणिजातं कुवलयवत्=कैरववत् श्यामलः=कृष्णवर्णः पुरुषः उज्जगाम उपरि आगतः । विहस्य=हसित्वा च जगाद=उवाच, नरसिंहस्य—नृसिंहावतारधारिणः विष्णोः यः नादः गर्जनं तस्य निर्घोषः प्रतिध्वानः इत्यर्थः तद्वद् घोरया=भीषणया भारत्या=वाण्या भो विद्याधरी=देवयोनिविशेषस्त्री, तस्याः श्रद्धया=विश्वासेन कामुकः=इच्छुकः (तृ० तत्पु०) अथवा श्रद्धापूर्ण-कामुकः (मध्यमपदलोपी स०] तत्सम्बुद्धौ, विद्यायाः लवस्य=कणस्य अवलेपः=गर्वः वा सहायानां=सहायकानां मदः=अभिमानः यत् अस्मै जनाय=मह्यमित्यर्थः बलिम्=उपहारम् पूजां वा अविधाय=अकृत्वा बालिशः मूर्ख इव सिद्धिं=कार्यसाफल्यम् अभिलषसि=इच्छसि । दुर्बुद्धिः=दुर्मतिः । एतावता कालेन=समयेन क्षेत्राधिपतिः=भूस्वामी अस्य मम नाम्ना एव लब्धः व्यपदेशः=नाम येन तस्य देशस्य ते श्रोत्रयोः=कर्णयोः उपकण्ठं=पार्श्वे न आगतः न कर्णविषयीभूतः इत्यर्थः श्रीकण्ठः नाम यस्य तथाभूतः नागः=सर्पः । अद्याऽपि नागाः क्षेत्रपालाः भवन्तीति धारणं प्रचलति, मङ्गलकार्येषु च क्षेत्रपालबलिर्दीयते । न इच्छति=अभिलषति (भावसप्तमी) मयि ग्रहाणाम्=आकाशस्थज्योतिष्पिण्डानां सूर्यादीनां गणस्य=समूहस्य गगने=आकाशे गन्तुं शक्तिः न कापीत्यर्थः । भुवः=पृथिव्याः नाथः=पतिः राजेत्यर्थः अयं=पुष्पभूतिरित्यर्थः अनाथः

टिप्पणी—**विद्या...कामुक** ! विद्याधरी का कामुक कहकर पुकारना उसे लज्जित करना है कि बड़ा योगी और परिव्राट् बनकर विद्याधरी के पीछे मर रहा है, श्रद्धा-कामुक कहने का आशय यह है कि तेरी श्रद्धा=विश्वास-है कि इस कार्य से मेरी कार्य सिद्धि हो जाएगी, परन्तु मैं बताऊंगा कि तेरा यह विश्वास निर्मूल है। मैं तेरी इस साधना को अभी नष्ट-ध्वस्त किये देता हूँ ।

हिन्दी—के किनारे जैसा प्रतीत हो रहा था जैसे कि वह भूतलगत शेष नाग द्वारा पृष्ठभाग में धारण किया जा रहा हो, जिसकी दण्ड-सी जंघायें दृढ़ और मोटी थीं, जो पृथिवी के फट जाने के डर से—जैसे धीरे-धीरे पैर रख रहा था, जो महान् गर्व से भारी बने हुए पर्वत-जैसे शरीर को किसी तरह अकड़ के साथ धारण कर रहा था, जो द्विगुणित किए (अर्थात् मोड़े हुए) बायें हाथ से छाती पर और टेढ़ा उठाए दायें हाथ से मोड़े हुए जंघा-काण्ड पर किए बार-बार के आघात के प्रचण्ड शब्द से (भैरवाचार्य के) कार्य में विघ्नस्वरूप परस्पर टकराते झंझा-वातों के निर्घोषों को-जैसे गिरा रहा था और प्राणि-जगत् को एक इन्द्रिय [श्रोत्र] से रहित-जैसे कर रहा था। और वह हंसकर नरसिंह भगवान् के नाद की गूंज की तरह भीषण वाणी से बोला—'रे विद्याधरी के श्रद्धावाले इच्छुक ! तेरा यह क्या विद्या का अभिमान है अथवा सहायकों का गर्व है जो तूं इस जन को (मुझे) बलि न देकर मूर्ख की तरह सिद्धि चाह रहा है ? यह तेरी कैसी दुर्मति है ? इतने समय से मेरे नाम के पीछे ही अपना नाम रखे हुए इस देश के क्षेत्रपति श्री कण्ठ नामक मुझ-नाग को तूंने कानों से नहीं सुना ? मेरे न चाहते हुए ग्रहगण की भी आकाश में विचरण

सर्वेरुपकरणीक्रियते । सहस्वेदानीं सहामुना दुर्नरेन्द्रेण दुर्नरेन्द्रदुर्नयस्य फलम्' इत्यभिधाय च निष्ठुरैः प्रकोष्ठप्रहारैस्त्रीनपि टीटिभप्रमुखान्‌ तीनभिमुखं प्रधावितान्सशरीरावरणकृपाणानपातयत् ।

अथापूर्वाधिक्षेपश्रवणावशस्त्रव्रणैरप्यमर्षस्वेदच्छलेनानेकसमरपीतमसितमसिधाराजलमिव वमद्भिरवयवैरपि रोमाञ्चनिभेन मुक्तशरशतशल्यनिकरभरलघुमिवात्मानं रणाय कुर्वद्भिरट्टहासेनापि प्रतिबिम्बिततारागणेन स्पष्टदृष्टधवलदन्तमालमवज्ञया हसतेव कथ्यमानसत्त्वावष्टम्भः परिकरबन्धविभ्रमभ्रमितकरनखकिरणचक्रवालेन व्यपगमनाशङ्कया नाग-

---

टीका—न नाथः न राजेत्यर्थः तपस्वी=वराकः यः त्वादृशैः=त्वमिव दृश्यन्ते ये जनैरिति त्वत्समानैरित्यर्थः शैवेषु=शिवभक्तेषु अपसदैः=जाल्मैः ['निहीनोऽपसदो जाल्मः' इत्यमरः] अनुपकरणम्=असाधनम् उपकरण साधनं क्रियते इति [अभूततद्भावे च्विः] उपकरणीक्रियते । अमुना=एतेन दुर्नरेन्द्रेण=दुष्टराजेन सह दुर्नरेन्द्रस्य=दुष्टस्य नरेन्द्रस्य=विषवैद्यस्य मन्त्रतन्त्रानभिज्ञसर्पचिकित्सकस्येत्यर्थः दुर्नयस्य=दुर्नीतेः दुराचरणस्येत्यर्थः फलम्=परिणामः । भैरवाचार्यो हि दुर्नरेन्द्रः यतस्तेन न नागपूजा कृता, नागमपूजयित्वा न कश्चिद् विषवैद्यः सफलो भवति [तुलना क्रियताम्—'महाशीविष इव दुर्नरेन्द्राभिभवरोषितः, षष्ठोच्छ्वासः] अभिधाय=कथयित्वा निष्ठुरैः=कठोरैः प्रकोष्ठयोः=अग्रहस्तयोः प्रहारैः=आघातैः मुष्टिभिरिति यावत् अभिमुखं=नागस्य मुखम् अभि सम्मुखमित्यर्थः प्रधावितान्=प्रद्रुतान् शरीरस्य आवरणं=वर्म च कृपाणश्च ताभ्यां सहितं यथा स्यात्तथा अपातयत्=पातितवान् ।

'अथ…नरनाथः सावज्ञमवादीत्' इत्यस्ति वाक्यम् । अपूर्व०—अपूर्वम्=इतःपूर्वं न श्रुतः इत्यर्थः यः अधिक्षेपः=नागकृताक्षेपः तस्य श्रवणात्=आकर्णनात् अविद्यमानः शस्त्रेण व्रणः=आघातः येषां तैः (अवयवैः) अपि, अमर्षः=क्रोधः तेन यः स्वेदः=घर्मजलं तस्य निभेन=व्याजेन अनेकेषु समरेषु=युद्धेषु पीतं पानविषयीकृतम् असितं अश्वेतं कृष्णवर्णमित्यर्थः असेः=खड्गस्य=धारायाः अग्रस्य जलम् इवेत्युत्प्रेक्षा सा च सापह्नवा, वमद्भिः उद्गिरद्भिः अपि च रोमाञ्च०—रोमाञ्चस्य=रोमहर्षस्य निभेन=व्याजेन मुक्तः=त्यक्तः बहिर्निस्सारितः इत्यर्थः शर-शतानां=शतशः शराणां शत्रुभिः रणे राज्ञः शरीरे प्रहृतानामिति यावत् शल्यानाम्=अग्रभागानां निकरस्य=समूहस्य भरः=भारः येन तम् अतएव आत्मानं लघुम्=भाररहितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् रणाय=नागेन सह युद्धाय कुर्वद्भिः (अवयवैः) अट्टहासेन=राज्ञः खड्गेनाऽपि प्रतिफलितः तारागणः=तारा-समूहः यस्मिन् तेन, स्पष्टं=व्यक्तं यथा स्यात् तथा दृष्टा धवला=श्वेता दन्तमाला=दन्तराजिः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवज्ञया=सावज्ञं हसता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, वमद्भिः वमनं कुर्वद्भिः अथ च हसता इव इत्येतेषां कथ्यमानः० इत्यनेनान्वयः कथ्यमानः=प्रतिपाद्यमानः सत्त्वः=उत्साहः अवष्टम्भः=अभिमानः स्थैर्यं वा च यस्य सः, परिकरबन्धे=कटिबन्धने विभ्रमेण=विलासेन भ्रमितयोः चालितयोः करयोः=हस्तयोः नखानां=कररुहाणां किरणानां=रश्मीनां चक्रवालेन=मण्डलेन ['चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः व्यपगमनस्य पलायनस्य नागस्येति शेषः आशङ्कया=संशयेन भयेन वा नागानां दमनाय=वशी-

टिप्पणी—वमद्भिः—यद्यपि राजा के शरीर पर कोई क्षत नहीं हुआ था, किन्तु श्रीकण्ठ नाग द्वारा की गई भर्त्सना से जो पहले किसी ने नहीं की थी—वह क्रुद्ध हो उठा और क्रोध में उसके शरीर से बहता पसीना ऐसा लग रहा था मानों शत्रुओं के साथ युद्धों में प्रहारों से उनके खड्गों की धार का जो काला पानी अंगों ने पी रखा था, उसे वे उगल रहे हों ।

लघुमिवात्मानम्—पहले युद्धों में राजा के शरीर में कितने ही शर-शल्य घुसे हुए थे जिससे वह बोझिल बना हुआ था । क्रोध में उत्पन्न रोमाञ्च के बहाने मानो वे सभी शल्य निकल गए और नाग से लड़ने के लिए राजा का शरीर हल्का हो गया । अट्टहास भी हंस रहा था । उसमें प्रतिफलित तारा श्रेणी हंसी में दन्तपंक्ति जैसी दिखाई दे रही थी ।

हिन्दी—करने की क्या शक्ति है ? बेचारा यह (पुष्पभूति) भूनाथ होता हुआ भी अ(भू)नाथ ही है जो तेरे जैसे अधम शिवभक्तों द्वारा सहायक बनाया जा रहा है । अब इस दुर्नरेन्द्र [दुष्ट राजा] के साथ दुर्नरेन्द्र (अनजान सर्प-चिकित्सक) के दुर्नय का फल सहन कर'—यह कहकर वह सामने दौड़े आए हुए टीटिभ आदि तीनों को प्रबल मुष्टिका प्रहारों से शरीर-कवच और कृपाण सहित धराशायी कर बैठा ।

दमनमन्त्रमण्डलबन्धेनेव रुन्धन्दश दिशो नरनाथः सावज्ञमवादीत्—'अरे काकोदर काक, मयि स्थिते राजहंसे न जिह्रेषि बलिं याचितुम् । अमीभिः किं वा परुषभाषितैः । भुजे वीर्यं निवसति सताम्, न वाचि । प्रतिपद्यस्व शस्त्रम् । अयं न भवसि । अगृहीतहेतिष्वशिक्षितो मे भुजः प्रहर्तुम्' इति । नागस्तु—'अनादृततरमेहि । किं शस्त्रेण । भुजाभ्यामेव भनज्मि भवतो दर्पम्' इत्यभिधायास्फोटयामास । नरपतिरपि निरायुधमायुधेन युधि लज्जमानो जेतुमुत्सृज्य सचर्मफलकमट्टहासमसिमर्धोरुकस्योपरि बबन्ध बाहुयुद्धाय कक्ष्याम् । युयुधाते च निर्दयास्फोटनस्फुटितभुजरुधिरशीकरसिच्यमानौ शिलास्तम्भैरिव पतद्भिर्बाहुदण्डैः शब्दमयमिव कुर्वाणौ भुवनं तौ । नचिराच्च पातयामास भूतले भुजङ्गं

टीका—करणायेत्यर्थः । मन्त्रैः=गारुडैः यः मण्डलस्य=गारुडशास्त्रप्रसिद्धस्य ऐन्द्रजालिकादिकवृत्तस्य बन्धः=रचना तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । दश दिशः=दिङ्मुखानि रुन्धन्=प्रतिबध्नन् नरनाथः=नरेन्द्र-पुष्पभूतिः सावज्ञम्=अवज्ञया=तिरस्कारेण सहितं यथा स्यात् तथा अवादीत्=अवदत्—'काकोदर!=काकस्येव उदरं यस्य, नागेत्यर्थः 'काकोदरः फणी' इत्यमरः । काक=वायस=काकवद्वलिभोजिन्नित्यर्थः, अपमानपरकं सम्बोधनमिदम्, राजहंसे=राजनि हंसे इवेत्युपमिततत्पु० । अथ च श्रेष्ठहंसे । राजहंसस्याग्रे काकस्य तुच्छत्वं द्योत्यते । जिह्रेषि=लज्जसे याचितुम्=प्रार्थयितुम् । अमीभिः=एतैः परुषैः=कठोरैः भाषितैः=वचनैः किम् । सतां=सत्पुरुषाणां धीराणामिति यावत् भुजे=बाहौ वीर्यं=बलमित्यर्थः निवसति=तिष्ठति । अयं=त्वमित्यर्थः न भवसि=मरिष्यसीत्यर्थः । न गृहीता=धृता हेतिः=शस्त्रं यैः तेषु अशिक्षितः=न शिक्षां प्राप्तः भुजः प्रहर्तुम्=प्रहारं कर्तुम् । नागः अनादृतम्=भृशमनादरसहितं यथा स्यात्तथा, वस्तुतः 'अनादृततरम् एष शब्दः उद्धरण-चिह्नात् पूर्वमागन्तुमर्हति, तत्सम्बन्धश्च 'इत्यभिधाय' इत्यनेन भवति अर्थात् नागस्तु अनादृततरम्—'एहि······इत्यभिधायास्फो० इत्यस्ति वाक्यम्; भनज्मि=भग्नं करोमि दर्पम्=अभिमानम् । आस्फोटयामास=कराभ्यां भुजौ जङ्घे च ताडयामास । नरपतिः=राजा आयुधेन=शस्त्रेण निरायुधम्=शस्त्र-रहितं जनं नागमित्यर्थः युधि=युद्धे जेतुम्=पराभवितुं लज्जमानः=लज्जां कुर्वन् चर्मफलकेन=चर्मणा सहितम् अट्टहासम् असिं—स्वखड्गम् उत्सृज्य=त्यक्त्वा अर्धोरुकस्य=चण्डातकस्य उपरि बाहुभ्यां युद्धाय कक्ष्यां=कटिबन्धनं बबन्ध=बद्धवान् । युयुधाते=युद्धम् अकुरुताम् । निर्दयेन=कठोरेण बलवतेति-यावत् आस्फोटनेन=हस्ताभ्यां बाहुताडनेन स्फुटितौ=दीर्णौ यौ भुजौ तयोः रुधिरस्य=क्षतजस्य शीकरैः=कणैः सिच्यमानौ=क्लिन्नीभवन्तौ शिलास्तम्भैः=प्रस्तरस्थूणाभिः इवेत्युपमायाम् पतद्भिः=परस्परं प्रहरद्भिरित्यर्थः बाहुदण्डैः=भुजदण्डैः तौ=द्वौ भुवनं=जगत् शब्दमयम् शब्दात्मकमिवेत्युत्प्रेक्षायाम् कुर्वाणौ (युयुधाते) । नचिराच्च=स्वल्पे एव समये भूपतिः=राजा भुजङ्गं=नागम् पातयामास=अपातयत् । तं च केशेषु जग्राह=गृहीतवान् ।

हिन्दी—इसके बाद पहले कभी न प्राप्त हुई फटकार सुनने के कारण शस्त्र से चोट न खाए हुए भी क्रोध से (बहते) स्वेद जल के बहाने अनेक युद्धों में पिये हुए खड्ग धारा के काले जल को उगलते हुए-जैसे एवं रोमाञ्च के बहाने बाहर निकाल दिये गए सैकड़ों शर-शल्यों के समूह के भार से अपने को युद्ध के लिए हल्का जैसा करते हुए अंगों द्वारा और तारागणों का प्रतिबिम्ब अपने भीतर रखे स्पष्ट दिखाई पड़ रही श्वेत दन्त-पङ्क्ति के साथ अवज्ञा पूर्वक हंसते हुए-जैसे अट्टहास द्वारा भी (राजा को) उत्साह और अभिमान की बात कही जाने पर कमर कसने में विलास-पूर्वक घुमाए हुए हाथों के [चारों ओर फैलते हुए] नख-किरणों के मण्डल से आग निकलने की आशंका के कारण नाग-दमन के लिए मन्त्र द्वारा रचित मण्डल-बन्ध से जैसे दश दिशाओं को रोकता हुआ राजा तिरस्कार-पूर्वक बोला—"अरे कौवे सांप ! मुझ राजहंस के रहते तुझे बलि मांगने में लज्जा नहीं आती ? अथवा इन कठोर वचनों से क्या ? सच्चे लोगों का शौर्य भुजा में रहता है, वाणी में नहीं। शस्त्र उठा। यह तू नहीं रहेगा। बिना शस्त्र ग्रहण किये हुए लोगों पर शस्त्र प्रहार करना मेरी भुजा ने नहीं सीखा" नाग ने—"आ जा ! शस्त्र से क्या ? भुजाओं से ही मैं तेरा अभिमान चूर किये देता हूँ"—तिरस्कारपूर्वक यह कहकर ताल ठोका। राजा ने भी युद्ध में शस्त्र-रहित को शस्त्र द्वारा जीतने में लजाते हुए ढाल-सहित अट्टहास खड्ग को त्याग कर कच्छे के ऊपर बाहु-युद्ध के लिए कमरबन्द कसा । दोनों निर्दयता-पूर्वक ताल ठोकने से विदीर्ण हुई भुजाओं के रुधिर कणों से सींचे जाते हुए, (परस्पर ऊपर) पड़ते हुए शिलास्तम्भों जैसे बाहु-दण्डों से भुवन को शब्दमय-जैसा बनाते हुये लड़े। थोड़ी देर में राजा ने नाग को भूतल पर पटक दिया और उसके बाल पकड़ लिये । उसका सिर काटने के लिये राजा

भूपतिः। जग्राह च केशेषु। उच्चखान च शिरश्छेत्तुमट्टहासम्। अपश्यच्च वैकक्षकमालान्तरेणास्य यज्ञोपवीतम्। उपसंहृतशस्त्रव्यापारश्चावादीत्—'दुर्विनीत, अस्ति ते दुर्नयनिर्वाहबीजमिदम्। यतो विश्रब्धमेवाचरसि चापलानि' इत्युक्त्वोत्ससर्ज तम्। अनन्तरं च सहसैवातिबहलां ज्योत्स्नां ददर्श। शरदि विकसतां कमलवनानामिव च घ्राणावलेपिनमामोदमजिघ्रत्। झटिति च नूपुरशब्दमशृणोत्। व्यापारयामास च शब्दानुसारेण दृष्टिम्।

अथ करतलस्थितस्याट्टहासस्य मध्ये तडितमिव नीलजलधरोदरे स्फुरन्तीम्, प्रभया पिबन्तीमिव त्रियामाम्, तामरसहस्ताम् कोमलाङ्गुलिरागराजिजालकानि च चरणलग्नानि वेलाबालविद्रुमलतावनानीवाकर्षन्तीम्, करपङ्कजसङ्कोचाशङ्कया शशाङ्कमण्डलमिव खण्डशः कृतं निर्मलचरणनखनिवहनिभेन बिभ्रतीम्, गुल्फावलम्बिनूपुरपुटतया

टीका—शिरः छेत्तुम् शिरश्छेदं कर्तुम् अट्टहासं=स्वखड्गम् उच्चखान कोषाद् बहिर्निस्सारितवान् इत्यर्थः। वैकक्षकमालाम्=यज्ञोपवीतवद् तिर्यग्वक्षसि धृतां पुष्पस्रजम् अन्तरेण=अन्तरतः मध्ये इत्यर्थः यज्ञोपवीतं=ब्रह्मसूत्रम्। उपसंहृतः रुद्धः शस्त्रव्यापारः=शस्त्रकर्म येन सः इति अवादीत्=अवदत्—दुर्विनीत=धृष्ट! दुर्विनयस्य=धृष्टताया निर्वाहः निर्वहणम् आचरणमिति यावत् बीजं साधनम् इदम्=यज्ञोपवीतम्, यज्ञोपवीतेन नागः ब्राह्मणः सिध्यति ब्रह्महत्या च महापातकमिति निषिध्यते। यतः=एतस्मात् कारणादेव विश्रब्धं=निःशङ्कं यथा स्यात्तथा त्वं चापलानि=चपलता-कार्याणि दुर्नयानित्यर्थः आचरसि=करोषि, इति उक्त्वा=कथयित्वा तं=नागम् उत्ससर्ज=त्यक्तवान्। सहसा=अकस्मात् एव अतिबहलाम्=अतिविपुलां ज्योत्स्नां=चन्द्रिकां ददर्श=अपश्यत् शरदि=शरदृतौ विकसतां पुष्पतां कमलवनानां=कमलसमूहानाम् इवेत्युपमायाम् घ्राणम्=नासिकाम् अवलिम्पति=लिप्तीकरोतीति तथोक्तम् अत्यधिकमित्यर्थः। आमोदं=सौरभम् अजिघ्रत्=घ्रातवान्, झटिति=शीघ्रमेव च नूपुरयोः=मञ्जीरयोः शब्दम् अशृणोत्=श्रुतवान्।

अथ……अट्टहासस्य मध्ये……स्फुरन्तीं……स्त्रियमपश्यत् इत्यस्ति वाक्यम्। करतल०—करतले=हस्ततले स्थितस्य अट्टहासस्य खड्गस्य मध्ये नीलस्य=श्यामस्य जलधरस्य=मेघस्य उदरे=मध्ये स्फुरन्तीं=भ्राजमानां तडितम्=विद्युतम् इवेत्युपमायाम्, प्रभया=कान्त्या त्रियामाम्=त्रयो यामाः प्रहराः यस्याः ताम् रात्रिमित्यर्थः पिबन्तीं=पानविषयीकुर्वन्तीम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, तामरसं=कमलं हस्ते यस्याः ताम्, कोमलाः=सुकुमाराः याः चरणयोः अङ्गुलयः तासां रागस्य=कालिम्नः राजीनां=पङ्क्तीनां जालकानि=जालानि चरणयोः लग्नानि=संसक्तानि वेलायाः=समुद्र-तटे यानि बालानि=अभिनवानि विद्रुमलतानां=प्रवाल-वल्लीनां वनानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आकर्षन्तीम्=आनयन्तीमित्यर्थः। कर०—करे यत्पङ्कजं=कमलं तस्य सङ्कोचस्य=ग्लानेः आशङ्कया=भयेन शशाङ्कस्य=चन्द्रस्य मण्डलं=बिम्बम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् खण्डशः कृतं=खण्ड-खण्डीकृतं निर्मलानां=स्वच्छानां चरण-नखानां निवहस्य=समूहस्य निभेन=व्याजेन बिभ्रतीं=धारयन्तीम्। अत्र व्याजापह्नुतिः, अर्थात् तस्याः चरणनखानि चन्द्रवत् स्वच्छानि आसन्, हस्तस्थितं कमलं रात्रौ चन्द्रप्रकाशे म्लानं स्यादिति शङ्कया सा चन्द्रं खण्ड-खण्डीकृत्य स्वचरणयोः धारयतिस्म। गुल्फा०—गुल्फयोः घुटिकयोः पादपार्श्वस्थग्रन्थिविशेषयोरिति यावत् ['तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ' इत्यमरः] अवलम्बते इत्यवलम्बी नूपुरयोः=मञ्जीरयोः पुटं भङ्गो यस्याः तस्याः भावः तत्ता तया

हिन्दी—ने म्यान से खड्ग खींचा तो वैकक्षक-माला के मध्य यज्ञोपवीत देख लिया। शस्त्र-कार्य रोके हुये (राजा) बोला—दुष्ट! यह तेरे दुष्कर्मों को निभाने के लिये बीज है, क्योंकि तू निशंक होकर ही दुष्टता के काम कर रहा है,—यह कहकर उसे छोड़ दिया। तदनन्तर अकस्मात् (राजा ने) एक महान् आलोक देखा, शरत्काल में विकसित होते हुए कमल वनों की-सी घ्राण को लिप्त कर देने वाली सुगन्ध सूंघी और शीघ्र ही नूपुरों की झनझनाहट सुनी। शब्द के पीछे (राजा ने) दृष्टि लगाई।

इसके बाद राजा ने एक स्त्री देखी—जो कर-तल में स्थित अट्टहास के मध्य (प्रतिबिम्बरूप से) ऐसी चमक रही थी जैसे काले मेघ के भीतर बिजली चमका करती है, जो अपनी प्रभा से रात्रि को पी-सी रही थी, जिसके हाथ में कमल था, जो कोमल चरणों की लालिमा-राजियों की जाली रखे हुए ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो समुद्र से निकलते समय तीर की नई-नई विद्रुम लताओं के वनों को खींची जा रही हो, जो चरणों के निर्मल नख-समूह के बहाने हाथ के कमल के मुर्झा जाने की आशंका से खण्ड-खण्ड किए हुए चन्द्रमण्डल को जैसे धारण कर रही थी, जो गुठनों में नूपुर-पुट पड़े रहने के कारण घनी कड़ियों वाली बन्धन शृंखला से-जैसे छूटकर आई हुई

स्थितनिविडकटकावलिबन्धनादिव परिभ्रश्यागताम्, बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितात्पवनचलिततनुतरङ्गाद‍तिस्व-च्छादंशुकादुदधिसलिलादिवोत्तरन्तीम्, उदधिजन्मप्रेम्णा त्रिवलिच्छलेन त्रिपथगयेव परिष्वक्तमध्याम्, अत्युन्नतस्तनमण्डलाम्, दृश्यमानदिङ्नागकुम्भामिव ककुभम्, मदलग्नैरावतकरशीकरनिकरमिव शरत्तारागणतारं हारमुरसा दधानाम्, धवलचामरैरिव च मन्दमन्दनिःश्वासदोलायितैर्हारकिरणैरुपवीज्यमानाम्, स्वभावलोहितेन मदान्ध-गन्धेभकुम्भास्फालनसंक्रान्तसिन्दूरेणेव करद्वयेन द्योतमानाम्, हरशिखण्डेन्दुद्वितीयखण्डेनेव कुण्डलीकृतेन ज्योत्स्नामुचा दन्तपत्रेण विभ्राजमानाम्, कौस्तुभगभस्तिस्तबकेनेव च श्रवणलग्नेनाशोककिसलयेनालङ्कृताम्, महता मातङ्गमदमयेन

टीका—स्थिता निविडाः=सान्द्राः कटकानां=वलयानां शृङ्खलावयवानामित्यर्थः आवलिः=राजिः यस्मिन् तथाभूतं यद् बन्धनं=शृङ्खला तस्मात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। परिभ्रश्य=उन्मुक्ता भूत्वेत्यर्थः आगताम् अर्थात् शृङ्खलायाः अन्य-कटकान् केनापि प्रकारेण भङ्क्त्वा एककटकेन सह कारागारात् पलाय्य आगताम्। बहुविध०—बहुविधानां कुसुमानां नानापुष्पाणां शकुनीनां=पक्षिणां च शतैः एकत्र चित्रितैः अथवा सूत्रमयैः अपरत्र पतितैः शोभितात्। पवनेन=चलिताः=जनिताः इत्यर्थः तनवः=लघवः तरङ्गाः=वीचयः अन्यत्र तरङ्गाकाररेखाः यस्मिन् तस्मात्, अति-स्वच्छात्=अतिनिर्मलात् अंशुकात्=कौशेयवसनात् उदधेः=सागरस्य सलिलात्=जलात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्तर-न्तीम् आगच्छन्तीम्, अथ च दर्शन-विषयीभवन्तीम्, उदधि०—उदधिः=समुद्रः तस्मात् जन्म=उत्पत्तिः तेन प्रेम्णा=स्नेहेन त्रिवलीनां=उदरमध्यस्थितानां त्रिचर्मराजीनां छलेन=व्याजेन त्रिषु पथिषु=स्वर्ग-मर्त्य-पाताल-लोकेषु गच्छतीति त्रिपथगा=गङ्गा तया इवेत्युत्प्रेक्षायाम् परिष्वक्तं=समाश्लिष्टं मध्यम्=उदरं यस्याः ताम्, गङ्गा समुद्रस्य पत्नी। अत्र त्रिपथगेति विशेष्यस्य साभिप्रायत्वात् परिकराङ्कुरालङ्कारः अत्युन्नत०—अतिशयेन उन्नतं स्तनयोः=कुचयोः मण्डलं=वृत्तं यस्याः ताम् दृश्यमानौ=दृग्गोचरीभवन्तौ दिङ्नागस्य=दिग्गजस्य कुम्भौ=कपोलौ यस्यां ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ककुभम्=दिशाम्। मद०—मदे=दान-जले लग्नः=संसक्तः समद इत्यर्थः यः ऐरावतः=इन्द्रगजः तस्य करस्य=शुण्डादण्डस्य शीकराणाम् जलकणानां निकरः=समूह इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शरदः शरत्तोः यः तारा-गणः=नक्षत्र-समूहः तद्वत् तारम्=उज्ज्वलं हारं=मौक्तिकस्रजम् उरसा वक्षसा दधानां=बिभ्रतीम्, ऐरावतः श्वेतो भवति तस्याः स्तनावपि श्वेतौ, तत्र मौक्तिकस्रक् मत्तैरावतशुण्डमुक्त-शीकरनिकर इव प्रतीयते स्मेति भावः, धवल०—धवलैः=श्वेतैः चामरैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मन्द-मन्दः=ईषन्मन्दः यः निःश्वासः श्वासोच्छ्वासः तेन दोलायितैः=प्रेङ्खद्भिः हारस्य=मौक्तिकस्रजः किरणैः=रश्मिभिः उपवीज्य-मानाम्=क्रियमाणवीजनाम्, स्वभाव०—स्वभावतः=निसर्गेण लोहितेन=रक्तवर्णेन मदेन अन्धः=मदमत्तः इत्यर्थः, गन्धेभः=गन्धगजः तस्य कुम्भयोः=गण्डस्थलयोः आस्फालने=ताडने मर्दने वा संक्रान्तं=लग्नं सिन्दूरं यत्र तेन करद्वयेन—हस्त-युगलेन द्योतमानां=भ्राजमानाम् लक्ष्मीः गजमारोहतीति ध्येयम्। हर०—हरस्य=शिवस्य शिखण्डे=चूडायां यः इन्दुः=चन्द्रः तस्य द्वितीयेन खण्डेन=शकलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कुण्डलीकृतेन=कुण्डलाकारे परिणामितेन ज्योत्स्नां=चन्द्रिकाम् आलोकमित्यर्थः मुञ्चतीति तथोक्तेन दन्तपत्रेण=गजदन्त-

हिन्दी—लग रही थी, जो (काढ़े हुए) नाना प्रकार के शतशः पुष्पों और पक्षियों से शोभित एवं वायु से उत्पन्न छोटी रंगों-जैसी रेखाओं वाले स्वच्छ रेशमी वस्त्र में से उभरती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो शतशः नाना पुष्पों और पक्षियों से शोभित एवं वायु-जनित तरंगों वाले समुद्र में से (बाहर) निकल रही हो, जो (पेट पर पड़ी) त्रिवलि के बहाने ऐसी लग रही थी मानो समुद्र से जन्म होने के कारण प्रेम से त्रिपथगा (गंगा) द्वारा उसके मध्य भाग का आलिंगन किया जा रहा हो, जो अत्युन्नत स्तनमण्डलों वाली ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे दिशा हो, जहाँ दिग्गज के कुम्भस्थल दिखाई पड़ते रहते हैं, जो मदमत्त ऐरावत हाथी के सूंड का जलकण-समूह-जैसा शरत्का-लीन तारागणों की तरह उज्ज्वल मोतियों का हार गले में धारण किए हुए थी, जो मन्द-मन्द निश्वास द्वारा हिलती हुई मोतियों के हार की किरणों से श्वेत चामरों से-जैसे वीजित की जा रही थी, जो स्वभावतः दो लाल २ हाथों से चमक रही थी मानो उनमें मदमत्त गन्धगज की कनपट्टियों को रगड़ने से सिन्दूर लग गया हो, जो महादेव की चूड़ा के चन्द्रमा के दूसरा खण्ड जैसा लग रहे, कुंडलाकार किए, चाँदनी छिटकाए हुए दन्तपत्र से शोभित हो रही

तिलकेनादृश्यच्छत्रच्छायामण्डलेनेवाविरहितललाटाम्, आपादतलादासीमन्तात् चन्द्रातपधवलेन चन्दनेनादिराजयशसेव धवलीकृताम्, धरणितलचुम्बिनीभिः कण्ठकुसुममालाभिः सरिद्भिरिव सागराधिष्ठाभिरधिष्ठिताम्, मृणालकोमलैरवयवैः कमलसम्भवत्वमनक्षरमाचक्षाणां स्त्रियमपश्यत् ।

असंभ्रान्तश्च पप्रच्छ—'भद्रे, कासि कस्यासि। किमर्थं वा दर्शनपथमागतासि' इति । सा तु स्त्रीजनविरुद्धेनावष्टम्भेनाभिभवन्तीवाभाषत तम्—

'वीर, विद्धि मां नारायणोरःस्थलीलीलाविहारहरिणीम्, पृथुभरतभगीरथादिराजवंशपताकाम्, सुभटभुजजयस्त-

---

टीका—निर्मितकर्णाभरणविशेषेण विभ्राजमानां = द्योतमानां कौस्तुभ०—कौस्तुभस्य = भगवद्विष्णुवक्षःस्थलगतमणिविशेषस्य गभस्तीनाम् अंशूनां स्तबकेन = गुच्छेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् श्रवणे = कर्णे लग्नेन = संसक्तेन अशोकस्य = वृक्षविशेषस्य किसलयेन = पल्लवेन अलङ्कृताम् भूषिताम्, महता = विशालेन मातङ्गस्य = गजस्य यः मदः = दानम् एव मदमयः = मदरचित इत्यर्थः तेन तिलकेन = भालकृतचिह्नविशेषेण अदृश्यं = न दृश्यमानं नयनागोचरमिति यावत् छत्रम् = आतपत्रं तस्य छायाया मण्डलेन = वृत्तेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अविरहितम् = अशून्यं ललाटं भालं यस्याः ताम् । अयं भावः छत्रं हि राजचिह्नं भवति, अतः लक्ष्म्यापि तेन सह भवितव्यम्, छत्रं तु न दृश्यते तच्छायैव गोलाकारा कृष्णवर्णा भाले तिलकरूपेण प्रतीयते । आपाद०—आपादतलात् = चरणतलाद् आरभ्य आसीमन्तात् = सीमन्तपर्यन्तम् चन्द्रस्य आतपः = आलोकः तद्वद् धवलेन = श्वेतेन चन्दनेन आदिराजानां = मनुपृथ्वादीनां यशसा = कीर्त्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् धवलीकृताम् = श्वेतवर्णीकृताम् धरणि०—धरणितलं भूतलं चुम्बन्ति = स्पृशन्तीति अन्यत्र धरणितले वहन्तीति तयोक्ताभिः कण्ठस्य = गलस्य कुसुममालाभिः = पुष्पस्रग्भिः सरिद्भिः = नदीभिः इवेत्युत्प्रेक्षायां सागरं = समुद्रम् अधितिष्ठन्तीति ($\surd$स्था + कः) ताभिः समुद्रस्थायिनीभिरित्यर्थः अधिष्ठिताम् = युक्तामित्यर्थः अर्थात् समुद्रस्थिताः नद्यः तां वहन्तिस्म, ताभिरुपेता इव सा मालाभिः प्रतीयते स्म, मृणाल०—मृणालवत् = बिसवत् कोमलैः = मृदुभिः अवयवैः = अङ्गैः कमलात् संभवः = उत्पत्तिः यस्याः तस्याः भावः तत्त्वम् अनक्षरम् = अविद्यमानानि अक्षराणि = वर्णाः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा आचक्षाणां = कथयन्तीम् स्त्रियं नारीम् अपश्यत् । असंभ्रान्तः = अनाकुलः पप्रच्छ = पृष्टवान्—भद्रे ! कल्याणिनि ! दर्शनपथं = दृग्गोचरम् स्त्रीजनस्य विरुद्धेन = विपरीतेन अवष्टम्भेन = गर्वेण = अभिभवन्ती = पराभवन्ती राजानमिति शेषः अभाषत = अकथयत्—विद्धि = जानीहि नारायण०—नारायणस्य विष्णोः उरः = वक्ष एव स्थली = अकृत्रिम-भूमिः तस्यां लीलया = विलासेन विहारे = विचरणे हरिणीं = मृगीम्, पृथु०—पृथुश्च भरतश्च भगीरथश्च आदयः येषां ते ये राजानः = महीपालाः तेषां वंशानां = कुलानामेव वेणुदण्डानां पताकाम् = ध्वजाम्, सुभट०—सुभटानां सुयोधानां भुजाः = बाहवः एव जयस्तम्भाः तेषु विलासाय = शोभायै शालभञ्जिकाम् = पुत्तलिकाम्, पुराविजयस्तम्भेषु शोभार्थं पुत्रिका उत्कीर्यन्तेस्म, रण०—रणेषु = युद्धेषु रुधिरस्य = रक्तस्य याः तरङ्गिण्यः = नद्यः तासां तरङ्गेषु = वीचिषु या क्रीडा = खेलनं तस्यां यः दोहदः = अभिलाषः तेन दुर्ललितां = दुर्विनीतां राजहंसीम् । सित०—

हिन्दी—थी, जो कौस्तुभ मणि की किरणों का गुच्छा-जैसा प्रतीत हो रहे, कान में पड़े अशोक के पल्लव से अलंकृत थी, जो गजमद से किए हुए विशाल (गोल) तिलक से ऐसी लग रही थी मानो अदृश्य छत्र के छाया-मण्डल से युक्त हो, जो पैरों से लेकर माँग तक चाँदनी के समान श्वेत चन्दन से आदि राजाओं के यश से-जैसे श्वेत कर दी गई थी, जो भूतल को छूने वाली गले की पुष्प मालाओं से ऐसी लगती थी मानो समुद्र स्थित नदियों से युक्त हो, जो मृणाल की तरह सुकुमार अङ्गों से बिना अक्षर के (अर्थात् विना कहे ही) अपना कमल से हुआ जन्म कह रही थी। और (राजा) बिना घबराए पूछ बैठा—'भद्रे ! तू कौन है और किसकी (पत्नी) है ? अथवा क्यों मेरे दृष्टि-गोचर हुई है ? वह स्त्रीजन के विपरीत (राजा पर) दबदबा-जैसे बनाती हुई बोली—"तू मुझे विष्णु के वक्षःस्थल पर विलास-पूर्वक विचरण करने वाली हरिणी, पृथु-भरत-भगीरथ आदि राजाओं की कुल-ध्वजा, सुभटों के भुजा-रूपी विजय स्तम्भों पर (उत्कीर्ण) शोभा बढ़ाने वाली पुतली, युद्धों में रुधिर की नदियों के तरंगों पर क्रीडा की

ऽभिलाषशालभञ्जिकाम्, आयतधिरतरङ्गिणीतरङ्गक्रीडादोहदललितराजहंसीम्, सितनपच्छत्रषण्डशिखण्डिनीम्, अतिनिशितशस्त्रधारावनभ्रमणविभ्रमसिंहीम्, असिधाराजलकमलिनीं श्रियम्। अपहृतास्मि तवामुना शौर्यरसेन। याचस्व। ददामि ते वरमभिलषितम्' इति।

वीराणां त्वपुनरुक्ताः परोपकाराः। यतो राजा तां प्रणम्य स्वार्थविमुखो भैरवाचार्यस्य सिद्धि ययाचे। लक्ष्मीस्तु देवी प्रीततरहृदया विस्तीर्यमाणेन चक्षुषा क्षीरोदेनेवोपरि पर्यस्तेनाभिषिञ्चन्ती भूपालम् 'एवमस्तु' इत्यब्रवीत्। अब्रवीच्च पुनः—'अनेन सत्त्वोत्कर्षेण भगवच्छिवभट्टारकभक्त्या चासाधारणया भवान्भुवि सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय इवाविच्छिन्नस्य प्रतिदिनमुपचीयमानवृद्धेः शुचिसुभगसत्यत्यागधैर्यशौण्डपुरुषप्रकाण्डप्रायस्य महतो राजवंशस्य कर्ता भविष्यति। यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्वद्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्षनामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुर्द्वितीयो मान्धातेव यस्यायं करः स्वयमेव कमलमपहाय ग्रहीष्यति चामरम्' इति वदसोऽन्ते तिरोऽभूव।

टीका—सितानि=श्वेतानि नृपाणां यानि छत्राणि=आतपत्राणि तेषां षण्डेषु=समूहेषु वनेष्वित्यर्थः शिखण्डिनीं=मयूरीम् अति०—अतिनिशितानाम्=अतितीक्ष्णानां धाराः=अग्राणि एव वनम्=अरण्यं तत्र भ्रमणं=विहरणम् एव विभ्रमः=विलासः तत्र सिंहीं-सिंहस्त्रियम्, असि०—असीनां=खड्गानां धारा एव जलं तत्र कमलिनीं=पद्मिनीं श्रियं=लक्ष्मीम्। तव=ते अनेन शौर्यरसेन=वीरता-प्रेम्णा=अपहृता=आकृष्टेत्यर्थः अर्थात् तव वीरतायामनुरक्ताऽहमागतास्मि याचस्व=प्रार्थयस्व। अभिलषितं=काङ्क्षितं वरम्=वरणीयं वस्तु।

वीराणां=शूराणां परोपकाराः=परहितानुष्ठानानि अपुनरुक्ताः=न पुनरुक्तदोषपूर्णाः अर्थात् पुनः पुनः परोपकारं कुर्वन्तो न ते श्राम्यन्ति स एतेषां स्वभाव एव। तां=लक्ष्मीम् प्रणम्य अभिवाद्य स्वार्थात्=स्वहितात् विमुखः=पराङ्मुखः स्वार्थमनपेक्ष्येत्यर्थः सिद्धिं=कार्य-साफल्यं ययाचे=प्रार्थितवान्। प्रीततरम्=अतिशयेन प्रीतं=प्रसन्नं हृदयं यस्याः सा विस्तीर्यमाणेन=हर्षकारणात् विस्तारं प्राप्नुवता चक्षुषा=नेत्रेण क्षीरोदेन=क्षीरसमुद्रेण इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उपरि पर्यस्तेन=पतितेन अभिषिञ्चन्ती=अभिषिक्तं कुर्वती, राज्याभिषेककाले हि राजा पवित्रजलेन अभिषिच्यते इति ध्येयम् 'एवम् अस्तु'='भैरवाचार्यस्य कार्य-सिद्धिः भवतु' इति अब्रवीत्=अकथयत्, अवादीत् अवदत् च—सत्त्वस्य=उत्साहस्य बलस्य वा उत्कर्षेण=आधिक्येन तवोत्कृष्ट-साहसेनेत्यर्थः, असाधारणया=असामान्यया भगवति शिवे भट्टारके=प्रभौ भक्त्या=भक्तिभावेन च भवान् भुवि=पृथिव्यां सूर्यश्च चन्द्रश्च तयोः अत्र देवतावाचकत्वात् सूर्यस्य दीर्घत्वम् ['देवताद्वन्द्वे च' पा० ६।३।२६ इत्यनेन सूर्यस्य आनङ्] तृतीय इव, स्वस्ववंशप्रवर्तकयोःसूर्यचन्द्रमसोः अनन्तरं तृतीयः अविच्छिन्नस्य=सततं प्रवर्तमानस्य प्रतिदिनं=नित्यम् उपचीयमाना=वर्धमाना वृद्धिर्यस्य तस्य, शुचि०—शुचीनि पवित्राणि पवित्राचरणानीत्यर्थः सुभगानि=सौभाग्योपेतानि सुन्दराणि वा सत्यं च त्यागः=दानञ्च धैर्यं=धीरता चेति सत्य-धैर्याणि तेषु शौण्डानि=दक्षाणि च पुरुषप्रकाण्डानि=प्रशस्ताः प्रशस्तपुरुषा इति यावत् प्रायः=बाहुल्येन यत्र तथाभूतस्य ['मतल्लिका-मर्चचिकाप्रकाण्डमुद्ध-तल्लजौ। प्रशस्तवाचकान्यमूनि' इत्यमरः] महतः=विशालस्य राजवंशस्य=राजकुलस्य कर्ता=प्रवर्तकः इत्यर्थः। =यस्मिन्राजवंशे उत्पत्स्यते=उत्पन्नो भविष्यति भोक्ता=पालकः हरिश्चन्द्रः=विख्याता सत्यवादी राजविशेषः हर्षः=हर्षवर्धनः नाम यस्य स चक्रवर्ती=सार्वभौमः त्रिभुवनं=त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तद्—विजिगीषुः=विजेतुमिच्छुः द्वितीयः=

हिन्दी—अभिलाषा रखने वाली नक-चढ़ी राजहंसी, राजाओं के श्वेत छत्रों के वनों की मोरनी, अति तीक्ष्ण शस्त्रों की धाराओं के वन में विहरण के विलास की सिंहनी एवं खड्गों की धाराओं के जल की कमलिनी लक्ष्मी जान। मैं तेरे शौर्यानुराग से खींची आई हूं। माँग। तुझे वाञ्छित वर देती हूं।"

वीरों के परोपकार पुनरुक्तिदोष-ग्रस्त नहीं हुआ करते (अर्थात् वे पुनः पुनः परोपकार करते थकते नहीं)। तभी तो राजा ने उसे प्रणाम करके स्वार्थ-पराङ्मुख होकर भैरवाचार्य की (अभिलषित) सिद्धि माँगी। लक्ष्मी देवी हृदय से और भी प्रसन्न हुई आस्फारित चक्षु से ऊपर उँडेले हुए क्षीर-समुद्र से-जैसे राजा को अभिषिक्त करती हुई बोली—'तथास्तु' और फिर बोली—आप (अपने) इस उत्कृष्ट बल तथा भगवान् शिवराज की असाधारण भक्ति से पृथिवी पर सूर्य और चन्द्र [वंशों] की तरह तीसरे सतत चलते रहने वाले, प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होते रहने वाले एवं पवित्र, सुन्दर और प्रायः सत्य-त्याग धैर्य में निपुण प्रशस्त पुरुषों वाले महान् राजवंश के प्रवर्तक होंगे जिसमें सभी द्वीपों का पालक हरिश्चन्द्र-जैसा, तीनों भुवनों का विजयाकांक्षी, दूसरा मान्धाता-जैसा

भूमिपालस्तु तदाकर्ण्य हृदयेनातिमात्रमप्रीयत। भैरवाचार्योऽपि तस्या देव्यास्तेन वचसा कर्मणा च सम्यगुपपादितेन सद्य एव कुन्तली किरीटी हारी केयूरी मेखली मुद्गरी खड्गी च भूत्वावाप विद्याधरत्वम्। प्रोवाच च—'राजन्, अदूरव्यापिनः फल्गुचेतसामलसानां मनोरथाः। सतां तु भुवि विस्तारवत्यः स्वभावेनैवोपकृतयः। स्वप्नेऽप्यसम्भावितां दातुमिमां दक्षिणां क्षमः कोऽन्यो भवन्तमपहाय। सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति। त्वदीयैर्गुणैरुपकरणीकृतस्य त्वत्त एव च लब्धात्मलाभस्य निर्लज्जतेयमस्य मूढहृदयस्य यदिच्छामि येन केनचित्कार्यलवोपपादनोपयोगेन स्मरयितुमात्मानम्' इति। प्रत्युपकारदुष्प्रवेशास्तु भवन्ति धीराणां हृदयावष्टम्भाः। यतस्तं राजा

टीका—अपरः मान्धाता=राजविशेषः इव यस्य=हर्षस्य अयं करः=मम हस्तः इत्यर्थः कमलम्=पद्मम् अपहाय=त्यक्त्वा चामरं ग्रहीष्यति=धारयिष्यति वीजनायेति शेषः, इति वचसः=वचनस्य अन्ते=अवसाने तिरोबभूव=अन्तर्हिता अभवत्।

भूमिपालः=राजा पुष्पभूतिः तत् आकर्ण्य=श्रुत्वा अतिमात्रम् अत्यन्तं यथा स्यात्तथा अप्रीयत=प्रसन्नोऽभूत्। तस्याः देव्याः=लक्ष्म्याः वचसा=वचनेन कर्मणा=अनुष्ठानेन च सम्यग् यथा स्यात्तथा उपपादितेन=सम्पादितेन तत्कालं कुन्तली=कुन्तलाः=केशाः अस्य सन्तीति कुन्तलवान्, सुवेश इत्यर्थः किरीटी=किरीटं=मुकुटम् अस्यास्तीति तथोक्तः मुकुटधारीत्यर्थः हारी=मुक्ताहारवान्, केयूरी=केयूरवान् अङ्गदधारीति यावत्, मेखली=मेखलावान्, धृतकटिदामेत्यर्थः मुद्गरी=मुद्गरः=गदा अस्यास्तीति तथोक्तः, खड्गी=खड्गधारीत्यर्थः विद्याधरत्वं=विद्याधरस्य भावम् अवाप=प्राप्तवान् विद्याधरो बभूवेत्यर्थः। प्रोवाच=अकथयत् च फल्गु०=निस्सार ['असारं फल्गु०' इत्यमरः] चेतः=मनः येषां दुर्बलचित्तानामित्यर्थः अलसानाम्=आलस्ययुक्तानाम् अनुद्योगिनामिति यावत् मनोरथाः=अभिलषितानि न दूरं व्याप्नुवन्तीति अदूरव्यापिनः=अदूरगामिनः भवन्तीति शेषः अर्थात् निरुद्यमानां दुर्बलमनसाम् आकाङ्क्षाः दूरारोहिण्यो न जायन्ते, तु=किन्तु सतां सत्पुरुषाणाम् उपकृतयः=उपकाराः स्वभावेन=प्रकृत्या एव भुवि=जगति विस्तारवत्यः=विस्तृताः दूरव्यापिन्य इति यावत भवन्तीति शेषः। स्वप्ने अपि असंभाविताम्=अकल्पिताम् इमाम्=मम विद्याधरत्वप्राप्तिरूपां दक्षिणां=गुरुदक्षिणां भवन्तम् अपहाय=त्यक्त्वा अन्यः नः दातुं क्षमः=समर्थः न कोऽपीत्यर्थः। सम्पदः=सम्पत्तेः कणिकाम्=अल्पकणम् अपि प्राप्य=लब्ध्वा लघ्वी=क्षुद्रा प्रकृतिः=स्वभावः यस्य सः पुरुषः तुला=तोलनदण्डः इवेत्युपमायाम् उन्नतिम् आयाति=उपरि गच्छति। अथ च मदोद्धतो भवति त्वदीयैः=त्वत्सम्बन्धिभिः गुणैः=शौर्यादिभिः उपकरणीकृतस्य=उपकरणम्=उपकारः तद्वान् कृतः इत्युपकरणीकृतः, तस्य उपकृतस्य कृतोपकारस्येत्यर्थः त्वत्तः=त्वत्सकाशात् एव लब्धः=प्राप्तः आत्मलाभः=आत्मकार्यसिद्धिरित्यर्थः येन तस्य अस्य=ममेत्यर्थः मूढहृदयस्य=मूर्खहृदयस्य इयं निर्लज्जता=लज्जाया अभावः यत् इच्छामि कार्यलवस्य=तुच्छसेवया इत्यर्थः उपपादनस्य=करणस्य उपयोगेन=फलेन आत्मानं स्मारयितुम्=स्मृतिविषयं कारयितुम्। प्रत्युपकारेण=उपकारस्य स्थाने कृतेन उपकारेण दुष्प्रवेशा

हिन्दी—हर्ष नाम का चक्रवर्ती राजा होगा, जिसका चामर स्वयं यह (मेरा) हाथ कमल को फेंककर ग्रहण करेगा"—इतना कहने के बाद अन्त में वह अन्तर्धान हो गई।

राजा यह सुनकर हृदय से बहुत ही प्रसन्न हुआ। भैरवाचार्य भी उस देवी के उस वचन से तथा अच्छी तरह किए गए अपने अनुष्ठान से तत्काल ही कुन्तल और मुकुटधारी मौक्तिक-हार वाला, बाजूबन्द और तागड़ी से युक्त एवं गदा और खड्ग से सज्जित होकर विद्याधर का रूप धारण कर बैठा और बोला—'राजन्, दुर्बलचित्त आलसी लोगों की आकांक्षायें दूरव्यापी नहीं हुआ करतीं। किन्तु सत्पुरुषों के उपकार जगत् में स्वभावतः विस्तृत होते हैं। स्वप्न में भी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है—ऐसी (गुरु-) दक्षिणा देने में आपके सिवाय कौन समर्थ है? सम्पत्ति की एक कणी भी पाकर क्षुद्र प्रकृति का व्यक्ति तराजू की डंडी की तरह ऊँचा हो बैठता है। तुम्हारे गुणों से उपकृत हुए, तुमसे ही अपना लाभ प्राप्त किए हुए इस (मेरे) मूढ़ हृदय की यह (कितनी) निर्लज्जता है कि मैं (तुम्हारी) कुछ तुच्छ सेवा करने में लगकर अपने को (तुम्हारे द्वारा) स्मरण का पात्र बनाना चाह रहा हूँ"। किन्तु

भवत्सिद्ध्यैव परिसमाप्तकृत्योऽस्मि । साधयतु मान्यो यथासमीहितं स्थानम्' इति प्रत्याचचक्षे ।

तथोक्तश्च भूभुजा जिगमिषुः सुदृढं समालिङ्ग्य टीटिभादीन्कुवलयवनेनेवावश्यायशीकरस्राविणा सास्रेण चक्षुषा वीक्षमाणः क्षितिपतिं पुनरुवाच—'तात, ब्रवीमि—यामीति न स्नेहसदृशम् । त्वदीयाः प्राणा इति पुनरुक्तम् । गृह्यतामिदं शरीरकमिति व्यतिरेकेणार्थकरणम् । तिलशः क्रीता वयमिति नोपकारानुरूपम् । बान्धवोऽसीति दूरीकरणमिव । त्वयि स्थितं हृदयमित्यप्रत्यक्षम् । त्वद्विरहकारिणी कारणेयं नः सिद्धिरित्यश्रद्धेयम् । निष्कारणस्तवोपकार इत्यनुवादः । स्मर्तव्या वयमित्याज्ञा । सर्वथा कृतघ्नालापेष्वसज्जनकथासु च चेतसि कर्तव्योऽयं स्वार्थनिष्ठुरो जन'

टीका—=दुःखेन प्रवेष्टुं योग्याः धीराणां=धीरपुरुषाणां हृदयस्य अवष्टम्भाः=गर्वाः अर्थात् धीराः कस्यापि उपकारं कृत्वा तत्स्थाने प्रत्युपकार-रूपेण न किमपीच्छन्ति न गृह्णन्ति । भवतः सिद्ध्या=कार्यं-साफल्येन विद्याधरत्वप्राप्त्या इत्यर्थः परिसमाप्तं=अवसितं कृत्यं=प्रयोजनम् यस्य तथाभूतः । मान्यः=आदरणीयः भवानित्यर्थः यथासमीहितं=यथाभिलषितं स्थानं=देशं साधयतु=गच्छतु इति प्रत्याचचक्षे=प्रतिषिद्धवान् भैरवाचार्यकृत-प्रत्युपकारप्रस्तावम् अस्वीकृतवानित्यर्थः ।

भूभुजा=भुवं=पृथिवीं भुनक्ति=पालयतीति भूभुज्=राजा तथा तेन प्रकारेण उक्तः अभिहितः जिगमिषुः =गन्तुमिच्छुः विद्याधरलोकमिति शेषः टीटिभादीन् सुदृढं=गाढं यथा स्यात् तथा समालिङ्ग्य=समाश्लिष्य कुवलयानां=नीलकमलानां वनेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अवश्यायस्य=तुषारस्य शीकरान्=कणान् स्रावयति=स्यन्दयतीति तथोक्तेन अस्रेण=अश्रुणा सहितेन चक्षुषा=नेत्रेण क्षितिपतिं=राजानं वीक्षमाणः पश्यन् पुनः उवाच =अकथयत्—"तात=प्रिय, ब्रवीमि=कथयामि—यामि=गच्छामीति कथनमिति शेषः न स्नेहस्य=प्रेम्णः सदृशम्=अनुरूपम्, यतः स्नेहे गमनं न भवति । प्राणाः=असवः ममेति शेषः त्वदीयाः=त्वदधीनाः इत्यर्थः इति पुनरुक्तम्=व्यर्थम् यतः कथनं विनैव मम जीवनं पूर्वमेव त्वदधीनम् । इदं शरीरकं=तुच्छशरीरं [तुच्छार्थेऽत्र कः] गृह्यताम्=स्वीक्रियताम् इति कथनम् व्यतिरेकेण=भेदेन पृथग्भावेनेत्यर्थः अर्थानां= पदार्थानां=करणं ग्रहणम् पदार्थेषु भेदकरणमित्यर्थः अर्थात् त्वम् अहञ्चैक एव अतः यन्मदीयं तद् त्वदीयमस्ति, मच्छरीरं गृह्यतामिति कथनेन तु भेद-प्रतीतिर्भवति । तिलशः=कण-कणशः वयं भवता क्रीताः=मूल्यदानेन गृहीताः इति कथनं त्वत्कृतानामुपकाराणाम् अनुरूपं=योग्यं न अर्थात् यदि खण्डयित्वा मम अनन्ताः कणाः क्रियेरन् ते त्वत्कृतोपकाराणां न पर्याप्तं मूल्यम् । बान्धवः=बन्धुः असि इति कथनम् त्वत्तः दूरीकरणमिव अर्थात् एतन्नावश्यकं यत् कोपि स्वबन्धु-बान्धवान् प्रति अत्यनुरक्तः सौहार्दपूर्णश्च स्यादेव । त्वयि स्थितं ते हृदयम् इति कथनं नोचितम् प्रत्यक्षप्रमाणाभावात् न हि कोऽपि हृदयमपरस्मिन् दर्शयितुं शक्नोति । तव विरहं=वियोगं करोतीति तथोक्ता इयं नः=ममेत्यर्थः सिद्धिः=साफल्यं विद्याधरत्वप्राप्तिरित्यर्थः कारणा=यातना ['कारणा तु यातना तीव्रवेदना' इत्यमरः] इति कथनम् अश्रद्धेयम्=न विश्वास-योग्यम् अर्थात् यथाभिलषितविद्याधरत्वप्राप्तिरूपा सिद्धिः मम कृते वेदना इति को विश्वसेत् ? तव मां प्रति कृत उपकारः=निष्कारणः=स्वार्थरहितः इत्यर्थः इति अनुवादः

हिन्दी—धीर पुरुषों के हृदय का गर्व प्रत्युपकार की पहुँच से दूर ही रहा करता है । तभी तो राजा ने "आपकी कार्य-सिद्धि से ही मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ । आदरणीय (आप) यथाभिलषित स्थान को चले जाइए"—इस तरह (कहकर प्रत्युपकार) अस्वीकार कर दिया। राजा द्वारा इस तरह कहा जाता हुआ और जाना चाहता हुआ (भैरवाचार्य) टीटिभ आदि का गाढ़ आलिंगन करके ओसकण टपकाने वाले कुवलय-समूह से-जैसे अश्रु-पूर्ण आँखों से राजा को देखता हुआ फिर बोला-'प्रिय, यदि कहूँ कि 'मैं जाता हूँ' तो यह स्नेह के रूप नहीं; '(ये मेरे) प्राण तुम्हारे ही हैं'—यह पुनरुक्ति है; 'यह तुच्छ शरीर ले लीजिए'—यह पदार्थ में भेद करना है; 'हम (शरीर के) कण-कण से खरीद लिए गए हैं' यह उपकारों के अनुरूप नहीं है, 'तू बन्धु है' यह (तो) दूर करना-जैसा है; 'तुममें मेरा हृदय स्थित है'—यह प्रत्यक्ष नही, 'तेरा विरह उत्पन्न कर देने वाली हमारी यह सफलता तीव्र वेदना है'—यह विश्वास योग्य नहीं, 'तेरे द्वारा किया हुआ उपकार निःस्वार्थ है'—यह पुनरुक्ति है, 'हमारी याद करते रहिए'—यह आज्ञा है । 'सर्वथा कृतघ्न लोगों के सम्बन्ध में (होने वाली) बातचीतों (अथवा) दुर्जनों के सम्बन्ध में होने वाले वार्तालापों के प्रसङ्ग में इस निष्ठुर स्वार्थी जन को (मुझे) मन में ले आइएगा'—इस प्रकार कहकर वेग के कारण टूटे

इत्यभिधाय वेगच्छिन्नहारोच्छलितमुक्ताफलनिकरताडिततारागणं गगनतलमुत्पपात । ययौ च सीमन्तितग्रहग्रामः सिद्धयु चितं धाम । श्रीकण्ठोऽपि—'राजन्, पराक्रमक्रीतः कर्तव्येषु नियोगेनानुग्राह्यो ग्राहितविनयोऽयं जनः' इत्यभिधाय राजानुमोदितस्तदेव भूयो भूविवरं विवेश ।

नरपतिस्तु क्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां, प्रवातुमारब्धे प्रबुध्यमानकमलिनीनिःश्वाससुरभौ वनदेवताकुचांशुकापहरणपरिहासस्वेदिनीव सावश्यायशीकरे परिमलाकृष्टमधुकृति कुमुदनिद्रावाहिनि निशापरिणतिजडे तुषारलेशिनि वनानिले, विरहविधुरचक्रवाकचक्रनिःश्वसितसन्तापितायामिवापरजलनिधिमवतरन्त्यां त्रियामायां, साक्षादागतलक्ष्मीविलो-

टीका—पुनरुक्तिः प्रशंसा वा अर्थात् साधवः स्वभावतः एव निस्स्वार्थोपकारं कुर्वन्ति, शब्देन पुनः तत्कथनम् अनुवादः (सिद्धस्योपन्यासोऽनुवादः] । वयम्=अहमित्यर्थः स्मर्तव्याः=स्मृतिविषयीकरणीयाः इति आज्ञा आदेशः । कृतघ्नानां कृतम् उपकारं घ्नन्ति=विस्मरन्तीति कृतघ्नाः अकृतज्ञा इत्यर्थः तेषाम् आलापेषु=तत्सम्बन्धिषु वार्तालापेषु असज्जनानां=दुर्जनानां कथासु=वार्तालापेषु च अयम् स्वार्थे=स्वकार्यसिद्धौ निष्ठुरः=कठोरः जनः अहमित्यर्थः चेतसि=मनसि कर्तव्यः स्मर्तव्यः इत्यर्थः इति अभिधाय=कथयित्वा वेग०—वेगेन=वेगाद् गमनेन छिन्नः त्रुटितः यः हारः=मौक्तिकमाला तस्मात् उच्छालितः=उत्पतितः मुक्ताफलानां=मौक्तिकानां यः निकरः=समूहः तेन ताडितः आहतः तारागणः यस्मिन् तथाभूतम् गगनम्, अथवा एतत् ताडितः तारागणः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा इति क्रियाविशेषणं बोध्यम्, गगन-तलम्=आकाशम् सीमन्तितः=कृत-सीमन्तः द्विधा कृतः इत्यर्थः ग्रहाणां ज्योतिषां ग्रामः=गणः येन तथाभूतः सिद्धेः=कार्यसाफल्यस्य उचितं=योग्यं धाम=स्थानम् विद्याधरलोकमित्यर्थः । यथा स्त्रीणां शिरसः श्वेतरेखा [सीमन्तः] केशान् विभजते तथैव सोऽपि ग्रहनक्षत्राणि ज्योतींषि द्विधा विभज्य गतवानिति भावः । श्रीकण्ठः=नागः अपि पराक्रमेण=शौर्येण राज्ञा क्रीतः सन् कर्तव्येषु=करणीयेषु नियोगेन=आज्ञया अनुग्राह्यः=अनुकम्पनीयः इति ग्राहितः=ग्रहणं कारितः विनयः=नम्रता येन सः अर्थात् राज्ञः सकाशात् प्राप्तविनयशिक्षः अभिधाय=कथयित्वा राज्ञा=नृपेण अनुमोदितः=अनुमतः भूयः पुनः तत् एव भुवः पृथिव्याः विवरं=छिद्रं विवेश प्रविष्टवान् ।

नरपतिः'''नगरं विवेश इत्यस्ति वाक्यम् । क्षपायां=रात्रौ क्षीणभूयिष्ठायाम्=समाप्तप्रायायामित्यर्थः प्रवातुं प्रचलितुम् आरब्धे=प्रक्रान्ते प्रबुध्य०—प्रबुध्यमानाः=विकसन्त्यः अथ च निद्रां त्यजन्त्यः याः कमलिन्यः=पद्मिन्यः तासां निःश्वासेन=निःश्वसितेन सुरभौ=सुगन्धिते । अत्र पद्मिनीषु पद्मिनीजातीयस्त्रीणां व्यवहार-समारोपात् समासोक्तिरलंकारः, वनदेवता०—वनदेवतानां वनाधिष्ठात्रीणां देवीनां कुचयोः=स्तनयोः अंशुकस्य कौशेयवस्त्रस्य । अपहरणं=निराकरणम् एव परिहासः=केलिः तेन स्वेदः=धर्मजलं सात्त्विकभावरूपम् अस्यास्तीति तथोक्तौ इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अत्रापि वनानिले कामुकव्यवहार-समारोपात्समासोक्तिः तदुत्थापिता चोत्प्रेक्षा । अवश्यायस्य=तुषारस्य शीकरैः सह वर्तमानः तस्मिन् परिमलेन=सौगन्ध्येन आकृष्टाः=आकारिताः इत्यर्थः, मधु कुर्वन्तीति मधुकृतः=मधुकराः येन तस्मिन्, कुमुदानां=रात्रिकमलानां निद्रां=स्वापम् आवहति=आनयतीति तथोक्ते अत्र कुमुदिनीति वक्तुमुचितं, तत एव नायिकात्वस्य अनिले च दक्षिणनायकत्वस्य प्रतीतेः, निशायाः=रात्रेः परिणत्या=अवसानेन अथ च प्रेमोष्मणा रहिते, अत्र निशायां नायिकात्वव्यवहारसमारोपः तुषारस्य=नीहारस्य लेशाः=अंशाः कणा

हिन्दी—हुए हार के उछले हुए मोतियों से तारागणों पर आघात करता हुआ ऊपर गगन-तल में जा उड़ा और (मांग की तरह) ग्रह गणों को दो भागों में विभक्त करता हुआ (उनके बीच में से) सिद्धि-योग्य धाम (विद्याधर लोक) को चला गया । श्रीकण्ठ नाग भी—"राजन् ! पराक्रम से खरीदे गये इस जन को (मुझे)—जिसे आपने विनय सिखा दिया है—कर्तव्य कर्मों में आज्ञा द्वारा अनुगृहीत करते रहिए" यह कहकर राजा द्वारा अनुज्ञात फिर उसी भूविवर में घुस गया ।

रात्रि के प्रायः क्षीण हो जाने पर प्रबुद्ध हो रही [(१) खिल रही (२) जाग रही] कमलिनियों की सांसों से सुगन्धित बने, वनदेवियों के स्तनांशुक हटाने की खिलवाड़ में पसीजे हुए-जैसे ओस-कण भरे, सौरभ से भ्रमरों को अपने पीछे खींचे हुए कुमुदिनियों को नींद लाने वाले, निशा की परिणति [(१) समाप्ति (२) वृद्धावस्था] पर जड़ [(१) शीतल (२) प्रेमोष्मा-रहित] बने, तुषार-कणवाही वन पवन के बहने लगने पर, विरह में विकल चकवा चकवियों के समूह के (उष्ण) सांसों से तपी हुई-जैसी रात्रि के पश्चिम समुद्र में उतरने लगने

कनकुतूहलिनीष्विव समुन्मीलन्तीषु नलिनीषु, उन्निद्रपक्षिणि क्षरति कुसुमविसरमिव तुहिनकणनिकरं मृदुपवन-लासितलते कानने, कमललक्ष्मीप्रबोधमङ्गलशङ्खेष्विव रटत्स्वन्तर्बद्धध्वनन्मधुकरेषु मुकुलायमानेषु कुमुदेषु, उज्जिहान-रविरथवाजिविसृष्टैः प्रोथपवनैः प्रोत्सार्यमाणास्विव वारुण्यां ककुभि पुञ्जीभवन्तीषु श्यामालताकलिकासु तारकासु, मन्दरशिखराश्रयिणि मन्दानिललुलितकल्पलतावनकुसुमधूलिविच्छुरित इव धूसरीभवति सप्तर्षिमण्डले, सुरवारण-

---

टीका—इत्यर्थः अस्य सन्तीति तथोक्ते वनस्य अनिले=पवने, **विरह**—विरहेण=रात्रिकृतेन वियोगेन विधुरं शोकाकुलं यत् चक्रवाकानां=चक्रवाकश्च चक्रवाक्यश्च रथाङ्गनाम्नां पक्षिविशेषाणामिति यावत् चक्रम्=समूहः तस्य निःश्वसितैः=उष्णोष्णनिःश्वास-मारुतैः सन्तापितायां सन्तापं प्रापितायाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अपरजलनिधिं पश्चिमसागरम् अवतरन्त्यां=गच्छन्त्यां त्रियामायां=रात्रौ, **साक्षात्०**—साक्षात्=प्रत्यक्षं सशरीरम् आगता या लक्ष्मीः (या राज्ञा दृष्टा) तस्या विलोकनस्य=दर्शनस्य कुतूहलं=कौतुकम् उत्कटाभिलाषः इति यावत् आसामस्तीति तथोक्तासु इवेत्युत्प्रेक्षा-याम्, समुन्मीलन्तीषु=विकसन्तीषु, नेत्रे उद्घाटयन्तीषु नलिनीषु=कमलिनीषु, **उन्निद्र०**—उन्निद्राः=प्रबुद्धाः पत्रिणः =विहगाः यस्मिन् तस्मिन्, कुसुमानां=पुष्पाणां विसरं=निकरम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् तुहिनस्य=अवश्यायस्य कणानां निकरं=समूहं क्षरति=पातयति मृदुना=कोमलेन पवनेन लासिताः=नर्तिताः लताः=वल्लयः यस्मिन् तथाभूते कानने=वने, अत्रापि पवने लतासु च चेतनव्यवहार-समारोपः। **कमल०**—कमलानां=पद्मानां या लक्ष्मीः =श्रीः तस्या प्रबोधाय=विकासाय अथ च जागरणाय मङ्गलाः=मङ्गल्याः ये शङ्खाः तेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् रटत्सु=शब्दायमानेषु अन्तर्बद्धाः=अभ्यन्तरे बन्धने पतिताः ध्वनन्तः=गुञ्जन्तः मधुकराः=भ्रमराः येषु तेषु मुकुलायमानेषु=मुकुलावस्थां प्राप्नुवत्सु म्लातुमुन्मुखेष्वित्यर्थः कुमुदेषु=रात्रिकमलेषु, **उज्जिहान०** उज्जिहानाः [उद्+√हा (गतौ) जुहो० शानच्] उद्गच्छन्तः=ये रवेः=सूर्यस्य रथस्य=स्यन्दनस्य वाजिनः=अश्वाः विसृष्टैः=मुक्तैः प्रोथानां नासापुटानां पवनैः=वायुभिः=प्रोत्सार्यमाणासु=निस्सार्यमाणासु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वारुण्यां=वरुणस्य इमा इति वारुणी तस्यां ककुभि=दिशि पश्चिमदिशायामित्यर्थः पुञ्जीभवन्तीषु=समूहरूपे एकत्र भवन्तीषु श्यामा=रात्रिः एव लता=व्रततिः तस्याः कलिकासु=मुकुलेषु तारकासु=तारासु अथवा श्यामलता कृष्णवर्णा प्रियङ्गुलता तस्याः कलिकासु। अयमाशयः यत् पूर्वदिशि अरुणप्रभाकारणात् तत्रत्य-तारकास्तु लुप्ताः पश्चिमस्यां च भ्राजन्ते कविरुत्प्रेक्षते पौरस्त्याः तारागणाः सूर्याश्वनासापवनैः उड्डायिताः पश्चिम-स्यामिव एकत्री भवन्ति। अत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः। **मन्दर०**—मेरोः पर्वतः स्थितः पर्वतविशेषः तस्य शिखरं =शृङ्गम् आश्रयति=अधितिष्ठतीति तथोक्ते मन्दः=मन्थरः यः अनिलः वायुस्तेन लुलितानि प्रकम्पितानि यानि कल्पलतानां वनस्य कुसुमानि तेषां धूल्या=परागेण विच्छुरिते=छन्ने लिप्ते इत्यर्थः, इवेत्युत्प्रेक्षायाम् धूसरी-भवति=ईषद्धवलीभवति सप्तर्षिमण्डले=मरीच्यादि-सप्तर्षि-तारक-समूहे, प्रातःकालीनप्रभया तद् धूसरं दृश्यते

टिप्पणी—विधुरचक्रवाक—(पृ० २१६) चक्रवाक चकवे को कहते हैं। उन पर विधाता की मार देखिए कि रात पड़ते ही उनका युगल वियुक्त हो जाया करता है। रात भर वियोगाग्नि के कारण वे गर्म-गर्म आहें भरते हैं। इस पर कवि कल्पना करता है कि 'त्रियामा' उनके सांसों से तप्त हो उठी और पश्चिम-समुद्र में अपना ताप मिटाने चली गई। संतप्त सभी ठंढक के लिए पानी में प्रवेश करते ही हैं। पूर्व में तो कुछ-कुछ अरुणोदय की प्रभा फैलने लगी थी, किन्तु पश्चिम दिशा में अभी अन्धेरा ही था, अतः वह अन्धेरा ही काली रात है, जो पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट हो बैठी।

हिन्दी—पर प्रत्यक्ष (शरीर)=आई हुई लक्ष्मी देखने का कौतुक रखे हुए-जैसी नलिनियों के उन्मीलित होने [(१) खिलने (२) आंख खोलने] लगने पर, निद्रा त्यागे हुए पक्षियों वाले मृदु पवन द्वारा लताओं को नचाने वाले कानन को कुसुम-समूह-जैसा ओस-कण-समूह गिराने लगने पर, भीतर बन्द हुए गूंजते भ्रमरों वाले मुकुलावस्था को प्राप्त कुमदों के कमलों की लक्ष्मी का प्रबोधन [(१) खिलाने (२) जगाने] के लिए मंगल शंखों के-जैसे बज उठने पर, सोकर उठते हुए सूर्य के घोड़ों द्वारा छोड़े नथुनों के (निःश्वास) पवनों द्वारा हटाई जा रही-जैसी रात्रि-रूपी लता की कलिकारूप तारिकाओं के पश्चिम दिशा में इकट्ठी होने लगने पर मन्दराचल के शिखर पर स्थित सप्तर्षि-मंडल के मन्द-मन्द वायु द्वारा हिलायी गई कल्पलताओं के वन के पुष्पों की पराग से लिपे हुए-जैसे

ङ्कुश इव च्युते गलति तारामये मृगे, त्रीनपि टीटिभादीन्गृहीत्वा नागयुद्धव्यतिकरमलीमसानि शुचिनि वनवापीपयसि प्रक्षाल्याङ्गानि नगरं विवेश। अन्यस्मिन्नहनि तेषामात्मशरीरानन्तरस्नानभोजनाच्छादनादिना प्रीतिमकरोत्।

कतिपयदिवसापगमे च परिव्राट् भूभुजा वार्यमाणोऽपि वनं ययौ। पातालस्वामिकर्णतालौ तु शौर्यानुरक्तौ तमेव सिषेवाते। सम्पादितमनोरथातिरिक्तविभवौ च सुभटमण्डलमध्ये निष्कृष्टमण्डलाग्रौ समरमुखेषु प्रथममुपयुज्यमानौ कथान्तरेषु चान्तरान्तरा राज्ञा समादिष्टौ विचित्राणि भैरवाचार्यचरितानि शैशववृत्तान्तांश्च कथयन्तौ तेनैव सार्धं जरामाजग्मतुरिति।

इति श्रीबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजवंशवर्णनं नाम तृतीय उच्छ्वासः।

टीका—स्मेति भावः, सुर०—सुरवारणस्य=देवगजस्य ऐरावतस्येत्यर्थः अङ्कुशे=सृण्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् च्युते=भ्रष्टे गलति=नीचैः पतति तारामये=तारारूपे मृगे मृगशीर्षनक्षत्रे इत्यर्थः मृगशीर्ष-नक्षत्रं हि अङ्कुशाकारं त्रितारकसमूहात्मकं भवति, गृहीत्वा=सह आदाय नागेन—श्रीकण्ठाख्येन सह युद्धस्य व्यतिकरेण=सम्बन्धेन घटनये-त्यर्थः मलिनानि अङ्गानि=हस्तपादादीनि शुचिनि=पवित्रे वनवाप्या=अरण्य-जलाशयस्य पयसि=जले प्रक्षाल्य संमार्ज्य नगरं विवेश=प्रविष्टवान्। अन्यस्मिन्। अहनि=दिने आत्मशरीरात्=स्वदेहात् अनन्तरम् अविद्यमानम् अन्तरं=विशेषः यस्य तेन स्नानभोजनाच्छादनादिना=स्नानाशनवसनादिना प्रीतिं=प्रसन्नताम् अकरोत् अर्थात् यादृशं स्नानभोजनवसनादिकं राज्ञः आसीत् तदभिन्नमेव स्नानादिकं तेषामप्यासीत्, भिन्नं नाभूदित्यर्थः, किन्तु शङ्करः "आत्मशरीरम् अनन्तरं यस्य तादृशेन स्नानभोजनाच्छादनादिना तेषु कृत्वा पश्चात् आत्मनः करोतीत्यर्थः" व्याख्याति।

कतिपयेषां=कतीनाञ्चित् दिवसानाम् अपगमे=अतिक्रमे परिव्राट्=टीटिभ इत्यर्थः। भूभुजा=राज्ञा वार्यमाणः =निषिध्यमानोऽपि ययौ=जगाम। शौर्ये=शूरतायाम् राज्ञः इति शेषः अनुरक्तौ=जातरागौ तम्=राजानम् एव स्थितौ। सम्पादितः=कृतः मनोरथात्=अभिलाषात् (अपि) अतिरिक्तः=अधिकः विभवः=वैभवं सम्पत्तिरिति यावत् ययोः तौ, सुभटानां=सुयोधानां मण्डलस्य=समूहस्य मध्ये निष्कृष्टः—कोशाद् बहिराकृष्टः मण्डलाग्रः=करवालः याभ्यां तौ [मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत् इत्यमरः] समर-मुखेषु=युद्धाग्रभूमिषु प्रथमं=सर्वाग्रे इत्यर्थः उपयुज्य-मानौ=नियुज्यमानौ कथान्तरेषु=वार्तालाप-प्रसङ्गेषु राज्ञा समादिष्टौ=आज्ञप्तौ विचित्राणि=अद्भुतानि भैरवा-चार्यस्य चरितानि=वृत्तान्तानित्यर्थः शैशवस्य=बाल्यकालस्य वृत्तान्तान्=वृत्तानि कथयन्तौ=वर्णयन्तौ तेन= राज्ञा सहैव जरां=वार्द्धक्यम् आजग्मतुः=प्रापतुः।

हिन्दी—धूसर वर्ण होने लगने पर, ऐरावत के अंकुश-जैसे तारा-रूप मृग [मृगशिरा नक्षत्र] के नीचे गिरने लगने पर, राजा टीटिभ आदि तीनों को लेकर (श्रीकण्ठ) नाग के साथ हुए युद्ध-प्रसंग में मैले बने हुए अंगों को वन की बावड़ी के पवित्र जल से धोकर नगर को चल दिया। दूसरे दिन अपने शरीर के-जैसे स्नान भोजन और वस्त्र आदि से (राजा ने उन्हें प्रसन्न किया। कुछ दिन बीत जाने पर परिव्राजक (टीटिभ) राजा द्वारा रोका जाता हुआ भी जंगल चला गया। किन्तु पाताल-स्वामी और कर्णताल राजा के शौर्य पर अनुरक्त हुए उसी की ही सेवा में रहे। (राजा द्वारा) इच्छा से भी अधिक सम्पत्ति प्राप्त किए हुए, सुभट-समूह के मध्य खड्ग खींचे हुए, युद्धों की अग्रभूमियों में सबसे आगे नियुक्त किए जाते हुये, बीच-बीच में राजा से आज्ञा प्राप्त कर बातचीत के प्रसंगों में भैरवाचार्य के अद्भुत कार्यों का एवं शैशवावस्था के वृत्तान्तों का वर्णन करते हुए उसी के साथ बूढ़े हो गए।

श्रीबाणभट्टविरचित हर्षचरित का राजवंशवर्णन नामक तृतीय उच्छ्वास समाप्त॥

चतुर्थ उच्छ्वासः

योगं स्वप्नेऽपि नेच्छन्ति कुर्वते न करग्रहम् ।
महान्तो नाममात्रेण भवन्ति पतयो भुवः ॥१॥
सकलमहीभृत्कम्पकृदुत्पद्यत एक एव नृपवंशे ।
विपुलेऽपि पृथुप्रतिमो दन्त इव गणाधिपस्य मुखे ॥२॥

अथ तस्मात्पुष्पभूतेर्द्विजवरस्वेच्छागृहीतकोषो नाभिपद्म इव पुण्डरीकेक्षणात्, लक्ष्मीपुरःसरो रत्नसञ्चय इव

स्वप्ने=स्वप्नावस्थायाम् अपि योगं=युक्ति कपटोपायं छलकपट-
टीका—योगमिति०—महान्तः=महापुरुषाः इच्छन्ति=वाञ्छन्ति करस्य=राजस्वस्य ग्रहम्=ग्रहणम्, अन्यत्र करस्य=पाणेः
मिति यावत्, अन्यत्र सङ्गमं न कुर्वते=कुर्वन्ति यथा साधारणाः राजानो भूपतित्वप्राप्तये विविध-कूटोपायान्
ग्रहणं विवाहमित्यर्थः न पतयश्च सम्भोगमिच्छन्ति विवाहञ्च कुर्वन्ति (किन्तु) नाम एव नाम-
आश्रित्य प्रजाभ्यः विविध-कर-ग्रहणं कुर्वन्ति भर्तारः परिणेतारः भवन्ति । महात्मानः स्वनाम्ना स्वप्रतापेने-
मात्रम् तेन भुवः पृथिव्याः पतयः=स्वामिनः अन्यत्र
वेति यावत् जगदाधिपत्यं लभन्ते न तु कूटोपायैरिति भावः । विरोधाभासालङ्कारो व्यङ्ग्यः । अनुष्टुप् छन्दः ।
दन्तः इव विपुले अपि नृपवंशे सकल···कृत्
सकलेति—अन्वयः—विपुले अपि गणाधिपस्य मुखे पृथुप्रतिमः एकः
पृथुप्रतिमः एक एव [भवति] ।
विपुले=महति अपि गुणाधिपस्य=गणेशस्य मुखे=वदने पृथुः=विशाला प्रतिमा=परिमाणं यस्य सः एकः
केवल एव दन्तः=दशनः इव विपुले अपि नृपवंशे=राजवंशे सकलाः सर्वे च ते महीभृतः=राजानः तेषां कम्पं=
भयजनितवेपथुं करोतीति कृत् सकलनृपभयजनक इत्यर्थः पृथुना=एतन्नामकराजविशेषेण प्रतिमा=सादृश्यं यस्य
तथाभूतः एकः एव नृपतिर्जायते इति शेषः । महत्यपि राजवंशे सकलनृपोद्वेजकः सकलमहीभृत्कम्पकृत्—पृथुतुल्यः
विरल एव कश्चिज्जायते इति भावः । अत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः । आर्या वृत्तम् ॥२॥
पुण्डरीकाक्षात्=विष्णोः ['दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो
अथ तस्मात् पुष्पभूतेः राजवंशः निर्जगाम इत्यस्ति वाक्यम् । ब्रह्मेत्यर्थः तेन स्वेच्छया=निजेच्छानुसारं न तु
गोविन्दो गरुडध्वजः इत्यमरः] द्विजानां=ब्राह्मणानां मध्ये वरः श्रेष्ठः यस्य स नाभिपद्मः=नाभिकमलम्
कस्यापि प्रेरणया गृहीतः=अधिष्ठितः इत्यर्थः कोषः=कर्णिका मध्यभाग इति यावत् पुण्डरीकवत्=कमलवत् अक्षिणी=नयने
इवेत्युपमायाम् ['वा पुंसि पद्मं नलिनम्' इत्यमरानुसारेण पद्मस्य पुंस्त्वम्] यस्य तथाभूतः
यस्य तथाभूतात् पुष्पभूतेः द्विजवरैः=श्रेष्ठब्राह्मणैः स्वेच्छया=यथेच्छं गृहीतः=प्राप्तः कोषः=धनं यस्य
राजवंशः, लक्ष्मी०—रत्नाकरात्=समुद्रात् ['रत्नाकरो जलनिधिः' इत्यमरः] लक्ष्मी देवी पुरःसरी=प्रथमा यस्य
उनका दूसरा दाँत कहाँ गया है—इस पर पुराणों में
टिप्पणी—गणेश को 'एकदन्त' कहा जाता है । एतस्मिन्नन्तरे
यह कहानी आती है—'एकदा रहसि स्थितयोः पार्वती-परमेश्वरयोर्द्वारपालत्वमङ्गीकृतं गजाननेन । परशु-
परशुरामः शिवं द्रष्टुमागतः । शिवदर्शनोत्सुकस्यान्तर्जिगमिषोर्द्वाररोधे कृते गणपतिना सह तस्य युद्धमभवत् । पहले भूमि पर पर्वत
रामक्षिप्तेन परशुना च गजाननस्य एको दन्तो भग्नः' [ब्रह्मवै० पु०] । पृथु—वेन का पुत्र था ।
हिन्दी—महापुरुष स्वप्न में भी योग [(१) कूटोपाय (२) संगम] नहीं चाहते हैं और न कर-ग्रह (१) [कराद
राजस्वग्रहण (२) पाणिग्रहण] करते हैं; वे नाममात्र से भूमि के पति होते हैं ॥१॥
तरह बड़े राजवंश में भी सकल
बड़े भारी होते हुए भी गणेश के मुख में महान् परिमाण वाले एक ही दांत की
महीभृतों (पर्वतों) को हिला देने वाला केवल एक ही राजा हुआ करता है ॥२॥
इसके बाद पुण्डरीकेक्षण (विष्णु)से निकले, द्विजवर ब्रह्मा द्वारा स्वेच्छा से अधिष्ठित कोष (मध्यभाग) वाले नाभि
कमल की तरह उस पुण्डरीकेक्षण (कमलनयन)पुष्पभूति से द्विजवरों(श्रेष्ठ ब्राह्मणों) द्वारा यथेच्छ लिए गए कोष धन
वाला (राजवंश) (अथवा रत्नाकर (समुद्र) से लक्ष्मी सहित निकले (कौस्तुभादि) रत्न समूह की तरह उस रत्नाकर

रत्नाकरात्, गुरुबुधकविकलावत्तेजस्विभूनन्दनप्रायो ग्रहगण इवोदयस्थानात्, महाभारवाहनयोग्यः सागर इव सगरप्रभावात्, दुर्जयबलसनाथो हरिवंश इव शूरान्निर्जगाम राजवंशः। यस्मादविनष्टधर्मधवलाः प्रजासर्गा इव कृतमुखात्,

---

टीका—लक्ष्मीप्रमुखः इत्यर्थः रत्नानां=कौस्तुभादीनां सञ्चयः=समूह इव। समुद्रमन्थने लक्ष्मीप्रभृतीनि चतुर्दशरत्नानि निर्गतानीति पुराणेषु प्रतिपादितम्, रत्नाकरात्=रत्नानां=रत्न-तुल्यानां संसारस्य श्रेष्ठवस्तूनाम् आकरः=आश्रयः तस्मात् सर्वसम्पच्छालिन इत्यर्थः, पुष्पभूतेः लक्ष्मीः=सम्पत्समृद्धिः पुरःसरी यस्य तादृशः राजवंशः, गुरु०—उदयस्थानात्=उदयाचलात् गुरुः=बृहस्पतिः बुधः=रौहिणेयः कविः=शुक्रः कलावान्=चन्द्रः, तेजस्वी=सूर्यः भूनन्दनः=मङ्गलः प्रायः यस्मिन् तथाभतः ग्रहग्रणः=ग्रहसमूह इव उदयस्य=अभ्युदयस्य समृद्धेरित्यर्थः स्थानात् उद्भवात् गुरवः=आचार्याः बुधाः=विद्वांसः कवयः=काम्य-कर्तारः कलावन्तः=कलाकाराः तेजस्विनः=शूर-वीराः भूनन्दनाः=राजानः प्रायः यत्र तथाभूतो राजवंशः, महा०—सागरस्य=एतन्नाम्नः राज्ञः प्रभावात्=महिम्नः महाभारस्य=एकस्मिन् शयानस्य विष्णोः भारस्य अथवा स्वपरिस्थितस्य भारवद् द्रव्यस्य वाहनम्=वहनम् अथवा भारवद् द्रव्यस्य—स्थानात्स्थानान्तरप्रापणम् तस्य योग्यः सागरः=समुद्रः इव सागरस्य प्रभावः इव प्रभावः यस्य तथाभूतात् पुष्पभूतेः, महान् चासौ भारः=जगत्पालनरूप-भारः राज्यधुरेत्यर्थः तस्य धारणयोग्यः धारणक्षमः राजवंशः, दुर्जय०—शूरात्=शूरसेनात्, यदुवंशीयात् श्रीकृष्णस्य पितामहात् दुर्जयः=कृष्णः ['समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः' इति विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्] बलः=बलरामश्च ताभ्यां सनाथः=युक्तः हरिवंश इव शूरात्=वीरात् पुष्पभूतेः दुर्जयं=जेतुमशक्तं बलं=सैन्यं यस्य तथाभूतः=राजवंशः निर्जगाम=प्रचलितः। [यस्मात् अजायन्त राजानः इत्यस्ति वाक्यम्]यस्मात्=राजवंशात् **अविनष्ट**.—कृतस्य=सत्ययुगस्य मुखात्=प्रारम्भात् अविनष्टः=सकल इत्यर्थः यः धर्मः तेन धवलाः=स्वच्छाः विशुद्धा इति यावत् प्रजानां=जीवानां मनुष्याणामित्यर्थः सर्गाः=सृष्टयः इव कृतं=संस्कृतं मुखं संस्कार-भूत-वाणीत्यर्थः यस्य तथाभूतात् यस्मात् अविनष्टः=न नाशं प्राप्तः यः धर्मः=सत्कर्माद्यनुष्ठानं तेन धवलाः राजानः, तेजोनिधेः=सूर्यात् प्रतापेन=प्रकाशेन आक्रान्तम्=अधिष्ठितं भुवनं यैः तादृशाः किरणाः=रश्मयः इव तेजसः=विक्रमस्य राशेः=समूहात् केन्द्रादित्यर्थः यस्मात्

टिप्पणी—ही पर्वत होते थे। पर्वतों में अन्न हो नहीं सकता था। भूखे मरते हुए लोगों ने पृथु से प्रार्थना की कि वे उनकी रक्षा करें। पृथु ने अपने धनुष से पर्वतों को काट-काटकर भूमि समतल बनाई। तब अन्न होने लगा। उक्त श्लोक में 'सकल···कृत्' विशेषण पृथु पर भी लगता है। महीभृत् पर्वतों को भी कहते हैं। सगर एक सूर्यवंशी राजा हुआ। उसने यज्ञ आरम्भ किया और सौ यज्ञ पूरे होने में जब एक शेष रह गया तो अश्वमेधीय घोड़ा छोड़ा जिसकी रक्षा में उसने अपने साठ हजार पुत्र नियुक्त किए। घबराया हुआ इन्द्र अदृश्य रूप में घोड़ा हर ले गया और उसे चुपके से पाताल में कपिल के आश्रम में बांध गया। पुत्रों ने सारी पृथिवी छान डाली। घोड़ा न मिलने पर उन्होंने पृथिवी खोद डाली और पाताल चले गए। उन्होंने घोड़ा पाताल में कपिल के यहाँ बांधा हुआ पाया तो ऋषि को फटकारने लगे। ऋषि को क्रोध आया और अपने शाप से उसने सभी पुत्रों को भस्म कर डाला। सगर का ही प्रपौत्र पितरों को तारने के लिए जब गंगा को लाया, तब वे गंगा के जल से पवित्र हुए। **अविनष्टधर्म०**—कृतयुग में धर्म अविकल-रूप में रहता है, परन्तु त्रेता, द्वापर और कलि में वह एक-एक पाद कम होता जाता है और उसी क्रम से अधर्म भी एक एक पाद बढ़ता जाता है। इस वंश के राजा भी अपनी विशेषता से प्रसिद्ध थे कि वे राज्य में धर्म का ह्रास नहीं होने देते थे और अधर्म को पास नहीं फटकने देते थे।

हिन्दी—(रत्न-सदृश श्रेष्ठ वस्तुओं के आश्रय भूत पुष्पभूति) से लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) सहित (राजवंश) अथवा उदय स्थान (उदयाचल) से निकले प्रायः गुरु (बृहस्पति), बुध (चन्द्रपुत्र), कवि (शुक्र), कलावान् (चन्द्रमा), तेजस्वी (सूर्य) और भूनन्दन (मंगल) वाले ग्रह-गण की तरह उस उदय स्थान [अभ्युदय-स्रोत पुष्पभूति] से गुरु (आचार्य), बुध (विद्वान्), कवि कलाकार, तेजस्वी और जगत् को आनन्द देने वाला (राजवंश) (अथवा) सगर राजा के प्रभाव से निकले महान् भार धारण करने योग्य सागर की तरह उस सगर राजा के-जैसे प्रभाव वाले (पुष्पभूति) से महान् भार (राज्यभार) संभालने योग्य (राजवंश) (अथवा) शूर (शूरसेन) से दुर्जय (कृष्ण) और बल (बलराम) से दुर्जय (कृष्ण) और बल (बलराम) से युक्त हरिवंश की तरह उस शूर (वीर पुष्पभूति) से

प्रतापाक्रान्तभुवनाः किरणा व तेजोनिधेः, विग्रहव्याप्तदिङ्मुखा गिरय इव भूभृत्प्रभवात्, धरणिधारणक्षमा दिग्गजा इव ब्रह्मकरात्, उदधीन्पातुमुद्यता जलधरा इव घनागमात्, इच्छाफलदायिनः कल्पतरव इव नन्दनात्, सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीधरादजायन्त राजानः ।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु क्रमेणोदपादि हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूट-

---

टीका—प्रतापः=प्रभावः—तेन आक्रान्तं भुवनं=जगत् यैः, विग्रह० भूभृतः=पर्वताः प्रभवन्ति=उत्पद्यन्ते यस्मात् इति भूभृत्प्रभवः=ब्रह्मा स हि पर्वतानां स्रष्टाऽस्ति विग्रहेण=शरीरेण व्याप्तानि=आच्छन्नानि दिङ्मुखानि=दिग्विभागाः यैः तथाभूताः गिरयः=पर्वताः इव । पुरा गिरीणां पक्षाः भवन्ति स्म ते च उड्डीय यां कामपि दिशां व्याप्नुवन्ति स्म, भूभृतां=राज्ञां प्रभवात्=उत्पत्तिस्थानात् अथवा भूभृत्सु प्रभावः=प्रभवः यस्य तथाभूतात् यस्मात् विग्रहैः=युद्धैः व्याप्तानि=आक्रान्तानि दिङ्मुखानि यैः तादृशाः राजानः, धरणि०—ब्रह्मणः=स्रष्टुः करात्=हस्तात् धरण्याः=पृथिव्याःधारणस्य=वाहनस्य क्षमाः=समर्थाः दिग्गजाः=दिङ्नागाः इव ब्रह्म=वेदः [वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म इत्यमरः] ज्ञानं विद्यामिति यावत् अथवा ब्रह्म=वेदोक्तधर्मं कुर्वन्तीति तथोक्तात् धरणि-धारणस्य=जगत्पालनस्य क्षमाः राजानः; घनागमात्=वर्षर्तोः उदधीन्=समुद्रान् पातुं=पानविषयीकर्तुम्=उद्यताः=उद्युक्ताः जलधराः=मेघाः इव घनः=दृढः आगमः=शास्त्रज्ञानं यस्य यस्मिन् वा तस्मात् यस्मात् उदधीन् पातुं पालयितुमुद्यताः, राजानः समुद्रेष्वपि तेषां राज्यत्वात् ते तानपि रक्षन्ति स्मेति भावः । नन्दनात्=इन्द्रोद्यानात् इच्छया=यथेच्छ फलानि=मनोभिलषितानि ददतीति० दायिनः कल्पतरवः कल्पवृक्षाः इव नन्दनात्=नन्दयति=आनन्दयति सुखयति लोकान् इति (ल्युट् कर्तरि] आनन्ददायकात् यस्मात् प्रार्थिनः=यथाभिलषित-वस्तु-दातारः, श्रीधरात्=विष्णोः सर्व-भूतानि=निखिल-प्राणिनः क्षित्यादीनि वा आश्रयाः येषां तथाभूताः विश्वस्य रूपाणि तेषां प्रकाराः=भेदा इव श्रीधरात्=श्रियं=सम्पत्तिं धरन्तीति तथोक्तात् धनसम्पन्नादित्यर्थः सर्वभूतानि=निखिलप्रजाः इत्यर्थः प्राणिवर्गो वा तेषाम् आश्रयाः=आश्रयणीयाः राजानः अजायन्त । सर्वत्र श्लिष्टोपमा ।

तेषु=राजसु उत्पद्यमानेषु=जन्म गृह्णत्सु उदपादि=उत्पन्नोऽभवत् हूणाः=एतदाख्याः प्राचीनवैदेशिका आक्रान्तारः एव हरिणाः=मृगाः तेषां केसरी=सिंहः तेषां मारक इत्यर्थः, सिन्धुराजस्य=सिन्धुदेश-भूपस्य ज्वरः=ज्वरकारक इत्यर्थः गुर्जरदेश-नृपतेः प्रभाकरः=निद्रानाशक इत्यर्थः, गान्धाराधिपः=गान्धारदेशाधिपतिः एव गन्धद्विपः=गन्धगजः ['यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः । स वै गन्धगजो नाम नृपतेर्विजयावहः ॥

टिप्पणी—ब्रह्मकरात्०—ब्रह्मा के हाथों से दिग्गजों के निर्माण के सम्बन्ध में म० म० काणे ने यह श्लोक उद्धृत किया है—"सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय प्रजापतिः । हस्ताभ्यां परिगृह्यादौ सप्त सामान्यगायत ।।गायतो ब्रह्मणस्तस्य समुत्पन्ना मतङ्गजाः" [हस्त्यायुर्वेद १।११८-२१९] ।

हिन्दी—दुर्जय बल (सेना) वाला राजवंश निकला, और जिस कृतमुख (परिष्कृत वाणी वाले राजवंश) से अविनष्ट धर्म से शुद्ध ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे कृतमुख (सत्ययुग प्रारम्भ) से अविनष्ट धर्म से शुद्ध प्रजा-सृष्टियां उत्पन्न हुई थीं; जिस तेजोनिधि (शौर्य केन्द्र राजवंश) से प्रताप द्वारा जगत् को पराभूत कर देने वाले ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे तेजोनिधि (सूर्य) से प्रताप (प्रकाश) द्वारा भुवनों को व्याप्त कर देने वाली किरणें उत्पन्न हुआ करती हैं, जिस भूभृतों (राजाओं) पर प्रभाव जमाने वाले (राजवंश) से युद्धों द्वारा दिशाओं में छा जाने वाले ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे भूभृतों (पर्वतों) के प्रभव (उत्पत्तिस्थान ब्रह्मा) से शरीर द्वारा दिशाओं में छा जाने वाले पर्वत उत्पन्न हुए थे; जिस ब्रह्मकर (ज्ञानार्जन करने वाले राजवंश) से पृथिवी की रक्षा करने में सक्षम ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे ब्रह्मकर (ब्रह्मा के हाथ) से पृथिवी धारण करने वाले दिग्गज उत्पन्न हुए थे, जिस घनागम (विशाल शास्त्रज्ञान वाले राजवंश] से समुद्र की रक्षा करने के लिए उद्यत ऐसे राजा उत्पन्न हुए, जैसे घनागम (वर्षा-ऋतु) से समुद्र (का जल) पीने वाले मेघ उत्पन्न हुआ करते हैं, जिस नन्दन (लोगों को) आनन्द देने वाले राजवंश] से वाञ्छित फलों को देने वाले ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे नन्दन (इन्द्रोद्यान) से वाञ्छित फल देने वाले कल्प-वृक्ष उत्पन्न होते हैं, जिस श्रीधर (धन-सम्पन्न राजवंश) से सभी प्राणियों—प्रजाओं के आश्रयभूत ऐसे राजा उत्पन्न हुए जैसे श्रीधर (विष्णु) से सभी पृथिवी आदि भूतों अथवा प्राणियों में रह रहे विश्व रूप के प्रकार उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार उत्पन्न होते हुए उनमें से क्रमशः प्रभाकरवर्धन नाम का राजाधिराज हुआ, जो हूण-रूपी हरिणों के लिये सिंह, सिन्धुराज के लिये ज्वर, गुर्जर की नींद भगा देने वाला,

पाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रतापशील इति प्रथितापरनाम्ना प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः। यो राज्याङ्गसङ्गीन्यभिषिच्यमान एव मलानीव मुमोच धनानि। यः परकीयेणापि कातरवल्लभेन रणमुखे तृणेनेव धृतेनालज्जत जीवितेन। यः करधृतधौतासिप्रतिबिम्बितेनात्मनाप्यदूयत समितिषु सहायेन रिपूणां पुरः प्रधनेषु धनुषापि नमता। यो मानी मानसेनाखिद्यत। यश्चान्तर्गतापरिमितरिपुशल्यशङ्कुकीलितामिव निश्चलामुवाह

टीका—इत्युक्तलक्षणः] तस्य कूटपाकलः=हस्तिनां घातक-ज्वरविशेषः ['कूटो नामाशुघातनम् आशुघातनं द्विरदनाम। तस्माद् कूटपाकलमाचक्ष्महे' इति हस्त्यायुर्वेदः], लाटस्य=लाटदेशमहीपतेः, गुर्जरदेशस्य दक्षिणभागो हि लाट उच्यते, यत् पाटवं पटोर्भावः चातुरीत्यर्थः तस्य पाटच्चरः=चौरः, अपहर्ता तत्पाटवभञ्जक इत्यर्थः, मालवलक्ष्मीः=मालवदेशस्य राज्यश्रीः एव लता=वल्ली तस्याः परशुः=कुठारः उपरि सर्वत्र रूपकम्, क्वचित् परम्परितं क्वचिच्च साधारणम्, प्रतापशीलः इति प्रथितं=विख्यातम् अपरं=द्वितीयं नाम यस्य तथाभूतः प्रभाकरवर्धनः राजाधिराजः=महाराजः। राज्याङ्ग०—राज्याङ्गानि=अमात्यादीनि ['स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्र-दुर्ग-बलानि च राज्याङ्गानि' इत्यमरः] तेषां सङ्गीनि=तत्संसक्तानि अभिषिच्यमानः=राज्यारोहणार्थं पवित्र-जलैः प्रोक्ष्यमाणः राज्यप्रतिष्ठाप्यमान इत्यर्थः अन्यत्र अभितः=सर्वतः सिच्यमानः=जलेन सिक्तीक्रियमाण एव मलानि इवेत्युत्प्रेक्षायां धनानि मुमोच=व्यक्तवान् दीनेभ्यो वितीर्णवानित्यर्थः। राज्याभिषेककाले हि ब्राह्मणेभ्यो दानं दीयते इत्यस्ति प्रथा। परकी०—यः रण-मुखे=युद्धप्रारम्भे परकीयेण=अन्यदीयेन अपि कातराणां भीरूणां वल्लभेन=प्रियेण मुखे धृतेन तृणेन=घासेन इव कातराणां वल्लभेन जीवितेन=जीवनेन अलज्जत=लज्जां प्राप्नोति स्म। कर०—यः करे धृतः=गृहीतः धौतः=प्रक्षालितः स्वच्छः इत्यर्थः यः असिः=खड्गः तत्र प्रतिबिम्बितेन=प्रतिफलितेन अपि आत्मना स्वप्रतिबिम्बेनेत्यर्थः समितिषु=संग्रामेषु सहायेन सता, रिपूणां=शत्रूणां पुरः प्रधनेषु=रणेषु ['युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः] नमता=नम्रीभवता धनुषा=चापेन अपि च अदूयत=अखिद्यत, उभयत्र अर्थापत्तिरलङ्कारः। यः मानी=आत्माभिमानी मानसेन=मनसाम् उच्चोच्चाकाङ्क्षाणां कारणात् अखिद्यत, अथवा मानसे=मनसि जीवने आगच्छन्तीनां विघ्नबाधानाम् अग्रे न अखिद्यत। यश्चान्त०—अन्तर्गताः=स्वसाम्राज्यान्तर्गताः अपरिमिताः=असंख्याः रिपवः=शत्रवः एव शल्यानि=बाणाग्राणि शङ्कवः=कीलकाश्च तैः अथवा अन्तर्गताः स्वशरीराभ्यन्तरस्थिताः अपरिमिता रिपूणां ये शल्यशङ्कवः शत्रुप्रक्षिप्तशल्याः शङ्कव इत्यर्थः तैः कीलिताम्=निखाताम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, निश्चलां=स्थिरां राजलक्ष्मीं=

टिप्पणी—रणमुखे०—जब राजा के शत्रु युद्धारम्भ में ही हारकर आत्मसमर्पण के रूप में मुख में तिनका रख लेते तो भी वह लज्जित हो जाता था। मुख में तृण धरना पराजय-स्वीकार का प्रतीक है। कायरों को प्राण प्यारे होते हैं किंतु शत्रु भी आत्माभिमान खोकर इन तुच्छ प्राणों की रक्षा के लिए हथियार डाल देते हैं—यह उसे बड़ी लज्जा की बात लगती थी। स्वयं की तो बात ही क्या कहनी। अन्तर्गत०—अन्तर्गत शब्द यहाँ संदिग्ध है। म० म० काणे के अनुसार यह 'निज साम्राज्य के अन्तर्गत' अर्थ करने से यह भाव निकलता है कि साम्राज्य के सभी शत्रु रूप शल्य-कण्टक उसने समाप्त कर दिए थे और साम्राज्य निष्कण्टक बना दिया था। इस अर्थ में फिर शल्य कण्टकों के भाव में उनसे लक्ष्मी के कीलन का प्रश्न ही नहीं उठता। 'अन्तर्गत' से शरीरान्तर्गत अर्थ लेना ही ठीक रहेगा। राजा ने अपने शरीरान्तवर्ती शल्य से लक्ष्मी को गाड़ रखा है। कॉवल ने अन्तर्गत का अर्थ (गूढ)

हिन्दी—कन्धार-भूपति-रूपी गन्धगज के लिये घातक ज्वर, लाट की चतुराई का अपहरणकर्ता, मालव की लक्ष्मी रूपी लता के लिये कुल्हाड़ा था और जिसका दूसरा प्रसिद्ध नाम प्रतापशील था, जिसने राज्याभिषिक्त होते ही राज्याङ्गों में लगे हुये धन को (ब्राह्मणों और दीनों के लिये) इस तरह त्याग दिया जैसे जल से नहाता हुआ व्यक्ति अंग में लगा मैल त्याग दिया करता है, जो युद्ध के मुख (आरम्भ) में ही मुख में धरे तृण-जैसे कायरों को रुचने वाले दूसरों के बचे हुये जीवन से भी लज्जा खाता था, जो चमकते हुये खड्ग में पड़े अपने प्रतिबिम्ब को भी युद्धों में साथी बनाते और शत्रुओं के आगे धनुष को भी झुकाते बेचैन हो जाया करता था, जो इतना आत्माभिमानी था कि (उच्चाकांक्षाओं के कारण) मन में झुंझला जाता था, जो शरीर के भीतर (युद्धों में चुभे हुये) असंख्य शल्यों और कीलों से ठोकी हुई-जैसी निश्चल बनी राजलक्ष्मी को धारण करता था, जिसने सभी दिशाओं में समतल बना दिये थे

राजलक्ष्मीम् । यश्च सर्वासु दिक्षु समीकृतसरित्तटावटविटपाटवीतरुतृणगुल्मवल्मीकगिरिगहनैर्बण्डयात्रापथैः पृथुभिर्भृत्योपयोगाय व्यभजतेव वसुधां बहुधा। यं चालब्धयुद्धदोहदमात्मीयोऽपि सकलरिपुसमुत्सारकः परकीय इव ततापः प्रतापः । यस्य च वह्निमयो हृदयेषु जलमयो लोचनपुटेषु मारुतमयो निःश्वसितेषु क्षमामयोऽङ्गेषु आकाशमयः शून्यतायां पञ्चमहाभूतमयो मूर्त इवादृश्यत निहतप्रतिसामन्तान्तःपुरेषु प्रतापः। यस्य चासन्नेषु भृत्यरत्नेषु प्रति-

---

टीका—राजश्रियम् उवाह=अधारयत् । **समीकृत०** दिक्षु=दिशासु समीकृतानि=समतलतां नीतानि सरितां=नदीनां तटाः कूलानि च अवटाः गर्ताः च ['गर्तावटौ भुवि श्वभ्रे' इत्यमरः] विटपाः=शाखाः च अटव्यः=अरण्यानि च तरवः=वृक्षाः च तृणानि घासाः च गुल्माः=स्तम्बाः काण्डरहितवृक्षाः इत्यर्थः [अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ इत्यमरः] च वल्मीकाः=वामलूराः वल्मीभिः [श्वेतपिपीलिकाभिः] समुत्थापिताः मृत्कूटा इत्यर्थः च गिरयः=पर्वताः च गहनानि=गह्वराणि च ['गहनं कलिले त्रिषु । नपुंसकं गह्वरे स्यात्' इति मेदिनी] येषु तैः दण्डः=सेना ['सैन्ये काले मानभेदे दण्डोऽस्त्री लगुडे पुमान्' इति मेदिनी] तस्य यात्रापथैः=यात्रामार्गैः पृथुभिः=विस्तृतैः भृत्यानां=सेवकानाम् उपयोगाय=प्रयोजनाय व्यभजत्=खण्डशः व्यभजत विभक्ताम् अकरोदित्यर्थः, इवेत्युत्प्रेक्षायां वसुधां=पृथिवीं बहुधा=बहुप्रकारैः । **अलब्ध०**—न लब्धं=प्राप्तं युद्धस्य दोहदम्=अभिलाषः येन तम् आत्मन अयम् इति आत्मीयः=स्वकीयः अपि सकलानां=समग्राणां रिपूणां=शत्रूणां समुत्सारकः=निराकर्ता परः एव परकः परकस्य अयम् इति परकीयः=अन्यदीयः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् । प्रतापः=तेजः ततापः=सन्तापितवान् अर्थात् तस्य प्रतापः तथा महान् आसीत् यत् कोऽपि तदग्रे स्थातुं न प्राभवत्, तस्य युद्धेच्छा न तृप्तिं लेभे । अतः तस्य स्वकीयप्रताप एव एवं दुःखाकरोति स्म यथा परकीयप्रतापः । **वह्नि०**—यस्य प्रतापनिहताः=मारिता ये प्रतिसामन्ताः=प्रतिपक्षिणो राजानः तेषामन्तःपुरेषु=अन्तर्वर्तिमहिलासु हृदयेषु=तासां हृत्स्थानेषु अग्निमयः=तेजोमयः[स्वरूपार्थे मयट्] तासां हृदय-दाहात् लोचनपुटेषु—पुटाकारनयनेषु जलमयः, तेभ्यः अश्रुजलप्रवाहात्, निःश्वसितेषु=श्वासोच्छ्वासेषु मारुतमयः=वायुमयः दीर्घ-दीर्घोच्छ्वासात् अङ्गेषु=अवयवेषु क्षमामयः=पृथिवीमयः शोके भूलुण्ठनेन धूलिसंसक्तत्वात्, शून्यतायां=पतिविरहेण रिक्ततायाम् आकाशमयः आकाशस्य शून्यरूपत्वात् पञ्च यानि महाभूतानि पृथिवी, जलम्, तेजः, वायुः, आकाशम्—इत्येतानि तन्मयः=तद्रूपमूर्तः बहिरिन्द्रियग्राह्य इव अदृश्यत दृष्टिपथमगात् । भावरूपोऽपि प्रतापः पृथिव्यादिपञ्चभूतात्मको मूर्त इव जातः यतः स शत्रुविधवानां हृदये तापं, चक्षुषि च अश्रुजलम् अजनयत्, ता दीर्घनिःश्वसितानि अमुञ्चन्, अङ्गानि धूलिधूसरितानि जातानि, जगच्च शून्यमभवत् एतत्सर्वं पञ्चमहाभूतानां कार्यं प्रत्यक्षं भवति स्मेति भावः । अत्र उल्लेखालङ्कारः । **आसन्नेषु०**—यस्य=राज्ञः आसन्नेषु=समीपवर्तिषु भृत्यानां मध्ये रत्नेषु=श्रेष्ठ-व्यक्ति-रूपरत्नेषु [जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते] राज्यस्योच्चाधिकारिषु इत्यर्थः प्रतिबिम्बिता=प्रतिफलिता इवेत्युत्प्रेक्षा सा च रूपकोत्या, तुल्यं रूपं यस्याः सा=समानरूपा लक्ष्मीः=श्रीः धनसम्पत्तिरित्यर्थः समलक्ष्यत=समदृश्यत अर्थात् राज्ञा स्वनिकटवर्तिनः अधिकारिणः स्वसमान-

टिप्पणी—किया है । **समीकृत०**—राजा की सेना ने शत्रु राजाओं के अपनी राज्य सीमा में लगाए हुए वृक्ष-गर्तादि सभी चिह्न मिटा दिये और सब कुछ समतल कर दिया । अपनी सेना के आने जाने के लिए केवल एक विस्तृत मार्ग बना दिया और उसने विभक्त हुई जैसी पृथिवी को अपने सेवकों में बाँट दिया ।

हिन्दी—नदी तटों, गर्तों, शाखाओं, वनों, वृक्षों, तृणों, झाड़ियों, बम्बियों, पर्वतों और कन्दराओं वाले सेना-गमन के विस्तृत मार्गों से मानो पृथिवी को निज भृत्यों के उपयोग के लिये बहुत तरह से बाँट रखा था, जिसे युद्ध की इच्छा पूरी न होते हुये सकल शत्रुओं को मार भगा देने वाला अपना प्रताप भी दूसरों के प्रताप की तरह जलाता रहता था, जिसका पञ्च महाभूतात्मक-जैसा प्रताप मारे गये शत्रु राजाओं के अन्तः पुर की महिलाओं के हृदयों में तेज-रूप, नेत्रपुटों में जल-रूप, आहों में वायु-रूप, अंगों में पृथिवी-रूप और शून्यता में आकाश-रूप हुआ मूर्तिमान दिखाई पड़ता था, जिसकी लक्ष्मी (धनसम्पत्ति) समीप रहने वाले भृत्य-रूपी रत्नों में अपना प्रतिबिम्ब डाले हुए जैसी एक समान देखने में आती थी, जिसके अग्नि समान प्रताप से ऐसी भूति (ऐश्वर्य) हुई जैसे प्रताप समान अग्नि से भूति (भस्म)

बिम्बितेव तुल्यरूपा समलक्ष्यत लक्ष्मीः। तया च यस्य प्रतापाग्निना भूतिः शौर्योष्मणा सिद्धिरसिधाराजलेन वंशवृद्धिः शस्त्रव्रणमुखैः पुरुषकारोक्तिर्धनुर्गुणकिणेन करगृहीतिरभवत्। यश्च वैरमुपायनं विग्रहमनुग्रहं समरागमं महोत्सवं शत्रुं निधिदर्शनमरिबाहुल्यमभ्युदयमाहवाह्वानं वरप्रदानमवस्कन्दपातं विष्टवृद्धिं शस्त्रप्रहारपतनं वसुधारामन्यत। यस्मिंश्च राजनि निरन्तरैर्यूपनिकरैरङ्कुरितमिव कृतयुगेन, दिङ्मुखविसर्पिभिरध्वरधूमैः पलायित-

---

रत्नवदुज्ज्वलेषु निकटवर्त्ति-पदार्थेषु प्रतिबिम्बः पतत्येव, प्रतापा०—यस्य = राज्ञः प्रतापः ओजः अग्निः इव तेन भूतिः = भस्म, शौर्यं = पराक्रम उष्मा = उष्णिमा इव तेन सिद्धिः = कार्यसफलता, अथ च शौर्यम् इव ऊष्मा तेन सिद्धिः = पाकः। असिधारा = खड्गाग्रं धाराजलमिव तेन वंशस्य = कुलस्य वृद्धिः अभ्युदयः अथ च असिधारासदृशं धाराजलम् = नदीनीरं तेन वंशानां = वेणूनां वृद्धिः = वर्धनम्, शस्त्रव्रणानां = शस्त्रकृतक्षतानां मुखैः अग्रैः मुखैः वक्त्रैरिव पुरुषकारस्य = पौरुषस्य उक्तिः = कथनम्, धनुषः गुणस्य = मौर्व्याः किणेन = आघातचिह्नेन कराणां = राजस्वानां गृहीतिः = ग्रहणं करस्य = हस्तस्य ग्रहणम् इव अभवत् अर्थात् युद्धेषु हस्तेजातकिणः स शत्रून् विजित्य तेभ्यः करग्रहणमकरोत्। अत्र द्वयोः क्रमशः परस्परम् उपमानोपमेयत्वे उपमेयोपमालङ्कारः स च श्लिष्टः, वैरम्०—यश्च वैरं = शत्रुताम् उपायनम् उपहारम्, विग्रहं युद्धम् अनुग्रहम् = अनुकम्पाम्, समरस्य = युद्धस्य आगमम् = आगमनं महोत्सवं = महापर्वं, शत्रुं निधिदर्शनं कोषसाक्षात्करणम्, अरीणां = शत्रूणां बाहुल्यं = प्राचुर्यम् अभ्युदयम् = उन्नतिम्, आहवाय युद्धाय आह्वानम् = आकारणं निमन्त्रणमित्यर्थः वरप्रदानं = वरदानम् अवस्कन्दस्य = शत्रुकृतस्य आक्रमणस्य पातम् = सहसा उपागमम् उपस्थितिमित्यर्थः विष्टस्य = भाग्यस्य वृद्धिम् = उपचयम्, शस्त्रस्य आयुधस्य प्रहारेण = आघातेन पतनं = भूमौ पातम् शत्रोरिति शेषः वसुनः = धनस्य धारां = नदीम् अमन्यत = मन्यते स्म। यस्मिन्—यस्मिन् च राजनि राज्यं कुर्वति सतीत्यर्थः निरन्तरैः = अविरतैः यूपानां = यज्ञे पशुबन्धनस्थूणानां निकरैः = समूहैः कृतयुगेन = सत्ययुगेन अङ्कुरितम् = धृतप्ररोहम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अर्थात् अविच्छिन्नयज्ञैः गतमपि कृतयुगं पुनरायातमिव प्रतीयते स्म, दिङ्मुख०—दिङ्मुखेषु = दिग्विभागेषु विसर्पिभिः = प्रसृतैरित्यर्थः अध्वराणां = यज्ञानां धूमैः कलिना कलियुगेन पलायितम् = द्रुतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अर्थात् यज्ञधूमच्छन्ननेत्रत्वात् तेन तद्देशात् पलायनं कृतम्। सनुधः—सुधया = श्वेतेन प्रस्तरचूर्णद्रवेण। अथ च अमृतेन सहितैः सुरालयैः = देवमन्दिरैः स्वर्गेण = नाकेन अवतीर्णम् = नीचैरागतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सुरा०—सुरालयानां = देवमन्दिराणां शिखरेषु = अग्रभागेषु उद्धूयमानैः = फर्फरायमाणैः धवलध्वजैः = श्वेतपताकाभिः धर्मेण = सत्कर्मणा पल्लवितम् = सञ्जातपल्लवम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। बहि०—बहिः = नगराद् बहिर्वर्तिस्थानेषु उपरचितानि = निर्मितानि विकटानि = विशालानि सभामण्डपानि च [यत्र लोका एकत्रिता भवन्ति] सत्रमण्डपानि

हिन्दी—हुआ करती है, जिसके अग्निमासदृश शौर्य से ऐसी सिद्धि (सफलता) हुई जैसे शौर्य-सदृश उष्णिमा से सिद्धि (अन्न-पाक) हुआ करती है, जिसके धारा-(नदी)-जल-जैसे (उज्ज्वल) खड्ग-धार से ऐसी वंशवृद्धि (कुल-अभ्युदय) हुई जैसे धाराजल से वंशवृद्धि [बाँसों की वृद्धि] हुआ करती है, जिसके शस्त्र द्वारा हुए व्रणों के मुखों (वक्त्रों) जैसे मुखों (अग्रभागों) से पौरुष का बखान हुआ करता था, जिसके (हाथ में पड़े) धनुष की डोरी के किण आघातचिह्न से इसी तरह करों (राजस्वों) का ग्रहण होता था जैसे उस (किण) से (राजा का) कर (हाथ) ग्रहण; और जो शत्रुता को भेंट, युद्ध को अनुग्रह, युद्धघटना को महोत्सव, शत्रु को निधि का साक्षात्कार, शत्रुओं की अधिकता को अभ्युदय, युद्ध की ललकार को वरदान, अकस्मात् आक्रमण को भाग्यवृद्धि, शस्त्रप्रहार से (शत्रु का) पतन धन की नदी समझता था, और जिसके राजा रहते-रहते लगातार (गाड़े हुए) यज्ञ-स्तम्भों के समूह से ऐसा लगता था मानो सत्ययुग के अंकुर उग गये हों, दिशा विभागों में फैलने वाले यज्ञ-धूमों से कलियुग भागा हुआ-जैसा लगता था, सुधा (सफेदी; अमृत) से लिप्त सुरालयों (मन्दिरों, देवगृहों) से स्वर्ग नीचे उतरा हुआ-जैसा लगता था, देवालयों के ऊपर फहराती श्वेत ध्वजाओं से धर्म कोंपल निकाले हुये-जैसे लगता था, (नगर के) बाहर बनाये हुये बड़े-बड़े सभामण्डपों, अन्नदान-मण्डपों, जलपान-मण्डपों एवं सपत्नीक

मिव कलिना, समुद्यैः सुरालयैरवतीर्णमिव स्वर्गेण, सुरालयशिखरोद्धूयमानधवलध्वजैः पल्लवितमिव धर्मेण, बहिरुपर-
चितविकटसभासत्रप्रपाप्राग्वंशमण्डपैः प्रसूतमिव ग्रामैः, काञ्चनमयसर्वोपकरणैर्विशीर्णमिव मेरुणा, द्विजदीयमानैरर्थं-
कलशैः फलितमिव भाग्यसम्पदा।

तस्य च जन्मान्तरेऽपि सती पार्वतीव शङ्करस्य,गृहीतपरहृदया[1] लक्ष्मीरिव लोकगुरोः, स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव
कलावतः, सर्वजनजननी बुद्धिरिव प्रजापतेः, महाभूभृत्कुलोद्गता गङ्गेव वाहिनीनायकस्य, मानसानुवर्तनचतुरा हंसीव

टीका—च (यत्र लोकेभ्यः अन्नं वितीर्यते) प्रपामण्डपानि च (यत्र पिपासुभ्यः जलं दीयते) प्राग्वंशमण्डपानि च (यत्र
सपत्नीकस्य यजमानस्य आवासो भवति) तैः द्वन्द्वान्तैः श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमपि सम्बद्ध्यते इति नियमानुसारेण
मण्डप-शब्दः प्रत्येकं सम्बद्ध्यते, ग्रामैः प्रसूतम्=प्राप्तजन्मभिः भूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अर्थात् तत्स्थानेषु ग्रामा इव जाताः;
काञ्चन०—काञ्चनमयानि=सुवर्णमयानि सर्वाणि उपकरणानि=पात्रादीनि येषु तैः विभवैः=वैभवैः धनैरित्यर्थः मेरुणा=
सुमेरुपर्वतेन विशीर्णम्=खण्डखण्डीभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, द्विज०—द्विजेभ्यः=ब्राह्मणेभ्यः दीयमानैः=वितीर्यमाणैः अर्थस्य=
धनस्य कलशैः०—धनपूर्णकुम्भैरित्यर्थः भाग्यस्य सम्पदा=वैभवेन फलितम्=सफलीभूतम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्।
तस्य च यशोमती नाम महादेवी प्राणाना ·····भूमिरभूत् इत्यस्ति वाक्यम्।
'शङ्करस्य' इत्यारभ्य 'महामुनेः' इत्येतत्पर्यन्तं सर्वेऽपि षष्ठयन्ता राजाऽपि प्रथमान्ताश्च यशोमत्यापि
श्लेषद्वारा सम्बद्ध्यन्ते। शङ्करस्य=शिवस्य जन्मान्तरे=अन्यस्मिन् जन्मनि पूर्वजन्मनीत्यर्थः दक्षप्रजापतेः पुत्री 'सती'
इति नाम्नी पार्वती इवेत्युपमायाम् शङ्करस्य=शं=मङ्गलं प्रजानामिति शेषः करोतीति शङ्करः तस्य राज्ञः=प्रभाकरवर्धनस्य
सती=पतिव्रता यशोमती नाम महादेवी अभूत् इत्युत्तरेणान्वयः, गृहीत०—लोकगुरोः जगद्गुरोः=विष्णोः गृहीतम्=आश्रितं
परस्य=विष्णोः हृदयं=वक्षः यया तथाभूता लक्ष्मी इव,लक्ष्मीर्हि विष्णुवक्षस्थलविहारिणी कादम्बर्यामपि चण्डालकन्यामधिकृत्य
वाणः प्राह—'उरःस्थलनिवाससङ्क्रान्तनारायणदेहप्रभाश्यामलितामिव श्रियम्', लोकगुरोः=प्रजाद्दतस्य तस्य राज्ञः गृहीतम्=
आकृष्टं परम्=अन्तरतमं हृदयं चित्तमित्यर्थः यया सा, हृदयशब्देनात्र अन्तःकरणमभिप्रेयते, अन्तःकरणानि च चत्वारि
भवन्ति तद् यथा—'मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं करणमान्तरम्' इति, अन्तरतमम् अन्तःकरणं चित्तमेव स्फुरत०—
कलावतः=चन्द्रमसः स्फुरन्त्यः=भ्राजमानाः तरलाः=उज्ज्वलाः तारकाः=नक्षत्राणि यस्याः सा रोहिणी, रोहिणी
हि पञ्चतारासमुदायरूपा भवति चन्द्रमसश्च परमप्रिया सा इव कलावतः=चतुःषष्टिसंगीतादिकलानिपुणस्य
तस्य राज्ञः स्फुरन्ती=भ्राजमाना तरला=चञ्चला तारका=कनीनिका यस्याः तादृशी सर्व० प्रजापतेः=स्रष्टुः
सर्वेषां जनानां=लोकानां प्राणिनामित्यर्थः जननी=जनित्री, उत्पादिका बुद्धिः=विचारः इव, ब्रह्मा सर्वं वस्तुजातम् उत्पादयि-
तुमैच्छत् सर्वञ्च तदानीमुत्पन्नम्, प्रजापतेः=प्रजापालकस्य तस्य राज्ञः सर्वेषां जनानां जननी माता मातृवत्पूज्येत्यर्थः

हिन्दी—यजमानों के आवास-मण्डपों से ऐसा लगता था मानो गाँव जन्म ले बैठे हों सभी सुवर्णमय पत्रादि के वैभव
से ऐसा लगता था मानो सुमेरु पर्वत खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया हो, ब्राह्मणों को दिये जाने वाले धन-पूर्ण कलशों से
ऐसा लगता था मानो भाग्य-समृद्धि फलवती हो गई हो।
शंकर (महादेव) की जन्मान्तर में सती (—नामक पत्नी) पार्वती के समान शंकर (प्रजाकल्याणकारक)
उस (राजा) की सती (पतिव्रता), लोक-गुरु (विष्णु) के हृदय (वक्ष) का आश्रय लिये हुए लक्ष्मी के समान
लोकगुरु (लोगों द्वारा मान्य) उसकी दूसरों के हृदय को वश में कर देने वाली, कलावान् (चन्द्र) की टिमटिमाते
उज्ज्वल तारों वाली रोहिणी के समान कलावान् (संगीतादिकला निपुण) उसकी चमकती हुई चंचल ताराओं (कनीनि-
काओं) वाली, प्रजापति (ब्रह्मा) की सकल जनों (प्राणियों) की जननी [सृजन करने वाली] बुद्धि के समान
प्रजापति (प्रजापालक) उसकी सकल जनों (प्रजाजनों) की जननी (माता) वाहिनियों (नदियों) के नायक
(पति) समुद्र की महाभूभृत् (हिम पर्वत) के कुल (अंग) से निकली गंगा के समान वाहिनियों (सेनाओं) के
नायक (स्वामी) उसकी महाभूभृतों (श्रेष्ठ राजाओं) के कुल (वंश) से उत्पन्न हुई, राजहंस (कलहंस) की
मानस (सरोवर-विशेष) का अनुसरण करने में चतुर हंसी के समान राजहंस (राजाओं में श्रेष्ठ) उसको

1. 'गृहीतहृदया'

राजहंसस्य, सकललोकार्चितचरणा त्रयीव धर्मस्य, दिवानिशममुक्तपार्श्वस्थितिररुन्धतीव महामुनेः हंसमयीव गतिषु, परपुष्टमयीवालापेषु, चक्रवाकमयीव पतिप्रेम्णि, प्रावृण्मयीव पयोधरोन्नतौ, मदिरामयीव विलासेषु, निधिमयीवार्थ-सञ्चयेषु, वसुधारामयीव प्रसादेषु, कमलमयीव कोषसंग्रहेषु, कुसुममयीव फलदानेषु, संध्यामयीव वन्द्यत्वे, चन्द्रमयीव निरूष्मत्वे, दर्पणमयीव प्रतिप्राणिग्रहणेषु, सामुद्रमयीव परचित्तज्ञानेषु, परमात्ममयीव व्याप्तिषु, स्मृतिमयीव पुण्यवर्त्तिषु, मधुमयीव सम्भाषणेषु, अमृतमयीव तृष्यत्सु, वृष्टिमयीव भृत्येषु, निर्वृतिमयीव सखीषु, वेतसमयीव

तदुक्तम्—'राजभार्या प्रसूः पृथ्वी गुरुदारोपमातृका । श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च सप्तैता मातरः स्मृताः' इति, महा०—वाहिनीनां=नदीनां नायकस्य=पत्युः समुद्रस्य महान् चासौ भूभृत्=पर्वतः हिमालय इत्यर्थः तस्य कुलात्=शरीरात् ('कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि च । भवने च तनौ क्लीवम्' इति मेदिनी) उद्गता=निःसृता गङ्गा=भागीरथी इव वाहिनीनां=सेनानां नायकस्य=स्वामिनः तस्य महान्तः=श्रेष्ठा ये भूभृतः=राजानः तेषां कुलाद्=वंशाद् उद्गता=उत्पन्ना, मानसा०—राजहंसस्य=कलहंसस्य मानसस्य=एतदाख्य–सरोवरस्य अनुवर्तनम्=अनुसरणं तस्मिन् चतुरा=निपुणा हंसी इव राजहंसस्य=नृपोत्तमस्य ['राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे' इति मेदिनी] मानसस्य=मनसः अनुवर्तनम्=अनुगमनम् तत्र चतुरा=दक्षा अर्थात् राज्ञ इच्छानुसारेण कार्य-करणे दक्षा सकलधर्मस्य=अनुष्ठानरूपस्य, विहितक्रियाकलापस्येति यावत् सकलैः=सर्वैः लोकैः=जनैः अर्चिताः=पूजिताः आदृता इत्यर्थः चरणाः=कण्वादि शाखाः यस्याः तथाभूता त्रयी वेदत्रयी ऋग्यजुःसा-मानीति यावत् इव धर्मस्य=धर्मावतारस्य अथवा धर्मः अस्यास्तीति (अर्श आदिभ्योऽच् मतुबर्थे) धर्मः धर्मवान् धर्मात्मेति यावत् तस्य सकललोकैः सर्वप्रयोजनैः अर्चितौ=पूजितौ चरणौ=पादौ यस्याः सा, दिवा०—महामुनेः=महर्षेः वसिष्ठस्य दिवानिशं=रात्रिदिवम् न मुक्ता=त्यक्ता पार्श्वस्य= सन्निधेः स्थितिः अवस्थानं यया सा अरुन्धती=वसिष्ठ-पत्नी, सप्तर्षि-मण्डले सूक्ष्मतारारूपेण अरुन्धती दिवानिशं वशिष्ठसान्निध्यं न मुञ्चति सा इव महामुनेः=राजर्षेः दिवानिशं अमुक्तपार्श्वस्थितिः, यशोमयी, उपरि सर्वत्र उपमालङ्कारः स च श्लेषानुप्राणितः, गतिषु=गमनेषु हंसमयी=हंसरूपा हंसगामिनीत्यर्थः, आलापेषु=संलापेषु परपुष्टमयी=कोकिलरूपा कोकिलवन्मधुरस्वरेत्यर्थः, पत्यौ=भर्तरि प्रेम=प्रणयः तस्मिन् चक्रवाकमयी=चक्रवाकरूपा पतिविरहासहेत्यर्थः पयोधरयोः=स्तनयोः अथ च पयोधराणां=मेघानाम् उन्नतौ=उच्चत्वे परिपूर्णत्वे इत्यर्थः प्रावृट् वर्षर्तुः=तन्मयी=तद्रूपा इव विलासेषु=विभ्रमेषु मदिरामयी=सुरारूपा, अर्थस्य=धनस्य सञ्चयेषु=सङ्ग्रहेषु निधिः=कोषः तन्मयी धनसङ्ग्राहिकेत्यर्थः, प्रसादेषु=अनुग्रहेषु वसु=धनं तस्य धारा= वृष्टिः तन्मयी, अभ्यर्थिषु कृपां कृत्वा धनस्य नदीमिव प्रवाहयति स्मेति भावः । कोपस्य=निधेः अथ च कर्णिकायाः संग्रहेषु=एकत्रीकरणेषु फलानां=याचकैः अभीप्सितानां वस्तूनां अथ च बीजानां दानेषु=वितरणेषु कुसुममयी=पुष्पमयी इव, वन्द्यत्वे=वन्दनीयत्वे सन्ध्यामयी=सन्ध्या रूपा इव, निर्गत ऊष्मा ऊष्णत्वं गर्वश्च यतः तस्य भावः तत्त्वं तस्मिन् चन्द्रमयी इव प्राणिनि प्राणिनि प्रतिप्राणि=सर्वप्राणिविषये ग्रहणेषु=आकर्षणेषु स्वप्रभावे आनयनेषु अथ च प्रतिबिम्बादानेषु दर्पमयी इव, परेषां, चित्तस्य=चित्ताभिप्रायस्य स्वभावस्य वा ज्ञानेषु सामुद्रमयी=सामुद्रिकशास्त्रस्वरूपा, सामुद्रिक-शास्त्रेण हि अन्यस्वभावो ज्ञायते, व्याप्तिषु=सर्वकार्येषु=निजप्रवृत्तिषु अथवा सर्वप्रजानां हृदयेषु स्वप्रभावस्थापनेषु अन्यत्र सर्वगतत्वेषु परमात्ममयी=परमात्मरूपा इव,पुण्याः=पवित्राः वृत्तयः=मनोवृत्तयः अथच प्रवृत्तयः आचरणानीत्यर्थः,स्मृतिमयी=धर्मशास्त्ररूपा इव,सा शुद्ध-

हिन्दी—मानस (मन) के पीछे-पीछे चलने में निपुण, धर्म की सभी लोगों द्वारा मान्य चरणों (शाखाओं) वाली वेदत्रयी के समान धर्म-स्वरूप उसकी सभी प्रजाजनों द्वारा पूजित चरणों (पैरों) वाली, महामुनि (वसिष्ठ) की दिन-रात साथ न छोड़े हुए अरुन्धती के समान उस महामुनि (राजर्षि) की बराबर साथ न छोड़ने वाली (यशोमती) गतियों में हंस रूपिणी-जैसी, संलापों में कोयल-रूप जैसी, पति-प्रेम में चक्रवाकी-स्वरूप-जैसी, पयोधरों (कुचों, मेघों) की उन्नति में वर्षा-ऋतु-रूप-जैसी, विलासों में मदिरा-रूपिणी जैसी, धन-संचयों में निधि-स्वरूप-जैसी, अनुग्रहों में धनवृष्टि-रूप जैसी, कोष (धन-) गट्टा के संग्रहों में कमल-रूप जैसी फल देने में पुष्प रूप-जैसी, वन्दनीयता में सन्ध्या-रूप जैसी, ऊष्मा (गर्मी-गर्व) के अभाव में चन्द्रमय-जैसी प्रत्येक प्राणी के ग्रहण (वशीकरण, बिम्बग्रहण) में दर्पणमय-जैसी, दूसरों का चित्त जानने में सामुद्रिक-शास्त्र-रूप-जैसी, सभी के हृदयों में छा जाने से परमात्ममय-जैसी, पुण्य-कर्मों में धर्म-शास्त्रमय-जैसी, वार्तालापों में मधुमय-जैसी, पिपासुओं में सुधामय-जैसी, नौकर-चाकरों में वर्षास्वरूप-जैसी, सखियों में सुखमय-जैसी, गुरुजनों में वेतसरूप-जैसी विलासों

गुरुषु, गोत्रवृद्धिरिव विलासानाम्, प्रायश्चित्तशुद्धिरिव स्त्रीत्वस्य, आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य, व्युत्थानबुद्धिरिव रूपस्य, दिष्टवृद्धिरिव रतेः, मनोरथसिद्धिरिव रामणीयकस्य, दैवसम्पत्तिरिव लावण्यस्य, वंशोत्पत्तिरिवानुरागस्य, वरप्राप्तिरिव[1] कान्तेः, सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य, आयतिरिव यौवनस्य, अनभ्रवृष्टिरिव वैदग्ध्यस्य, अयशःप्रमृष्टिरिव लक्ष्म्याः, यशःपुष्टिरिव चारित्रस्य, हृदयतुष्टिरिव धर्मस्य, [2]सौभाग्यपरमाणुसृष्टिरिव प्रजापतेः, शमस्यापि शान्तिरिव, विनयस्यापि विनीतिरिव, आभिजात्यस्याप्यभिजातिरिव, संयमस्यापि संयतिरिव धैर्यस्यापि धृतिरिव, विभ्रमस्यापि विश्रान्तिरिव यशोमती नाम महादेवी प्राणानां प्रणयस्य विस्रम्भस्य धर्मस्य सुखस्य च भूमिरभूत् । यास्य वक्षसि नरकजितो लक्ष्मीरिव ललास ।

मनोवृत्तिरासीत्, स्मृतिरपि पवित्रकर्ममयी भवति,सम्भाषणेषु=संलापेषु मधु=क्षौद्रं तन्मयी इव सम्भाषणेषु माधुर्यात्,तृष्यत्सु=तृषावत्सु अमृतं=सुधा अथ च जलम् तन्मयी इव सर्वेषां तृप्तिकारकत्वात् भृत्येषु=परिजने वृष्टिमयी इव सर्वेषाम् इच्छानां पूरकत्वात्, सखीषु आलीषु निर्वृतिः=सुखं तन्मयी इव तासां सुखकरत्वात्, गुरुषु=सर्वश्रेष्ठपुरुषेषु वेतसमयी वेतसवत् नम्रत्वात्, उपरि सर्वत्र विषयसप्तमी बोध्या विषयभेदाच्च यशोमत्या विविधोल्लेखात् गत्यादिषु च हंसमयीत्यादिना संभावनाद् उल्लेखोत्प्रेक्षयोः सङ्करः स च क्वचित्श्लिष्टःक्वचिच्च साधारण , विलासानां=विभ्रमाणां शृङ्गारचेष्टानामिति यावत् गोत्रस्य=वंशस्येत्यर्थः वृद्धिः उन्नतिः इव तामवाप्य विलासाः स्वजातिवृद्धिं कुर्वन्तिस्मेति भावः सा महाविलासमयीति फलितार्थः, स्त्रीत्वस्य=स्त्रीजात्याः = प्रायश्चित्तेन=चान्द्रायणादिना शुद्धिः=पवित्रीकरणम्, स्त्रीत्वं हि पापमलिनं भवति, तस्याः पवित्रतपोमयाचरणेन तत् तस्यां पवित्रीभूतमिति भावः, मकरध्वजस्य=मदनस्य आज्ञा-सिद्धिः=आज्ञापालकत्वमित्यर्थः तस्याः सौन्दर्यमधिकृत्य कामः सर्वेषु विकारं जनयति स्म, तत्सौन्दर्यं सर्वहृदयाकर्षकमासीदिति भावः,रूपस्य=लावण्यस्य व्युत्थानं=समाधिनिवृत्तिः तस्य बुद्धिः=ज्ञानम्,इव अयं भावः कल्पतां रूपं समाधिमाश्रयति अर्थात् इतस्ततो लोकविचरणाद् विरमति ततश्च सः योगिवत् समाधितो व्युत्थितो भूत्वा यशोमत्याः शरीरे प्रतिबुद्धिः=चेतनावान् भवति, रतेः=रागस्य प्रेम्णः इत्यर्थः दिष्ट-वृद्धिः=भाग्यवृद्धिः रामणीयकस्य=रमणीयतायाः मनोरथ-सिद्धिः = अभिलषितप्राप्तिः अर्थात् रामणीयकम् आत्मानं प्रदर्शयितुं कामपि योग्यव्यक्तिं मृगयते स्म, ताञ्च प्राप्य स्वमनोरथ-सिद्धिमलभत,लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य दैवसम्पत्तिः=दिव्यसम्पद् इव, अनुरागस्य=प्रेम्णः वंशोत्पत्तिः=कुलमूलमिव अर्थात् यथा कुलं कमपि प्रवर्तकमासाद्य चलति, तथैव अनुरागोऽपि यशोमतीं मूलव्यक्तिमादाय उत्तरोत्तरं परवर्तिसुन्दरीषु चलित इव, कान्तेः=कमनीयतायाः वरस्य-वरणीयवस्तुनः प्राप्तिः इव, सौन्दर्यस्य=सुन्दरतायाः सर्गस्य=सृष्टेः समाप्तिः=अवसानम् इव अर्थात् सा सुन्दरताया पराकाष्ठा आसीत्, यौवनस्य=तारुण्यस्य आयतिः=उदात्तता प्रतापः ['प्रभावे चायतिः' इत्यमरः], वैदग्ध्यस्य=नैपुण्यस्य अनभ्रा=मेघरहिता वृष्टिः=वर्षणम् इव अर्थात् यथा अनभ्रा वृष्टिः आश्चर्यकरी भवति तथा तस्याः स्वाभाविकं नैपुण्यम् आश्चर्यकरमासीत् लक्ष्म्याः=श्रियः अयशसः=अपकीर्तेः प्रमृष्टिः=मार्गणम् इव, लक्ष्मीः खलु चञ्चलेति लोकेषु ख्यायते, किंतु स्वस्यां लक्ष्मीं स्थिरां कृत्वा यशोमती तस्याः अयशःकलङ्कं प्रक्षालितवतीव, (तुलना क्रियताम्— 'येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्' रघु० ६/४१/, चारित्र्यस्य=सच्चरित्रतायाः सतीत्वस्येत्यर्थः यशसः

हिन्दी—की वंशवृद्धि-जैसी, स्त्री जाति की प्रायश्चित्तों द्वारा हुई शुद्धि जैसी, कामदेव की आज्ञा-सिद्धि-जैसी, रूप की समाधिसमाप्ति पर हुई चेतना-जैसी, रति की भाग्यवृद्धि-जैसी, रमणीयता की मनोरथ सिद्धि-जैसी, लावण्य की दिव्य सम्पदा-जैसी, अनुराग की वंश प्रवर्तक-जैसी, कान्ति की वरप्राप्ति-जैसी, सौन्दर्य की सृष्टिसमाप्ति-जैसी, यौवन की महिमा-जैसी, निपुणता की विना मेघों की वृष्टि-जैसी, लक्ष्मी की अपयश-मार्जना-जैसी, सच्चरित्र की यशः-पुष्टि-जैसी, धर्म की हृदय-तृप्ति-जैसी, ब्रह्मा की सौन्दर्य-परमाणुओं द्वारा रची सृष्टि-जैसी, शम की भी शान्ति-जैसी, विनय की भी नम्रता-जैसी, कुलीनत्व की भी कुलीनता-जैसी, संयम की भी संयति-जैसी, धैर्य की भी धृति-जैसी एवं विभ्रम की भी विभ्रम-जैसी यशोमती नाम की महिषी थी । जो (राजा के) प्राण, प्रेम, विश्वास, धर्म और सुख की भूमि थी और जो नरक (असुरविशेष) को जीतने वाले (विष्णु) के वक्षःस्थल पर विराजमान लक्ष्मी की तरह नरक (अधोलोक) के (धर्माचरण द्वारा जीत डालने वाले इस (प्रभाकरवर्धन) के वक्षःस्थल पर विराजती थी ।

---

१. 'वरप्राप्तिरिव सौभाग्यस्य, उत्पत्तिभूमिरिव कान्तेः २ सौहार्दस्य भाग्यरूप परमाणु०

निसर्गत एव च स नृपतिरादित्यभक्तो बभूव। प्रतिदिनमुदये दिनकृतः स्नातः सितदुकूलधारी धवलकर्पटप्रावृतशिराः प्राङ्मुखः क्षितौ जानुभ्यां स्थित्वा कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके पवित्रपद्मरागपात्रीनिहितेन स्वहृदयेनेव सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्चां ददौ। अजपच्च जप्यं सुचरितः प्रत्युषसि मध्यन्दिने दिनान्ते चापत्यहेतोः प्राध्वं प्रयतेन मनसा जञ्जपूको मन्त्रमादित्यहृदयम्।

पुष्टिः=पोषणम् इव परमसती आसीदित्यर्थः, धर्मस्य हृदय-तुष्टिः=हृदय-तृप्तिः इव परधर्मपरायणा आसीत् इत्यर्थः प्रजापतेः =ब्रह्मणः सौभाग्यं=सौन्दर्यं तस्य ये परमाणवः तेषां सृष्टिः=सर्जनम इव अर्थात् सा ब्रह्मणा सौन्दर्य-परमाणुभिरिव निर्मिता, उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः; प्रशमस्य गुणविशेषस्य अपि शान्तिः इव अर्थात् शमो हि कामादिविकाराणाम् अथवा मनसो नियमनम्, सोऽपि तस्याः सकाशात् शान्तिं प्राप्नोति स्म, सा परमशान्तस्वभावा आसीत्, एवम् उत्तरत्रापि व्याख्येयम्, विनयस्य नम्रीभावगुणस्य अपि विनीतिः इव, अभिजातस्य= कुलीनस्य भावः आभिजात्यम् कुलीनतेत्यर्थः तस्यापि अभिजातिः इव, संयमस्य= इन्द्रियदमनस्य अपि संयतिः इव, धैर्यस्य = धीरतायाः अपि धृतिः इव,विभ्रमस्य= विलासस्य अपि विभ्रान्तिः विलास. इत्यर्थः उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा अर्थापत्तिश्च, यशोमती नाम (नामशब्दोऽत्राव्ययम्)महादेवी= महिषी प्राणानां=राज्ञः जीवितस्य, प्रणयस्य=प्रेम्णः विस्रम्भस्य=विश्वासस्य धर्मस्य=धर्माचरणस्य सुखस्य=आनन्दस्य च भूमिः=स्थानं स्रोतः इति यावत् आसीत्, भार्याया उक्तामहत्त्वे महाभारतमपि प्राह—'अर्धं[1] भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः' ।। (आदिप० ७४।४०) या-यशोमती अस्य राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य वक्षसि=हृदये नरकं जयतीति नरकजित् (क्विप्) नरकासुरहन्तुः विष्णोरित्यर्थः अथ च नरकम्=अधोलोकम् अधोगतिमिति यावत् जयति=निराकरोतीति अस्य राज्ञः सपत्नीकस्य धर्माचरणकारणात् मरणानन्तरं नरके गमनस्य सम्भावनैव नास्ति, ललास=बभौ। अत्र श्लिष्टोपमा।

निसर्गतः=स्वभावतः नृपतिः=राजा प्रभाकरवर्धनः आदित्यस्य=सूर्यस्य भक्तः=उपासकः बभूव=अभवत्। प्रतिदिनं नित्यं दिनंकरोतीतिदिनकृत्=सूर्यः तस्य उदये=उदयने सितं=श्वेतं दुकूलं=कौशेयवसनं धारयतीति० धारी, धवलेन=श्वेतेन कर्पटेन=वस्त्रखण्डेन प्रावृतं=वेष्टितं शिरः=मौलिः यस्य तथाभूतः प्राक्=पूर्वाभिमुखे मुखं यस्य सः क्षितौ=भूम्यां जानुभ्यां= ऊरुसन्धिभ्यां स्थित्वा=उपविश्य कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य पङ्केन=द्रवेण अनुलिप्ते=कृतलेपे मण्डलं=वृत्तम् एव मण्डलकम्(स्वार्थे कः) तस्मिन् पवित्रा या पद्मरागस्य=पद्मरागमणेः या पत्री=पात्रं तत्र निहितेन=स्थापितेन सूर्य अनुरक्तेन=अनुरागवता स्वहृदयेन इवेति श्लिष्टोत्प्रेक्षा सूर्येण=सूर्यप्रकाशेनेत्यर्थः अनुरक्तेन रक्तवर्णीभूतेन रक्तकमलानां षण्डेन=गुच्छेन अर्चां=पूजां ददौ=समर्पितवान्। सु=शोभनं चरितं यस्य सः जप्यं=जपनीयं प्रत्युषसि=प्रातः काले, मध्यन्दिने=मध्याह्नकाले, दिनान्ते= सायंकाले च अपत्यस्य=सन्तानस्य हेतोः=कारणात् प्राध्वं=प्रणतः सन् ('प्राध्वं (अव्ययम्) तु प्रणते चातिदूरवर्त्मनि बन्धने' इति मेदिनी) अथवा प्राध्वं =सूर्यमनुकूलयितुम् ('अनुकूल्यार्थके प्राध्वम्' इत्यमरः) प्रयतेन=संयतेन मनसा जञ्जपकः=पुनःपुनर्जपतीतिः यङन्त-जपधातोः ऊक ['यज-जप-दशां यङः पा० ३/२/१६६) प्रत्यये रूपम्] सततजपपरायणः इत्यर्थः आदित्यः हृदयं=रहस्यं यस्य तथाभूतं मन्त्रम् अजपत्, आदित्यहृदय-स्तोत्रं सर्वजनप्रसिद्धमेव यत्र लिखितमस्ति-वृत्तं वा चतुरस्रं वा लिप्तभूमौ न्यसेच्छुचिः, त्रिधा तत्र लिखेत् पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।।"'सकेसराणि पद्मानि करवीराणि चार्जुन। रक्तचन्दनमिश्राणि कृत्वा वै ताम्रभाजने। धृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यां धरणीं स्पृशेत्'।। इत्यादि।

हिन्दी—वह राजा (प्रभाकरवर्धन) स्वभावतः सूर्य का भक्त हो गया। प्रतिदिन सूर्य उदय होने पर स्नान किये श्वेत रेशमी वस्त्र पहने, श्वेत वस्त्र-खण्ड से शिर ढके, पूर्व की ओर मुख किये भूमि पर घुटने टेक कर स्थित हो कुंकुम-द्रव से लिप्त मण्डलाकार घेरे के भीतर पवित्र पद्मरागमणि के पात्र पर रखे हुए सूर्य पर अनुरक्त (आसक्त) अपने हृदय से जैसे सूर्य (के प्रकाश) से अनुरक्त (लाल) बने रक्त कमलों के गुच्छे से (सूर्यभगवान् को) पूजा अर्पित करता था और प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल सतत जपपरायण, सच्चरित्र वह संयत मन से प्रणत हो जप-योग्य आदित्य हृदय मन्त्र जपा करता था।

---

1. अर्धं

भक्तजनानुरोधविधेयानि तु भवन्ति देवतानां मनांसि । यतः स राजा कदाचिद्ग्रीष्मसमये यदृच्छया सितकरकरसितसुधाधवलस्य हर्म्यस्य पृष्ठे सुष्वाप । पार्श्वे चास्य द्वितीयशयने देवी यशोमती शिश्ये । परिणतप्रायायां तु श्यामायाम्, आसन्नप्रभातवेलाविलुप्यमानलावण्ये लिलम्बिषमाणे सीदत्तेजसि तारकेश्वरे, कराग्रस्पृष्टकुमुदिनीप्रमोदजन्मनि शशधरस्वेद इव गलत्यतिशीतलेऽवश्यायपयसि, मधुमदमत्तप्रसुप्तसीमन्तिनीनिःश्वासाहतेषु संक्रान्तमदेष्विव घूर्णमानेष्वन्तःपुरप्रदीपेषु, राजनि च विमलनखप्रतिबिम्बिताभिः संवाह्यमानचरण इव तारकाभिर्विस्रब्धप्रसारितैर्दिगङ्गनानामिवार्पितैरङ्गैर्मधुसुगन्धिभिः स्वहस्तकमलतालवृन्तवातैरिव श्वासितैर्मुखश्रिया वीज्यमाने विमलकपोलस्थलस्थितेन सितकुसुमशेखरेणेव रतिकेलिकचग्रहलम्बितेन प्रतिमाशशिबिम्बेन विराजिते स्वपति देवी यशोमती सहसैव 'आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व' इति भाषमाणा भूषणरवेण व्याहरन्तीव परिजनमुत्कम्पमानाङ्गयष्टिरुदतिष्ठत् ।

टीका—भक्तजानानां यः अनुरोधः=प्रार्थनेत्यर्थः तेन विधेयानि=प्रभावितानि वशवर्तीनीति यावत् देवतानां मनांसि=चित्तानि ग्रीष्मसमये=ग्रीष्मर्तौ यदृच्छया=स्वेच्छया सिताः श्वेताः कराः=किरणा. यस्य स चन्द्रः इत्यर्थः तस्य करवत्=किरणवत् सिता=शुभ्रा या सुधा=प्रस्तराणां श्वेतचूर्णं तया धवलस्य =श्वेतस्य हर्म्यस्य = प्रासादस्य पृष्ठे = उपरीत्यर्थः सुष्वाप=शेतेस्म, अस्य=राज्ञः समीपे च द्वितीये शयने=पर्यङ्के यशोमती शिश्ये=शयितवती । संकेतानुसारेण—'द्वितीयेत्यादिनास्य सदाचार-निष्ठोक्ता । उक्तं हि "नाश्नीयाद् भार्यया साकं न च सुप्यात् तथा समम्" ॥ मनुरप्याह·समानशयने चैव न शयीत तया सह' इति । 'परिणतः—यशोमती—उदतिष्ठत्' इत्यस्ति वाक्यम् । श्यामायां =निशायां परिणतः=समाप्तः प्रायः आधिक्यं च यस्याः तस्याम् प्रायः समाप्तायामित्यर्थः, आसन्न०—आसन्ना सन्निहिता या प्रभा यस्य=प्रातःकालस्य वेला=समयः तया विलुप्यमानं=लोपं प्राप्यमाणं लावण्यं=सौन्दर्यं यस्य तस्मिन्, सीदत्=क्षीणं भवत् तेजः=प्रकाशो यस्य तस्मिन् तारकाणां=नक्षत्राणाम् ईश्वरे=नाथे चन्द्रमसीत्यर्थः लिलम्बिषमाणे=(√लम्ब्+सन्+शानच्) लम्बितुमिच्छति, कर०—कराः=किरणाः एव करः=हस्तः तेषाम् तस्य च अग्रं:=अग्रभागैः स्पृष्टा=स्पर्शविषयीकृता या कुमुदिनी=निशाकमलिनी तया यः प्रमोदः=प्रकृष्टः मोदः=हर्षः तस्मात् जन्म–उत्पत्तिः यस्य तस्मिन् शशधरस्य=शशिनः स्वेदः=सात्त्विकभावभेदः तस्मिन् अतिशयेन शीतले अवश्यायस्य=तुहिनस्य पयसि=जले गलति-पतति अत्र श्लिष्टरूपकसमासोक्त्युत्प्रेक्षाणां संकरः, मधु०—मधु मदिरा तेन मत्ताः=प्राप्तमदाः अथ च प्रसुप्ताः=शयिताः याः सीमन्तिन्यः=कामिन्यः ('नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः) तासां निःश्वासैः=निश्वसितैः श्वासवायुभिरित्यर्थः आहतेषु=ताडितेषु सक्रान्तः=संक्रमितः स्थानान्तरित इत्यर्थः मदः=मत्तता येषु इवेत्युत्प्रेक्षायां घूर्णमानेषु=चञ्चलीभवत्सु अथ च स्खलत्सु अन्तःपुरस्य=अवरोधस्य प्रदीपेषु=दीपेषु राजनि—विमलाः=शुभ्रा ये नखाः=कररुहाः तेषु प्रतिबिम्बिताभिः=प्रतिफलिताभिः तारकाभिः=ताराभिः संवाह्यमानौ=उपमर्द्यमानौ चरणौ यस्य तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विस्रब्ध०—विश्रब्धं=निःशङ्कं सविश्वासमिति यावत् प्रसारितैः=विस्तारितैः दिगङ्गनानां=दिशः एव अङ्गना तासाम्

हिन्दी—देवताओं के मन भक्तों की प्रार्थना से प्रभावित हो जाया करते हैं, क्योंकि वह राजा कभी ग्रीष्म-ऋतु में स्वेच्छानुसार चन्द्रमा की किरणों की तरह सफेद चूने से श्वेत बने महल की छत पर सो गया । उसके पास दूसरे पलंग पर रानी यशोमती सोई । रात के प्रायः ढल जाने पर, सन्निहित प्रभात-वेला द्वारा विलुप्त किये जा रहे लावण्य वाले क्षीणतेज चन्द्रमा के (पश्चिम में) लटकना चाहने पर, कर (किरण) रूपी कर (हाथ) के अग्रभाग से छुई हुई कुमुदिनी से (प्राप्त) आनन्द में उत्पन्न चन्द्र के स्वेद-जल—जैसे अतिशीतल ओस-जल के गिरने पर, मदिरा के मद में मत्त सोई पड़ी कामिनियों के निःश्वासों से आहत (अत एव) मद-संक्रमण प्राप्त किये हुए—जैसे अन्तः पुर के दीपकों [की ज्वलाओं] के जगमगाने लगने पर, (पैर के) स्वच्छ नखों में प्रतिबिम्बित तारिकाओं द्वारा मानों राजा के पैर दबा दिए जाने लगने पर, विश्वास-पूर्वक फैलाये हुए अंगों को राजा द्वारा मानों दिशा-रूपी अंगनाओं को सौंप दिये जाने पर, मधु (मदिरा) की गन्ध लिए हुए साँसों से मानों मुख—श्री द्वारा राजा पर अपने हाथ के मधु (मकरन्द) की गन्ध लिए कमल रूपी व्यजन की पवनों से पंखा डुलाये जाने पर स्वच्छ कपोल-तल पर पड़े रति क्रीड़ा में केश ग्रहण से नीचे लुढ़के श्वेत पुष्प-शेखर से —जैसे चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब से शोभित हुए राजा के सोते रहते रानी यशोमती सहसा ही—'नाथ, बचाओ, बचाओ' कहती हुई, भूषणों के शब्द से भृत्यवर्ग को बोलती हुई जैसी काँपते हुए शरीर से उठ खड़ी हुई ।

अथ तेन सर्वस्यामपि पृथिव्यामश्रुतपूर्वेण किमुत देव्या मुखे परित्रायस्वेति ध्वनिना दग्ध इव श्रवणयोरेकपद एव निद्रां तत्याज राजा। शिरोभागाच्च कोपकम्पमानदक्षिणकराकृष्टेन कर्णोत्पलेनेव निर्गच्छताच्छधारेण धौतासिना सीमन्तयन्निव निशामन्तरालव्यवधायकमाकाशमिवोत्तरीयांशुकं विक्षिपन्वामकरपल्लवेन हृदयेनेव भयनिमित्तान्वेषिणा भ्रमता दिक्षुकनकवलयेन विराजमानः, सत्वरावतारितवामचरणाक्रान्तिकम्पितप्रासादः, पुरःपतितेनासिधारागोचरगतेन शशिमयूखखण्डेनेव खण्डितेन हारेण राजमानः, लक्ष्मीचुम्बनलग्नताम्बूलरसरञ्जिताभ्यामिव निद्रया कोपेन चातिलोहिताभ्यां[1] पाटलयन्पर्यन्तानाशानाम्, बद्धान्धकारया त्रिपताकया भ्रुकुट्या पुनरिव त्रियामां परिवर्तयन् 'देवि न भेतव्यम् न भेतव्यम्' इत्यभिदधानो वेगेनोत्पपात। सर्वासु च दिक्षु विक्षिप्तचक्षुर्यदा नाद्राक्षीत्किंचिदपि तदा पप्रच्छ तां भयकारणम् ।

टीका—इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अर्पितैः दत्तैः अङ्गैः अवयवैः अत्र उपलक्षणे तृतीया ['इत्थं भूतलक्षणे' पा० २/३/२१] अङ्गैः उपलक्षिते युक्ते इति यावत् (राजनि) मधु०—मधु मदिरा तेन सुगन्धिभिः=सुगन्धितैः श्वसितैः निःश्वासवायुभिः मधु=मकरन्दः तेन सुगन्धिभिः स्वहस्ते यत् कमलं=पद्मं तदेव तालवृंतं=व्यजनं तस्य वातैः=पवनैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मुखस्य श्रीः=लक्ष्मीः तया वीज्यमाने=कृतवीजनव्यापारे, विमलं=स्वच्छं यत् कपोलस्थलं=गण्डस्थलं तत्र स्थितेन=गतेन प्रतिमा= प्रतिबिम्बित-मूर्ति-रूपः यः शशिनः=चन्द्रमसः बिम्बः=मण्डलं तेन, प्रतिफलित-चन्द्रबिम्बेनेत्यर्थः चन्द्रप्रतिबिम्बेनेति यावत्, रतेः=सुरतस्य केल्या=क्रीडायां यः कचग्रहः=महिषीकृतनृपकेशग्रहणमित्यर्थः तस्मिन् लम्बितेन=शिरसः प्रच्युत्य कपोले लम्बमानेन सितेन=श्वेतेन कुसुमानां=पुष्पाणां शेखराणि=शिरोमालया इवेत्युत्प्रेक्षायाम् विराजिते=शोभिते (राजनि) उपरि सर्वत्र भावे सप्तमी वर्तते, देवी=महिषी सहसा एव=अकस्मात् एव—आर्यपुत्र=नाथ ! परित्रायस्व=रक्ष मामिति शेषः भाषमाणा=कथयन्ती परिजनं=भृत्यवर्गं भूषणानां रवेण=ध्वनिना व्याहरन्ती=अभिदधती इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्कम्पमाना=उद्वेपमाना भयकारणादित्यर्थः अङ्गं=शरीरं यष्टिः इव यस्याः तथाभूता उदतिष्ठत्= उत्थितवती ।

सर्वस्यां=समग्रायाम् अपि पृथिव्यां, किमुत=किं वक्तव्यम् देव्याः=महिष्याः मुखे न पूर्वंश्रुतः=आकर्णितः इत्यश्रुतपूर्वः तेन परित्रायस्व=रक्षेति ध्वनिना=शब्देन श्रवणयोः=कर्णयोः दग्धः=प्लुष्टः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् एकपदे तत्कालम् एव निद्रां तत्याज=प्रबुद्धः राजा। शिरोभागाच्च ··वेगेनोत्पपात इत्यस्ति वाक्यम्। शिरसः भागात्=पर्यङ्कस्य यस्मिन् भागे राज्ञा शयनकाले स्वशिरः निहितमासीत् तस्मात् पर्यङ्कभागादित्यर्थः सत्यां आवश्यकतायां रक्षार्थं खड्गः उपधानाधः निधीयते स्म। कोप०—कोपेन=क्रोधेन कम्पमानः=वेपमानः यः दक्षिणः=वामेतरः करः=हस्तः तेन आकृष्टेन= गृहीतेनेत्यर्थः कर्णोत्पलेन=कर्णाभरणीकृतेन उत्पलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निर्गच्छता=निःसरता अच्छा=स्वच्छा धारा= अग्रं यस्य तेन, धौतेन = प्रक्षालितेन शाणे निशितीकृतेनेत्यर्थः असिना = खड्गेन निशां रात्रिं सीमन्तयन् = सीमन्तः= स्त्रीणां शिरसि केशेषु वर्त्म तद्युक्तं करोतीति (सीमन्त + णिच् + शतृ सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते) द्विध

हिन्दी—रानी के मुख में की तो बात ही क्या, सारी पृथ्वी के भी पहले कभी सुनने में न आई हुई उस 'बचाओ' की ध्वनि से कानों में दग्ध हुआ जैसा राजा तत्काल निद्रा त्याग बैठा। और सिरहाने से क्रोध में काँपते हुए दायें हाथ से खींचे गिरे हुए कर्णोत्पल—जैसे स्वच्छ धार वाले तेज खड्ग (—रूपी कंघे) से रात्रि (—रूपी नायिका) की मांग—जैसी बनाता हुआ, मध्य में व्यवधान डालने वाले आकाश को—जैसे रेशमी चादर को फेंकता हुआ हाथ फेंकने के वेग के कारण (नीचे) गिरे हुए सोने के कड़े से भयकारण का पता लगाने वाले (इधर-उधर) घूमते हुए हृदय से जैसे शोभित होता हुआ, तुरत नीचे उतरा बांया पैर (फर्श पर) धरने से महल को हिलाये हुए टूट कर सामने गिर पड़े खड्ग की धार से कटे हुए चन्द्र—किरणों के खण्ड से—जैसे मौक्तिकहार से विराजमान, लक्ष्मी द्वारा (लिए हुए) चुम्बन में लगे पान के रस से लाल बने हुए—जैसे नयनों द्वारा दिशाओं के प्रान्तभागों का लाल बनता हुआ, और अन्धकार उत्पन्न किये हुए त्रिरेखामय भ्रूभंग से फिर रात—जैसे बनाता हुआ राजा— रानी, डरो मत, इस तरह कहता हुआ वेग से उछला। चारों दिशाओं में दृष्टि डाले हुए जब वह कुछ भी न देख पाया तो उससे भय का कारण पूछ बैठा।

---

१. 'पटलयन्'

अथ गृहदेवतास्विव प्रधावितासु यामिकिनीषु, प्रबुद्धे च समीपशायिनि परिजने, शान्ते च हृदयोत्कम्पकारिणि

साध्वसे सा समभाषत—'आर्यपुत्र, जानामि स्वप्ने भगवतः सवितुर्मण्डलान्निर्गत्य द्वौ कुमारकौ तेजोमयौ बालातपेनेव पूरयतो दिग्भागान् वैद्युतमिव जीवलोकं कुर्वाणौ मुकुटिनौ कुण्डलिनौ अङ्गदिनौ कवचिनौ गृहीतशस्त्रौ इन्द्रगोपकरुचा रुधिरेण[1] स्नातौ उन्मुखेनोत्तमाङ्गघटमानाञ्जलिना जगता निखिलेन प्रणम्यमानौ कन्ययैकया च चन्द्रमूर्त्येव सुषुम्णरश्मिनिर्गतयानुगम्यमानौ क्षितितलमवतीर्णौ। तौ च मे विलपन्त्याः शस्त्रेणोदरं विदार्य प्रवेष्टुमारब्धौ। प्रतिबुद्धास्मि चार्यपुत्रं विक्रोशयन्ती वेपमानहृदया' इति।

टीका—विभजमानः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अन्तरा०—अन्तरालस्य = मध्यभागस्य व्यवधायकं = व्यवधानकारकम् आकाशम् = गगनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्तरीयांशुकम् = कौशेयम् उत्तरीयं प्रावारमिति यावत् वामः यः करः पल्लवः इवेत्युपमितत्पु० तेन विक्षिपन्=अपसारयन्, कर०—करस्य यः विक्षेप =उत्क्षेपः तस्य वेगेन=जवेन गलितेन=पतितेन भयस्य निमित्तं=कारणम् अन्विष्यतीति तथोक्तेन दिक्षु=दिग्भागेषु भ्रमता=भ्रमणं कुर्वता लुठतेत्यर्थः हृदयेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कनकवलयेन=स्वर्ण-कङ्कणेन विराजमानः=लसन्, सत्वर०—सत्वरं=सवेगं यथा स्यात्तथा अवतारितः= पर्यङ्कात् नीचैः भूमौ स्थापितः यः वामचरणः=वामपादः तेन कम्पितः=वेपितः प्रसादः=हर्म्यं येन सः, पुरः०—पुरः=अग्रे पतितेन=वेगात् अवतरण-समये गलितेन असेः=खड्गस्य धारायाः=अग्रस्य गोचरं=विषयं गतेन तेन छिन्नेनेत्यर्थः शशिनः=चन्द्रस्य मयूखानां=किरणानां खण्डेन=शकलेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् खण्डितेन=त्रुटितेन हारेण=मौक्तिकस्रजा राजमानः=शोभमानः लक्ष्मी० लक्ष्म्याः=श्रियः यत् चुम्बनं लक्ष्मीकर्तृकं राज्ञः नेत्रयोः चुम्बनमित्यर्थः तेन लग्नः=संसक्तः यः ताम्बूलस्य रसः द्रवः तेन रञ्जिताभ्यां=रक्तवर्णीकृताभ्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निद्रया=स्वापेन कोपेन=क्रोधेन च अतिलोहिताभ्याम् आशानां=दिशां पर्यन्तान्=प्रान्तान् पाटलयन्=पाटलवर्णीकुर्वन्, बद्धः—बद्धः=कृतः इत्यर्थः अन्धकारः यया तया तिस्रः=त्रिसंख्यकाः पताकाः=रेखाः यस्याः तया भ्रुकुट्या=भ्रूभंगेन पुनः इवेत्युत्प्रेक्षायां त्रियामां=रात्रिं परिवर्तयन्= परिणमयन् कुर्वन्नित्यर्थः भेतव्यम्=भयं कर्तव्यम्, अभिदधानः=कथयन्, उत्पपात=उच्छलितः दिक्षु=दिशासु विक्षिप्तं प्रतिहतं चक्षुः येन सः, अद्राक्षीत्=अपश्यत्। पप्रच्छ=पृष्टवान्=भयस्य कारणम्।

टिप्पणी—सीमन्तयन् - सीमन्त स्त्रियों के शिर की माँग को कहते हैं। रात भी बालों की तरह काली हुआ करती है। चमकती हुई तलवार की द्युति ने रात्रि रूपी नायिका के बालों से माँग बना दी अर्थात् अन्धकार तलवार की चमक से द्विधा विभक्त हो गया। अन्तराल—राजा ने बायें हाथ से रेशमी चादर हटा दिया जो व्यवधान डालने वाला आकाश जैसा था। वह बहुत महीन था, अतः उसकी आकाश से उत्प्रेक्षा की गई है।

अथ=एतदनन्तरम्, गृह-देवतासु=गृहाधिष्ठातृभूतासु देवतासु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रधावितासु=प्रद्रुतासु त्वरितमागतास्वित्यर्थः यामिकिनीषु=यामिका=रात्रिः रक्षार्थं यासाम् अस्तीति (यामिका + इन् + ङीप्) यामिकिन्यः=जागरिकाः तासु, प्रबुद्धे जागरिते समीपे शेते इति शायी तस्मिन् परिजने=भृत्यवर्गे, हृदयस्य उत्कम्पं करोतीति तथोक्ते साध्वसे=भये ['साध्वसं भयम्' इत्यमरः] समभाषत=अवदत्:–'आर्यपुत्र=नाथ। सवितुः सूर्यस्य मण्डलात्=वृत्तात्, निर्गत्य= निःसृत्य, तेजोमयौ=प्रकाश-रूपौ बालातपेन=अरुणोदयेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दिग्भागान् दिङ्मुखानि पूरयन्तौ=भरन्तौ जीवलोकं=संसारं विद्युतः—तडितः इदमिति [विद्युत् + अण्] विद्युन्मयमित्यर्थः कुर्वाणौ=कुर्वन्तौ मुकुटिनौ=मकुटधारिणौ, कुण्डलिनौ=कुण्डलवन्तौ, अङ्गदिनौ=केयूरवन्तौ, कवचिनौ=बद्धकवचौ गृहीतं=धृतं शस्त्रं याभ्यां तौ इन्द्रगोपस्य=वर्षाका-

हिन्दी—इसके बाद गृह-देवताओं—जैसे रात का पहरा देने वाली स्त्रियों के दौड़ आने पर, समीप में सोने वाले भृत्यजन के जाग जाने पर और हृदय को कंपा देने वाले भय के शान्त हो जाने पर वह बोली—'नाथ'! जानती हूँ कि स्वप्न में भगवान् सूर्य के मण्डल से निकलकर ज्योतिर्मय अरुणोदय से—जैसे दिशा-विभागों को व्याप्त करते हुए, संसार को विद्युन्मय जैसे बनाते हुए, मुकुट, कुण्डल, बाजूबन्द, कवच और शस्त्र धारण किये हुए बीरबहूटी सी कान्ति वाले कुंकुम से नहाये हुए ऊपर मुँह किये शिर पर अञ्जलि बाँधे निखिल विश्व द्वारा प्रणाम किये जाते हुए, सुषुम्णकिरण से निकली हुई चन्द्रमा की मूर्ति—जैसी पीछे-पीछे आती हुई एक कन्या को साथ लिए हुये दो कुमार भूतल पर उतरे और रोती हुई मेरे पेट को शस्त्र से फाड़ कर उसमें प्रवेश करने लग गए। मैं हृदय में काँपती हुई और ओर से आपको पुकारती हुई जाग पड़ी"।

१. 'रुधिरेण धाम्ना स्नातौ'

एतस्मिन्नेव च [illegible] प्रथमालाप इव स्वप्नफलमुपतोरणं ररास प्रभातशङ्खः । भाविनीं भूतिमिवाभिदधाना दध्वनुरमन्दं दुन्दुभयः । चकाण कोणाहतानन्दादिव प्रत्यूषनान्दी । जय जयेति प्रबोधमङ्गलपाठकानामुच्चैर्वाचोऽश्रूयन्त । पुरुषश्च वल्लभतुरङ्गमन्दुरामन्दिरे मन्दमन्दं सुप्तोत्थितः कृतमधुरहेषारवाणां पुरश्च्योततुषारसलिलशीकरं किरन्मरकतहरितं यवसं वक्त्रापरवक्त्रे पपाठ—

टीका—लीनस्य कीटविशेषस्य रुक्=रुचिः इव रुक् यस्य तेन रुधिरेण=कुङ्कुमेन [अथ कुङ्कुमम् ॥ रक्तसङ्कोचपिशुनं धीरं लोहितचन्दनम्' इत्यमरः] स्नातौ=कृतस्नानौ, उत्=उर्ध्वं मुखम्=आननम् यस्य तेन उत्तमाङ्गे=शिरसि घटमानः=जायमानः अञ्जलिः यस्य तेन शिरसि बद्धाञ्जलिनेत्यर्थः निखिलेन=समग्रेण जगता=संसारेण प्रणम्यमानौ=वन्द्यमानौ एकया कन्यया=बालिकया सुषुम्णः एतन्नामकः रश्मिः=सूर्यस्य किरणविशेषः तस्मात् निर्गतया=निःसृतया चन्द्रमूर्त्या=चन्द्रदेहेन इव अनुगम्यमानौ=अनुस्रियमाणौ क्षितितलं=भूतलं अवतीर्णौ=आगतौ इत्यर्थः, तौ च विलपन्त्याः=विलापं कुर्वन्त्याः मे=मम उदरं=जठरं शस्त्रेण विदार्य छित्वा प्रवेष्टुं=प्रवेशं कर्तुम् आरब्धौ=प्रचक्रमतुः । आर्यपुत्रः भवन्तं विक्रोशयन्ती उच्चैः आर्तस्वरेण आह्वयमाना, वेपमानं=कम्पमानं हृदयं यस्याः तथा भूता प्रतिबुद्धा=जागरिता अस्मि।

कालस्य=समयस्य क्रमे राजलक्ष्म्याः प्रथमः आलापः=भाषणम् स्वप्नस्य फलं=परिणामं प्रथयन्=विस्तारयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् तोरणस्य=बहिर्द्वारस्य समीपे इत्युपतोरणम् (अव्ययी०) प्रभातस्य शङ्खः रराण [√ रण्=अव्यक्ते शब्दे+लिट्] शब्दं चकार अत्र शङ्खे राजलक्ष्म्याः प्रथमालापारोपात् रूपकम् । भाविनीं=भविष्यन्तीं भूतिम्=समृद्धिम् इव अभिदधानाः=कथयन्तः दुन्दुभयः=महापटहाः दध्वनुः=[√ ध्वन् + लिट्] ध्वानमकुर्वन् । प्रत्यूषस्य=प्रभातस्य नान्दी=भेरी इति शङ्करः कोणेन=वादनदण्डेन ['कोणो वीणादिवादनम्' इत्यमरः] आहता=ताडिता आनन्दात्=हर्षात् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चकाण=(√ कण् + लिट्) शब्दयाञ्चक्रे । प्रबोधाय=जागरणार्थं ये राज्ञः मङ्गलपाठकाः=वन्दिनः तेषाम् उच्चैः=ताराः वाचः=वाण्यः अश्रूयन्त श्रुतिपथमागच्छन् । पुरुषः=कश्चित् अश्वपालक इत्यर्थः वल्लभाः=प्रियाः ये तुरङ्गाः=अश्वाः तेषां मन्दुरा-मन्दिरे=अश्वशालायां मन्दमन्दं=अतिशयेन मन्दं आदौ सुप्तोत्थितः कृतः मधुरः=कर्णप्रियः हेषारवः=हिनहिनत्कारः यैः तेषां सप्तीनाम्=अश्वानाम् पुरः अग्रे च्योतन्तः=प्रस्रवन्तः तुषार-सलिलस्य=अवश्यायजलस्य शीकराः=जलकणाः यस्मात् तत् मरकतवत् मरकतमणिसदृशं हरितं यवसं=तृणं किरन्=क्षिपन् वक्त्रं च अपरवक्त्रं च=छन्दोविशेषौ पपाठ=पठितवान् ।

टिप्पणी—रुधिरेण—अमरकोष के अनुसार रुधिर का अर्थ कुङ्कुम भी होता है इसी को रक्तचन्दन भी कहते हैं। कालिदास ने भी 'गन्धवद्-रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा' (रघु० ११/२०) में श्लेष द्वारा रक्तचन्दन भी अर्थ कर रखा है, किन्तु कॉवल रुधिर का अनुवाद Blood=खून करता है । खून में लथपथ व्यक्ति को स्वप्न में देखना अशुभ कहा गया है न कि शुभ । सुषुम्ण—पुराणों के अनुसार चन्द्रमा को सूर्य की सुषुम्ण नाम की रश्मि से प्रकाश मिलता है, अतः वह परतः प्रकाश है । यास्काचार्य ने भी कहा है—'आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः' ।

टिप्पणी—वक्त्र—अपरवक्त्र—हम पहले भी संकेत कर आये है कि 'आख्यायिका' में भावि अर्थ बताने के लिए वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है । अनुष्टुप् की तरह वक्त्र में भी प्रति पाद आठ आठ अक्षर होते हैं और प्रत्येक पाद में आदि के चार अक्षरों को छोड़ कर यगण होता है लक्षण यह है—'नाद्यन्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभिख्यातम्' आगे का 'निधिस्तरु' वक्त्र छन्द है । दूसरा अपरवक्त्र है । अर्धसमवृत्त है । प्रथम तृतीय पादों में ग्यारह-ग्यारह और दूसरे चौथे में बारह-बारह अक्षर होते हैं [अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौजरौ] ।

हिन्दी—इसी समय-क्रम में राजलक्ष्मी का प्रथम आलाप-रूप प्रातःकाल का शंख स्वप्न फल को प्रसारित करता हुआ-जैसा बज उठा । आने वाली समृद्धि को कहते हुए जैसे धौंसे जोर-जोर से बजने लगे । डंडे से ताड़ित प्रातःकाल का नगाड़ा आनन्द से-जैसे कड़कने लगा । जगाने के लिये बन्दि-गणों की जय-जय की ऊँची वाणी सुनाई पड़ी । प्रिय घोड़ों के अश्वशाला-भवन में सोकर धीरे-धीरे उठा कोई पुरुष (अश्वपाल) मीठी हिनाहिनाहट किये हुए घोड़ों के आगे ओस-कण टपकाते मरकत-मणि की तरह हरे घास को बिखेरता हुआ वक्त्र और अपरवक्त्र पढ़ बैठा—

'निधिस्तरुविकारेण सन्मणिः स्फुरता धाम्ना ।
शुभागमो निमित्तेन स्पष्टमाख्यायते लोके ॥ ३ ॥
अरुण इव पुरःसरो रविं पवन इवातिजवो जलागमम् ।
शुभमशुभमथापि वा नृणां कथयति पूर्वनिदर्शनोदयः' ॥ ४ ॥

नरपतिस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणेनान्तःकरणेन तामवादीत्—'देवि, मुदोऽवसरे विषीदसि । समृद्धास्ते गुरुजनाशिषः पूर्णा नो मनोरथाः परिगृहीतासि कुलदेवताभिः प्रसन्नस्ते भगवानंशुमाली नचिरेणैवातिगुणवदपत्यत्रयलाभेनानन्दयिष्यति भवतीम् इति । अवतीर्य च यथाक्रियमाणाः क्रियाश्चकार । यशोमत्यपि[1] तुतोष तेन पत्युर्भाषितेन ।

टीका— निधिरिति—तरूणां=वृक्षाणां विकारेण=शाखादीनामधोमुखत्वादिविकृत्या शङ्करानुसारेण–'यत्राधोनिधिस्तत्र परिणाहोद्गताधोमुखशाखामूलादिभाजो वृक्षा भवन्ति' निधिः कोषः, स्फुरता=प्रकाशमानेन धाम्ना=प्रभया सन्मणिः=सद्रत्नं, तथा निमित्तेन=केनापि लक्षणेन शुभस्य=मङ्गलस्य आगमः=प्राप्तिः लोके=जगति स्पष्टं=स्फुटं यथा स्यात्तथा आख्यायते=कथ्यते सूच्यते इत्यर्थः । अत्र प्रस्तुतेन निमित्तेन शुभागमस्य अप्रस्तुतेन तरुविकारेण निधेः अप्रस्तुतेनैव च स्फुरता धाम्ना सन्मणेः स्पष्टाख्यानरूपैकक्रियया सम्बन्धात् प्रस्तुताप्रस्तुतयोः एकधर्माभिसम्बन्धरूपो दीपकालङ्कारः वृत्तंचवक्त्रम् ।

अरुण इति-- पुरः सरतीति पुरःसरः=अग्रगामी अरुणः=सूर्यसारथिः प्रातःकालीनः उदेष्यत्सूर्यस्य अरुणालोकः इत्यर्थः स च कविभिः सूर्यसारथित्वेन कल्प्यते, रविं=सूर्यम् इव अतिशयितः जवः=वेगो यस्य तथाभूतः पवनः वायुः झंझावात इत्यर्थः जलस्य=वृष्टिजलस्य आगमम्=आगमनम् इव पूर्व=प्रथमं यत् निदर्शनं=लक्षणं छायेत्यर्थः तस्य उदयः= आविर्भावः नृणां=मनुष्याणां शुभम्=मङ्गलम् अथापि वा अशुभम्=अमङ्गलं कथयति=सूचयतीत्यर्थः । अत्रोपमालङ्कारः । वृत्तश्च अपरवक्त्रम् ।

नरपतिः=राजा तत्=वक्त्रम् अपरवक्त्रं च श्रुत्वा=आकर्ण्य प्रीयमाणेन = हृष्यता अन्तःकरणेन=हृदयेन ताम्= महिषीम् अवादीत्=अकथयत्=मुदः=हर्षस्य अवसरे=समये विषीदसि=विषादं प्राप्नोषि । ते=त्वत्कृते गुरुजनानाम् आशिषः=आशीर्वादाः समृद्धाः=सम्पन्नाः सिद्धाः इति यावत्, नः=अस्माकं. मनोरथाः=अभिलषितानि पूर्णाः=सफलीभूताः इत्यर्थः कुलस्य=वंशस्य देवताभिः परिगृहीता=स्वीकृता अनुगृहीतेत्यर्थःअसि, ते=तव अंशुमाली=सूर्यः प्रसन्नः अस्तीति

हिन्दी—

तरु-विकार से छिपा खजाना, सूचित हमको हो जाता,
भासमान आभा से सन्मणि, निज सत्ता है जतला देता ।
भविष्य के गर्भ में पड़ा जो, होता है कल्याण हमारा,
जग में कोई निमित्त सहसा, साफ-साफ कह देता सारा ॥३॥
आगे आता हुआ अरुण ज्यों, पूर्व सूचना रवि को देता,
तूफान वेग से आता ज्यों, संदेश वृष्टि का है लाता ।
उसी तरह जीवन में शुभ-अशुभ, जो आने वाला है होता,
अपनी छाया को वह सचमुच, पहले ही हम डाल देता ॥४॥

यह सुनकर मन में प्रसन्न होता हुआ राजा रानी को बोला—"रानी, हर्ष के समय तुम क्यों दुःखी हो रही हो ? गुरुजनों द्वारा तुम्हें दी हुई आशिषें सफल हो गई हैं, हमारे मनोरथ पूर्ण हो गये हैं । कुल देवताओं ने तुम पर अनुग्रह कर दिया है, सूर्य भगवान् तुम पर प्रसन्न हो गए हैं, शीघ्र ही अति गुणवान् तीन सन्तानें आपको आनन्द प्रदान करेंगी" । (छत से) उतर कर उसने जैसे कि (नित्य) की जाती हैं (सन्ध्यावन्दनादि) क्रियायें कीं यशोमती भी पति के उस कथन से प्रसन्न हुई ।

---

१. यशोवत्यापि

ततः समतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्कालांशे देवो राज्यवर्धनः प्रथममेव सम्बभूव गर्भे । गर्भस्थितस्यैव पाण्डुतामादत्त जननी । गुणगौरवक्लान्तेव गात्रमुद्वोढुं न शशाक । कान्तिविसरामृतरसतृप्तेवाहारं प्रति पराङ्मुखी बभूव । शनैः शनैरुपचीयमानगर्भभरालसा च गुरुभिर्वारितापि वन्दनाय कथमपि सखीभिर्हस्तावलम्बेनानीयत । विश्राम्यन्ती सालभञ्जिकेव समीपगतस्तम्भभित्तिष्वलक्ष्यत । कमललोभनिलीनैरलिभिरिव वृत्तावुद्धर्तुं नाशकच्चरणौ । मृणाललोभेन च चरणनखमयूखलग्नैर्भवनहंसैरिव सञ्चार्यमाणा मन्दमन्दं बभ्राम । मणिभित्तिपातिनीषु प्रतिमास्वपि हस्तावलम्बनलोभेन प्रसारयामास करकमलम्, किमुत सखीषु । माणिक्यस्तम्भदीधितीरप्यालम्बितुमाचकाङ्क्ष, किं

टीका—शेषः । नचिरेण=शीघ्रमेव च अतिशयिताः गुणा अस्मिन् सन्तीति तथोक्तम् अपत्यानां=सन्तानानां त्रयं त्रीणि अपत्यानीत्यर्थः तस्य लाभेन=प्राप्त्या भवतीं त्वामित्यर्थः आनन्दयिष्यति=प्रहर्षयिष्यति । अवतीर्य =हर्म्यपृष्ठात् नीचैः आगत्य यथा क्रियमाणाः=अनुष्ठीयमानाः क्रियाः=स्नान-सन्ध्यावन्दनाद्याः चकार=कृतवान् । पत्युः=भर्तुः तेन भाषितेन= कथनेन (भावे क्तः) तुतोष=तुष्टा अभवत् ।

ततः समतिक्रान्ते व्यतीते कालस्य=समयस्य अंशे = भागे देव=महाराजः राज्यवर्धनः=एतन्नामकः राजकुमार इत्यर्थः प्रथमम् एव=पूर्वमेव सम्बभूव गर्भे=गर्भे स्थितिं चकारेत्यर्थः गर्भेस्थितस्य=गर्भगतस्य यस्य यशसा=कीर्त्या इवेत्युत्प्रेक्षायां जननी=माता पाण्डुतां=श्वेतिमानम् आदत्त=गृहीतवती । यस्य गुणानां=वीरत्वादीनां यद् गौरवं=भारवत्त्वं तेन क्लान्ता= श्रांता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, गात्रं=शरीरं=उद्वोढुं=धारयितुं न शशाक=प्राभवत् । यस्य कान्तिः=द्युतिः तस्य विसरः=विस्तारः एव अमृतरसः=सुधारसः तेन तृप्ता=तृप्तिं प्राप्ता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, आहारं=भोजनं प्रति पराङ्मुखी बभूव=विमुखी बभूव भोजने तस्या रुचिर्नासीदित्यर्थः । शनैः-शनैः=क्रमशः उपचीयमानः=वृद्धिं गच्छन् यः गर्भः तस्य भरेण=भारेण अलसा =आलस्य-युक्ता गुरुभिः=श्रेष्ठजनैः वारिता=निषिद्धा अपि तेषां वन्दनाय=प्रणमनाय सखीभिः=आलीभिः दत्तः हस्तस्य अवलम्बः आश्रयः यस्यै सा कथमपि=कृच्छ्रेण अनीयत=गुरुजन समीपे प्राप्यत । विश्राम्यन्ती = मार्गविश्रामं गृह्णन्ती समीपगताः ये स्तम्भा =स्थूणाः तेषां भित्तिषु=कुड्येषु सालभञ्जिका=पुत्तलिका इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अलक्ष्यत=अदृश्यत । कमलयोः चरणकमलयोः, तस्याः चरणौ कमलतुल्यौ आस्ताम् भ्रमराश्च भ्रान्त्या तौ इमे कमले इत्यमन्यन्त, यः लोभः : मकरन्दाभिलाषः तेन निलीनैः=स्थितैः अलिभि =भ्रमरैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् वृतौ=वेष्ठितौ चरणौ उद्धर्तुं=उत्थापयितुं न अशकत्=प्राभवत् स गर्भभारकारणात् चरणावुद्धर्तुं नाशकत् किन्तु कविस्तत्र भ्रमरावृत्तत्वं कारणत्वेनोत्प्रेक्ष्यते । अत्र भ्रान्तिरप्यलंकारः । मृणालेषु=कमलनालेषु, लोभेन चरणयोः नखानां मयूखेषु=किरणेषु लग्नैः=संसक्तैः भवनहंसैः= गृहहंसैः इवेत्युत्प्रेक्षायां सञ्चार्यमाणा=संचलितुं शिक्ष्यमाणा मन्दमन्दम्=अतिशयेन मन्थरं बभ्राम=भ्रमति स्म । अत्रापि चरणनखकिरणेषु हंसानां मृणालभ्रमकारणात् भ्रान्तिमान् अलङ्कारः । मणिमयाः या भित्तयः=कुड्यानि तासु पतन्ति =प्रतिफलन्तीत्यर्थः=तासु प्रतिमासु=स्वमूर्तिषु तत्र पतित-स्वप्रतिबिम्बेष्वित्यर्थः हस्तावलम्बनं=करालम्बः तस्मिन् लोभेन= अभिलाषेण करं कमलमिवेत्युपमिततत्पु० प्रसारयामास=प्रसारितवती किमुत=किं वक्तव्यं सखीषु अर्थात् सा मणिभित्ति- प्रतिबिम्बितस्वमूर्तिभ्योऽपि सहायतामपेक्षते स्म किमुत सखीभ्यः अत्र कैमुतिकन्यायेन अर्थापत्तिरलंकारः । माणिक्यस्तम्भानां मणिमयस्थूणानां दीधिती=मरीचीः अपि आलम्बितुम्=आश्रयितुम् आचकाङ्क्ष=ऐच्छत् किं पुनः वनस्य लताः=वल्ली

हिन्दी—इसके अनन्तर कुछ समय भाग के बीत जाने पर रानी यशोमती के गर्भ में पहले-पहल देव राज्यवर्धन हुआ- गर्भ में रहते ही जिसके यश से मानों जननी पाण्डुता ग्रहण कर बैठी, (गर्भस्थ बालक के) गुणों के भार से थकी हुई–जैसी शरीर को नहीं सँभाल सकती थी, (उसके) कान्ति-विस्तार–रूपी अमृत रस से तृप्त हुई–जैसी भोजन से मुँह फेर बैठती थी, शनैः शनैः बढ़ते जाते हुए गर्भ-भार से अलसाई हुई गुरुजनों द्वारा रोकी जाती हुई भी (उनकी) वन्दना के लिए सखियों द्वारा हाथ के सहारे किसी तरह ले जाई जाती थी, समीप के खम्भों की दीवारों के सहारे विश्राम लेती हुई वह खुदी हुई मूर्ति–जैसी दिखाई देती थी, (चरण–) कमलों के लोभ में बैठे हुए भ्रमरों से— जैसी घिरी हुई पैरों को नहीं उठा सकती थी, मणि की भित्तियों में पड़ी अपनी परछाइयों के प्रति भी हाथ के सहारे के लोभ में अपना करकमल फैला दिया करती थी । सखियों के प्रति तो कहना ही क्या, मणिमय खम्भों की किरणों

पुनर्भवनलताः । समादेष्टुम[illegible] गृहकार्याणि [illegible] । आस्तां नूपुरभारखेदितं चरणयुगलं मनसापि नो-दसहत सौधमारोढुम् । अङ्गान्यपि नाशक्नोद्धारयितुं दूरे भूषणानि । चिन्तयित्वापिक्रीडापर्वताधिरोहणमुत्कम्पितस्तनी तस्तान । प्रत्युत्थानेषूभयजानुशिखरविनिहितकरकिसलयापि गर्वादिव गर्भेणाधार्यत । दिवसं चाधोमुखी स्तनपृष्ठसंक्रान्तेनापत्यदर्शनौत्सुक्यादन्तःप्रविष्टेनेव मुखकमलेनैवं प्रीयमाणा ददर्श गर्भम् । उदरे तनयेन हृदये च भर्त्रा तिष्ठता द्विगुणितामिव लक्ष्मीमुवाह । सख्युत्सङ्गमुक्तशरीरा च शरीरपरिचारिकाणामङ्केषु सपत्नीनां तु शिरःसु पादौ चकार । अवतीर्णे च दशमे मासि सर्वोर्वीभृत्पक्षपाताय वज्रपरमाणुभिरिव निर्मितम्, त्रिभुवनभारधारणसमर्थं शेषफणामण्ड-

---

टीका—गृहस्य कार्याणि समादेष्टुम=आज्ञप्तुम् अपि असमर्था=अशक्ता आसीत्, कैव कथा=किमु वक्तव्यम् । आस्ताम्=दूरेतिष्ठतु नूपुरस्य=मञ्जीरस्य भारेण खेदितं=क्लमं प्रापितं चरणयोः युगलं=द्वयम् मनसा अपि सौधं=हर्म्यम् न उदसहत=सोढवती । अङ्गानि=अवयवान् न अशक्नोत्=प्राभवत् उद्धारयितुं=वोढुं दूरे भूषणानि=किमुत भूषणानि=अलङ्कारान् । क्रीडा-पर्वते विलासार्थं निर्मिते कृत्रिम-पर्वते अधिरोहणम्=आरोहणं चिन्तयित्वा मनसि कल्पयित्वा अपि उत्कम्पितौ=कम्पं प्राप्तौ स्तनौ=कुचौ यस्याः तथाभूता तस्तान=(√स्तन+लिट्) अति सीत्करोतिस्म उपरि सर्वत्र अर्थापत्तिरलङ्कारः । प्रत्युत्थानेषु =आगतगुरुजनसत्कारे स्वयम् आसनात् उत्थानेषु उभयस्य जान्वो =ऊरुसन्धिस्थलयोः शिखरयोः=अग्रस्थानयोः विनिहितौ= स्थापितौ करौ=हस्तौ किसलयौ=पल्लवौ इवेत्युपमिततत्पु० यया सा गर्वात्=अभिमानात् कारणात इवेत्युत्प्रेक्षा गर्भेण= गर्भस्थितेन अर्भकेणेत्यर्थः अधार्यत निरुद्धेत्यर्थः स्तनपृष्ठ० -स्तनयोः=कुचयोः पृष्ठे=उपरीत्यर्थः संक्रान्तेन=पतितेन प्रतिबिम्बितेनेत्यर्थः अपत्यस्य=सन्तानस्य यद् दर्शनम्=अवलोकनम् तस्मिन् औत्सुक्यात्=उत्कटाभिलाषात् अन्तः=शरीराभ्यन्तरे प्रविष्टेन=गतेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मुखं कमलमिवेत्युपमिततत्पु० तेन दिवसम्=दिनपर्यन्तं [कालात्यन्तसंयोगे द्वि०] अधोमुखी=निम्नमुखी गर्भं=गर्भस्थितम् अर्भकम् प्रीयमाणा=प्रसन्ना सती ददर्श । उदरे=गर्भे इत्यर्थः तनयेन=पुत्रेण हृदये च भर्त्रा=पत्या तिष्ठता=विद्यमानेनेत्यर्थः सा द्विगुणितां=द्वाभ्यां गुणितां=द्विगुणां लक्ष्मीं=श्रियम् उवाह=दधार । सखीनाम् =आलीनाम् उत्सङ्गेषु=क्रोडेषु मुक्तं=विसृष्टं शरीरं गात्रं यया सा शरीर-परिचारिकाणाम्=शरीरसेवाकर्तृणां दासीनाम् अङ्केषु=क्रोडेषु तु=किन्तु सपत्नीनां=सामानभर्तृकाणां शिरस्सु पादौ=चरणौ चकार कृतवती; अत्र युगपत् पादयोः शरीरपरिचारिकाणाम् अङ्केषु सपत्नीनां शिरस्सु च स्थापनाऽसम्भवात् विरोधः, सपत्नीनां शिरस्सु पादौ चकार भर्तृरादरातिशयं प्राप्य ताः अपमानितवतीत्यर्थान्तराश्रयेण तत्परिहारः; अवतीर्णे=आगते मासि=मासे सर्व०—सर्वे च ते उर्वीपतयः=राजानः तेषां पक्षः=समूहः तस्य पातः = पतनम् एव उर्वीपतयः=पर्वताः तेषां पक्षाः=पतत्राणि तेषां पातः =शातनं कर्तनमित्यर्थः तस्मै वज्रस्य=अशनेः परमाणुभिः इव निर्मितम् (राज्यवर्धनम्) अत्र परम्परितरूपकं तदुत्था-

टिप्पणी—गर्वादिव—आए हुए गुरुजनों के स्वागतार्थ वह किसी तरह उठना चाहती थी, पर गर्भ-भार के कारण उठ नहीं पाती थी किन्तु कवि–कल्पना यह है कि मानो गर्भ में आया हुआ बालक अभिमानी था और वह नहीं चाहता था कि किसी के आगे झुका जाय; अतः वह माँ को उठने से रोकदिया करता था ।

हिन्दी–का भी सहारा लेना चाहती थी वन-लताओं का तो क्या; घर के कामों को करने की बात तो क्या, (उन्हें करने के लिए) आज्ञा तक भी नहीं दे सकती थी; नूपुरों के भार से थके हुए चरण युगल को तो छोड़ो, वह मन से भी प्रासाद में चढ़ने का साहस नहीं कर पाती थी; वह अंगों को भी नहीं संभाल सकती थी भूषणों की बात तो दूर रहो; क्रीड़ा पर्वत पर चढ़ना मन में लाकर भी स्तनों में काँपती हुई वह सिसकारियां भरने लगती थी; (गुरुजनों के) स्वागत में दोनों घुटनों के अग्रभाग पर करपल्लव रखे हुए भी वह मानो गर्व के कारण गर्भ द्वारा रोक दी जाती थी, वह स्तनों के ऊपर पड़े हुए मुखकमल के प्रतिबिम्ब से पुत्र को देखने की उत्सुकता के कारण भीतर प्रविष्ट हुए मुख-कमल से-जैसे दिनभर नीचे मुह किए हुए प्रसन्न होती हुई गर्भ को देखती रहती थी; उदर में पुत्र और हृदय में पति के स्थित होते हुए वह दुगुनी-जैसी श्री को धारण करती थी, सखियों की गोद में शरीर छोड़े हुए वह शरीर–परिचारिकाओं की गोदों में और सपत्नियों के शिरों पर पैर धरती रहती थी । दशम मास आने पर रानी ने देव राज्यवर्धन को जन्म दिया जो ऐसा लगता था मानो सभी उर्वीपतियों (राजाओं) के पक्ष (समूह) के पात (पतन) के रूप में सभी उर्वीपतियों (पर्वतों) केपक्षों (पंखो) के पात (छेदन) के लिए वज्र के परमाणुओं से-जैसे निर्मित हो, तीनों भुवनों का भार

लोपकरणैरिव कल्पितम्, सकलभूभृत्[illegible] राज्यवर्धनम्। यस्मिञ्जाते जातप्रमोदा नृत्यमय्य इवाजायन्त प्रजाः। पूरितासंख्यशङ्खशब्दमुखरं प्रहतपटहशतपटुरवं गम्भीरभेरीनिनादनिर्भरभरितभुवनं प्रमोदोन्मत्तमर्त्यलोकमनोहरं मासमेकं दिवसमिव महोत्सवमकरोन्नरपतिः।

अथान्यस्मिन्नतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्काले कन्दलिनि कुड्मलितकदम्बतरौ रू[1]ढतोक्मतृणस्तम्बे स्तम्भिततामरसे विकसितचातकचेतसि मूकमानसौकसि नभसि मा[2]सि देव्या देवक्या इव चक्रपाणिर्यशोमत्या हृदये गर्भे च सममेव सम्द-

---

टीका—पिताचोत्प्रेक्षा, राज्यवर्धनस्य इन्द्रत्वं च गम्यम्, त्रिभुवन०—त्रिभुवनस्य=त्रिलोकस्य भारस्य धारणे=वहने अथ च पालने समर्थं शेषस्य=शेषनागस्य फणानां मण्डलस्य=वृत्तस्य उपकरणैः=साधनैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कल्पितं=निर्मितं; सकल० सकलाः=सर्वे च ते भूभृतः=राजानः एव भूभृतः=पर्वताः तेषाम् उत्कम्पं=प्रकम्पं करोतीति तथोक्तम् दिग्गजानां= दिङ्नागानाम् अवयवैः=अङ्गैः इवेत्युत्प्रेक्षा सा च रूपकोत्था विहितं=कृतं देवं राज्यवर्धनं नाम कुमारं यशोमती असूत= जनितवती। यस्मिन् कुमारे जाते=उत्पन्ने जातः प्रमोदः=प्रहर्षः यासां ताः प्रजाः=लोकाः नृत्यानि एव नृत्यमय्यः=नृत्यरूपा आनन्दे नृत्यं कुर्वाणा इत्यर्थः अजायन्त=जाताः। पूरित०—पूरिताः=व्माताः असंख्याः=अनेके ये शङ्खाः तेषां शब्दैः= ध्वनिभिः मुखरं=वाचालितम् प्रहताः=वादिताः ये पटहाः=दुन्दुभयः तेषां यानि शतानि तैः पटुः=तीव्रः रवः=शब्दः यस्मिन् तम्, गम्भीर० गम्भीरः=गम्भीरः यः भेरीणां=डिडिमानां निनादः=शब्दः तेन निर्भरं=पूर्णं यथा स्यात्तथा भरितं= पूरितं भुवनं=जगत् यस्मिन् तम्, प्रमोदेन=प्रहर्षेण उन्मत्तः=उल्लसितः यः मर्त्यलोकः तेन मनोहरं=रमणीयम् उत्सवम्= आनन्दं= एकं मासम्=मासपर्यन्तम् (कालात्यन्त संयोगे द्वि०) दिवसम्=एकं दिनम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अकरोत्=कृतवान् नरपतिः=राजाप्रभाकरवर्धनः।

अथ अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले अतिक्रान्ते=वीते कन्दलिन्यादिसप्तम्यन्ताः 'नभसि' इत्यस्य विशेषणानि, कन्दलः= कदलीसदृशपत्रवान् पुष्पवृक्षविशेषः अस्मिन्नस्तीति तथोक्ते, कुड्मलितः=कुड्मलानि सञ्जातानि अस्य (इतच्) कलिकायुक्तकदम्बस्य तरुः यस्मिन् तस्मिन्, रूढाः=बद्धमूलाः तोक्मस्य=हरितयवस्य ['शितशूक-यवौ समौ ॥ तोक्मस्तु तत्र हरिते' इत्यमरः] तृणानां=दलानां स्तम्बाः = गुच्छाः यस्मिन् तस्मिन्, वस्तुतः हरितयवः श्रावणे मासे न, अपितु वसन्ततौ जायते इत्यत्र प्रकृति-विरुद्धत्वं दोषः अथवा रूढा तोक्मानां = पल्लवाद्यङ्कुराणां ('तोक्मः पल्लवाद्यङ्कुरः' इति श्रीधरस्वामी) तृणानाञ्चेत्यर्थे न दोषः, अथवा तोक्माः = हरिताः इत्यर्थः (तोक्मं कर्णमले पुंसि हरिते च हरिद्-यवे' इति मेदिनी], स्तम्भितानि = दृढानि तामरसानि = रक्तकमलानि यस्मिन् तस्मिन्, विकसितं प्रफुल्लितं प्रमुदि-तमित्यर्थः चातकानां चेतः = मनः यस्मिन्, मूकाः = तूष्णीम्भूताः मानसौका = मानसे ओकः = गृहं येषां ते हंसा इत्यर्थः यस्मिन् श्रावणे हि हंसा मानसे गच्छन्ति अतो लोके तेषां रवो न श्रूयते, एवंभूते नभसि = श्रावणेमासे देव्या देवक्याः = वसुदेवपत्न्याः इवेत्युपमायाम् चक्रपाणिः = चक्रं पाणौ यस्य सः विष्णुः कृष्ण इति यावत् यशोमत्या हृदये =

हिन्दी—धारण करने में समर्थ जो ऐसा प्रतीत होता था मानो शेष-नाग के फण-मण्डल के उपकरणों से बना हुआ हो, सकल भूभृत् (राजा) रूपी भूभृतों (पर्वतों) में कँपकँपी उत्पन्न कर देने वाला जो ऐसा लगता था मानो दिग्गजों के अंगों से उसका निर्माण हुआ हो, जिसके जन्म लेते हुए प्रसन्न हुई सारी प्रजा नृत्यमय-जैसी हो बैठी। राजा ने महान् उत्सव मनाया—जो बजते हुए शंखों के शब्द से मुखरित रहता था, जिसमें दण्डों से पीटे जाते हुए सैकड़ों नगाड़ों का तीव्र शब्द रहता था, जो ढोलों की गहरी ध्वनि से पूरी तरह से विश्व को पूरित किए रहता था और जो लगातार एक मास का होता हुआ भी ऐसा लगा मानो एक ही दिन रहा हो :

इसके बाद और कुछ समय बीत जाने पर श्रावण के महीने, जब कन्दल-पुष्प फूल जाता है, कदम्ब वृक्षमें कलियाँ निकल आती हैं हरे तृणों के गुच्छे खूब जड़ पकड़ लेते हैं, लाल कमल दृढ़ हो जाते हैं चातकों का चित्त प्रफुल्लित हो उठता है और हंस चुप हो जाते हैं, देवी देवकी के हृदय में हर्ष गर्भ में चक्रपाणि (कृष्ण) की तरह यशोमती के हृदय में भी हर्ष (प्रसन्नता) और गर्भ से चक्रपाणि (चक्र का चिह्न हाथ में रखे हुए) हर्ष (राजा) साथ-साथ ही आ

---

१. क्वचित् 'रूढ' इति नास्ति, २. क्वचित् 'मासि' इति नास्ति,

परिगृहीता पयोऽऽपाण्डुतामङ्गयष्टिर्जगाम । गर्भारम्भेण श्यामायमानचारुचूचुकचूलिकौ चक्रवर्तिनः पातुं मुद्रिताविव[1] पयोधरकलशौ बभार[2] । स्तन्यार्थमाननिहिता दुग्धनदीव दीर्घस्निग्धधवला माधुर्यमधत्त दृष्टिः । सकलमङ्गलगणाधिष्ठितगात्रगरिम्णेव गतिरमन्दायत । मन्दं मन्दं सञ्चरन्त्या निर्मलमणिकुट्टिमनिमग्नप्रतिबिम्बनिभेन गृहीतपादपल्लवा पूर्वसेवामिवारेभे पृथिव्यस्याः । दिवसमधिशयानायाः शयनीयपाश्रयपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिमा विमलकपोलोदरगता प्रसवसमयं प्रतिपालयन्ती लक्ष्मीरिवालक्ष्यत । क्षपासु सौधशिखराग्र-

---

टीका—मनसि गर्भे च समम् एव = युगपत् एव चक्रं = चक्रचिह्नं चक्रवर्तित्वमाख्याति, यशोमत्या हृदये हर्षः (आनन्दः) गर्भे चापि हर्षः (हर्षवर्धनः) इति द्वयोः कार्यकारणयोः सहभावात् अतिशयोक्तिरलङ्कारः स च श्लिष्टः सर्वप्रजानां पुण्यैः = सुकृतैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् परिगृहीता = आश्रिता आपाण्डुताम् = ईषत्पाण्डुताम् अङ्गं = शरीरं यष्टिरिवेत्युपमितततपु० जगाम = प्राप, पुण्यादीनां वर्णनं श्वेतत्वेन जायते, प्रजापुण्याश्रितत्वादिव सा किर्मापि श्वेतीबभूव, अर्थात् प्रजानां पुण्यैरेव=चक्रवर्ती हर्षः जन्म लेभे । श्यामायमाने = कृष्णवर्णीभवती चार्वोः = सुन्दरयोः चूचुकयोः = कुचाग्रयोः चूलिके = अग्रभागौ ययोः, अथ च श्यामायमाना चारु चूचुकयोः सदृशी चूलिका ययोः तौ चक्रवर्तिनः = सम्राजः हर्षस्येत्यर्थः पातुं पानाय मुद्रितौ = मुद्राङ्कितौ इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, पयोधरौ कलशौ इवेत्युपमिततत्पु०, अथ च पयसः = जलस्य धरौ = धारकौ कलशौ = घटौ, बभार = अधारयत् । स्तन्या० स्तन्यार्थं = स्तनयोः दुग्धार्थम् आनने = मुखे निहिता = स्थापिता दुग्धस्य नदी = धारा इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, दीर्घा = आयता स्निग्धा = श्लक्ष्णा धवला श्वेता च दृष्टिः उक्तविशेषणं दुग्धनद्यापि सम्बध्यते, माधुर्यं = मधुरभावम् नदीपक्षे मधुररसवत्त्वम् अधत्त = धृतवती धवलदृष्टेः दुग्धधारायाः साम्यं भवभूतिरपि दर्शयति —'स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः' (उत्तर राम० ३/२३) : सकल०—सकलानि = समग्राणि यानि मङ्गलानि = कल्याणानि तेषां गणेन = समूहेन अधिष्ठितं = कृताधिष्ठानम् आश्रितमित्यर्थः यद् गात्रं = शरीरं तस्य गरिम्णा = गौरवेण भारेणेति यावत् तस्याः गतिः = गमनव्यापारः अमन्दायत = मन्दीभूता । सा तु गर्भभारेण गतौ मन्दा जाता किन्तु कविकल्पनानुसारेण गर्भस्थहर्षवर्धनगत—माङ्गलिक-शङ्खचक्रादि-चक्रवर्तित्व-चिह्नसमूहभारेण सा मन्दगतिरभूत् । मन्दम्-सञ्चरन्त्याः=गच्छन्त्याः निर्मलेषु = स्वच्छेषु मणि-कुट्टिमेषु = मणिमयबद्धभूमिषु निमग्नः = पतितः यः प्रतिबिम्बः = प्रतिच्छाया तस्य निभेन = व्याजेन गृहीतौ = धृतौ पादौ = चरणौ पल्लवाविवेत्युपमिततत्पु० यया सा पृथिवी अस्याः यशोमत्याः पूर्व-सेवां = पूर्वपरिचर्याम् इव आरेभे = आरब्धवती अर्थात् अस्याम् उत्पन्नः चक्रवर्ती हर्षवर्धनः मम भर्ता [पृथिवीपतिः] भविष्यतीति विचिन्त्य पृथिवी तस्य मातुः = स्वश्वश्र्वाः पूर्वमेव सेवां कर्तुमारब्धवतीव, अत्र सापह्नवोत्प्रेक्षा सा चोपमया

टिप्पणी—श्यामाय०—पयोधरों (स्तनों) पर पयोधर (जल के रखने के) कलशों के आरोप से यह अभिप्राय है कि चक्रवर्ती हर्षवर्धन को पीने के लिए जो पानी लाया जाताहै, वह बिलकुल शुद्ध और सुरक्षित है । राजाओं के जल-कलशों में किसी प्रकार विष न मिला दिया जाय, इसलिए उनपर काली लाख की मोहर लगा दी जाती है, चूचुकाग्र मानो अंकित मुद्रा का उपरितन भाग है ।

हिन्दी—गए । प्रजा के पुण्यों से अपनाई हुई-जैसी उसकी अंगयष्टि में फिर धीरे-धीरे पीलापन सा आ गया । गर्भ होने से काले पड़ रहे सुन्दर चूचुक के अग्रभागों वाले पयोधर-कलशों (कलश-जैसे स्तनों) को धारण किए ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वे चक्रवर्ती (हर्ष) के लिए पीने को सुन्दर चूचुकों के समान काले अग्रभाग वाले, मुद्रांकित हुए पयोधर-कलशों (जल वाले घड़ों) को रख रही हो । स्तनों में दूध के लिये मुख में निहित दीर्घ स्निग्ध धवल दुग्ध-नदी-जैसी उसकी दीर्घ स्निग्ध धवल दृष्टि ने माधुर्य धारण कर लिया । सभी मंगलसमूह को रखे हुए शरीर के भार से-जैसे उसकी गति धीमी पड़ गई । मन्द-मन्द चलते हुए उसके स्वच्छ मणियों के फर्श में पड़े प्रतिबिम्ब के बहाने मानो उसका चरण-किसलय ग्रहण किये पृथिवी ने पहले से ही उसकी सेवा आरम्भ कर दी । सारे दिन पलंग पर लेटे हुए उसके निर्मल कपोलों के भीतर पड़ी हुई चँदवे की चित्रकारी में बनी पुत्तलिका की प्रतिछाया प्रसव-समय की प्रतीक्षा करती हुई लक्ष्मी-जैसी दिखाई पड़ती थी । रात-रात को महल की ऊपरली मंजिल

---

१. 'द्रिताविव जतुना' २. 'बभारोरुस्थलम्'

गताया गर्भोन्माथमुक्तांशुके स्तनमण्डले संक्रान्तमुडुपतिमण्डलमुत्तुङ्गगर्भस्योपरि श्वेतमातपत्रमिव केनापि धार्यमाणमदृश्यत सुप्ताया वासभवने चित्रभित्तिचामरग्राहिण्योऽपि चामराणि चालयांचक्रुः । स्वप्नेषु करविधृतकमलिनीपलाशपुटसलिलैश्चतुर्भिरपि दिक्करिभिरक्रियताभिषेकः । प्रतिबुध्यमानायाश्च चन्द्रशालिकासालभञ्जिकापरिजनोऽपि जयशब्दमसकृदजनयत् । परिजनाह्वानेष्वविशेत्यशरीरा वाचो निश्चेरुः । क्रीडायामपि नासहताज्ञाभङ्गम् । अपि च चतुर्णामपि महार्णवानामेकीकृतेनाम्भसा स्नातुं वाञ्छा बभूव । वेलावनलतागृहोदरपुलिनपरिसरेषु पर्यटितुं हृदयमभिललाष । आस्यपिके-

---

टीका—संसृष्टा । दिवस०—दिवसम् = समस्तदिनपर्यन्तम् [कालात्यन्त संयोगे द्वि०] शयनीयम् = शय्याम् पर्यंकमित्यर्थः अधिशयानायाः अधितिष्ठन्त्याः अपाश्रयः = वितानं तस्मिन् यः पत्रभङ्गः = पत्राद्यालेखनं तत्र या पुत्रिका = पुत्तलिका तस्याः प्रतिमा = प्रतिबिम्बः विमलयोः = स्वच्छयोः यशोमत्याः कपोलयोः उदरे = मध्ये गता = पतिता सती प्रसवस्य = पुत्रजननस्य समयं प्रतिपालयन्ती = प्रतीक्षमाणा लक्ष्मीः इत्युत्प्रेक्षायाम् अलक्ष्यत = अदृश्यत । क्षपासु०= क्षपासु = रात्रिषु सौधस्य = सुधाधवलस्य हर्म्यस्य शिखरस्य=शृङ्गस्य अग्रे छद्यामित्यर्थः गतायाः = स्थितायाः तस्याः गर्भस्य उन्माथेन = क्लेशनेन गर्भभारवहनपीडयेत्यर्थः मुक्तं = व्यक्तम् अंशुकं = वस्त्रं यस्मात् तथाभूते स्तनमण्डले- कुचमण्डले संक्रान्तं = पतितं प्रतिबिम्बितमित्यर्थः यत् उडुपतेः = चन्द्रमसः मण्डलं = बिम्बम् गर्भस्य:० = गर्भस्यार्भकोपरि श्वेतम् आतपत्रं = छत्रम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, केनापि = अदृश्यव्यक्त्या धार्यमाणम् = उत्थाप्यमानम् अदृश्यत = दृश्यतेस्म, गर्भस्यबालो हि चक्रवर्ती अतः चक्रवर्तिचिह्नभूतं छत्रमावश्यकमेवेति भावः । सुप्तायाः— वासभवने = निवासगृहे सुप्तायाः = शयितायाः तस्याः चित्रयुक्ताः भित्तय इति चित्रभित्तयः (मध्यमपदलोपीस०) चित्रितभित्तयः इति यावत् तासु चित्ररूपा चामरग्राहिण्यः चामरसञ्चालिन्यः ताः अपि चामराणि चालयाञ्चक्रुः = चालितवत्यः; चामरमपि चक्रवर्त्तिचिह्नम् । अत्रार्थापत्तिरलङ्कारः । स्वप्नेषुः—स्वप्नेषु = स्वप्नदर्शनेषु करे = शुण्डायां धृतं = गृहीतं यत् कमलिन्याः = पद्मिन्याः पलाशानां = पत्राणां पुटं = पुटकं 'दोना इति भाषायाम् प्रसिद्धम् तस्मिन् यानि सलिलानि = जलानि तैः चतुर्भिः चतुःसंख्यकैः अपि दिक्करिभिः = दिग्गजैः अभिषेकः = सेचनम् अक्रियत = कृतः । एतेन शुभस्वप्नेन तस्याः भावि-पुत्रस्य चक्रवर्तित्वं द्योत्यते । प्रति०—प्रतिबुद्ध्यमानायाः = जाग्रत्याः तस्याः चन्द्रशालिकायां = हर्म्यस्य शिरोगृहे (-चन्द्रशाला शिरोगृहम् इति क्षीरस्वामी) याः सालभञ्जिकाः = काष्ठादिनिर्मिताः पुत्तलिका ता एव परिजनः = भृत्यवर्गः सोऽपि असकृत् = मुहुर्मुहुः जयशब्दं = 'जय-जय' इति ध्वनिम् अजनयत् = अकरोत् । परिजना०— परिजनस्य = भृत्यवर्गस्य आह्वानेषु = आकराणासु 'आदिश' = 'आज्ञापय' इति क्रीडायाम् = खेलायाम् अपि आज्ञायाः = आदेशस्य भङ्गं = लङ्घनमित्यर्थः न असहत = सहते स्म । उपरि सर्वत्र अर्थापत्तिरलङ्कारः । अत्र आज्ञाभङ्गासहत्वे उपरिष्ठात् वर्ण्यमानेषु चतुःसमुद्राम्भःस्नानवाञ्छादिषु च शङ्करः प्राह-'गर्भस्थजनचित्तवृत्त्यनुसारेण गर्भिण्या अपि चित्तवृत्तिर्भवति'। एतेन भाविचक्रवर्तिहर्षस्य मनोवृत्तिरनुमीयते । अपि च = किञ्च चतुर्णाम् अपि महार्णवानां = महासागराणाम् एकीकृतेन = सम्मिलितेनेत्यर्थः अम्भसा = जलेन स्नातुं = स्नानं कर्तुम् वाञ्छा = इच्छा बभूव = अभवत् । वेला०—वेलासु = सागर-तटेषु यानि वनलतानां = वनवल्लीनां गृहाणि निकुञ्जा इत्यर्थः तेषाम् उदरेषु = आभ्यन्तरभागेषु यानि पुलिनानि = सैकतप्रदेशा ('तोयोत्थितं तत् पुलिनम्' इत्यमरः,) तेषां परिसरेषु = समीप-वर्तिभूमिषु पर्यटितुं = पर्यटनं कर्तुम् हृदयम् अभिललाष = ऐच्छत् । एतेन हर्षस्य समुद्रपर्यन्त-शासकत्वं

हिन्दी—की छत पर गई हुई उसके गर्भ (भार) के क्लेश के कारण वस्त्र-हटाये स्तन मण्डल पर प्रतिबिम्ब रूप में पड़ा हुआ चन्द्रबिम्ब किसी के द्वारा धारण किया जा रहा श्वेत छत्र जैसा दिखाई देता था । निवास-गृह में सोये हुए उसके ऊपर चित्रित भित्तियों की चामर-ग्राहिणियाँ तक भी चामर डुलाती थीं । स्वप्नों में सूंड में पकड़े हुए कमलिनी के पत्तों के दोनों के जलों से चारों दिग्गजों द्वारा भी उसका अभिषेक किया जाता था । जागते हुए उसका चौबारे की पुत्तलिकारूपी भृत्यजन बार-बार जयजय कार किया करते थे । परिजनों को पुकारते समय 'आज्ञा कीजिये' इस तरह की शरीर-रहित वाणियाँ निकल पड़ती थीं । वह खिलवाड़ में भी अपनी आज्ञा का उल्लंघन सहन नहीं करती थी । अपिच, चारों ही समुद्रों के एकत्रित किये हुए जल से स्नान करने की उसकी इच्छा होती थी । उसका हृदय समुद्र-तटों की वन-लताओं के निकुञ्जों के भीतर रेतीले प्रदेश की पार्श्व-भूमियों में भ्रमण करना

ष्वपि कार्येषु सविभ्रमं भ्रूलता चचाल । मणिदर्पणेष्वपि सन्निहितेष्वपि कोशादुत्खाते खड्गपट्टे वीक्षितुं व्यसनमासीत् । उत्सारितवीणाः स्त्रीजनविरुद्धा धनुर्ध्वनयः श्रुतावसुखायन्त । पञ्जरकेसरिषु चक्षुररमत । गुरुप्रणामेष्वपि स्तम्भितमिव शिरः कथमपि ननाम । सख्यश्चास्याः प्रमोदविस्फारितैर्लोचनपुटैरासन्नप्रसवमहोत्सवधियेव धवलयन्त्यो भवनं विकच-कुमुदकमलकुवलयपलाशवृष्टिमयं रक्षावलिविधिमिवानवरतं विदधाना दिक्षु क्षणमपि न मुमुचुः पार्श्वम् । आत्मोचित-स्थाननिषण्णाश्च महान्तो विविधौषधिधरा भिषजो भूधरा इव भुवो धृतिं चक्रुः । पयोनिधीनां हृदयानीव लक्ष्म्या सहा-गतानि ग्रीवासूत्रग्रन्थिषु प्रशस्तरत्नान्यबध्यन्त ।

टीका—व्यज्यते । आत्ययिकेषु = अत्यय. = आपत् संकटो वा फलम् एषाम् अस्तीति ['अत्यय+ठञ्' प्रयोजनम्' पा० ५।१। १०९ 'प्रयोजनं फलं कारणं च' भट्टोजी०] आत्ययिकानि संकटफलकानीत्यर्थ. ['अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेऽप्ययापदि' इत्यमर.] कार्याणि तेषु 'अवश्यकर्तव्येषु' इति शङ्करः, सविभ्रमं = सविलासं तस्याः चक्षुः चचाल-चेष्टते स्म । अर्थात् आपत्स्थितिष्वपि सा स्थिरचित्ता शान्ता च बभूव, मनागपि न विचचाल । ईदृक् स्वभावः हर्षस्यासीत् । सन्निहितेषु = समीपस्थितेषु अपि मणिदर्पणेषु = मणिमुकुरेषु अपि तस्याः उत्खाते = कोषात् निष्का-सिते खड्गस्य पट्टे = फलके मुखं वीक्षितुम् = द्रष्टुम् व्यसनम् = आसक्तिः अनुरागः इत्यर्थः आसीत् । उत्सारिताः = दूरीकृता वीणा यैः ते स्त्रीजनस्य = महिलानां विरुद्धाः = विपरीताः धनुष. = चापस्य ध्वन्यः = शब्दाः श्रुतौ = कर्णे असुखायन्त = सुखाः सुखयुक्ता इत्यर्थः भवन्तीति सुखायन्ते ततो लङ् [सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते सि० कौ०] एतेन हर्षस्य धनुष्टङ्कारप्रियत्वं द्योत्यते । पञ्जर-बद्धाः केसरिणः = सिंहाः इति पञ्जरकेसरिणः [मध्यमपदलोपी स०] तेषु तस्या; चक्षुः = अरमत = असुखायतेत्यर्थः । गुरुषु = गुरुजनं प्रति प्रणामेषु = नामनेषु अपि स्तम्भितं = निश्चलम् इव शिरः कथमपि = काठिन्येन ननाम = नतमभवत् चक्रवर्तिनः नमनस्य स्वभावविरुद्धत्वात । सख्य०— सख्यः अस्याः क्षणमपि न मुमुचुः पार्श्वम् इत्यन्वयः, सख्यः = आलयः प्रमोदेन = हर्षेण विस्फारितैः = विस्तारितैः लोचनपुटैः=नयनपुटैः आसन्नः = सन्निहितः प्रसवस्य = जननस्य च यः महोत्सवः = महानन्दः तस्य धिया = बुध्या इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भवनं = गृहं धवलयन्त्यः = धवलीकुर्वन्त्यः, जन्ममहोत्सवे हि गृहाणि सुधालेपेन धवलीक्रियन्ते तासा श्वेतदृष्टिः भवनस्य प्रक्षालने धवलीकरणे च सुधाकार्यं करोतिस्मेति भाव', विकच०—विकचानि = विकसितानि कुमुदानि = श्वेतरात्रिकमलानि कमलानि = पद्मानि च कुवलयानि = नीलकमलानि च तेषा पलाशानां = दलानां वृष्टिः एव वृष्टिमयं रक्षायै रक्षणार्थम् = गर्भस्येति शेषः च बलिविधिः = पूजाविधिः तम् अनवरतं = निरन्तरम् यथा स्यात्तथा विदधाना = कुर्वत्यः, अर्थात् तासां श्वेतरक्तनीलरूपा दृष्टयः श्वेतरक्तनीलकमलरूपाः भवन्त्यः गर्भरक्षार्थपूजाविधेः उपकरणतां गच्छन्तिस्म, पूजायां पुष्पाणाम् अपरिहार्यत्वात्. दिक्षु = दिशासु क्षणम् अपि यशोमत्याः पार्श्वं = सामीप्यं न मुमुचुः = तत्यजुः । आत्मो०—आत्मनः = स्वस्य यानि उचितानि = योग्यानि स्थानानि तेषु निषण्णाः = स्थिताः महान्त. = उत्कृष्टाः अथ च विशालाः विविधाः = नाना याः ओषधयः औषधानि तासां धरन्तीति धाराः = धारकाः

हिन्दी—चाहता था । आपात-कार्यों में भी उसकी भ्रूलता विलास-पूर्वक चलती थी । मणिमय दर्पणों के समीप में रहते हुए भी म्यान से बाहर निकाले हुए खड्ग-फलक पर अपना मुख देखने का उसका व्यसन हो पड़ा था । वीणा (-शब्द) को हटाये हुए धनुष-टंकार उसके कानों को सुखकर होती थीं । पिंजरों में बँधे सिंहों पर उसकी चक्षु रमती थी । गुरु-जनों को प्रणाम करते समय उसका अकड़ा हुआ-जैसा शिर कठिनाई से झुका करता था । सहेलियाँ प्रसन्नता में फाड़े हुए नयन पुटों द्वारा निकटवर्ती प्रसवमहोत्सव के विचार से भवन को श्वेत बनाती हुई कुमुदों, कमलों और कुवलयों की पंखुड़ियों की वृष्टि-रूप पूजा-विधि को दिशाओं में लगातार करती जा रही-जैसी क्षणभर के लिए भी उसका सामीप्य नहीं छोड़ती थीं । अपने-अपने उचित स्थानों में बैठे और नाना ओषधियों को रखे हुए बड़े-बड़े वैद्य उसी तरह (रानी की) धृति (सँभाल) किए हुए रहते थे जैसे नाना औषधि रखे हुए बड़े-बड़े पर्वत पृथिवी की धृति (धारण-स्थिरता) किये रहते हैं । समुद्रों के हृदय-जैसे लक्ष्मी के साथ आये हुए उत्तम रत्न (रानी के) कंठ-सूत्र की गांठों में बांध दिये गए थे ।

ततश्च प्राप्ते ज्येष्ठामूलीये मासि बहुलासु बहुलपक्षद्वादश्यां व्यतीते प्रदोषसमये समारुरुक्षति क्षपायौवने सहसैवा-न्तःपुरे समुदपादि कोलाहलः स्त्रीजनस्य । निर्गत्य च ससंभ्रमं यशोमत्याः स्वयमेव हृदयनिर्विशेषा धात्र्याः सुता सुपा[1]त्रेति नाम्ना राज्ञः पादयोर्निपत्य 'देव, दिष्ट्या वर्धसे द्वितीयसुतजन्मना' इति व्याहरन्ती पूर्णपात्रं जहार ।

अस्मिन्नेव च काले राज्ञः परमसंमतःशतशः संवादितातीन्द्रियादेशो दर्शितप्रभावः सङ्कलि[2]ती ज्योतिषि सर्वासां ग्रह-संहितानां पारदृश्वा सकलगणकमध्ये महितो हितश्च त्रिकालज्ञानभाग्भोजकस्तारको नाम गणकः समुपसृत्य विज्ञापितवान्–'देव'श्रूय[3]ताम् । मान्धाता किलैवंविधे व्यतोपातादिसर्वदोषाभिषङ्गरहितेऽहनि सर्वेषूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेष्वीदृशि लग्ने

टीका—भिषजः वैद्याः भूधराः = पर्वताः इवेत्युपमायाम् भुवः = पृथिव्याः यशोमत्याः धृति = धैर्यम् अथ च धारणम् चक्रुः=अकुर्वन् । श्रूयते पुरा पृथिवी अस्थिरा आसीत् पर्वतैश्च सा पश्चात् स्थिरतां नीतेति पयो०–पयोनिधीनां=समुद्राणां हृदयानि = अन्तराणि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लक्ष्म्या = समुद्रादुद्गतया श्रिया सह आगतानि ग्रीवासूत्रस्य ग्रन्थिषु = बन्धेषु प्रशस्तानि = उत्तमानि रत्नानि = मणयः अबध्यन्त = बद्धानि । समुद्रमन्थनसमये सागर-गर्भात् यानि चतुर्दशरत्नानि निर्गतानि तेषु लक्ष्मीरप्येकतमं रत्नमासीत्, लक्ष्मीः यशोमत्या वर्तते लक्ष्म्यासहागतानि अन्यप्रशस्तान्यपि रत्नान्यपि गतसूत्रे बद्धानीवेति भावः ।

ततः प्राप्ते = आगते ज्येष्ठामूलीये = ज्येष्ठा च मूलं चेति ज्येष्ठा-मूले = नक्षत्रविशेषौ तद्युक्ते इति [ज्येष्ठ-मूल + छः (ईय) 'द्वन्द्वाच्छः' पा० ४।२।६ 'नक्षत्रद्वन्द्वायुक्ते छः स्यात्] मासि मासे, बहुलासु = कृतिकासु कृतिका-भिधेयनक्षत्रे इत्यर्थः षट्तारात्मकत्वात् कृत्तिकाशब्दो बहुवचनान्तः बहुल-पक्षस्य द्वादश्यां तिथौ प्रदोषसमयस्य = सायं-कालस्य = व्यतीते = वीते क्षपायाः = रात्र्याः यौवने = तारुण्ये समारुरुक्षति =समारोढुमिच्छति सति अर्थात् रात्र्यारम्भे सहसा एव अन्तः पुरे = अवरोधे स्त्रीजनस्य = स्त्रीणां कोलाहलः = समुदपादि = समुत्पन्नः निर्गत्य = निःसृत्य ससंभ्रमम् = सत्वरम् अन्तःपुरात् इति शेषः हृदय-निर्विशेषा हृदयतुल्या धात्र्याः = उपमातुः सुता = पुत्री सुयात्रा इति नाम्ना = अभिधेयेन, निपत्य = पतित्वा प्रणम्येत्यर्थः दिष्ट्या वर्धसे = सभाजयामि द्वितीयस्य सुतस्य = पुत्रस्य जन्मना = उत्पत्त्या इति व्याहरन्ती = कथयन्ती पूर्णपात्रं = पारितोषिकं जहार = हृतवती ।

परमसंमतः=भृशं प्रियः संवादिताः=प्रत्यक्षीकृताः अमिथ्याभूता इति यावत् अतीन्द्रियाः=इन्द्रियमतीताः भविष्यका-लीना इत्यर्थः आदेशाः=निर्देशाः कथनानीति यावत् यस्य तथाभूतः, सत्यभविष्यवक्ता दर्शितः=प्रकटीकृतः प्रभावः= सामर्थ्यं विद्याया इति शेषः येन सः, सङ्कलिती=सङ्कलितम्=गणितम् अनेनेति (सङ्कलित + इन् कर्तरि) सङ्कलिती ज्योतिषि=ज्योतिःशास्त्रे अर्थात् ज्योतिःशास्त्रे कृतग्रहनक्षत्रादिसङ्कलनः ज्योतिषीति यावत् ['सप्तमी विधाने क्तस्येन्-

टिप्पणी—पूर्णपात्र—पूर्णपात्र शब्द का मुख्य अर्थ यह है कि वह एक पात्र-जैसे टोकरा थैला अथवा सन्दूक होता है । जिसमें वस्त्र अलंकार आदि वस्तुयें भरी होती हैं जो किसी खुशी में नौकरों बन्धु बान्धवों को दिया जाता है, बाँटा जाता है अथवा उनके द्वारा छीनकर लिया जाता है । अब इसका व्यापक अर्थ किसी शुभ समाचार लाने वाले व्यक्ति को दिया जाने वाला उपहार हो गया है । वह बलात् भी लिया जाता है यथा—'हर्षादुत्सवकाले यद् अलंकारांशुकं । आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं स्यात् पूर्णकञ्च तत्' ।

हिन्दी—तदनन्तर जेठ का महीना आने पर कृत्तिका नक्षत्र में कृष्णपक्ष की द्वादशी को सन्ध्या समय को बीतते और रात्रि के यौवनारूढ़ होना चाहते सहसा ही अन्तः पुर में स्त्रियों का कोलाहल हो उठा । शीघ्र ही निकल कर यशोमती की हृदयजैसी धाय की सुयात्रा नाम की पुत्री राजा के चरणों में गिरकर–'महाराज' बधाई हो, द्वितीय पुत्र ने जन्म लिया है । यह कहती हुई पूर्णपात्र ले बैठी ।

इसी समय राजा का बड़ा माना हुआ सैकड़ों भविष्यवाणियों को प्रत्यक्षकराए (अपना) प्रभाव दिखाये, ज्योतिषशास्त्र का संकलन किये, सभी ग्रह-संहिताग्रन्थों का पारदर्शी सभी ज्योतिषियों के मध्य आदर प्राप्त किये, (राजा का) हितकारक, त्रिकालज्ञ भोजक जाति का तारक नाम का ज्योतिषी समीप आकर निवेदन करने लगा–'महाराज सुनिए, कहा जाता है कि मान्धाता ने व्यतीपात आदि सभी दोषों के सम्पर्क से रहित ऐसे ही दिन, सभी ग्रहों के ऐसे ही उच्च स्थानों में रहते हुए और ऐसे ही लग्न में जन्म लिया था । उसके बाद

१. 'सुपात्रेति' २. सङ्कलितो' ३. 'श्रूयते'

भेजे जन्म। अर्वाक्ततोऽस्मिन्नन्तराले [illegible] चक्रवर्तिजनके जगति [illegible] कश्चिदपरः। सप्तानां चक्रवर्तिनामग्रणीश्चक्रवर्तिचिह्नानां महारत्नानां च भाजनं सप्तानां सागराणां पालयिता सप्ततन्तूनां सर्वेषां प्रवर्तयिता सप्तसप्तिसमः सुतोऽयं देवस्य जातः' इति।

अत्रान्तरे स्वयमेवानाध्माता अपि तारमधुरं शङ्खा विरेसुः। अताडितोऽपि क्षुभितजलनिधिजलध्वनिधीरं जुगुञ्जाभिषेकदुन्दुभिः। अनाहतान्यपि मङ्गलतूर्याणि रेणुः। सर्वभुवनाभयघोषणापटह इव दिगन्तरेषु बभ्राम तूर्यप्रतिशब्दः। विधुतकेसरसटाश्च साटोपगृहीतहरितदूर्वापल्लवकवलप्रशस्तैर्मुखपुटैः समहेषन्त हृष्टा वाजिनः। सलीलमुत्क्षि-

---

टीका—विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' इति वार्तिकानुसारेण, आम्नाती छन्दसि] सर्वासां=सकलानां ग्रहसंहितानाम्=ग्रहसम्बन्धी=संहिताग्रन्थानां पारं दृष्टवान् इति [पार + √दृश्+क्वनिप्' 'दृशेः क्वनिप्' पा० ३/२/१४] पारद्रष्टेत्यर्थः। सकलानां गणकानां=ज्योतिषिणां मध्ये महितः=पूजितः हितः=राज्ञः हितकरश्च, त्रयाणां कालानां = भूत-भविष्यद्—वर्तमानानां ज्ञानं भजतीति० भाक् त्रिकालज्ञः इत्यर्थः। भोजकः=ज्योतिषिजातिविशेषीयः, शङ्करानुसारेण 'भोजकाः सूर्योपासकाः, भागवता अन्ये'। तारकः नाम=तारकाभिधेयः गणकः=ज्योतिषी समुपसृत्य=समुपगम्य राजानमिति शेषः विज्ञापितवान्=निवेदितवान्—मान्धाता=राजविशेषः एवंविधे=एतादृशे व्यतीपातः=पञ्चाङ्गेषु अन्यतमोऽशुभो योगविशेषः आदियेषां ते सर्वे दोषाः तेषाम् अभिषङ्गः=सम्बन्धः तेन रहिते=शून्ये अहनि=दिने सर्वेषु ग्रहेषु=सूर्यादिषु एवम् उच्चस्थाने स्थितेषु=वर्तमानेषु सत्सु ईदृशे लग्ने=मेषादिषु अन्यतमस्मिन् राशौ जन्म लेभे=जातः इत्यर्थः। ततः=तस्मात् अर्वाक्=पश्चात् अस्मिन् अन्तराले=समयस्य मध्ये एवंविधे ईदृशयोगे=ग्रहनक्षत्रराश्यादिस्थितौ चक्रवर्तिनां=सार्वभौमानां जनने=जनयतीति (जन + ल्युट् कर्तरि) जनके इत्यर्थः कश्चित् अपरः=अन्यः जगति=संसारे न अजनि=जातः। सप्त च ते चक्रवर्तिनः—'भरतार्जुनमान्धातृभगीरथयुधिष्ठिराः। सगरो नहुषश्चैव सप्तैते चक्रवर्तिनः' तेषां अग्रणीः=प्रधानभूतः, चक्रवर्तिचिह्नानां=हस्ते चक्रादिचिह्नानां महारत्नानाम् शब्दकल्पद्रुमानुसारेण—'चक्रं रथो मणिः खड्गश्चर्म रत्नं च पञ्चमम्। केतुर्निधिश्च सप्तैवम् अप्राणानि प्रचक्षते। भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः। पत्त्यश्वौ कलभश्चेति प्राणिनः सप्त कीर्तिताः' इत्युक्तानां चतुर्दशसंख्यकानां च भाजनं पात्रं सप्तानां सागराणां=समुद्राणाम् लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलात्मनाम् पालयिता = सर्वेषां सप्ततन्तूनां सप्तभिर्भूरादिभिर्महाव्याहृतिभिः अग्निजिह्वाभिर्वा तन्यते इति (√ तन् (विस्तारे) + औणादिकः तुन्] यज्ञः ['यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः' इत्यमरः] तेषां प्रवर्तयिता=प्रवर्तकः कर्तेत्यर्थः सप्त सप्तयः=अश्वा यस्य सः सप्तसप्तिः=सूर्यः तेन समः=सदृशः देवस्य=महाराजस्य अयं सुतः=पुत्रः हर्षं इत्यर्थः जातः।

अत्रान्तरे एतन्मध्ये स्वयमेव=आत्मना एव अनाध्माताः=न आध्माताः मुखवायुपूरिताः अपि शङ्खाः तारम् उच्चैः मधुरं=प्रियञ्च तस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा विरेसुः (वि + √रस्=शब्दे + लिट् प्र० पु० बहु०) शब्दयाञ्चक्रिरे। अताडितः=दण्डेन अनाहतः अपि अभिषेकस्य= राज्याभिषेककालस्येत्यर्थः दुन्दुभिः=महापटहः क्षुभितम्=क्षोभितं जलनिधेः=समुद्रस्य यत् जलं तस्य ध्वनिवत्=शब्दवत् धीरं=गम्भीरं यथा स्यात्तथा जुगुञ्ज=गुञ्जितवान्। सर्व०—सर्वस्य=निखिलस्य भुवनस्य=जगतः यद् अभयं=भयाभावः तस्य आघोषणा=प्रख्यापना तस्याः पटहः=डिंडिमः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् तूर्यस्य=मुखवाद्यविशेषस्य प्रतिशब्दः=प्रतिध्वनिः बभ्राम=अभ्रमत् उपरि उभयत्र आध्मानापूरणरूपकारणाभावे-

हिन्दी—इस बीच चक्रवर्ती को जन्म देने वाले ऐसे योग में फिर दूसरा कोई नहीं जन्मा है। सातों चक्रवर्ती राजाओं का अग्रणी, चक्रवर्ति-चिह्नों और महारत्नों का पात्र, सातों समुद्रों का पालक सभी यज्ञों का अनुष्ठाता सूर्य के समान (तेजस्वी), आपका यह पुत्र हुआ है।

इस बीच विना बजाए ही स्वयमेव शंख ऊँचा और मीठा बज उठे। विना डंडे की चोट खाये हुए भी अभिषेक का 'धौंसा' क्षुब्ध समुद्र के जल के शब्द की तरह गंभीरता के साथ गूंज पड़ा। सारे संसार को अभय (दान) की घोषणा का ढोल–जैसा तूरी का प्रतिशब्द दिशाओं के अन्तरालों में घूम पड़ा। अयालों की सटाओं को हिलाये राजसी शान के साथ (मुख में) लिए हुए हरे दूर्वांकुरों के ग्रास से सुन्दर दिखाई दे रहे मुखपुटों से घोड़े प्रसन्न हो हिनहिना

त्क्षिप्तैर्हस्तपल्लवैर्नृत्यन्त इव श्रवणसुभगं जगर्जुर्गजाः । ववौ चाचिराच्चक्रायुधमुत्सृज[illegible] निःश्वास इव सुरामोदसुरभिर्दिव्यानिलः । यज्वनां मन्दिरेषु प्रदक्षिणशिखाकलापकथितकल्याणागमाः प्रजज्वलुरनिन्धना वैतानवह्नयः । भुवस्तलात्तपनीयशृङ्खलाबन्धबन्धुरकलशीकोशाः समुदगुर्महानिधयः । प्रहतमङ्गलतूर्यप्रतिशब्दनिभेन दिक्षु दिक्पालैरपि प्रमोदादक्रियतेव दिष्टवृद्धिकलकलः । तत्क्षण एव च शुक्लवाससो ब्रह्ममुखाः कृतयुगप्रजापतय इव प्रजावृद्धये समुपतस्थिरे

टीका—ऽपि शब्दोत्पत्तिरूपकार्यस्य प्रतिपादनात् विभावनालङ्कारः । विधुत०—विधुताः=सञ्चालिता केसराणां=कन्धराकेशानां सटाः=जटाः यैस्ते आटोपः=गर्वः तेन सहितं यथा स्यात्तथा गृहीतः=मुखे धृतः हरितानां हरितवर्णानां दूर्वायाः=घासविशेषस्य पल्लवानां=किसलयानां यः कवलः=ग्रासः तेन प्रशस्तैः=रमणीयैः इत्यर्थः मुखपुटैः समहेषन्त= हेषारवमकुर्वन् हृष्टाः=प्रसन्नाः वाजिनः=अश्वाः । सलील०—लीलया=विलासेन सहितं यथा स्यात्तथा उत्क्षिप्तैः= ऊर्ध्वीकृतैः हस्तैः=शुण्डादण्डैः=एव हस्तैः=करैःपल्लवैः इवेत्युपमिततत्पु० नृत्यन्तः=नृत्यं कुर्वन्तः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् गजाः=करिणः श्रवणे=कर्णे सुभगं=सुन्दरं यथा स्यात्तथा जगर्जुः=गर्जितवन्तः ववौ०—ववौ=अवहत् च अचिरात्= शीघ्रमेव चक्रायुधं=चक्रधरं विष्णुमित्यर्थः उत्सृजन्त्याः=त्यजन्त्याः निःश्वासः=निःश्वसितम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सुरायाः= मदिरायाः । आमोदः=परिमलः तेन सुरभिः=सुगन्धितः (निःश्वासः) अथ च सुरायाः आमोदवत् सुरभिः=दिव्यानिलः=दिव्यपवनः अयं भावः गृहीतजन्मनि हर्षे लक्ष्मीः विष्णुमपहाय हर्षमुपगता, स्वपत्युः परित्यागे सा दीर्घं निःश्वसिति स्मेवेति । यज्व०—यज्वनां=यज्ञकर्तॄणां मन्दिरेषु=शालासु यज्ञशालास्वित्यर्थः प्रदक्षिणः=दक्षिणदिशाभिमुखः शिखानां=ज्वालानां यः कलापः=समूहः तेन कथितः=द्योतितः सूचितः इति यावत् कल्याणस्य=मङ्गलस्य आगमः= आगमनम् उत्पत्तिरित्यर्थः यैः ते, दक्षिणमुखज्वालाः हि शुभाः भवन्तीति शास्त्रेषूक्तम्, वितानं=यज्ञः [क्रतु–विस्तारयोरस्त्रिवितानम्' इत्यमरः] तस्य इमे इति [अञ्] वैतानाः=यज्ञीयाः वह्नयः=अग्नयः अनिन्धनाः=न इन्धनानि= एधांसि येषु ते, विनैवेन्धनमित्यर्थः प्रजज्वलुः=ज्वलितवन्तः । अत्रापि विनेन्धनमग्निप्रज्वलनाद् विभावनालङ्कारः । भुव०=भुवः=पृथिव्याः तलात्=गर्भादित्यर्थः तपनीयस्य=सुवर्णस्य ['हिरण्यं हेम हाटकम् । तपनीयं शातकुम्भम्' इत्यमरः] या शृङ्खला=निगडः तया बन्धेन=बन्धनेन बन्धुरः=रमणीयः कलश्याः= घट्याः कोशः = कमलकोशसमो गल-भागः, आवरणं इति शङ्करः येषां तथाभूताः महानिधयः=शङ्खपद्मादयः समुद्गुः [सद उत + √इ + लुङ् प्र. पु. बहु०] समुद्गताः । प्रहत०—प्रहतस्य=ताडितस्य मङ्गलतूर्यस्य =माङ्गलिकवाद्यविशेषस्य यः प्रतिशब्दः=प्रतिध्वनिः तस्य निभेन=व्याजेन दिक्षु=दिशासु दिक्पालैः=इन्द्रादिभिः ['इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैरृतो वरुणो मरुत् । कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्' इत्यमरः] अपि प्रमोदात्=प्रहर्षात् कारणात् अक्रियत=अभ्यधायि इव दिष्टवृद्धिः= वर्धापनम् तस्य कलकलः=कोलाहलः अर्थात् तूर्यध्वनिव्याजेन दिक्पालाः अपि हर्षस्य जन्मनि राज्ञः राजवर्धनस्य वर्धापनं कुर्वन्ति स्मेव । अत्रापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षा, सा च अपिशब्दवाच्यया अर्थापत्त्या सङ्कीर्यते । तत्क्षण०—तस्मिन् क्षणे एव शुक्लानि=श्वेतानि वासांसि=वस्त्राणि येषां ते ब्रह्ममुखाः ब्रह्मा=स्रष्टा मुखं=प्रमुखः अग्रणीरिति यावत् येषां ते कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य प्रजापतयः=मरीच्यादयः [यथोक्तं मनुना—'अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारद-

हिन्दी–उठे । विलासपूर्वक ऊपर नाचते हुए–जैसे गजों ने कानों को सुन्दर लगने वाली चिंघाड़ें छोड़ी । शीघ्र ही विष्णु को त्यागती हुई लक्ष्मी की सुरा के परिमल से सुगन्धित हुई साँस–जैसी सुरा के परिमल की तरह सुगन्धिवाली दिव्यपवन बहने लगी । याज्ञिक लोगों की यज्ञशालाओं में दायीं ओर जाती हुई लपटों के समूह से कल्याण के आगमन को सूचित किए हुए यज्ञाग्नियां विना ही इन्धन के जल उठीं । सोने की शृङ्खला से बँधे रहने के कारण सुन्दर (दिखाई पड़ रहे) कलशियों के गलभागों वाली महानिधियाँ भूतल से ऊपर आगईं । बनाए गए मांगलिक ढोलों की प्रतिध्वनि के बहाने प्रसन्नता के कारण दिक्पालों ने भी–जैसे दिशाओं में बधाई देने का कलकल मचा दिया । उसी क्षण श्वेतवस्त्र पहने, प्रजावृद्धि (जनसृष्टि की वृद्धि) के लिए ब्रह्मा को आगे किये हुए प्रजापतियों की तरह श्वेत वस्त्र पहने, ब्रह्म (वेद) को मुख में रखे अर्थात् वेदमंत्रोच्चारण करते हुए ब्राह्मण लोग प्रजावृद्धि (नवजात सन्तान के अभ्युदय) के लिये उपस्थित हो गए ।

द्विजातयः । साक्षाद्धर्म इव शान्त्युदकफलहस्तो पुरः पुरोधाः । पुरातन्यः स्थितय इवादृश्यन्तागता बान्धववृद्धाः । प्रलम्बश्मश्रुजालजटिलाननानि बहलमलपङ्ककलङ्ककालकायानि नश्यतः कलिकालस्य बान्धवकुलानीवाकुलान्यधावन्त मुक्तानि बन्धनवृन्दानि । तत्कालापक्रान्तस्याधर्मस्य शिविरश्रेणय इवालक्ष्यन्त लोकविलुण्ठिता विपणिवीथ्यः । विलसदुन्मुखवामनकबधिरवृन्दवेष्टिताः साक्षाज्जातमातृदेवता इव बहुबालकव्याकुला ननृतुर्वृद्धधात्र्यः । प्रावर्तत च विगतराजकुलस्थितिरधःकृतप्रतीहाराकृतिरपनीतवेत्रिवेत्रो निर्दोषान्तःपुरप्रवेशः समस्वामिपरिजनो निर्विशेषबालवृद्धः समानशिष्टाशिष्टजनो दुर्ज्ञेयमत्तामत्तप्रविभागस्तुल्यकुलयुवतिवेश्यालापविलासः प्रनृत्तसकलकटकलोकः पुत्रजन्मोत्सवो महान् ।

टीका—मेव च । (मनु० १/३२–३५) इवेत्युपमायाम् प्रजानां=जनानां वृद्धये=वर्धनाय ब्रह्ममुखाः=ब्रह्म वेदः मुखे येषां ते कण्ठस्थवेदाः । वेदमन्त्रोच्चारणं कुर्वन्त इति यावत् प्रजायाः=नवोत्पन्नस्य सन्तानस्य हर्षस्येत्यर्थः ['प्रजा स्यात् संततौ जने' इत्यमरः] वृद्धये=अभ्युदयाय द्विजातयः=ब्राह्मणाः समुपतस्थिरे=समुपस्थिता अभवन् । साक्षात्=प्रत्यक्षं धर्म इवेत्युत्प्रेक्षायाम् शान्त्यर्थम् उदकं=जलं फलं च हस्ते यस्य तथाभूतः पुरोधाः=पुरोहितः पुरः=अग्रे तस्थौ=स्थितवान् । पुरातन्यः=पुराभवाः [पुरा + तन + ङीप्] स्थितयः =मर्यादाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अन्तर्गताः=प्रासादाभ्यन्तरे गताः=बान्धवाः च वृद्धाः च । प्रलम्ब०—प्रलम्बं=दीर्घं श्मश्रूणां=कूर्चानां यत् जालं=समूहः तेन जटिलानि=जटायुक्तानि भारितानीत्यर्थः आननानि=मुखानि येषां कारागारे क्षौरकर्माभावात् वहलः=घनः मलपंकस्य=मलकर्दमस्य यः कलङ्कः=चिह्नमित्यर्थः तेन कालः=कृष्णवर्णः काय=शरीरं येषां तानि नश्यतः=अदर्शनं गच्छतः पलायमानस्येत्यर्थः कलिकालस्य=कलियुगस्य बान्धवानां=बन्धूनां कुलानि=समूहाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आकुलानि=संकुलीभूतानि व्यवस्थाभंगं कृत्वा अहमहमिकया पलायमानानीत्यर्थः' मुक्तानि=कारागारेभ्यः उन्मुक्तानि बन्धनगतानां=कारागारबद्धजनानां वृन्दानि=समूहाः [मध्यमपदलोपी स०] अधावन्त=प्राद्रवन् । हर्षस्य सौराज्ये अधर्मः न स्थातुं शक्नोतीति अधर्मप्रधानः कलिकालः प्रद्रुतः इति भावः । तत्काल०—तत्काले=हर्षजन्मसमये उपक्रान्तस्य=प्रद्रुतस्य अधर्मस्य शिविराणां=स्कन्धावाराणां श्रेणयः=पङ्क्तयः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् लोकैः=प्रजाभिः लुण्ठिताः=मुषिताः विपणीनां वीथ्यः=पण्यवीथयः आपणाः इत्यर्थः । विलस०—विलसन्तः=विलासं कुर्वन्तः उन्मुखाः=ऊर्ध्वीकृतमुखाः वामनाः=खर्वाः एव वामनकाश्च बधिराः = श्रवणशक्तिरहिताश्च तेषां वृन्दैः = समूहैः वेष्ठिताः परिगताः, पुरा अन्तःपुरेषु वामन-बधिर-कुब्जादयः निवसन्तिस्मेति ध्येयम् तदुक्तम्—'निषेवितो वर्षवरैः कञ्चुकोष्णीषधारिभिः अन्तः पुरेषु विचरेत्' कुब्जकैरातवामनैः [काम० नी० ७/७१] साक्षाज्जाताः = प्रत्यक्षीभूताः मातृदेवताः = अष्टौ दिव्यमातरः (ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा । कौबेरीत्यपि कौमारी सप्तैता मातरः स्मृता' इति हलायुधः + इवेत्युत्प्रेक्षायाम् बहुभिः बालकैः=कुमारकैः व्याकुलाः=आकीर्णाः वृद्धाः=जरठाश्च ताः धात्र्यः=उपमातरः ननृतुः=नृत्यं चक्रुः, अत्र शङ्करानुसारेण—'जातमातृदेवता [मूर्तीरूपा] मार्जाराननना वटपुत्र-परिवारा सूतिकागृहे स्थाप्यते' । प्राव-

हिन्दी—हाथ में शान्ति-जल लिए पुरोहित साक्षात् धर्म—जैसा सामने खड़ा हो गया । पुरानी मर्यादायें-जैसे बन्धु-बान्धव और वृद्ध लोग आए हुए दीख पड़े । लम्बी दाढ़ी-मूछों के बालों से भरे मुखों वाले मैल के पंक के चिकटों से काली बनी देह वाले (कारागार से) मुक्त कैदियों के झुंड के झुंड एक दूसरे पर चढ़ते हुए दौड़े भागे ऐसे लगते थे जैसे कि वे कूच करते हुए कलि-काल के बन्धु-बान्धव हों । लोगो द्वारा लूट लिये गए बाजारों के बाजार ऐसे दिखलाई पड़ते थे जैसे तत्काल खिसकते हुए अधर्म के (खाली पड़े) शिविरों की पंक्तियाँ हों । नाचते, ऊपर मुँह किए बौनों और बहिरों से घिरी तथा (साथ में) बहुत से बच्चों की भीड़-भाड़ लिये बूढ़ी धाइयाँ नाच उठी मानों वे साक्षात् प्रकट हुई मातृ-देवियाँ हों । और (फिर) पुत्र जन्म का महोत्सव चल पड़ा—जिसमें राजकुल की मर्यादायें टूट पड़ी, द्वारपाल के चेहरे की पर्वाह नहीं रही, बेत-धारियों की बेतें छीन ली गई, अन्तःपुर में प्रवेश करना (कोई) अपराध नहीं रहा, ठाकुर और नौकर बराबर हो गए, बच्चों और बूढ़ों में भेद ही न रहा, शिष्ट और अशिष्ट लोग एक हो गए, कौन मदिरा के नशे में है और कौन नहीं है—इसका विवेक करना कठिन हो गया; कुल-वधुओं और नगर वधुओं के संलाप और विलास-विनम्र एक—जैसे हो गए और सारी राजधानी के लोग नाच उठे ।

अपरेद्युरारभ्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यः स्त्रीराज्यानीवावर्जितानि, असुरविवराणीवापावृतानि, नारायणावरोधानीव प्रचलितानि, अप्सरसामिव महीमवतीर्णानि कुलानि, परिजनेन पृथुकरण्डपरिगृहीताः स्नानीयचूर्णावकीर्णकुसुमाः सुमनःस्रजः, स्फटिकशिलाशकलशुक्लकर्पूरखण्डपूरिताः पात्रीः, कुङ्कुमाधिवासभाञ्जि भाजनानि च मणिमयानि, सह-

---

टीका—तंत''''पुत्रजन्मोत्सवः इत्यस्ति वाक्यम् । विगत०—विगता=अपसृता राजकुलस्य=राजगृहस्य स्थितिः=मर्यादा शिष्टाचारस्य नीति-नियमाः इत्यर्थः यस्मिन् तथाभूतः अधः—अधःकृता=अनादृता उपेक्षितेत्यर्थः प्रतिहारस्य=द्वारपालस्य मूर्तिः यस्मिन्, अर्थात् द्वारस्थप्रतिहारस्य भीषणाम् आकृति वेशभूषादिकञ्च अगणयित्वा प्रजाः अन्तः प्रविशन्ति स्म, अप०—अपनीतः=हृतः आच्छिन्न इति यावत् वेत्रिणां दौवारिकाणां रक्षकाणां वा वेत्रः=वेत्रदण्डः यस्मिन् सः, निर्दोष०—निर्दोषः=दोषरहितः अपराधरहित इत्यर्थः, अन्तःपुरे प्रवेशः यस्मिन् सः, सम०—समो तुल्यो स्वामी च परिजनः=भृत्यश्च यस्मिन् सः, तत्क्षणे सेव्य-सेवक भावो लुप्त इति भावः निर्वि०—निर्विशेषो=निर्गतः विशेषो याभ्याम्, विशेषरहितो समानो इति यावत् बालश्च वृद्धश्चेति बालवृद्धो यस्मिन् सः, समान०—समानो=सदृशो शिष्टश्च अशिष्टश्च जनो यस्मिन् सः, दुर्ज्ञेय०—दुर्ज्ञेयः=दुःखेन ज्ञातुं योग्यः मत्तः=सुरापानोन्मत्तः अथवा आनन्दोन्मत्तः अमत्तः= असुरापानोन्मत्तः, अथवा मत्तः=क्षीवः अमत्तः=प्रकृतिस्थश्च इत्यनयोः प्रविभागः=भेदः यस्मिन् सः, तुल्य०—तुल्यो कुलयुवतिः=कुलवधूश्च वेश्या=नगरवधूश्च तयोः आलापः = संलापं विलासः=विभ्रमश्चेति आलाप-विलासो यस्मिन् सः, प्रनृत्त०—प्रनृत्ताः=कृतनृत्याः सकलस्य=समग्रस्य कटकस्य=राजधान्याः लोकाः=जनाः यस्मिन् तथाभूतः पुत्रस्य=हर्षस्य जन्मनः उत्सव=आनन्दः प्रावर्तत=प्रवृत्तः आरब्धः इत्यर्थः ।

टिप्पणी—कलिकालस्य—पुत्रजन्मादि उत्सवों में बन्दियों को कारागार मुक्त करने की प्रथा पहले से ही चली आ रही है । बन्दियों की दाढ़ी बढ़ी थी, स्नान न करने से वे मैले काले हुए पड़े थे । उन्मुक्ति की खुशी में अव्यवस्थित ढंग से भागते हुए उनकी तुलना कलिकाल के बन्धु-बान्धवों से की गई । कलि और उसके बन्धु-बान्धव-पाप भी काले ही होते हैं । हर्ष के जन्म लेने से कलि को भी बन्धु सहित कैदियों की तरह शिर पर पैर रखकर भागना ही पड़ा । लोकविलुण्ठिताः—मालूम होता है राजा ने आज्ञा दे दी कि प्रजा बाजारों को लूट कर जो चाहें ले ले, उनके विरुद्ध कोई सुनवाई नहीं होगी । उत्सवों में 'पूर्ण पात्र के हरण के रूप में महलों के भीतर भी लूट पाट मच जाती थी । दुकानदारों को राजा मुँह-माँगी क्षति पूर्ति दे देता था ।

'अपरेद्यु''''सामन्तान्तःपुरसहस्राणि अदृश्यन्त' इत्यस्ति वाक्यम् । अपरेद्युः=अपरस्मिन् दिवसे सर्वाभ्यो दिग्भ्यः=दिशाभ्यः स्त्रीणां राज्यानि=राष्ट्राणि इव आवर्जितानि=आकृष्टानीत्यर्थः एतेन स्त्रीणाम् अत्यधिकसंख्या सूच्यते, अपावृतानि=उद्घाटितानि असुरविवराणि उद्धृत-धातवः खनयः [अस्य विस्तृतविवरणं १०५ पृष्ठे द्रष्टव्यम्], नारायणस्य=विष्णोः श्रीकृष्णस्येत्यर्थः अवरोधानि=षोडश सहस्राणि स्त्रियः यथोक्तं विष्णुपुराणे—षोडशात्र सहस्राणि । स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः । '''निशासु जगत स्रष्टा तासां गेहेषु केशवः । उवास विप्र सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥ प्रचलितानि = आगतानि, अप्सरसां = दिव्याङ्गनाविशेषाणां कुलानि = समूहाः महीं = पृथिवीम् अवतीर्णानि=नीचैः आगतानि, उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा, परिजनेन अनुगम्यमानानीत्यनेनान्वयः परिजनस्य च पात्र्यादीनि बिभ्राणेनेत्यस्ति विशेषणम्, पृथु०—पृथुषु=महत्सु करण्डेषु=वेणुनिर्मितकरण्डीषु परिगृहीताः=निहिताः इत्यर्थः स्नाति अनेनेति [स्ना+अनीयर् करणे] स्नानीयं=स्नानोपयुक्तमित्यर्थः यत् चूर्णं=पिष्टातः तेन अवकीर्णानि=कृतप्रक्षेपाणि व्याप्तानीत्यर्थः कुसुमानि=पुष्पाणि यासां ताः सुमनसां=पुष्पाणां स्रजः=मालाः स्फटिक०—स्फटिकस्य शिलायाः=सितोपलस्य यत् शकलं=खण्डं तद्वत् शुक्लेन=शुभ्रेण कर्पूर-खण्डेन=घनसार-शकलेन पूरिताः भरिताः पात्रीः=पात्राणि, कुङ्कुम०—कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य अधिवासं=सुगन्धित-चूर्णं भजन्तीति० भाञ्जि (क्विप्) मणिमयानि=मणिरूपाणि भाजनानि=पात्राणि

हिन्दी—दूसरे दिन से लेकर चारों ओर से अधीन राजाओं के अन्तःपुरों की हजारों महिलायें दिखाई पड़ने लगीं मानों सभी दिशाओं से स्त्रियों के राज्य-के राज्य खींचे चले आ रहे हों,(स्त्रियों की) खान-जैसी फूट गई हों,भगवान् कृष्ण की रानियाँ जैसी चल पड़ी हों, अप्सराओं के झुंड जैसे नीचे उतर आये हों, जिनके पीछे-पीछे बड़ी-बड़ी कंडियों में धरी हुई स्नान—चूर्ण छिड़की पुष्पमालाओं, स्फटिक-पत्थर के टुकड़ों की तरह सफेद कपूर के टुकड़ों से पूर्ण तश्तरियों और केसर

कारतैलतिम्यत्तनुखदिरकेसरजालजटिलानि चन्दनधवलपूगफलफालीदन्तुरदन्तशफरकाणि, गुञ्जन्मधुकरकुलपीयमान-
पारिजातपरिमलानि पाटलकानि[1] च सिन्दूरपात्राणि च पिष्टातकपात्राणि च बाललतालम्बमानविटकवीटकांश्च ताम्बू-
लवृक्षकान्विघ्राणेनानुगम्यमानानि चरण[2]निकुट्टनरणितमणिनूपुरमुखरितदिङ्मुखानि नृत्यन्ति राजकुलमागच्छन्ति
समन्तात्सामन्तान्तःपुरसहस्राण्यदृश्यन्त ।

शनैः शनैर्व्यजृम्भत च क्वचिन्नृत्तानुचितचिरन्तनशालीनकुलपुत्रकलोकलास्यप्रथितपार्थिवानुरागः क्वचिदन्तः-
स्मितक्षितिपालापेक्षितक्षीबक्षुद्रदासीसमाकृष्यमाणराजवल्लभः क्वचिन्मत्तकटककुट्टनीकण्ठलग्नवृद्धार्यसामन्तनृत्तनिर्भर-

---

टीका—सहकार०—सहकारस्य=आम्रस्य तैलेन=स्नेहेन तिम्यत्=क्लिद्यत् आर्द्रमित्यर्थः यत् तनु=सूक्ष्मं खदिरस्य=वृक्षवि-
शेषस्य खदिरसारस्येत्यर्थः केसराणां=किञ्जल्कानां जालेन=समूहेन जटिलानि=पूर्णानि, चन्दन०—चन्दनवत् धवलानि=
श्वेतानि पूगफलानि=सुपारीति भाषायां प्रसिद्धानि तेषां या फाली=पङ्क्तिः तया दन्तुराणि=उन्नतदन्तानि इव उन्नता-
नतानीत्यर्थः दन्तस्य=गजदन्तस्य गजदन्तनिर्मितानि शफरुकाणि=समुद्गान्, गुञ्जन्०—गुञ्जन्तः=शब्दायमानाः ये मधु
कराः=भ्रमराः तेषां कुलेन=समूहेन पीयमानः=पानविषयीक्रियमाणः पारिजातस्य=पुष्पविशेषस्य सुगन्धिद्रव्यचूर्णस्येति शंकरः
परिमलः=सौरभं येषां तानि पाटलान्येव=पाटलवर्णानि सिन्दूरस्य पात्राणि=भाजनानि पिष्टातकस्य=पटवासकस्य
['पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरः] पात्राणि, बाल०-- बालाभ्यः=लघुभ्यः लताभ्यः=वल्लीभ्यः लम्बमानानि=
ध्रियमाणानीत्यर्थः विटकवीटकानि [शंकरानुसारेण 'वीटकवीटकं' पञ्चाशत्ताम्बूलपत्रैः क्रियते] पञ्चाशत्-ताम्बूल-
दलस्तवकाः येषु तान् वस्तुतः 'विटक-वीटक' शब्दौ संदिग्धौ एव, ताम्बूल-सम्बन्धे हिन्दीभाषायां 'बीड़ा' इत्यर्थे
वीटिका प्रयुज्यते नतु विटकं वीटकं वा, ताम्बूल-वृक्षकान्=ताम्बूलवल्लीः विघ्राणेन=वहता परिजनेन अनुगम्यमानानि
=अनुस्रियमाणानि चरण०—चरणैः = पादैः यत् निकुट्टनं = भूम्याः आघातः त्वरितगत्या पादप्रक्षेपः इत्यर्थः तेन
रणिताः=झङ्कृताः ये मणिनूपुराः=मणिमयमञ्जीराः तैः मुखरितानि=वाचालितानि प्रतिध्वनितानीति यावत् दिङ्मु-
खानि=दिशाविभागाः यैः तानि, नृत्यन्ति=नृत्यं कुर्वत्यः राजकुलं=राजगृहम् आगच्छन्ति=आगमनं कुर्वन्ति समन्तात्=
परितः अन्तःपुराणाम्=अवरोधानां सहस्राणि सहस्रशः अन्तःपुरमहिलाः इत्यर्थः अदृश्यन्त=दृष्टिपथमागच्छन् ।

शनैः शनैर्व्यजृम्भत···उत्सवामोदः इत्यस्ति वाक्यम्। क्वचित् नृत्ता०—नृत्तस्य = अङ्गविक्षेपमात्रात्मक-नृत्यस्य
['नृत्तं त्वङ्गविक्षेपमात्रं विवाहाभ्युदयादौ' इति क्षीरस्वामी] अनुचितः = अनभ्यस्तः चिरन्तनः = प्राचीनकालागतः
शालीनः = शाला-प्रवेशमर्हति शालीनः = अधृष्टः ['शालीन-कौपीने अधृष्टाकार्ययोः' पा० ५।२।२० अप्रागल्भ्याद्
अन्यत्र गन्तुमशक्तः शालामेव प्रवेष्टुमर्हतीत्यर्थः' इति त० बो०] लज्जाशीलः इत्यर्थः कुलपुत्र-लोकः = उच्चकुलोत्पन्नः
युवकजनः तस्य लास्यं नर्तनं तेन प्रथितः = विस्तारितः प्रदर्शितः इति यावत् पार्थिवे = प्रभाकरवर्धने अनुरागः = प्रेम
यस्मिन् सः, अन्तः—अन्तः = मनसि स्मितं = मृदु हसितं यस्य तथाभूतः यः क्षितिपालः = भूपालः प्रभाकरवर्धनः
इत्यर्थः तेन अपेक्षिताः अत्र अवेक्षिताः अथवा उपेक्षिताः इति साधीयः, क्षीबाभिः = मदिरामत्ताभिः क्षुद्र दासीभिः =
निम्नकोटिक-परिचारिकाभिः समाकृष्यमाणाः = हस्तैः ध्रियमाणाः इत्यर्थः राज्ञः = नृपस्य = प्रभाकरवर्धनस्य वल्लभाः =

हिन्दी—के सुगन्धित चूर्णवाले मणिपात्रों, आम के तेल से चिकने बने खैर (कत्थे) के सूक्ष्म केसर-समूह से पूर्ण हाथी
दाँत की सन्दूकड़ियों, गूंजते हुए भ्रमरों से पिये जा रहे पटवास के सौरभ वाली लाल रंग की सिन्दूर की पिटारियों,
पटवास के डब्बों तथा छोटी-छोटी लताओं में लटक रहे पचास-पचास बीड़ों वाली पान की बेलों को धारण करते हुए
नौकरचाकर चल रहे थे, जो पैर धरने से झनझनाती हुई पायजेबों से दिशा-विभागों को गुंजा रही थी और जो नाचती-
नाचती राज दरबार चली आ रही थीं ।

क्रमशः उत्सव का आनन्द बढ़ता गया—जिसमें कभी तो नृत्य में अनभ्यस्त, प्राचीन काल से चले आ
रहे, लज्जाशील, कुलीन नवयुवक लोग (अपने) नृत्य से महाराज के प्रति अनुराग अभिव्यक्त कर देते, कभी महाराज
अपने प्रिय-जनों को मदमत्त-दासियों द्वारा खींचा जाता देख मन ही मन हँस दिया करते, कभी राजधानी की मदिरा-
मत्त कुटनी को गले लगाए हुए वृद्ध कुलीन सामन्त के नाच से जोर-जोर से हँस पड़ते, कभी आँख के संकेत से महाराज

---

१. पाटलानि पोटलकानि च सिन्दूर०' २. चरणानि कुट्टन०'

हसितनरपतिः क्वचित्क्षितिपाक्षिसंज्ञादिष्टदुष्टदासेरकगीतसूच्यमानसचिवचौर्यरतप्रपञ्चः क्वचिन्मदोत्कटकुटहारिकापरिष्वज्यमानजरत्प्रव्रजितजनितजनहासः क्वचिदन्योन्यनिर्भरस्पर्धोद्धुरविट[1]चेटकारब्धावाच्यवचनयुद्धः क्वचिन्नृपाङ्गनाबलात्कारनर्त्यमाननृत्यानभिज्ञान्तःपुरपालभावितभुजिष्यः, सपर्वत इव कुसुमराशिभिः, सधारागृह इव सीधुप्रपाभिः, सनन्दनवन इव पारिजातकामोदैः, सनीहार इव कर्पूररेणुभिः, साट्टहास इव पटहरवैः, सामृतमथन इव कलकलैः, सावर्त इव रासकमण्डलैः, सरोमाञ्च इव भूषणमणिकिरणैः, सपट्टबन्ध इव चन्दनललाटिकाभिः, सप्रसव इव प्रतिशब्दकैः, सप्ररोह इव प्रसाददानैरुत्सवामोदः।

टीका—प्रियाः स्नेह भाजनानीति यावत् यस्मिन् सः. मत्त०—मत्ता = मदोन्मत्ता या कटकस्य = राजधान्याः ('कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः"""राजधानीवलययोरपि' इति मेदिनी) कुट्टनी = शम्भली ['कुट्टनी शम्भली समे' इत्यमरः] परनारीं पुंसा योजयित्रीत्यर्थः तस्याः कण्ठे=गले लग्न = संसक्तः वृद्धः आर्यः = श्रेष्ठः कुलीनः इति यावत् यः सामन्तः = करदो भूपालः तस्य नृत्तेन = नर्तनेन निर्भरं = भृशं यथा स्यात्तथा हसितः = कृतहासः नरपतिः = राजा प्रभाकरवर्धनः यस्मिन् सः, क्षितिपा०—क्षितिपस्य = प्रभाकरवर्धनस्य अक्ष्णा = नेत्रेण संज्ञया = संकेतेन आदिष्टाः = आज्ञप्ता ये दुष्टा दासेरा एव दासेरका = दासेयाः दासीपुत्राः इति यावत् ['क्षुद्राभ्यो वा' पा० ४/१/१४१ इति दासी+ढक् ढस्य एय अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्रास्ताभ्यां वा ढक्। पक्षे ढक्। दासेरः दासेयः' सि० कौ] तेषां गीतैः = गानैः सूच्यमानः = द्योत्यमानः सचिवानाम् = अमात्यानाम् चौर्यरतस्य चौर्यकृतसुरतस्य प्रपञ्चः = प्रदर्शनं यस्मिन् सः, मदो०—मदेन = मदिरया उत्कटा = मत्ता या कुटहारिका = कुटं = घटम् ['कुटः कोटे पुमानस्त्री घटे' इति मेदिनी] हरति = वहतीति तयोक्ता घटजलवाहिकेत्यर्थः या दासी तया परिष्वज्यमानः = आलिङ्ग्यमानः जरन् = वृद्धः यः प्रव्रजितः = परिव्राट् संन्यासीत्यर्थः तेन जनितः = कृतः हासः = परिहासः यस्मिन् सः अन्यो०—अन्योन्यस्य = परस्परस्य निर्भरा = भृशा अतिशयेतियावत् या स्पर्धा = ईर्ष्येत्यर्थः तया उद्धुराः = उद्गता धूः येभ्यः इति उच्छृङ्खला इत्यर्थः ये विटाः = इन्द्रियलोलुपाः ['सम्भोगहीनसम्पद् विटस्तु सा० द०] चेटकाः = नीचदासाश्च तैः आरब्धः = प्रवर्तितः अवाच्यस्य = न वक्तुं योग्यस्य अश्लीलस्येत्यर्थः यद् वचनं = कथनं तस्य युद्धं = संग्रामः तस्मिन्, नृपा०—नृपाङ्गनाभिः = राजकीयाभिः अङ्गनाभिः बलात्कारेण = प्रसभं नर्त्यमानाः नर्तितुं प्रेर्यमाणा ये अन्तःपुरपालाः = कञ्चुकिनः इत्यर्थः तैः भाविताः कथं नृत्यन्तीत्यवलोकिता इति शङ्कुरः = विनोदिताः इत्यर्थः भुजिष्यः = परिचारिकाः [नियोज्य-किङ्कर-प्रैष्य-भुजिष्य-परिचारकाः' इत्यमरः] भुङ्क्ते स्वाम्युच्छिष्टं भुजिष्यः' इति क्षीरस्वामी] सपर्वत०—कुसुमानां = पुष्पाणां राशिभिः = पुञ्जैः पर्वतेन सह वर्तमानः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अर्थात् उत्सवे पुञ्जितपुष्पाणि पर्वता इव लगन्तिस्म, सधारा०—सीधुः = आसवः गुडनिर्मितसुरेत्यर्थः ['मैरेयमासवः सीधुः' इत्यमरः] तस्य प्रपाभिः पानस्थानैः धारागृहं = जलयन्त्रगृहं सहितः इव सनन्द०—पारिजातकस्य = पुष्पवृक्षविशेषस्य आमोदैः = परिमलैः नन्दनवनेन = इन्द्रोद्यानेन सहित इव, सनीहा०—कर्पूरस्य = घनसारस्य रेणुभिः = रजोभिः नीहारेण = तुषारेण सहित इव। पटह०—पटहानां =भेरीणां रवैः = ध्वनिभिः अट्टहासेन = महाहसितेन सहित इव;

हिन्दी—की आज्ञा प्राप्त किये हुए दुष्ट दासी-पुत्र अपने गीतों से सचिवों की चोरी की प्रणय-लीला की पोल खोल दिया करते कभी मदमत्त पनहारिन द्वारा गले लगाए हुए बूढ़े संन्यासी से लोगों में हंसी फूट पड़ती; कभी आपस की खूब ईर्ष्या-स्पर्धा में उच्छृंखल बने विट और चेट लोग अश्लील बातें बोलने की होड़ छेड़ बैठते, कभी नृपाङ्गनाओं द्वारा बलात् नचाये जा रहे, नृत्य से अनभिज्ञ अन्तः पुर के कचुकियों से दासियों का मनोविनोद हो जाता; जहां फूलों के अम्बार पर्वत-जैसे वन जाते, मदिरा की प्याउओं से फव्वारे-जैसे फूट पड़ते, पारिजात की सुगन्धियों से नन्दनवन जैसा आ जाता, कपूर की 'धूलियों से ओस-जैसी पड़ी हुई लगती, नगाड़ों की तड़तड़ाहटों से अट्टहास—हो उठता, कोलाहलों से अमृत-मन्थन-जैसा हो रहा लगता मंडलाकार रासलीलाओं से जलावर्त—जैसे घूमते प्रतीत होते, भूषणों के रत्नों की किरणों से रोमांच जैसा हो उठता, ललाटों पर लगे चन्दन-तिलकों से वस्त्र की पट्टी-जैसी बँधी लगती, प्रतिध्वनियों से संतति-जैसी उत्पन्न हो जाती और प्रसन्नता में दी गई दान-दक्षिणाओं से अंकुर—जैसे फूट पड़ते थे।

१. चेटबपेटकारब्ध'

स्कन्धावलम्बमानकेसरमालाः काम्बोजवाजिन इवास्कन्दन्तस्तरलतारका हरिणा इवोड्डीयमानाः सगरसुता इव खनित्रैर्निर्दयैश्चरणाभिघातैर्दारयन्तो भुवमनेकसहस्रसंख्याश्चिक्रीडुर्युवानः । कथमपि तालावचरचारणचरणक्षोभं चक्षमे क्षमा । क्षितिपालकुमारकाणां खेलतामन्योन्यास्फालैराभरणेषु मुक्ता फलानि फेलुः । सिन्दूररेणुना पुनरुत्पन्नहिरण्यगर्भगर्भशोणितशोणाशमिव ब्रह्माण्डकपालमभवत् । पटवासपांसुपटलेन प्रकटितमन्दाकिनीसैकतसहस्रमिव शुशुभे नभस्तलम् । विप्रकीर्यमाणपिष्टातकपरागपिञ्जरितातपा भुवनक्षोभविशीर्णपितामहकमलकिञ्जल्करजोराजिरञ्जिता इव रेजुर्दिवसाः । सङ्घट्टविघटितहारपतितमुक्ताफलपटलेषु चस्खाल लोकः ।

टीका – सरित०—कलकलैः = कोलाहलैः; अमृतमथनेन = क्षीरसमुद्रमन्थनेनेत्यर्थः सहित इव; सावर्तं रासः एव रासकः (स्वार्थे कः) = कृष्णस्य गोपीभिः सह नृत्यविशेषः यथोक्तम् श्रीमद्भागवते—'तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥' (१०।१३) तस्य मण्डलैः = मण्डलाकारभ्रमणैः आवर्तैः=अम्भसां भ्रमैः जलावर्तैरित्यर्थः ('स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः) सहित इव भूषणेषु = अलङ्कारेषु ये मणयः = रत्नानि तेषां किरणैः = राशिभि. रोमाञ्चेन = पुलकेन सहितः इव; चन्दनस्य ललाटिकाभि. = ललाटस्थतिलकैः [ललाटे भवः अलङ्कार इति 'कर्ण-ललाटात् कन् अलङ्कारे' वा० ४।३।६५ स्त्रीत्वं लोकात्] पटबन्धेन = वस्त्रखण्डबन्धेन सहित इव प्रतिशब्दकैः = प्रतिध्वनिभिः प्रसवेन = सन्तत्या सहित इव, प्रसादानाम् = उपहाराणाम् दानैः = वितरणैः प्ररोहैः = अंकुरैः सहित इवेति सर्वत्रोपरि उत्प्रेक्षालङ्कारः उत्सवस्य आमोदः = आनन्दः व्यजृम्भत = वृद्धि प्राप ।

स्कन्धाः—स्कन्धे = गलप्रदेशे अवलम्बमानाः = प्रेङ्खन्तः केसराणां वकुल-पुष्पाणां ['केसरे वकुलः' इत्यमर.] मालाः येषां ते (युवानः) अथ च स्कन्धे अवलम्बमानाः केसराः = गलकेशाः माला इव येषाम् ते (वाजिनः) उपमिततत्पु०, काम्बोजाः = कम्बोजदेशोद्भवा वाजिनः = अश्वा इवेत्युपमायाम्, आस्कन्दन्तः भूमिः क्षुन्दन्तः पादाभ्यां पीडयन्तः इत्यर्थः (युवानः) वलान्तः (अश्वाः), तरलाः = चञ्चलाः तारकाः = कनीनिकाः येषां ते (उभयत्र समानम्) हरिणाः = मृगा इवेत्युपमायाम् उड्डीयमानाः = उच्छलन्तः, सगरस्य = एतन्नामकराजविशेषस्य सुताः = षष्टिसहस्रसंख्यकाः पुत्राः इवेत्युपमायाम्, खनित्रैः = अवदारणैः ['खनित्रमवदारणे' इत्यमरः] खननसाधनयन्त्रविशेषैरित्यर्थः निर्दयैः = कठोरैः [उभयत्र समानम्] चरणानाम् अभिघातैः = आघातैः पीडनैरित्यर्थः भुवं = पृथिवीं दारयन्तः = खनन्तः अनेकानि सहस्राणि संख्या येषां तथाभूताः युवानः = युवकाः चिक्रीडुः = क्रीडितवन्तः । कथमपि = केनापि प्रकारेण तालेन = कर-तालदानेन अवचरन्ति = चलन्तीति तालावचराः ये चारणाः = कुशीलवाः तेषां चरणैः = पादैः पादाघातैरित्यर्थः यः क्षोभः = कम्पनं तं क्षमा = पृथिवी [क्षिति—क्षान्त्योः क्षमा' इत्यमरः] चक्षमे = (क्षम् + लिट्) सोढवती । क्षिति० क्षितिपालानां = भूपालानां कुमारकाणां = पुत्राणां खेलतां = क्रीडताम्, अन्योन्यस्य परस्परस्य

टिप्पणी—हिरण्यगर्भः—हिरण्यगर्भं ब्रह्मा को इसलिये कहते हैं कि 'हिरण्यं = हेममयाण्डं गर्भः = उत्पत्तिस्थानम् अस्य' । मनु के अनुसार सब से पहले स्वयम्भू ने जल बनाया और उनमें बीज डाला । वह बीज अण्डा बना, जिसमें हिरण्यगर्भ एक वर्ष तक रहा और तब वह अण्डा फूटकर द्विधा विभक्त हो गया । (इस सम्बन्ध में देखिए मनुस्मृति अध्या० ११ लो० (२ और १२) ।

हिन्दी—हजारों नवयुवक क्रीड़ा करने लगे—जो कन्धों पर लटकती हुई केसर-माला (माला–जैसे अयालों) वाले कम्बोज देश के घोड़ों की तरह कन्धों में केसर-माला (मौलसरी के हार) लटकाये हुए आक्रमण कर रहे थे, चंचल कनीनिकाओं वाले मृगों की तरह उछल रहे थे और कठोर कुदालों से पृथिवी को खोदने वाले सगर राजा के पुत्रों की तरह (अपने) कठोर पाद-प्रहारों से पृथिवी को खोद रहे थे । ताल के साथ चलते हुए चरणों की धमधमाहट को पृथिवी किसी तरह सहन कर बैठी । खेल करते हुए राजकुमारों के परस्पर आघातों से आभूषणों में जड़े हुए मोती टूटकर गिर पड़ते थे । सिन्दूर की रज से फिर उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ के गर्भ के रुधिर से—जैसे जगत लाल-लाल दिशाओं वाला हो पड़ता था । पटवास के धूलिसमूह से गगन-तल ऐसा शोभित होता था मानो मन्दाकिनी के हजारों रेतीले तीर प्रकट हो गए हों । पिष्टातक के पराग से पीले बने हुए आतप वाले दिन ऐसे लगते मानो जगत के हिल जाने से टूटे हुए ब्रह्म कमल के केसरों की रज-पंक्ति से रंग गए हों टक्कर लगने के कारण टूटे हुए हारों से गिरे मोतियों के समूहों पर लोग फिसल पड़ते थे ।

स्थानस्थानेषु च मन्दमन्दमास्फाल्यमान[1]लिङ्गघकेन शिञ्जानमञ्जुवेणुना झणझणायमानझल्लरीकेण ताडयमानतन्त्रीपटहिकेन वाद्यमानानुत्तानालाबु[2]वीणेन कलकांस्यकोशीक्वणितकाहलेन समकालदीयमानानुत्तालताल[3]केनातोद्यवाद्येनानुगम्यमाना:, पदे पदे झणझणितभूषणरवैरपि सहृदयैरिवा[4]नुवर्तमानताललया:, कोकिला इव मदकलकाकलीकोमलालापिन्यो विटानां कर्णामृतान्यश्लीलरासकपदानि गायन्त्य:, समुण्डमालिका:, सकर्णपल्लवा:, सचन्दनतिलका: समुच्छ्रिताभिर्वलयावलीवाचालाभिर्बाहुलतिकाभि: सवितारमिवालिङ्गयन्त्य:, कुङ्कुमप्रमृष्टिरुचिरकाया: काश्मीर-

टीका—आस्फालः आघातः आभरणेषु = भूषणेषु स्थितानीति शेषः मुक्ताफलानि = मौक्तिकानि फेलुः = (√फल् + लिट्) त्रुटित्वा पृथक् भूतानीत्यर्थः। सिन्दूर०—सिन्दूरस्य = रञ्जनद्रव्यविशेषस्य रेणुना = रजसा पुनः पुनः उत्पन्नः = जातः हिरण्यगर्भस्य = ब्रह्मणः यः गर्भः तस्य शोणितेन = रुधिरेण शोणाः रक्ताः आशाः = दिशः यस्मिन् तत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ब्रह्माण्डकपालं = जगत् अभवत्, पट०—पटवासस्य = सुगन्धितचूर्णस्य पांशोः = रजसः पटलेन = समूहेन प्रकटितं = प्रकाशितं मन्दाकिन्याः = स्वर्गङ्गायाः सैकतानां = बालुकामयतटानां सहस्रं यस्मिन् तत् इवेत्युत्प्रेक्षायां नभस्तलं = गगनतलं शुशुभे = अलसत्। विप्र०—विप्रकीर्यमाणः = प्रक्षिप्यमाणः पिष्टातकस्य = पटवासस्य सुगन्धितचूर्णस्येत्यर्थः यः परागः = धूलिः तेन पिञ्जरितः = पीतवर्णीकृतः आतपः = घर्मः येषां ते, भुवनस्य = जगतः यः क्षोभः = कम्पः तेन विशीर्णं = त्रुटितं यत् पितामहस्य = ब्रह्मणः कमलं = पद्म तस्य किञ्जल्कानां = केशराणां रजसः = परागस्य राज्या = पङ्क्त्या रञ्जिताः रंगलिप्ताः इवेत्युत्प्रेक्षायां दिवसाः = दिनानि रेजुः = [रज् + लिट्] शुशुभिरे। सङ्घट्ट०—सङ्घट्टेन = परस्पराहननेन विघटितानि = त्रुटितानि हारेभ्यः = स्रग्भ्यः पतितानि = गलितानि यानि मौक्तिक – फलानि = मौक्तिकानि तेषु लोकः = जनः चस्खाल = (√ स्खल् + लिट्) स्खलितवान्।

स्थान-स्थानेषु च······पण्यविलासिन्यः प्रानृत्यन् इत्यस्ति वाक्यम्। ० लिङ्गकेन इत्यारभ्य० तानकेनेति पर्यन्तानि तृतीयान्तानि 'अतोद्यवाद्येन' इत्यस्य विशेषणानि। स्थान०—वीप्सायां स्थानेषु स्थानेषु इत्येव वक्तुमुचितम्, भिन्नभिन्न-प्रदेशेषु मन्द-मन्दं=मृदु-मृदु यथा स्यात्तथा आस्फाल्यमानाः=ताडयमानाः आलिङ्गधकाः = यवाकाराः मृदङ्गविशेषाः (चतुरङ्गुलहीनोऽङ्ग्यान्मुखे चैकाङ्गुलेन च। यवाकृतिः स आलिङ्गच आलिङ्गच स हि वाद्यते॥ इति-शब्दार्णवः)। यस्मिन् तेन, शिञ्जान०—शिञ्जानः = [√ शिज् + शानच्] शब्दायमानः मञ्जुः मधुरः वेणुः = वंशी यस्मिन् तेन, झण०—झणझणायमाना = झणझणशब्दं कुर्वती झल्लरी = झल्लकं वाद्यविशेष इति यावत् यस्मिन् तेन। ताडय०—ताडयमानाः = वाद्यमानेत्यर्थः तन्त्रीपटहिका = तन्त्रीसंयुक्तः लघुपटहः यस्मिन् तेन, वाद्य०—वाद्यमाना अनुत्ताना = न उत्ताना निम्नमुखीत्यर्थः अलाबु – निर्मिता वीणा इत्यलाबुवीणा (मध्यमपदलोपीस०) यस्मिन् अलाबु:

टिप्पणी—आतोद्य-वाद्येन—अमरकोशानुसार आतोद्य और वाद्य दोनों पर्याय शब्द हैं। आतोद्य चार प्रकार का बताया गया है—'ततं वीणादिकं वाद्यं, आनद्धं मुरजादिकम्। वंशादिकं तु सुषिरं (सच्छिद्रं) कांस्यतालादिकं घनम् (संहतम्)।' इस तरह आतोद्य जब वाद्य ही हुआ तो वाद्य शब्द यहाँ ध्वनिपरक है अथवा यहाँ 'आम्रवृक्षवत्' चतुर्विधातोद्याभिन्न-वाद्येन' इस तरह अभेद सम्बन्ध करलें। सामान्य और विशेष का अभेद सम्बन्ध होता ही है।

हिन्दी—स्थान-स्थानों में वाराङ्गनाओं ने खूब नृत्य किया–जिनके पीछे ऐसे बाजे थे, जिनमें लम्बे मृदंग खड़काये जा रहे थे, मधुर बांसुरी बज रही थी, झांझें झनझना रही थी तारोंवाली ढोलकी ढपढप कर रही थी, नीचे मुँह वाली तुम्बी की बीन बजाई जा रही थी, मीठी कंठी करताल के साथ-साथ बड़ा ढक्का बज रहा था, और सेम काल में (हाथ से) ताल दी जा रही थी, जिनके पद-पद में सहृदय-जैसे झनझनाते भूषणों के शब्द भी ताल और लय का अनुसरण करते रहते थे, जो आनन्द में मीठे कोमल स्वर में बोलने वाली कोयलों की तरह मदिरा के नशे में मीठा कोमल आलाप भरती हुई विषयी लोगों के कानों के अमृत-रूप अश्लील रास के गाने गारही थी, जिनके शिरों में पुष्पमालायें थी, कानों में किसलय थे (माथे पर) चन्दन का तिलक था, जो ऊपर उठाई, चूड़ियों से झनझनाती हुई लता सी भुजाओं द्वारा सविता को जैसे गले लग रही थी, जो केसर मलने से चमकीली देहवाली बनी इस तरह उछल रही थी जैसे केशरों पर लोटने से चमकीली देह वाली बनी कश्मीरी बच्ची घोड़ियाँ उछला करती हैं जो नितम्ब तक लटकी

१ "मानलिङ्गकेन" २ 'अनुत्तालालाबु' ३ 'अनुत्तालालाबु०' ४ 'अनुवर्त्यमान'

किशोर्य इव वल्गन्त्यः, नितम्बबिम्बलम्बविकटकुरण्टकशेखराः प्रदीप्ता इव रागाग्निना, सिन्दूरछटाच्छुरितमुखमुद्राः शासनपट्टपङ्क्तय इवाप्रतिहतशासनस्य कन्दर्पस्य, मुष्टिप्रकीर्यमाणकर्पूरपटवासपांसुला मनोरथसञ्चरणरथ्या इव यौवनस्योद्दामकुसुमदामताडिततरुणजनाः प्रतीहार्य इव तरुणमहोत्सवस्य, प्रचलत्पत्रकुण्डला लसन्त्यो लता इव मदनचन्दनद्रुमस्य, ललितपदहंसकरवमुखराः समुल्लसन्त्यो वीचय इव शृङ्गाररससागरस्य[1], वाच्यावाच्यविवेकशून्या

टीका—तुम्बीत्युच्यते, सर्पधारकाणां पार्श्वे अलावु-वीणैव भवति, कल०-कला=मधुररचना या कांस्य=कोशी=कांस्यनिमितलघुवाद्यविशेषः तया सह क्वणिताः=शब्दं कुर्वन्तः काहलाः=वृहड्ढक्काः यस्मिन् तेन सम०-समकाले दीयमानः=क्रियमाणः इत्यर्थः अनुत्तालः=न उत्तालः=उच्चैरित्यर्थः तानः एव तानकः=स्वरः यस्मिन् तेन अतोद्य-वाद्येन=अतोद्यानां=चतुर्विध-वाद्यानां वाद्येन=ध्वनिनेत्यर्थः अनुगम्यमानाः=अनुस्त्रियमाणाः पदेपदे=प्रतिपदम् झणझणितानां=झणत्कारिणां भूषणानाम्=अलङ्काराणां रवैः=स्वनैः अपि सहृदयैः=सचेतोभिः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अनुवर्तमानौ=अनुसरन्तौ तालश्च लयश्च यासां ताः ['तालः⋯⋯कालक्रियामानं लयः साम्यमथास्त्रियाम्' इत्यमरः] अत्र अनुवृत्यमानेति साधीयः, कोकिला-मदेन=हर्षेण अन्यत्र कामविकारेण कला=अस्पष्टमधुरा या काकली=ध्वनिः ['काकली तु कले सूक्ष्मध्वनौ तु मधुरास्फुटे' इत्यमरः] तया कोमलः=मृदुः आलापः अस्ति आसाम् इति० आलापिन्यः विटानां=स्त्रीलम्पटानां विषयिणामिति यावत् कर्णयोः=श्रोत्रयोः अमृतानि=अमृतरूपाणि अश्लीलानि=ग्राम्याणि अवाच्यानीति यावत्, रासकस्य=रासस्य क्रीडाविशेषस्येत्यर्थः पदानि=गीतशब्दान् गायन्त्यः=गानविषयीकुर्वन्त्यः, मुण्डमालिकया=शिरोमालया सहिताः, कर्णपल्लवैः=कर्णाभरणकृतकिसलयैः सहिताः चन्दनस्य तिलकेन सहिताः, समु०-समुच्छ्रिताभिः=उन्नमिताभिः वलयानां=कटकानाम् आवल्या=राज्या वाचालाभिः=मुखरिताभिः बाहुभिः=भुजैः लतिकाभिः इवेत्युपमिततत्पु०। सवितारम्=सूर्यम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् आलिङ्गन्त्यः (आलिङ्गन्त्यः इति साधीयः) आश्लिष्यन्त्यः, कुङ्कुम०—कुङ्कुमे=काश्मीरजे या प्रमृष्टिः=लोठनमित्यर्थः तया रुचिरः=कायः यासां ताः काश्मीरस्य=एतन्नामकदेशविशेषस्य किशोर्यः=वालतुरग्यः इवेति श्लिष्टोपमा कुङ्कुमेन प्रमृष्टिः=प्रमार्जनं मर्दनमित्यर्थः तया रुचिरः कायः यासां ताः वल्गन्त्यः=उच्छलन्त्यः, नितम्ब०—नितम्बयोः=श्रोण्योः बिम्बे=मण्डले लम्बिन्यः=लम्बमानाः विकटाः=आयताः कुरण्टकानां=रक्तपुष्पविशेषाणां शेखराः=हारा यासां ताः रागः=काम एव अग्निः तेन प्रदीप्ताः=प्रज्वलिताः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, सिन्दूर०—सिन्दूरस्य=रञ्जकद्रव्यविशेषस्य छटाभिः=रेखाभिरित्यर्थः छुरिता=भरिता आलिखितेत्यर्थः मुखस्य=आननस्य मुद्रा=रूपम् आकृतिरित्यर्थः यासां ताः स्त्रियो हि सिन्दूरेण रेखारूपतिलकं कुर्वन्ति, तत्र कविकल्पनेयम् अप्रतिहतम्=अव्याहतं शासनम्=आदेशः यस्य तयाभूतस्य कन्दर्पस्य=मदनस्य सिन्दूरस्य छटाभिः छुरिता मुखे=अग्रभागे मुद्रा=चिह्नविशेषः 'मोहर' इति भाषायां प्रसिद्धः यासां ताः शासनपट्टस्य=आज्ञाफलकस्य पङ्क्तयः=रेखाः इवेत्युत्प्रेक्षा सा च श्लिष्टा। राज्ञामादेशपट्टेषु सिन्दूरलेपः क्रियते येन मुद्राक्षराणि सम्यग् वाच्यानि जायन्ते, सिन्दूरतिलकाङ्कितमुख्यः पण्यविलासिन्यः सर्वान् कामवशीभूतान् अकुर्वन्निति भावः, मुष्टि०—मुष्टया=बद्धकरेण प्रकीर्यमाणौ=प्रक्षिप्यमाणौ कामुकैरिति शेषः कर्पूरश्च पटवासः=पिष्टातकश्च ताभ्यां पांसुलाः=पांसुः=धूलिः आसु

टिप्पणी—अतोद्य-वाद्येन—अमरकोशानुसार अतोद्य और वाद्य दोनों पर्याय शब्द हैं। अतोद्य चार प्रकार का बताया गया है—'ततं वीणादिकं वाद्यं, आनद्धं मुरजादिकम्। वंशादिकं तु सुषिरं (सच्छिद्रं) कांस्यतालादिकं घनम् (संहतम्) ॥' इस तरह अतोद्य जब वाद्य ही हुआ तो वाद्य शब्द यहाँ ध्वनिपरक है अथवा यहाँ 'आम्रवृक्षवत्' चतुर्विध'तोद्याभिन्न-वाद्येन' इस तरह अभेद सम्बन्ध कर लें। सामान्य और विशेष का अभेद सम्बन्ध होता ही है।

हिन्दी—कुरण्टक पुष्पों की लम्बी शिरोमालाओं से ऐसी लग रही थी मानो कामानल से प्रदीप्त हो उठी हों; जो सिन्दूर की रेखाओं से भरी मुख की मुद्रा-आकृति ऐसी लग रही थी मानो अमोघ आज्ञा वाले कामदेव के सिन्दूर रेखाओं से भरे ऊपर मुद्रा (मोहर) लगे आज्ञा-पट्ट की पंक्तियाँ हों, जो मुट्ठियों से बिखरे जाते हुए कपूर और पटवास से मटमैली बनी ऐसी लग रही थी मानो यौवन के मनोरथों के चलने के लिए सड़कें हों, जो बहुत सी पुष्पमालाओं से तरुण जनों पर प्रहार करती हुई ऐसी लग रही थी मानो तरुणों के महोत्सव की प्रतिहारियाँ हों, जो हिलते हुए पत्तों जैसे कुण्डल पहने

---

1. 'शृङ्गाररसस्य'

[illegible] घनपटहरवोत्कण्टकितगात्रयष्टयः केतक्य इव कुसुमधू[illegible]गिरन्त्यः, [illegible] बालक्रीडा इव सौभाग्यस्य, दिवसमुत्फुल्लाननाः, कुमुदिन्य इव रात्रावनुपजातनिद्राः, आविष्टा इव नरेन्द्रवृन्दपरिवृताः प्रीतय इव हृदयमपहरन्त्यः, गीतय इव रागमुद्दीपयन्त्यः, पुष्टय इवानन्दमुत्पादयन्त्यः, मदमपि मदयन्त्य इव, रागमपि रञ्जयन्त्य इव, आनन्दमपि आनन्दयन्त्य इव, नृत्यमपि नर्तयमाना इव, उत्सवमप्युत्सुकयन्त्य[1] इव, कटाक्षेक्षितेषु पिबन्त्य इवापाङ्गशुक्तिभिः

टीका—अस्तीति (पांसु + लच् मतुबर्थे) धूलियुक्ताः इत्यर्थः यौवनस्य=तारुण्यस्य मनोरथानां=इच्छानां सञ्चरणःय=भ्रमणस्य रथ्याः=मार्गाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अर्थात् तारुण्यं तासु यथेच्छभोगं लभते स्म, उद्दाम०—उद्दामानि=अत्यधिकानि यानि कुसुमानां=पुष्पाणां दामानि=मालाः ताभिः ताडितः=आहतः तरुणजनः=युवकलोकः याभिः ताः तरुणानां =युवकानां महोत्सवस्य प्रतीहार्यः=द्वारपालिकाः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, प्रतीहार्यः उत्सवेषु वेत्रलताभिः लोकान् ताडयन्ति, प्रचल:—प्रचलन्ति=दोलायमानानि पत्राणि=किसलयानीव कुण्डलानि यासां ताः, प्रचलन्ति पत्राणि कुण्डलानीव यासां ताः (लताः) लसन्त्यः=नृत्यन्त्यः, वेल्लन्त्यः (लताः) मदनः=कामः चन्दनद्रुमः=चन्दनवृक्षः इव, अथ च मदनसदृशः चन्दनद्रुमः तस्य लता इव, अत्र साङ्गोपमा सा च श्लेषगर्भिता, ललित०—ललिते=रमणीये पदे चरणे यः हंसकः= नूपुरः [मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् । हंसकः पादकटकः' इत्यमरः ।] तस्य रवेण=झणत्कारेण मुखराः=वाचालिताः (पण्यविलासिन्यः) अथ च ललितं पदं=पादक्षेपः गमनमित्यर्थः येषां तथाभूताः ये हंसाः एव हंसकाः=मरालाः तेषां रवेण=ध्वनिना मुखराः (वीचयः) शृङ्गाररसः सागरः=समुद्रः इव तस्य समुल्लसन्त्यः=समुद्भासमानाः वीचयः= तरङ्गाः इव । अत्र श्लिष्टोपमा, वाच्या०—वाच्यं=वक्तुं योग्यम् अवाच्यम्=वक्तुमयोग्यञ्च तयोः विवेकेन=विविच्यज्ञानेन शून्याः=रहिताः (उभयत्र समानम्) सौभाग्यस्य=आनन्दस्येत्यर्थः बालानां क्रीडा=खेला इव उपमालङ्कारः, घन०—घनः=पटुः पटहस्य=मुरजस्य रवः=शब्दः तेन उत्कण्टकितानि=उद्गता कण्टकाः=रोमाञ्चा येषां तानि रोमाञ्चितानि इत्यर्थः गात्राणि यष्टयः इवेत्युपमिततत्पु० यासां ताः (विलासिन्यः) घनः=मेघः पटह इव तस्य यः रवः तेन उत्कण्टकिताः=सञ्जातकण्टकाः गात्र-यष्टयः यासां ताः केतक्यः=पुष्पविशेषाः इवेति श्लिष्टोपमा कुसुमानां= पुष्पाणां धूलिं=रजः उद्गिरन्त्यः=उद्वमन्त्यः, कमलि०—दिवसं=समग्रदिनम् (कालात्यन्तसंयोगे द्वि०) उत्फुल्लम्= हर्षोत्फुल्लम् अन्यत्र विकसितम् आननं=मुखम् अन्यत्र अग्रम् यासां ताः कमलिन्यः=पद्मिन्यः इव कुमु० रात्रौ=निशायां न उपजाता निद्रा=स्वापः अन्यत्र निमीलनं यासां ताः कुमुदिन्यः=कैरविण्यः इव आविष्टाः=भूतादिग्रस्ताः इव नरेन्द्राणां=राज्ञाम् नरेन्द्राणां=विषभूतादिचिकित्सकानाम् इव वृन्देन=समूहेन परिवृताः=परिगताः प्रीतयः=प्रेमाणि इव हृदयम्=मनः अपहरन्त्यः=आकर्षन्त्यः इत्यर्थः गीतयः=गीतानि इव रागं=कामम् अथ च स्वरमाधुर्यम् उद्दीपयन्त्यः=उत्तेजयन्त्यः अथ च प्रकटयन्त्यः, पुष्टयः=हृष्टपुष्टत्वानि इव आनन्दं=हर्षम् उत्पादयन्त्यः=जनयन्त्यः उपरि सर्वत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः, । मदम्=मत्तताम् अपि मदयन्त्यः=मत्तीकुर्वन्त्यः मदोऽपि तासामाश्रयणेन मत्तोभवतीति

हिन्दी—नाचती हुई मदन—जैसे चन्दन वृक्ष की चंचलताओं की तरह दिखाई देती थीं; जो सुन्दर पैरों में (पहने) नूपुरों की ध्वनि से झनझनाती हुई शृंगाररस-रूपी सागर की उठती हुई उन वीचियों की तरह थीं जो सुन्दर चाल चलते हुए हंसों की ध्वनि से मुखरित हुई रहती हैं, जो आनन्द की उन बाललीलाओं के समान थीं जिनमें क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए इसका विवेक (ज्ञान) नहीं रहता, जो नगाड़े के घन (तीव्र) शब्द से उत्कण्ठित (रोमाञ्चित) हो उठे गात्रों वाली इस प्रकार (शरीरधृत) कुसुमों की रज छोड़ रही थीं जैसे नगाड़े के समान घन (मेघ) के शब्द से उत्कण्टकित (कांटों वाली) हुई केतकियां कुसुमों की रज छोड़ा करती हैं; जिनका आनन (मुख, अग्रभाग) सारे दिन कमलिनियों की तरह प्रफुल्लित (प्रसन्न, विकसित) रहता था, जिन्हें कुमुदिनियों की तरह रात को निद्रा (नींद, कुम्हलाहट) नहीं आती थी, जो नरेन्द्रों (राजाओं) के समूह से घिरी रहती थीं जैसे कि भूत-ग्रस्त स्त्रियां नरेन्द्रों (ओझाओं) के समूह से घिरी रहा करती हैं, जो पतियों की तरह हृदय हर लेती थीं; गीतियों की तरह राग (काम, मधुर ध्वनि) को उद्दीप्त (उत्तेजित, प्रकट) कर बैठती थीं, जो पुष्टियों की तरह आनन्द प्रदान कर रही थीं, जो मद को भी मत्त बनाती हुई—जैसी, राग को भी रंजित करती हुई—जैसी, आनन्द को भी आनन्दित करती हुई—जैसी, नृत्य को भी नचाती हुई—जैसी, उत्सव को भी उत्सुक बनाती हुई—जैसी, कटाक्षों से देखने में

---

१. 'उत्सवयन्त्यः'

तर्जनेषु संयमयन्त्य इव नखमयूखपाशैः, कोपाभिनयेषु ताडयन्त्य इव भ्रूलताविभङ्गैः, प्रणयसम्भाषणेषु वर्षन्त्य इव सर्वरसान्, चतुरचङ्क्रमणेषु विकिरन्त्य इव विकारान् पण्यविलासिन्यः प्रानृत्यन् ।

अन्यत्र वेत्रिवेत्रवित्रासितजनदत्तान्तरालाः, ध्रियमाणधवलातपत्रवना वनदेवता इव कल्पतरुतलविचारिण्यः, काश्चित्स्कन्धोभयपालीलम्बमानलम्बोत्तरीयलग्नहस्ता[1] लीलादोलाधिरूढा इव प्रेङ्खन्त्यः, काश्चित्कनककेयूरकोटि-पाट्यमानपट्टांशुकोत्तरङ्गास्तरङ्गिण्य इव तरच्चक्रवाकसीमन्त्यमानस्रोतसः, काश्चिदुद्धूयमानधवलचामरसटालग्नत्रि-

टीका—भावः एवमग्रेऽपि बोध्यम् रागम् = अनुरागं कामविकारमित्यर्थः अपि रञ्जयन्त्यः = रागयुक्तीकुर्वन्त्यः आनन्दमपि आनन्दयन्त्यः = आनन्दवन्तं कुर्वन्त्यः, नृत्यमपि नर्तयमानाः = नर्तयन्त्यः, उत्सवं = महम् अपि उत्सुकयन्त्यः = उत्सुकीकुर्वन्त्यः, अत्र पूर्वक्रमानुसारेण 'उत्सवयन्त्यः' इत्येव साधीयान् पाठः, उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः 'अपि' शब्दबलात् कैमुतिक-न्यायेन अर्थापत्तिश्चापि, कटाक्षैः ईक्षितेषु = दर्शनेषु अपाङ्गदर्शनेष्वित्यर्थः अपाङ्गाः = नेत्रप्रान्ताः एव शुक्तयः = मुक्तास्फोटाः ['मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः' इत्यमरः] ताभिः पिबन्त्यः = पानविषयीकुर्वन्त्य इव, तर्जनेषु = भर्त्सनेषु अङ्गुलिद्वारेति शेषः नखानां = कररुहाणां मयूखाः = किरणाः एव पाशाः = रज्जवः = तैः संयमयन्त्यः = बध्नन्त्यः इव, कोपस्य = प्रणयकोपस्येत्यर्थः अभिनयेषु = प्रदर्शनेषु भ्रुवौ = लते इवेत्युपमिततत्पु० तयोः विभागैः = भङ्गैः ताडयन्त्यः = प्रहरन्त्यः इव, प्रणयः = अनुरागः तस्य सम्भाषणेषु = वार्तालापेषु सर्वान् = निखिलान् रसान् = शृङ्गाररसविषयक-भावानित्यर्थः [रसशब्दोऽत्र भाव-परकः] वर्षन्त्यः = अभिव्यञ्जयन्त्यः इत्यर्थः चतुराणि = नैपुण्यपूर्णानि यानि चङ्क्रमणानि = भ्रमणानि गमनानीति यावत् तेषु विकारान् = कामपरकभावान् विकिरन्त्यः = विक्षिपन्त्यः इव पण्यविलासिन्यः = पण्यस्त्रियः वाराङ्गनाः इति यावत् आनृत्यन् = नृत्यमकुर्वन् । उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

अन्यत्र⋯⋯राजमहिष्यः⋯⋯विलेसुः इत्यस्ति वाक्यम् । वेत्रि०—वेत्रिणाम् = वेत्रधारिणां कञ्चुकिनां वेत्रैः = वेत्रदण्डैः वित्रासिताः = भीषिताः विद्राविताः इत्यर्थः ये जनाः = लोकाः तैः दत्तम् = अर्पितम् अन्तरालम् = गमनाय अवकाशः याभ्यः तथाभूताः एतत् अन्यानि च 'राजमहिष्यः' इत्यस्य विशेषणानि; ध्रिय०—ध्रियमाणम् = उह्यमानं धवलानां = श्वेतानाम् आतपत्राणाम् = छत्राणां वनं = समूहः यासु ताः कल्पतरूणां = कल्पवृक्षाणां तलेषु = तलभागेषु विचरन्ति = विहरन्तीति तथोक्ताः वनदेवताः = वनाधिष्ठात्र्यः देव्यः इव काश्चित् कनक०—स्कन्धयोः = अंसयोः उभय-पालीभ्यां = द्वाभ्यां पार्श्वाभ्यां लम्बमानं = ध्रियमाणमित्यर्थः यत् लम्बं = दीर्घम् उत्तरीयं = प्रवारकः तस्मिन् लग्नौ = संसक्तौ हस्तौ यासां ताः लीलार्थं = खेलार्थं या दोला = प्रेङ्खा ताम् अधिरूढाः = अधिष्ठिताः इव प्रेङ्खन्त्यः = दोलायमानाः, कनक०-कनकस्य = हेम्नः केयूराणाम् =

टिप्पणी—कटाक्ष०—कटाक्ष के साथ देखती हुई वे पुत्तली को तो दूर पीछे कर देती थी जिससे आँखका केवल श्वेत भाग ही व्यक्त रहता था जो सीपी के पान-पात्र की तरह दिखाई पड़ता था । तर्जनेषु—तर्जन तर्जनी अंगुली से होता है । अंगुलि-नखों की बड़ी लम्बी किरणावली रस्सी जैसी दीखती थी ।

उद्धूयमान—जब चाँवरियाँ उनके 'त्रिकण्टक' में फँस जाया करती थीं तो वे उससे छूटने के लिए उधर देखतीं । उनकी काली आँखें नीलोत्पलों के समान, त्रिरत्नात्मक आभरण हंसों के दो पैरों एवं चोंच के समान, और श्वेत चावरियाँ हंसों के शरीर के समान दिखाई देते थे । स्वयं वे सरसियों की तरह थीं ।

हिन्दी—कनखियों की सीपियों से पीती हुई—जैसी, घुड़कियों में नख-किरणों की रस्सियों से बाँधती हुई—जैसी, कोप दिखाने में भ्रूलता भंगों से प्रहार करती हुई—जैसी, प्रेमालापों में सारे (शृंगार) रस को बर्षाती हुई—जैसी (अपने नृत्य के) बार-बार चक्राकार भ्रमणों से काम-विकारों को बिखेरती जाती थीं ।

दूसरी तरफ, नृत्य आरम्भ किए राजाओं की रानियाँ भी किलोलें कर बैठीं — जिनके लिए बेंतधारी कञ्चुकियों के बेंतों से डरे हुए लोगों ने स्थान दे दिया, जो ऊपर श्वेत छत्र धारण किये जाने पर ऐसी लग रही थीं मानो कल्पवृक्षों के तले विचरण करने वाली बन देवियाँ हों, जिनमें कुछ कन्धों के दोनों तरफ लटकती हुई लम्बी चादर हाथ से पकड़े हुए ऐसी लग रही थीं मानो विलास मे झूलों पर चढ़ी झूल रही हों, कुछ सोने की बाजूबन्दो की नोक से फटी जा रही रेशमी चादर पर तरगें (सिलवट) उठाती हुई नदियों का साम्य रख रही थी जिनका प्रवाह तैरते हुए चक्रवाकों द्वारा दो भागों में बाँट दिया जाता है; कुछ डुलाए जा रहे श्वेत चामरों के बालों में फँसे त्रिकण्टक की ओर विशाल कटाक्षों की

1 '०लग्ना लीला०'

कण्टकवलितविकटकटाक्षाः सरस्य इव हंसाकृष्यमाणनीलोत्पलवनाः, काश्चिच्चलच्चरणच्युतालक्तकारुणस्वेदशीकर-सिच्यमानभवनहंसाः संध्यारागरज्यमानेन्दुबिम्बा इव कौमुदीरजन्यः, काश्चित्कण्ठनिहितकाञ्चनकाञ्चीगुणाञ्चित-कञ्चुकिविकाराकुञ्चितभ्रुवः[1] कामवागुरा इव प्रसारितबाहुपाशा राजमहिष्यः प्रारब्धनृत्या विलेसुः[2]।

सर्वतश्च नृत्यतः स्त्रैणस्य गलद्भिः पदालक्तकैररुणिता रागमयीव शुशोण क्षोणी। समुल्लसद्भिः स्तनमण्डलैर्मङ्गलकलशमय इव बभूव महोत्सवः। भुजलताविक्षेपैर्मृणालवलयमय इव रराज जीवलोकः। समुल्लसद्भिर्विलासस्मितैस्तडिन्मय इवाक्रियत कालः। चञ्चलानां चक्षुषामंशुभिः कृष्णसारमया[3] इवासन्वासराः। समुल्लसद्भिः शिरीष-

टीका—अङ्गदानाम् कोटया=अग्रेण पाटयमानं-छिद्यमानं यत् पट्टांशुकं=कौशेयवस्त्रं तेन उत्तरङ्गाः=उद्गत-तरङ्गाः तरङ्गायमाणाः इत्यर्थ; तरन्तः प्लवमानाः ये चक्रवाकाः=रथाङ्गाः तैः सीमन्त्यमानं=द्विधाविभज्यमानमित्यर्थः स्रोतः=प्रवाहः यासां तथाभूताः तरङ्गिण्यः=नद्यः इव, उद्धूयमाना=सञ्चाल्यमाना धवला=श्वेतवर्णा या चामरसटा=चामरकेशसमूहः तस्यां लग्नः=संसक्तः यः त्रिकण्टकः=त्रिकोणात्मकः त्रिरत्नात्मकश्च कर्णाभरण-विशेषः ['त्रिकण्टकस्तु त्र्यश्रः स्यात्त्रिभीरत्नैश्च भूषणम्' इति शङ्करः] तस्मिन् वलिताः=गताः पर्यस्ताः इति यावत् विकटाः=विशालाः कटाक्षाः अपाङ्गदर्शनानि यासां ताः, हंसैः=मरालैः आकृष्यमाणम्=आनीयमानमित्यर्थः नीलोत्पलानां=नीलकमलानां वनं=समूहः यासु तथा-भूताः सरस्यः=सरांसि इव, चलत्०—चलन्तौ=गतियुक्तौ यौ चरणौ=पादौ ताभ्यां च्युतः=गलितः य अलक्तकः=लाक्षारसः तेन अरुणाः=रक्तवर्णाः ये स्वेद-शीकराः=स्वेदकणाः तैः सिच्यमानाः=आर्द्रीक्रियमाणाः भवनहंसाः=गृहमरालाः याभिः ताः सन्ध्यायाः=सायंकालस्य रागेण=लालिम्ना राज्यमान=रक्तवर्णीक्रियमाणम् इन्दुबिम्बं=चन्द्रमण्डलं यासु ताः कौमुद्याः=ज्योत्स्नायाः ['चन्द्रिका कौमुदी जोत्स्ना' इत्यमरः] रजन्यः=तद्युक्ताः रात्रयः, कार्तिकपौर्णमासी-रात्रयः इत्यर्थः शरदृतु—पौर्णमास्याम् एव रात्रेः उज्ज्वलतमत्वात्, गौरवर्णाः महिष्यः कौमुदीरात्रयः इव श्वेतहंसाश्च चन्द्रबिम्बतुल्याः, अलक्तक-रञ्जिताः स्वेदशीकराश्च सन्ध्याराग-सदृशाः इति भावः उपरि सर्वत्रोपमा। क०ठ०—कण्ठे=गले निहितः=स्थापितः यः काञ्चनस्य=सुवर्णस्य काञ्चीगुणः=रशनादाम अञ्चितः=निम्नमुखीकृतः इत्यर्थः यः कञ्चुकी=अन्तःपुररक्षिविशेषः तस्य विकारैः=विकृतमुखाकारैः आकुञ्चिताः=आनमिताः आकृष्टाः इत्यर्थः भ्रुवः यासां ताः, प्रसारितौ=ततौ बाहू=भुजौ एव पाशौ याभिः ताः कामस्य मदनस्य वागुरा=जालम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। राज-महिष्यः=राज्ञां महिष्यः=कृताभिषेकाः पत्न्यः प्रारब्धं=प्रक्रान्तं नृत्यं=नर्तनं याभिः ताः विलेसुः=विलासं कृतवत्यः।

सर्वतः=परितश्च नृत्यतः=नृत्यं प्रकुर्वतः स्त्रैणस्य=स्त्रीणां समूहः इति (स्त्री + नञ् 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' पा० ४।१।८७) तस्य गलद्भिः=पतद्भिः पदालक्तकैः=चरणलाक्षारसैः अरुणिता=रक्तवर्णीभूता क्षोणी=पृथिवी रागः (लालिमा, अनुरागः) एव रागमयी इवेत्युत्प्रेक्षायां शुशोण=[√शोण् (वर्ण-गत्योः) + लिट्] रञ्जिता बभूव। समुल्लसद्भिः=समुद्भासमानैः स्तन-मण्डलैः=कुचमण्डलैः महोत्सवः मङ्गल-कलशाः=माङ्गलिकघटाः एव० मयः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् बभूव=जातः, भुजौ=लते इवेत्युपमिततत्पु० तयोः विक्षेपैः सञ्चालनैरित्यर्थः जीवलोकः=संसारः मृणालानां=विसानां वलयः=कुञ्जः वाटिकेति यावत् तन्मयः इवेत्युत्प्रेक्षायां रराज=शुशुभे। समुल्लसद्भिः=समुद्भासमानैः विलासस्य=विभ्रमस्य स्मितैः=मन्दहासैः कालः=समयः तडिन्मयः विद्युन्मय इव अक्रियत=

हिन्दी—डाले हुए उन झीलों की तरह बनी हुई थीं जिनका नीलोत्पल-समूह हंसों द्वारा खींचा जाता रहता है; कुछ चलते हुए चरणों से गिरे लाक्षारस से लाल बने स्वेद-कणों द्वारा गृह-हंसों को गीला करती हुई उन (शरद् पूर्णिमा की) चाँदनी वाली रात्रियों के सदृश थीं जिनमें चन्द्र-मंडल संध्या की लालिमा से रंगा हुआ रहता है और कुछ गले में डाली सुवर्ण की करधनी से झुकाए हुए कंचुकी की झुंझलाहट पर भँवें ताने और दोनों बाहुपाशों को फैलाए ऐसी लग रही थीं मानों कामदेव की (लोगों को फँसाने की) वागुरा (जाल) हों।

चारों ओर नृत्य करती हुई स्त्रियों के समूह के पैरों के समूह से चूते हुए महावर से लाल बनी हुई भूमि राग (लाली, प्रेम)—मय जैसी रक्त वर्ण हो बैठी। चमकते हुए कुच-मंडलों से महोत्सव मंगल-घटमय-जैसा हो गया। भुज-लताओं के सञ्चालनों से जीव-जगत् मृणाल-कुञ्जों वाला जैसा शोभित हो गया। चमकते हुए विलासपूर्ण मन्दहासों से काल विद्युन्मय-जैसा बना दिया गया। चञ्चल नयनों की रश्मियों से दिन कृष्णसारमृगों वाले-जैसे हो गए। कानों में आभरण रूप पहने हुए शिरीष के फूलों के चमकते हुए गुच्छों से धूप तोतों के पूंछों वाला-जैसा हरी छटा वाला हो

1. 'विकारकुञ्चितभुवः' 2 'विरसुः' 3 'कृष्णशार०'

... शुकपिच्छमय इव ... विस्रंसमानै ... कज्जलमयमिवा-
कुसुमस्तबककर्णपूरः शुकपिच्छमय इव हरित... लक्ष्यतान्तरिक्षम् । उत्क्षिप्तैर्हस्तकिशलयैः कमलिनीमय्य इव बभासिरे सृष्टयः माणिक्येन्द्रायुधानामर्चिषा चाषपत्रमया इव चकाशिरे रविमरीचयः । रणतामाभरणगणानां प्रतिशब्दकैः किङ्किणीमय्य इव शिशिञ्जिरे दिशः । जरत्योऽप्युन्मादिन्य इव रमण्यो रेणुः । वर्षीयांसोऽपि ग्रहगृहीता इव नापत्रेपिरे । विद्वांसोऽपि मत्ता इवात्मानं विसस्मरुः । निनर्तिषया मुनीनामपि मनांसि विपुस्फुलुः । सर्वस्वं च ददौ नरपतिः । दिशि दिशि कुबेरकोषा इवालुप्यन्त लोकेन द्रविणराशयः ।

एवं च वृत्ते तस्मिन्महोत्सवे शनैः शनैः पुनरप्यतिक्रामति काले, देवे चोत्तमाङ्गनिहितरक्षासर्षपे समुन्मिषत्प्रतापाग्निस्फुलिङ्ग इव, गोरोचनापिञ्जरितवपुषि समभिव्यज्यमानसहजक्षात्रतेजसीव, हाटकबद्धविकटव्याघ्रनख-

---

निरमीयत । चञ्चलानां=तरलानां चक्षुषां=नयनानाम् अंशुभिः=किरणैः वासराः=दिवसाः कृष्णसाराः=चित्राः बिन्दुलाञ्छिताः इति यावत् मृगविशेषाः तन्मयाः इव । समुल्लसद्भिः=समुद्भासमानैः शिरीषस्य=वृक्षविशेषस्य कुसुमानां स्तवकानां=गुच्छानां कर्णपूरैः=कर्णाभरणैः आतपः=घर्मः शुकानां=कीराणां पिच्छानि=पुच्छानि एव तन्मयः इव हरिता छाया=कान्तिः यस्य तथाभूतः अभूत्=अभवत् । विस्रंसमानैः=विगलद्भिः धम्मिल्लेषु=केशपाशेषु ये तमालस्य=वृक्षविशेषस्य पल्लवाः=किसलयाः तैः अन्तरिक्षं=गगनं कज्जलमयम्=अञ्जनमयम् इव अलक्ष्यत=अदृश्यत । उत्क्षिप्तैः=उत्थापितैः हस्ताः किशलयाः=पल्लवाः इवेत्युपमिततत्पु० तैः सृष्टयः=जगत् सर्गाः संसाराः इत्यर्थः कमलिनीमय्यः=पद्मिनीमया इव बभासिरे=भासिताः अभवन् । माणिक्यानाम्=आभरणखचितरत्नानाम् इन्द्रायुधस्य=इन्द्रधनुषः इन्द्रायुधवद् विविधवर्णानाम् अर्चिषा=द्युत्या रवेः=सूर्यस्य मरीचयः=रश्मयः चाषः=पक्षिविशेषः, तत्र पत्राणि=पक्षाः तन्मयाः इव चकाशिरे= रेजुः । रणतां=शब्दायमानानाम् आभरण-गणानाम्=आभूषणसमूहानां प्रतिशब्दाः एव प्रतिशब्दकाः प्रतिध्वनयः तैः दिशः=दिशाः किङ्किण्यः=क्षुद्र-घण्टिकाः तन्मय्यः इव शिशिञ्जिरे=झणझणायिताः अभवन् । उपरि सर्वत्र उत्प्रेक्षा । जरत्यः=वृद्धाः स्त्रियः अपि उन्मादिन्यः=उन्मत्ताः रमण्यः=स्त्रियः इव रेणुः=शब्दं चक्रुः । वर्षीयांसः=अतिशयेन वृद्धाः इति [वृद्ध+ईयसुन् वर्षादेशश्च] ग्रहैः=भूतादिभिः गृहीताः=आविष्टाः इव न अपत्रपिरे=त्रपां लज्जामिति यावत् न अकुर्वन् नर्तने लज्जारहिताः जाताः इत्यर्थः । विद्वांसः बुधाः अपि मत्ताः=मदिराप्रभावग्रस्ताः इव आत्मानं विसस्मरुः=विस्मृतवन्तः. उपरि सर्वत्र उपमा अर्थापत्तिश्च । निनर्तिषया=नर्तितुमिच्छया [√ नृत्+सन्+अ+टाप्] मुनीनाम्=ऋषीणाम् अपि मनांसि=हृदयानि विपुस्फुलुः=[वि+√ स्फुल् सञ्चलने+लिट्] विस्फुलितानि सञ्चलितान्यभवन्नित्यर्थः नरपतिः=प्रभाकरवर्धनः सर्वस्वं=स्वकीयं सर्वं धनजातं ददौ=दत्तवान् ब्राह्मणेभ्यः दीनेभ्यः अनाथेभ्यश्चेति शेषः । दिशि दिशि=दिशायां दिशायां लोकेन=प्रजाजनेन कुबेरस्य कोषाः=निधयः इवेत्युत्प्रेक्षा द्रविणस्य=धनस्य राशयः=पुञ्जाः अलुप्यन्त=अलुंठयन्त अपह्रियन्तेति यावत् ।

एवं च वृत्ते...... देवी यशोमती गर्भेणाधत्त......राज्यश्रियम् इत्यस्ति वाक्यम् । वृत्ते=सम्पन्ने समाप्ते इत्यर्थः महोत्सवे, काले अतिक्रामति=गच्छति सति देवे इत्यस्य हर्षे इत्यनेन सम्बन्धः, उत्तमाङ्गे=शिरसि निहिताः=स्थापिताः

हिन्दी—गया । केशपाशों से गिरते हुए तमालवृक्ष के किसलयों से गगन कज्जलमय जैसा दिखाई दिया । उठाए हुए करपल्लवों से सृष्टियाँ कमलिनीमय जैसी शोभित हो गई । मणियों की इन्द्र धनुषों की सी (नाना वर्ण वाली) ज्योति से सूर्य की किरणें नीलकंठ पक्षी के पंख-रूप-जैसी चमक उठी । झनझनाते हुए आभूषणों के समूह की प्रतिध्वनियों से दिशाएँ घुंघुरूवाली जैसी खनखना वठीं । बूढ़ियाँ भी उन्मत्त रमणियों की तरह हल्ला मचा बैठी । बूढ़े लोग भी भूतग्रस्त जनों की तरह लज्जा खो बैठे । विद्वान् लोग भी मदिरापान करने वालों की तरह आत्म विस्मृत हो गए । मुनियों के मन भी नृत्य करने की इच्छा से फड़क गए । राजा ने सर्वस्व दान कर दिया । दिशा-दिशाओं में लोगों ने कुबेर के खजाने-जैसे धन के ढेर के ढेर लूट लिए ।

इस प्रकार उस महोत्सव के समाप्त हो जाने पर समय के बीतते देव हर्षवर्धन के धाई[1] की अंगुलि पकड़े पाँच-छः पग धरने लगने पर—जिसका शिर रक्षार्थ रखे हुए (पीले) सरसों के बीजों से देदीप्यमान प्रताप-रूपी अग्नि के कणों वाला—जैसा, जिसका गोरोचना से पीला बना हुआ शरीर प्रकट हुआ क्षत्रियोचित स्वाभाविक तेज वाला—जैसा और जिसकी सोने में जड़े विशाल बघनखों की पंक्ति से विभूषित ग्रीवा हृदय से फूटते हुए अभिमान के अंकुरों वाली—

१. 'सर्षपकणं'

पङ्क्तिमण्डितग्रीवके हृदयोद्भिद्यमानदर्पाङ्कुर इव, प्रथमाव्यक्तजल्पितेन सत्यस्य शनैः शनैरोंकारमिव कुर्वाणे, मुग्धस्मितैः कुसुमैरिव मधुकरकुलानि बन्धुहृदयान्याकर्षति, जननीपयोधरकलशपयःशीकरसेकाविव जायमानैर्विलासहसिताङ्कुरैर्दशनकैरलंक्रियमाणमुखकमलके, चारित्र इवान्तःपुरस्त्रीकदम्बकेन पाल्यमाने, मन्त्र इव सचिवमण्डलेन रक्ष्यमाणे, वृत्त इव कुलपुत्रलोकेनामुच्यमाने, यशसीवात्म[1]वंशेन संवर्ध्यमाने, मृगपतिपोत इव रक्षिपुरुषशस्त्रपञ्जरमध्यगते, धात्रीकराङ्गुलिलग्ने पञ्चषाणि पदानि प्रयच्छति हर्षे, षष्ठं वर्षमवतरति च राज्यवर्धने देवी यशोमती गर्भेणाधत्त नारायणमूर्तिरिव वसुधां देवीं राज्यश्रियम् ।

टीका—रक्षार्थं सर्षपाः=मन्त्रपूत-सिद्धार्थकाः यस्य तस्मिन् एतत् अन्यानि च तृतीयाप्रत्ययान्तपदानि हर्षे इत्यस्य विशेषणानि, समुन्मि०—समुन्मिषन्तः=उन्मीलन्तः प्रस्फुटन्तः इत्यर्थः प्रतापः=तेजः एव वह्निः तस्य स्फुलिङ्गाः=कणाः यस्मिन् तस्मिन् पीतसर्षपाः स्फुटन्तः=प्रतापाग्निकणाः इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः, गोरोच०—गरोचनया=गोपित्तनिर्मित-रञ्जक-द्रव्य-विशेषेण पिञ्जरितं=पिङ्गलीकृतं वपुः=शरीरं यस्य तस्मिन् समभिव्यज्यमानं=व्यक्तीभवत् सहजं=स्वाभाविकं क्षात्रं=क्षत्रस्य=क्षत्रियजातेरित्यर्थः इदम् इति क्षात्रम् (अण्) तेजः=वर्चः यस्य तस्मिन् इव हाटक०-हाटके=सुवर्णे ['हिरण्यं हेमहाटकम्' इत्यमरः] बद्धा=नद्धा विकटा=विशाला या व्याघ्रस्य नखानां पंक्तिः=श्रेणिः तया मण्डिता=अलंकृता ग्रीवा=गलः यस्य तस्मिन् [बहुव्रीहौ समासान्तस्य 'क' प्रत्ययस्य पूर्ववर्ती दीर्घस्वरो ह्रस्वो भवतीति ध्येयम्] हृदयात् उद्भिद्यमानाः=स्फुटन्तः दर्पस्य=गर्वस्य अंकुराः=प्ररोहाः यस्मिन् तस्मिन् इव, प्रथमा०-प्रथमं यद् अव्यक्तम्=अस्फुटं जल्पितं (भावे क्तः) जल्पनं प्रलपनमित्यर्थः तेन सत्यस्य=सत्यगुणस्य शनैः शनैः=क्रमशः ओंकारं=प्रणवं प्रारम्भमित्यर्थः इव कुर्वाणे=कुर्वति, 'ओम्' तथा 'अथ' एतौ शब्दौ मांगलिकौ प्रारम्भवाचकौ च भवतः, ओंकारेण सर्वेऽपि वेद-मन्त्राः प्रारभ्यन्ते उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा। । मुग्धैः=अनिमित्तैः स्मितैः=मन्दहासैः कुसुमैः=पुष्पैः मधुकराणां=भ्रमराणां कुलानि=समूहान् इवेत्युपमायाम् बन्धूनां=बान्धवानां हृदयानि आकर्षति=मोहयति सतीत्यर्थः, जननी०—जनन्याः=मातुः यशोमत्याः इत्यर्थः पयोधरौ स्तनौ कलशाविव अथ च पयोधराः=मेघाः कलशा इव तयोः अथ च तेषां पयः=दुग्धम् अथ च जलम् तस्य शीकराणां=बिन्दूनां सेकात्=सेचनात् इव जायमानैः=उत्पद्यमानैः विलासपूर्णहसितानि (मध्यमपदलोपी स०) अंकुराः=प्ररोहाः तैः दशनकैः=क्षुद्रदन्तैः अलंक्रियमाणं=भूष्यमाणं मुखं कमलमिव तस्मिन्, चरित्रे=चरित्रमेव चारित्रं (स्वार्थे अण्) तस्मिन् इवेत्युपमायाम्, अन्तःपुरस्य=अवरोधस्य स्त्रीकदम्बेन=स्त्रीसमूहेन पाल्यमाने=रक्ष्यमाणे मन्त्रे=मन्त्रिभिः सह परामर्शानन्तरं नृपद्वारा निर्धारिता राज्यनीतिः

टिप्पणी—जननी—यहाँ कवि एक सर्वाङ्गीण अप्रस्तुत विधान का प्रयोग कर रहा है । जननी के पयोधरों की मेघों से, स्तनपय (दूध) की मेघों के पय (जल) से, हँसी में प्रकट हुई दँतड़ियों की अंकुरों से और मुख की कमल से तुलना की गई । जिस तरह मेघ के जल के बिन्दुओं के सिंचन से कमलों के अंकुर फूट पड़ते हैं । उसी तरह मुख पर दूध के छींटे पड़ने से हँसी के कारण बच्चे के दाँत दिखाई दिए । इसे हम साङ्गोपमा कहेंगे यद्यपि अलंकार-शास्त्रियों ने साङ्गरूपक की तरह साङ्गोपमा कोई नहीं मानी है । यहाँ "विलासहसितैः दशनांकुरै" कहने में अधिक स्वारस्य बैठता है ।

हिन्दी—जैसी प्रतीत होती थी, जो पहले पहल अस्पष्ट बोलों से सत्य का आरम्भ—जैसा करने लगा था, जो भोली भाली मुस्कराहटों से बन्धुओं का हृदय ऐसा खींचने लगा था जैसे (कोई) फूलों से भ्रमरों को खींचा करता है, जिसका मुख माता के कलशों—जैसे पयोधरों (स्तनों) के पय (दूध) के बूँदों के सिंचन से जनित विलासपूर्ण मन्द हास वाली दन्तड़ियों से इस तरह अलंकृत होता रहता था जैसे कलशों के—से पयोधरों (मेघों) के पय (जल) की बूँदों से उत्पन्न अंकुरों से कमल अलंकृत हुआ करता है, जिसका पालन अन्तःपुर की स्त्रियों द्वारा उसी तरह किया जा रहा था जैसे (अपने) चरित्र का, जिसकी रक्षा मंत्रि-मंडल इस तरह किया करते थे जैसे मन्त्र—राज्य-निर्णय की, जिसे कुलीन राजपुत्र लोग इस तरह नहीं छोड़ते थे—जैसे (अपना) सदाचार, जिसे अपने कुल के लोग इस तरह संवर्धन देते रहते थे जैसे (अपने) यश को, और जिसे सिपाही लोग इस तरह शस्त्र-रूपी पिंजरे के बीच रखा करते थे जैसे सिंह शिशु को, तथा राज्यवर्धन के छठे वर्ष में प्रवेश करने लगने पर रानी यशोमती देवी राज्य श्री को इस तरह उदर (गर्भ) में रख बैठी जैसे (प्रलयकाल में) नारायण की देह पृथिवी को अपने उदर में रखा करती है ।

---

१. 'आत्मवशेन'

पूर्णेषु च प्रसवदिवसेषु दीर्घरक्तनालनेत्रामुत्पलिनीमिव सरसी, हंसमधुरस्वरां शरदमिव प्रावृट्, कुसुमसुकुमारा-वयवां वनराजिमिव मधुश्रीः, महाकनकावदातां वसुधारामिव द्यौः, प्रभावर्षिणीं रत्नजातिमिव वेला, सकलजननयनानन्दकारिणीं चन्द्रलेखामिव प्रतिपत्, सहस्रनेत्रदर्शनयोग्यां जयन्तीमिव शची, सर्वभूभृदभ्यर्थितां गौरीमिव मेना, प्रसूतवती दुहितरम् । यया द्वयोः सुतयोरुपरि स्तनयोरिवैकावलीलतया नितरामराजत ।

टीका—मन्त्रः उच्यतेऽस्मिन् इवेत्युपमायाम् सचिव-मण्डलेन=मन्त्रि-समूहेन रक्ष्यमाणे=गोप्यमाने, मन्त्ररक्षा-सम्बन्धे याज्ञवल्क्यः प्राह—'मन्त्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम् । कुर्याद् यथाऽस्य न विन्दुः कर्मणामाफलोदयात्' । [१।३४]; वृत्ते=सदाचारे इवेत्युपमायाम् कुलपुत्रकलोकेन=कुलीनराजपुत्रजनेन अमुच्यमाने=अत्यज्यमाने, यशसि=कीर्तौ इवेत्युपमायाम् आत्मवंशेन=स्वकुलेन स्वजातीयैः जनैरिति यावत् संवर्ध्यमाने=वृद्धिं प्राप्यमाणे, मृगपतेः=सिंहस्य पोते=शावके इवेत्युपमायाम् रक्षिणां=रक्षकाणां पुरुषाणां शस्त्राणि पञ्जरमिव तन्मध्यगते ।

धात्र्याः=उपमातुः करस्य अङ्गुल्यां लग्ने=संसक्ते धात्र्यङ्गुलिं गृहीत्वेत्यर्थः हर्षे=हर्षवर्धने पञ्च वा षड् वा इति पञ्चषाणि (बहुव्री०) पदानि=पादप्रक्षेपान् प्रयच्छति=भूमौ अर्पयति चलति सतीत्यर्थः राज्यवर्धने च षष्ठं वर्षं=हायनम् अवतरति=प्राप्नुवति सति, गर्भेण=उदरेणेत्यर्थः नारायणस्य=विष्णोः मूर्तिः=शरीरम् इवेत्युपमायाम् वसुधां=पृथिवीं देवीं राज्यश्रियम्=एतदाख्यां कन्याम् अधत्त=धृतवती, पुराणानुसारेण समस्तां पृथिवीं अथवा जगत् नारायणः स्वोदरे निदधाति सृष्टिकाले च बहिः निस्सारयति ।

प्रसवस्य=जननस्य दिवसेषु पूर्णेषु=पूर्णतां गतेषु (देवी यशोमती) प्रसूतवती दुहितरम् इत्यस्ति वाक्यम् । दीर्घ०—दीर्घाणि=उन्नतानि रक्तानि=रक्तवर्णानि नालानि=काण्डानि वृन्तानीति यावत् नेत्राणि=मूलानि ['स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्' जटाः वृक्षमूलम्' इत्यमरः] च यस्या ताम् उत्पलिनीं=कमलिनीम् इव सरसी=सरः, दीर्घरक्ते नालवत्=नलं=कमलं एव नालं (स्वार्थे अण्) ['नल'.......। कमलेऽपि नट्याश्च क्रमेण क्लीव—योषितोः' इति मेदिनी] तद्वत् नेत्रे यस्याः ताम् (दुहितरम्) हंस०—हंसैः=मरालैः मधुरः स्वरः=ध्वनिः यस्यां ताम्, शरदम्=शरदृतुम् इव प्रावृट्=वर्षर्तुः, हंसस्य इव मधुरः स्वरः यस्याः ताम् (दुहितरम्), कुसुम०—कुसुमैः=पुष्पैः सुकुमाराः=सुकोमलाः अवयवा=भागाः यस्याः ताम् वनराजिम्=वनपङ्क्तिम् इव मधुः=वसन्तः तस्य श्रीः=शोभा कुसुमवत् सुकुमाराः अवयवाः=हस्ताद्यानि अङ्गानि यस्याः ताम् (दुहितरम्), महा०—महता=प्रचुरेण कनकेन=सुवर्णेन अवदाताम्=देदीप्यमानां वसुधारां=धनवृष्टिं (शङ्करः) 'इयं च महाभ्युदय-सूचनाय दिवा पतति' इव द्यौः=आकाशम्, महाकनकं=तिलसुवर्ण-पुष्पविशेषः तद्वत् अवदातां=दीप्तिमतीम् (दुहितरम्), प्रभा०—प्रभां=कान्तिं वर्षति=उद्वमतीत्यर्थः इति० वर्षिणी ताम् रत्न-जातिं=रत्नपंक्तिम् इव वेला=समुद्रतटम् (समानम् वि०) सकल०—सकलानां जनानां—लोकानां नयनानाम् आनन्दं करोतीति तथोक्तां चन्द्रलेखाम्=चन्द्रकलाम् इव प्रतिपत्=प्रतिपदातिथिः, अत्र प्रतिपच्छब्देन द्वितीया तिथिः ग्राह्या प्रतिपदि चन्द्रस्यैककलायाः लोकदर्शनायोग्यत्वात्, सह०—सहस्रं नेत्राणि यस्य

हिन्दी—प्रसव के दिन पूरे हो जाने पर रानी यशोमती ने दीर्घ और रक्त नालों (डंठलों) और नेत्रों (जड़ों) से युक्त कमलिनी को उत्पन्न करनेवाली झील की तरह दीर्घ और रक्त नालों (कमलों) के सदृश नयनों वाली (पुत्री को) हंसों का मधुर स्वर लिए हुए शरद् को उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु की तरह हंस का-सा मधुर स्वर रखने वाली, कुसुमों से सुकोमल बने अंगों (भागों) को रखे हुए वन-पंक्ति को उत्पन्न करने वाली वसन्त-श्री की तरह कुसुमों—जैसे कोमल अंगों (अवयवों) वाली, महान् कनक (सुवर्ण) से जगमगाती धन-वृष्टि को उत्पन्न करने वाली द्यौ की तरह महाकनक (तिल-सुवर्ण पुष्प) की-सी दीप्ति वाली, कान्ति बिखरे हुए रत्नों की पंक्ति उत्पन्न करने वाली समुद्र-वेला की तरह कान्ति बिखेरने वाली, सभी लोगों के नेत्रों को आनन्ददायक चन्द्रकला को उत्पन्न करने वाली प्रतिपदा (? द्वितीया) तिथि की तरह सभी लोगों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली सहस्रनेत्र (इन्द्र) के देखने योग्य जयन्ती को उत्पन्न करने वाली इन्द्राणी की तरह सहस्रनेत्रों (हजारों आँखों) से देखने योग्य सभी भूभृतों (पर्वतों) द्वारा प्रार्थित पार्वती को उत्पन्न करने वाली मेना की तरह सभी भूभृतों (राजाओं) द्वारा (विवाहार्थ) मांगी जाने वाली पुत्री को रानी यशोमती ने उत्पन्न किया, दोनों पुत्रों के ऊपर (उत्पन्न) हुई जिस (पुत्री) से वह इस तरह अत्यधिक शोभित हुई जैसे दोनों स्तनों के ऊपर (पड़ी) मोतियों की एक लड़ी-सी ।

अस्मिन्नेव तु काले देव्या यशोमत्या भ्राता सुतमष्टवर्षदेशीयमुद्धूयमानकुटिलकाकपक्षकशिखण्डं खण्डपरशुहुंकाराग्निधूमलेखानुबद्धमूर्धानं मकरध्वजमिव पुनर्जातम्, एकेनेन्द्रनीलकुण्डलांशुश्यामलितेन शरीरार्धेनेतरेण च त्रिकण्टकमुक्ताफलालोकधवलितेन संपृक्तावतारमिव हरिहरयोर्दर्शयन्तम्, पीनप्रकोष्ठप्रतिष्ठितपुष्पलोहवलयं परशुराममिव क्षत्रक्षपणक्षीणपरशुपाशचिह्नितं बालतां गतम्, कण्ठसूत्रग्रथितभङ्गुरप्रवालाङ्कुरं हिरण्यकशिपुमिवोरःकाठिन्यखण्डितनरसिंहनखरखण्डम् गृहीतजन्मान्तरं, शैशवेऽपि सावष्टम्भं बीजमिव वीर्यद्रुमस्य भण्डिनामानमनुचरं कुमारयोरर्पितवान् ।

टीका—सः सहस्रनेत्रः = इन्द्रः तस्य दर्शनयोग्यां = दर्शनीयां जयन्तीम् = एतदाख्यां कन्याम् इव शची = इन्द्राणी, सहस्रैः नेत्रैः सहस्रशः लोकनयनैरित्यर्थः दर्शनयोग्याम् (दुहितरम्) सर्वं०—सर्वैः भूभृद्भिः = पर्वतैः अभ्यर्थितां = प्रार्थितां गौरीम् = पार्वतीम् इव मेना = हिमालयपत्नी सर्वैः भूभृद्भिः = राजभिः विवाहार्थं याचिताम् दुहितरम् = कन्यां प्रसूतवती = जनितवती, उपरि सर्वत्र पूर्णोपमा सा च श्लिष्टा मालारूपा च । यया = राज्यश्रिया कन्यया द्वयोः सुतयोः = राज्यवर्धन-हर्षवर्धनयोः उपरि = अनन्तरमित्यर्थः द्वयोः स्तनयोः उपरि = ऊर्ध्वम् एकावली = एकयष्टिका ['एकावल्येकयष्टिका' इत्यमरः] एकसूत्रग्रथितमौक्तिकस्रगित्यर्थः लता इवेत्युपमिततत्पु० तया यशोमती नितरां = भृशम् अराजत = शोभामवाप ।

भ्राता सुतं....'कुमारयोरर्पितवान्' इत्यस्ति वाक्यम् । सुतं = पुत्रम् ईषद् ऊनः अष्टवर्षेभ्यः इति [अष्टवर्ष + देशीयर् 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' पा० ५।३।६७] इति अष्टवर्षदेशीयः प्रायः अष्टवर्षवयोऽवस्थास्थितः तम्, एतत् अन्यानि च द्वितीयान्तपदानि सुतम् इत्यस्य विशेषणानि, उद्धूय०—उद्धूयमानः = वायुना संसर्पन् उड्डीयमानः इत्यर्थः काकपक्षः = चूडेति शङ्करः शिखण्डः = पिच्छमिव यस्य तम्, मयूर-पिच्छवत् तस्य शिखा उद्धूयते स्मेति भावः, वस्तुतस्तु 'काकपक्षः शिखण्डकः' इत्यमरकोषानुसारेण काकपक्ष-शिखण्डशब्दौ पर्यायौ एव, अतः काकपक्षशब्देन कपोलयोः गलपृष्ठभागे च लम्बमानाः केशाः ग्राह्याः शिखण्डशब्देन च चूडा (शिखा) ग्राह्या ['शिखण्डे बर्ह-चूडयोः' इति मेदिनी] खण्डपरशोः = शिवस्य ['भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः' इत्यमरः] हुङ्कारेण 'हुं' इति शब्देन यः अग्निः तस्य या धूमलेखा = धूमराजिः तया अनुबद्धः = अनुगतः आवेष्टित इति यावत् मूर्धा शिरः यस्य तम्, मकरध्वजम् = कामदेवम् इव पुनर्जातम् = पुनरुत्पन्नम्, एकेन०—एकेन इन्द्रनीलस्य = इन्द्रनीलमणेः यत् कुण्डलं = कर्णाभरणविशेषः तस्य अंशुभिः = रश्मिभिः श्यामलितेन = श्यामवर्णीकृतेन शरीरस्य अर्धेन = अर्धभागेन इतरेण = द्वितीयेन च शरीरार्धभागेन त्रिकण्टके = त्रिकोणात्मक-त्रिरत्नात्मक-कर्णाभरणविशेषो यानि मुक्ताफलानि = मौक्तिकानि तेषाम् आलोकेन = दीप्त्या धवलितेन = श्वेतीकृतेन हरिः = विष्णुः हरः = शिवश्च तयोः संपृक्तं = संयुक्तम् अवतारम् = अवतरणं मूर्तरूपे आगमनमित्यर्थः दर्शयन्तं = प्रकटयन्तम् विष्णुशिवयोः क्रमशः कृष्णश्वेतरूपत्वात् पीन०—पीने = स्थूले प्रकोष्ठे = अग्रभुजे मणिबन्धे इति यावत् प्रतिष्ठितं = स्थितं पुष्पलोहस्य = मणिविशेषस्येति शङ्करः वलयं = कटकं यस्य तम् । क्षत्रस्य = क्षत्रियजातेः क्षपणे = विनाशे क्षीणः = क्षयं प्राप्तः कुण्ठितः घृष्टः इति यावत् यः परशुः = कुठारः तस्य पाशेन = बन्धनेन गोलकेनेत्यर्थः चिह्नितम् = अङ्कितम्, अर्थात् सर्वक्षत्रियनाशकारणात् घृष्टः परशुः वलयाकारे एवावशिष्टोऽभूत्, बालतां = बालत्वं गतं = प्राप्तं बालरूपमित्यर्थः, परशुरामम् इव, परशुरामकृतक्षत्रियविनाश-सङ्केतः अस्माभिः पूर्वं स्पष्टीकृत एवास्ति, कण्ठ०—कण्ठसूत्रे = गलबद्धे

हिन्दी—इसी समय रानी यशोमती का भाई (अपने) 'भंडी' नामक पुत्र को दोनों राजकुमारों के अनुचर के रूप में समर्पित कर बैठा—जो लगभग आठ वर्ष का था, जो (हवा में) उड़ती हुई बालों की लटों एवं शिखा से ऐसा लगता था मानो फिर जन्मधारण किये हुए कामदेव हो, जिसका शिर महादेव की हुंकार की अग्नि की धूमरेखा से घिरा हुआ है जो इन्द्रनीलमणि के कुंडल की किरणों से काले बने शरीर के एक भाग से और त्रिकण्टक के मोतियों की आभा से श्वेत बने (शरीर के) दूसरे भाग से अपने को ऐसा दिखा रहा था मानो वह विष्णु और शिव का मिला-जुला अवतार हो, जो पुष्ट मणिबन्ध (कलाई) पर पुष्पलोहमणि का कड़ा रखे हुए ऐसा मालूम दे रहा था मानो क्षत्रिय जाति के काट डालने से घिसे-पिटे कुल्हाड़े के गोल चक्के से चिह्नित परशुराम हो, जो गलसूत्र में पिरोये टेढ़े-मेढ़े मूँगों के टुकड़े धारण किए ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दूसरा जन्म ग्रहण किये हुए हिरण्यकशिपु हो, जो छाती की कठोरता के कारण टूटे नरसिंह भगवान् के नखों के टुकड़ों को रख रहा है और जो बाल्यावस्था में भी अवष्टम्भ (गर्व) सहित ऐसा लग रहा था मानो अवष्टम्भ (दृढ़ पकड़) सहित शौर्य वृक्ष का बीज हो ।

अवनिपतेस्तु तस्योपरि पुत्रयोस्तृतीयस्य नेत्रयोरिवेश्वरस्य तुल्यं दर्शनमासीत्। राजपुत्रावपि सकलजीवलोकहृदयानन्ददायिनौ तेन प्रकृतिदक्षिणेन मधुमाधवाविव मलयमारुतेनोपेतौ नितरां रेजतुः। क्रमेण चापरेणेव भ्रात्रा प्रजानन्देन सह वर्धमानौ यौवनमवतेरतुः, स्थिरोरुस्तम्भौ च पृथुप्रकोष्ठौ दीर्घभुजार्गलौ विकटोरःकपाटौ प्रांशुसालाभिरामौ महानगरसंनिवेशाविव सर्वलोकाश्रयक्षमौ बभूवतुः।

टीका—तन्तौ ग्रथिताः = गुम्फिताः भङ्गुराः = कुटिलाः प्रवालाङ्कुराः = विद्रुमप्ररोहाः यस्य तम् उरसः = वक्षसः काठिन्येन = कठोरत्वेन खण्डितानि = त्रुटितानि नरसिंहस्य = नृसिंहावतारधारिणः विष्णोः नखस्य खण्डानि यस्मिन् तम् गृहीतम् अन्यत् जन्म येन तम् = पुनरुत्पन्नम् हिरण्यकशिपुम् = एतन्नामकम् असुरविशेषम् अर्थात् भंगुराः गलबद्धाः विद्रुमाः नृसिंहस्य भग्नानि नखरखण्डानि इव प्रतीयन्ते स्म, शैशवे = बालत्वे अपि सावष्टम्भम् अवष्टम्भेन = गर्वेण सहितम् अथ च दृढ़संसक्तम् वीर्य-द्रुमस्य = पराक्रमवृक्षस्य बीजम् इव उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षा बीजमिव वीर्यद्रुमस्येत्यत्र सा रूपकोत्थापिता, भण्डिः नाम यस्य तं कुमारयोः = राज्यवर्धन-हर्षवर्धनयोः अनुचरं = सेवकम् अर्पितवान् = दत्तवान् ।

अवनिपतेः = राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य पुत्रयोः = राज्यवर्धन-हर्षवर्धनयोः उपरि इव तृतीयस्य तृतीयपुत्रस्थानीयस्येत्यर्थः तस्य = भण्डेः उपरि ईश्वरस्य = महादेवस्य द्वयोः नेत्रयोः उपरि इव तृतीयस्य नेत्रस्य तुल्यं दर्शनं = दृष्टिः आसीत् अर्थात् यथा महादेवस्य नेत्रद्वयवत् तृतीयनेत्रेऽपि तुल्यं दर्शनं (दर्शनव्यापारः) भवति तथैव राज्ञः पुत्रद्वयवत् तृतीये भण्डौ तुल्यं दर्शनम् (अवेक्षणं, अवधानं स्नेह इति यावत्) आसीत् तं पुत्रवत् मन्यतेस्मेति भावः, अत्र श्लिष्टोपमा । सकलस्य = समग्रस्य जीवलोकस्य = जीवजगतः हृदयेभ्यः आनन्दं = हर्षं दत्तः इति तथोक्तौ राजपुत्रौ = राज्यवर्धन-हर्षवर्धनौ अपि प्रकृत्या = स्वभावतः दक्षिणेन = शिष्टतापूर्णेन तेन भण्डिना उपेतौ युक्तौ० दायिनौ मधुः = चैत्रश्च माधवः = वैशाखश्चेति मधु-माधवौ ['स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुः, वैशाखे माधवो राधः' इत्यमरः] प्रकृत्या दक्षिणेन = दक्षिणदिग्भवेन मलय-मारुतेन = मलयाचल-वायुना उपेतौ इव नितराम् = अत्यन्तं । रेजतुः = शुशुभाते । अत्रापि श्लिष्टोपमा । क्रमेण = शनैः शनैः अपरेण = अन्येन भ्रात्रा = सहोदरेण प्रजानाम् = लोकानाम् आनन्देन सह वर्धमानौ = वृद्धि प्राप्नुवन्तौ तौ यौवनं युवावस्थाम् अवतेरतुः = प्रापतुरित्यर्थः अर्थात् तयोः यौवनोदयेन प्रजासु आनन्दोऽभवत् अत्रोत्प्रेक्षा-सहोक्त्योः संसृष्टिः; स्थिरौ = दृढौ ऊरू = सक्थिनी स्तम्भौ = स्थूणे इव ययोः अथ च स्थिराः उरवः = विशालाः स्तम्भाः ययोः तौ, पृथू = विस्तीर्णौ प्रकोष्ठौ = मणिबन्धौ तयोः अथ च पृथवः प्रकोष्ठाः = द्वारसन्निहितकक्षाः ययोः तौ, दीर्घौ भुजौ अर्गलौ इवेत्युपमिततत्पु० ययोः अथ च दीर्घभुजवत् अर्गलौ ययोः तौ, अर्गलः = विष्कम्भः द्वारकपाटनिरोधकदण्डः इत्यर्थः विकटम् = आयतम् उरः = वक्षःस्थलं कपाटमिव ययोः अथ च विकटोरोवत् कपाटं ययोः तौ, कपाटम् = अररम् द्वारावरककाष्ठफलकमित्यर्थः ['कं = शिरः पाटयति प्रविशताम्' इति- क्षीरस्वामी] प्रांशू = उन्नतौ सालौ = सर्जौ वृक्षभेदौ इव अभिरामौ = सुन्दरौ अथ च प्रांशुना = उच्चेन सालेन = प्राकारेण नगरभित्त्येत्यर्थः ['प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः] तेन अभिरामौ, सर्वेषां लोकानां = जनानां आश्रयस्य = आश्रयदानस्येत्यर्थः क्षमौ = समर्थौ उभयत्र समानम्, महानगरस्य = महापुरस्य संनिवेशौ = भूमौ स्थाने इति यावत् बभूवतुः = जातौ । अत्रश्लिष्टोपमा ।

हिन्दी—राजा की दोनों पुत्रों के बाद उसपर तृतीय (पुत्र) की-सी ऐसी समान दृष्टि (लगाव) रही जैसे महादेव के दोनों नेत्रों के बाद तृतीय (नेत्र) में समान दृष्टि (दर्शन व्यापार) रहती है । स्वभावतः दक्षिण (शिष्टता लिए हुए) उससे युक्त, सकल जीवजगत् को आनन्द देने वाले दोनों राजकुमार भी इस प्रकार अत्यधिक शोभित होते थे जैसे स्वभावतः दक्षिण (दक्षिण दिशा से आने वाली) मलयाचल की वायु से युक्त सकल जीवजगत् को आनन्द देने वाले चैत्र और वैसाख के महीने शोभित हुआ करते हैं । दूसरे भाई-जैसे प्रजा के आनन्द के साथ-साथ धीरे-धीरे बढ़ते जाते हुए यौवन में पदार्पण कर बैठे और खम्भों-जैसी दृढ़ ऊरु (जंघायें), विस्तीर्ण प्रकोष्ठ (मणिबन्ध = कलाइयाँ) आगल-जैसी लम्बी भुजायें, किवाड़-जैसे विस्तृत वक्षस्थल वाले और सालों (विशेष वृक्षों) की तरह शोभायमान वे सभी लोगों का आश्रय देने योग्य उन महानगरों के सदृश हो बैठे, जिनके खम्भे दृढ़ और ऊरु (विशाल) प्रकोष्ठ (दरवाजे के पास के कमरे) विस्तीर्ण, अर्गल भुजा-जैसी लम्बी होते हैं एवं जो सालों (ऊँची दीवारों) से शोभायमान रहते हैं ।

अथ चन्द्रसूर्याविव स्फुरज्ज्योत्स्नायशःप्रतापाक्रान्तभुवनावभिरामौ दुर्निरीक्ष्यौ, अग्निमारुताविव समभिव्यक्ततेजोबलावेकीभूतौ, शिलाकठिनकायबन्धौ हिमवद्विन्ध्याविवाचलौ, महावृषाविव कृतयुगयोग्यौ, अरुणगरुडाविव हरिवाहनविभक्तशरीरौ, इन्द्रोपेन्द्राविव नागेन्द्रगतौ, कर्णार्जुनाविव कुण्डलकिरीटधरौ, पूर्वापरदिग्भागाविव सर्वतेजस्विनामुदयास्तमयसम्पादनसारथौ, [1]अमान्ताविवातिमानेनासन्नवेलार्गलनिरोधसङ्कटे कुकुटीरके तेजःपराङ्मुखौ छायामपि जुगुप्समानौ, स्वात्मप्रतिबिम्बेनापि पादनखलग्नेन लज्जमानौ, शिरोरुहाणामपि भङ्गेन दुःखमवतिष्ठमानौ, चूडा-

टीका—अथ ...सर्वस्यामेव पृथिव्यां... द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशतां जग्मतुः इत्यस्ति वाक्यम् । चन्द्र०—चन्द्रसूर्यौ = शशिदिवाकरौ इव स्फुरन्ती = द्योतमाना या ज्योत्स्ना = चन्द्रिका तद्वत् यशः कीर्तिश्च (द्वयोरपि धवलत्वात् प्रतापः=तेजश्च ताभ्याम् आक्रान्तम्=अधिष्ठितम् अभिभूतमिति यावत् भुवनं जगत् याभ्यां तौ अतः एव अभिरामौ सौम्यौ (चन्द्रसमत्वात्) च दुर्निरीक्ष्यौ=दुःखेन निरीक्षितुं योग्यौ च (सूर्यसमत्वात्) अग्नि०—अग्निः=वह्निश्च मारुतः वायुश्च तौ इव समभिव्यक्तं= प्रकटितं तेजः दीप्तिः अथ च प्रभावश्च बलं=वेगः अथ च सामर्थ्यं याभ्यां तौ एकीभूतौ=परस्परं सम्मिलितौ सह गच्छन्तौ इत्यर्थः । शिला०—शिलाभिः=प्रस्तरैः अथ च शिलावत् कठिनः = दृढः कायबन्धः=शरीरस्य घटनं निर्माणमित्यर्थः ययोः तौ, हिमवान्=हिमालयः विन्ध्यश्च इव अचलौ=पर्वतौ अन्यत्र दृढौ । महा—महान्तौ = विशालौ वृषौ = वृषभौ इव कृतस्य = हलाद्याकर्षणार्थं काष्ठेन निर्मितस्य युगस्य = हलादिधुरः अन्यत्र कृतयुगस्य=सत्ययुगस्य योग्यौ द्वयोः अत्यधिकधर्मशीलत्वात् अथवा वृषौ=धर्मौ ['शुक्रले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः' इत्यमरः] इव कृतयुगयोग्यौ कृतयुगे धर्मस्यैव ऐकान्तिकशासनात्; अरुण०अरुणः=सूर्यसारथिश्च गरुडः=विष्णुवाहनश्च तौ इव हरिः=सूर्यश्च हरिः=विष्णुश्चेति हरी तयोः वाहनं=नयनं देशान्तरे प्रापणमिति यावत् तस्मिन् विभक्तं=विभज्य नियुक्तं शरीरं ययोः तौ ['यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु । शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः] अन्यत्र हरिः = आशुगाजी वाहनं=गमनसाधनं ययोः तौ हरिवाहनौ च विभक्तम्=अङ्गेषु समविभागं प्राप्तम् सर्वाङ्गसुघटितमित्यर्थः शरीरं ययोः तौ च; इन्द्र०—इन्द्रश्च उपेन्द्रः=विष्णुश्च तौ इव नागानाम्=हस्तिनाम् इन्द्रे=स्वामिनि श्रेष्ठहस्तिनि ऐरावते इति यावत् अथ च नागानां सर्पाणाम् इन्द्रे=शेषनागे इत्यर्थः गतौ=स्थितौ, इन्द्रः ऐरावते विष्णुश्च शेषनागे तिष्ठतीति बोध्यम् अन्यत्र नागेन्द्रवत् = गजेन्द्रवत् गतं=(भावे क्तः) गमनं ययोः तौ गजगामिनौ इत्यर्थः कर्णा० कर्णश्च अर्जुनश्च तौ इव कुण्डलं =गोलं कर्णाभरणविशेषः किरीटं=मुकुटश्चेति कुण्डलमुकुटे तयोः धरतीति धरौ=धारकौ, कर्णस्य सूर्यदत्तं कुण्डलं सहजातमासीत् अर्जुनस्य च इन्द्रदत्तं किरीटम् इन्द्रप्रदत्तानाहार्यम् किरीटधारणकारणात् च अर्जुनस्य नामैव किरीटीति जातम् इति ध्येयम्, अन्यत्र द्वावेव कुमारौ युगपत्कुण्डलकिरीटधारिणौ आस्ताम्; पूर्वा०—पूर्वश्च पश्चिमश्च यौ दिग्विभागौ=दिशामुखे इत्यर्थः तौ इव सर्वेषां तेजस्विनाम्=ज्योतिष्पिण्डानाम् अथ च सत्त्ववताम् उदयः=उदयनम् अथ च

टिप्पणी—अमान्तौ—वे अभिमान में इतने भारी थे कि उनके सामने के लिए पृथ्वी बहुत छोटी थी क्यों कि समुद्र-वेला ने उसे फैलने के लिए रुकावट डालकर एक छोटी कुटिया-जैसी बना डाला था अर्थात् वे अपनी उच्चाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी को विना समुद्र के प्रतिबन्ध के और विस्तृत चाहते थे ।

हिन्दी—इसके अनन्तर राज्यवर्धन और हर्षवर्धन—ये दोनों नाम-शब्द सारी ही पृथिवी में विख्यात हो गए और थोड़े ही समय में अन्य द्वीपों में भी छा गये, वे दोनों भाई—जो चन्द्र और सूर्य की तरह चमकती हुई चाँदनी-जैसे यश और चमकते हुए प्रताप (तेज) जैसे प्रताप (शौर्य) से जगत् में छाये हुए सौम्य भी थे और दुर्दर्श भी थे, जो अग्नि और मारुत की तरह तेज और बल अभिव्यक्त करते हुए एक-रूप बने हुए थे, जो शिला की तरह कठोर शरीर-गठन रखे हुए इस तरह अचल (दृढ़) थे जैसे शिलाओं से कठोर शरीरगठन वाले विन्ध्य और हिमाचल अचल (पर्वत) हुआ करते हैं, जो कृतयुग [वहन करने हेतु निर्मित युग-जुआ] के योग्य, विशाल बैलों की तरह कृतयुग (सत्ययुग) के योग्य थे, जो हरि (सूर्य) और हरि [विष्णु] को ले जाने के लिए विभक्त (नियुक्त) शरीर वाले अरुण और गरुड़ की तरह हरि (तेज घोड़े) पर सवार रहते थे और सुगठित शरीर रखे हुए थे, जो नागेन्द्र (ऐरावत) और नागेन्द्र (शेषनाग) गत (स्थित) इन्द्र और विष्णु की नागेन्द्र-गत-(नागेन्द्र, गजेन्द्र) की-सी गति रखते थे, जो कर्ण और अर्जुन की तरह कुण्डल और किरीट धारण किये रहते थे, जो सभी तेजस्वियों (प्रतापी राजाओं) का उदय (उत्थान) और अस्त (पतन) करने में इस प्रकार समर्थ थे जैसे पूर्व और पश्चिमी दिग्विभाग सभी तेजस्वियों (ग्रह नक्षत्र प्रकाशपिण्डों) के उदय और

१. 'अमान्ताविवाभिमानेन'

मणिसंक्रान्तेनापि द्वितीयेनातपत्रेणापत्रपमाणौ, भगवति षण्मुखेऽपि स्वामिशब्देनासुखायमानश्रवणौ, दर्पणदृष्टेनापि प्रतिपुरुषेण दूयमाननयनौ, संध्याञ्जलिघटनेष्वपि शूलायमानोत्तमाङ्गौ, जलधरधृतेनापि धनुषा दोदूयमानहृदयौ[1], आलेख्यक्षितिपतिभिरप्यप्रणमद्भिः सन्तप्यमानचरणौ, परिमितमण्डलसन्तुष्टं तेजः सवितुरप्यबहुमन्यमानौ, भूभृदप-

टीका—उत्थानम् अस्तमयः=अस्तं गमनम् अथ च पतनं तयोः सम्पादने=विधाने समर्थौ=क्षमौ उपरि सर्वत्र श्लिष्टोपमा सा च यथासंख्यालङ्कारेण संकीर्यते, अमान्ता—अमान्तौ=मानं न लभमानौ इव अतिशयितेन मानेन=अभिमानेन एव मानेन=परिमाणेन आसन्ना=निकटा न तु दूरा या वेला=समुद्रतीरं एव अर्गलः=विष्कम्भः तेन यः निरोधः। =प्रतिबन्धः तेन सङ्कटे=सङ्कुचिते कुः=पृथिवी एव कुटीरः स एव कुटीरकः (अल्पार्थे कन्) तुच्छ-कुटीरः इत्यर्थः तस्मिन् तेजसः=प्रकाशस्य अथ च प्रतापस्य पराङ्मुखीं=विरोधिनीम् अभावे वर्तमानामित्यर्थः छायाम् अपि जुगुप्समानौ [√गुप् + सन् निन्दायाम् शानच्] विगर्हन्तौ अत्रोत्प्रेक्षार्थापत्त्यलङ्कारयोः संसृष्टिः, स्वात्म०—पादयोः =चरणयोः नखेषु लग्नेन=संसक्तेन प्रतिबिम्बितेनेत्यर्थः आत्मनः=स्वस्य प्रतिबिम्बेन अपि लज्जमानौ=त्रपमानौ अर्थात् तौ आत्मना तु दूरम् आत्मप्रतिबिम्बेनापि स्वनखपतितेन लज्जतःस्म, अत्र स्वपदम् अधिकम् आत्मपदेनैव गतार्थत्वात् अथवा स्वस्य निजस्य यः आत्मा=शरीरम् तस्य ['आत्मा पुंसि स्वभावे च शरीर-ब्रह्मणोरपि' इति मेदिनी], शिरो०—शिरोरुहाणां=केशानाम् अपि भङ्गेन=कुटिलत्वेन कुञ्चितत्वेनेति यावत् अथ च पराजयेन अथवा युद्धात् पलायनेन दुःखं=शोकम् अवतिष्ठमानौ=आश्रयन्तौ दुःखमनुभवन्तौ इति यावत् चूडा०—चूडामणौ शेखररत्ने अपि संक्रान्तेन पतितेन प्रतिबिम्बितेनेत्यर्थः द्वितीयेन आतपत्रेण=छत्रेण अपत्रपमाणौ=लज्जमानौ, अयं भावः तयोः शिरसः उपरि धृतम् राज्यचिह्नम् आतपत्रं तयोः चूडारत्नयोः प्रतिफलतिस्म, सम्राजः एकमेव छत्रं भवति तस्य साम्राज्ये (अपरस्य) द्वितीयं छत्रं नैव स्थातुमर्हतीति लज्जाकारणम्, भगवति—भगवति षण्मुखे=षट्मुखानि यस्य सः स्वामि—कार्तिकेयः =शिवपुत्रः तस्मिन् अपि (प्रयुज्यमानेन) स्वामिशब्देन असुखायमाने=सुखायेते=सुखयुक्ते भवतः इति सुखायमाने ('सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते' सि० कौ०) न सुखा० इत्यसुखायमाने श्रवणे=श्रवणेन्द्रिये ययोः तौ, अर्थात् आवामेव स्वामिनौ जगतः अस्मद्भिन्नः कार्तिकेयोऽपि स्वामिपदभागस्तीति श्रुत्वा तयोः दुःखं जायतेस्म, दर्पण०—दर्पणे=मुकुरे दृष्टेन=अवलोकितेन अपि प्रतिपुरुषेण=प्रतिफलितपुरुषेण अथ च प्रतिगतपुरुषेण प्रतिद्वन्द्विपुरुषेणेत्यर्थः दूयमाने=परितप्यमाने नयने ययोः तौ, सन्ध्या०—सन्ध्यायां=सन्ध्याकर्मणि अञ्जलेः घटनेषु=सम्पादनेषु अपि शूलायमानम्=शूलयुक्तीभवत् उत्तमाङ्गं=शिरः ययोः तौ, अर्थात् देवतावन्दनसमये कराञ्जलिविधानेन तयोः शिरःशूलं-पीडामिव अनुभवतिस्म, जल०—जलधरेण=मेघेन 'धृतेन=भृतेन अपि धनुषा=इन्द्रधनुषा दोदूयमानम्= अतिशयेन दूयते इति [दू + यङ् + शानच्] हृदयं ययोः तौ स्वातिरिक्तस्य कस्याप्यन्यस्य धनुः तौ न सहेतेस्मेति भावः, आलेख्य०—आलेख्येषु=चित्रेषु ये क्षितिपतयः=राजानः तैः अपि अप्रणमद्भिः=न प्रणामं कुर्वद्भिः सन्तप्यमानौ= सन्ताप लभमानौ चरणौ ययोः तौ. परिमित०—परिमितं=सीमितं मण्डलं=बिम्बम् अथ च विषयः देशः इत्यर्थः अथवा द्वादश-भूपालाः ['मण्डलं परिधौ देशे कोष्ठे द्वादशराजसु' इति मेदिनी] तेन सन्तुष्टं सवितुः=सूर्यस्य अपि तेजः=आतपम् अथ च प्रतापम् अबहुमन्यमानौ=न बहुमन्यमानौ न बहु महत्त्वं ददतौ इति यावत्, भूभृद०—भूभृता=पर्वतेन

हिन्दी—अस्त करने में समर्थ हुआ करते हैं, जो अपने अतिशय मान (अभिमान के परिमाण) से बिल्कुल समीप वाले समुद्र तट के आगल की रुकावट से संकुचित हुई पड़ी पृथिवी-रूपी कुटिया में न समाते हुए—जैसे तेज (प्रकाश, शौर्य) के विमुख जाने वाली छाया से भी घृणा किया करते थे, जो पैरों के नखों में पड़े अपने प्रतिबिम्ब से भी लजाते थे, जो बालों के भी भंग (टेढ़ापन, पराजय) से भी दुःखी हो जाते थे, जो अपने शेखर मणि में प्रतिछाया-रूप में भी पड़े दूसरे छत्र से लज्जित हो पड़ते थे, जिनके कान भगवान् कार्तिकेय के लिए भी प्रयुक्त स्वामि-शब्द से विषाद को प्राप्त हो जाते थे, जिनकी आँख दर्पण देखे हुए भी प्रतिपुरुष (प्रतिबिम्ब-रूप पुरुष, प्रतिद्वन्द्वी पुरुष) से दुखने लग जाती थी, जिनके शिर में सन्ध्यावन्दन के समय अंजलि बाँधने से भी शूल की-सी पीड़ा हो जाती थी, जिनका हृदय मेघ द्वारा धारण किए हुए भी (इन्द्र) धनुष से तड़प उठता था, जिनके चरण प्रणाम न करते हुए चित्रगत राजाओं से भी संतप्त हो जाते थे, जो सीमित मण्डल (बिम्ब देश) से सन्तुष्ट हुए सूर्य के तेज को भी अधिक महत्त्व नहीं दिया करते थे, जो भूभृत

१. 'दोधूयमान०'

हृतलक्ष्मीकं सागरमप्युपहसन्तौ, बलवन्तमकृतविग्रहं मारुतमपि निन्दन्तौ, हिमवतोऽपि चमरीबालव्यजनवीजितेन दह्यमानौ, जलधीनामपि शङ्खैः खिद्यमानौ, चतुःसमुद्राधिपतिमपरं प्रचेतसमप्यसहमानौ, अनपहृतच्छत्रानपि विच्छायानवनिपालान्कुर्वाणौ, साधुष्वप्यसेवितप्रसन्नौ मुखेन मधु क्षरन्तौ, दुष्टराजवंशानूष्मणा दूरस्थितानपि म्लानिमानयन्तौ, अनुदिवसं शस्त्राभ्यासश्यामिकाकलङ्कितमशेषराजकप्रतापाग्निनिर्वापणमलिनमिव करतलमुद्वहन्तौ, योग्याकालेषु धीरधनुर्ध्वनिभिरभ्यर्णोपभोगाद्दिग्वधूभिरिवालपन्तौ, राज्यवर्धन इति हर्ष इति सर्वस्यामेव पृथिव्यामाविर्भूतशब्दप्रादुर्भावौ, स्वल्पीयसैव कालेन द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशतां जग्मतुः ।

मन्दराचलेनेत्यर्थः अथ च भूभृद्भिः = राजभिः अपहृता = अपनीता लक्ष्मीः = रत्नादिसम्पत्तिः अथ च राजश्रीः यस्य तम् सागरम् = समुद्रम् अपि उपहसन्तौ = उपहासास्पदीकुर्वन्तौ, बलवन्तम् = वेगयुक्तं सेनायुक्तं च न कृतः विग्रहः = शरीरम्, युद्धश्च येन तं मारुतम् = पवनम् अपि निन्दन्तौ = विगर्हन्तौ वायुर्वेगवान् शरीररहितश्चेति ध्येयम्, अपरपक्षे सेनासहितोऽपि न विग्रहं (युद्धं) कृतवान् इति तं धिक् इति भावः, हिम० — हिमवतः = हिमालयस्य चमरीणां = गोविशेषाणां यत् बालव्यजनं 'पुच्छकेशव्यजनम्' तेन यत् वीजितं = (भावे क्तः) वीजनं तेन दह्यमानौ = सन्तप्यमानौ तौ आत्मानमेव चामरवीजनाधिकारिणौ मन्येतेस्मेति भावः, जलनिधीनां = सागराणाम् अपि शङ्खैः = कम्बुभिः अथ च निधिविशेषैः ['पद्मशङ्खादयो निधेः' इत्यमरः] खिद्यमानौ = दुःखमनुभवन्तौ, चतुः० — चतुर्णां समुद्राणाम् अधिपतिं = स्वामिनम् अपरं = ताभ्यां भिन्नप्रचेतसम् = वरुणम् अपि असहमानौ = न मृष्यन्तौ, समुद्राणामपि पतिः हर्षः इत्याशयः। उपरि सर्वत्र अपि शब्दबलात् कैमुतिकन्यायेन अर्थापत्तिरलङ्कारः स च क्वचित् क्वचित् श्लेषगर्भितः, अनप० — न अपहृतानि = अप = अपनीतानि छत्राणि = आतपत्राणि येषां तान् अपि अवनिपालान् = भूपालान् विच्छायान् = विगता छाया = अनातपः येषां तान्, विजित्य भूपालाः पुनः स्वराज्ये स्थापिताः छत्रादिकञ्च दत्तम् किन्तु छायारहिताः कृताः, अत्र छत्रत्वेऽपि छायारहिता इति विरोधः विगता छाया = कान्तिः येषामित्यर्थे तत्परिहारः, साधु० — साधुषु = सज्जनेषु अपि असेविता = न पीता इत्यर्थः प्रसन्ना = सुरा ['सुरा हलिप्रिया हाला'। गन्धोत्तमा-प्रसन्नेरा-कादम्बर्यः परिस्रुता' इत्यमरः] याभ्यां तौ मुखेन मधु = सुरां क्षरन्तौ = स्रावयन्तौ, याभ्यां सुरा न पीता तौ कथं स्वमुखेन साधुषु सुरां क्षरिष्यतः इति विरोधः तत्परिहारस्तु साधुषु असेवितं = न सेवितं = (भावे क्तः) सेवा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा विना सेवया इत्यर्थः प्रसन्नौ = कृतप्रसादौ, अथ च मुखेन = वाण्या इत्यर्थः मधु = माक्षिकं मधुवन्माधुर्यमित्यर्थः क्षरन्तौ मधुरभाषिणौ इत्यर्थः, दुष्ट० दुष्टाः — राजान एव वंशाः = वेणवः तान् ऊष्मणा = तापेन दूरस्थितान्

टिप्पणी — परिमितमण्डल — मंडल देश को कहते हैं, किन्तु इस शब्द का राजनैतिक अर्थ ही यहाँ लेना ठीक रहेगा। मण्डल बारह राजाओं के घेरे को कहते हैं जो किसी राजे के आस-पास बना हुआ करते हैं। आप्टे ने कामन्दक के अनुसार वे बारह इस तरह गिनाये हैं — प्रथम विजिगीषु अर्थात् केन्द्रस्थ राजा, पाँच वे राजे होते हैं जिनके राज्य आगे रहते हैं, चार ऐसे हैं, जिनके राज्य पीछे रहते हैं, एक मध्यम अर्थात् मध्यवर्ती और एक उदासीन अर्थात् तटस्थ रहता है।

हिन्दी — (मन्दराचल, राजा) द्वारा ले-जाई गई लक्ष्मी (रत्नादि, राजश्री) वाले समुद्र का भी उपहास किया करते थे जो चमरी गायों द्वारा पूछों का बाल-व्यजन डुलाये जाने के कारण हिमालय से भी जला करते थे, जो चारों समुद्रों के दूसरे अधिपति वरुण को भी नहीं सहन करते थे, जो छत्र न छीने जाते हुए भी राजाओं को छाया-रहित करते रहते थे, नहीं ऐसी बात नहीं — उन्हें कान्ति-रहित करते रहते थे, जो बिना प्रसन्ना (मदिरा) का सेवन किये हुए भी सज्जनों पर मुख से मधु (मदिरा) उगलते रहते थे, नहीं ऐसा नहीं हो सकता (वे) बिना सेवा के ही प्रसन्न हुए सज्जनों पर मुख (वाणी) से मधु (माधुर्य) बरसाते रहते थे, जो दूर पड़े हुए भी दुष्ट राजे-रूपी वंशों (बाँसों) को ऊष्मा (गर्मी से मुरझा देते थे। नहीं, नहीं — दुष्ट राजाओं के वंशों (कुलों) को दूर रहते हुए भी ऊष्मा (प्रताप) से गिरा दिया करते थे, जो प्रतिदिन शस्त्राभ्यास के कारण कालिमा से चिह्नित करतल धारण करते हुए ऐसे लग रहे थे मानो वह (करतल) सभी राज-गण की प्रतापाग्नि बुझा देने के कारण काला पड़ा हुआ हो, और जो सैनिक अभ्यासों के समय धनुष की गम्भीर टंकारों से ऐसे लगते थे मानो अभी-अभी किये सम्भोग के कारण वे दिशा-रूपी वधुओं के साथ वार्तालाप कर रहे हों।

एकदा च तावाहूय भुक्तवानभ्यन्तरगतः पिता सस्नेहमवादीत्—'वत्सौ, प्रथमं राज्याङ्गं दुर्लभाः सद्भृत्याः। प्रायेण परमाणव इव समवायेष्वनुगुणीभूय द्रव्यं कुर्वन्ति पार्थिवं क्षुद्राः। क्रीडारसेन नर्तयन्तो मयूरतां नयन्ति बालिशाः। दर्पणमिवानुप्रविश्यात्मीयां प्रकृतिं संक्रामयन्ति पल्लविकाः[1]। स्वप्ना इव मिथ्यादर्शनैरसद्बुद्धिं जनयन्ति

टीका—=दूरस्थान् अपि म्लानिं=म्लानताम् आनयन्तौ=प्रापयन्तौ, ऊष्मणा निकटस्थः एव म्लानी-क्रियते न तु दूरस्थः इति विरोधः तत्परिहारश्च दुष्टराजानां वंशाः=कुलानि तान् ऊष्मणा=स्मयेन प्रतापेनेत्यर्थः म्लानिं=पतनम्, उपरि सर्वत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः राजवंशपदे च रूपकोत्थापितः, अनु०—दिवसे दिवसे इत्यनुदिवसम् (अव्ययीभावः) शस्त्राणां=आयुधानाम् यः अभ्यासः=पुनः पुनः प्रयोगः तेन या श्यामिका=हस्तयोः कालिमा तया कलङ्कितं=चिह्नितम् अशेषं निखिलं यत् राजकं=राज्ञां समूहः ['अथ राजकम्, राजन्यकं च नृपति-क्षत्रियाणां गणे क्रमात्' इत्यमरः] तस्य प्रतापः=पराक्रमः इत्यर्थः एव अग्निः वह्निः=तस्य निर्वाणेन=शमनेन मलिनं=मलीमसम् इवेत्युत्प्रेक्षायां करतलं=हस्ततलम् उद्वहन्तौ=धारयन्तौ, योग्या०योग्या=अभ्यासः तस्याः कालेषु=सैनिकाभ्याससमयेषु इति यावत् धीरैः=गम्भीरैः धनुषः ध्वनिभिः टङ्कारैरित्यर्थः अभ्यर्णः=सन्निहितः यः उपभोगः=सम्भोगः तस्मात् किञ्चित्पूर्वकृतोपभोगानन्तरमित्यर्थः दिशः एव वध्वः ताभिः सह इवेत्युत्प्रेक्षा सा च रूपकोत्थापिता आलपन्तौ=संलापं कुर्वन्तौ, धनुष्टङ्कार-ध्वनिः दिग्वधूभिः संलापत्वेनोत्प्रेक्ष्यते। आविर्भूतः शब्दस्य प्रादुर्भावः=प्रसारः इत्यर्थः ययोः तौ, स्वल्पीयसा=अतिशयेन स्वल्पेन (ईयसुन्) कालेन=समयेन अन्ये द्वीपाः इति द्वीपान्तराणि तेषु अपि प्रकाशतां=ख्यातिमित्यर्थः जग्मतुः=प्रापतुः।

एकदा तौ=राज्यवर्धन-हर्षवर्धनौ आहूय=आकार्य भुक्तवान्=कृतभोजनः इत्यर्थः अभ्यन्तरगतः=अन्तःस्थितः पिता=प्रभाकरवर्धनः सस्नेहं=स्नेहसहितं यथा स्यात्तथा अवादीत्=अकथयत्—वत्सौ=पुत्रौ इत्यर्थः प्रथमं=मुख्यं राज्यस्य अङ्गम्=अवयवः सहायाः इत्यर्थः दुर्लभाः दुःखेन प्राप्तव्याः सद्भृत्याः=सदाचारनिष्ठावन्तः सचिवादयः सेवकाः 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्याङ्गानि' इत्यमरकोषानुसारेण सप्तराज्याङ्गानि भवन्ति। प्रायेण=बहुलम् क्षुद्राः=परमलघवः निरवयवाः इति यावत् परमाणवः=जगत्कारणभूतानि पृथिव्यादीनां सूक्ष्मतत्त्वानि समवायेषु=समवायनामक-नित्यसम्बन्धेषु अनुगुणीभूय=अनुकूलीभूय पार्थिवं=पृथिवी-सम्बन्धि-द्रव्यं=कार्यरूपं द्व्यणुकादिकं इव क्षुद्राः=नीचराजभृत्याः समवायेषु=संगतिषु अनुगुणीभूय पार्थिवं=राजानं द्रव्यं=धनं धनदोहनसाधन-

टिप्पणी—परमाणवः पार्थिवं द्रव्यम्—यहाँ ग्रन्थकार न्यायवैशेषिकसिद्धान्त की ओर संकेत कर रहा है। उनके अनुसार परमाणुओं से जगत् का निर्माण होता है। दो परमाणुओं में अदृष्ट प्रेरणा से क्रिया होती है और वे मिलकर आदिकार्य द्व्यणुक को उत्पन्न करते हैं द्व्यणुक से त्र्यणुक और त्र्यणुक से चतुरणुक क्रम से फिर स्थूल जगत् बनता है द्व्यणुक का परमाणुओं से समवाय सम्बन्ध है जो नित्य-सम्बन्ध कहलाता है। पार्थिव द्रव्य द्व्यणुकादि परमाणुओं में समवाय-सम्बन्ध से रहता है। न्याय में द्रव्य गुणक्रियाश्रय पृथिवी-जल-तेज-वायु आदि पदार्थ को कहते हैं समवाय का साधारण अर्थ होता है मेल साथ रहना अर्थात् संगति।

हिन्दी—भोजन किये हुए (और) अन्तःपुर में बैठे पिता ने एक बार दोनों—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन—को बुलाकर स्नेह के साथ कहा—बच्चों! राज्य का सबसे मुख्य अंग है निष्ठावान भृत्य जो दुर्लभ होते हैं, प्रायः (देखने में आता है कि) जिस प्रकार क्षुद्र (परम लघु) परमाणु समवाय (नित्यसम्बन्धविशेष) में अनुकूल होकर पार्थिव द्रव्य [द्व्यणुकादि] को बनाते हैं, उसी तरह क्षुद्र लोग (राजा के) समवाय (संगति) में अनुकूल होकर पार्थिव (राजा) को द्रव्य-द्रव्यदोहनसाधन—बना लिया करते हैं। खेल की इच्छा से (किसी बालक को) मोर बनाकर नचाने वाले बालिशों (बच्चों) की तरह बालिश (मूर्ख-धूर्त लोग) अबोध राजा को (इच्छानुसार) नचाते हुए मोर बना दिया करते हैं। दर्पण में प्रविष्ट होकर अपनी प्रकृति (शरीर) को उसमें संक्रमित (प्रतिफलित) करने वाली पल्लविकाओं (पत्तियों) की तरह पल्लविक (कामुक लोग) (राजा के हृदय में प्रविष्ट होकर) अपनी प्रकृति (स्वभाव) उसमें संक्रमित (आरोपित) कर देते हैं। जिस प्रकार स्वप्न मिथ्यादर्शनों (झूठे पदार्थ दिखाने) से असद्बुद्धि

---

१. 'पल्लवकाः'

विप्रलम्भकाः। गीतनृत्यहसितैरुन्मत्ततामावहन्त्युपेक्षिता विकारा इव वातिकाः। चातका इव तृष्णावन्तो न शक्यन्ते ग्रहीतुमकुलीनाः। मानसे मीनमिव स्फुरन्तमेवाभिप्रायं गृह्णन्ति जालिकाः। यमपट्टिका इवाम्बरे चित्रमालिखन्त्युद्गीतकाः। शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः। यतः सर्वदोषाभिषङ्गरसङ्गतो बहुधोपधाभिः परीक्षितो शुचो विनीतो

टीका–मित्यर्थः कुर्वन्ति अर्थात् स्वार्थिनो भृत्याः राज्ञः सन्निधौ स्थित्वा प्रतिध्वनिरिव वचनमनुसरन्तः तदनुकूलाश्च भूत्वा चाटूक्तिभिः तस्मात् द्रव्यदोहनं कुर्वन्ति न तु वास्तविकीं राज्यसेवाम्, वालिशाः = बालाः अथ च मूर्खाः क्षुद्राः इति यावत् ['शिशावज्ञे च वालिशः' इत्यमरः] क्रीडायाः = खेलायाः रसेन = रुच्या नर्तयन्तः = नृत्यं कारयन्तः बालान् भूपालांश्च मयूरतां नयन्ति = मयूरीकुर्वन्तीत्यर्थः अर्थात् क्षुद्रभृत्याः अबोधं राजानं स्वहस्तक्रीडनकं कुर्वन्ति यथा बालाः कमपि बालं मयूरवत् नर्तितुं प्रेरयन्ति। पल्लविकाः = विटाः धूर्ताः इति यावत् ['पल्लविको विटः' इति क्षीरस्वामी] अथ च लघुकिसलयाः दर्पणम् = मुकुरम् इव (राज्ञः हृदयम्) अनुप्रविश्य = तं स्वप्रभावे आनीयेत्यर्थः अन्यत्र गत्वा आत्मीयां = स्वीयां प्रकृतिं = स्वभावम् अन्यत्र बिम्बम् = शरीरमित्यर्थः संक्रामयन्ति = संक्रमितं कुर्वन्ति अर्थात् राज्ञः स्वभावम् आत्मस्वभाववत् कुर्वन्ति, पल्लवाः अपि दर्पणे प्रविश्य तत्र आत्म-बिम्बं संक्रामयन्ति विप्रलम्भकाः = प्रतारकाः वञ्चकाः कितवाः इति यावत् स्वप्नाः = निद्रायां जायमानाः विषयानुभवाः इव मिथ्यादर्शनैः = मिथ्याजीवनसिद्धान्तैः अन्यत्र अलीकवस्तु-प्रकाशनैः असद् बुद्धिम् = असतीं अशुभां बुद्धिं = विचारानित्यर्थः अन्यत्र असतः = अवर्तमानस्य पदार्थस्य बुद्धिं = ज्ञानं जनयन्ति = उत्पादयन्ति। वातिकाः धूर्ताः वातिकाः = वातोत्थिताः विकाराः = रोगाः इव अपेक्षिताः = अनुचरिताः अदत्तावधानाः इति यावत् सन्तः नृत्यं च गीतं च हसितं च तैः उन्मत्तताम् आवहन्ति = उन्मत्तीकुर्वन्तीत्यर्थः। अकुलीनाः —कुः = पृथ्वी तस्यां न लीनाः = न स्थिताः इत्यर्थः आकाशचारिणः इति यावत् तृष्णा = जलपिपासा एषाम् अस्तीति तथोक्ताः चातकाः पक्षिविशेषाः इव अकुलीनः = नीचकुलोत्पन्नाः इत्यर्थः जनाः तृष्णा = गर्धः धनविषयकेच्छेति यावत् एषामस्तीति, धनलोभिनः सन्तः ग्रहीतुम् हस्तसात्कर्तुम् अन्यत्र शमयितुं न शक्यन्ते तथैव धन-गृध्नवो नीचपुरुषाः धनेन न आवर्जयितुं शक्यन्ते दुर्हृदयत्वात् इति भावः। जालिकाः = जालेन चरन्तीति (जाल + ठन् 'पर्पादिभ्यष्ठन्' पा० ४।४।१०) कैवर्ताः = धीवराः इति यावत् मानसे = मानससरोवरे स्फुरन्तम् = जले चलन्तं मीनं = मत्स्यम् इव = जालिकाः = छलिनः मानसे = मनसि राज्ञः इति शेषः स्फुरन्तम् = उत्तिष्ठन्तम् = उत्पद्यमानमित्यर्थः। अभिप्रायम् = आशयम् गृह्णन्ति = एकत्र जलद्वारा हस्तसात्कुर्वन्ति अन्यत्र अवगच्छन्ति राज्ञः सरलहृदयत्वात्। सति कार्ये हि सर्वे एव मनोभिप्रायं लक्षयन्ति, एते तु प्रागेवेति भावः

टिप्पणी—उपधा—भृत्यों की धर्मादि द्वारा परीक्षा लेने के उपाय को उपधा कहते हैं जैसे कहा हुआ भी है—'उपेत्याधीयते यस्मादुपधेति ततः स्मृतः।' उपाय उपधा ज्ञेया तथा भृत्यान् परीक्षयेत्। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्' नाम एक अध्याय ही दे दिया है। उन्होंने चार उपधायें कही हैं—धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा।

हिन्दी–(अविद्यमान वस्तुओं का ज्ञान) करा देते हैं, उसी तरह वञ्चक लोग भी मिथ्या दर्शनों (झूठे जीवन-सिद्धान्तों) से (राजा में) असद्बुद्धि (अशुभ विचारधारा) उत्पन्न कर देते हैं। जिस प्रकार उपेक्षा किए हुए वातिक (वायुजनित) विकार गीत, नृत्य और हास से (मनुष्यों में) उन्माद कर देते हैं, उसी तरह वातक (धूर्तलोग)—यदि उनकी उपेक्षा कर दी जाय—गीत, नृत्य और हास से (राजा को) उन्मत्त कर बैठते हैं। अकुलीन (पृथिवी में न स्थित = गगनचारी) तृष्णावान् (प्यासे) चातकों की तरह तृष्णावान् (धन के लोभी) अकुलीन (हीनकुलोत्पन्न) लोग वश में नहीं किये जा सकते हैं। मानस (सरोवर- विशेष) में चलती मछली को ग्रहण करलेने वाले जालिकों (धीवरों) की तरह जालक (जाल-साज) मानस (मन) में कौंधते ही (राजा के) अभिप्राय को ग्रहण कर लिया करते हैं। जिस प्रकार ऊँचे स्वर से गाते हुए यम-पट्टधारी अम्बर (कौषेय-वस्त्र) पर (नरकादि का) चित्र खीचते हैं वैसे ही ऊँचे स्वर में (स्तुति-गीत) गाते हुए धूर्त लोग अम्बर (आकाश) में चित्र खींचा करते हैं। हृदय में शल्य (नोक) चुभा देने वाले अतिमार्गणों (तीक्ष्ण बाणों) की तरह अतिमार्गण (बड़ी-बड़ी मांग करने वाले) धूर्त लोग (राजा के) हृदय में शल्य (शल्य की-सी वेदना) उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिए उक्त सभी दोषों के सम्पर्क से रहित, बहुधा विविध-प्रकारों से परखे हुए पवित्र, विनीत

विक्रान्तावभिरूपौ मालवराजपुत्रौ भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्तमाधवगुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ, अनयोरुपरि भवद्भ्यामपि नान्यपरिजनसमवृत्तिभ्यां भवितव्यम्' इत्युक्त्वा तयोराह्वानाय प्रतीहारमादिदेश।

न चिराद्द्वारदेशनिहितलोचनौ राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तम्, अग्रतो ज्येष्ठमष्टादशवर्षवयसं नात्युच्चं नातिखर्वमतिगुरुभिः पदन्यासैरनेकनरपतिसञ्चरणचलां निश्चलीकुर्वाणमिवोर्वीम् अनवरताभ्यस्तलङ्घनघनोपचयकठिनमांसमेदुरादूरुद्वयान्निष्पततेवानुल्बणजानुग्रन्थिप्रसूतेन तनुतरजङ्घाकाण्डयुगलेन भासमानम्, उल्लिखित-

---

टीका–उद्गीतका = उच्चैः गीतं येषां ते उच्चैः गायन्तः इत्यर्थः यमपट्टिकाः = यमस्य = यमराजस्य पट्टिका = चित्रफलकं येषां ते गृहीत-पट्ट-लिखित-सपरिवार-धर्मराजाः इति शङ्करः अर्थात् फलके यमं तद्दीयमान-यातनाः अनुभवतां नरकस्थितानां प्राणिनां च चित्राणि आलिखन्तो ये लोकान् दर्शयन्ति ते इव अम्बरे = वस्त्रे वस्त्रफलके इत्यर्थः चित्रम् आलेख्यम्, अन्यत्र उद्गीतकाः = उच्चैः स्तुतिगायकाः धूर्ताः चाटुकाराः इत्यर्थः अम्बरे = आकाशे चित्रम् असंभाव्यमानान् पदार्थान् आलिखन्ति = चित्रयन्ति अर्थात् धूर्ताः असंभाव्यमपि अर्थम् सरलहृदयस्य राज्ञः समक्षं सम्भाव्यमानत्वेन प्रतिपादयन्ति; राजानं मृगतृष्णाम्भसि स्नपयन्तीति यावत्। अतिमार्गणाः अत्यन्ततीक्ष्णाः बाणाः इव अतिमार्गणाः = अतिशयेन याचकाः ['कलम्बमार्गणशराः' 'मार्गणौ याचकार्थिनौ' इत्यमरः] हृदये शल्यम् = बाणाग्रम् फलिकामिति यावत् अन्यत्र शल्यमिव वेदनां निक्षिपन्ति = आदधति। उपरि सर्वत्र श्लिष्टोपमा। सर्वैः दोषाणाम् = अवगुणानाम् अभिषङ्गैः = सम्पर्कैः असङ्गतौ = रहितौ बहुधा = बहुवारम् उपधाभिः धर्माद्यैः परीक्षणैः ['उपधा धर्माद्यैर्यत् परीक्षणम्' इत्यमरः] परीक्षितौ = कृतपरीक्षौ शुची = शुद्धाचरणौ इत्यर्थः विनीतौ विनयोपेतौ विक्रान्तौ = विक्रमशीलौ, शरीरात् अव्यतिरिक्तौ = अभिन्नौ यौ भुजौ = बाहू इव कुमारगुप्तश्च। टी ।—माधवगुप्तश्च नामनी ययोः तौ भवतोः = युवयोः अनुचरतीति अनुचरः = सहचरः तस्य भावः तत्त्वम् तस्मै इति अनुचरत्वार्थम्, [इमौ = एतौ निर्दिष्टौ = सूचितौ इत्यर्थः। भवद्भ्याम् = युवाभ्याम्] न अन्येन परिजनेन = भृत्यवर्गेण समा = तुल्या वृत्तिः = वर्तनं ययोः ताभ्याम् भवितव्यम् अर्थात् विशिष्टव्यवहारः कर्तव्यः इति उक्त्वा = कथयित्वा तयोः = कुमारयोः आह्वानाय = आकरणाय प्रतीहारं = दौवारिकम् आदिदेश = आज्ञप्तवान्।

नचिरात्''''राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तम् अग्रतो ज्येष्ठं''''कुमारगुप्तं, पृष्ठतस्तस्य कनीयांसं''''माधवगुप्तं ददृशतुः इत्यन्ति मुख्यवाक्यम्। नचिरात् = शीघ्रमेव द्वारदेशे निहिते प्रेरिते इत्यर्थः लोचने = नयने याभ्याम् तौ, प्रतीहारेण = द्वारपालेन सह प्रविशन्तम् = आगच्छन्तम्, अग्रतः = पुरतः ज्येष्ठम् = आयुषा वर्षिष्ठम् अष्टादशवर्षाणि वयः = अवस्था यस्य तम्, न अति उच्चं न अति खर्वम् = ह्रस्वम् अतिशयेन गुरुभिः = भारिभिः पदन्यासैः = पादविक्षेपैः अनेके ये नृपतयः = भूपाः तेषु सञ्चरणेन = गमनेन चलां = चञ्चलाम् उर्वीम् = पृथिवीम् अर्थात् पृथिवी एकस्य राज्ञः सकाशात् अपरस्य राज्ञः पार्श्वे गच्छति अतः सा चञ्चला ताम् निश्चलीकुर्वाणम् = स्थिरीकुर्वाणमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अनवरत०—अनवरतम् = अविरतं यथा स्यात्तथा अभ्यस्तं = कृताभ्यासं यत् लङ्घनं = उच्छलनं बालभावकारणात् उत्कूर्दनमित्यर्थः तेन घनः = निबिडः उपचयः = वृद्धिः यस्य तथाभूतम् कठिनं = दृढं यत् मांसं तेन मेदुरात् = पुष्टात् ऊर्वोः = सक्थ्नोः द्वयं = युगलं तस्मात् निष्पतता = निर्गच्छता इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अनुल्बणः = अनुत्कटः अनुन्नतः इति यावत् यः

हिन्दी–एवं पराक्रम-शील मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त नाम के ये दोनों भाई जो भुजाओं के समान मेरे शरीर से अभिन्न हैं—'आप दोनों के अनुचर के रूप में मैंने नियुक्त किये हैं, इन दोनों के साथ आप दोनों भी अन्य भृत्य-वर्ग के समान व्यवहार न करें'—यह कहकर राजाने उन्हें बुलाने के लिए द्वारपाल को आज्ञा दी।

द्वार-देश की ओर दृष्टि लगाए राज्यवर्धन और हर्षवर्धन दोनों ने थोड़ी ही देर बाद द्वारपाल के साथ प्रवेश करते हुए आगे ज्येष्ठ भाई कुमारगुप्त को (देखा)—जो अठारह वर्ष की आयु का था, न बहुत ऊँचा था न बहुत छोटा, जो भारी चरण-विन्यासों से अनेक राजों के पास आती-जाती रहने के कारण चञ्चल बनी पृथिवी को मानो निश्चल बना रहा था, जो निरन्तर उछल कूदका अभ्यास करते रहने से खूब बढ़े हुए कठोर मांस से परिपुष्ट दोनों ऊरुभागों से गिरती हुई-जैसी अधिक न उठे हुए घुटनों के जोड़ों से निकली पतली दो पिंडलियों से शोभायमान था,

पार्श्वप्रकाशितकृशिम्ना मन्दरमिव सुरासुररभसभ्रमितवासुकिकषणक्षीणेन मध्येन लक्ष्यमाणम्, अतिविस्तीर्णेनोरसा स्वामिसम्भावनानामपरिमितानामवकाशमिव प्रयच्छन्तम्, प्रलम्बमानस्य भुजयुगलस्य निभृतललितैर्विक्षेपैरतिदुस्तरं तरन्तमिव यौवनोदधिम्, वामकरकटकमाणिक्यमरीचिमञ्जरीजालिन्या समुद्भिद्यमानप्रतापानलशिखापल्लवयेव चापगुणकिणलेखयाङ्कितपीवरप्रकोष्ठम्, आलोहिनीमुच्चांसतटावलम्बिनीमस्त्रग्रहणव्रतविधृतां रौरवीमिव त्वचं कर्णाभरणमणेः प्रभां बिभ्राणम्, उत्कोटिकेयूरपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिबिम्बगर्भकपोलं मुखं चन्द्रमसमिव हृदयस्थितरोहिणीकमुद्वहन्तम्, अचपलस्तिमिततारकेणाधोमुखेन चक्षुषा शिक्षयन्तमिव लक्ष्मीलाभोत्तानितमुखानि पङ्कजवनानि

टीका–जानुग्रन्थिः = ऊरुपर्वसन्धिः [जानूरुपर्वाष्ठीवदस्त्रियाम्' इत्यमरः] तस्मात् प्रसूतेन = निर्गतेन तनुतरेण = अतिशयेन तनुना = दभ्रेण जङ्घाकाण्डयोः = जङ्घादण्डयोः युगलेन = द्वयेन भासमानम् = विराजमानम्, उल्लिखित०—उल्लिखिताभ्याम् = उल्लिखिताभ्याम् इव उल्लिखिताभ्याम् तनूकृताभ्यामित्यर्थः ['स्यादुल्लिखितमुत्कीर्णे तनूकृते च वाच्यवत्' इति मेदिनी] पार्श्वाभ्याम् = कक्षयोः अधोभागाभ्याम् प्रकाशितः = प्रकटितः कृशिमा = (कृश + इमनिच्) कृशत्वं यस्य तेन मध्येन कटिभागेन सुराः = देवाः असुराः = राक्षसाश्च तैः रभसेन = वेगेन भ्रमितः = चालितः यः वासुकिः = एतदाख्यनागः तेन यत् कषणं = घर्षणं तेन क्षीणेन = कृशीभूतेन मध्येन = मध्यभागेन मन्दरम् = मन्दराचलम् इवेत्युपमायां लक्ष्यमाणं = दृश्यमानम्, अति० = अतिशयेन विस्तीर्णेन = पृथुना उरसा = वक्षःस्थलेन स्वामिनः = भर्तुः (कर्तरि षष्ठी) स्वामिकर्तृकाणामित्यर्थः सम्भावनानां = समानानाम् अपरिमितानाम् = अनेकेषाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रयच्छन्तम् = ददतम्; अयं भावः वीरोचितकार्यानुष्ठानेन स्वामिनः निजभृत्यानां संमानं कुर्वन्ति तदुपलक्ष्ये च तेषां वक्षसि स्वर्णपदकानि बध्नन्ति, कुमारगुप्तश्च अपरिमितस्वर्णपदकानां कृते वक्षसि पर्याप्तस्थानं वहति स्मेव; प्रलम्ब०–प्रलम्बमानस्य = दीर्घस्य भुजयोः = बाह्वोः युगलस्य = द्वयस्य निभृतैः = शान्तैः अथ च ललितैः = रमणीयैः विक्षेपैः = सञ्चालनैः अतिशयेन दुस्तरं = दुःखेन तरणयोग्यं यौवनम् एव उदधिं = समुद्रम् तरन्तम् = तस्य पारं गच्छन्तम्, अत्र रूपकोत्थापितोत्प्रेक्षा; वाम०—वामे करे यत् कटकं = वलयं तस्य माणिक्यस्य = रत्नस्य मरीचीनां रश्मीनां याः मञ्जर्यः = वल्लर्यः आवल्यः इत्यर्थः तासां जालं = समूहः अस्याः अस्तीति तथोक्तायां (० लेखया) समुद्भिद्यमानः = स्फुटन् प्रतापः = शौर्यमित्यर्थः एव अनलः = वह्निः तस्य शिखा = ज्वाला एव पल्लवः = किसलयः यस्याः तया इव चापस्य = धनुषः गुणस्य = मौर्व्याः किणस्य = आघातचिह्नस्य लेखया = रेखया अङ्कितः चिह्नितः पीवरः = स्थूलः प्रकोष्ठः = मणिबन्धः यस्य तम् अत्र साङ्गरूपकोत्थापिता उत्प्रेक्षा; आलोहि०—आलोहिनीम् = ईषद् रक्तवर्णाम् उच्चं = उन्नतं यत् अंसस्य = स्कन्धस्य तटं = प्रान्तः तत् अवलम्बते = आश्रयतीति तथोक्ताम् कर्णाभरणस्य = कर्णभूषणस्य मणेः = रत्नस्य प्रभां = कान्तिम् अस्त्राणाम् = आयुधानां ग्रहणं = धारणं एव व्रतं = नियमः तदर्थं विधृतां = धारितां रुरोः = मृगविशेषस्य इयम् इति रौरवी (अण्) ताम् त्वचं = चर्म इवेत्युत्प्रेक्षायाम्; ब्रह्मचारिणाम् कृते मृगचर्मधारणं धर्मशास्त्रेषु विहितम् यथाह मनुः—'कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः । वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च' । उत्कोटि०—उद्गता = उत्थिता कोटिः अग्रं यस्य तथा-

हिन्दी–जो घिसे हुए–जैसे पार्श्वभागों में कृशता प्रकट करते हुए मध्य (कटिभाग) से उस वासुकि नाग के समान दिखाई दे रहा था जिसका मध्य (बीच का भाग) देवासुरों द्वारा वेग से घुमाये हुए वासुकि नाग की रगड़ से क्षीण पड़ गया था, जो अत्यन्त विस्तृत वक्षःस्थल से स्वामी से प्राप्त होने वाले अनेक आदर संमानों (स्वर्णपदकों) के लिए स्थान-जैसा दे रहा था, जो लंबी लंबी भुजाओं के शान्त और सुन्दर संचालनों से ऐसा लग रहा था मानो दुस्तर यौवन-रूपी समुद्र को तैर रहा हो, जिसके बायें हाथ के कड़े (में जड़े) के रत्न की मंजरियों-जैसी किरणावलियों के समूह से युक्त, धनुष प्रत्यञ्चा के आघातचिह्न की रेखा से चिह्नित मोटी कलाई ऐसी लग रहीं थी मानो उसमें प्रतापरूपी अग्नि की ज्वाला-रूपी किसलय फूट रहे हों, जो ऊँचे स्कन्ध-भाग पर पड़ी लाल-लाल कर्णाभरण के रत्न की प्रभा रखे हुए ऐसा लग रहा था मानो अस्त्र-ग्रहण व्रत के लिये धारण किया हुआ रुरु मृग का चर्म रख रहा हो, जो नुकीले बाजूबन्द पर बनी चित्रकारी की पुतली का प्रतिबिम्ब कपोल के भीतर रखे मुख को धारण करता हुआ ऐसा लग रहा था मानो हृदय में स्थित रोहिणी वाले चन्द्रमा को रख रहा हो, अचपल, स्थिर पुतली वाली नीची झुकी आँख से लक्ष्मी (शोभा; सम्पत्ति) पाकर ऊँचा मुँह किये हुए कमल-समूह को मानो विनय सिखा रहा था, जो

गिनयम्, स्वाम्यनुरागमिवाम्लातकमुत्तंसीकृतं शिरसा धारयन्तम्, निर्दयया कङ्कणभङ्गभीतसकलकार्मुकार्पितामिव विनयम्, स्वाम्यनुरागमिवाम्लातकमुत्तंसीकृतं शिरसा धारयन्तम्, शैशव एव निर्जितैरिन्द्रियैररिभिरिव संयतैः शोभमानम्, प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं कुलपुत्रतां प्रकाशयन्तम्, तेजस्विनमपि शीलेनाह्लादकेन सवितारमिव शशिनान्तर्गतेन विराजमानम्, अचलानामपि कायकार्कश्येन गन्धनमिवाचरन्तम्, दर्शनक्रीतमानन्दहस्ते विक्रीणानमिव जनं सौभाग्येन कुमारगुप्तम्, पृष्ठतस्तस्य कनीयांसमतिप्रांशुतया गौरतया च मनःशिलाशैलमिव सञ्चरन्तम्, अनुल्बणमालतीकुसुमशेखरनिभेन निर्जिगमिषता

टीका—भूतः यः केयूरः=अङ्गदः तस्य पत्रभङ्गे=पत्राकारचिह्ने या पुत्रिका=पुत्तलिका तस्याः प्रतिबिम्ब=प्रतिच्छाया गर्भे=अभ्यन्तरे यस्य तथाभूतः कपोलः=गण्डस्थलं यस्य तत् मुखम्=आननम् हृदये स्थिता रोहिणी=नक्षत्रविशेषः चन्द्रमसः प्रियतमेति यावत् यस्य तम् चन्द्रसमम्=चन्द्रम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उद्वहन्तम्। अचपल०—अचपला=अचञ्चला स्तिमिता=स्थिरा च तारकाः=कनीनिका यस्य तेन नम्रत्वात् अधः=नीचैः मुखं यस्य तेन चक्षुषा=नयनेन लक्ष्म्याः=कान्त्याः अथ च धनसम्पत्त्याः लाभेन=प्राप्त्या उत्तानितानि=ऊर्ध्वीकृतानि मुखानि=आननानि यैः तानि कमलवनानि=कमलसमूहानित्यर्थः विनयं=नम्रतां शिक्षयन्तम्=अध्यापयन्तम्, अत्र बुद्ध्यर्थत्वात् शिक्षधातोः ण्यन्ते द्विकर्मकत्वम्, लक्ष्म्याः प्राप्तौ कमलानि उन्नतमुखानि दृप्तानीति यावत् जातानि स च निम्नमुखः नम्रः इति यावत् एवासीत् इति व्यतिरेकोत्यापिता उत्प्रेक्षा; स्वाम्य०—स्वामिनि=भर्तरि अनुरागं=स्नेहम् अथ च लालिमानम् अम्लातकं=रक्तपुष्पविशेषम् उत्तंसीकृतं=शेखरीकृतम् ['पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे' इत्यमरः] शिरसा=मूर्ध्ना धारयन्तम्=वहन्तम्, निर्दयया—अत्र 'निर्दयया' इति चिन्त्यम निर्दयतया अथवा निर्दयकङ्कण० इत्येव वक्तुमुचितम्, निर्दयतया=काठिन्येन कङ्कणस्य=वलयस्य गोलाकारधनुषः शिखरस्येत्यर्थः भङ्गात्=त्रोटनात् भीतानि=त्रस्तानि यानि सकलानि=समग्राणि कार्मुकाणि=धनूंषि तैः अर्पितां=दत्ताम् इवेत्युत्प्रेक्षायां नम्रतां=विनयम् अथ च नमनस्वभावं कुञ्चनशीलतामिति यावत् प्रकाशयन्तं=प्रकटयन्तं अर्थात् निर्दयतया अस्मान् वितत्यासौ अस्मद् वलयं त्रोटयिष्यतीति भीतानि नमन्ति कार्मुकाणि तस्मै स्वनमनशीलत्वम् अर्पयन्तीव; शैशवे० शैशवे=कौमार्ये एव निर्जितैः=स्ववशीकृतैः इत्यर्थः इन्द्रियैः=चक्षुरादिभिः संयतैः=नियन्त्रितैः अरिभिः=शत्रुभिः इवेत्युपमायाम् शोभमानं=लसन्तम् प्रणयि० विश्वासस्य=विश्रम्भस्य भूमिं=स्थानम् पात्रमिति यावत् कुलपुत्रताम्=कुलीनतामित्यर्थः प्रणयिनीम्=प्रियतमाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अनुवर्तमानम्=अनुगच्छन्तम्, तेज०—तेजस्विनम्=तेजोवन्तम् अथ च प्रतापवन्तम् अन्तर्गतेन=हृदयस्थितेन आह्लादकेन=आह्लादयति=सुखयतीति तथोक्तेन शीलेन=चरित्रेण अन्तर्गतेन=स्वस्मिन् लीनेनेत्यर्थः आह्लादकेन=आह्लादकारिणा=शशिना=चन्द्रेण सवितारं=सूर्यमिव विराजमानम्=भासमानम्,=बल श्लिष्टोपमा, अचला०—कायस्य=देहस्य कार्कश्येन=कर्कशतया कठोरतयेति यावत् अचलानां=पर्वतानाम् अपि गन्धनम्=[√गन्धः (गति-हिंसा—याचनेषु) + ल्युट् भावे] हिंसनम् भेदनमिति यावत् आचरन्तं=कुर्वन्तम् अत्रार्थापत्तिः दर्शन०-सौभाग्येन=सुभगतया निजसौन्दर्यकारणादित्यर्थः दर्शनेन=साक्षात्कारेण क्रीतं=द्रव्यद्वारा गृहीतं जनं=लोकम् । आनन्दस्य=आह्लादस्य हस्ते विक्रीणानम्=तस्य विक्रयं कुर्वन्तमिवेत्युत्प्रेक्षायाम्, अर्थात् तत्सौन्दर्यं दृष्ट्वैव लोकाः क्रीताः इव तद्वशीभूय आनन्दपरवशाः भवन्ति स्म, किमपि वस्तु क्रीत्वा कश्चित् तद् अन्यहस्ते विक्रीणानो दृश्यते

हिन्दी—शेखर-रूप में रखे आम्लातक पुष्पों को स्वामी के प्रति अनुराग (भक्ति; लाली) को जैसे शिर से धारण कर रहा था, जो वलय (घेरे) के निर्दयता-पूर्वक तोड़ दिये जाने से डरे हुए सभी धनुषों द्वारा समर्पित की हुई-जैसी नम्रता (विनय, लोच) प्रकट कर रहा था, जो नियंत्रित किये हुए शत्रुओं की तरह बचपन में ही वश में की हुई इन्द्रियों से शोभित हो रहा था, जो विश्वास-भाजन बनी कुलीनता का इस तरह अनुसरण कर रहा था मानो वह प्रियतमा हो; जो तेजस्वी (प्रतापी) होता हुआ भी आनन्ददायक भीतरी शील से इस तरह विराज रहा था जैसे तेजस्वी (तेज वाला) होता हुआ भी सूर्य अन्तर्गत चन्द्रमा से विराजा करता है, जो शरीर की कठोरता से मानो पर्वतों को भी रगड़ रहा था और जो सौन्दर्य के कारण देखने मात्र से खरीदे हुए लोगों को मानो आनन्द के हाथ बेच रहा था, उस (कुमारगुप्त) के पीछे उसके छोटे भाई माधवगुप्त को देखा—जो ऊँचा कद और गौरवर्ण होने के कारण चलता-फिरता मैनसिल का पहाड़—जैसा मालूम पड़ रहा था, जो छोटे से चमेली के पुष्पों के शेखर के बहाने ऐसा लग रहा

गुरुणा शिरसि चुम्बितमिव यशसा, परस्परविरुद्धयोर्विनययौवनयोश्चिरात्प्रथमसङ्गमचिह्नमिव भ्रूसङ्गतकेन कथयन्तम्, अतिधीरतया हृदयनिहितां स्वामिभक्तिमिव निश्चलां दृष्टिं धारयन्तम्, अच्छाच्छचन्दनरसानुलेपशीतलं सन्निहितहारोपधानं वक्षःस्थलमनन्तसामन्तसंक्रान्तिश्रान्तायाः श्रियो विशालं शशिमणिशिलापट्टशयनमिव बिभ्राणम्, चक्षुः कुरङ्गकैर्घोणावंशं वराहैः स्कन्धपीठं महिषैः प्रकोष्ठबन्धं व्याघ्रैः पराक्रमं केसरिभिर्गमनं मतङ्गजैर्मृगयाक्षपितशेषैर्भीतैरुत्कोचमिव दत्तं दर्शयन्तं माधवगुप्तं ददृशतुः।

टीका—एवं, पृष्ठतः = पश्चात् तस्य कुमारगुप्तस्य कनीयांसम् अयं अनयोः अतिशयेन युवा अल्पो वा इति (अल्प + ईयसुन् कनादेशश्च) कनीयान् तम् माधवगुप्तं ददृशतुः इत्यन्वयः; अतिप्रा०—अतिशयेन प्रांशुतया = उच्चशरीरत्वेन गौरतया = गौरवर्णेन श्वेतरक्त-वर्णेनेत्यर्थः मनःशिला = उपधातुविशेषः तस्य शैलं = गिरिम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सञ्चरन्तम् = चलन्तम्, अनुल्ब०-अनुल्वणः = अनुन्नतः यः मालत्याः = पुष्पलताविशेषस्य कुसुमानां = पुष्पाणां शेखरः = शिरोमाला तस्य निभेन = कैतवेन निर्जिगमिषता = (सन्नन्त) निर्गन्तुमिच्छता गुरुणा = महता यशसा = कीर्त्या [गुरुणा = मातापित्रादिना] शिरसि चुम्बितम् = कृतचुम्बनं इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मालती यशश्चोभयमेव श्वेतं भवति, तस्य गुरुयशः दिगन्तेषु गन्तुमिच्छति, अतः शेखर-व्याजेन तत् मातृपितृकृत् तच्छिरःचुम्बतीवेति भावः, अत्र व्याजापह्नुत्युत्थापितोत्प्रेक्षा सा च गुरुपदे श्लिष्टा, परस्पर०—परस्परम् = अन्योन्यं विरुद्धयोः = विपरीतयोः विनय. = नम्रता च यौवनं च तयोः चिरात् = बहुकालात् प्रथमस्य सङ्गमस्य = सम्मेलनस्य चिह्नम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् भ्रुवोः सङ्गतम् (भावे क्तः) एव सङ्गतकम् = मेलः तेन कथयन्तम् प्रकटयन्तमित्यर्थः स संगतभ्रूरासीदिति भावः, अति०—अतिशयेन धीरतया = गम्भीरतया द्वयोः वक्षसि मनसि च निहितां = स्थापितां स्वामिनि = भर्तरि. भक्तिं = रागं इवेत्युपमायाम् निश्चलां = स्थिरां दृष्टिं धारयन्तम्, अच्छा०-अच्छाच्छस्य अति शुभ्रस्य चन्दनरसस्य = चन्दनद्रवस्य अनुलेपेन = शरीरे विलेपनेन शीतलं = शीतं, सन्निहितं = निकटस्थं धृतमित्यर्थः हारः मौक्तिकस्रक् एव उपधानम् = उपबर्हः यस्य तत् वक्षःस्थलम् = उरःस्थलम् अनन्ताः = असंख्याः ये सामन्ताः = अधीनभूपालाः तेषु या संक्रान्तिः = संक्रमणम् एकस्मात् द्वितीयस्मिन् गमनमित्यर्थः तया श्रान्तायाः = क्लान्तायाः श्रियः = राजलक्ष्म्याः विशालं = विस्तीर्णं शशिमणेः = चन्द्रकान्तमणेः शिलापट्टस्य = शिलाफलकस्य शयनं = शय्याम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् बिभ्राणम् = धारयन्तम्, चक्षुः०—चक्षुः नयनं मृगया = आखेटः तस्यां क्षपितेभ्यः मारितेभ्यः शेषैः = अवशिष्टैः भीतैः = त्रस्तैः कुरङ्गैः = मृगैः उत्कोचम् = अपप्रदानम् उपायनमिति यावत् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् दत्तम् 'त्रराहैः' इत्यादि—शब्दैः सहापि एते शब्दाः योजनीयाः, वराहैः = शूकरैः घोणा = नासिका वंश इवेत्युपमितःतत्पु० उच्चघोणामित्यर्थः महिषैः = वाहैः स्कन्धः पीठमिव विस्तीर्णस्कन्धो इत्यर्थ, व्याघ्रैः शार्दूलैः प्रकोष्ठबन्धं = मणिबन्धम् केसरिभिः = सिंहैः पराक्रमं शौर्यम् मतङ्गजैः = हस्तिभिः गमनं = गतिम् दर्शयन्तम् प्रकटयन्तं माधवगुप्तं ददृशतुः = दृष्टवन्तौ। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारेण तस्य चक्षुः कुरङ्गचक्षुरिव नासिका वराह-घोणेनेत्यादि-रूपेण उपमा व्यज्यते इत्यलङ्कारध्वनिः।

हिन्दी—था मानो बाहर (देशान्तर) जाना चाहते हुए गुरु (महान्, माता-पिता आदि) यश द्वारा जैसे शिर पर चूमा जा रहा हो, जो दोनों भ्रूओं के (आपस में) मिल जाने से मानों परस्पर विरुद्ध विनय और यौवन के चिरकाल के बाद प्रथम मिलन चिह्न बता रहा था, जो गम्भीर होने के कारण हृदय (मन) में रखी स्थिर स्वामी भक्ति की तरह हृदय (वक्षःस्थल) पर रखी स्थिर दृष्टि को धारण कर रहा था, जो असंख्य राजाओं के पास आते-जाते रहने के कारण थकी हुई राजलक्ष्मी (के विश्राम) के लिए विशाल चन्द्रकान्त-मणि के शिला-पट्ट की शैय्या-जैसे अति स्वच्छ चन्दन द्रव के लेप से शीतल बने और पास में मौक्तिक-हार की तकिया वाले वक्षस्थल को धारण कर रहा था और जो आखेट में मारे जाने वालों में से बचे हुए भयभीत मृगों द्वारा आंख, सूअरों द्वारा ऊँची नाक, भैंसों द्वारा (पुष्ट) स्कन्धपीठ, व्याघ्रों द्वारा मणिबन्ध, सिंहों द्वारा पराक्रम और हाथियों द्वारा गति को घूस में जैसे दिया हुआ दिखा रहा था।

प्रविश्य च तौ दूरादेव चतुर्भिरङ्गैरुत्तमाङ्गेन च गां स्पृशन्तौ नमश्चक्रतुः। स्निग्धनरेन्द्रदृष्टिनिर्दिष्टामुचितां भूमिं भेजाते। मुहूर्तं च स्थित्वा भूपतिरादिदेश तौ—'अद्यप्रभृति भवद्भ्यां कुमारावनुवर्तनीयौ। [1]अहर्निशमस्तापरव्यापाराभ्यां प्रतिबिम्बकाभ्यामिवाङ्गभूताभ्यामनयोः कुमारयोश्चरतोस्तिष्ठतोः स्वपतोर्जाग्रतोश्चान्तिकं क्षणमपि न मोक्तव्यम्। एवं च वामचिरात्सकलाः सङ्कल्पाः कल्पतरव इवाभिमतफलसम्पदुत्कर्षविशेषप्रदा भविष्यन्ति' इत्याकर्ण्य 'यथाज्ञापयति देवः' इति मेदिनीदोलायमान[2]मौलिभ्यां युगपदभिहिते ताभ्यामुत्थाय राज्यवर्धनहर्षौ पितरं प्रणेमतुः। आदाय च तौ निर्जग्मतुः। ततश्चारभ्य क्षणमपि निमेषोन्मेषाविव चक्षुर्गोचरादनपयान्तावुच्छ्वासनिःश्वासाविव नक्तन्दिवमभिमुखं स्थितौ भुजाविव सततं पार्श्ववर्तिनौ बभूवतुः।

अथ राज्यश्रीरपि नृत्यगीतादिषु विदग्धासु सखीषु सकलासु कलासु च प्रतिदिवसमुपचीयमानपरिचया शनैः

टीका—तौ कुमारगुप्त—माधवगुप्तौ चतुर्भिः अङ्गैः=द्वाभ्यां हस्ताभ्यां द्वाभ्यां जानुभ्यां च उत्तमाङ्गेन=शिरसा च गां=पृथिवीं स्पृशन्तौ। स्पर्शविषयीकुर्वन्तौ नमश्चक्रतुः=प्रणामं कृतवन्तौ। स्निग्धा=प्रेमभरिता नरेन्द्रस्य=प्रभाकरवर्धनस्य या दृष्टिः=चक्षुः तया निर्दिष्टां=सूचिताम् उचितां=योग्यां भूमिं=स्थानं भेजाते=सिषिवाते। मुहूर्तं=किंचित्कालं भूपतिः=प्रभाकरवर्धनः तौ=कुमारगुप्तमाधवगुप्तौ आदिदेश=आदिष्टवान्—'अद्यप्रभृति=अद्यारभ्य अनुवर्तनीयौ=अनुसरणीयौ। अहर्निशं=रात्रिदिवम्, अस्तः=परित्यक्तः अपरव्यापारः=अन्यकार्यं याभ्यां ताभ्याम् प्रतिबिम्बकाभ्यां=प्रतिच्छायाभ्याम् इवेत्युपमायाम् अङ्गभूताभ्याम्=अवयवभूताभ्यां नित्यतत्सङ्गलग्नाभ्यामित्यर्थः चरतोः=गच्छतोः तिष्ठतोः=आसीदतोः, स्वपतोः=शयानयोः, जाग्रतोः=प्रबुध्यतोः अन्तिकं=सामीप्यं न मोक्तव्यम्=त्यक्तव्यम्। वाम्=युवयोः अचिरात्=शीघ्रमेव सकलाः=समग्राः सङ्कल्पाः=मनोरथाः कल्पतरवः=कल्पवृक्षाः इवेत्युपमायाम्, अभिमतस्य=कांक्षितस्य फलस्य सम्पदः यः उत्कर्षविशेषः=अत्युत्कर्षः तं प्रददतीति प्रदाः भविष्यन्ति, इति आकर्ण्य=श्रुत्वा 'यथा आज्ञापयति देवः=महाराजः' इति मेदिन्यां=भूमौ दोलायमानः=लम्बमानः मौलिः=शिरः ययोः ताभ्याम् युगपत्=समकालम् अभिहिते=कथिते ताभ्याम्=कुमारगुप्त—माधवगुप्ताभ्याम् उत्थाय=उत्थितौ भूत्वा राजवर्धन—हर्षौ पितरम्=प्रभाकरवर्धनं प्रणेमतुः प्रणामं चक्रतुः। तौ कुमारगुप्त-माधवगुप्तौ आदाय=आत्मना सह नीत्वा निर्जग्मतुः=निर्गतवन्तौ ततश्च आरभ्य=आदाय निमेषश्च उन्मेषश्च तौ=निमीलनोल्मीलने इवेत्युपमायाम् चक्षुषः गोचरात्=विषयात् अनपयान्तौ=नापगच्छन्तौ यथा निमीलनोल्मीलने सदा चक्षुषि तिष्ठतः तथैव राज्यवर्धन—हर्षयोः समक्षम् अतिष्ठताम्, उच्छ्वासश्च निःश्वासश्च तौ=श्वासोच्छ्वासौ इवेत्युपमायाम् नक्तंदिनं=अहर्निशम् अभिमुखम्=मुखम् अभि सम्मुखमित्यर्थः स्थितौ, भुजौ=बाहू इवेत्युपमायाम् सततं=निरन्तरं पार्श्वे=पार्श्वभागे अथ च समीपे कुमारयोः राजवर्धन-हर्षवर्धनयोः तौ कुमारगुप्त—माधवगुप्तौ बभूवतुः=जातौ।

हिन्दी—प्रवेश करके उन दोनों ने दूर से ही चारों अंगों और शिर से भू को छूते हुए प्रणाम किया। राजा द्वारा स्नेह भरी दृष्टि से दिखाये हुए स्थान पर वे दोनों बैठ गए। थोड़ी देर ठहरकर राजाने उन्हें आज्ञा दी—'आज से लेकर आप दोनों ने दोनों राजकुमारों का अनुसरण करना है। अन्य सभी काम-धन्धों को छोड़े, दिन-रात परिछाईं की तरह अंग बने हुए, चलते-बैठते, सोते-जागते इन कुमारों का क्षण भर भी साथ तुम्हें नहीं छोड़ना है। इस तरह करने से शीघ्र ही तुम दोनों के सभी मनोरथ कल्पवृक्षों की तरह अभिमत फलस्वरूप सम्पत्ति का बड़ा भारी उत्कर्ष देने वाले होंगे' यह सुनकर पृथिवी पर शिर झुकाए दोनों के एक साथ—'जैसी महाराज की आज्ञा' यह कहने पर राज्यवर्धन और हर्ष दोनों ने उठकर पिता को प्रणाम किया और उन्हें लेकर वे चले गए। तब से लेकर क्षण-भर के लिए भी निमेष-उन्मेष की तरह आंख से परे न होते हुए, श्वासोच्छ्वास की तरह दिन-रात उनके सम्मुख स्थित हुए और भुजाओं की तरह वे निरन्तर दोनों कुमारों के पार्श्व (पार्श्व भाग, सामीप्य) में रहने लगे।

इसके बाद राज्यश्री भी नृत्य-गीतादि सभी विदग्ध (ललित) कलाओं और विदग्ध (चतुर) सखियों में प्रति-दिन परिचय बढ़ाती जाती हुई धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में यौवन पर पदार्पण कर गई। एक ही लक्ष्य-स्थान में

---

१. 'क्वचित् अहर्निश····भविष्यन्ति' इति नास्ति
२. 'मौलिभ्यामुत्थाय राज्यवर्धनहर्षौ प्रणेमतुः तौ च पितरम्'

शनैरवर्धत परिमितैरेव च दिवसैर्यौवनमारुरोह। निपेतुरेकस्यां तस्यां शरा इव लक्ष्यभुवि भूभुजां सर्वेषां दृष्टयः। दूतप्रेषणादिभिश्च तां ययाचिरे राजानः। कदाचित्तु राजान्तःपुरप्रासादस्थितो बाह्यकक्ष्यावस्थितेन पुरुषेण स्वप्रस्तावागतां गीयमानामार्यामश्रृणोत्—

'उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले[1]।
सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्धमाना सुता पितरम् ॥ ५ ॥'

तां च श्रुत्वा पार्श्वस्थितां महादेवीमुत्सारितपरिजनो जगाद—

'देवि, तरुणीभूता वत्सा राज्यश्रीः। एतदीया गुणव[2]त्तेव क्षणमपि हृदयान्नापयाति मे चिन्ता। यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनीभवन्ति पितरः सन्तापानलस्य। हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्याः। केनापि

अथ राज्यश्रीः=तन्नाम्नी राजकुमारी नृत्यं गीतञ्च आदि यासां तासु विदग्धासु=निपुणासु सखीषु अथ च विदग्धासु=ललितासु सकलासु=समग्रासु कलासु च दिवसे दिवसे इति प्रतिदिवसम्=नित्यमित्यर्थः उपचीयमानः=वर्धमानः परिचयः=संस्तवः यस्याः सा शनैः=क्रमशः अवर्धत=वृद्धिमवाप, परिमितैः=स्वल्पैः एव दिवसैः=दिनैः यौवनम्=युवावस्थाम् आरुरोह=प्राप्तवतीत्यर्थः। लक्ष्यभुवि=लक्ष्यस्थाने शराः=बाणाः इवेत्युपमायाम् सर्वेषां भूभुजां=भूपानाम् एकस्यां=एकमात्रायां तस्यां दृष्टयः=चक्षूंषि निपेतुः=अपतन् दूतस्य प्रेषणम् आदि येषां तैः तां राजानः ययाचिरे=विवाहार्थं याचितवन्तः। कदाचित् अन्तःपुरस्य=अवरोधस्य प्रासादे=हर्म्ये स्थितः राजा=राज्यवर्धनः बाह्यायां=बहिर्भूतायां कक्ष्यायां=प्रकोष्ठे अवस्थितेन पुरुषेण=जनेन स्वस्य प्रस्तावे=प्रसङ्गे आगतां=स्मृतिविषयीभूतामित्यर्थः गीयमानां=गानविषयीक्रियमाणाम् आर्याम्=छन्दोविशेषम् अशृणोत्=श्रुतवान्, अर्थात् राजपुरुषः किमपि प्रासङ्गिकम् चिन्तयन् स्मृतिपथमागताम् आर्यामगायत।

उद्वेग०—अन्वयः—पयोधरोन्नमनकाले अनुवर्षम् विवर्धमाना सरित् उद्वेगमहावर्ते तटम् इव पयोधरोन्नमनकाले अनुवर्षम् विवर्धमाना सुता उद्वेग-महावर्ते पितरम् पातयति।

पयोधराणां=मेघानाम् उन्नमनस्य=उदयस्य काले=समये अनुवर्षम्=वर्षम् अनु (अव्ययीभाव स०) वृष्ट्यनन्तरमित्यर्थः विवर्धमाना=वृद्धिं गच्छन्ती सरित्=नदी उत्कृष्टो वेगो यस्य इत्युद्वेगः यः महावर्तः=जलभ्रमरः तस्मिन् तटम्=तीरम् इव पयोधरयोः=कुचयोः उन्नमनस्य=उद्गमनस्य काले वर्षे वर्षे इत्यनुवर्षम् प्रतिवर्षमित्यर्थः विवर्धमाना सुता=पुत्री उद्वेगः=चिन्ता एव महावर्तः तस्मिन् पितरम्=जनकं पातयति। अत्र श्लिष्टोपमालङ्कारः। आर्यायाः लक्षण पूर्वं दत्तमस्ति ॥५॥

ताम्=आर्यां श्रुत्वा=आकर्ण्य पार्श्वे=समीपे स्थिताम् उपविष्टाम् महादेवीम्=महिषीम् उत्सारितः=दूरीकृतः परिजनः=भृत्यवर्गः येन सः जगाद=अवदत्।

तरुणीभूता=युवतिः जाता वत्सा=पुत्रीत्यर्थः। एतस्याः इयम् इति (एतत् + छ) एतदीया गुणाः=रूपसौजन्यबुद्धिमत्त्वादयः अस्याः सन्तीति गुणवती तस्याः भाव तत्ता इवेत्युपमायाम् चिन्ता=कस्मै इयं देयेति चिन्तना मे हृदयात्

हिन्दी–(पड़ने वाले) बाणों की तरह सभी राजों की दृष्टि एकमात्र उस पर पड़ गई और दूत आदि भेजकर राजा लोग उसे माँगने लगे। एक बार अन्तः पुर के प्रासाद में बैठा हुआ राजा बाहरी बाड़े में स्थित किसी पुरुष द्वारा अपने प्रसंग में आई हुई आर्या को गाया जाता हुआ सुन बैठा :—

पयोधरों के उठते जब, वर्षा से नदी उभरती,
बड़े वेग के महा भँवर में, जैसे तीर गिराती।
पयोधरों के उठते जब, पुत्री प्रतिवर्ष, उभरती,
चिन्ता के महा भँवर में, वैसे पिता गिराती ॥५॥

उस (आर्या) को सुनकर भृत्य-वर्ग को हटाये हुए राजा पास में ही बैठी हुई रानी को बोला—'रानी, बच्ची राज्यश्री युवा हो बैठी है। इसकी गुणवत्ता की तरह चिन्ता क्षणभर भी मेरे हृदय से नहीं हटती। कन्याओं के यौवनारम्भ में ही माँ-बाप सन्ताप-रूपी अग्नि के इन्धन बन जाते हैं। जिस प्रकार पयोधरों (मेघों) की उन्नति (उमड़ने) से दिन में अंधेरा छा जाता है वैसे इस (राज्यश्री) के पयोधरों (स्तनों) की उन्नति (उभार) से मेरे हृदय में

---

1. '० कालः' 2. 'गुणवृत्तेव'

कृता धर्म्या नाभिमता मे स्थितिरियं यदङ्गसम्भूतान्यङ्कलालितान्यपरित्याज्यान्यपत्यकान्यकाण्ड एवागत्यासंस्तुतैर्नीयन्ते। एतानि तानि खल्वङ्कनस्थानानि संसारस्य। सेयं सर्वाभिभाविनी शोकाग्नेर्दाहशक्तिर्यदपत्यत्वे समानेऽपि जातायां दुहितरि दूयन्ते सन्तः। एतदर्थं जन्मकाल एव कन्यकाभ्यः प्रयच्छन्ति सलिलमश्रुभिः साधवः। एतद्भयाद-कृतदारपरिग्रहाः परिहृतगृहवसतयः शून्यान्यरण्यान्यधिशेरते मुनयः। को हि नाम सहेत सचेतनो विरहमपत्यानाम्। यथा यथा समापतन्ति दूता वराणां वराकी लज्जमानेव चिन्ता तथा तथा नितरां प्रविशति मे हृदयम्। किं क्रियते। तथापि गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः। प्रायेण च सत्स्वप्यन्येषु वरगुणेष्वभिजनमेवानुरुध्यन्ते धीमन्तः। धरणी-धराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वरः पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरिवंशः। तत्रापि तिलकभूतस्यावन्ति-वर्मणः सूनुरग्रजो ग्रहवर्मा नाम ग्रहपतिरिव गां गतः पितुरन्यूनो गुणैरेनां प्रार्थयते। यदि भवत्या अपि मतिरनुम-न्यते ततस्तस्मै दातुमिच्छामि' इत्युक्तवति भर्तरि दुहितृस्नेहकातरतरहृदया साश्रुलोचना महादेवी प्रत्युवाच—

टीका—न अपयाति=अपगच्छति। यौवनस्य=तारुण्यस्य आरम्भे=उपक्रमे एव कन्यकानां=पुत्रीणां पितरः=जनकाः सन्तापः=दुःखम् एव अनलः=अग्निः तस्य इन्धनीभवन्ति=अनिन्धनानि इन्धनानि एधांसि भवन्तीति (च्विः) अत्र रूपकं। पयोधराणां=मेघानाम् उन्नतिः=उदयः दिवसं=दिनम् इवेत्युपमायाम् अस्याः=राज्यश्रियाः पयोधरयोः=स्तनयोः उन्नतिः=उद्गमः मे हृदयम् अन्धकारयुक्तं करोतीति (अन्धकार+णिच्; 'सुखादयो वृत्तिविषये तद्वति वर्तन्ते' सि० कौ०) अन्धकारयति। केनापि पुरुषेण कृता धर्म्या=धर्मात् उपेता इति (धर्म+यत् 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते पा० ४।४।९२) इयं स्थितिः=आचारनियमः मर्यादा इत्यर्थः मे न अभिमता=संमता रुचिकरेति यावत् यत् अङ्गात्=शरीरात् सम्भूतानि=जातानि, अङ्के=क्रोडे लालितानि=पालितानि, अपरित्याज्यानि=न परित्यक्तुं योग्यानि अपत्यकानि=कन्यारूपाणि अकाण्डे=असमये सहसेत्यर्थः आगत्य असंस्तुतैः=अपरिचितैः नीयन्ते=उह्यन्ते स्वगृहमिति शेषः। अङ्कनस्य=कलङ्कनस्य स्थानानि=भूमयः। सर्वान् अभिभवति=आकुलीकरोतीति तथोक्ता शोकः एव अग्निः तस्य दाहः=तापः तस्य शक्तिः यत् अपत्यत्वे=सन्तानत्वे पुत्री-पुत्रयोरिति यावत् समाने अपि दुहितरि=पुत्र्यां जातायाम्=उत्पन्नायाम् सन्तः=सज्जनाः दूयन्ते=दुःखीभवन्ति, जन्मनः काले=उत्पत्ति-समये एव प्रयच्छन्ति=ददति अश्रुभिः वाष्पैः सलिलं=जलं कन्यकाभ्यः कन्योत्पत्तौ साश्रुपातं रुदन्तीत्यर्थः एतस्मात्=पुत्रीतः सन्तापात् न कृतः दाराणां=भार्याणां परिग्रहः=ग्रहणं यैः ते अकृतविवाहाः इत्यर्थः परिहृता=परित्यक्ता गृहे वसतिः=वासः यैः ते त्यक्तगृहस्थाश्रमाः इत्यर्थः शून्यानि=निर्जनानि अरण्यानि=वनानि अधिशेरते=अधिवसन्तीत्यर्थः=मुनयः=ऋषयः सचेतनः=चेतनावान् प्राणभृदित्यर्थः। अपत्यानाम्=पुत्रीणाम्। समापतन्ति=आगच्छन्ति वराणां=अस्याः विवाहेच्छुकानां दूताः वराकी=

हिन्दी—भी अन्धेरा छा रहा है। किसी के द्वारा चलाई हुई धर्मानुकूल इस मर्यादा में सहमत नहीं हूँ कि शरीर से उत्पन्न, गोद में पाली-पोसी और न त्यागी जाने योग्य कन्यायें सहसा ही आकर अपरिचितों द्वारा ली जाई जाती हैं। सचमुच ये वे बातें हैं जो संसार के लिए कलंक के स्थान हैं। सभी को आकुल कर देने वाली शोकाग्नि की यह वह दाहक-शक्ति है कि जिसमें सन्तानत्व समान होते हुए भी पुत्री के जन्म होने पर सज्जन दुःखी हुआ करते हैं। इसीलिए जन्म-समय में ही पुत्रियों के लिए सज्जन अश्रुओं द्वारा जल दिया करते हैं। इस भय से ही बिना विवाह किये, गृहस्थाश्रम छोड़े हुए मुनि लोग निर्जन वनों का आश्रय लेते हैं। भला कौन ऐसा प्राणी है जो अपने सन्तानों का वियोग सहे? ज्यों ज्यों वरों के दूत आते हैं; त्यों-त्यों लजाती हुई-जैसी वेचारी चिन्ता मेरे हृदय के भीतर प्रवेश करती जाती है। क्या किया जाय। तथापि गृहस्थियों को संसार के व्यवहार तो करने ही होते हैं। वर में अन्य गुणों के होते हुए भी बुद्धिमान् लोग प्रायः कुल को महत्त्व दिया करते हैं। धरणीधरों (पर्वतों) के शिर (शृंग) पर स्थित, सकल संसार द्वारा वन्दित महेश्वर के चरणन्यास की तरह मौखरि राजवंश धरणीधरों (राजाओं) के शिर पर स्थित (शिरोमणि) महेश्वर का उपासक और सारे संसार द्वारा वन्दित है। उसमें भी (राजाओं का) तिलक भूत अवन्ति वर्मा का ग्रहवर्मा-नामक ज्येष्ठ पुत्र जो गुणों में पिता से कम नहीं है और ऐसा लगता है मानो पृथिवी पर सूर्य उतर आया हो—इस (राज्यश्री) को माँग रहा है। यदि आप को भी विचार अनुमति दे तो मैं उसे देना चाहता हूँ। इस तरह पति के कह चुकने पर पुत्री के स्नेह के कारण हृदय में अकुलाए और आँखों में आँसू भरे रानी ने उत्तर दिया—

'आर्यपुत्र, संवर्धनमात्रोपयोगिन्यो धात्रीनिर्विशेषा भवन्ति खलु मातरः कन्यकानाम् प्रदाने तु प्रमाणमासां पितरः। केवलं कृपाकृतविशेषः सुदूरेण तनयस्नेहादतिरिच्यते दुहितृस्नेहः। यथा नेयं यावज्जीवमावयोरार्तिता प्रतिपद्यते तथार्यपुत्र एव जानाति' इति।

राजा तु जातनिश्चयो दुहितृदानं प्रति समाहूय सुतावपि विदितार्थावकार्षीत्। शोभने च दिवसे ग्रहवर्मणा कन्यां प्रार्थयितुं प्रेषितस्य पूर्वागतस्यैव प्रधानदूतपुरुषस्य करे सर्वराजकुलसमक्षं दुहितृदानजलमपातयत्। जातमुदि कृतार्थे गते च तस्मिन्नासन्नेषु च विवाहदिवसेषूद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोकम्, सकलदेशा-

---

दीना लज्जमाना=त्रपमाना इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चिन्ता नितराम्=भृशम्, अर्थात् कन्या-याचकानां दूतानाम् आगमने हृदये अधिकाधिका चिन्ता जायते। अन्यापि लज्जमाना स्त्रीगृहान्तः प्रविशति। गृहं गतैः=गृहस्थैरित्यर्थः लोकवृत्तयः=संसारस्य व्यवहाराः अनुगन्तव्या=कर्तव्याः इत्यर्थः। अन्येषु वरस्य गुणेषु सौन्दर्यादिषु सत्सु=वर्तमानेषु अपि धीमन्तः=बुद्धिमन्तः अभिजनं=कुलम् अनुरुध्यन्ते=अनुसरन्ति कुलाय अधिकमहत्त्वं ददतीत्यर्थः। तदुक्तं-'बान्धवाः कुलमिच्छन्ति'। धरणीधराणां=पर्वतानाम् मूर्ध्नि=शिखरे स्थितः महेश्वरस्य=शिवस्यायम् इति (महेश्वर+अण्) माहेश्वरः शिवस्येत्यर्थः पादयोः न्यासः=निक्षेपः कथ्यते हि शिवः कैलास-महीधरस्य शिखरे निवसन् तत्र पादन्यासं करोतीति, इवेत्युपमायाम् महीधराणां=राज्ञां मूर्ध्नि-स्थितः अर्थात् सर्वभूपशिरोमणिः माहेश्वरः=शैवः शिवभक्तः इति यावत् सकलैः भुवनैः=लोकैः नमस्कृतः पूजितः उभयत्र समानम् मौखरिणाम्=एतन्नामधेयभूपानां वंशः=कुलम् अस्तीति शेषः। तत्रापि=तस्मिन् अपि कुले तिलकभूतस्य=सर्वेषु राजसु तिलकायमानस्य श्रेष्ठस्येत्यर्थः अवन्तिवर्मणः=एतन्नामकस्य भूपस्य सूनुः=पुत्रः अग्रजः=ज्येष्ठः गां=पृथिवी गतः=आयातः ग्रहाणां पतिः=सूर्यः इवेत्युत्प्रेक्षा पितुः गुणैः=विक्रमादिभिः अन्यूनः=न न्यूनः=हीनः एनां=राज्यश्रियम् प्रार्थयते=विवाहार्थं याचते। मतिः=विचारः अनुमन्यते=सहमता इत्यर्थः, उक्तवति कथितवति भर्तरि=पत्यौ दुहितरि=पुत्र्यां यः स्नेहः तेन कातरम्=आकुलं हृदयं यस्याः सा अश्रुभिः सहिते लोचने यस्याः सा महादेवी=महिषी प्रत्युवाच=प्रत्यवदत्—'आर्यपुत्र=नाथ, संवर्धनं=पालन-पोषणम् एव संवर्धनमात्रं तस्मिन् उपयोगः यस्याः साः धात्रीतः=उपमातुः निर्गतः विशेषः=भेदः यस्याः सा अर्थात् धात्री-समाना। प्रदाने=विवाहे वराय कन्यादाने प्रमाणम्=निर्णयाधिकारिणः इत्यर्थः आसाम्=कन्यकानाम्। कृपया=दयया कृतः विशेषः=भेदः यस्मिन् सः दुहितरि=पुत्र्यां स्नेहः तनये=पुत्रे यः स्नेहः तस्मात् सुदूरेण अत्यधिकमित्यर्थः अतिरिच्यते=भिद्यते अध्यधिको भवतीति यावत्। मातृणां पुत्रापेक्षया पुत्रीषु अत्यधिकः स्नेहो भवति तत्कारणं च दया यतः समाजे पुत्राणां तादृशी नास्ति वियोग-स्थितिः यादृशी पुत्रीणामस्ति। यावत् जीवतीति (यावत्+जीव+णमुल् 'यावति विन्दजीवोः' पा० ३।४।३०) जीवनपर्यन्तमित्यर्थः आवयोः आर्तिताम्=मनोव्यथात्वम् चिन्तामित्यर्थः प्रतिपद्यते=प्राप्नोति अर्थात् भवान् एव तथा कर्तुं जानाति यथेयं जीवनपर्यन्तम् अस्माकं चिन्तायाः=कारणं न भवतीति।

जातः निश्चयः=निर्णयः यस्य सः, दुहितुः=कन्यायाः दानं प्रति=विषये सुतौ=राजवर्धन-हर्षवर्धनौ विदितः=ज्ञातः अर्थः=विषयः याभ्यां तौ अवगतार्थौ इत्यर्थः अकार्षीत्=अकरोत्। शोभने=शुभे, प्रार्थयितुं=याचितुं प्रेषितस्य=प्रहितस्य पूर्वम् आगतस्य एव प्रधानस्य दूतपुरुषस्य करे=हस्ते सर्वेषां राज्ञां कुलस्य=समूहस्य समक्षं=संमुखं दुहितुः दानाय ग्रहवर्मणे इति शेषः जलम् अपातयत्सङ्कल्पजलम् अत्यजत् वाग्दानमकरोदिति भावः। जातमुदि गतेस्मिन्"

हिन्दी—नाथ, पालन-पोषण मात्र में उपयुक्त मातायें वास्तव में पुत्रियों की धाइयों के समान हुआ करती हैं। इनके देने का निर्णायक तो पिता होते हैं। केवल इतना है कि (बिछुड़ जाने से) दया (-पात्र) होने की विशेषता के कारण पुत्रों के प्रति स्नेह की अपेक्षा पुत्रियों के प्रति स्नेह बहुत अधिक होता है। जिस तरह यह जीवन-पर्यन्त हम दोनों की चिन्ता का कारण न बने, वैसा (करना) आर्यपुत्र ही जानते हैं"।

कन्यादान के प्रति निश्चय किए हुए राजा ने दोनों पुत्रों को बुलाकर उन्हें भी इस बात से अवगत करा दिया। और शुभदिन में ग्रहवर्मा द्वारा कन्या माँगने के लिये भेजे हुए और प्रधान दूत के रूप में पहले ही आए हुए पुरुष के हाथ में राजा ने कन्यादान का (संकल्प) जल छोड़ दिया। प्रसन्न और कृतकृत्य हुए उसके चले जाने और विवाह-दिनों के समीप आ जाने पर राजकुल मंगल से भरपूर हो उठा—जहां सभी लोग खुले-हाथ दिये जा रहे पान, पटवास

दिश्यमानशिल्पिसार्थागमनम्, अवनिपालपुरुषगृहीतसमग्रग्रामीणानीयमानोपकरणसम्भारम्, राजदौवारिकोपनीयमानानेकनृपोपायनम्, उपनिमन्त्रितागतबन्धुवर्गसंवर्गणव्यग्रराजवल्लभम्, लब्धमधुमदप्रचण्डचर्मकारकरपुटोल्लालितकोणपटुविघट्टनरणन्मङ्गलपटहम्, पिष्टपञ्चाङ्गुलमण्डयमानोलूखलमुसलशिलाद्युपकरणम्, अशेषाशामुखाविर्भूतचारणपरम्परापूर्यमाणप्रकोष्ठं प्रतिष्ठाप्यमानेन्द्राणीदैवतम्, सितकुसुमविलेपनवसनसत्कृतैः सूत्रधारैरादीयमानविवाहवेदीसूत्रपातम्, उत्कूर्चककरैश्च सुधाकर्परस्कन्धैरधिरोहिणीसमारूढैर्धवलीक्रियमाणप्रासादप्रतोलीप्राकारशिखरम्, क्षुण्णक्षाल्यमानकुसुम्भकसम्भाराम्भःप्लवपूररज्यमानजनपादपल्लवम्, निरूप्यमाणयौतकयोग्यमातङ्गतुर-

मङ्गल्यं चासीद् राजकुलम्' इत्यस्ति वाक्यम्। जाता=समुत्पन्ना मुद्=प्रसन्नता यस्य तस्मिन् कृतः अर्थः=प्रयोजनं येन तस्मिन् कृतकृत्ये इत्यर्थः गते=याते च तस्मिन्=प्रधानदूते, आसन्नेषु=सन्निहितेषु च विवाहस्य दिवसेषु उद्दाम०—उद्दामम्=निर्यन्त्रणम् मुक्तहस्तमिति यावत् यथास्यात्तथा दीयमानानि=समर्प्यमाणानि यानि ताम्बूलं च पटवासः=पिष्टातः सुगन्धिद्रव्यचूर्णमिति यावत् कुसुमं=पुष्पं च तैः प्रसाधिताः=अलंकृता संमानिताः इति यावत् सर्वे लोकाः=जना यत्र तत् एतत् अन्यानि च राजकुलस्य विशेषणानि, सकल०—सकलेभ्यः=समग्रेभ्यः देशेभ्यः आदिश्यमानम्=आज्ञाप्यमानम् शिल्पिनां=कलाकाराणां सार्थस्य=समूहस्य आगमनं यत्र तत् अवनि०—अवनिपालस्य=राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य पुरुषैः=कर्मचारिभिः गृहीतः=स्वीकृतः समग्रैः ग्रामीणैः=ग्रामवसिभिः आनीयमानानां=विवाहनिमित्तं-समर्प्यमाणानाम् उपकरणानां=सामग्रीणां सम्भारः=समूहः यत्र तत् राज०—राज्ञः=प्रभाकरवर्धनस्य दौवारिकैः=द्वारपालैः उपनीयमानानि=आनीयमानानि अनेकेषां नृपाणाम् उपायनानि=उपहाराः यस्मिन् तत्, उपनि०—उपनिमन्त्रिताः=आमन्त्रिताः आगताश्च ये बन्धूनां=बान्धवानां वर्गाः=समूहाःतेषां संवर्गणे=आवर्तने इति शङ्करः वर्गक्रमेण यथोचितप्रबन्धकरणे इत्यर्थः व्यग्राः=व्यापृताः राजवल्लभाः=राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य प्रियाः=अधिकारिगणाः यस्मिन् तत्, लब्ध०—लब्धं प्राप्तं यत् मधु=मदिरा तस्य मदेन=मत्ततया प्रचण्डाः=उन्मत्ताः ये चर्मकाराः=चर्मकृतः तेषां करपुटैः=हस्तद्वयेन उल्लालिताः=सञ्चालिताः ये कोणाः=वादन-दण्डाः ['कोणो वीणादिवादनम्' इत्यमरः] तैः पटुना=तीव्रेण विघट्टनेन=आघातेन रणन्तः=शब्दायमानाः मङ्गल-पटहाः=मङ्गल्याः आनकाः यस्मिन् तत्, पिष्ट०—पिष्टस्य=चूर्णस्य अर्थात् पिष्टहरिद्राचूर्णद्रवस्य पञ्चाङ्गुलेन—पञ्चानामङ्गुलीनां चिह्नेनत्यर्थः मण्डयमानानि=अलङ्क्रियमाणानि उलूखलं च मुसलं च शिला=पेषण-प्रस्तरश्च आदीनि येषां तानि उपकरणानि सामग्री यस्मिन् तत्, मङ्गलकार्येषु हरिद्राद्रवेण उलूखलवंस्त्रादीनि अद्यापि चिह्नितानि क्रियन्ते माङ्गलिकत्वात्, द्वितीयोच्छ्वासे बाणोऽपि 'पिष्टपञ्चाङ्गुलां पूर्णकलशमुदीक्षमाणः''''प्रीतिकूटात् निरगात्', अशेषा०—अशेषाणि=समग्राणि यानि आशामुखानि=दिङ्मुखानि तेभ्यः आविर्भूताः=प्रकटीभूताः आगताः इत्यर्थः ये चारणाः=स्तुतिपाठकाः तेषां परम्परया=श्रेण्या आपूर्यमाणाः=आश्रियमाणाः प्रकोष्ठाः=चतुःशालानि यस्मिन् तत् प्रतिष्ठा०—प्रतिष्ठाप्यमाना=प्रतिष्ठां प्राप्यमाणा इन्द्राणी=शची दैवतं यस्मिन् तेन विवाहे कन्यासौभाग्यार्थं शचीपूजनस्य विधानं वर्तते यथोक्तम्—'सम्पूज्य प्रार्थयित्वा तां शचीदेवीं गुणाश्रयाम्'। सित०—सितेन=धवलेन कुसुमेन=पुष्पेण च विलेपनेन=चन्दनादिना च वसनेन=वस्त्रेण च सत्कृतैः=आदृतैः सूत्रधारैः=स्थपतिभिः आदीयमानः=

हिन्दी—और पुष्प से अलंकृत किये जा रहे थे, जहाँ सभी देशों से शिल्पकारों के समूह को आने की आज्ञा दी जा रही थी, जहाँ सभी ग्रामीणों द्वारा लाई जा रही सामग्रियों का ढेर राजा के कर्मचारी लोग ले रहे थे, जहाँ राजा के द्वारपालों द्वारा अनेक राजाओं की भेटें लाई जा रही थी, जहाँ प्राप्त हुई मदिरा के मद से उत्तेजित हुए चमारों के दोनों हाथों पर उठाए हुए डंडों की प्रबल चोट से मंगल के नगाड़े बज रहे थे, जहाँ पीठे से पाँच अँगुलियों के चिह्नों द्वारा ऊखल, मुसल, सिल आदि उपकरण मंडित किए जा रहे थे, जहाँ सभी दिग्विभागों से प्रकट हुए भाटों के झुण्ड के झुण्डों से भरे जा रहे थे, जहाँ इन्द्राणी-देवता प्रतिष्ठापित की जा रही थी, जहाँ श्वेत पुष्प, विलेपन और वस्त्र से संमानित हुए राजगीर विवाह-वेदी (निर्माण) के लिये (भूमि पर नापने का) सूत डाल रहे थे, जहाँ हाथों में कूची ऊपर उठाए और कन्धों पर चूने का पात्र लटकाए, सीढ़ी पर चढ़े (सफेदी करने वाले) लोगों द्वारा प्रासाद एवं गली की दीवार के शिखर सफेद किये जा रहे थे, जहाँ पीसे और धुले जा रहे कुसुम-समूह के जल के स्रोत के प्रवाह से लोगों के चरण-किसलय लाल-लाल होते जा रहे थे, जहाँ जाँचे जा रहे दहेज के योग्य हाथियों और घोड़ों

ङ्गतरङ्गिताङ्गनम्, गणनाभियुक्तगणकगणगृह्यमाणलग्नगुणम्, गन्धोदकवाहिमकरमुखप्रणालीपूर्यमाणक्रीडावापीसमूहम्, हेमकारचक्रप्रक्रान्तहाटकघटनटाङ्कारवाचालितालिन्दकम्, उत्थापिताभिनवभित्तिपात्यमानबहलवालुकाकण्टकालेपाकुलालेपकलोकम्, चतुरचित्रकरचक्रवाललिख्यमानमङ्गल्यालेख्यम्, लेप्यकारकदम्बकक्रियमाणमृण्मयमीनकूर्ममकरनारिकेलकदलीपूगवृक्षकम्, क्षितिपालैश्च स्वयमाबद्धकक्ष्यैः स्वाम्यर्पितकर्मशोभासम्पादनाकुलैः सिन्दूरकुट्टिमभूमीश्च मसृणयद्भिर्विनिहितसरसातर्पणहस्तान्विन्यस्तालक्तकपाटलांश्च चूताशोकपल्लवलाञ्छितशिखरानुद्वाहवितर्दिकास्तम्भानुत्तम्भयद्भिः प्रारब्धविविधव्यापारम्, आसूर्योदयाच्च प्रविष्टाभिः सतीभिः सुभगाभिः

गृह्यमाणः क्रियमाणः इत्यर्थः विवाहस्य वेद्याः सूत्रपातः=सूत्रप्रक्षेपः यस्मिन् तत् अर्थात् वेदी निर्माणार्थं सूत्रपातद्वारा ते भूमि-मानं कुर्वन्ति स्म, उत्कूर्च०—उत्कूर्चकः=उद्गतः कूर्चकः तुलिका कुर्चीति भाषायां प्रसिद्धः यस्मिन् तथाभूतः करः=हस्तः येषां तैः, सुधायाः=श्वेतलेपनद्रव्यस्य कर्परः=भाण्डं स्कन्धे=अंसे येषां तैः अधिरोहिणीम्=अधिरुह्यते अनयेति तथोक्ताम् निःश्रेणिम् ['निश्रेणिस्त्वधिरोहिणी' इत्यमरः] समारूढैः=अधिष्ठितैः धवैः=पुरुषैः धवली क्रियमाणम्=श्वेतीक्रियमाणं प्रासादस्य=हर्म्यस्य प्रतोल्यां=रथ्यायाम् स्थितस्य प्राकारस्य भित्त्याः च शिखरं=शृङ्गम् अग्रमित्यर्थः यस्मिन् तत्, क्षुण्ण०—आदौ क्षुण्णं=चूर्णितम् पश्चात् क्षाल्यमानं=धाव्यमानं यत् कुसुम्भकम्=महारजनम् ['स्यात् कुसुम्भं वह्निशिखं महारजनमित्यपि' इत्यमरः] तस्य सम्भारस्य=समूहस्य यत् अम्भः=जलं तस्य प्लवस्य=स्रोतसः पूरेण=ओघेन रज्यमानाः=रक्तवर्णीक्रियमाणा, जनानां पाद-पल्लवाः=चरणकिसलयाः यस्मिन् तत्, निरूप्य—निरूप्यमाणाः=निरीक्ष्यमाणाः यौतकस्य 'विवाहादिकाले पत्या सहैकासने प्राप्तं युतयोर्यौतकमिति तस्य अर्थात् विवाहे कन्यायै दीयमानस्य वस्तुजातस्येत्यर्थः योग्या ये मातङ्गाः=गजाः=हस्तिनश्च तुरङ्गाः=अश्वाश्च तैः तरङ्गितम्=सञ्जाततरङ्गम् तरङ्गवत् सङ्कुलमित्यर्थः अङ्गनं=प्राङ्गणम् यस्मिन् तत्, गणना०—गणने=गणनायाम् अभियुक्ताः=व्यापृताः ये गणकाः=ज्योतिषिणः तेषां गणेन=दलेन गृह्यमाणाः=उपादीयमानाः लग्नस्य=मेषवृषादि-राशीनां पूर्वक्षितिजसम्बद्धभागस्य गुणाः=उच्चत्वादयो विशेषाः यस्मिन् तत्, गन्धो०—गन्धोदकं=सुगन्धित-जलं वहन्तीति० वाहिन्यः मकरमुखाः=मकरमत्स्यमुखाकारवत् मुखं यासां तथा भूताः याः प्रणाल्यः=जलनिर्गमनमार्गाः इत्यर्थः ताभिः पूर्यमाणः=पूर्णीक्रियमाणः क्रीडावापीनां=विहारसरसीनां समूहः यस्मिन् तत्, हेम०—हेमकाराणां=स्वर्णकाराणां यत् चक्रं=समूहः तेन प्रक्रान्तं=प्रारब्धं यत् हाटकस्य=सुवर्णस्य घटनं=भूषणादि-रूपेण निर्माणमित्यर्थं तस्य टाङ्कारैः=ठक-ठक् इति ध्वनिभिः वाचालिताः=मुखरिताः अलिन्दकाः=द्वाराद् वहिर्वर्तिनः प्रकोष्ठाः यस्मिन् तत् ['प्रघाणप्रघणालिन्दाः बहिर्द्वार-प्रकोष्ठके' इत्यमरः], उत्थापि०—उत्थापिता=निर्मिता इत्यर्थः अभिनवा=नूतना या भित्तिः=कुड्यम् तस्याः तत्सकाशादित्यर्थः पात्यमाना=नीचैः क्षिप्यमाणा या बहला=प्रचुरा बालुका=सिकता तस्याः कण्टकानां=कण्टकसदृशलघुकणानामित्यर्थः आलेपेन=संसर्गेणेत्यर्थः आकुलः=चक्षुषि पतनात् खिन्न आलेपकानां=लेपनकार्य-कर्तृणां लोकः=समूहः यस्मिन् तत्, चतुर०—चतुराः=निपुणाः ये चित्रकाः=चित्रकाराः तेषां चक्रवालेन=समूहेन लिख्यमानानि=निर्मीयमाणानीत्यर्थः मङ्गल्यानि=मङ्गलसम्बन्धीनि आलेख्यानि=चित्राणि यत्र तत्, लेप्य०—लेप्यकाराणां=मृण्मूर्तिकाराणां कदम्बेन=समूहेन क्रियमाणाः=विरच्यमानाः मृण्मयाः=मृत्तिकामयाः मीनाः=मत्स्याश्च कूर्माः=कच्छपाश्च मकराः=मकरमत्स्याश्च नारिकेलस्य=कौशिकफलस्य च कदल्याः

हिन्दी—से आँगन तरंगित-जैसा हो बैठा था, जहाँ गणना में व्यस्त ज्योतिषियों के गणों द्वारा (विवाह) लग्न के गुणों का ग्रहण किया जा रहा था, जहाँ सुगन्धित जल बहाने वाली, मगरमच्छ के मुख के आकार की नालियों द्वारा जल-क्रीडार्थ बनाई हुई बावड़ियों का समूह भरा जा रहा था, जहाँ सुनारों के दल द्वारा आरम्भ किये हुए स्वर्ण (भूषण) निर्माण की ठकठकों से दरवाजे के बाहर का आँगन मुखरित हो उठा था, जहाँ (निर्माण में) उठाई हुई नई-नई दीवार से गिराए जा रहे रेत के कंटक जैसे प्रचुर कणों के (आँखों में) पड़ जाने से पलस्तर करने वाले लोग परेशान हो रहे थे, जहाँ निपुण चित्रकारों के दल द्वारा मांगलिक चित्र बनाए जा रहे थे, जहाँ मूर्तियाँ बनाने वाले शिल्पियों के गण द्वारा मिट्टी की मछली, कछुआ और मगरमच्छ एवं नारियल, केले और सुपारी के वृक्ष बनाए जा रहे थे, जहाँ कमर कसे हुए, स्वामी द्वारा सौंपे हुए कार्यों को अच्छी तरह करने में लगे स्वयं राजे लोग सिंदूर लिये फर्श की भूमि को चिकना बनाते हुए, गीले मंगललेप हाथों के थापों वाले, महावर से लाल बने एवं अग्रभाग पर

सुरूपाभिः सुवेशाभिरविधवाभिः सिन्दूररजोराजितललाटाभिर्वधूवरगोत्रग्रहणगर्भाणि श्रुतिसुभगानि मङ्गलानि गायन्तीभिर्बहुविधवर्णकादिग्धाङ्गुलीभिर्ग्रीवासूत्राणि च चित्रयन्तीभिश्चित्रपत्रलतालेख्यकुशलाभिः कलशांश्च धवलिताञ्शीतलशाराजिरश्रेणीश्च मण्डयन्तीभिरभिन्नपुटकर्पासतूलपल्लवांश्च वैवाहिककङ्कणोर्णासूत्रसंनाहांश्च रञ्जयन्तीभिर्बलाशनाघृतघनीकृतकुङ्कुमकल्कमिश्रितांश्चाङ्गरागांल्लावण्यविशेषकृन्ति च मुखालेपनानि कल्पयन्तीभिः कक्कोल-

---

टीका—रम्भाफलस्य च पूगस्य=सुपारीति भाषायां प्रसिद्धस्य फलबीजविशेषस्य च वृक्षकाः=पादपाः यत्र तत्, एतानि फलानि माङ्गलिकानि भवन्ति; क्षिति०—क्षितिपालैः=नृपैश्च प्रारब्धविविधव्यापारम् इत्यनेनान्वयः, स्वयम्=आत्मना आवद्धा कक्ष्या=परिकरः यैः तैः बद्धपरिकरैरित्यर्थः, स्वाम्य०—स्वामिना प्रभाकरवर्धनेन अर्पितानि=निर्दिष्टानीत्यर्थः यानि कर्माणि=कार्याणि तेषां शोभया=सौष्ठवेन सम्पादने=अनुष्ठाने आकुलैः=व्यग्रैः सिन्दूर-लिप्ता कुट्टिमभूमयः=बद्धभूमयः (मध्यमपदलोपी स०) ताः मसृणयद्भिः=मसृणीकुर्वद्भिः चिक्कणीकुर्वद्भिरिति यावत्। विनिहित०—विनिहिताः स्थापिताः समर्पिताः इति यावत् सरसाः=आर्द्राः आतर्पणस्य=पिष्टीय-मङ्गलालेपनस्य ['आतर्पणं प्रीणने स्यान्मङ्गलालेपनेऽपि च' इति मेदिनी] हस्ताः=हस्तचिह्नानीत्यर्थः येषु तान्, विन्यस्तं=निहितं यत् अलक्तकम्=लाक्षारसः तेन पाटलान्=रक्तवर्णान्, चूतस्य=आम्रस्य च अशोकस्य पल्लवैः=पत्रैः लाञ्छितं=चिह्नितं शिखरम्=अग्रं येषां तान्, उद्वाहस्य=विवाहस्य या वितर्दिका=वेदी ['वितर्दिस्तु वेदिका' इत्यमरः] तस्याः स्तम्भान्=स्थूणा उत्तम्भयद्भिः =उत्थापयद्भिः प्रारब्धाः=प्रक्रान्ताः विविधाः व्यापाराः=कार्याणि यस्मिन् तत्, आसूर्यो०—आसूर्योदयात्=सूर्यस्य उदयात् आरभ्य प्रविष्टाभिः=आगताभिः इत्यनेन सम्बद्धचन्ते, सतीभिः=पतिव्रताभिः सुभगाभिः=पति-प्रियाभिः सुरूपाभिः=सुन्दरीभिः सु=शोभनः वेशः=वसनभूषा यासां ताभिः अविधवाभिः=जीवितपतिकाभिः सौभाग्यवतीभिरिति यावत्, सिन्दूर०—सिन्दूरस्य=रञ्जकद्रव्यविशेषस्य रजसः=धूल्याः राज्या=पंक्त्या राजितं=लसितं ललाटं यासां ताभिः वधूः परिणीयमाना कन्या च वरः=परिणेता च तयोः यत् गोत्रं=कुलं अथवा नाम तस्य ग्रहणं=प्रतिपादनं गर्भे=मध्ये येषां तानि श्रुत्योः=कर्णयोः सुभगानि=सुखावहानि मधुराणीति यावत् मङ्गलानि=मङ्गलगीतानि गायन्तीभिः=गानविषयीकुर्वतीभिः, बहुविध०—बहुविधैः=नानाप्रकारैः वर्णकैः=रञ्जकद्रव्यैः आदिग्धाः=आलिप्ताः अङ्गुल्यः यासां ताभिः ग्रीवासूत्राणि=कण्ठसूत्राणि चित्रयन्तीभिः, रञ्जयन्तीभिः, चित्र०—चित्राणां चित्र-रूपाणां=पत्राणां लतानाञ्च आलेख्ये=चित्रणे कुशलाभिः=दक्षाभिः कलशान्=पात्राणि च धवलितान्=पिष्टेन श्वेतीकृतान्, शीतलानाम्=अपक्वानामित्यर्थः शाराजिराणां=रलयोरभेदात् शालाजिराणां=शरावाणां मृत्पात्राणामित्यर्थः ['स्याच्छरावस्तु मार्तिकः शालाजिरः' त्रिकाण्डशेषः] श्रेणीः=समूहानित्यर्थः मण्डयन्तीभिः=प्रसाधयन्तीभिः, अभिन्न०—न भिन्नः=विदीर्णः पुटः=बीजकोषः यस्य तथाभूतः यः कर्पासस्य तूलः=रूई इति भाषायां प्रसिद्धः तस्य पल्लवान्=पत्राणि विवाहाय इदम् इति वैवाहिकं यत् कङ्कणं=प्रतिसरः हस्तसूत्रमिति यावत् तदर्थम् ऊर्णा=सूत्राणां=मेषादिरोम-तन्तूनां संनाहान्=समूहान् रञ्जयन्तीभिः=रक्तवर्णीकुर्वतीभिः, बालाशन०—बलाशना=ओषधिविशेषः तस्य घृतेन घनीकृतः=

टिप्पणी—अभिन्नपुट०—यहाँ अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा है। वैसे पुट बीजकोश अथवा डोडे को बोलते हैं। उन्होंने अनफुटी कपास-डोडियों को लिया और उनसे रुई निकालकर पत्ते फूल अथवा डोडे बनाए। मांगलिक कार्यों में शुद्ध रुई—बाजार की धुनी हुई नहीं—ली जाती है। किन्तु शंकर का कहना है—'अभिन्नपुटो वंशादिमयश्चतुष्कोणः पाटलाकृतिर्जालकैः क्रियते। तच्छिद्रान्तरपूरणाय कर्पासतूलपल्लवा रज्यन्ते'। यह भी स्पष्टार्थ है।

हिन्दी—आम और अशोक के पल्लव सँजोये विवाह-वेदी के खम्भों को खड़ा करते हुए विविध कार्य आरम्भ किये हुए थे, जहाँ चारों ओर सूर्योदय से ही आई पड़ी सामन्तों की पतिव्रता, पतिवल्लभा, सुन्दर, सुन्दरवेश-भूषित, सौभाग्यवती एवं सिंदूर-रज की रेखा से चमकते हुए ललाटों वाली महिलाओं का भीड़-भड़ाका लगा रहता था, जो वर और वधू के नाम-मध्य में रखे हुए, सुनने में सुन्दर मधुर गीत गा रही थीं, जो नाना रंगों में डुबाई अंगुलियों से कण्ठ-सूत्र रँग रही थीं, जो पत्रों और वेलों की चित्रकारी में निपुणता रखती हुई सफेद रंगे कलशों और कच्ची हाँडियों को (चित्रों से) विभूषित कर रही थीं, जो अनफूटे डोडों के कपास की रूई के पल्लवों और विवाह-कँगने में काम आने वाली सूत्रों के ढेरों को रँग रही थीं, जो बलाशना नामक ओषधि के घृत से गाढ़ी की हुई केसर की गाद-मिली उबटन और विशेष सौन्दर्य लाने वाले मुखलेप बना रही थीं और जो कंकोलों से मिश्रित,

मिश्राः सजातीफलाः स्फुरत्स्फीतस्फाटिककर्पूरशकलखचितान्तराला लवङ्गमाला रचयन्तीभिः समन्तात्सामन्तसीमन्तिनीभिर्व्याप्तम्, बहुविधभक्तिनिर्माणनिपुणपुराणपौरपुरंध्रिबध्यमानैर्बद्धैश्चाचारचतुरान्तःपुरजरतीजनितपूजाराजमानरजकरज्यमानै रक्तैश्चोभयपटान्तलग्नपरिजनप्रेङ्खोलितैश्छायासु शोष्यमाणैः शुष्कैश्च कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लवपरभागैरपरैरारब्धकुङ्कुमपङ्कस्थासकच्छुरणैरपरैरुद्भुजभुजिष्याभज्यमानभङ्गुरोत्तरीयैः क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः

टीका–निविडीकृतः कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य कल्कः=पङ्कः तेन मिश्रितान्=मिलितान् अङ्गरागान् सुगन्धित-लेपान्, लावण्यस्य=सौन्दर्यस्य विशेषम्=आधिक्यम् कुर्वन्तीति यथोक्तानि मुखस्य आलेपनानि=लेपान् कल्पयन्तीभिः=कुर्वतीभिः, कक्कोल०—कक्कोलैः=सुगन्धितलताविशेष-फलैः मिश्राः=मिलिताः जातीफलैः=जायफलेति भाषायां प्रसिद्धैः सहिताः स्फुरन्ति=लसन्ति स्फीतानि=प्रचुराणि स्फाटिकानि=स्फटिकस्य=प्रस्तरविशेषस्य इमानि इति स्फटिकानि इवेति लुप्तोपमा यानि कर्पूरस्य=घनसारस्य शकलानि=खण्डानि तैः खचितम्=ग्रथितमित्यर्थः अन्तरालम्=मध्यभागः यासां ताः लवङ्गस्य=लवङ्गपुष्पस्य मालाः=स्रजः रचयन्तीभिः=ग्रथ्नतीभिः समन्तात्=परितः सामन्तानाम्=अधीननृपाणां, सीमन्तिनीभिः=नारीभिः ['नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः] व्याप्तम्=आकीर्णं, बहुविध०—बहुविधाः या भक्तयः=विच्छित्तयः प्रसाधन–व्यापाराः इत्यर्थः तासां निर्माणे=रचने निपुणाः=चतुराः याः पुराणाः=वृद्धाः पौर्यः=पुरवासिन्यः पुरन्ध्रयः=कुटुम्बवत्यः स्त्रियः ['स्यात्तु कुटुम्बिनी । पुरन्ध्री' इत्यमरः] ताभिः बध्यमानैः एतत् अन्यानि च तृतीयान्तानि वासोभिः इत्यस्य विशेषणानि सन्ति, बद्धैश्च आचार०—आचारे=कुलपरम्पराप्राप्त–व्यवहारे चतुराः याः अन्तःपुरस्य=अवरोधस्य जरत्यः=वृद्धस्त्रियः ताभिः जनिता= कृता या पूजा=संमान इत्यर्थः तया राजमानाः=शोभमानाः ये रजकाः=धावकाः तैः रज्यमानैः=रञ्जितीक्रियमाणैः रक्तैः=रञ्जितैश्च, उभय०—उभयस्मिन्=[उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति] पटान्तयोः पटानां प्रान्तभागयोः लग्नाः=व्यापृताः ये परिजनाः=भृत्याः तैः प्रेङ्खोलितैः=सञ्चालितैः छायासु=अनातपेषु शोष्यमाणैः=शुष्कीक्रियमाणैः अथ च शुष्कैः, कुटिल०—कुटिलः=वक्रः क्रमः=विन्यासः इत्यर्थः यस्य तथाभूतं यत् रूपं=स्वरूपं तेन क्रियमाणः=विधीयमानः पल्लवेषु=चित्रितकिशलयेषु परभागः=गुणोत्कर्षः ['परभागः गुणोत्कर्षे' इति क्षीरस्वामी] येषु तैः, अपरैः अन्यैः, आरब्ध०—आरब्धं=प्रक्रान्तम् कुङ्कुमपङ्कस्य=काश्मीरज–

टिप्पणी—कुटिलक्रम०—इसका आशय यही मालुम होता है कि रँगे जा चुके वस्त्रों पर पल्लवादि की चित्रकारी हो रही थी। भीतरी तरफ से पल्लव उल्टे काढ़े जा रहे थे। जिससे बाहरी भाग में वे सुल्टे होकर अपना सौन्दर्यातिशय प्रकट कर सकें। किन्तु कॉवेल इसका और ही अर्थ करता है—'Some, now dry, where having all the charm of sprays, reproduced in their twisted shapes,

उद्भुज०—यह भी अस्पष्टार्थ है। सम्भवतः यहाँ यह अभिप्रेत हो कि जब वस्त्र बिन कर तय्यार हो गये होंगे तो उन्हें बटोरने के लिए भुजिष्याओं ने भुजाएँ ऊपर की होंगी। उस धक्के से उनके अपने ही महीन उत्तरीय फट गये होंगे अथवा हाथ उठाये वे थान में से महीन चादरों के टुकड़े फाड़ रही थीं।

हिन्दी–जायफल-सहित और बीच-बीच में बड़े-बड़े स्फटिक-जैसे चमकते हुए कपूर-खण्डों से जड़ी लौंग की मालाएँ गूँथ रही थीं, जो (राजकुल) चारों तरफ चमकते हुए हजारों इन्द्रधनुष-जैसे प्रतीत हो रहे कपड़ों से आच्छादित था-जिनमें से कुछ तो तरह-तरह की रंगचित्रण-रचना में कुशल बूढ़ी नागरिक स्त्रियों द्वारा बाँधे जा रहे थे और (कुछ) बाँधे जा चुके थे, कुछ लोकव्यवहार-निपुण अन्तःपुर की वृद्धाओं द्वारा किये गये संमान से विराजमान रँगरेजों द्वारा रँगे जा रहे थे और (कुछ) रँगे जा चुके थे, (कुछ) कपड़ों के दोनों छोरों को पकड़े हुए परिचारकों द्वारा हिलाये जाते हुए छाया में सुखाए जा रहे थे और (कुछ) सूख चुके थे, (कुछों में) टेढ़े क्रम के स्वरूप में बनाए जा रहे पल्लवों पर अधिक खूबी लाई जा रही थी, (कुछ) अन्यों में से हाथ ऊपर किये हुए परिचारिकाओं द्वारा महीन चादरें फाड़ी जा रही थीं, जिनमें (कुछ) टस्सरी, सूती, रेशमी और मकड़ी जाल के तन्तुओं से बने हुए वस्त्र और नेत्र नामक वस्त्र भी थे, जो साँप के केंचुली के समान मृदु, केले के भीतरी भाग के समान कोमल, श्वासमात्र से हिल जाने वाले तथा स्पर्श से ही अनुमान किये जाने वाले थे,

१ 'रजकमहादारजतरज्यमानैः'

...तारामुक्ताफलोप-
सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव सञ्छादितम्, उज्ज्वलनिचोलकावगुण्ठ्यमानहंसकुलैश्च ... पटावतानैः
चीयमानैश्च कञ्चुकैरनेकोपयोगपाट्यमानैश्चापरिमितैः पट्टपटीसहस्रैरभिनवरागकोमलैर्दुकूलराजमानैश्च पटावतानैः
स्तवरकनिवहनिरन्तरच्छाद्यमानसमस्तपटलैश्च मण्डपैश्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैरुज्ज्वलं रमणीयं चोत्सुक्यदं
च मङ्गल्यं चासीद्राजकुलम् ।

देवी तु यशोमती विवाहोत्सवपर्याकुलहृदया हृदयेन भर्तरि कुतूहलेन जामातरि स्नेहेन दुहितरि उपचारेण निमन्त्रितस्त्रीषु आदेशेन परिजने शरीरेण सञ्चरणे चक्षुषा कृताकृतप्रत्यवेक्षणेषु आनन्देन महोत्सवे एकापि बहुधा विभक्तेवाभवत् । भूपतिरप्युपर्युपरि विसर्जितोष्ट्रवामीजनितजामातृतोषः सत्यप्याज्ञासम्पादनदक्षे मुखेक्षणपरे परिजने समं पुत्राभ्यां दुहितृस्नेहविक्लवः सर्वं स्वयमकरोत् ।

टीका–द्रवस्य स्थासकानां=चर्चानां ['स्नानं चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकोऽथ प्रबोधनम्' इत्यमरः] लाञ्छनानामिति यावत् छुरणम्=लेपनम् येषु तैः, अपरैः=अन्यैः, उद्भुज०—उद्भुजाः=उत्=ऊर्ध्वं भुजौ=बाहू यासां ताः याः भुजिष्याः=परिचारिकाः ताभिः भज्यमानानि=भिद्यमानानि भङ्गुराणि=भङ्गशीलानि सुखभेद्यानीत्यर्थः उत्तरीयाणि=उत्तरासङ्गाः येषु अथवा येभ्यः तैः, क्षुमायाः=अतस्याः विकाराः इति क्षौमाणि तैः, बदरायाः= कार्पासस्य विकाराः इति बादराणि तैः ['वाल्कं क्षौमादि फालं तु कार्पासं बादरं च तत्' इत्यमरः] दुकूलैः=कौशेयैः लाला=लूतायाः सृणिका तस्याः तन्तुभिः जायन्ते इति तथोक्तैः तानि पत्रोर्णान्यपि कथ्यन्ते यथाह क्षीरस्वामी—'लकुच वटादि-पत्रेषु लूतादि कृमिलालोर्णाकृतम् पत्रोर्णम्' अंशुकैः=अंशुकशब्दोऽत्र वस्त्रसामान्यपरकः वस्त्रैरित्यर्थः नेत्रैः वस्त्रविशेषैः चीनांशुकैरिति यावत् निर्मोकनिभैः=सर्प-कञ्चुकसमानसूक्ष्मैः, अकठोरा=सुकोमला या रम्भा=कदलीवृक्षः तस्याः गर्भवत्=अन्तर्मार्गवत् कोमलैः=सुकुमारैः, निःश्वासेन=निःश्वसित-पवनेन हार्यैः= हर्तुं=सञ्चालयितुं योग्यैः अतिसूक्ष्मत्वात्, स्पर्शेन=करस्पर्शेन अनुमेयैः=अनुमातुं योग्यैः, अर्थात् तानि तथा सूक्ष्माण्यासन् यथा शरीरे परिहितानि अपि चक्षुर्ग्राह्याणि न भवन्ति स्म केवलं स्पर्शेनैव तेषामनुमानं भवति स्म, सर्वतः=परितः स्फुरद्भिः=नानावर्णैः भासमानैः इन्द्रायुधानाम्=इन्द्रधनुषां सहस्रैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् सञ्छादितम्= आवृतम्, उज्ज्वल०—उज्ज्वलाः=भासुराः ये निचोलकाः प्रच्छदपटाः ['निचोलः प्रच्छदपटः' इत्यमरः] तैः अवगुण्ठ्यमानानि=आच्छाद्यमानानि छायायां प्रक्षेप्यमाणानि अतिक्रम्यमाणानीत्यर्थः हंसानां कुलानि=समूहाः यैः, हंसाः श्वेताः भवन्ति पर्यङ्क-प्रच्छदपटास्तु निजश्वैत्यातिशये हंसान् अपि अतिशेरतेस्मेतिभावः, तथाभूतैः शयनीयैः= शय्याभिः, तारा०—तारावत्=नक्षत्रवत् (उज्ज्वलैः) इति लुप्तोपमा, मुक्ताफलैः=मौक्तिकैः उपचीयमानैः=वृद्धिं प्राप्यमाणैः खचितैरित्यर्थः कञ्चुकैः स्तनावरणवसनैः, अनेको०—अनेकेषु उपयोगेषु=कार्यप्रयोगेषु पाट्यमानैः= छिद्यमानैः अपरिमितैः=असंख्यैः पट्टस्य=सूक्ष्मवसनस्य पटीनां=खण्डानां सहस्रैः, अभिनव०—अभिनव=प्रत्यग्रः रागः=रञ्जनम् येषां तानि अत एव कोमलानि=मृदूनि दुकूलानि—कौशेयवसनानि तैः राजमानैः=भ्राजमानैः पटस्य

हिन्दी–जो (राजकुल) उज्ज्वल चादरों से हंसकुल को (भी) अन्धकार में डाल देने वाली शय्याओं, तारों-जैसे मोती जड़े चोलियों, अनेक उपयोगों के लिए फाड़े जाने वाले महीन कपड़ों के अपरिमित हजारों टुकड़ों, नये-नये रँगे कोमल रेशमी कपड़ों से शोभायमान शामियानों, स्तवरकवस्त्र-समूह से निरन्तर आच्छादित किये जा रहे सभी भीतरी छतों वाले मंडपों तथा ऊपर चित्रित महीन रेशमी वस्त्रों से ढँके जा रहे खम्भों से उज्ज्वल, रमणीय एवं उत्सुकता उत्पन्न कर देने वाला था ।

विवाहोत्सव में मन को चारों ओर व्यस्त किये हुए रानी यशोमती तो हृदय से पति में, कुतूहल से जामाता में, स्नेह से पुत्री में, आवभगत से आमन्त्रित महिलाओं में, आज्ञा से नौकर चाकरों में, शरीर से इधर उधर चलने-फिरने में, आँख से किसने क्या किया और क्या नहीं किया–यह देखने में और आनन्द से महोत्सव में (अभिप्राय यह कि) एक होती हुई भी बहुतों में जैसे विभक्त हो गई । भेजे गये ऊँटों और घोड़ियों से जामाता को प्रसन्न किये हुए राजा भी आज्ञा पालन करने में चतुर और (आज्ञार्थ राजा के) मुख की ओर दृष्टि लगाए भृत्य वर्ग के रहते हुए भी पुत्री के स्नेह से व्याकुल हुआ पुत्रों के साथ कभी-कभी स्वयम् सब कुछ कर लेता था ।

---

१ 'कोमलैर्दुकूल०'

एवं च तस्मिन्नविधवामय[1] इव भवति राजकुले, मङ्गलमय इव जायमाने जीवलोके, चारणमयेष्विव लक्ष्यमाणेषु दिङ्मुखेषु, पटहमय इव कृतेऽन्तरिक्षे, भूषणमय इव भ्रमति परिजने, बान्धवमय इव दृश्यमाने सर्गे, निर्वृतिमय इवोपलक्ष्यमाणे काले, लक्ष्मीमय इव विजृम्भमाणे महोत्सवे, निधान इव सुखस्य फल इव जन्मनः परिणाम इव पुण्यस्य यौवन इव विभूतेर्यौवराज्य इव प्रीतेः सिद्धिकाल इव मनोरथस्य वर्तमाने, गण्यमान इव जनाङ्गुलीभिः, आलोक्यमान इव मार्गध्वजैः, प्रत्युद्गम्यमान इव मङ्गल्यवाद्यप्रतिशब्दकैः, आहूयमान इव मौहूर्तिकैः, आकृष्यमाण इव मनोरथैः, परिष्वज्यमान इव वधूसखीहृदयैराजगाम विवाहदिवसः। प्रातरेव प्रतीहारैः समुत्सारितनिखिलानिबद्धलोकं विविक्तमक्रियत राजकुलम्।

टीका-वितानैः=उल्लोचैः आतपाद्यपनयार्थम् उपरिबद्धैः वासोभिरिति यावत् ['अस्त्री वितानमुल्लोचः' इत्यमरः] स्तबरक०—स्तवरकाणाम्=वस्त्रविशेषाणामिति शङ्करः निवहेन=समूहेन निरन्तरम्=निरवकाशं यथास्यात्तथा छाद्यमानानि=आव्रियमाणानि समस्तानि=सकलानि पटलानि=तृणपटलानि अन्तरछादनानि इति यावत् येषां तथाभूतैः=मण्डपैश्च, उच्चित्र०—उत्=ऊर्ध्वं चित्राणि येषां तथाभूताः ये नेत्र-पटाः=सूक्ष्मकौशेयवस्त्राणि तैः वेष्ट्यमानैः=आच्छाद्यमानैः स्तम्भैः=स्थूणाभिश्च उज्ज्वलं=भ्राजिष्णु, रमणीयं=मनोहरं च औत्सुक्यं=लोकेभ्यः कौतुकं ददातीति तथोक्तं मङ्गल्यम्=मङ्गलपूर्णमित्यर्थः आसीत् राजकुलम्=राजगृहम्।

विवाहस्य उत्सवे पर्याकुलम्=व्यग्रं हृदयं यस्याः सा, भर्तरि=पत्यौ, कुतूहलेन कौतुकेन जामातरि=ग्रहवर्मणि, स्नेहेन दुहितरि=राजश्रियाम्, उपचारेण=शिष्टाचारेण स्वागतसंमानादिनेत्यर्थः निमन्त्रितासु=विवाहे आमन्त्रितासु स्त्रीषु आदेशेन=आज्ञया परिजने=भृत्यवर्गे, शरीरेण सञ्चरणे=इतस्ततः गमने चक्षुषा कृतं च अकृतं च कृताकृते तयोः प्रत्यवेक्षणेषु अर्थात् केन येन किं कृतं न वा कृतम् इति निरीक्षणे, आनन्देन=हर्षेण महोत्सवे=विवाहोत्सवे एका अपि सती बहुधा बहुप्रकारैः विभक्ता=कृतविभागा इवेत्युत्प्रेक्षा सा च एकस्याः महिष्याः अनेकाधारगतत्वेन विशेषालङ्कारेण सङ्कीर्यते। भूपतिः=प्रभाकरवर्धनः उपरि उपरि=कदाचित् कदाचित्, पुनः पुनः विसर्जिताः=प्रेषिताः उष्ट्राश्च वाम्यः=तुरग्यश्च ताभिः जनितः=उत्पादितः जामातुः=ग्रहवर्मणः इत्यर्थः जोषः=प्रीतिः प्रसन्नतेति यावत् येन सः सति अपि=विद्यमाने अपि आज्ञानाम्=आदेशानां सम्पादने=अनुष्ठाने पालने इत्यर्थः दक्षे=निपुणे मुख्यस्य=राज्ञः आननस्य ईक्षणं आज्ञाप्राप्त्यर्थं परं=प्रधानम् यस्य तस्मिन् परिजने=भृत्यवर्गे पुत्राभ्यां=राज्यवर्धन-हर्षवर्धनाभ्यां समम्=सह दुहितरि=पुत्र्यां राज्यश्रियौ यः स्नेहः तेन विक्लवः=आकुलः सन् सर्वं कार्यजातं स्वयम् अकरोत्=कृतवान्।

एवम् तस्मिन् अविधवामये.........आजगाम विवाहदिवसः इत्यस्ति मुख्यवाक्यम्। अविधवाः=जीवद्भर्तृकाः स्त्रियः सौभाग्यवत्यः इति यावत् एव अविधवामयः तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, राजकुले=राजभवने, मङ्गलमये=मङ्गलात्मके इव जायमाने=भवति जीवलोके=प्राणिसमूहे, दिङ्मुखेषु=दिशाविभागेषु चारणमयेषु=स्तुतिपाठकमयेषु इव लक्ष्यमाणेषु=दृश्यमानेषु, अन्तरिक्षे=गगने पटहमये=दुन्दुभिमये इव कृते पटह-शब्दानां गगने व्यापृतत्वात्, भूषणमये=अलङ्कारमये इव भ्रमति=इतस्ततः गच्छति परिजने=भृत्यवर्गे=भृत्याः अपि भूषणैः तथाभृशमलंकृताः आसन् यथा ते भूषणमया इव दृश्यन्ते स्मेति भावः। बान्धवमये=बन्धुमये इव सर्गे=

हिन्दी-इस प्रकार राजकुल के सुहागिनमय-जैसे हो उठने पर, प्राणिलोक के मंगलमय-जैसे हो जाने पर, दिङ्मुखों के चारणमय जैसे दिखलाई देने पर गगन के पटहमय-जैसे कर दिये जाने पर, भूषणमय-जैसे बने हुए भृत्यवर्ग के इधर-उधर भ्रमण करने लगने पर, संसार के बान्धवमय-जैसे देखने में आने पर, समय के आनन्दमय-जैसे परिलक्षित होने पर, लक्ष्मीमय-जैसे बने महोत्सव के बढ़ते जाने पर, सुख की निधि के-जैसे, जन्म के फल के जैसे, पुण्य के परिणाम के-जैसे, वैभव के यौवन के-जैसे, प्रसन्नता के यौवराज्याभिषेक के-जैसे, मनोरथ के सिद्धिकाल के-जैसे उपस्थित हो आने पर मार्गस्थित ध्वजाओं द्वारा दूर से देखा जाता हुआ-जैसा, मांगलिक बाद्यों की प्रतिध्वनियों द्वारा अगवानी किया जाता हुआ-जैसा, ज्योतिषियों द्वारा बुलाया जाता हुआ-जैसा, मनोरथों द्वारा खींचा जाता हुआ-जैसा और दुलहन की सहेलियों के हृदयों द्वारा गले लगाया जाता हुआ-जैसा विवाह-दिवस आ गया।

---

१ 'अविधवाधवे'

अथ महाप्रतीहारः प्रविश्य नृपसमीपम् 'देव, जामातुरन्तिकात्ताम्बूलदायकः पारिजातकनामा संप्राप्तः' इत्यभिधाय स्वाकारं युवानमदर्शयत्। राजा तु तं दूरादेव जामातृबहुमानाद्दर्शितादरः 'बालक, कच्चित्कुशली ग्रहवर्मा' इति पप्रच्छ। असौ तु समाकर्णितनराधिपध्वनिर्धावमानः कतिचित्पदान्युपसृत्य प्रसार्य च बाहू सेवाचतुरश्चिरं वसुन्धरायां निधाय मूर्धानमुत्थाय 'देव, कुशली यथाज्ञापयस्यर्चयति च देवं नमस्कारेण' इति व्यज्ञापयत्। आगतजामातृनिवेदनागतं च तं ज्ञात्वा कृतसत्कारं राजा 'यामिन्याः प्रथमे यामे विवाहकालात्ययकृतो यथा न भवति दोषः[१]' इति सन्दिश्य प्रतीपं प्राहिणोत्।

टीका–सृष्टौ लोके इत्यर्थः दृश्यमाने, निर्वृत्तिः=आनन्दः तन्मये इव काले=समये उपलक्ष्यमाणे=आलोक्यमाने, लक्ष्मीः=श्रीः तन्मये इव महोत्सवे विजृम्भमाणे=वृद्धिं गच्छति, अर्थात् महोत्सवे सर्वमपि श्रीसंपन्नमासीत्, निधाने =निधौ इव सुखस्य=हर्षस्य निधानादीनां वर्तमाने इत्यनेन सम्बन्धः क्रियतां, जन्मनः फले इव पुण्यस्य= सुकृतस्य परिणामे इव, विभूतेः=वैभवस्य यौवने इव प्रीतेः=हर्षस्य यौवराज्ये इव, यौवराज्याभिषेको हि महामहत्त्वपूर्णः उत्सवो भवतीति ध्येयम्, मनोरथस्य=मनोभिलषितस्य सिद्धिकाले=पूर्तिकाले इव वर्तमाने जायमाने, जनानां=लोकानां अङ्गुलिभिः गण्यमानः=संख्यायमान इव मार्ग-ध्वजैः=शोभार्थं मार्ग-स्थापितैः ध्वजैः आलोक्यमानः=दृश्यमानः इव, अन्योपि कश्चित् उद्ग्रीवो भूत्वा आगमिष्यन्तं पुरुषं दूराद् आलोकयति मङ्गल्यानि= माङ्गलिकानि यानि वाद्यानि=पटहादीनि प्रतिशब्दकैः=प्रतिध्वनिभिः प्रत्युद्गम्यमानः=अग्रे गत्वा स्वागतीक्रियमाणः इव मुहूर्तं=मङ्गलमयं वेद इति (मुहूर्त+ठक्) मौहूर्तिकः=ज्योतिषी तैः आहूयमानः=आकर्ण्यमानः इव, मनोरथैः= अभिलषितैः=आकृष्यमाणः आनीयमानः इवेत्यर्थः, वध्वाः=कन्यायाः राज्यश्रियः इत्यर्थः सखीनाम्=आलीनां हृदयैः= परिष्वज्यमानः आश्लिष्यमाणः इव विवाह-दिवसः आजगाम=आगतवान्। उपरि सर्वत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। प्रातः एव प्रतीहारैः=द्वारपालैः समुत्सारिताः निखिलाः=समग्राः अनिबद्धाः=विवाह-कार्येषु असम्बद्धाः वादया इति यावत् लोकाः जनाः यस्मात् तत् अत एव विविक्तं=जनरहितम् एकान्तमिति यावत् राजकुलम् अक्रियत=कृतम्।

महान् चासौ प्रतीहारः=प्रधानदौवारिकः नृपस्य=राज्यवर्धनस्य समीपं प्रविश्य=प्रविष्टो भूत्वा—'देव= महाराज! जामातुः=ग्रहवर्मणः अन्तिकात्=समीपात् ताम्बूलं ददातीति तथोक्तः पारिजातकः नाम यस्य सः संप्राप्तः= आगतः' इति अभिधाय कथयित्वा स्वाकारं=सु=शोभनः आकारः=आकृतिः यस्य तथाभूतं युवानं=तरुणम् अदर्शयत्=दर्शितवान्। दूरात् एव जामातरि=वरे ग्रहवर्मणि यः बहुः मानः आदरभावः तस्मात् कारणात् दर्शितः= प्रकटितः आदरः येन सः—'कच्चित् आशासे ('कच्चित् कामप्रवेदने' इत्यमरः) कुशलम् अस्यास्तीति तथोक्तः पप्रच्छ=पृष्टवान्। असौ पारिजातकः समाकर्णितः=श्रुतः नराधिपस्य=भूपतेः राजवर्धनस्येत्यर्थः ध्वनिः=शब्दः वचनमित्यर्थः येन स धावमानः=द्रुतगत्या आगच्छन्, उपसृत्य=उपगम्य बाहू=भुजौ प्रसार्य=विस्तार्य सेवायां चतुरः=दक्षः चिरं वसुन्धरायां=पृथिव्यां मूर्धानं=शिरः निधाय=स्थापयित्वा पुनः उत्थाय देवं=महाराजं नमस्कारेण=अभिवादनेन अर्चयति=पूजयति इति व्यज्ञापयत्=निवेदितवान्। आगतस्य=विवाहार्थं राजधान्यां प्रविष्टस्येत्यर्थः जामातुः निवेदनाय=विज्ञापनाय सूचनायेत्यर्थः आगतम् अर्थात् 'जामाता आगतः' इति सूचनां दातुं समुपस्थितम् तं=युवानं ज्ञात्वा कृतः सत्कारः=संमानः यस्य तथाभूतं राजा यामिन्याः निशायाः प्रथमे यामे=प्रहरे विवाहस्य

हिन्दी–इसके बाद प्रधान द्वारपाल राजा के समीप आकर—'महाराज, जामाता के पास से पारिजातक नामक तांबूल दायक आ पहुँचा है'—यह कहकर तत्काल एक सुन्दर आकृति के युवक को दिखाया। दामाद के प्रति बहुत आदर-भाव होने के कारण राजा ने दूर से ही उसके प्रति आदर दिखाते हुए पूछा–'बेटा, ग्रहवर्मा तो सकुशल हैं?' सेवा में चतुर उसने राजा के वचन सुनकर दौड़े आते हुए कुछ पग पास आकर दोनों भुजाएँ पसार देर तक भूमि पर शिर टेक (फिर) उठकर निवेदन किया —'महाराज, सकुशल हैं जैसे आपने आज्ञा की है और आपकी अभिवादन द्वारा पूजा करते हैं, (राजधानी में) पहुँच पड़े जामाता की सूचना देने को आए हुए उसे समझकर और उसका सत्कार करके राजा ने यह सन्देश देकर कि 'रात्रि के प्रथम प्रहर में जिस तरह विवाह समय का अतिक्रमण करने से दोष न हो जाय (वैसा प्रयत्न करना)' उसे वापस भेज दिया।

---

१ 'दोषस्तथा विधीयतामिति'

अथ सकलं कमलवनलक्ष्मीं वधूमुख इव सञ्चार्य समवसिते वासरे, विवाहदिवसश्रियः पादपल्लव इव रज्यमाने सवितरि, वधूवरानुरागलघूकृतप्रेमलज्जितेष्विव विघटमानेषु चक्रवाकमिथुनेषु, सौभाग्यध्वज इव रक्तांशुकसुकुमारवपुषि नभसि स्फुरति संध्यारागे, कपोतकण्ठकर्बुरे वरयात्रागमनरजसीव कलुषयति दिङ्मुखानि तिमिरे, लग्नसम्पादनसज्ज इवोज्जिहाने ज्योतिर्गणे, विवाहमङ्गलकलश इवोदयशिखरिणा समुत्क्षिप्यमाणे वर्धमानधवलच्छाये ताराधिपमण्डले, वधूवदनलावण्यज्योत्स्नापरिपीततमसि प्रदोषे वृथोदितमुपहसत्स्विव रजनिकरमुत्तानितमुखेषु कुमुदवनेष्वाजगाम मुहुर्मुहुरुल्लासितस्फारस्फुरितरणचामरैर्मनोरथैरिवोत्थितरागाम्रपल्लवैः पुरो धावमानैः पादा-

---

टीका—कालस्य=समयस्य अव्ययः=अतिक्रमणं तेन कृतः दोषः यथा न भवति तथा क्रियतामिति शेषः अर्थात् विवाहलग्नातिक्रमणं माभूत् अन्यथा दोषापत्तेः—इति सन्दिश्य=सन्देशं दत्त्वा प्रतीपं=विपरीतं प्राहिणोत्=प्रेषयत प्रत्यावर्तितवानित्यर्थः।

अथ·······समवसिते वासरे·········आजगाम·····ग्रहवर्मा इत्यस्ति मुख्यवाक्यम्। सकलां कमलवनस्य लक्ष्मीं=शोभां वध्वाः=राजश्रियः इत्यर्थः मुखे इव सञ्चार्य=संक्रमय्य वासरे=दिवसे समवसिते=समाप्ते, विवाह०—विवाहदिवसस्य श्रियः=लक्ष्म्याः पादः पल्लव इवेत्युपमिततत्पु० तस्मिन् इव सवितरि=सूर्ये रज्यमाने=लोहितायमाने, वधू०—वधूः=राज्यश्रीश्च वरः=ग्रहवर्मा च तयोः मिथः यः अनुरागः=प्रेम तेन लघूकृतम्=न्यूनीकृतमित्यर्थः यत् प्रेम तेन लघूकृतम्=न्यूनीकृतमित्यर्थः यत् प्रेम लज्जितेषु=लज्जां प्राप्तेषु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् चक्रवाकानां मिथुनेषु=युगलेषु विघटमानेषु=वियुज्यमानेषु, चक्रवाक-युगलानि स्वभावतः सायं वियुज्यन्ते किन्तु कविकल्पनानुसारेण अस्माकं प्रेम वर-वध्वोः प्रेमापेक्षया लघु इति लज्जाकारणात् तानि वियुक्तानीति भावः, सौभाग्य०—सौभाग्यं प्रेमपूर्णदाम्पत्य—सुखं तस्य ध्वजे=पताकायाम् इव रक्तांशुकवत्=रक्तकौशेयवसनः=वदिति लुप्तोपमा, सुकुमारं=सुमृदु वपुः शरीरं यस्य तथाभूते संध्यारागे=सायंकालीन-लौहित्ये नभसि=गगने स्फुरति=भ्राजमाने, कपोत०—कपोतस्य=पारावतस्य कण्ठवत्=गलवत् कर्बुरे=कल्माषे श्वेत-श्यामे इति यावत् वरस्य यात्रायाः=शोभायात्रायाः इत्यर्थः आगमनेन (उत्थितं) यत् रजः=धूलिः तस्मिन् इवेत्युत्प्रेक्षायां तिमिरे=अन्धकारे दिङ्मुखानि=दिशाभागान् कलुषति=मलिनीकुर्वति, लग्न०—लग्नस्य मेषादिराशिसंयोगस्य विवाहसमयस्येत्यर्थः=सम्पादने निर्माणे निर्धारणे च सज्जे=उद्युक्ते इवोत्प्रेक्षायाम् उज्जिहाने=उदिते ज्योतिर्गणे=ज्योतिषिगणे अत्र ज्योतिःशास्त्रस्य तद्वेत्तरि लक्षणा अथ च तारागणे, अत्रोभमागम्या शब्दानां श्लिष्टत्वात्, विवाह०—विवाहस्य=विवाह-सम्बन्धी यः मङ्गल-कलशः=मङ्गलघटः तस्मिन् इवेत्युपमायाम् उदयशिखरिणा=उदयाचलेन समुत्क्षिप्यमाणे=समुत्थाप्यमाने वर्धमाना=वृद्धिं गच्छन्ती धवला=श्वेता छाया=छटा यस्य अथ च वर्धमानस्य=धवलीकृतस्य शरावस्य ['शरावो वर्धमानकः' इत्यमरः] धवला छाया=प्रतिच्छाया यस्मिन् तस्मिन् (०कलशे) विवाहे धवलितानां शरावाणामुपयोगो भवतीति लोकाचारः, ताराधिपस्य=चन्द्रस्य मण्डले=वृत्ते, वधू०—वध्वाः वदनस्य=मुखस्य लावण्यं=सौन्दर्यमेव ज्योत्स्ना=चन्द्रिका तया पीतं=पानविषयीकृतं तमः तिमिरं यस्य तथाभूते प्रदोषे=प्रदोषकाले निशामुखे इत्यर्थः, वृथो०—वृथा=व्यर्थमेव उदितं

टिप्पणी—वधू का मुख विवाह-घड़ी की प्रतीक्षा में दमक रहा था जिस पर कवि कल्पना यह है कि मानो मुक्षति हुए कमलों की उरुण छटा वधू के मुख पर संक्रमित कर दी जाने पर तब वह इतनी अधिक दमक रही हो।

हिन्दी—इसके बाद सकल वन-समूह की शोभा को वधू के मुख पर स्थानान्तरित करके दिन के ढल जाने पर, विवाह-दिवस की श्री के चरण-किसलय-जैसे सूर्य के लाल हो जाने पर वर-वधू के अनुराग की अपेक्षा कम हुए पड़े (अपने) प्रेम के कारण लज्जित हुए-जैसे चक्रवाक-युगलों के बिछुड़ जाने पर, रेशमी वस्त्र की तरह कोमल देह वाली सायंकालीन लालिमा को गगन में चमकने लगने पर, कबूतर के गले की तरह भूरे रंग के, बरात आने की धूल-जैसे लग रहे अन्धकार को दिग्विभागों को मलिन करने लगने पर (ज्योतिषियों के गण की तरह) लग्न बनाने में तय्यार हुए बैठे ज्योतिर्गण (तारामंडल) के उदय हो जाने पर (हाथ में) उठाये हुए, वर्धमान (हाँडी) की धवल छाया (प्रतिच्छाया) लिए हुए विवाह-सम्बन्धी मंगल कलश की तरह (क्रमशः) वर्धमान (बढ़ते हुए) धवल (छाया) वाले चन्द्रमण्डल को उदयाचल द्वारा ऊपर उठा दिये जाने पर, वधू के मुख की सुन्दरतारूपी चाँदनी द्वारा पिये गये अन्धकार वाले सायंकाल में ऊपर मुँह किये हुए कुमुद वनों द्वारा व्यर्थ ही उदय हुए चन्द्रमा का

वाजिनां [illegible] चामीकरमय-
तैरुत्कर्णकटकहयप्रतिहेषितदीयमानस्वागतैरिव वाजिनां [illegible] करिणां घटाभिः घटयन्निव पुनरिन्दूदयविलीनमन्धकारम्
सर्वोपकरणानां वर्णकलम्बिनां बलिनां घण्टाटाङ्कारिणां करिणां घटाभिः घटयन्निव पुनरिन्दूदयविलीनमन्धकारम्
नक्षत्रमालामण्डितमुखीं करिणीं निशाकर इव पौरन्दरीं, दिशमारूढः प्रकटितविविधविहगविरुतैस्तालावचरचारणैः
पुरःसरैर्बालो वसन्त इवोपवनैः क्रियमाणकोलाहलः, गन्धतैलावसेकसुगन्धिना दीपिकाचक्रवालस्यालोकेन कुङ्कुमपट
वासधूलिपटलेनेव पिञ्जरीकुर्वन्सकलं लोकम् उत्फुल्लमल्लिकामुण्डमालामध्याध्यासितकुसुमशेखरेण शिरसा हसन्निव
सपरिवेशक्षपाकरं कौमुदीप्रदोषम्, आत्मरूपनिर्जितमकरकेतुकरापहृतेन कार्मुकेणेव कौसुमेन दाम्ना विरचितवैकक्ष्य
कविलासः, कुसुमसौरभगर्वभ्रान्तभ्रमरकुलकलप्रलापसुभगः पारिजात इव जातः श्रिया सह पुनरवतारितो मेदिनीम् ,
नववधूवदनावलोकनकुतूहलेनेव कृष्यमाणहृदयः पतन्निव मुखेन प्रत्यासन्नलग्नो ग्रहवर्मा।

टीका–उदय प्राप्तं रजनिकरं = चन्द्रम् उपहसत्सु = उपहासविषयीकुर्वत्सु इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्तानितानि = उपरि तानि
तानि ऊर्ध्वीकृतानीत्यर्थः मुखानि यैः तेषु कुमुदानां = रात्रिकमलानां वनेषु = समूहेषु आजगाम ग्रहवर्मेत्युत्तरेण अन्वयः।
उल्ला०—उल्लासितानि = उत्थापितानि सञ्चालितानीत्यर्थः स्फाराणि = बहूनि स्फुरितानि दीप्यमानानीत्यर्थः
अरुणानि = रक्तवर्णानि चामराणि यैस्तैः उत्थितः उद्गतः रागः = लालिमा अग्रपल्लवः = अग्रकिसलयः इव येषां तथा-
भूतैः मनोरथैः = कामनाभिः इवेत्युपमायाम्, उत्थितः रागः = कामः इव अग्रपल्लवः येषां तैः पुरो धावमानैः = अग्रे
त्वरितं गच्छद्भिः (उभयत्र समानम्) पादातैः = पदातिसमूहैः, उत्कर्ण०—उत् = उर्ध्वं कर्णौ येषां ते कटकस्य = राजधान्याः
ये हयाः = अश्वाः तेषां प्रतिहेषितैः प्रतिहेषारवैः, दीयमानं = क्रियमाणामित्यर्थः स्वागतं येभ्यः तैः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्
वाजिनां = वरयाश्रीयाश्वाना वृन्दैः समूहैश्च अर्थात् ग्रहवर्मणः = वाजिनो हिनत्कार प्रतिहिनत्कारं कुर्वन्तः प्रभाकरस्य
अश्वाः वराश्वानां स्वागतमिव कुर्वन्ति स्म, आपूरितः = भरितः दिशो विभागः येन सः एतत् अन्यानि च ग्रहवर्मा इत्यस्य
विशेषणानि, चल०—चलानि = चंचलानि कर्णस्थितानि चामराणि येषां तेषाम् चामीकरं = सुवर्णं तन्मयानि = तद्रू-
पाणि सर्वाणि उपकरणानि = सुज्जा भूषेति यावत् येषां तेषाम्, वर्णकानि = रञ्जित–वस्त्राणि लम्बन्ते = अवलम्बन्ते
इति तथोक्तानाम् बलिनां = बलवतां घण्टानां टाङ्कारः एषामस्तीति तेषां करिणां = हस्तिनां घटाभिः = समूहैः इन्दोः =
चन्द्रस्य उदयेन विलीनं = क्षयमुपगतम् अन्धकारं पुनः घटयन् = जनयन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् करिणां श्यामवर्णत्वात्, नक्षत्र०-
नक्षत्रमालायाः = सप्तविंशतिमौक्तिकहारेण [‘सैव नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिकैः’ इत्यमरः] मण्डितं = भूषितं मुखम्
= आननं यस्याः ताम् करिणीं = हस्तिनीं निशाकरः = चन्द्रः इवेत्युपमायाम् नक्षत्राणां = ताराणां मालया पंक्त्या मण्डितं

हिन्दी–उपहास-जैसे करने लगने पर ग्रहवर्मा आ पहुँचा–जो फूटे हुए राग (काम) के अग्रपल्लव वाले आगे-आगे दौड़ते
हुए मनोरथों की तरह पल्लव के अग्रभाग का-सा राग (लालिमा) लिए हुए चमकीले अनेक लाल चामरों को
डुलाते आगे-आगे दौड़ते हुए पैदल चलने वाले लोगों एवं कान खड़े किये हुए राजधानी के घोड़ों द्वारा हिन्हिनाहट
के रूप में स्वागत किये जा रहे–जैसे घोड़ों की कतारों से दिग्विभागों को भर रहा था , जो सोने की सभी
साज-सज्जा वाले रंगीन वस्त्र लटकाये, बलवान् और घण्टे खणखणाते हुए हाथियों की पंक्तियों द्वारा चन्द्रोदय से
विनष्ट हुए अन्धकार को दोबारा-जैसे उत्पन्न कर रहा था, जो नक्षत्र-माला (तारापंक्ति) से मंडित मुख
(अग्र भाग) वाली पूर्व दिशा में चढ़े हुए चन्द्रमा की तरह नक्षत्रमाला (२७ मोतियों की माला) से मंडित हुए
मुख (शिर) वाली हथिनी पर चढ़ा हुआ था, जिस लाल (ग्रहवर्मा) के आगे चलते हुए विविध पक्षियों की-सी
बोली बोलते हुए और ताल के साथ नाचते जाते हुए भाट इस तरह कोलाहल मचा रहे थे जैसे बाल (अभी-
अभी आरम्भ हुए) वसन्त ऋतु के आगे विविध पक्षियों का शब्द प्रकट किये हुए उपवन कोलाहल मचाया करते
हैं, जो गंध-युक्त तेल डालने से सुगन्धित बने मशालों के समूह के प्रकाश से केसर चूर्ण के रज-समूह से-जैसे सकल
जगत् को पीला बना रहा था, जो चमेली की शिरमाला के मध्य स्थित पुष्प-शेखर धारण किये हुए शिर से परिवेश-
युक्त चन्द्रमा वाली चाँदनी की साँझ का उपहास-जैसे कर रहा था, जो अपने सौंदर्य से हराए हुए कामदेव के
हाथ से छीने गये धनुष को जैसे फूलों के हार को (यज्ञोपवीत की तरह) बायें कन्धे के ऊपर और दायें के
नीचे रखकर शोभा बनाए हुए था, जो पुष्पों की सुगन्धि के कारण गर्व के साथ मँडराते हुए भ्रमर-समूह से
सुन्दर बना हुआ और श्री (राजलक्ष्मी) को साथ लिए उत्पन्न हुआ ऐसा लग रहा था मानो पुष्प की सुगन्ध
के कारण गर्व के साथ मँडराते हुए भ्रमर-समूह से सुन्दर बना श्री (लक्ष्मी) के साथ (समुद्र से) उत्पन्न हुआ
और (स्वर्ग ले जाये जाने के बाद) फिर पृथिवी पर लाया हुआ पारिजात वृक्ष हो, जो नव-वधू का मुख
देखने के कौतूहल द्वारा-जैसे हृदय से खींचा जाता हुआ ऐसा लग रहा था मानो हृदय (वक्षःस्थल) से खींचा
जाता हुआ बल-जैसा गिर रहा हो और जिसका विवाह-लग्न निकट आया हुआ था।

राजा तु तमुपद्वारमागतं चरणाभ्यामेव राजचक्रानुगम्यमानः ससुतः प्रत्युज्जगाम । अवतीर्णं च तं कृतनमस्कारं मन्मथमिव माधवः प्रसारितभुजो गाढमालिलिङ्ग । यथाक्रमं परिष्वक्तराज्यवर्धनहर्षं च हस्ते गृहीत्वाभ्यन्तरं निन्ये । स्वनिर्विशेषासनदानादिना चैनमुपचारेणोपचचार ।

टीका:—मुखम्=अग्रं यस्याः ताम् पुरन्दरस्य=इन्द्रस्य इयम् इति पौरन्दरी ताम् दिशम्=पूर्वदिशामित्यर्थः आरूढः=अधिष्ठितः, प्रकटित०—प्रकटितं=प्रकाशितं विविधानां विहगानाम्=पक्षिणां विरुतं=विरावः यैः (उभयत्र समानम्) तालेन=नियतसमये कराघात-शब्देन सह अवचरन्ति=गच्छन्तीति तथोक्ताः ये चारणाः=स्तुतिपाठकाः तैः पुरःसरैः=वरस्य अग्रे-अग्रे गच्छद्भिरित्यर्थः बालः=ग्रहवर्मा प्रकटित-विविध-विहगविरुतैः पुरःसरैः उपवनैः=उद्यानैः बालः=प्रत्यग्रप्रवृत्तः इत्यर्थः वसन्तः इवेत्युपमायाम् क्रियमाणः=विधीयमानः कोलाहलः=कलकलः यस्मिन् सः, गन्ध०—गन्धयुक्तस्य तैलस्य (मध्यमपदलोपी स०) अवसेकेन=प्रक्षेपेणेत्यर्थः सुगन्धिना=सुरभिणा दीपिकानां=दीपानां-चक्रवालस्य=समूहस्य आलोकेन=प्रकाशेन कुङ्कुमस्य=काश्मीरजस्य पटवासस्य=पिष्टातस्य सुगन्धितचूर्णस्येति यावत् धूलेः=रजसः पटलेन=समूहेन इवेत्युत्प्रेक्षायां सकलं लोकं=जगत् पिञ्जरीकुर्वन्=पिङ्गलीकुर्वन्, उत्फुल्ल०—उत्फुल्लानां=विकसितानां मल्लिकानां=श्वेतपुष्पविशेषाणां मुण्डमालायाः=शिरोमालायाः मध्यं=मध्यभागं अध्यासितः=अधिष्ठितः कुसुमानां शेखरः=आपीडः यस्मिन् तथाभूतेन शिरसा सपरिवेशः=परिवेशेन=परिधिना सहितः क्षपाकरः=चन्द्रः यस्मिन् तम् कौमुद्या=ज्योत्स्नया दीप्तं प्रदोषं=संध्याम् (मध्यमपदलोपी स०) हसन्=हासविषयीकुर्वन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, शेखरः चन्द्रतुल्यः श्वेतमल्लिकामुण्डमाला च परिवेश-तुल्या दृश्यते स्मेति भावः, आत्म०—आत्मनः=स्वस्य रूपेण=सौन्दर्येण निर्जितः=पराजितः यः मकरकेतुः=कामदेवः तस्य करात्=हस्तात् अपहृतेन=अच्छिन्नेन कार्मुकेण=धनुषा इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कौसुमेन=कुसुमानाम् इदम् (अण्) इति कौसुमम् तेन दाम्ना=मालया विरचितः=कृतः वैकक्ष्यस्य=यज्ञोपवीतवत् वामस्कन्धस्योपरि दक्षिणस्कन्धस्याधश्च बाहुमूले धार्यमाणायाः स्रजः विलासः शोभा येन सः, कामः पुष्पधन्वा भवति धनुरपि वैकक्ष्यवत् धार्यते, कुसुम०—कुसुमानां=पुष्पाणां सौरभात्=सौगन्ध्यात् कारणात् गर्वेण=साभिमानं भ्रान्तं उपरिकृतभ्रमणं यत् भ्रमराणां कुलं=समूहः तस्य कलेन=अस्पष्टमधुरेण प्रलापेन=ध्वनिना सुभगः=रमणीयः, इदं ग्रहवर्मा पारिजातश्चेत्युभयोः समानं विशेषणम्, श्रिया राजलक्ष्म्या सः जातः=समुत्पन्नः राजपुत्रत्वात्, पारिजातोऽपि समुद्रमन्थने लक्ष्मीदेव्या सह समुद्रात् उत्पन्नः, यस्तदानीं स्वर्गे अनीयत, किन्तु इदानीं पुनः मेदिनीं=पृथिवीम् अवतारितः=स्वर्गात् आनीतः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, नववधू०—नववध्वाः=भाविपत्न्याः वदनस्य=मुखस्य अवलोकनस्य=दर्शनस्य कुतूहलेन=कौतुकेन इवेत्युत्प्रेक्षायाम् कृष्यमाणं=बलात् नीयमानं हृदयं=मनः अथ च वक्षःस्थलं यस्य सः मुखेन=निम्नमुखो भूत्वेत्यर्थः पतन् इवेत्युत्प्रेक्षायाम्, यः खलु वक्षःस्थलेन आकृष्यते तस्य निम्नमुखपतनं स्वाभाविकमेव, प्रत्यासन्नं=सन्निहितं लग्नं=विवाहसम्बन्धी राश्युदयः इत्यर्थः ('राशीनामुदयो लग्नम्' इत्यमरः) यस्य तथाभूतः ग्रहवर्मा आजगामेत्यधस्तात् उक्तमेव ।

द्वारस्य समीपे इत्युपद्वारम् (अव्ययी भाव) राज्ञां चक्रेण=समूहेन अनुगम्यमानः=अनुस्रियमाणः सुताभ्यां=प्रभाकरवर्धन-हर्षवर्धनाभ्यां सहितः प्रत्युज्जगाम=वरस्य स्वागतार्थं अग्रे गतः इत्यर्थः । अवतीर्णम्=अवरूढम् करिणीपृष्ठमित्यर्थः नीचैः स्थितः कृतः नमस्कारः=अभिवादनं येन तं=जामातरम् माधवः=वसन्तः मन्मथं=मदनम् इवेत्युपमायाम् प्रसारितौ=विस्तारितौ भुजौ=बाहू येन सः प्रभाकरवर्धनः गाढं=निबिडं यथास्यात्तथा आलिलिङ्ग=आश्लिष्टवान् यथाक्रमं=क्रमानुसारं परिष्वक्तौ आविष्टौ राज्यवर्धनश्च हर्षश्च येन तम् अभ्यन्तरम्=अन्तःपुरम् निन्ये=नीतवान् । स्वेन=आत्मना निर्विशेषं=समानं यत् आसनं तस्य दानम् आदि यस्य तेन आसनसंमानादिनेत्यर्थः उपचारेण=शिष्टाचारेण उपचचार=सम्मानितवानित्यर्थः ।

हिन्दी-पुत्रों और पीछे-पीछे आ रहे राजसमूह सहित राजा ने द्वार के निकट उसकी अगवानी की और (हथिनी) से उतरे एवं (राजा को) नमस्कार किये हुए उसका दोनों हाथ फैलाकर (राजा ने) इस प्रकार गाढ़ आलिगन किया जैसे वसन्त मदन का गाढ़ आलिगन किया करता है । क्रमानुसार राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का आलिगन किये हुए उसको हाथ से पकड़ कर अन्तःपुर में ले गया और अपने समान ही आसन-दानादि के शिष्टाचार से उसे सम्मानित किया ।

नचिराच्च गम्भीरनामा नृपतेः प्रणयी विद्वान्द्विजन्मा ग्रहवर्माणमुवाच—'तात, त्वां प्राप्य चिरात्खलु राज्यश्रिया घटितौ तेजोमयौ सकलजगद्गीयमानबुधकर्णानन्दकारिगुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुष्पभूतिमुखरवंशौ। प्रथममेव कौस्तुभमणिरिव गुणैः स्थितोऽसि हृदये देवस्य। इदानीं तु शशीव शिरसा परमेश्वरेणासि वोढव्यो जातः' इति। एवं वदत्येव तस्मिन्नृपमुपसृत्य मौहूर्तिकाः 'देव, समासीदति लग्नवेला व्रजतु जामाता कौतुकगृहम्' इत्यूचुः अथ नरेन्द्रेण 'उत्तिष्ठ गच्छ' इति गदितो ग्रहवर्मा प्रविश्यान्तःपुरं जामातृदर्शनकुतूहलिनीनां स्त्रीणां पतितानि लोचनसहस्राणि विकचनीलकुवलयवनानीव लङ्घयन्नाससाद कौतुकगृहद्वारम्। निवारितपरिजनश्च प्रविवेश

टीका—नचिरात् = शीघ्रमेव गम्भीरः नाम यस्य स नृपतेः = प्रभाकरवर्धनस्य प्रणयी = स्नेहपात्रं मित्रं द्विजन्मा = ब्राह्मणः उवाच = अकथयत्—तात = प्रिय, त्वां प्राप्य = आसाद्य चिरात् = बहुकालात् राज्यश्रिया = एतन्नाम्न्या कन्यया अथ च राजलक्ष्म्या घटितौ = संयोजितौ तेजोमयौ = प्रतापशालिनौ अथ च प्रकाशरूपौ सकलेन = समग्रेण जगता = संसारेण गीयमानः = स्तूयमानः इत्यर्थः बुधानां = विदुषां कर्णयोः = श्रोत्रयोः अथ च बुधस्य = चन्द्रमसः पुत्रस्य चकर्णस्य = कुन्त्याः कानीनपुत्रस्य वीरविशेषस्य च आनन्दं करोतीति तथोक्तः आनन्ददायकः गुणानां = वीरत्वादीनां गणः = समूहः ययोः तौ सोमस्य = चन्द्रस्य सूर्यस्य च वंशौ = कुले इवेति श्लिष्टोपमा पुष्पभूतेः = प्रभाकरवर्धनस्य आदिपुरुषस्य, मुखरस्य = ग्रहवर्मणः पूर्वपुरुषस्य च वंशौ। बुधः चन्द्रपुत्रः कर्णश्च सूर्यपुत्र इति स्मरणीयम्। कौस्तुभमणिः = समुद्रमन्थने निःसृतानां चतुर्दश-रत्नानां मध्ये एकतमः यं हरिः हृदि धारयति [कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः। तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ' भाग०। गुणैः सौन्दर्यादिभिः। देवस्य = विष्णोः हृदये = वक्षसि इवेत्युपमायाम् गुणैः = वीरत्वादिभिः त्वं देवस्य = महाराजस्य प्रभाकरवर्धनस्य हृदि = मनसि स्थितः। इदानीं = विवाहसम्बन्धानन्तरं परमेश्वरेण = शिवेन शिरसा वोढव्यः = धारणीयः शशी = चन्द्रः इव परमेश्वरेण = सम्राजा प्रभाकरवर्धनेन शिरसा वोढव्यः जातः जामातुः पूज्यत्वात् एवं वदति = कथयति तस्मिन् = द्विजन्मनि उपसृत्य = आगत्य मौहूर्तिकाः = ज्योतिषिणः—

टिप्पणी—बुध-कर्ण—पुराणानुसार चन्द्रमा ने गुरु (वृहस्पति) की पत्नी तारा का अपहरण किया और उसे वापस नहीं लौटा रहा था। ब्रह्मा के बीच-बचाव से तारा वृहस्पति को दे दी गई। उसको चन्द्रमा से गर्भ ठहरा हुआ था। जिसे वृहस्पति ने गिरवा दिया। चन्द्र और वृहस्पति दोनों नवजात बच्चे पर अपना-अपना अधिकार बतलाने लगे। देवताओं ने तारा से पूछा किसका गर्भ था पर वह लज्जा के मारे कुछ न कह सकी अन्त में ब्रह्मा के आग्रह पर वह स्वीकार कर बैठी चन्द्र का था। चन्द्र बोल बैठा—'साधु-साधु वत्स प्राज्ञोऽसीति' तभी से उस चन्द्र पुत्र का नाम बुध हुआ। यह बुध ही राजाओं के चन्द्रवंश का प्रवर्तक है। सूर्य से कुन्ती में कर्ण का उत्पन्न होना ही प्रसिद्ध है—'सूर्याच्च कुन्तिकन्यायां जज्ञे कर्णो महाबलः। सहजं कवचम् बिभ्रत् कुण्डलोद्द्योतिताननः, महाभा०। इस तरह कर्ण का सूर्यवंशी होना प्रसिद्ध ही है।

हिन्दी—थोड़ी देर बाद ही गम्भीर नामक राजा का स्नेही विद्वान्-ब्राह्मण ग्रहवर्मा को बोला, 'बेटा तुम्हें पाकर सचमुच चिरकाल बाद राज्यश्री (कन्या) द्वारा तेजोमय (प्रतापी) तथा सकल संसार द्वारा गाये जा रहे और विद्वानों के कानों को आनन्द देने वाले गुणगण से युक्त पुष्पभूति और मुखर राजवंश इस तरह मिला दिये गये हैं जैसे राज्यश्री (राजलक्ष्मी) द्वारा तेजोमय (प्रकाशरूप) तथा सकल संसार द्वारा गाये जा रहे बुध और कर्ण के आनन्ददायक गुण-गण से युक्त चन्द्र और सूर्य राजवंश मिला दिये गये थे। गुणों से देव (विष्णु) के हृदय (वक्षःस्थल) में स्थित कौस्तुभमणि की तरह तुम गुणों से पहले ही देव (महाराज) के हृदय (मन) में स्थित हो। अब परमेश्वर (महादेव) द्वारा शिर पर धारण योग्य चन्द्रमा की तरह तुम भी परमेश्वर (सम्राट्) के शिराधार्य हो बैठे हो। उसके ऐसे कहते ही राजा के पास आकर ज्योतिषी लोग बोले—'महाराज, विवाह-लग्न की वेला समीप आ रही है; जामाता कौतुक गृह में चलें।' इसके बाद राजा द्वारा—'उठो चलो' यों कहता हुआ ग्रहवर्मा अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर जामाता को देखने के लिए उत्सुक हुई स्त्रियों के पड़े हुए विकसित नील कुवलय-समूहों के समान हजारों नयनों को लांघता हुआ कौतुक-गृह के द्वार पर आ पहुँचा और नौकर-चाकरों को हटाए हुए (भीतर) प्रविष्ट हो गया।

अथ तत्र कतिपयाप्तप्रियसखीस्वजनप्रमदाप्रायपरिवाराम्, अरुणांशुकावगुण्ठितमुखीं प्रभातसंध्यामिव स्वप्रभया निष्प्रभान्प्रदीपान्कुर्वाणाम्, अतिसौकुमार्यशङ्कितेनेव यौवनेन नातिनिर्भरमुपगूढाम्, साध्वसनिरुध्यमानहृदयदेशदुःखमुक्तैर्निभृतायतैः श्वसितैरपयान्तं कुमारभावमिवानुशोचन्तीम्, अत्युत्कम्पिनीं पतनभियेव त्रपया निष्पन्दं धार्यमाणाम्, हस्तं तामरसप्रतिपक्षमासन्नग्रहणं शशिनमिव रोहिणीं भयवेपमानमानसामवलोकयन्तीम्, चन्द्रधवलतनुलतां ज्योत्स्नापानसञ्चितलावण्यात्कुमुदिनीगर्भादिव प्रसूताम्, कुसुमामोदनिर्हारिणीं वसन्तहृदयादिव निर्गताम्,

---

टीका—देव, महाराज, लग्नस्य वेला = समयः समासीदति = समीपे आगच्छति व्रजतु = गच्छतु कौतुकस्य = विवाहमङ्गलसूत्रस्य गृहम् अर्थात् यत्र करहस्ते विवाहसूत्रं बध्यते, इति ऊचुः = कथितवन्तः गदितः = उक्तः अन्तःपुरम् = अवरोधम् जामातुः दर्शने = अवलोकने कुतूहलं = कौतुकम् आसां अस्तीति तथोक्तानां स्त्रीणां पतितानि = प्रक्षिप्तानि विकचानि = विकसितानि नीलानां कुवलयानां = रात्रिकमलानां वनानि = समूहा इवेत्युपमायां लोचनानां = नयनानां सहस्राणि लङ्घयन् = अतिक्रमन् कौतुक–गृहस्य द्वारम् आससाद = प्राप्तवान्। निवारितः = अपसारितः परिजनः = भृत्यवर्गः येन सः प्रविवेश = प्रविष्टवान्।

अथ तत्र-वधूमपश्यत् इत्यस्ति वाक्यम्, कति०—कतिपये = केचन आप्ताः = बान्धवाश्च प्रियाः सख्यः = आलयश्च स्वजनाः = निजव्यक्तयश्च प्रमदाप्रायः = स्त्रीभूयिष्ठः परिवारः = परिजनश्च यस्याः तथाभूतां, अरुणा०—अरुणेन = रक्तवर्णेन अंशुकेन = कौशेयवस्त्रेण अवगुण्ठितम् = आवृतं मुखं यस्याः ताम् अथ च अरुणः = प्रातःकालीन लालिमा अंशुकम् इवेत्युपमितत्प० अथवा अरुणस्य अल्पाः अंशवः अंशुकाः मन्द–किरणा तेन अवगुण्ठितं मुखम् = अग्रं यस्याः तां प्रभातसन्ध्यां = प्रातःसंध्यां इवेत्युपमायां स्वप्रभया = स्वकान्त्या = प्रभारहितान् कुर्वाणां = विदधतीम् अति = अतिशयितं यत् सौकुमार्यं = कोमलत्वं तेन शङ्कितेन · जातशङ्केन इवेत्युत्प्रेक्षायां यौवनेन = तारुण्येन न अति निर्भरम् = नातिभृशं नातिगाढमित्यर्थः उपगूढाम् = आश्लिष्टाम्, सा पूर्णयौवनं प्राप्ता नासीत्, वयःसन्धौ आसीत्, कोमलत्वात् कदाचित् भज्येतेति शङ्कया यौवनं तामतिगूढं नाश्लेष्यदिति भावः, साध्वस०—साध्वसेन = भयेन ['भीतिर्भीः साध्वसं भयं, इत्यमरः] निरुध्यमानः = निवार्यमाणः यः हृदय–देशः = हृदयस्थानम् तस्मात् दुःखेन = काठिन्येन मुक्तैः = व्यक्तैः निभृतायतैः = निभृतैः = गूढैः आयतैः = दीर्घैश्च श्वसितैः = निःश्वासैः अपयान्तम् = अपगच्छन्तम् कुमारभावं = कौमार्यम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् अनुशोचन्तीम् = शोकविषयीकुर्वतीम् अर्थात् सहसा विवाह-प्रसङ्गेन तस्याः हृदयं धकधकायते स्म अत एव च सा दीर्घ-निभृत-निःश्वासान् मुञ्चतिस्म किन्तु कविकल्पनानुसारेण सा अपुनरागमनाय गच्छतः कौमारस्य शोके निभृतं दीर्घञ्च निःश्वसिति स्मेव अत्यु—अतिशयितः उत्कम्पः = वेपथुः अस्याः अस्तीति तथोक्तां पतनात् भिया = भयेन इवेत्युत्प्रेक्षायां त्रपया = लज्जया निष्पन्दं = निश्चेष्टं यथा स्यात्तया धार्यमाणाम् = दत्तहस्तावलम्बाम् कम्पमानायाः तस्याः हृदयं विविधभावासंकुलमासीत् किन्तु लज्जाकारणात् सा निष्पन्दीभूता, कम्पमाना वराकी मा पतत्वेषेति कृत्वा लज्जया धार्यते इवेति भावः, हस्तं—तामरसस्य = कमलस्य प्रतिपक्षम् = तुल्यं कमलवत्सुन्दरमित्यर्थः अथ च कमलानां प्रतिपक्षं = शत्रुम् चन्द्रप्रकाशे कमलानि म्लायन्ते यतः, आसन्नं = सन्निहितं ग्रहणं = ग्रहवर्मद्वारा अवलम्बनमित्यर्थः अथ च राहुद्वारा ग्रसनं यस्य तम् हस्तं = करं शशिनम् = चन्द्रम् इवेत्युपमायाम् रोहिणीं = चन्द्रपत्नीं

हिन्दी—तदनन्तर वहाँ उसने वधू को देखा—जिसके पास कुछ बान्धव, प्रिय सखियाँ स्वजन और स्त्रीप्राय भृत्यजन थे, जो अरुण (प्रातःकालीन लालिमा) के अंशुकों (लघु किरणों) से मुख (अग्रभाग) को आच्छादित किये हुए प्रभातसंध्या की तरह अरुण (लाल) अंशुक (रेशमी वस्त्र) से (चेहरे) पर घूँघट निकाले हुए अपनी प्रभा से दीपकों को प्रभा-रहित कर रही थी, जो अतिशय सुकुमारता से शंकित हुए-जैसा यौवन द्वारा खूब दबाकर छाती से नहीं लगाई गई थी, जो भय के कारण रोके हुए हृदय-स्थान से कठिनाई से छोडी हुई चुपचाप दीर्घ आहों से (हमेशा के लिए) जाते हुए कौमार्य के लिए—जैसे शोक कर रही थी, जो (उदित मनोवेगों के कारण) काँपती हुई कहीं गिर न पड़े—इसलिए मानो लज्जा द्वारा स्थिरता से थामी जा रही थी, जो कमल के प्रतिपक्षी (समान) थोड़ी देर बाद (वर द्वारा ग्रहण किये जाने वाले (अपने) हाथ को हृदय में भय से काँपती हुई इस तरह देख रही थी—जैसे कमल के प्रतिपक्षी (शत्रु) थोड़ी देर बाद (राहु द्वारा) ग्रहण (ग्रास) किये जाने वाले चन्द्रमा को हृदय में भय से काँपती हुई रोहिणी देखा करती है, जो चन्दन-सी गात वाली ऐसी लग रही थी जैसे चाँदनी लेते रहने से एकत्रित हुए पड़े लावण्य वाली कुमुदिनी के गर्भ से उत्पन्न हुई हो, जो कुसुमों का सौरभ छोड़ती हुई ऐसी लग रही थी जैसे वसन्त के

निःश्वासपरिमलाकृष्टमधुकरकुलां मलयमारुतादिवोत्पन्नाम्, कृतकन्दर्पानुसरणां रतिमिव पुनर्जाताम्, प्रभालावण्यमदसौरभमाधुर्यैः कौस्तुभशशिमदिरापारिजातामृतप्रभवैः सर्वरत्नगुणैरपरामिव सुरासुररुषा रत्नाकरेण कल्पितां श्रियम्, स्निग्धेन बालिकालोकेन सितसिन्धुवारकुसुममञ्जरीभिरिव मुक्तादीधितिभिः कल्पितकर्णावतंसाम्, कर्णाभरणमरकतप्रभाहरितशाद्वलेन कपोलस्थलीतलेन विनोदयन्तीमिव हारिणीं लोचनच्छायाम्, अधोमुखीं वरकौतुकालोकनाकुलं मुहुर्मुहुः कृतमुखोन्नमनप्रयत्नं सखीजनं हृदयं च निर्भर्त्सयन्तीं वधूमपश्यत् ।

टीका—येन वेपमानं कम्पमानं मानसं हृदयं यस्याः तां, उभयत्र समानम् अवलोकयन्तीम्=पश्यन्तीम्, चन्दन०—चन्दनेन =चन्दनलेपेन अथवा चन्दनवत् धवला=श्वेता तनुः=शरीरं लतेवेत्युमिततत्पु० यस्याः ताम् ज्योत्स्नायाः=चन्द्रिकाया आदानेन=ग्रहणेन सञ्चितम्=एकत्रितम् लावण्यं=सौन्दर्यं यस्मिन् तस्मात् कुमुदिनीनां गर्भात्=उदरात् इवेत्युत्प्रेक्षायां प्रसूतां=जाताम् कुसुम०—कुसुमानां=पुष्पाणां आमोदं=सौरभं निर्हरति निस्सारयतीति तथोक्तम् वसन्तस्य=वसन्ततोः हृदयात् इवेत्युत्प्रेक्षायां निर्गताम् = निःसृताम्, निश्वास०—निःश्वासस्य=निःश्वसितस्य परिमलेन=सौगन्ध्येन आकृष्टम् प्रवणीकृतं मधुकराणां=भ्रमराणां कुलं=समूहः यया तां मलयस्य=मलयाचलस्य मारुतात्=वायोः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् उत्पन्नां=प्रसूताम्, कृत०—कृतं कन्दर्पस्य=कामस्य प्रणयस्येत्यर्थः अनुसरणम्=अनुगमनं यया तां, कृतं कन्दर्पेण=कामदेवेन अनुसरणं यस्याः तां पुनः जाताम्=उत्पन्नां रतिं=कन्दर्पपत्नीं इवेत्युत्प्रेक्षा सा च श्लिष्टा, प्रभा०—कौस्तुभं च शशी च मदिरा च पारिजातश्च अमृतञ्चेति०तामृतानि=समुद्रमनथोद्भूतरत्नविशेषाः तेभ्यः प्रभवः=उत्पत्तिः येषां तथाभूतैः क्रमशः प्रभा=कांतिः च लावण्यं=सौन्दर्यं च मदः=मत्तता च सौरभं सौगन्ध्यञ्च माधुर्यं=मधुरत्वं च तैः सर्वेषां=उक्तपूर्वाणां कौस्तुभादीनां सम्मिलितैः गुणैः अपराम्=द्वितीयाम् इवेत्युत्प्रेक्षा यथासंख्यालङ्कारेण संकीर्णा सुराः=देवाः च असुराः=राक्षसाः च तेषु रुषा=क्रोधेन रत्नाकरेण=रत्नखन्या समुद्रेणेति यावत् कल्पिताम् =उत्पादितां श्रियम्=लक्ष्मीम पूर्वोत्पादितां श्रियम् तु विष्णुः नीतवान् अतः ,राज्यश्रीरूपेण द्वितीयामिव श्रियमसृजत्, नीतवान् अत्र विशेष्यभूतस्य रत्नाकर-शब्दस्य साभिप्रायत्वेन परिकराङ्कुरालङ्कारः, समुद्रस्य रोषकारणं देवासुरद्वारा निजमन्थनेन तच्चतुर्दश-रत्नानां हरणम्, रत्नाकरत्वात् सः अन्यान्यपि रत्नान्युत्पादयितुम् प्रभवतीति भावः, स्निग्धेन—स्निग्धेन=स्नेहिना बालिका-लोकेन=बालिका-जनेन अथ च स्निग्धेन=श्लक्ष्णेन बालिकयोः=अर्भकयोः गोलकारकर्णाभरणविशेषयोरित्यर्थः आलोकेन=प्रकाशेन सितानि=श्वेतानि यानि सिन्धुवारस्य कुसुमानि=पुष्पाणि तेषां मञ्जरीभिः=वल्लरीभिः इवेत्युत्प्रेक्षायां मुक्तानां=मौक्तिकानां दीधितिभिः=रश्मिभिः कल्पितः=रचितः कर्णावतंसः =कर्णाभरणम् यस्याः ताम्, कर्णा०—कर्णयोः आभरणयोः यत् मरकतम्=हरितमणिः तस्य प्रभा=कांतिः हरितम् शाद्वलम्=घासाच्छादिता भूः इवेत्युपमिततत्पु० यस्मिन् तेन शाद्वलवत् हरितीकृतेनेत्यर्थः कपोलयोः=गण्डयोः स्थलीतलेन=स्थलफलकेनेत्यर्थः हरिणीं=मनोहारिणीं लोचनयोः=स्वनयनयोः छटां=कांतिम् विनोदयन्तीं अपनयन्तीं अदृश्यां कुर्वंतीमिति यावत् अर्थात् मरकतमणिप्रभाहरितीकृते कपोलतले तन्नयनच्छटा हरितवर्ण''''विलुप्यति स्म, अत्र शब्दशक्त्या

हिन्दी—हृदय से निकली हो, जो निश्वास की सुगन्ध से भ्रमर-समूह को खींचे हुए ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो मलयाचल की वायु से उसने जन्म लिया हो, जो काम (प्रणय) का अनुसरण करती हुई ऐसी लग रही थी मानो दोबारा उत्पन्न हुई रति हो—जिसके पीछे-पीछे काम (कामदेव) जा रहा है, जो कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा, मदिरा, पारिजात और अमृत से उत्पन्न हुए (क्रमशः) प्रभा, लावण्य, सुगन्ध और माधुर्य—सभी रत्नों के (सम्मिलित) गुणों से रत्नाकर ने देवासुरों के प्रति क्रोध के कारण मानो दूसरी ही श्री बना दी हो, जिसमें कर्णाभरण [स्निग्ध—(स्नेही) बालिका लोकों (बालिकाजनों) के समान] स्निग्ध (चिकनी) बालियों के आलोक (चमक) से श्वेत वर्ण के सिन्धुवार-पुष्पों की मंजरियों द्वारा—जैसे मोतियों की किरणों द्वारा बनाये हुए थे, जो हरे शाद्वल के समान कर्णाभरणों के मरकतों की (हरी) प्रभा लिए हुए कपोलस्थल-तल से (निज) मनोहर लोचन-छवि को मिटा-सी रही थी (०व्यंग्यार्थ—जो मरकत मणियों की प्रभा के समान ढँके मैदान द्वारा (निज) हरिण-लोचनों को मनोरंजित कर रही थी) जो (लज्जा के कारण) मुख नीचे किये हुए थी और जो कुतूहल से वर का मुख देखने में व्यस्त तथा बार-बार (अपना वर देखने के लिए उसका भी) मुख ऊपर करने के प्रयत्न में लगी सखी-जनों की एवं (अपने वर का) कुतूहलवश मुख देखने के लिए अधीर बने और मुख उठाने का प्रयत्न किये हुए हृदय की भर्त्सना कर रही थी ।

प्रविशन्तमेव तं हृदयचोरं वध्वा समर्पितं जग्राह कन्दर्पः। परिहासस्मेरमुखीभिश्च नारीभिः कौतुकगृहे यद्यत्कार्यंते जामाता तत्तत्सर्वमतिपेशलं चकार। कृतपरिणयानुरूपवेशपरिग्रहां गृहीत्वा करे वधूं निर्जगाम। जगाम च नवसुधाधवलां निमन्त्रितागतैस्तुषारशैलोपत्यकामिव त्र्यम्बकाम्बिकाविवाहाहूतैर्भूभृद्भिः परिवृताम्, सेकसुकुमारयवाङ्कुरदन्तुरैः पञ्चास्यैः कलशैः कोमलवर्णिकाविचित्रैरमित्रमुखैश्च मङ्गल्यफलहस्ताभिरञ्जलिकारिकाभिरुद्भासितपर्यन्ताम्, उपाध्यायोपधीयमानेन्धनधूमायमानाग्निसन्धुक्षणाक्षणिकोपद्रष्टृद्विजाम्, उपकृशानुनिहितानुपहतहरितकुशाम्,

टीका—सा मरकत प्रभावात् हरित–शाद्वलेन हारिणीं=हरिणानामित्यर्थः लोचनच्छविं विनोदयति स्म, हरिणलोचनानामग्रे शाद्वलम् उपनयति स्मेति वस्तु ध्वन्यते अतः शब्दशक्त्युद्भवो वस्तुध्वनिः, अधः=लज्जया नीचैः मुखं तस्याः तां, वर०—वरस्य=परिणेतुः कौतुकेन=कुतूहलेन यत् आलोकनम्=दर्शनम् तस्मिन् आकुलम् (सखीजनम्) अथ च आलोकनाय आकुलम्=अधीरम् (हृदयम्) मुहुर्मुहुः=पुनः पुनः कृतं मुखस्य=वध्वाः आननस्य उन्नमने=उपरिकरणे प्रयत्नः येन तम्, उभयत्र समानम् तस्याः सख्यः वरम् द्रष्टुं तन्मुखम् उन्नमयन्ति स्म स्वयं तस्याः हृदयमपि इच्छति स्म उन्नमय्य स्वमुखं स्ववरं पश्येत् किन्तु लज्जाकारणात् उभयमपि भर्त्संयति स्मेति भावः, वधूम्=स्वभाविपत्नीं अपश्यत् ग्रहवर्मा।

प्रविशन्तम् एव तं=ग्रहवर्माणं हृदयस्य वध्वाः मनसः चौरं=हर्तारं वध्वा समर्पितं=गृहीत्वा दत्तं कन्दर्पः=मदनः जग्राह=गृहीतवान् अन्योऽपि चोरं गृहीत्वा रक्षापुरुषाणां हस्ते समर्पयति, ग्रहवर्मा कामेन हस्तसात्कृतः वधूं दृष्ट्वा काममोहितोऽभवदिति भाव.। परिहासेन=हास्येन विनोदोक्तिभिरित्यर्थः स्मेराणि=स्मयमानानि मुखानि यासां ताभिः नारीभिः=महिलाभिः कौतुक-गृहे=विवाहमंगलगृहे यत् यत् कार्यं कार्यंते=कर्तुं नेयंते जामाता=ग्रहवर्मा तत् सर्वम् अतिपेशलम्=अतिनिपुणं यथा स्यात्तथा चकार=कृतवान्। कृतः=विहित; परिणयस्य=विवाहस्य अनुरूपः=योग्यः वेशपरिग्रहः वस्त्रभूषादिः धारणं यया तां वधूम्=राज्यश्रियम् करे=हस्ते गृहीत्वा निर्जगाम=निःसृतवान्। जगाम=आगच्छच्च⋯⋯वेदीम् इत्यन्वयः, नव० नवा या सुधा=प्रस्तरचूर्णं तया धवलां=श्वेतां निमन्त्रि०—निमन्त्रितैः आगतैश्च भूभृद्भिः=भूपालैः अम्बिका=पार्वती तस्याः विवाह आहूतैः=निमन्त्रितैः भूभृद्भिः=पर्वतैः परिवृतां=परिवेष्टितां तुषारशैलस्य=हिमाचलस्य सुधावद् धवलां (हिमेन) उपत्यकाम्=अधः संनिहितां भूमिम् ('उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिः' इत्यमरः) इवेत्युपमा साच क्लिष्टा, सेक०—सेकेन=जलसेचन द्वारा सुकुमाराः=सुकोमलाः यवानां=दीर्घशूकानां ये अङ्कुराः=प्ररोहाः तैः दन्तुरैः=उन्नतदन्तैः उन्नतैरित्यर्थः पञ्च आस्यानि=मुखानि येषां तैः कलशैः=पात्रैः कोमलाभिः=मृदुभिः वर्णिकाभिः=वर्णैः रंगैरितियावत् विविधं चित्रैरित्यर्थः अमित्राः=शत्रवः सिंहादयः मुखे येषां तैः पात्राणां मुखानि सिंहमुखाकाराण्यासन्निति भावः शङ्करस्तु अमित्रमुखैः रौप्यमयैः (राजतैः) इत्यर्थं करोति। मङ्गल्यानि=माङ्गलिकानि फलानि=आम्रादीनि हस्तेषु यासां ताभिः अञ्जलिकारिकाभिः=मृण्मयपुत्तलिकाभिः ('स्यात्सालभञ्जिका स्तम्भे लेप्येनाञ्जलिकारिका" इति क्षीरस्वामी) उद्भासिताः=द्योतिताः पर्यन्ताः=प्रांतभागाः यस्याः तां, उपाध्या०—उपाध्यायेन=पुरोहितेन उपधीयमानानि=निधीयमानानि प्रक्षिप्यमाणानीत्यर्थः यानि इन्धनानि=समिधः तैः धूमायमानः=धूमम् कुर्वन् यः अग्निः तस्य सन्धुक्षणं=प्रज्वालने अक्षणिकाः=न क्षणः=अवकाशः येषां ते तत्पराः व्यग्राः इत्यर्थः उपद्रष्टारः=पर्यवेक्षकाः द्विजाः=ब्राह्मणाः यत्र तां। उपकृशा०—कृशानोः=अग्नेः समीपे इत्युपकृशानु (अव्ययीभाव) निहिताः=स्थापिताः अनुपहताः अप्रयुक्तपूर्वाः प्रव्यग्राः इत्यर्थः हरिताः कुशाः=दर्भाः

हिन्दी–उस हृदय-चोर के प्रवेश करते ही वधू के द्वारा सौंपे हुए उसे कामदेव ने धर-पकड़ लिया। परिहासों में मुस्कराते मुँह वाली नारियाँ कौतुक गृह में जो-जो (काम) कराती थीं, जामाता उन सब को खूब अच्छी तरह कर गया। विवाहोचित वेश-भूषा पहने वधू को हाथ से पकड़ कर (वह) बाहर निकल आया और विवाह-वेदी के पास चला गया—जो नयी सफेदी से श्वेत थी, जो निमन्त्रित होकर आए हुए भूभृतों (राजाओं) से इस तरह घिरी हुई थी जैसे पार्वती के विवाह पर बुलाए हुए भूभृतों (पर्वतों) से हिमालय की तलहटी, जिसके प्रान्तभाग जलसिंचन से कोमल बने जौ के अङ्कुरों से उन्नत हुए, पाँच मुँहवाले, हल्के रंगों से तरह-तरह चित्रित सिंह-मुखी कलशों तथा मङ्गलकारी फलों को हाथ में लिए मिट्टी की पुतलियों से शोभित हो रहा था, जहाँ पुरोहित द्वारा डाली हुई लकड़ियों से धुँआ दे रही अग्नि को प्रज्वलित करने पर देखभाल करने वाले ब्राह्मण व्यस्त थे, जहाँ अग्नि के पास ताजी-ताजी हरी कुशा

संनिहितदृषदजिनाज्यस्रुक्समित्पूलीनिवहाम्, नूतनशूर्पार्पितश्यामलशमीपलाशमिश्रलाजहासिनीं वेदीम्। आरुरोह च तां दिवमिव सज्योत्स्नः शशी। समुत्ससर्प च वेल्लितारुणशिखापल्लवस्य शिखिनः कुसुमायुध इव रतिद्वितीयो रक्ताशोकस्य समीपम्। हुते च हुतभुजि दक्षिणावर्तप्रवृत्ताभिर्वधूवदनविलोकनकुतूहलिनीभिरिव ज्वालाभिरेव सह प्रदक्षिणं बभ्राम। पात्यमाने च लाजाञ्जलौ नखमयूखधवलिततनुरदृष्टपूर्ववधूवररूपविस्मयस्मेर इवादृश्यत विभावसुः।

अत्रान्तरे स्वच्छकपोलोदरसंक्रान्तमनलप्रतिबिम्बमिव निर्वापयन्ती स्थूलमुक्ताफलविमलबाष्पबिन्दुसन्दोहदर्शितदुर्दिना निर्वदनविकारं रुरोद वधूः। उदश्रुविलोचनानां च बान्धववधूनामुदपादि महानाक्रन्दः। परिसमापितवै-

---

यस्यां तां, सन्निहित०—सन्निहिता = समीपे स्थापिता दृषद् = शिला (अश्मारोहणार्थं) च अजिनानि = मृगचर्माणि च आज्यं = घृतं च स्रुक् = स्रुवश्च समिधां = काष्ठानां पुल्यः = गुच्छाश्च तेषां निवहः = समूहः यस्यां तां, नूतन०—नूतनः = नवीनः यः शूर्पः = ['प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्री' इत्यमरः] तस्मिन् अर्पिताः = निहिताः इत्यर्थः श्यामलैः = हरितैः शम्याः = पवित्रवृक्षविशेषस्य पलाशैः = पत्रैः मिश्रिताः = संमिश्राः ये लाजाः = भृष्टधान्यानि तैः हसतीति० हासिनी तां वेदीम् = विवाहवेदिकां, आरुरोह = आरूढवान् च तां = वेदीम् दिवम् = आकाशम् इवेत्युपमायां ज्योत्स्नया = चन्द्रिकया सहितः शशी = चन्द्रः। समुत्ससर्प = समुपगतश्च वेल्लिता०—वेल्लिताः = संचलिताः विलोलाः इति यावत् अरुणाः = रक्तवर्णाः शिखाः = ज्वालाः पल्लवाः = किसलया इवेत्युपमिततत्पु० यस्य अन्यत्र वेल्लितारुणशिखावत् पल्लवाः (लुप्तोपमा यस्य तथाभूतस्य शिखिनः = अग्रे कुसुमानि आयुधानि = शस्त्रास्त्राणि यस्य सः कामदेवः इत्यर्थः इवेत्युपमायां रतिः एतन्नाम्नी तत्पत्नी द्वितीया = सहचरी यस्य रतिसहितः इत्यर्थः रक्ताशोकस्य = रक्ताशोकस्य शिखिनः = वृक्षस्य उक्तं च —'अग्निः शिखीति च प्रोक्ता शिखी वृक्षो निगद्यते'। समीपम् अभ्यर्णं हुते = कृतहोमे च हुतं भुङ्क्ते इति हुतभुक् = वह्निः तस्मिन्, दक्षिणा०—दक्षिणैः = दक्षिणदिशोन्मुखैः आवर्तैः = सर्पणैरित्यर्थः प्रवृत्ताभिः = व्यापृताभिः अग्निज्वालानां दक्षिणाभिमुखत्वं शुभं भवतीति ध्येयम्, वध्वाः = राज्यश्रियाः वदनस्य = मुखस्य विलोकने = दर्शने कुतूहलं = कौतुकं आसामस्तीति तयोक्ताभिः इवेत्युत्प्रेक्षायां ज्वालाभिः अर्चिभिः सह एव प्रदक्षिणं = दक्षिणमुखम् यथा स्यात्तथा बभ्राम = अभ्रमत्, पात्य०—पात्यमाने = प्रक्षिप्यमाणे च लाजानां अञ्जलौ नखानां = वध्वाः कररुहाणां मयूखैः = किरणैः धवलिताः श्वेतीकृता तनुः = शरीरं यस्य तथाविधः विभावसुः = अग्निः अदृष्टपूर्वं = पूर्वं न दृष्टम् वधूवरयोः यत् रूपं = सौन्दर्यं तेन यः विस्मयः = आश्चर्यं तेन स्मेरः = स्मययुक्त इवेत्युत्प्रेक्षायां अदृश्यत = दृष्टिपथमागच्छत्, प्रक्षिप्ताः = लाजाः दन्ताः इव नखच्छटा, च मन्दहसितं प्रतीयते स्म कविख्यातौ हास्यस्य श्वेतत्वात्।

अत्रान्तरे ......रुरोद वधूः इत्यस्ति वाक्यम्। स्वच्छः०—स्वच्छयोः = निर्मलयोः कपोलयोः = गण्डयोः उदरे = मध्ये संक्रान्तम् = गतम् अनलस्य = अग्नेः प्रतिबिम्बं = प्रतिच्छायाम् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् निर्वापयन्ती = शमयन्ती स्थूल०—स्थूलानि = आयतानि यानि मुक्ताफलानि = मौक्तिकानि तद्वत् (लुप्तोपमा) विमलाः = स्वच्छाः ये बाष्पस्य = अश्रुणः बिन्दवः तेषां सन्दोहेन = समूहेन दर्शितं = प्रकटितं दुर्दिनं = मेघच्छन्नदिवसः ('मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः) वर्षादिनमिति यावत् यया सा निर् = न वदने = मुखे विकारः = विकृतिः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा रुरोद = रुदितवती

हिन्दी—रखी हुई थी, जहाँ पास में ही सिल, मृगचर्म, घृत और समिधा की गट्ठियों का समूह धरा हुआ था और जो नई छाज पर रखी, शमी-वृक्ष के हरे पत्तों से मिश्रित लाजाओं से हँस-जैसी रही थी और ज्योत्स्ना साथ लिये आकाश में चढ़ने वाले चन्द्र की तरह वह उस (वेदी) पर चढ़ गया और लहराती पल्लव-जैसी लाल लपटों वाली अग्नि के समीप इस प्रकार चला गया जैसे रति को साथ लिए हुए कामदेव लाल लपटों के समान हिलते हुए पत्तों वाले लाल अशोक वृक्ष के समीप जाया करता है। अग्नि में हवन हो चुकने पर दक्षिण की ओर जा रही, वधू का मुख देखने को उत्सुक हुई—जैसी ज्वालाओं के साथ-साथ दक्षिण की ओर (अग्नि की) परिक्रमा की। लाजाओं की अञ्जलि के डाले दिये जाने पर (वधू) के नख-किरणों से श्वेत-देह बनी अग्नि ऐसी दिखाई दी जैसे (इससे) पूर्व कभी न देखे हुए वर-वधू के रूप से चकित हुई हँस रही हो।

इस बीच स्वच्छ कपोलों के भीतर पड़े हुए अग्नि के प्रतिबिम्ब को बुझाती हुई-जैसी, मोटे-मोटे मोतियों की तरह स्वच्छ अश्रुबिन्दु समूह से वर्षा का दिन दिखाए मुख पर बिना कोई विकार लाए वधू रो पड़ी। अश्रुओं से डबडबाई हुई आँखों वाली बान्धवों की वधुओं का भी बड़ा क्रन्दन हो उठा। विवाह-सम्बन्धी क्रियाकलाप समाप्त किये हुए

वाहिकक्रियाकलापस्तु जामाता वध्वा समं प्रणनाम श्वशुरौ। प्रविवेश च द्वारपक्षलिखितरतिप्रीतिदैवतं, प्रणयिभिरिव प्रथमप्रविष्टैरलिकुलैः कृतकोलाहलम्, अलिकुलपक्षपवनप्रेङ्खोलितैः कर्णोत्पलप्रहारभयप्रकम्पितैरिव मङ्गलप्रदीपैः प्रकाशितम्, एकदेशलिखितस्तबकितरक्ताशोकतरुतलभाजाधिज्यचापेन तिर्यक्कूणितनेत्रत्रिभागेण शरमृजूकुर्वता कामदेवेनाधिष्ठितम्, एकपार्श्वन्यस्तेन काञ्चना[2]चामरुकेणेतरपार्श्ववर्तिन्या च दन्तशफरुकधारिण्या कनकपुत्रिकया साक्षाल्लक्ष्म्येवोद्दण्डपुण्डरीकहस्तया सनाथेन सोपधानेन स्वास्तीर्णेन शयनेन शोभमानम्, शयनशिरोभागस्थितेन च कृतकुमुदशोभेन कुसुमायुधसाहाय्यकायागतेन शशिनेव निद्राकलशेन राजतेन विराजमानं वासगृहम्।

टीका—वधूः=राज्यश्रीः। शीघ्रमेव मातापित्रादिकं विहाय सा परगृहे गमिष्यतीति शोकः तस्याः रोदनकारणम् अभूत्। उदश्रु०—उत्=उद्गतम् अश्रु येभ्यः इत्युदश्रूणि विलोचनानि=नयनानि येषां तेषाम् बान्धवानां=बन्धूनां वधूनां=स्त्रीणां महान् आक्रन्दः=रोदन-ध्वनिः उदपादि=उत्थितः। परिसमापितः=परिसमाप्तिं नीतः वैवाहिकीनां=विवाहसम्बन्धिनीनां क्रियाणां=कार्याणां कलापः=समूहः येन स जामाता=ग्रहवर्मा वध्वा समं=सह श्वशुरौ=श्वसुरश्च श्वश्रूश्चेति श्वसुरौ (एकशेष द्वन्द्वः) प्रविवेश च ''''वासगृहम् इत्यस्ति वाक्यम्। द्वार०—द्वारस्य पक्षे=पार्श्वे ('पक्षो०—मासार्धके''''''कुञ्जर—पार्श्वयोः' इति मेदिनी) लिखितं=चित्रितं रतिः प्रीतिः—दैवतं=प्रेमाधिष्ठातृदेवता यस्मिन् प्रणयि०—प्रणयिभिः=स्नेहिमित्रैः ग्रहवर्मणः इति शेषः इवेत्युपमायाम् प्रथमम्=अग्रे यथा स्यात्तथा प्रविष्टैः=कृतप्रवेशैः अलीनां=भ्रमराणां कुलैः=समूहैः कृतः=विहितः कोलाहलः=कलकलः यस्मिन् तत्, अलि०—अलिकुलस्य=भ्रमरसमूहस्य पक्षाणां=पतत्राणां पवनेन=वायुना प्रेङ्खोलितैः=दोलितैः कर्णोत्पलस्य=राज्यश्रिया कर्णाभरणत्वेन धृतस्य कमलस्य प्रहारात्=आघातात् भयेन प्रकम्पितैः=कृतकम्पैः इवेत्युत्प्रेक्षायां मङ्गल—दीपैः प्रकाशितम्=द्योतितम्, अर्थात् तेषां निर्वापणार्थं राज्यश्रीः कर्णोत्पलं प्रक्षेप्स्यतीति, एकदेश०—एकदेशे=एकभागे लिखितः=चित्रितः स्तबकितः=संजात-स्तबकः गुच्छयुक्तः इति यावत् यः रक्ताशोकस्य तरुः=वृक्षः तस्य तलम्=अधोभूमिभागं भजतीति० भाक् (क्विप्) तेन ज्याम् अधिरूढम् अधिज्यं चापं=धनुः यस्य तेन, तिर्यक्=वक्रं यथा स्यात्तथा कूणितः=संकोचितः नेत्रस्य त्रिभागः=तृतीयो भागः (त्रिशब्दोऽत्र पूरणार्थकः) यस्य तेन, तिर्यग्दृष्टित्वेनैव कामः अन्धो भवतीति प्रसिद्धं लोके, शरम्=बाणम् ऋजूकुर्वता=सरलीकुर्वता सन्दधतेति यावत् (वर-वध्वोः प्रहारार्थम्) कामदेवेन=अधिष्ठितम्=अध्यासितम्, एकपार्श्व—एकस्मिन् पार्श्वे न्यस्तेन=निहितेन काञ्चनस्य=सुवर्णस्य आचामरुकेण ([1] आचमनकेन) पतद्ग्रहेण निष्ठीवनपात्रेणेत्यर्थः, इतरस्मिन्=अन्यस्मिन् पार्श्वे=पक्षे वर्तते

टिप्पणी—आचामरुकेणा—यह अस्पष्टार्थ शब्द है। जीवानन्द ने आदि के आकार को मिटाकर 'चमरुकम्—चमरुमृगप्रतिकृतिः' अर्थ किया है, किन्तु सभी प्रतियों में 'आचामरुक' ही पाठ है। कॉवम और थॉमस ने इसका अर्थ Rensing vessel=हस्तप्रक्षालनपात्र अथवा आचमन-पात्र अर्थ किया है। म० म० काणे के अनुसार आचमनक के स्थान में प्राचीन लिपिकार भ्रम से आचामरुक लिख बैठा होगा आचामनक, पतद्-ग्रह, निष्ठीवन-पात्र अर्थात् पीकदान को कहते हैं। हम इससे सहमत हैं। राजाओं के शयनकक्षों में सोने-चाँदी के पीकदान रहा ही करते हैं।

हिन्दी—जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया और वास-गृह में प्रविष्ट हो गया—जहाँ दरवाजे के पास प्रेम की अधिष्ठात्री देवी रति का चित्र बना हुआ था, जहाँ पहले प्रविष्ट हुए प्रेमी मित्रों—जैसे भ्रमर समूहों ने कोलाहल मचा रखा था, जो भ्रमर-समूह के पंखों की हवा से हिलते हुए, कर्णोत्पल के प्रहार के भय से काँपते हुए—जैसे मंगल-दीपों से प्रकाशित हो रहा था, जहाँ एक जगह चित्र में (पुष्प-) गुच्छों से लदे हुए रक्ताशोक वृक्ष के तले धनुष ताने; आँख के तृतीय भाग को टेढ़े मुँदे बाण को सीधा करते हुए कामदेव बैठा हुआ था, जो ऐसे पलंग से शोभित हो रहा था, जिसके एक ओर सोने की पीकदान रखी हुई थी, दूसरी ओर हाथी-दाँत का डब्बा (हाथ में) धारण किये हुए सोने की पुतली थी, जो लम्बे नाल-दंड वाला कमल हाथ में रखे साक्षात् लक्ष्मी-जैसी लग रही थी, जहाँ तकिया रखा था और अच्छी तरह चादर बिछी शय्या से सजा हुआ था और जो पलंग के सिर-भाग की तरफ स्थित, कुमुदों से शोभित किये हुए (मंगलार्थ) चाँदी के निद्रा-कलश से ऐसा विराजमान हो रहा था मानो कुमुदों की शोभा किए हुए चन्द्रमा कामदेव की सहायतार्थ आया हुआ हो।

1. 'काञ्चनाचामनकेन'

तत्र च ह्रीताया नववधूकायाः पराङ्मुखप्रसुप्ताया मणिभित्तिदर्पणेषु मुखप्रतिबिम्बानि प्रथमालापाकर्णन-कौतुकागतगृहदेवताननानीव मणिगवाक्षकेषु वीक्षमाणः क्षणदां निन्ये स्थित्वा च श्वशुरकुले शीलेनामृतमिव श्वश्रू-हृदये वर्षन्नभिनवाभिनवोपचारैरपुनरुक्तान्यानन्दमयानि दश दिनानि स्थित्वा दत्त्वा राजदौवारिकमिव राजकुले रणरणकं यौतकनिवेदितानीव शम्बलान्यादाय हृदयानि सर्वलोकस्य कथं कथमपि विसर्जितो नृपेण सह स्वदेशमगमदिति ।

इति श्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते चक्रवर्तिजन्मवर्णनं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।

टीका—इति० वर्तिनी तया दन्तस्य=गजदन्तस्य शफरकं=पिटकं अथवा कमलं धारयतीति तयोक्त्या कनकस्य=सुवर्णस्य पुत्रिकया=पुत्तलिकया साक्षात्=प्रत्यक्षं उद्गतः दण्डः=नालः यस्य तथाभूतं पुण्डरीकं=कमलं हस्ते यस्याः तया लक्ष्म्या लक्ष्मीदेव्या सनाथेन=युक्तेन उपधानम्=उपवर्हः तेन सहितेन स्पष्टं यथा स्यात् तथा आस्तीर्णेन=प्रच्छद-पटाच्छन्नेन शयनेन=शय्यया शोभमानम्=लसत्, शयन०—शयनस्य=शिरोभागे=शिरःस्थापनभागे स्थितेन कृता कुमुदैः=कैरवैः शोभा यस्य अन्यत्र कृता कुमुदानां शोभा येन तेन, कुसुमायुधस्य=कामदेवस्य सहायकाय=सहाय्यस्य भावः सहायकम् (सहाय + वुञ् भावे) तस्मै आगतेन=आयातेन शशिना=चन्द्रमसा इवेत्युत्प्रेक्षा सा च श्लिष्टा, चन्द्रः उद्दीपनविभावेन गण्यते कामोद्दीपकत्वात् निद्रा-कलशेन=निद्रायां मङ्गलार्थं निहितेन कलशेन (मध्यमपदलोपी स०) यया निद्रा समागच्छेत् निद्रायाश्च दुःस्वप्नादिविनाशःस्यादिति मङ्गलकलशेन निधीयते यथाह बाणः कादम्बर्यामपि-'क्रमेण चोद्गते गगनमहापयोधिपुलिने सप्तलोकमङ्गलनिद्राकलशे कुमुदबान्धवे' राजतेन=रजतस्य रौप्यस्यायं राजतः (अण्) विराजमानं=शोभमानम् वासगृहम्=वासभवनम् शयनगृहमिति यावत् ।

ह्रीताया=ह्रीणायाः लज्जितायाः इत्यर्थः नववधूकायाः=नववध्वाः पराङ्मुखम् यथा स्यात्तथा परयुः विमुखी-भूयेत्यर्थः प्रसुप्तायाः=शयितायाः मणिभित्तयः=मणिमयकुड्यानि एव दर्पणाः=मुकुराः तेषु मुखबिम्बानि=मुखप्रतिच्छाया। प्रथमा०—प्रथमः यः आलापः=वर-वध्वोः संलापः तस्य आकर्णने=श्रवणे यत् कौतुकं=कुतूहलं तेन आगतानाम् कुलदेवतानां=कुलाधिष्ठातृदेवतानाम् आननानि मुखानि इवेत्युत्प्रेक्षायाम् मणिगवाक्षेषु=मणिमयवातायनेषु वीक्षमाणः=पश्यन् क्षणदां=रात्रिं निन्ये=यापयामास ग्रहवर्मा श्वसुरस्य=प्रभाकरवर्धनस्य कुले=गृहे स्थित्वा शीलेन=आचरणेन श्वश्र्वाः=यशोमत्याः हृदये अमृतम् इवेत्युत्प्रेक्षायां वर्षन्=स्रवन् अभिनवाभिनवैः=नूतनैः नूतनैः उपचारैः=संमानैः अपुनरुक्तानि=न पुनरुक्तानि=समानरूपाणि पूर्वंपूर्वतो विलक्षणानीत्यर्थः आनन्द-मयानि=आनन्दरूपाणि दिनानि (कालात्यन्तसंयोगे द्वि०) स्थित्वा=वासं कृत्वा राज्ञः दौवारिकम्=द्वारपालम् इवेत्युपमायां राजकुले=राजगृहे राजपरिवारजनहृदयेष्वित्यर्थः रणरणकं=विषादं दत्वा अर्थात् यथा राजदौवारिकः अहर्निशं राजकुले तिष्ठति तथैव ग्रहवर्मगमनकृतविषादोऽपि राजकुले अहर्निशमतिष्ठत्, यौतकरूपेण=विवाहे दीयमानो-पायनरूपेण निवेदितानि=समर्पितानीत्यर्थः इवेत्युत्प्रेक्षायाम् शम्बलानि=पाथेयानि आदाय=गृहीत्वा हृदयानि सर्व-लोकस्य=सर्वपरिवारजनस्य कथं कथमपि=केनापि प्रकारेण कठिनतयेत्यर्थः विसर्जितः=गन्तुमनुज्ञातः नृपेण=प्रभाकर-वर्धनेन वध्वा=राज्यश्रिया सह स्वदेशम् अगमत् अगच्छत् इति ग्रन्थसमाप्तौ ।

इति श्री बाणभट्ट कृतौ हर्षचरिते मोहनदेवपन्तकृतायां 'छात्रतोषिण्यां'

चक्रवर्तिजन्मवर्णनं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः

हिन्दी—वहाँ लज्जित मुँहफेर सोयी नववधू के मणिभित्ति-रूपी दर्पणों में (पड़े) मुख के प्रतिबिम्बों को मणिमय झरोखों में (वर-वधू का) प्रथम संलाप सुननेके कुतूहल के कारण आये हुए गृहदेवताओं के मुखों को—जैसे देखते हुए ग्रहवर्मा ने रात काटी और श्वसुर गृह में ठहरकर (अपने) सच्चरित से सास के हृदय में अमृत की-सी वृष्टि करता हुआ, नये-नये आदर सम्मानों से, नये-नये आनन्दमय दस दिन रहकर, राजद्वारपाल की तरह [सतत स्थित] विषाद देकर, और दहेज में दिए हुए पाथेय—जैसे सब लोगों के हृदय लेकर किसी तरह राजा द्वारा विदा किया जाता हुआ ग्रहवर्मा वधू के साथ अपने देश चला गया ।

बाणभट्ट की कृति हर्षचरित का चक्रवर्ति-जन्मवर्णन नामक चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

हर्षचरितम्

"छात्रतोषिणी" संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याभ्यां टिप्पण्या च समलङ्कृतम्

(१-४ उच्छ्वासात्मकः पूर्वभागः)

प्राचार्य-श्रीमोहनदेवपन्तः

ईसा की सातवीं शती के पूर्वार्ध में उत्तरी भारत में सार्वभौम नृपति हर्षवर्धन हुए जिनकी राजधानी स्थाण्वीश्वर थी जो कि आजकल कुरुक्षेत्र के निकट 'थानेसर' नाम से प्रख्यात है। प्रस्तुत कृति के रचयिता बाणभट्ट ने इनका जीवनचरित लिखा जो 'हर्षचरित' नाम से प्रसिद्ध है।

बाण का हर्षचरित हर्षवर्धन की आंशिक जीवनी पर आधारित है, हर्ष के सम्बन्ध में बाण ने जो मुख्य-मुख्य बातें लिखीं, वे भी थोड़ी-सी हैं। राज्य का आठ उच्छ्वासों तक का विस्तार तो उनकी अलंकृत शैली का विलास है, उनके लम्बे-लम्बे काव्यमय वर्णन हैं, पाठकों को मनोमुग्ध करने के लिए बनाई हुई एक विशाल शब्द-चित्रशाला है।

किसी भी कृति का अपने सम-सामयिक समाज से प्रभावित होना स्वाभाविक है। बाण के हर्षचरित से हमें सातवीं शताब्दी के समाज का पूरा परिचय मिलता है।

आठ उच्छ्वासों में विभाजित इस कृति को हमने दो भागों में छापा है। ये भाग अलग-अलग जिल्दों में प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत भाग में शुरू के चार उच्छ्वास हैं। इनमें पहले दो उच्छ्वासों में तथा तीसरे उच्छ्वास के कुछ अंश में बाणभट्ट ने अपना जीवन-चरित दिया है।

तृतीय उच्छ्वास में बाणभट्ट का गृहागमन, बन्धु-जनों से भेंट, उनकी हर्षचरित सुनने की जिज्ञासा और जिज्ञासा-पूर्ति के लिये 'हर्षचरित' का आरम्भ वर्णित है। हर्ष के एक पूर्वज पुष्पभूति से आख्यान का आरम्भ होता है। पुष्पभूति का भैरवाचार्य से समागम, शैव-साधना में भैरवाचार्य को सहायता, भैरवाचार्य का गन्धर्व रूप में स्वर्गारोहण आदि कुछ अमानुष तत्त्वों ने आख्यान को रोचक बना दिया है।

चतुर्थ उच्छ्वास में कहा है कि पुष्पभूति से वर्धन-वंश के राजाओं का उद्गम हुआ। इस वंश के प्रभाकर-वर्णन, उनकी पत्नी यशोमती, उनके पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा कन्या राज्यश्री का चरित दिया है। राज्यश्री और गृहवर्मा के विवाह का सुन्दर चित्र खींचा गया है।

इस संस्करण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं-प्रत्येक उच्छ्वास में मूलपाठ के साथ संस्कृत और हिन्दी में टीकाएं जोड़ दी हैं। कई स्थलों पर टिप्पणी भी कर दी हैं। जहां पद्य आये हैं टीका सहित उनका अन्वय भी लगा दिया हैं। भूमिका में बाण और हर्ष का सक्षिप्त परिचय देकर कृति के सभी पहलुओं की समीक्षा भी कर दी है।

MOTILAL BANARSIDASS
SINCE 1903 IN INDOLOGY
MLBD
E-mail: mlbd@mlbd.com
Website: www.mlbd.com

₹ 495

Literature

ISBN 978-81-208-2615-1